साक्षात् धर्म विग्रह प्रभु श्रीराम और भारतीय जीवन का अखण्ड प्रवाह

डॉ. हरवंशलाल ओबराय
स्वामी संवित् सुबोधगिरि

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास
खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व
खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान
खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता
खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम, भक्तानन्द शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139
08278680977

ISBN 978-93-84133-20-7

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

श्री सुशील कुमार ताम्बी
प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
A/3 आर्य नगर
एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
मुरलीपुरा, जयपुर 302039
फोन : 0141-2233765
मो. : 09829547773

ज्ञान गंगा प्रकाशन
पाथेय भवन,
बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
दूरभाष : 0141-2371563

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
नई दिल्ली 110055
फोन : 011-23675667

जागृति प्रकाशन
श्री कृष्णानन्द सागर
एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
दूरभाष : 0120-2538101
मो. : 09871143768

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : 2019 ई. गुरु पूर्णिमा

प्रतियां : 1100

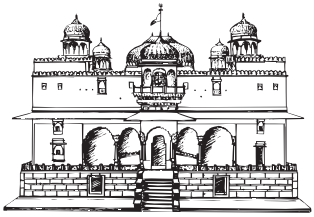
मूल्य : ग्यारह सौ रुपये मात्र

आवरण : गौरी शंकर आचार्य

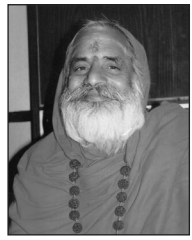
मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

SAKSHAT DHARM VIGGRAH PRABHU SHREERAM AUR BHARTIY JIVAN KA AKHAND PARWAH : Dr. Harbans Lal Oberai (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 1100

ॐ ईशावास्यं इदं सर्वम्



श्री लालेश्वर महादेव मन्दिर



महन्त

स्वामी संवित् सोमगिरि

श्रीलालेश्वर महादेव मन्दिर, शिवमठ,
शिवबाड़ी, बीकानेर 334003 (राजस्थान)

शिवाशीर्वाद

परब्रह्म के अवतार प्रभु श्रीराम की महती कृपा से श्री स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी ने अपनी विशिष्ट शैली में इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक की रचना की है। अपने पूर्व प्रकाशन 'रामायण का हार्द' में नूतन सामग्री को सज्जित कर 'साक्षात् धर्म विग्रह प्रभु श्रीराम और भारतीय जीवन का अखण्ड प्रवाह' नामक यह पुस्तक भारतीय संस्कृति के मूल, गन्तव्य, गति, संरचना आदि सभी पक्षों को उजागर करती है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य व वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान को दृष्टि में रखते हुए विद्वान् लेखक ने कुशलता पूर्वक प्रतिपादित किया है कि युगों पुरानी भारतीय संस्कृति के अजस्र प्रवाह में ज्ञान-विज्ञान, पदार्थ ज्ञान और अध्यात्म ज्ञान के उच्चतम स्तरों को छुआ है, तथा आज भी भारत पुनः अपनी सनातन संस्कृति के परमार्थ दर्शन और व्यावहारिक दर्शन को अपना कर न केवल स्वयं अपितु समस्त विश्व चराचर जगत् अभ्युदय (बाह्य सर्वांगीण विकास) और निःश्रेयस (आत्मा की ब्रह्मरूपता की अनुभूति) के शुभंकर मार्ग पर क्षिप्र गति से प्रयाण करेगा। भारतीय संस्कृति को अपनाने से ही विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान होकर एक शीतल, शान्त, सौहार्दपूर्ण परिवेश का निर्माण होगा। मनीषी लेखक द्वारा विरचित अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के पश्चात् यह नवीन रचना मां भारती के प्रति विशेष अर्घ्य के समान है।

अनेक भ्रान्तियों को प्रशमित करते हुए नूतन आलोकपूर्ण क्षितिजों को जन्म देता यह प्रकाशन अधिकाधिक लोगों को अनुप्राणित करे, यह शुभकामना है।

श्री स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी स्वस्थ व प्रसन्न रहते हुए परम कल्याण को प्राप्त करें—यह शिवाशीर्वाद है।

शिवाकांक्षी

संवित् सोमगिरि

सम्पादकीय

रामायण और महाभारत हमारे राष्ट्रीय ग्रंथ हैं। इसमें वर्णित व्यक्ति हमारे जीवन में एक रूप हो गये हैं। राम, सीता, धर्मराज, द्रौपदी, भीष्म, हनुमान आदि रामायण-महाभारत के चरित्रों ने सारे भारतीय जीवन को लाखों वर्षों से मंत्रमुग्ध कर रखा है। संसार के अन्य महाकाव्यों के पात्र इस तरह लोक-जीवन में घुले-मिले दिखाई नहीं देते। इस दृष्टि से रामायण-महाभारत निःसन्देह अद्‌भुत ग्रंथ हैं। रामायण एक मधुर नीति काव्य है तो महाभारत एक व्यापक समाजशास्त्र।

कुछ समय पूर्व तक उत्तर भारत के घर की पहचान दो चीजों से होती थी—बेठन में बंधी रामचरितमानस की पोथी से और तुलसी के पौधे से। मतलब यह है कि चाहे तुलसी का पौधा हो, चाहे तुलसीकृत रामायण दोनों ही हिन्दुत्व के अनिवार्य अंग थे। स्पष्ट है रामायण में कुछ ऐसी बुनियादी चीजें हैं जो जन-जीवन में स्वयमेव जुड़ जाती है। आधुनिक युग में महात्मा गांधी रामायण से मंत्रमुग्ध थे और अपनी प्रेरणा का स्रोत और अपनी महानता का रहस्य भी इसे मानते हैं, तथा इसकी लोकप्रियता को देखते हुए भी इसे अपने दैनिक जीवन में स्थान दिया। डॉ. प्रभाकर माचवे कहते हैं—मुझे वह दृश्य भी याद है जब पं. नेहरू अ.भा. कांग्रेस कार्यकारिणी की सभा के लिए वर्धा आते तो 'बापू' उन्हें शाम की प्रार्थना में ले आते। बाहर आंगन में रेती पर आसन बिछाये सब लोग बैठे हैं। 'बा' मोटे अक्षरों में लिखी रामायण लालटेन के सहारे पढ़ रही है। कोई जवाहरलाल जी के सामने भी रामायण लाकर रखता है। पहले वे जरा नाराज होकर एक तरफ रख देते हैं। उन्हें सामूहिक राम भजन पसन्द नहीं है। फिर धीरे से चश्मा निकालकर वह अंश खोलकर पढ़ते हैं। उनकी मुख-मुद्रा पर जो एक तनाव था वह कम होता जाता है। पुनः उनके भारतीय संस्कार जैसे उनके चेहरे को भास्वर बना देते हैं। मुंह पर एक मुसकान है।

पर इधर ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रसार बढ़ता गया मानस की लोकप्रियता घटती गयी। अब मुश्किल से ऐसे विद्यार्थी मिलेंगे जिन्होंने मानस को आद्योपान्त पढ़ा हो। मानस पारायण की अभिरुचि भी दिन पर दिन कम होती जा रही है यह आधुनिक शिक्षा का दुष्प्रभाव है जिसके कारण हम निरन्तर भारतीयता से जुड़ने के स्थान पर निरन्तर कटते जा रहे हैं। जीवनमूल्यों का निरन्तर क्षरण होता जा रहा है। अतः समय रहते सचेत होने की आवश्यकता है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है जब धर्म या कर्म के स्वरूप में संदेह हो तो धर्मज्ञ महापुरुषों के बर्ताव को देखकर उसके स्वरूप का निश्चय कर लेना चाहिए।

'यथा ते तत्र वर्तेरन तथा तत्र बर्तेथाः।' इसके अनुसार यदि हम सम्पूर्ण धर्म और धर्मपूर्ण बर्ताव का आदर्श किन्हीं एक महापुरुषों में देखना चाहें तो सर्वप्रथम प्रभु श्रीराम के जीवन पर दृष्टिपात करना होगा—

'श्रीराम ने जिसे धारण किया, वही आदर्श धर्म है, जिसे उन्होंने संस्कार प्रदान किया, वही हिन्दू संस्कृति है और जिसको वे आचरण में ले आए, वही हिन्दुओं का आदर्श सदाचार एवं शिष्टाचार है।' इसलिए कहा गया 'रामोविग्रहवान धर्म' श्री रामचन्द्रजी धर्म के साक्षात् विग्रह हैं।

अतः प्रभु श्रीराम चन्द्र का जन्म भारत के ही नहीं वरन् विश्व के सांस्कृतिक इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है। राम हमारे देवविग्रह ही नहीं, अवतार विग्रह, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म परात्पर ही नहीं, हमारे राष्ट्रीय महापुरुष भी हैं जो पारिवारिक एकता, सामाजिक समरसता, राष्ट्रीय एकात्मता एवं अन्तरराष्ट्रीय मैत्री व सौहार्द विश्व के सांस्कृतिक दिग्विजय के आधार भी हैं। इसलिए राममनोहर लोहिया स्वयं नास्तिक होते हुए भी राम, कृष्ण, शिव की चर्चा करते हैं। उन्होंने ही अन्तरराष्ट्रीय रामायण मेले की योजना प्रस्तुत की और उसको प्रारम्भ करवाया।

प्रायः इतिहासकार विस्मय करते हैं कि वैदिक काल की इन्द्रपूजा का स्थान विष्णु पूजा ने कैसे ले लिया? इसका उत्तर है कि भगवान विष्णु के राम-कृष्णादि रूपों ने सौ-सौ इन्द्रों से भी ऊंचा आदर्श स्थापित किया। वेद का आदेश है— आचारः प्रथमो धर्मः। आचार नीति के क्षेत्र में मातृमोदवर्धक, पितृनिर्देश पालक, सुहृदय, दुःखविमोचक, एक पत्नी व्रतधारी, प्रजापालक, दशरथ यशवर्धक, सर्वगुणागार भगवान राम के चरित्र के सम्मुख स्वर्ग में अप्सराओं के नृत्य में आनन्द मानने वाला इन्द्र देवता क्या मूल्य रखता है? इसलिए राम के प्रताप से भारत स्वर्ग से भी ऊंचा बन गया।

इसलिए वाल्मीकिजी जब नारदजी से पूछते हैं किसे आदर्श के रूप में स्वीकारे—किसके चरणों में अपना जीवन समर्पित करे तब नारदजी रामचरित्र का गान करते है क्योंकि भारतीय परम्परा में जो कुछ भी उदात्त महान् और अनुकरणीय है, श्रीराम उसके मूर्तरूप हैं। सभी मानवीय गुण हमें श्रीराम के चरित्र में देखने को मिलते हैं। श्रीराम हिन्दू हृदय सम्राट् भारत की आत्मा एवं भारतीय संस्कृति का सार हैं। वह भारतीय समाज के उच्चतम आदर्श हैं। वह हर हिन्दू हृदय में एक अमर तत्त्व के रूप में अधिष्ठित हैं, जिसमें ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और धार्मिक, सभी रूप समाहित हैं। वह आदर्श पुत्र है, भाई है, पति है, वह आदर्श पिता हैं, आदर्श मित्र है यहां तक कि आदर्श शत्रु है और आदर्श राजा हैं। वह सर्वगुण सम्पन्न महापुरुष हैं, अतः भगवान के अवतार हैं। यही कारण है कि लाखों वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी श्रीराम भारतीय जनजीवन में इस प्रकार रचे-बसे हैं मानो आज भी हमारे बीच में सशरीर विराजमान हैं। इसलिए हम चाहते हैं हमारे अन्तर (हृदय)

में रामराज्य स्थापित हो, हमारे घर में भी, समाज, राष्ट्र एवं सारे विश्व में रामराज्य स्थापित होवे, धर्म का राज्य, न्याय का राज्य, सद्वृत्तियों का राज्य स्थापित हो। हमारे अन्दर बुरी वृत्ति उठे ही नहीं सद् वृत्ति ही उठे। यहां तक कि दुष्ट रावण भी जब मां सीता को छलने के लिए राम का रूप धारण करता है उसके अन्दर भी सद्-वृत्ति ही उठती है, पर-नारी के प्रति मातृ बुद्धि ही बनती है, अतः ऐसा प्रयास छोड़ देता है। स्पष्ट है प्रभुश्री राम साक्षात् धर्म विग्रह है।

श्रीराम सेतु के प्रकटन ने स्पष्ट कर दिया कि हमारा राष्ट्र जीवन आज से सत्तरह लाख वर्ष पुराना है। अतः स्पष्ट है भारत एक सनातन प्रभु निर्मित राष्ट्र है, सनातन इसकी संस्कृति है। इस राष्ट्र की सीमाएं भी प्राकृतिक है, और प्रभु श्रीराम एक ऐतिहासिक पुरुष है, महापुरुष हैं, अवतार पुरुष हैं, देव विग्रह है, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड नायक परात्पर परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं। और भारत राष्ट्र का जीवन वेद काल से यानी सृष्टि के प्रारम्भ से जब प्रभु में यह संकल्प उठता है 'एकोऽहम बहुस्याम' तब से अखण्ड रूप से, प्रवाह रूप में आज तक चला आ रहा है और भविष्य में भी अक्षुण्ण रूप से चलता रहेगा। अतः आर्य बाहर से आये थे, और अंग्रेजों की कृपा से भारत एक मिले-जुले (हिन्दू-मुस्लिम-ईसाई) राष्ट्र के रूप में विकसित हो रहा है, यह गीत गाना अब बन्द हो जाना चाहिए। भारत रामायण काल में सुसभ्य, सुसंस्कृत, सुशिक्षित तथा तंत्र एवं तकनीकी ज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त विकसित राष्ट्र है। अतः तंत्र और तकनीकी ज्ञान भारत में अंग्रेजों के साथ आया तथा भारत में शिक्षा का प्रसार भी अंग्रेजों की कृपा से हुआ यह भ्रान्ति भी निकाल देनी चाहिए। और न तंत्र और तकनीकी ज्ञान का सम्बन्ध अंग्रेजी भाषा से जुड़ा हुआ है। तभी धर्मपालजी प्रश्न उठाते हैं बिना अंग्रेजी भाषा के रूस में चांद तक राकेट कैसे पहुँचा था? बिना अंग्रेजी ज्ञान के जापान ने इतनी औद्योगिक उन्नति किस प्रकार की है, फ्रांस कैसे विकसित हो सका? ऐसे ही इजराइल, चीन आदि आधुनिक उदाहरण और प्राचीन उदाहरणों में स्वयं भारत हमारे सामने है।

भारत एक सांस्कृतिक राष्ट्र है। भारत में पारिवारिक एकता, सामाजिक समरसता, राष्ट्रीय एकात्मता, का आधार संस्कृति है। भारत की अमरता का आधार भी संस्कृति है। अन्तरराष्ट्रीय मैत्री व सौहार्द का आधार भी संस्कृति है, हमारे सांस्कृतिक दिग्विजय का आधार भी संस्कृति है। राजनीतिक या केवल कूटनीतिक हस्तमिलाप थोड़ा सा स्वार्थ बदलते ही राजनीतिक घूसे में बदल जाता है। पर संस्कृति दो हृदयों का बंधन है जिसे काल के थपेड़े तोड़ नहीं पाते हैं इसलिए विश्व में हमारा सांस्कृतिक साम्राज्य आज तक अक्षुण्ण है और भविष्य में भी सदा बना रहने वाला है। अब चूंकि भारत एक संस्कृति प्रधान राष्ट्र है अतः संस्कृति को पुष्ट करने वाले तत्त्वों पर भी विचार किया गया है। फिर भारत राष्ट्र के मूल में आधारभूत तत्त्व कौन-कौन से है उस पर भी विचार किया गया है। भारत राष्ट्र के

निर्माण, उसके विस्तार-वर्धन में, संवर्धन में, संरक्षण में जिनका विशेष योगदान है ऐसे महापुरुषों की एक झांकी प्रस्तुत की गई है। फिर भारत के राष्ट्र जीवन की अखण्डता-अजेयता, सफलता के रहस्यों पर भी विचार किया गया है।

काल का प्रवाह सदा एक-सा नहीं चलता चाहे वह व्यक्ति जीवन हो, परिवार जीवन हो, समाज जीवन हो या राष्ट्र जीवन हो। वह चक्राकार घूमता है। उसमें उत्थान और पतन के दौर आते हैं। इसी क्रम में विगत 1,000-1,200 वर्षों से राष्ट्र जीवन के प्रवाह में क्या-क्या अवरोध आ गये हैं, अनेक भ्रान्तियां निर्मित हो गई है उस पर विचार किया है। अंग्रेजों के पूर्ववर्ती आक्रान्ता—ग्रीक, शक, हूण, कुषाण हों, तुर्क, पठान, मुगल हों, फ्रेंच, डच आदि हों, इन्होंने शारीरिक आघात किए, मानसिक आघात में उतने समर्थ सिद्ध नहीं हुए। उसके पश्चात् अंग्रेज आये, ये सबसे ज्यादा धूर्त थे। इन्होंने भारत के मूल को, भारत के आधार को, शारीरिक आघात के साथ-साथ मानसिक आघात ज्यादा किए। अपनी कुटिलता के द्वारा हमारी शिक्षा, हमारे इतिहास एवं अन्य सारी व्यवस्थाओं को अपने अनुकूल ढालकर हमारे मानस को ही बदल डाला। हमारे प्रेरणा के अक्षय स्रोत हमारे शास्त्रों, हमारे महापुरुषों, हमारे आदर्शों के प्रति हेय बुद्धि, त्याज्य बुद्धि और अपने प्रति श्रेष्ठ बुद्धि, ग्राह्य बुद्धि उत्पन्न कर दी। इसी का परिणाम है हम औपनिवेशिक मानसिक दासता के शिकार हुए। उससे अभी तक हम मुक्त नहीं हो पाये, यही हमारे राष्ट्रीय उत्थान में सबसे बड़ी बाधा बनी हुई है। सभी भ्रान्तियों के मूल में औपनिवेशिक मानसिकता है।

इसलिए आज भारत के उन्नयन में औपनिवेशिक मानसिकता सबसे बड़ी बाधा है। भारत की समस्याओं का समाधान इसलिए नहीं निकल पा रहा है, क्योंकि हम प्रत्येक समस्या को पश्चिम के दृष्टिकोण से देखने के आदी हो चुके हैं, जबकि आवश्यकता है कि हम अपनी समस्या को अपनी दृष्टि से देखें। औपनिवेशिकता हम पर इस कदर हावी हो गई है कि आज भी अपनी भाषा, अपना ज्ञान, अपनी संस्कृति, अपनी परम्पराएं हमें पश्चिम के मुकाबले निर्बल व हीन जान पड़ते हैं। यह भ्रम दूर करना आवश्यक है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस खतरे को भांपकर 1930 में ही इस ओर इशारा किया था। रवीन्द्रनाथ ने ब्रिटिश आक्रमणों के विषय में अपना विचार रखते हुए कहा था कि हम ऐसा न समझें कि ब्रिटिश आक्रमण केवल कॉलोनी बनाने के लिए, लूट करने के लिए, सम्पत्ति एकत्रित करने के लिए या अपना राज्य विस्तार करना ही एकमात्र हेतु है, बल्कि यह एक सर्वकर्ष आक्रमण है जो हमारे समाज को, हमारे मानस को उसकी आत्मा को मूल रूप से परिवर्तित कर देगा। और इसका मुकाबला करने के लिए आप तीर-कमान लेकर पीछे दौड़ेंगे तो यह अपना रूप बदलता जायेगा। यह आक्रमण आज आपको अंग्रेजों के रूप में दिखाई दे रहा है, कल किसी और रूप में, परसों किसी भारतीय के रूप में दिखाई दे सकता है। वहीं, 1931 में कृष्णचंद्र भट्टाचार्य भी लिखते हैं—'राजनीतिक

दासता दिखाई पड़ती है, लेकिन सांस्कृतिक दासता दिखाई नहीं पड़ती और इसे हम बिना किसी वाद-विवाद के स्वीकार कर लेते हैं। फिर उसका समाधान देते हुए कहते हैं कि इससे मुक्ति पाने के लिए हमें भारत की आत्मा का साक्षात्कार करना होगा। यह साक्षात्कार केवल दार्शनिक आधार पर ही नहीं, अपने चरित्र और कर्तव्य की अभिव्यक्ति के आधार पर ही सम्भव है।

वस्तुतः विश्व समाज के सामने जितने भी प्रकार के प्रश्न खड़े हैं, उनका समाधान भारतीय चिंतन से ही सम्भव है। महामना पंडित मदनमोहन मालवीय कहते थे कि मुझे विश्व की चिन्ता है, इसलिए भारत की चिन्ता करता हूं। क्योंकि विश्व के सभी प्रश्नों का उत्तर भारत से ही मिलेगा। दुनिया के अनेक विद्वान् यह मानते हैं कि निकट भविष्य में भारत ही विश्व का नेतृत्व करेगा। लेकिन यह सदी भारत की तब हो सकेगी, जब भारत उपनिवेशवाद से पूरी तरह मुक्त हो पाएगा।

जिस पश्चिम ने भारत को सदा-सदा गुलाम बनाये रखने के लिए नानाविध षड्यंत्र रचे वह स्वयं किस प्रकार संकटों से घिरता जा रहा है उसका सर्वप्रथम अनुभव स्वामी विवेकानन्दजी ने किया। जब अधिकांश भारतीय लेखक भी पश्चिम में पूर्ण स्वर्णिम युग की आशा लगाए हुए थे। विवेकानन्द भी अपनी पहली यात्रा में अमेरीका और यूरोप के शौर्य, संगठन और मिथ्या लोकतंत्र के भुलावे में आ गए थे। पर दूसरी यात्रा में पश्चिमी सभ्यता की निरर्थकता समझ में आ गई थी। विवेकानन्द पहले व्यक्तियों में से थे जिन्होंने अनुभव किया कि यूरोपीय सभ्यता के ऊपर संकट की छाया चुपचाप घिरी आ रही है। बाहर से वह सभ्यता अपनी सफलता के चरम शिखर पर थी। उस समय के अधिकांश भारतीय लेखकों ने पश्चिम में समृद्धि, आशावाद, विज्ञान और तकनीकी प्रगति के अतिरिक्त कुछ नहीं देखा था। क्योंकि अर्थ, काम और शक्ति के सिद्धान्त ने मनुष्य को बहिर्मुखी बनाकर अहर्निश कर्म करने की प्रेरणा दी जिसके फलस्वरूप अपार भौतिक वैभव प्राप्त हुआ जो किसी भी युग में इसके पूर्व शायद सम्भव नहीं हुआ था। पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने के बजाय पृथ्वी को ही स्वर्ग में परिणत कर दिया और यह आशा की जाने लगी कि अब एक पूर्ण जगत् का आगमन होने ही वाला है। दुःख, दैन्य, अज्ञानता की सदा के लिए समाप्ति होने ही वाली है। प्रगति की शताब्दी की इस मनोदशा को प्रकट करते हुए ब्राऊनिंग ने गाया था—

ईश्वर अपने स्वर्ग में है और
संसार में सब कुछ ठीक ठाक है।

जब अधिकांश भारतीय लेखक भी पश्चिम में पूर्ण स्वर्णिम युग की आशा लगाए हुए थे उस समय विवेकानन्द ने पश्चिमी सभ्यता की दुर्दशा को दूरदृष्टि से देखकर भौतिकता के गढ़ में ही घुसकर यह सावधान वाणी दी तो उस समय कुछ

लोगों को विवेकानन्द के विचार अमंगल सूचक लगे थे। उन्होंने घोषणा की कि पश्चिम की जीवन यात्रा एक अट्टहास है। किन्तु उसके पीछे रुदन है और रुदन में ही इसकी परिसमाप्ति होगी।

पश्चिमी राष्ट्र ज्वालामुखी पर्वत पर टिका हुआ है जो अपने होंठों में लिपिस्टिक लगाए हुए कृत्रिम मुस्कान बिखेर रहा है। जिसके अन्दर रुदन ही रुदन, हाय-हाय, व्यथा ही व्यथा, पीड़ा ही पीड़ा भरी है। जबकि भारत में (गरीबी के मार से अंग्रेजों के कारण) ऊपर में तो रुदन है, पर भीतर में आमोद-प्रमोद समाया हुआ है। क्योंकि उसे आत्मा की अमरता, कर्म के सिद्धान्त, पुनर्जन्म में विश्वास है। पिछली कुछ राष्ट्रीय भूलों के कारण अंग्रेजों की मार पड़ रही है। पुनः अपने कर्मों को सुधार कर, अंग्रेजों को भगा कर पूर्व की भांति विश्वविजयी बन जायेंगे। यदि 50 वर्षों के अन्दर आध्यात्मिक आधार को नहीं अपनाया तो यह सभ्यता फटकर चिथड़े-चिथड़े में बिखर जाएगी। कुछ वर्ष बाद रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी उस आसन्न संकट को अनुभव किया था जिसे उन्होंने अपनी एक कविता में अभिव्यक्त भी किया। स्वामी रामतीर्थ को भी पश्चिमी सभ्यता की व्यर्थता का बोध हो गया था—

सभ्यता एक उद्देश्यहीन सपना भर
ऊपर से ऊंचे नाम-रूप पर क्या भीतर?
तुम में अपना ही ज्ञान रहा नहीं बाकी
तुम शैल शिखर पर.....

स्वामीजी पश्चिमी सभ्यता की चमक-दमक की तुलना गोबर में लिपटी हुई मिठाई से करते हैं। ऊपर से तो मिठाई दिखती है पर अन्दर में गोबर-मल भरा हुआ है।

गांधीजी ने भी पाश्चात्य यंत्रकौशल पर आधारित भौतिकवादी सभ्यता के विषय में निराशाजनक भाव ही 'हिन्द स्वराज्य' में व्यक्त किए। इसे पैशाचिक सभ्यता कहा है। क्योंकि यह अनन्त अर्थ और काम की भूख को जगा देता है। यह अर्थ का दास और काम का कीड़ा मात्र बना देता है।

प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ने पर बहुत से यूरोपीय बुद्धिजीवियों ने इन मनीषियों की आशंकाओं को याद किया था। पाश्चात्य मनीषियों का भौतिकता पर आधारित सभ्यता एवं जीवन-दर्शन पर प्रथम मोहभंग सन् 1914-18 के विश्वयुद्ध से हुआ। किन्तु प्रथम विश्वयुद्ध वाला संकट युद्ध समाप्त हो जाने पर भी दूर नहीं हुआ वरन् संकटों की एक मालिका के रूप में कभी बोल्शेविक क्रान्ति, कभी फासिस्ट एवं नात्सी प्रभाव लोभ, असहिष्णुता तथा हिंसा के बढ़ते हुए ज्वार के रूप में व्यक्त हुआ और अन्ततोगत्वा सन् 1939-1945 के द्वितीय विश्वयुद्ध के अभूतपूर्व संकट के रूप में फूट पड़ा। इसी महायुद्ध के अन्त में स्वयं सभी आविष्कारों को

खाने वाला दावानल रूप अणु बम नागाशाकी और हिरोशिमा में प्रयुक्त हुआ। इन विश्वयुद्धों एवं संकटों ने पाश्चात्य विचारकों में आत्मशोध एवं आत्मपरीक्षण का एक आन्दोलन ही चला दिया। हमारी सभ्यता में कौन-सी बुराई आ गई। गम्भीर आलोचना एवं टीकाएं होने लगी। फिर कम्यूनिज्म के अवसान ने आत्मशोध की प्रक्रिया को और भी तीव्र कर दिया।

आज पश्चिम में परिवार जीवन एवं समाज जीवन समाप्तप्राय है। आज जितने भी प्रकार के अपराध हैं उसमें सबसे सिरमौर अमेरीका है। कमोबेश यही हाल सारे यूरोपीय देशों का है। आज वहां बच्चे स्नेह से वंचित हैं, वहां बुढ़ापा सम्मानहीन बोझ के तुल्य है, old House में कटता है। वहां जवानी चंचल और अस्थिर है। वहां सारे रिश्ते समाप्त हो गए हैं सिर्फ पति-पत्नी का रिश्ता बचा है। यह रिश्ता भी बहुत कच्चे धागे से बंधा है। कभी भी तलाक में परिणत हो सकता है। अब तो पति-पत्नी के स्थान पर Boy friend and Girl Friend, 'Live in Relation' जब तक मन मिले साथ-साथ रहो, फिर अलग हो जाओ। तलाक में कानूनी प्रक्रिया अपनानी पड़ती है, यह उससे मुक्त है। अतः जिस सभ्यता का बचपन बीमार हो, बुढ़ापा बेकार व सम्मानहीन हो, जवानी अस्थिर एवं चंचल हो! उसका भविष्य क्या हो सकता है? वह सभ्यता क्या विकास की ओर जा रही है या सर्वनाश की ओर? फिर जिन आधारों पर मानव सृष्टि, जीव सृष्टि खड़ी है उन सब आधारों यथा पृथ्वी अन्न, जल, अग्नि, वायु, आकाश का प्रदूषण किस विकास को सिद्ध कर रहे हैं? यह उस मूर्ख की तरह नहीं है क्या जो जिस डाल पर बैठा है उसी को काटने में अपना वीरता का बखान कर रहा है!

इसलिए डॉ. राधाकृष्णन् ने पश्चिम यात्राओं में कई बार कहा—यह ठीक है आप समुद्र में मछली की भांति तैर सकते हैं, आकाश में पक्षी की भांति विचरण कर सकते हैं, पर पृथ्वी पर मनुष्य की भांति रहने के लिए भारत से सीखना होगा। पश्चिम ने, विज्ञान ने साधन और सुविधायें तो बहुत दी, पर समाधान, शान्ति, पूर्णता तो भारत से ही प्राप्त होगी। आज पश्चिम विज्ञान एवं तकनीकी के रूप में जाना जाता है, पर वह एकांगी है। अतः साधन के साथ समाधान को, Health के साथ Wellness समृद्धि के साथ शांति, मुक्ति, पूर्णता भारत ही दे सकता है।

वस्तुतः परम्परा और परिवर्तन का अद्भुत समन्वय विश्व में कहीं है तो भारत में है। दुनिया की पुरानी संस्कृतियां जिन देशों में थी वह आज इतने बदल गये हैं कि उनको पहचानना भी मुश्किल हो जाता है। खंडहरों को देखकर ही विस्मृत अतीत की याद को ताजा किया जा सकता है।

ग्रीस को देखकर यूनान को, इटली को देखकर रोमन साम्राज्य को, इराक को देखकर सुमेरिया और मेसोपोटामिया को, ईरान को देखकर इजिप्ट और मिस्री सभ्यता को आंख के पर्दे पर उतारना आसान नहीं होता पर भारत एक ऐसा विलक्षण

देश है कि उसके करोड़ों नागरिकों के दैनंदिन जीवन में उसके लाखों वर्षों का इतिहास निरंतर स्पंदित होता रहता है।

इस इतिहास को और इस इतिहास के अहसास को नष्ट करने के लिए यहां अगणित आततायी आए। लेकिन या तो उनका नामों निशां मिट गया या भारत की माटी में ही रच-पच गये। इस विराट् पाचन शक्ति का नाम भारतीय संस्कृति है।

भारत अभी अमेरीका की तरह ताकतवर नहीं है। कुवैत की तरह मालदार नहीं है। लेकिन आज की दुनिया के कोने-कोने में भारतीय संस्कृति और परम्परा के प्रति अद्भुत ललक है। भारत का बड़ा सम्मान है। वैचारिक संकट में फंसी दुनिया भारत की ओर टकटकी लगाये हुए है। वह सोचती है कि राम-कृष्ण-विक्रमादित्य, गांधी का देश, ऋषि-मुनियों का देश, स्वामी विवेकानन्द का देश शायद् कुछ राह बताये।

आज साम्यवाद का सुदृढ़ किला अपने ही घर में भूसे के ढेर की तरह ढह गया है। पूंजीवाद दुनिया को कोई संतोषजनक जीवन पद्धति नहीं दे पाया है। रूस और चीन के लगभग सभी लोग तो एक प्रकार के विचारात्मक शून्य में भटक रहे हैं, तीसरी दुनिया के करोड़ों लोग भी यह तय नहीं कर पा रहे हैं कि उन्हें किधर जाना है? उन्हें डर यह भी है कि कोई खास जीवन पद्धति अपनाने का मतलब कहीं यह नहीं हो कि वे किसी खास महाशक्ति के मोहरें बन जाएं।

भारत की तरफ जब वे देखते हैं तो इस तरह की आशंकाओं से वे मुक्त होते हैं। भारत का अपना इतिहास विस्तारवाद या उपनिवेशवाद के कलंक से सर्वथा मुक्त रहा है। वास्तव में भारत विश्व मंगल का देश रहा है। भारत प्रवृत्ति-निवृत्ति, लोक-परलोक दोनों के सामरस्य को लेकर चलता है। धर्म की परिभाषा की गयी है कि जो लौकिक अभ्युदय पारमार्थिक निःश्रेयस उपलब्ध कराये वह धर्म है। 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः।' यह तो अतियों के बीच स्वर्णिम सन्धि है, मध्यम मार्ग है। स्वास्थ्य के साथ समग्रता, समृद्धि के साथ शान्ति, साधन एवं सुविधा के साथ समाधान, मोक्ष, पूर्णता भारत से ही मिलेगी। इस विलक्षण संतुलन का मूल भारतीय संस्कृति में है। मध्यम मार्ग का यह संदेश आज विश्व की आवश्यकता है। स्पष्ट सांस्कृतिक संकट में फंसी दुनिया को राह भारत ही दिखा सकता है और दिखायेगा।

स्वराज्य के बाद भारत को इसी दिशा में चलना चाहिए था पर जिनको प्रधानमंत्री पद, देश का नेतृत्व मिला उन्हें स्वयं भारत की विरासत के प्रति न समझ थी और न गर्व। उन्हें विदेशी आयातित विचारों ईसाइयत, इस्लामिक एवं कम्यूनिज्म की धारा जो संसार की समस्याओं के मूल में है, उन्हीं पर गर्व था। Tansfer of Power में उनका अंग्रेजों के साथ जो समझौता हुआ उसे पढ़ें तो शिर शर्म से झुक जाता है। और स्वराज्य के पहले ही दिन से भारत में भारतीयता

की, हिन्दुत्व की हत्या का दौर प्रारम्भ होता है, और यूरोपीय देशों यथा पहले रूस और बाद में अमेरीका की नकल का दौर प्रारम्भ होता है। इसलिए विश्व का पहला अनोखा देश है जो देश विभाजन के पश्चात् भी, अंग्रेजों के भारत से चले जाने के बाद भी, स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् भी जिस देश का अर्थ तंत्र, कृषि तंत्र, ऋषि तंत्र, धर्म तंत्र जिस गो माता पर आधारित है ना उसे स्थान मिल पाया, न देश की राष्ट्रभाषा, मातृभाषा हिन्दी भाषा को, न देव भाषा संस्कृत (जो कम्प्यूटर के लिए सर्वाधिक उपयुक्त) को स्थान मिल पाया। न इस्लामिक काल में लांछित मन्दिरों यथा रामजन्मभूमि, कृष्ण जन्मभूमि, काशी विश्वनाथ आदि का पुनरुद्धार हो सका है। न संविधान भारतीय संस्कृति, इतिहास और परम्परा के अनुकूल है, अंग्रेजों ने तो सारी व्यवस्थाओं को अपने स्वार्थ के अनुकूल ढाला था उसको जस का तस स्वीकार कर लिया गया। अंग्रेजों के समय वह आधे भारत पर लागू थी, क्योंकि देशी राजाओं जिनसे अंग्रेज की संधि थी उनमें देशी व्यवस्था थी। पर स्वाधीनता के पश्चात् भारत संघ में विलय हो जाने पर उन पर भी वही व्यवस्था लाद दी गई। और इस परम्परा का निर्वाह बड़ी ईमानदारी से नेहरूजी, उनकी पुत्री इन्दिराजी, उनके पुत्र राजीन गांधी, उनकी धर्मपत्नी सोनिया गांधी और पुत्र राहुल गांधी, पुत्री प्रियंका बाड्रा यानी एक परिवार की चार-चार पीढ़ियां करती आ रही है। अपवाद स्थिति को बाद देकर 2014 की मोदी सरकार के पूर्व और स्वराज्य के पश्चात् भारत में भारत की सरकार चल रही थी या इग्लैण्ड की, या पाकिस्तान की, या बांग्लादेश की, या रूस की, या चीन की सरकार चल रही थी पता ही नहीं चला और आज देश में जो समस्या खड़ी है वह सब इसी एक परिवार की चार पीढ़ियों की देन है। और इसके समाधान में आज भी यही परिवार सबसे अधिक बाधक बना हुआ है। स्थानीय हितों की उपेक्षा होने से कांग्रेस से टूट-टूट कर प्रायः सारी क्षेत्रीय पार्टी और कई विपक्षी पार्टियां बनी है। अतः सारी क्षेत्रीय पार्टी कांग्रेस की देन है। राजनीति का अपराधीकरण, व्यवसायीकरण, वंशवाद, जातिवाद, धर्मवाद कांग्रेस की देन है। राजनीति का राष्ट्रीयकरण, भारतीयकरण न करके इसलामीकरण, ईसाईकरण प्रदेशवाद कांग्रेस की देन है। देश को जाति के आधार पर, सम्प्रदाय के आधार पर अल्पसंख्यक बहुसंख्यक के आधार पर बांटना, राजनीति का विकृतीकरण, संस्कृति का विकृतीकरण करना है। किसी भी देश को नष्ट करना हो तो उस देश के इतिहास को विकृत कर दो, उस देश की भाषा को, संस्कृति को कलुषित कर दो। अंग्रेजों ने देश को गुलाम बनाये रखने के लिए और हमें ईसाई बनाने के लिए यह तीनों कार्य किये। स्वराज्य के बाद भी नेहरूजी की चारों पीढ़ियां, लाल बहादुर शास्त्री को बाद देकर कांग्रेस पार्टी आज तक यही कार्य करती आ रही है। कांग्रेस स्वयं भ्रष्ट हुई और भ्रष्टता कांग्रेस से ही क्षेत्रीय पार्टियों और विपक्षी पार्टियों में आ गई है। यही कारण है कांग्रेस सहित सारे विपक्ष को आज उसे अपनी सेना

के कथन और शौर्य पर विश्वास नहीं है। आज देश में जितने भी अलगाववादी, आतंकवादी, नक्सलवादी, टुकड़े-टुकड़े गैंग, घुसपैठिये, पत्थरबाज हैं उनके समर्थन में खड़ी है। पाकिस्तान के समर्थन में खड़ी है और उसकी भाषा बोल रही है। अपने मन के अनुकूल फैसला न आने से सभी संवैधानिक संस्थाओं की विश्वसनीयता पर प्रश्न चिह्न खड़े कर रही है। पहले सत्ता में आते ही पोटा कानून को हटाया गया था अब देशद्रोह कानून को हटाना चाहती है। वीर सावरकर जैसे क्रान्तिकारी का, राष्ट्र नायक का अपमान कर रही है। देश को एक मजाक—खिलवाड़ बना दिया था। कांग्रेस सहित विपक्ष ने भारत को एक लाचार, असहाय, मार-खाने वाला, बीमार-रुग्ण, दुर्बल, भ्रष्ट, चरित्रहीन, आचारहीन, घोटालों वाला देश बनाया है, और बनाती जा रही है। इसलिए जो हानि ग्रीक, शक, हूण, कुषाण, तुर्क पठान, मुगल, फ्रेंच, डच, अंग्रेज नहीं कर सके वह हानि अकेले नेहरूवादी कांग्रेस की चार पीढ़ियों सहित विपक्ष ने कर दी है। जब से मोदी सत्ता में आये हैं तब से भारत के गौरव की वापसी यात्रा प्रारम्भ हुई है। गिराना सहज होता है—उठना और उठाना—कष्ट साध्य, तप साध्य, श्रम साध्य और समय साध्य होता है।

जब से मोदी सरकार आयी है, तब पहली बार लगा भारत में भारतीयों की सरकार आयी है। इन्होंने पहचाना है कि इस देश की मूल संस्कृति है। हमारी पारिवारिक एकता, सामाजिक समरसता, जातिगत, सम्प्रदायगत एकता एवं अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों का आधार संस्कृति रही है। जब इसको ही साम्प्रदायिक कचरा मानकर उपेक्षा कर दी तब न हमारी पारिवारिक एकता का आधार बचा, न सामाजिक समरसता, न जातिगत एकता, सम्प्रदायगत एकता का आधार बचा। न राष्ट्र की एकता का और अन्तरराष्ट्रीय एकता, सौहार्द का आधार बचा है।

इसलिए परिवारों में, जातियों में, सम्प्रदायों और देश में जो बिखराव, भ्रष्टता, मूल्यहीनता, चरित्रहीनता आदि संस्कृति के अभाव में आयी है। जो हमारे पड़ोसी शिष्य देश और सारा विश्व भारत को गुरु मानकर, सम्मान करता था, शिर झुकता था वे सबके सब पाद प्रहार करने लगे। भारत की इस अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा हानि का कारण क्या है? भारत की विदेशों में जो प्रतिष्ठा थी वह सैन्य शासन शक्ति के कारण न होकर भारत की महान नैतिक और आध्यात्मिक संस्कृति के कारण ही थी। उदार हिन्दुत्व कोई पंथ, संप्रदाय या मजहब न होकर इस देश की चिरंतन संस्कृति है। किन्तु जब हमारे प्रशासक हिन्दुत्व को संप्रदाय कहकर भारतीय संस्कृति के उदात्त जीवन-मूल्यों को सांप्रदायिक कूड़ा-करकट कहकर कूड़ेदानी में फेंक देते हैं, तब न भारत की भावात्मक एकता का आधार बचता है तथा न भारत के जगद्गुरुत्व का ऐतिहासिक सम्बन्ध-सूत्र। राजनीति तोड़ती है संस्कृति जोड़ती है। संस्कृति को छोड़कर केवल राजनीतिक सम्बन्ध, कूटनीतिक सम्बन्ध मात्र रखने से हम सम्मान तो कभी नहीं पा सकते, हां कूटनीतिक दावं-पेंच में कभी-कभी

अपमान तो अवश्य पा सकते हैं। अतः पुनः सांस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने से राजनीतिक स्वार्थों की आंधियां छंट जाने पर पुरानी स्मृतियाँ कौंधेगी तब ये देश पुनः भारत के चरणों में आ सकते हैं। क्योंकि कोई भी देश एकाएक पूर्णतया बदल नहीं सकता। समय पाकर पुरानी स्मृतियाँ जागेगी तब पुनः भारत ही विश्वगुरु के पद पर स्थापित होगा और सारा विश्व सौख्य शांति का अनुभव करेगा। भारत के पास ही वह कर्तृत्व, व्यक्तित्व, वह भाव, वह दृष्टि है जो सारे विश्व को एक परिवार के रूप में देखती है। सुलझे हुए पश्चिम के विचारकों की दृष्टि में भारत ही भावी विश्व की आशा का केन्द्र है। मोदीजी ने इसको समझा है। इसलिए मोदीजी पड़ोसी देशों के साथ-साथ सारी दुनिया के देशों के साथ राजनीतिक सम्बन्धों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्धों को पुनः दृढ़ कर रहे हैं, सभी देशों में राजनेताओं को वे गीता भेंट कर रहे हैं, इसके पूर्व गीता साम्प्रदायिक कचरा बनी हुई थी और ताजमहल की प्रतिकृति भेंट में दी जाती थी। सांस्कृतिक सम्बन्धों के साथ परस्पर के पारिवारिक भावों को दृढ़ कर रहे हैं। इस देश का मूल संस्कृति है, हिन्दुत्व है, अध्यात्म है, धर्म है। और अब पिछले पांच वर्षों से इस दिशा में कार्य प्रारम्भ हुआ है। काशी, अयोध्या, कुरुक्षेत्र, केदारनाथ आदि भारत की धर्म नगरी है, संस्कृति एवं तीर्थ नगरी है अतः इनको इनके अनुरूप बनाया जा रहा है—सम्मान दिया जा रहा है उनकी गरिमा के अनुरूप। 'राष्ट्र सर्वप्रथम' के भाव को लेकर मोदी चल रहे हैं। गांधीजी निष्ठावान सनातनी हिन्दू थे। राम राज्य उनका आदर्श था। मुसलमानों को राष्ट्रीय धारा में लाने के लिए तुष्टीकरण की नीति को स्वीकारा। मुसलमानों को भूषण-कवि पसन्द नहीं है तो उसे बाद दे दिया। मुसलमानों को खुश करने के लिए वन्देमातरम् गीत के प्रथम दो पैरा ही स्वीकारा। हिन्दी भाषा के स्थान पर हिन्दुस्तानी, भगवा ध्वज के स्थान पर तिरंगा आदि-आदि। इन सबका दुःखद परिणाम भारत विभाजन आया।

नेहरूजी मन से, संस्कारों से धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से मुसलमान, बुद्धि से शिक्षा से अंग्रेज थे, यूरोपीय थे। आदर्श की दृष्टि से समाजवादी, केवलमात्र शरीर से हिन्दू माता के गर्भ से जन्म लिया मात्र इस दृष्टि से हिन्दू थे। वस्तुतः उन्हें हिन्दू धर्म, संस्कृति, मानबिन्दु, हिन्दी भाषा, संस्कृत भाषा, गोमाता, भारतीय परम्परा, इतिहास, महापुरुष आदि सबसे लगाव न होकर, गर्व न होकर, वरन् इन सबसे घृणा थी, चिढ़ थी। इन पर शर्म आती थी। उनके समय से ये सब साम्प्रदायिक कचरा, गाली बन गया था। इसलाम, ईसाइयत पर गर्व और इनके तुष्टीकरण का अंध दौर प्रारंभ हो गया और हिन्दुओं की उपेक्षा का, दबाने का। सोनियाजी, राहुलजी, प्रियंका वाड्रा शरीर से भी हिन्दू नहीं रहे। Accidental हिन्दू भी नहीं रहे। और खुलकर ईसाई व मुस्लिम तुष्टीकरण, वोट बैंक की राजनीति और हिन्दुओं का दमन प्रारंभ हो गया। जहां-जहां भी राष्ट्रीय जागरण और धर्मान्तरण निरोध का कार्य होता था उन सबको कुचलने का, भगवा आतंक के सिद्धान्त की रचना का दौर प्रारंभ हो गया।

पर मोदीजी शरीर, मन, बुद्धि-आत्मा से, शिक्षा-संस्कारों से निष्ठावान सनातनी हिन्दू हैं। निष्ठावान हिन्दू सिर्फ सारे देशवासियों को ही नहीं, सारे विश्ववासियों को ही नहीं, पूरे चराचर को गले लगाने वाला होता है। इसलिए तुष्टीकरण और वोट बैंक की राजनीति को तिलांजलि देकर, भारतीय आदर्श, प्रभु श्रीराम का आदर्श 'सब का साथ, सबका विकास और सबका विश्वास' इसे आधार बनाकर चल रहे हैं। नेहरू युग समाप्त होकर मोदी युग प्रारंभ हो गया है। अब देश अपनी वास्तविक ऊँचाइयों को प्राप्त करेगा।

इसके साथ ही राष्ट्रवाद के आधार पर सारी कार्ययोजनाएं बन रही है। और कार्य भी प्रारंभ हो गया है। देश में गरीबी लाइन के अन्तिम छोर पर जो खड़े हैं उनकी प्राथमिक आवश्यकता (यानी रोटी कपड़ा, मकान, चिकित्सा, शिक्षा और रोजगार आदि) की पूर्ति हो। साथ ही देश विकासशील से विकसित राष्ट्र की श्रेणी में खड़ा हो। देश की सुरक्षा को सर्वोच्च महत्त्व दिया जा रहा है। इस दृष्टि से सैन्य शक्ति हेतु रक्षा सौदा को महत्त्व दिया जा रहा है। यानी देश का पुनरुत्थान प्रारंभ हो गया है। इन सब की सफलता पर भारत का और विश्व का भविष्य निर्भर है। अब लगने लगा भारत भारतवर्ष के रूप में स्थापित होकर पूरे विश्व का मार्गदर्शन करेगा।

जिस प्रकार सूर्य की उपस्थिति का प्रमाण स्वयं सूर्य ही है। किसी के इनकार करने या स्वीकार करने से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वैसे ही भारतीय धर्म-दर्शन, संस्कृति का प्रमाण स्वयं भारतीय धर्म-दर्शन, संस्कृति ही है। किसी के स्वीकार-अस्वीकार से इस सत्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता। पर चूंकि हम दुर्भाग्य से उनसे काट दिए गए हैं, और हीन भावना से भर गये हैं, हमको अपना सब-कुछ हेय नजर आने लगा और पश्चिम का कूड़ा-कचरा भी, उनकी विकृतियां भी अनुकरणीय लगने लगी और जब तक पश्चिम हमारे सत्यों को स्वीकारते नहीं, प्रशंसा नहीं करते तब तक हम उसको विचार के योग्य, ग्रहण के योग्य मान नहीं पाते। शिकागो धर्म सम्मेलन के पश्चात् ही हमने स्वामी विवेकानन्दजी को पहचाना, विश्व कवि गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर को गीतांजलि पर नोबेल पुरस्कार के पश्चात् ही पहचाना और मान दिया। दुर्भाग्य से स्वाधीनता के पश्चात् भी यह स्थिति बनी हुई है। इसलिए पश्चिम के मनीषियों को उद्धृत किया है अन्यथा हिन्दू धर्म-दर्शन, संस्कृति एवं भारत अपना प्रमाण स्वयं ही है। सत्य किसी प्रमाण का मुहताज नहीं होता और सत्य को बहुत समय तक दबाया नहीं जा सकता। सूर्य अपना प्रमाण स्वयं है। कितना ही घनघोर बादल हो सूर्य को सदा के लिए ढक नहीं सकता। जिस पश्चिम ने सत्य पर कुठाराघात किया था वे ही अब उसे प्रकाश में लाने के लिए मुखर हो रहे हैं। गांधीजी का वचन सत्य होता प्रतीत होता है। वे कहते हैं मेरे विचार से हिन्दू धर्म का सौंदर्य समस्त को एक साथ आलिंगन करने में है।....दूसरे धर्म में जो भी सार तत्त्व पाए जाते हैं वे सभी हिन्दू धर्म में एक साथ अनवरत वर्तमान हैं। जो इसमें नहीं

पाए जाते हैं, वे असार एवं अनावश्यक हैं। 'हिन्दुत्व सत्य की सतत साधना है और यदि आज यह मृतप्राय-निष्क्रिय, विकास के प्रतिकूल हो गया तो इसका कारण है कि हम थक गए हैं और जैसे ही हमारी यह थकान दूर होगी, हिन्दुत्व सम्पूर्ण विश्व में एक ऐसी प्रखर दीप्ति के साथ छा जायेगा जो सम्भवतः इससे पहले सभी को अज्ञात होगी।' सारा विश्व निरन्तर इस ओर बढ़ रहा है।

इस नये संस्करण में 'रामायण का हार्द' शीर्षक बदल कर साक्षात् धर्म विग्रह प्रभु श्रीराम और भारतीय जीवन का अखण्ड प्रवाह हो गया है। रामायण के हार्द की सारी सामग्री तो यथावत है, पर कई लेखों में और नयी सामग्री जोड़ी गई है और कई मेरे नए लेख भी। साथ ही एक नया विषय भी 'भारतीय जीवन का अखण्ड प्रवाह' जोड़ दिया गया है। इसमें डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र से सामग्री ली है तथा मैंने जो लेखन किया है उसके भी कई लेख और उसमें भी कुछ नयी सामग्री जोड़ी गयी है। अतः तृतीय संस्करण के बजाय नयी पुस्तक कहना ज्यादा उपयुक्त होगा। इसमें पूर्व की अपेक्षा चार गुणा सामग्री हो गयी है और इससे पहले की अपेक्षा यह पुस्तक और ज्यादा उपयोगी सिद्ध होगी। क्योंकि मैंने डॉ. ओबराय और उसी लीक पर, मार्ग पर चलकर जो शोध कार्य किया है लेखन कार्य किया उन सबका सार-निष्कर्ष, निचोड़ इसमें आ गया है। अतः यह पुस्तक डॉ. ओबरायजी और मेरी सारी पुस्तकों का मक्खन है, नवनीत है। या मक्खन का मक्खन, नवनीत का नवनीत कह सकते हैं। अब चूंकि वर्तमान में कांग्रेस द्वारा बार-बार शिवाजी को आदर्श मानकर चलने वाले वीर सावरकर का अपमान किया जा रहा है। अतः वीर सावरकर से सम्बन्धित लेख तथा स्वराज्य के पश्चात् भारत की सभी समस्याओं के मूल में नेहरू और उनकी गलत दृष्टि रही है, इसलिए उससे सम्बन्धित लेख परिशिष्ट में दिया जा रहा है। सामग्री संकलन में माननीय कन्हैयालाल चतुर्वेदीजी (सम्पादक, पाथेय कण) और उनके सहयोगी श्री मनोज गर्गजी का सहयोग प्राप्त हुआ है। इन द्वय का हृदय से आभारी हूं। हर बार की तरह सांखला प्रिंटर्स का सौहार्दपूर्ण प्रिंटिंग कार्य में सहयोग और परम पूज्य गुरुदेवश्री सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद से प्रकाशित हो रही है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि
सम्पादक, संकलनकर्ता तथा लेखक
मो. 9413769139, 8278680977

अनुक्रम

आशीर्वचन 3

सम्पादकीय 4

1. स्वर्ग से भी आज भूतल बढ़ गया 23
2. भारत की अमरता का रहस्य 28
3. भगवान् श्रीराम की विश्वमंगल महिमांजलि 29
4. रामायण पारिवारिक मूल्यों का आख्यान है 35
5. रामायण : साम्प्रदायिक या धार्मिक 48
6. गृह-वाटिका से रामायण काल तक 53
7. तुलसी और रामायण की महिला पात्र 55
8. प्रबुद्ध मनीषा की दृष्टि में मां सीता 58
   - भारत की रानी सीता है—भगिनी निवेदिता 58
   - मां सीता—स्वामी विवेकानन्द 58
   - सीता के जीवन से राम का निर्माण—महात्मा गांधी 58
9. रामायण : राष्ट्रीय एकात्मता का महानतम काव्य 60
10. वनवासियों के प्रेम एवं गौरव का महाकाव्य : रामायण 68
11. सप्तपर्ण पर्णसि 76
12. पादरी बुल्के का वनवासी समाज के प्रति घोर तिरस्कार 79
13. पादरी बुल्के का वनवासी समाज के प्रति घोर अन्याय 83
14. रामायण काल की लंका 85
15. नायकर की नासमझी 87
16. उत्तर भारत को दक्षिण भारत की देन : श्रीराम-भक्ति 89
17. प्रजातंत्र और श्रीराम 100
18. नेपाल में तुलसी रामायण और आचार्य भानुभक्त की रामायण 102

19. श्याम देश में रामचरित्र का पवित्र प्रकाश 103
20. बालि द्वीप 107
21. 'रामायण' विश्व ऐक्य का आधार 110
22. रामभक्त श्रीहनुमान् 141
23. सूरदास की हृदय वीणा से निःसृत रामायण गीतिका 150
24. रावण ऋषिपुत्र, वेदपाठी ब्राह्मण होते हुए भी असुर क्यों कहा गया? 160
25. शरद पूर्णिमा के पावन आलोक में वाल्मीकि तथा रवीन्द्र 162
26. महर्षि अगस्त्य 166
27. कम्बर (कम्बन) 167
28. प्रो. साहब का राम पर आक्षेप 168
29. दर्शन का वास्तविक प्रयोजन 173
30. प्रभुश्री राम पर आक्षेप और निवारण 182
31. विभीषण की शरणागति के विषय में विचार 187
32. प्रभु श्रीराम के अस्तित्व पर विचार 189
33. सीता का वनवास और राम तथा प्रजा 191
34. राम का वनवास और वशिष्ठजी 192
35. जाहि विधि रहे राम ताहि विधि रहिए 193
36. राम का नाम ही नहीं, राम का काम भी 196
37. श्रीराम-तत्त्व 205
38. हमारे आदर्श राम या बाबर, आदर्श पुस्तक रामायण या बाबरनामा एवं आदर्श स्थान रामजन्मभूमि मन्दिर या बाबरी मस्जिद 209
39. श्रीराम सेतु सदा सनातनम् 226
40. ऐतिहासिक संदर्भ में रामसेतु के निहितार्थ 228
41. भारत एक सनातन राष्ट्र 232
42. भारत की सांस्कृतिक एकता 242
43. भारत की अखण्डता एवं विश्व शान्ति का स्वर्णिम सूत्र : सद्भावना यात्रा 244
44. राष्ट्र के सांस्कृतिक आधार 249
45. भारतीय राष्ट्र का आधार 256
    - संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है 256

- प्रकृति, विकृति और संस्कृति 257
- संस्कृति एवं सभ्यता 260
- मनुष्य का समग्र अध्ययन भारतीय वैदिक परम्परा में ही संभव हुआ 260
- चार पुरुषार्थ 261
- चार आश्रम 268
- वर्ण व्यवस्था 270
- भारतीय समाज और जाति-व्यवस्था 273
- भारतीय संस्कृति और नारी 274
- भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा 275
- भारतीय संस्कृति और शास्त्र प्रमाण 275
- भारतीय संस्कृति और अधिदेव 275
- भारतीय संस्कृति और तपोवन 276
- भारतीय संस्कृति और ब्राह्मण 276
- भारतीय संस्कृति और गोमाता 277
- भारतीय संस्कृति और विचार स्वातंत्र्य 277
- भारतीय संस्कृति में आचार की कठोरता 279
- भारतीय संस्कृति में हिंसा-अहिंसा की अवधारणा 279
- भारतीय संस्कृति और पर्यावरण 289
- इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टि 291

46. महर्षि वाल्मीकि का दिव्य ज्ञान 294
47. महर्षि व्यास का राष्ट्रदर्शन 297
48. योगेश्वर श्रीकृष्ण का राजनीतिक तत्त्व दर्शन 301
49. जगद्गुरु आद्य श्री शंकराचार्यजी 306
50. जगद्गुरु शंकराचार्य जयन्ती 310
51. आचार्य चाणक्य, यूनान का राजदूत मैगस्थनीज एवं चीनी यात्री ह्वेनत्सांग 318
52. विक्रम संवत् के प्रणेता महाराज विक्रम 320
53. अलबेरूनी और भारत 329

54. जब नानक ने भारत की दुर्दशा पर आंसू बहाए 330
55. राणा प्रताप को नैतिक बल प्रदान करने वाले सन्त श्रीचन्द्र 334
56. भारत माता के अमर सपूत स्वातंत्र्य-गौरव महाराणा प्रताप 335
57. देश गौरव महाराणा प्रताप और कविवर रहीम 338
58. गोस्वामी तुलसीदास का राजनीतिक दर्शन 342
59. परकीय शासन में सच्चे धर्म रक्षक थे : तुलसीदास 350
60. गोस्वामी तुलसीदास और कविवर रहीम 361
61. औरंगजेब का बड़ा भ्राता दाराशिकोह और उपनिषद् 367
62. दशमेश गुरु का अलौकिक भक्ति काव्य 371
63. माता जीजा बाई 376
64. रानी अहल्या बाई 378
65. रसखान 379
66. हरिदास 380
67. स्वातंत्र्य की बलिवेदी पर 381
68. युग-गुरु राजा राममोहनराय 387
69. स्वामी दयानन्द सरस्वती 392
70. स्वामी विवेकानन्द तथा उनका राष्ट्रीय स्वाभिमान 396
71. जगद्गुरु भारत पाश्चात्य देशों में प्रचारक भेजे 399
72. महामानव : स्वामी रामतीर्थ 401
73. 'वन्दे मातरम्' के अमरगायक : ऋषि बंकिमचंद्र 405
74. रवीन्द्र साहित्य में पंचनद प्रदेश का जयगान 409
75. भारत-भाग्य विधाता कविगुरु रवीन्द्रनाथ 416
76. योगीराज अरविन्द का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद 421
77. स्वामी विवेकानन्द की मानस पुत्री : वीर बाला भगिनी निवेदिता 424
78. लोकमान्य तिलक को प्रज्ञा का अमोघ वरदान 427
79. पंचनद-पंचानन का राजनैतिक दर्शन 433
80. डॉ. एनी बीसेंट 437
81. महामना मालवीयजी का उद्बोधक सन्देश 439
82. सुभाष बाबू का बलिदान दर्शन 441

83. डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार 445
84. श्री माँ का राष्ट्र को आह्वान 454
85. विश्व मनीषा के मणिमुकुट डॉ. राधाकृष्णन् 456
86. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के महान् पक्षधर श्री छागला 461
87. स्वातंत्र्य के अमर साधक तथा लोकतन्त्र के महान् रक्षक : राष्ट्रपति वराहगिरि वेंकटगिरि 463
88. जयप्रकाश नारायण 465
89. संघ—भारत एवं भारतीयता का अभेद्य कवच 473
90. भारतीय राष्ट्र की अजेयता का रहस्य 474
- समय के अनुसार परिवर्तन की क्षमता 474
- भारत में परिवर्तन का आधार आध्यात्मिक पुरुष और अहिंसा 474
- देश भक्ति ईश भक्ति की क्रमिक सीढ़ी है 476
- भारतीय संस्कृति की अजेयता का रहस्य 484
- महापुरुषों की अखण्ड परम्परा 485
- भक्ति आन्दोलन ने भारत देश की रक्षा की 486
- भारतीय संस्कृति की सफलता का रहस्य 489
- विज्ञान और भारत 493
- भारत में शिक्षा व्यवस्था 504

91. भारतीय राष्ट्र जीवन में अवरोध 514
- भारतीय संस्कृति में अवरोध 514
- स्वराज्य के पश्चात स्वाधीन भारत में भारत की दुर्दशा क्यों? 525
- पाश्चात्य विचार धारा का पंचमुखी प्रहार 535
- विश्व को नहीं भारत को है—अपनी हिन्दू राष्ट्रीयता के विषय में भ्रान्ति! 537
- भारतीय इतिहास का विकृतीकरण 545
- भारतीय राष्ट्र जीवन प्रवाह में बाधक अहिंसा का अतिरेक एवं मुस्लिम तुष्टीकरण 551
- भारतीय संस्कृति मिश्रित या खिचड़ी संस्कृति नहीं है 557

- अखण्ड राष्ट्र जीवन में अवरोधक : धर्मनिरपेक्षता 564
- हमारा धार्मिक आदर्श सर्वधर्म समभाव में बाधक है— इसलाम और ईसाइयत 573
- भारतीय राष्ट्र जीवन के प्रवाह में बाधक सेमिटिक परम्परा विशेषकर ईसाइयत और इसलाम 582
- भारतीय राष्ट्र में बाधक सेमिटिक संत परम्परा 592
- भारतीय राष्ट्र जीवन के प्रवाह में बाधक कम्युनिस्ट धारा 594
- भारतीय राष्ट्र जीवन के प्रवाह में बाधक पश्चिम की उपभोक्तावादी संस्कृति 596

92. भारतीय की विश्व दृष्टि 601
93. भारत राष्ट्र की विशेषता और उसका भवितव्य 609
94. भारत विश्व की एकमात्र आशा का केन्द्र 613
95. आओ! शिष्य बनें 681
96. सेवा का पुनीत संकल्प 682
97. चित्रदीर्घा 683

परिचय 721

आवेदन पत्र 723

पुस्तक सूचि (डॉ. ओबराय समग्र) 725

पुस्तक सूचि (डॉ. ओबराय खण्डशः एवं सुबोधगिरि) 726

आशीर्वचन 727

पुस्तक समीक्षा 728

विश्व भारत का चिर ऋणी है 732

भारतीय संस्कृति पश्चिमी सभ्यता और विज्ञान 732

परिशिष्ट

- स्वराज्य संस्थापक शिवाजी एवं स्वातंत्र्य-साधक वीर सावरकर 733
- पं. जवाहरलाल नेहरू का पुनर्मूल्यांकन 742

स्वर्ग से भी आज भूतल बढ़ गया

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी के पवित्र ग्रन्थ 'साकेत' में, भरत के राम को अयोध्या वापस लौटा लाने हेतु किए अनुनय-विनय के पश्चात् प्रभु रामचन्द्र कहते हैं—

मैं राज्य भोगने नहीं भुगाने आया।
मैं आर्यों का आर्यत्व दिखाने आया।।

संदेश नहीं मैं यहां स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।

इन शब्दों में एक आदर्श ध्वनित होता है जो किसी अन्य प्रचलित धार्मिक आदर्श से किसी भांति भी छोटा नहीं है। यदि धार्मिक दृष्टि से हमें यह गौरव है कि स्वयं परब्रह्म परमेश्वर ने हमारे देश में अवतार लिया तो ऐतिहासिक दृष्टि से यह भी कम गौरव की बात नहीं है कि एक भारतवासी अपने चरित्र से इतनी ऊंची मर्यादा स्थापित कर गया कि न केवल भावी मानवता के लिए अपितु स्वर्ग के देवताओं के लिए भी सदा वन्दनीय बन गया।

महापापी रावण सब को दुःख देने के कारण, सब को सताने के कारण ही 'रावण' कहलाता था। उसका नाश करने के लिए एक मानव की आवश्यकता थी। पर क्या उस समय कोई मानव नहीं था जो कि उसे नष्ट कर सकता? सम्भवतः नहीं था। दो टांग वाले बिना पूंछ के पशु तो अनेक थे पर सच्चा मानव, पूर्ण मानव कोई नहीं था। इसीलिए स्वयं ईश्वरीय शक्ति को एक पूर्ण मानव के रूप में प्रकट होना पड़ा। देवता रावण के बन्दी थे, वे भयंकर दैत्य के पंजे के नीचे दबे हुए उस दैत्यराज का क्या बिगाड़ सकते थे? इन्द्र भी शक्तिहीन था। अग्नि और वायु भी बलहीन हो चुके थे। सबको अपने अनन्त पेट में लीलने वाला काल भी रावण की खाट से बंधा सिसक रहा था। इसलिए स्वर्ग की सम्पूर्ण शक्तियां भी उस दुर्दमनीय दैत्य का पराभव नहीं कर सकती थी। ऐसे समय में जब स्वर्ग हार गया था, धरती धर्म की रक्षा के लिए उठी। जहां देवता हार गए थे, वहां मानव ने विजय प्राप्त की। इसीलिए मानव रूप पाने वाले भगवान् रामचन्द्र सब देवताओं के भी देवता

बन कर पूजित हुए और इसीलिए भूतल स्वर्ग से भी बढ़ कर हो गया। मैथिलीशरण गुप्तजी ने रामजन्म की पावन घड़ी की महिमा गाते हुए लिखा—

स्वर्ग से भी आज भूतल बढ़ गया।
भाग्यभास्कर उदयगिरि पर चढ़ गया।।

हो गया निर्गुण सगुण साकार है।
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।।

भक्त-वत्सलता इसी का नाम है।
और वह लोकेश लीलाधाम है।।

प्रभु रामचन्द्र हमारे अतीत के गौरव, वर्तमान के आश्रय तथा भविष्य की उज्ज्वल आशा हैं। उन्हीं के सुधावर्षी नाम तथा लोकपावनकारी चरित्र ने हमारी इस प्राचीनतम जाति को युग-युग तक जीवन प्रदान किया है। राम के नाम स्मरण मात्र से ही हृदय की क्यारियां हरी-भरी हो जाती हैं। सताने वाले, रुलाने वाले, रावण का नाश करके वे शान्ति प्रदान करने वाले, आनन्द प्रदान करने वाले होने के कारण ही 'राम' हैं। लोग विस्मय करते हैं कि रामायणकाल में राम का नाम लिखने मात्र से ही समुद्र पर पत्थर कैसे तैरे होंगे! पर पत्थर तैरने की बात तो दूर हमने राम नाम के प्रताप से इंसान तरते देखे हैं। एक दस्यु का निन्दनीय जीवन बिताने वाला डाकू रत्नाकर रोकर नारद मुनि से पूछता था, 'महाराज, मैंने अनेकों का धन तथा अनेकों का प्राण हरण किया है, अनेक ब्रह्म-हत्या का पाप मुझे लगा हुआ है। क्या मेरे उद्धार का भी कोई मार्ग है?'

नारदजी ने कहा—'हां, है। राम नाम सकल पापों का नाश करने वाला है।' उसी राम नाम के प्रताप से ही पापपंक में लिप्त रत्नाकर डाकू ऋषि वाल्मीकि बन कर लोक में पूजित हुए। अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रेम में अन्धे हुए एक कामांध युवक को किसी ने अगर जनगण-पूजित गोस्वामी तुलसीदास बनाया तो वह पवित्र राम नाम ही था। आधुनिककाल में एक आचार-भ्रष्ट वैश्यबालक गांधी यदि महात्मा बन कर विश्व में विख्यात हुआ तो राम नाम के बल से ही। स्वयं उसी लंगोटी वाले महात्मा की स्वीकारोक्ति है, 'राम नाम में वह शक्ति है जो बड़ी से बड़ी सेना में नहीं। भयंकर अस्त्र-शस्त्रों में नहीं।' इसी राम नाम के प्रताप से उन महात्मा ने अपने मरते हुए बच्चे रामदास को मृत्यु के मुख से बचा लिया। अपने आचार पर राम नाम का प्रभाव बखान करते हुए वे सत्यसेवी संत कहते हैं—'यदि मेरे पास राम नाम का आश्रय न होता तो सम्भवतः मैं अपने जीवन में दो महिलाओं को अपनी बहिन कहने के योग्य न रहता।'

यह सत्य है कि राम नाम ने अनेकानेक इंसान तारे हैं। जो सबसे अधिक चरित्र भ्रष्ट थे, उन्हें सर्वथा पूज्य पुरुष बनाया है। यह राम नाम का अद्‌भुत प्रताप

है। इसी महान् नाम के जादू ने हमें हजारों वर्षों तक जीवन एवं जागृति, शक्ति एवं शील, कर्म तथा धर्म का आलोकपथ दिखलाया है।

राम नाम के प्रताप को समझने के लिए महर्षि वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास एवं महात्मा गांधी के प्रत्यक्ष जीवन की साक्षी बहुत पर्याप्त है।

हमारा यह दावा है कि ऐसे लोकोत्तर महामानव स्वर्ग में भी कभी नहीं हुए होंगे। ऐसे पुण्यश्लोक महापुरुषों के कारण यह भारतभूमि केवल स्वर्गतुल्य ही नहीं अपितु स्वर्ग से भी ऊंची बन गई है। विश्वविश्रुत-कीर्त्ति, लोकाभिराम भगवान् राम का नाम इतना पुण्य पावन है कि सन्त कबीर कह उठे—

सपने में घबराय के, जिन मुख निकसत राम।
तिनके पग की पाहिनी, मेरे तन की चाम।।

वे ब्रह्मज्ञानी-सन्त, चौराहे पर खड़े होकर घोषणा करते हैं कि जिसके मुख से सपने में भी घबराकर कभी राम का नाम निकल जाए उसके पांवों के जूतों के लिए मैं अपने तन की चमड़ी देने के लिए तैयार हूं। कबीर के ये बोल सुन कर सन्तप्रवर तुलसीदासजी भी चुप न रह सके। उन्होंने भी अपने आपको बोली पर लगाते हुए कह दिया—

तुलसी जिनके मुखन ते, धोखेउं निकसत राम।
तिन के पग पगतरी, मेरे तन की चाम।।

जहां धोखे से भी मुख से राम का नाम लेने वालों के पांवों के जूतों के लिए 'मेरे तन की चाम' कह कर सन्त-श्रेष्ठ कबीर एवं सन्त-शिरोमणि तुलसीदास आपस में होड़ कर रहे हैं, उस राम नाम के अलौकिक प्रताप को सहज ही समझा जा सकता है। इस महान् प्रताप का कारण यह है कि इक्ष्वाकुकुलकुमुदचन्द्र, सर्वनयनाभिराम, मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी साक्षात् धर्मविग्रह ही थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति के सभी समुज्ज्वल आदर्शों को अपने सर्वगुणसम्पन्न चरित्र में सत्य-साकार करके दिखलाया था। जहां संसार के अनेकानेक नेताओं की कथनी और करनी में अन्तर दिखलाई देता है, वहां मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम ज्ञान एवं कर्म के अद्भुत समन्वय थे। जहां बाकी धर्मगुरुओं के बारे में कहा जाता है कि जो कुछ उन्होंने कहा उसका अनुसरण करो पर उन्होंने जो कुछ किया उसका अनुकरण मत करो। वहां भगवान् रामचन्द्र ही एकमात्र अलौकिक विभूति हैं जिनकी कथनी और करनी, आचार-विचार दोनों सर्वथा अनुकरणीय हैं।

श्रीराम जन्म का मंगलमय पर्व एक महान् आनन्द का दिवस है क्योंकि अखिलार्यनिसेवितपादपद्म, साकेताधीश्वर, महाराजाधिराज भगवान् रामचन्द्र का जन्म भारत के ही नहीं वरन् विश्व के सांस्कृतिक इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है। जब संसार के अधिकांश भाग में अज्ञान का अंधकार छाया हुआ था, जब

अमेरीका अंधकार के गर्त में खोया हुआ था और यूरोप के लोग मनुष्यों एवं पशुओं का कच्चा मांस खाने वाले, अर्ध-बर्बर लोगों ने अपनी बन्दर की पूंछ काटकर इंसान बनना नहीं सीखा था। उस समय भारत में सत्यसंध, धर्म-प्राण, गौरव-सर्वस्व महाराजा रामचन्द्रजी के समुज्ज्वल चरित्र का विमल आलोक फैला हुआ था। भगवान् राम समूचे संसार को भारत की सबसे बड़ी चुनौती (देन) है। क्या कोई माई का लाल आज तक उनकी महिमा के सहस्रांश को भी पहुंच पाया है? आज यदि भारतीय अपना मस्तक समुन्नत जातियों के समक्ष ऊंचा उठा कर चल सकते हैं, तो इसका श्रेय भगवान् राम के उत्कृष्टतम एवं देव-दुर्लभ चरित्र को ही है।

विश्ववंद्य प्रभु रामचन्द्र के जन्म से पूर्व की दशा का वर्णन करते हुए काका कालेलकर लिखते हैं—

'असुर उन्मत्त हो गए थे। शूर्पणखा अपने सूप जैसे बड़े और तीक्ष्ण नखों से सारे देश को खरोंच रही थी। खर-दूषण अनीति फैला रहे थे। प्रजा के बड़े-बड़े वर्गों को कुम्भकर्ण (घड़े जैसे कानों वाला राक्षस) समूचा ही निगल रहा था। सात्त्विक बुद्धिवाला विभीषण रावण के दरबार में अरण्य रोदन कर रहा था। साम्राज्यमद में उन्मत्त राक्षस उसकी नेक सलाह की हंसी उड़ा रहे थे। रावण राज्य के दशविध विभागों के द्वारा एकमुखी सत्ता चला रहा था। बेचारी नैसर्गिक शक्तियों की तो बात ही क्या, नवग्रह भी उसके घर पर कहार का काम करते थे। लोगों के दिलों में शक पैदा हो गया कि दुनिया का मालिक ईश्वर है या रावण? रावण के घमण्ड की कोई हद नहीं रही है। वह अपने मन में और दरबार में जाहिरा तौर पर कहता... मैं सबसे श्रेष्ठ हूं। मैं ही सुखोपभोग करने वाला हूं। सारी सिद्धियां मेरी दासियां हैं। मेरी शक्ति सबसे ज्यादा है।.... हर एक गुणी मनुष्य इतना पामर हो गया है कि अपनी शक्ति इस मदान्ध के चरणों पर अर्पण करने में अपने को धन्य मानता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' के भाव को अपनी रसीली चौपाइयों में गाते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

जब जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

साकेताधिपति रामचन्द्र के जन्म का हेतु समझाते हुए 'साकेत' काव्य के प्रणेता मैथिलीशरण गुप्त गा उठे हैं—

पथ दिखाने के लिए संसार को।
दूर करने के लिए भूभार को।
सफल करने के लिए जन दृष्टियां।
क्यों न करता वह स्वयं निज सृष्टियां।
असुर शासन शिशिरमय हेमन्त है।
पर निकट ही राम राज्य वसन्त है।
पापियों का जान लो अब अन्त है।
भूमि पर प्रकटा अनादि अनन्त है।
धन्य दशरथ-जनक पुण्योत्कर्ष है।
धन्य भगवद् भूमि भारतवर्ष है।।

वेद-काल के ऋषियों ने निर्गुण-निराकार ब्रह्म को पहचान तो अवश्य लिया था, किन्तु उनके प्यासे नेत्र, दर्शन की लालसा में अश्रु बहाते हुए बार-बार पृथ्वी और आकाश से पूछते थे—'कस्मै देवाय हविषा विधेम?' अर्थात् हम किस देवता के लिए हवि देवें? किस देवता के चरणों में अपना सर्वस्व चढ़ा देवें? उन्हीं ऋषियों के नेत्रों को सफल करने के लिए आज के दिन त्रेतायुग में परदुःखभंजन, लोकरंजन, प्रजावत्सल, सूर्यकुलकमलदिवाकर भगवान् रामचन्द्रजी का जन्म हुआ।

प्रायः इतिहासकार विस्मय करते हैं कि वैदिक काल की इन्द्रपूजा का स्थान विष्णुपूजा ने कैसे ले लिया? इसका उत्तर है कि भगवान विष्णु के राम-कृष्णादि रूपों ने सौ-सौ इन्द्रों से भी ऊंचा आदर्श स्थापित किया। वेद का आदेश है—'आचारः प्रथमो धर्मः।' आचार नीति के क्षेत्र में मातृमोदवर्धक, पितृनिर्देश-पालक, सुहृदय, दुःखविमोचक, एकपत्नीव्रतधारी, प्रजापालक, दशरथयशवर्धक, सर्वगुणागार, भगवान् राम के चरित्र के सम्मुख स्वर्ग में अप्सराओं के नृत्य में आनन्द मानने वाला इन्द्र देवता क्या मूल्य रखता है? इसीलिए श्रीराम के प्रताप से भारत स्वर्ग से भी ऊंचा बन गया।

उन्हीं सर्वगुणनिधान प्रभु रामचन्द्र के पावन जन्मोत्सव पर हम उन लोकलोकेश्वर रघुवंशतिलक महाराज रामचन्द्र के चरणों में कविवर राम नरेश त्रिपाठी की निम्न काव्य-भावांजलि समर्पित करते हैं—

श्रीराम ने जो कर दिखाया धर्म के विश्वास में,
ऐसा न अन्य उदाहरण है जगत के इतिहास में।

दृढ़ हो उन्हीं के पुण्य पथ पर चाहिए चलना हमें,
हम आर्य हिन्दू मात्र राम चरित्र कानन में रमें।

होगा इसी से देश का कल्याण सम्मति सार लो,
पढ़ मित्र पूर्ण पवित्र रामचरित्र जन्म सुधार लो।

भारत की अमरता का रहस्य

रामकथा जन-जन के हृदय में समाया हुआ होने से 1000 वर्ष की पराधीनता में भी इसे समाप्त नहीं किया जा सका और हर युग में रामकथा अनवरत रूप से किसी-न-किसी रूप में चलती रही है। एक बार बादशाह अकबर ग्राम परिभ्रमण में थे तो उसने देखा एक वृक्ष के नीचे एक सज्जन विशेष को घेरकर आबाल-वृद्ध बैठे हैं और कोई कथा चल रही है। जानकारी प्राप्त करने पर पता चला कि महाभारत की कथा चल रही है। अकबर इस कथा के मर्म को समझा। क्यों हम इस देश को इसलाम के रंग में रंग नहीं पा रहे हैं। उसके मन में यह लोभ जगा क्यों न मेरे ऊपर भी महाभारत लिखा जाय और मैं भी इस देश के जन-जन में अमर होकर पुजता रहूँ और मेरा दीन इलाही धर्म भी अमर हो जाय। तो उसने दरबार लगाकर अपने ऊपर महाभारत ग्रंथ की रचना का आदेश दिया। इस निमित्त लेखक ने एक लाख रुपया और एक वर्ष का समय ले लिया। पर एक वर्ष के बाद भी बादशाह को इस विषय में कहाँ तक प्रगति हुई कोई समाचार नहीं मिला तो उसने लेखक को बुलाया तो उसने बताया कि आप पर महाभारत कथा तैयार है बस एक जगह अटक गई वह मैं सुलझा नहीं पा रहा हूँ। द्रौपदी के पाँच पति थे। उसने अकबर की पटरानी का नाम लेते हुए कहा कि उसके एक पति तो आप हैं, दूसरे सम्भवतः मानसिंह हैं, तीसरे, चौथे, पाँचवें कौन-कौन हैं जरा आप ही बता देवें। इससे अकबर झल्ला गया और कहा, मुझ पर महाभारत लिखने की आवश्यकता नहीं है, इसे बन्द कर दो।

भगवान् राम स्वाभिमान के प्रतीक थे। इसलिये मैंने इंग्लैण्ड में आयोजित श्रीराम जन्मोत्सव समारोह में कहा था—'अगर मैं इस देश का अंग्रेज डिक्टेटर होता तो सबसे पहला काम करता कि महर्षि वाल्मीकि द्वारा लिखित रामायण को जब्त करने का आदेश जारी करता। क्यों? इसलिये कि जब तक यह महान् क्रान्तिकारी ग्रंथ भारतवासी हिन्दुओं के हाथ में रहेगा, तब तक कोई हिन्दू न तो किसी दूसरे ईश्वर या सम्राट के आगे सिर झुका सकता है और न ही उसकी नस्ल का ही अन्त कर सकते हैं।'

—स्वातंत्र्य वीर सावरकर

भगवान् श्रीराम की विश्वमंगल महिमांजलि

रामायण जैसा विश्वविख्यात, अलौकिक महाकाव्य विश्व में दूसरा नहीं है। भगवान् श्रीराम के समान शील-शक्ति, सौन्दर्य-समन्वित, मर्यादामण्डित, विश्वविख्यात, उदात्त चरित्र विश्व वाङ्मय अथवा विश्व इतिहास में सम्भवतः दूसरा नहीं मिलेगा। श्रीराम सर्वांगीण सुविकसित, सर्वविध आदर्श महापुरुष एवं पूर्ण पुरुष हैं। श्रीराम रामायण के सजीव आदर्श हैं और रामायण राम की वाङ्मय-मूर्ति।

रामायण गृहस्थ आश्रम का सर्वश्रेष्ठ, सर्वादर्श महाकाव्य है। परिवार ही समस्त नैतिक एवं सामाजिक आदर्शों का सुन्दरतम पालना है। परिवार के झूले में झूलते हुए ही मानव सब नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों का प्रशिक्षण प्राप्त करता है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में—'हमारे देश में गार्हस्थ्य धर्म सबसे ऊँचा था, इस बात को यह काव्य प्रमाणित करता है। गृहस्थ आश्रम हमारी निज की सुख-सुविधा के लिए नहीं था, वह सारे समाज को धारण किये रखता था और मनुष्य को यथार्थतः मनुष्य बनाये रखता था। गृहस्थ आश्रम भारतीय आर्य समाज की भित्ति है और रामायण उसी का महाकाव्य है। रामायण ने उस गृहस्थ आश्रम को विसदृश अवस्था में डाल कर, वनवास के दुःख से गौरवान्वित किया है। मंथरा और कैकेयी के कुटिल-कुचक्रों के कठिन आघात से अयोध्या का राजगृह दुःखस्थापन्न हो गया था, तथापि गृह धर्म ज्यों का त्यों दृढ़ बना रहा, और इसी गृह धर्म की दुर्भेद्यता की घोषणा रामायण कर रही है।' विश्वकवि आगे लिखते हैं, 'रामायण ने बाहुबल को नहीं, विजिगीषा को नहीं, राष्ट्र के आक्रामक अभिमान को नहीं, केवल शांत रसास्पद गृह धर्म को ही करुणा के अश्रुजल से अभिषिक्त कर महान् शौर्य-वीर्य के ऊपर प्रतिष्ठित किया है।'

रावण के पास अजेय बाहुबल था, विशाल सेना थी, अक्षय स्वर्ण-भण्डार था, त्रैलोक्य विजय का सामर्थ्य एवं अभिमान था। इसकी तुलना में श्रीराम धन-जन हीन, पत्नी के वियोग में आँसू बहाते हुए, किन्तु सत्य पर डटे हुए थे। सीता एक अकेली अबला नारी, विदेश में शत्रु की कारा में बन्दिनी राम-स्मृति में

अश्रुपात करती अपने सतीत्व पर अटल थी। श्रीराम एवं सीता के अश्रुपात को कोटि-कोटि रामायण पाठकों ने भी युगों से अपने अश्रु-बिन्दुओं का अर्घ्य चढ़ाया है। रामायण ने इसी सत्य एवं सतीत्व का करुणा के अश्रु-बिन्दुओं से अभिषेक कर दुर्दान्त असुरशक्ति एवं पशुबल पर विजय की घोषणा की है।

रामायण नर के नारायणत्व का महाकाव्य

रावण ने तप करके ब्रह्माजी से वर मांगा था कि उसे कोई देव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर न मार सके। मनुष्यों से उसे कोई भय ही नहीं था, क्योंकि नरभक्षी राक्षसों के लिए मनुष्य तो गाजर-मूली के समान सहज खाद्यवस्तु बने हुए थे। इसलिए भगवान् राम को एक आदर्श नर के रूप में प्रकट होना पड़ा। उस काल में देव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर बहुत थे, किन्तु आदर्श नर का ही अभाव था। उसी अभाव की पूर्ति के लिए भगवान् राम मर्यादा पुरुषोत्तम बन कर आये। नारायण ही नर बन कर आये अथवा नर ही आदर्श चरित्र से नारायण बन गये। दोनों ही कथन दैवी एवं मानवीय महत्ता के परिचायक होने के कारण अपने-अपने स्थान पर ठीक हैं।

रामायण मुख्य रूप से देव-महिमा का महाकाव्य न होकर नर-महिमा का ही महाकाव्य है। नर अपने चरित्र द्वारा नारायणत्व भी पा लेता है। यह रामायण में बहुत सुन्दर रीति से दर्शाया गया है।

मैं राज्य भोगने नहीं भुगाने आया।
हंसों को मुक्ता-मुक्ति चुगाने आया।।

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया।
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।।

संदेश नहीं मैं यहाँ स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।

जहाँ वेद अलौकिक एवं अपौरुषेय ग्रन्थ हैं वहाँ रामायण ही सबसे प्रथम लौकिक महाकाव्य है। इसकी रचना इसी लोक में नर की ही गौरव-गरिमा का आख्यान करने हेतु हुई है। इसका नायक नर-नरोत्तम बन कर प्रतिष्ठित हुआ है जो असुरों को पराजित कर सकता है, देवता जिस पर फूल बरसाते हैं और यक्ष-किन्नर जय-दुंदुभि बजाते हैं।

भारत का राष्ट्रीय महाकाव्य

रामायण भारत की आत्मा का महाकाव्य है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में, 'भारत में रामायण प्रतिष्ठित है और रामायण में भारत प्रतिष्ठित है।' रामायण समग्र भारत का प्रतिनिधि-ग्रन्थ है। रामायण उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ को

एकात्म सूत्र में बांधने वाला ऐक्य मंत्र है। रामायण भारतीय राष्ट्र की अंगीभूत अनेकानेक जातियों, उपजातियों को एक राष्ट्रात्मा में समन्वित करने वाला भावात्मक एकता का महानतम प्रयोग है। रामायण में भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम जीवनमूल्य मुखर हो उठे हैं। विश्वकवि के शब्दों में, 'रामायण में भारतवर्ष ने जो कुछ चाहा वही पाया है। रामायण के सरल अनुष्टुप् छन्दों में भारतवर्ष का हृदय हजारों वर्षों से उछल रहा है।....पाठक रामचरित को केवल कवि का काव्य मत समझिये, भारतवर्ष की रामायण समझकर उसका आदर कीजिए। ऐसा करने से ही आप भारतवर्ष को रामायण द्वारा और रामायण को भारतवर्ष द्वारा ठीक-ठीक समझ सकेंगे।'

विश्व का आदि महाकाव्य

रामायण विश्व का आदि-महाकाव्य है और महर्षि वाल्मीकि विश्व के आदि-कवि हैं। रामायण का रचना काल निश्चित करना अभी तक साहित्य के इतिहासकारों के लिए एक जटिल समस्या है। लोकमान्य तिलक ने महाभारत काल आज से 5000 वर्ष पूर्व निश्चित किया है। इसे अनेक विद्वानों ने मान्यता दी है। इसी आधार पर कुछ इतिहासकार रामायणकाल आज से 9000 वर्ष पूर्व निश्चित करते हैं। किन्तु युगों की गणना के अनुसार भारतीय चिन्तक एवं पुराणेतिहासकार रामायण का काल आज से सवा नौ लाख वर्ष पूर्व मानते हैं। आज जब विज्ञान ने धरती की आयु दो अरब वर्ष मान ली है तो नौ लाख वर्ष कोई बहुत प्राचीनकाल नहीं ठहरता। फिर भी विश्व के इतिहास में रामायण से अधिक प्राचीन काव्य या महाकाव्य किसी अन्य जाति या देश में उपलब्ध नहीं है। इसीलिए वाल्मीकि काव्य जगत् के आदिजनक तथा साहित्य के आदि सुर-स्रष्टा माने जाते हैं। अतः रामायण के महानायक राम समूची मानव-जाति के प्रथम महानतम आदर्श होने के कारण सबके पूज्य हैं।

रामायण वनवासियों के प्रेम एवं गौरव का महाकाव्य

महाराष्ट्र के वनवासी जन-गण, महर्षि वाल्मीकि को वनवासियों का आदिपुरुष मानते हैं। वास्तव में रामायण की सारी महिमा तो वनवासी-प्रसंगों में ही गूँज रही है। यदि रामायण के वनवासी प्रसंग निकाल दिये जावें तो रामायण में बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड के अतिरिक्त कुछ नहीं बचेगा। चाहे भगवान् राम ने सैकड़ों या हजारों वर्ष राज्य किया हो किन्तु वनवास के 14 वर्षों की दिव्य गाथा ही रामायण है। शेष गाथा को या तो कोई जानता ही नहीं या उसका कुछ महत्त्व ही नहीं है। मनु के काल में आर्यावर्त्त की सीमाएँ हिमालय से विंध्याचल तक सीमित थी। चित्रकूट से वनपर्वत-शृंखला शुरू हो जाती थी। विंध्यवासिनी

मन्दिर, विंध्याचल की पर्वत चोटी पर खड़े होकर देखें तो उत्तरापथ-दक्षिणापथ का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। गंगा-सिन्धु का मैदान वहाँ समाप्त होकर दक्षिणापथ की वनपर्वत-शृंखला प्रारम्भ होती दिखाई देती है। आरा का नाम आरण्य, शारव का सारण्य, चम्पारण का चम्पारण्य, रोहतास का कर्क खण्डारण्य, छोटानागपुर का झार-खण्डारण्य, मध्यप्रदेश-ओडिशा में दण्डकारण्य, आन्ध्र में किष्किंधारण्य, महाराष्ट्र में जनस्थानारण्य—ये सब नाम प्राचीनकाल से वनपर्वत अरण्य क्षेत्र के परिचायक हैं। भगवान् राम अयोध्या के कनक भवनों को त्याग कर वनवासी-जनों का हृदय जीतने हेतु असीम वात्सल्य लेकर, स्वयं वनवासी बन कर, दण्डक वन के कण्टक पथ पर उतरे, तब राष्ट्रीय एकता का महानतम चमत्कार प्रकट होने लगा। भगवान् के पधारने का समाचार सुन कर वनवासी दर्शनार्थ दौड़े—

यह सुधि कोल किरातन पाई।
मानहुँ कहूँ परी निधि पाई।।

भगवान् राम के स्वागत में वे वन्य कन्दमूल-फल आदि लाये।

कंद मूल फल भरि भरि दोना।
चले रंक जनु लूटन सोना।।
करहिं जुहार भेंट धरि आगे।
प्रभुहि सराहहिं अति अनुरागे।।

रामायण का सन्देश है—

कुल जाति-पांति का गर्व न हो, हम सत्य प्रेम का मान करें।
शबरी के मीठे बेर खाय, केवट के घर जल-पान करें।।
यों मानवता की शान रहे।
हे राम, तुम्हारा ध्यान रहे।।

भक्तराज हनुमान् का जन्मस्थान राँची जिले के गुमला अनुमण्डल के टोटो ग्राम में अभी तक प्रसिद्ध है। उरांव वनवासियों के बारह गौत्र ऐसे हैं जिनका अर्थ ही वानर है। यथा हनुमान्, बजरंग, गड़ी, रेछी, बरई, बसोर, मैना, तिग्गा, बानरा, खंगार, पवन और वंशज...। श्री शरतचन्द्र राय ने लिखा है कि 'उरांव वनवासी आर्यवीर रामचन्द्र की वानर सेना के अंग थे। इसकी पुष्टि कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के डॉ. ए. सी. हेडन ने भी की है। वानर शब्द वन से ही बना है, जिसका अर्थ है वनचर, वनवासी।

रामभक्त विरसा भगवान् ने चुटिया के राम-मन्दिर में विदेशियों एवं ईसाई पादरियों को निरस्त करने के लिए क्रांति का संकल्प किया।

रामगढ़ एवं राम रेखाधाम जैसे तीर्थ, पुरुलिया जिला में अयोध्या पहाड़ जैसे ऐतिहासिक स्थल, नागपुर में रामगिरि पर्वत, सभी वनवासी राम के वनवासी-जनों पर प्रेम न्योछावर करने के ऐतिहासिक स्मारक हैं।

नैतिक मूल्यों का सुन्दरतम संग्रह

संसार के वाङ्मय में नैतिक जीवनमूल्यों को जीवन की प्रत्यक्ष परिस्थितियों में उतार कर इतनी सुन्दर रीति से कहीं अन्यत्र प्रस्तुत नहीं किया गया जितना कि रामायण के कथानक में। नैतिकता कर्तव्य की आन्तरिक पुकार है। जब H.G. Wells ने महात्मा गांधी को Charter of Human Rights (मानवाधिकारों का घोषणापत्र) के लिए प्रारूप भेजने को कहा तो उन्होंने लिखा कि मानव अधिकारों का घोषणापत्र बनाने से पूर्व संयुक्त राष्ट्रसंघ को मानव कर्तव्यों का घोषणापत्र (Charter of Human Duties) बनाना चाहिए। जब वेल्ज ने मानव कर्तव्यों का घोषणापत्र भेजने को कहा तो गांधीजी ने उन्हें रामचरितमानस की एक प्रति भेज दी तथा लिखा कि 'रामायण हम भारतीयों के कर्तव्यों का घोषणापत्र है।'

रामायण विश्वविख्यात एवं विश्व-प्रतिष्ठित महाकाव्य

रामकथा विश्व की सबसे अधिक सुपरिचित एवं सर्वप्रसिद्ध कथा है। श्रीलंका में सीता एलिया (अशोक वाटिका) है। ब्रह्मदेश की राजधानी का नाम था रामावती, जो बदल कर रम्मनवती, रंगनवती, रंगन होते हुए रंगून हो गया। थाई देश के सभी राजाओं का नाम राम उपाधि से विभूषित है। वहाँ की प्राचीन राजधानी का नाम अयोध्या था। इण्डोनेशिया की प्राचीन राजधानी का नाम था अयोध्याकर्त्ता जो बदलकर आजकल जकार्ता हो गया है। प्रम्बनम में संसार का विशालतम एवं सुन्दरतम रामायण मूर्ति शिल्पतीर्थ है। इण्डोनेशिया ने सर्वप्रथम अन्तरराष्ट्रीय रामायण महोत्सव आयोजित किया। कम्बुज, लवदेश, चम्पा, चीन, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, नेपाल सभी में रामायण प्रतिष्ठित है। ईरान, अरब, मध्यपूर्व, अफ्रीका तक में रामायण के अनुवाद हुए हैं। यूनानी महाकाव्य इलियड तो रामायण का ही रूपान्तर मात्र है। यूरोप एवं अमरीका के विद्वान् रामायण पर मुग्ध हैं। सूरीनाम, मॉरीशस, फिजी, गिआना में रामायण ही वहाँ के भारतवंशियों का जीवन-प्राण है।

सर्व धर्म-पंथों का पुण्य महाकाव्य

बौद्धों ने मुग्ध होकर दशरथ-जातक, अनामक जातक नामक रामायण पर आधारित ग्रन्थ लिखे। जैनों ने विमलसूरि के पउमचरिय और हेमचन्द्राचार्य की जैन रामायण के द्वारा राम के चरणों में अपना अर्घ्य चढ़ाया। सन् 1585 में अकबर के फरमान से रामायण का फारसी में अनुवाद हुआ। गुरुग्रन्थ साहब में लगभग 30

हजार बार राम का नाम गूँज रहा है। फिलिस्तीन का सूफ़ी फकीर सरमद शहीद भारत में आकर औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह के साथ बैठकर रामायण पढ़ता था। गुरु गोविन्दसिंह ने गोविन्द रामायण लिखी। संस्कृत और हिन्दी साहित्य पर रामायण की छाप तो अमिट ही है। तमिल में कम्ब रामायण, तेलुगु में श्रीपाद-रामायण, मलयालम रामचरित, कन्नड़ तोरवे रामायण, बंगाली कृतिवास रामायण, हिन्दी रामचरितमानस, उड़िया बलरामदास रामायण, असमिया रामायण, मराठी भावार्थ रामायण, गुजराती रामबालचरित तथा राजस्थानी रघुनाथ रूपक गीतां रो—ये रामायण की दिग्विजय के प्रमाण हैं।

संसार का विशालतम झण्डा-जुलूस

मैंने संसार के किसी देश में इतना बड़ा झण्डा-जुलूस नहीं देखा जैसा रामनवमी के अवसर पर राँची में निकलता है। राम के जन्म पर हनुमान् के झण्डे फहराने के पीछे भी वही प्रेरणा है जिसने भगवान् राम एवं भक्तराज हनुमान् को एक कर दिया था, जिसने आर्य-अनार्य, नगरवासी-ग्रामवासी-वनवासी सभी को एक ही भावात्मक एकता के सूत्र में बाँधकर एकात्म बना दिया था। यही रामायण की सबसे बड़ी देन है। जहाँ श्रीराम फहरते हुए—बजरंगी ध्वजों से पूजित होते हैं, वहाँ वे राष्ट्रपुरुष राम वनवासी बन्धुओं के हृदय में लहराते हुए राम प्रेम एवं राष्ट्र प्रेम से शतशः आनन्दित होंगे।

हिन्दू धर्म के प्रति मेरी भावना वैसी ही है जैसे अपनी पत्नी के प्रति है। अन्य स्त्री मेरे मन में वैसी भावनायें नहीं जगाती जैसी मेरी पत्नी के प्रति। उसमें कुछ दोष हो सकते हैं किन्तु उसका मेरा बंधन अटूट है। इसी प्रकार हिन्दू समाज में अनेक दोष हैं किन्तु तुलसी की रामायण और गीता के संगीत से मुझे जो आनन्द मिलता है वह कहीं ओर से नहीं मिलता। मैं आमूल चूल सुधार का हामी हूँ किन्तु सुधार के जोश में हिन्दू-धर्म की मूल मान्यताओं को ठुकरा नहीं सकता।

—महात्मा गांधी

रामायण पारिवारिक मूल्यों का आख्यान है

परिवार सभी नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों का पावनतम पालना है तथा परिवार की पवित्र फुलवारी में खिलने वाले पावन पुरुष ही समाज के बड़े उद्यान में अपनी सौरभ फैलाते है। इसलिए संत तुलसीदासजी ने भारतीय संस्कृति के पारिवारिक जीवनमूल्यों का श्रेष्ठ आख्यान अपने महाकाव्य में किया है अतः रामायण पारिवारिक मूल्यों का आख्यान है। समाज जीवन, राष्ट्र जीवन, विश्व जीवन की नींव परिवार जीवन है जहाँ मानव-निर्माण होता है। मानव निर्माण का प्रथम संस्कार है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।—मनुस्मृति

अर्थ—अपने माता-पिता, गुरुजनों को नित्य नमस्कार करने वाले तथा बड़ों की सेवा करने वाले व्यक्ति के चार गुण सदा बढ़ते रहते हैं। आयु, विद्या, यश और बल। आज अत्यन्त दुःख के साथ कह रहा हूँ कि आज हम इस महान संस्कृति को भूल गये हैं। इस चरणवंदना में एक विराट रहस्य छिपा है। इससे आधा जीवन आशीर्वाद, वात्सल्य तथा आधा जीवन सेवा और सम्मान में बीत जाता है।

अर्थात् वृद्ध, गुरु-सदृश को अभिवादन एवं सेवा करने से आयु विद्या, यश व बल में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है और घर व समाज स्वर्ग बन जाता है। पर जो यह नहीं करते उनकी आयु क्षय होती है, विद्या विस्मृत हो जाती है, यश भी नष्ट हो जाता है एवं बलहीन होकर रहता है। यह अद्‌भुत सत्य है। यह आप कर के भी देखें, नहीं करके भी देखें। इस दैनिक मातृ-पितृ गुरु वंदना के नियम का पालन करने का एक चामत्कारिक प्रभाव यह होता है कि प्रतिदिन प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में गुरुजनों से मन की तार जुड़ जाती है और उनका अलौकिक दर्शन और अमोघ आशीर्वाद प्राप्त होता है। विगत बीसियों वर्षों से इस नियम का पालन करने के कारण मुझे कुछ विश्व प्रतिष्ठित गुरुओं का दैनिक सत्संग, संदेश एवं आशीर्वाद प्राप्त होता रहा है। जिन विभूतियों को मैं नित्य नमन करता हूं उनके मानसिक चित्र मेरे मनस पटल पर उभर आते हैं और उनसे संवाद और आशीर्वाद प्राप्त

होता है। और यह इतनी महान् मर्यादा है कि अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीरामचंद्र स्वयं प्रातःकाल में उठकर पिता-माता एवं गुरुजनों की चरण वंदना करते थे। तुलसीदासजी रामचरितमानस में लिखते हैं—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु-पितु गुरु नावहिं माथा।।
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा।।
धन्य जनम, जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासु।।
चार पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जांके।।

गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—माता-पिता एवं गुरुजनों की, नित्य नमस्कार के साथ सेवा करने से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष चारों पुरुषार्थ अनायास ही करतलगत होकर रहते हैं। यह शास्त्रवचन है।

पितर संतुष्ट होने से सारे देवता संतुष्ट होते हैं। इसलिये जो माता-पिता एवं गुरु सेवापरायण होते हैं उनके समस्त कर्म धर्ममय बन जाते हैं। वे समस्त धन का अर्जन कर लेते हैं, उनकी समस्त कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं। भगवान् उनके हाथ की मुट्ठी में आ जाते हैं। माता-पिता-गुरु के चरणों में प्रणत व्यक्ति को इस जगत् में कुछ भी अप्राप्त नहीं रहता। यह एक महान् आदर्श है।

यह भारतीय संस्कृति का प्रथम संस्कार है। जो इसका पालन नहीं करता उसे वेदशास्त्र यानी आगे का पाठ नहीं पढ़ाना चाहिये। उसको और कुछ सिखाने की आवश्यकता नहीं है। कारण कि उसको कुछ रुचेगा नहीं, हजम नहीं होगा। वह मानव नहीं बनेगा। जिसने माता-पिता-गुरु के चरणों में नत होना नहीं सीखा, वह आगे नहीं बढ़ सकता। कम से कम आध्यात्मिक विकास तो नहीं ही कर सकता है। आप बोल सकते है मातु-पितु गुरुजनों को प्रणाम न करने मात्र से शास्त्र अध्ययन से वंचित करना ठीक नहीं है। पर मैं तो यही कहूंगा अनधिकारी को वेदशास्त्र सिखाने से भी काम नहीं होगा। एक ब्राह्मण राजदरबार में मंत्री था। वे नित्य प्रति गायत्री मंत्र का जप करते थे। इसी को देखकर एक दिन राजा ने मंत्री से जिज्ञासा की कि आप क्या जप करते हैं एवं किसलिए करते हैं। ब्राह्मण मंत्री ने कहा—मैं गायत्री मंत्र का जप करता हूं, उसको करके शांति पाता हूं। तब राजा ने मंत्र सीखने की इच्छा प्रकट की। मंत्री ने कहा, यह मंत्र केवल ब्राह्मण के लिए है। अन्य का इसमें अधिकार यानी पात्रता नहीं है। राजा बोले—ठीक है, मैं अन्य के पास सीख कर जप करूंगा। मंत्री ने कहा, यह आप कर सकते हैं पर शांति नहीं प्राप्त होगी। इसके लिए जो अपेक्षित शुद्धि चाहिए वह आपके द्वारा सम्भव नहीं है। राजा ने कहा—अच्छा! प्रमाण करके देखा जाए। यह कहकर वे एक ब्राह्मण को प्रचुर धन देकर गायत्री मंत्र सीखकर जप करने लगे। कुछ दिन पश्चात् राजा ने मंत्री

से कहा—मंत्री महाशय, गायत्री मंत्र के जप से मैं शांति नहीं पाता हूं यह प्रमाणित करें। मंत्री ने कहा, अभी ही करता हूं। यह कहकर एक सैनिक को बुलाकर राजा को मारने का आदेश दिया। सैनिक भौचक्का होकर खड़ा रह गया। तब दूसरे सैनिक को बुलाकर यही आदेश दिया पर आदेश का क्रियान्वयन नहीं हुआ। अब मंत्री ने कहा—अब आप एक सैनिक को बुलाकर मुझे मारने का आदेश देवें। राजा का आदेश पाते ही सैनिक मंत्री को मारने को उद्यत हो गया। मंत्री ने हुंकार देकर कहा—रुको। तुमको मारना नहीं होगा। यह एक परीक्षा थी। तब मंत्री ने राजा से कहा—देखें महाराजा—यह एक ही मंत्र मैंने अनेक बार उच्चारण करके कोई फल नहीं पाया और आपने एक बार उच्चारण करके ही फल पा लिया क्योंकि आप अधिकारी हैं, राजा हैं, राज्यादेश अमान्य करने का साहस किसी का नहीं है। गायत्री मंत्र के क्षेत्र में भी यही एक ही कथा है। उसका अधिकारी मैं हूं। इसकी पात्रता मेरे में है। बिना पात्रता के उस मंत्र का जीवनभर जप करके भी आप कुछ पावेंगे नहीं।

प्रणत व्यक्ति पिता-माता, गुरुजनों की तपस्या एवं पुण्यफल के कुछ अंश को आकर्षित कर लेता है। उनके ओज-तेज, विद्या—सभी कुछ में से हमें लाभ मिलता है। वे प्रणत जन को आशीर्वाद देते हैं—वत्स! चिरंजीवी होओ, विजयी होओ, सुखी होओ। अपने भाग्यानुसार ब्रह्माजी ने जो हमें देना था सो तो दिया ही है। किन्तु आशीर्वाद द्वारा गुरुजन अपने निजी अंश से भी प्रणत को कुछ देते हैं। यह हुआ प्रणाम का चमत्कार। जिसने प्रणाम करना सीखा नहीं उसका मस्तिष्क धूल-लुण्ठित होने योग्य ही है। वह मस्तिष्क किसी कार्य का नहीं। इसलिये तुलसीदासजी जो कहते हैं वह भारतीय संस्कृति की मर्यादा के अनुसार ही कह रहे हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र से आरंभ करके साधारण मनुष्य पर्यन्त सभी ने आज पर्यन्त इस परम्परा का निर्वाह किया, उसी मर्यादा का आज घर-घर में पालन करें।

इससे घर का वातावरण एकदम बदल जायेगा। किसी कारण से हमसे कुछ त्रुटि हो गयी, बड़ों में हमारे प्रति रोष है तो प्रणाम करने से धुल जाता है और आपके प्रणाम करते ही जो आत्मग्लानि का भाव है वह दूर हो जाता है इस प्रकार घर का वातावरण स्वस्थ बना रहता है। आधा जीवन आशीर्वाद और आधा जीवन सम्मान और सेवा सुलभ होती है। यह इसका प्रत्यक्ष फल है।

क्योंकि कल्याणकारी कर्मों का फल निश्चय ही शुभ, कल्याणजनक होता है। इसमें कोई संशय नहीं है। क्या कल्याणकारी फल होता है इसको सुनो—घर-घर में श्रीराम और लक्ष्मण-भरत के सदृश पुत्र एवं सीता, सावित्री, दमयन्ती की तरह कन्याएं होंगी। और जो ऐसा नहीं करते उनके घर में औरंगजेब की परम्परा की संतान होंगी। यह औरंगजेब पिता को कारागार में बंदी करके रखता है और

सभी भाइयों की हत्या कर के दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था। तो आज आपको निश्चय कर लेना होगा कि श्रीरामचंद्र की परम्परा चाहिये या औरगंजेब की परम्परा चाहिए। श्री रामचन्द्र तो नित्य माता-पिता, गुरुजन की चरणवंदना करते थे। औरंगजेब की कथा तो सुनी ही है। अब जो चाहिये वही पथ चुन लो।

गुरु गोविन्दसिंह (दशम सिख गुरु) बोलते हैं—अरे पापी औरंगजेब! तुमने अपने पिता की अस्थि एवं भाइयों के रक्त का कादा देकर जिस साम्राज्य की नींव खड़ी की है, मैं इस भवानी तलवार के नाम से प्रतिज्ञा करके कहता हूँ तुम्हारा यह पाप का साम्राज्य खण्ड-विखण्ड करके फेंक दूंगा।

औरंगजेब के राज्यकाल में दक्षिण भारत में मराठा हिन्दूवीर छत्रपति शिवाजी का खूब पराक्रम था। औरंगजेब उनको युद्ध में परास्त करने में समर्थ न होकर, छल कर के बंदी बनाने का षड्यंत्र रचा। राजा जयसिंह ने मुगल दरबार में उपस्थित होने के लिए उन्हें आमंत्रित किया। कहा कि आप यदि राजदरबार में जायें तो औरंगजेब उत्तर भारत को लेकर खुश व संतुष्ट रहेगा और दक्षिण भारत का शासन आप करेंगे। शिवाजी ने कहा—औरंगजेब तो भीषण दुष्ट-पापी है। उसने तो अपने बाप-भाई किसी को नहीं छोड़ा, सारा जीवन मैंने उनका विरोध किया है। अब राजदरबार में जाने से क्या वह मुझे छोड़ेगा। जयसिंह ने कहा—मैं आपके ऊपर किसी प्रकार का कोई संकट आने नहीं दूंगा। मैं एवं मेरा पुत्र राजसिंह आपकी रक्षा करेंगे। आप एक बार चलें। झगड़ा मिट जाये। शिवाजी महाराज ने सोचा, सभी तो फंदी है। अच्छा देखा जाय औरंगजेब का चेहरा कैसा है और किस शक्ति का अधिकारी है। इसलिये शिवाजी महाराज उसके दरबार में गये।

औरंगजेब ने शिवाजी महाराज को प्रथम में ही अपमान करने के लिये पांच हजारी मनसबदार के मध्य में बैठाया। शिवाजी महाराज थे सारे महाराष्ट्र के अधिकारी। उनको पांच-दस हजार सेनाधारियों में बैठाना अमर्यादाकर बात थी। शिवाजी महाराज ने इस व्यवस्था को देखकर, क्रुद्ध होकर, तलवार म्यान से निकाल करके कहा—मूर्ख औरंगजेब! तुमने मेरा अपमान किया है, तिरस्कार कर रहे हो। जानते हो इसकी परिणति कहाँ है? औरंगजेब विषम स्थिति को देखकर दरबार से पलायन कर गया। किन्तु मुगल सैनिकगण ने शिवाजी को घेरकर, बंदी बनाकर कारागार में डाल दिया।

इस समय मुगल दरबार में भूषण नामक कवि था। उन्होंने शिवाजी के पौरुष को अपने चक्षु से देखा था। उनको लगा कि शिवाजी के विषय में कुछ लिखना चाहिये। भूषण कवि की कविता अतुलनीय थी। जब वे एक युवक थे तब बेकार व अड्डाबाज थे। एक दिन घर में खाना खाने बैठे थे। भोजन में नमक थोड़ा कम पड़ा था। उन्होंने बड़ी भाभी से लवण मांगा। भाभी ने ताना मारा—लवण जो

चाहते हो, कभी लवण कमा कर लाये हो क्या? भूषण मुख का ग्रास वहीं फेंककर चल दिये। उसके पश्चात् काशी जाकर, विद्वान् गुरु के चरणों में बैठकर खूब आग्रह के साथ विद्याध्ययन किया। विद्वान् हुए। उसके पश्चात् शिवाजी महाराज का यशोगान करते हुए 52 कविताएं लिखी। शिवाजी महाराज के दरबार में जाकर उनको प्रतापगढ़ किले में कवितायें सुनाई। शिवाजी महाराज ने संतुष्ट होकर 52 गांव की जागीर भूषण कवि को दे दी। जिज्ञासा की कि और कुछ चाहिये क्या? भूषण ने कहा, महाराज! हाँ, मुझे कुछ और चाहिये। 52 हाथी एवं प्रत्येक हाथी पर जितना लवण के बोरा ढो सकते हैं उतना लवण लदवा देवें। महाराज बोले—यह क्या है? 52 हाथी पर लवण लदवाकर क्या होगा? भूषण ने कहा—होगा महाराज, कार्य होगा। इसमें कुछ रहस्य है बाद में कहूँगा। 52 हाथी पर लवण का बोझा लेकर भूषण ने घर पहुँचकर बड़ी भाभी को कहा—भाभी सम्हालो, लवण अर्जन करके लाया हूँ। ऐसे जिद्दी थे, मस्तराम भूषण कवि। भूषण कवि ने शिवाजी महाराज पर 52 कविताएं लिखी हैं औरंगजेब ने एक बार उनको कहा—भूषण! तुम आगरा में रहते हो, तुम मेरी प्रजा हो और कविता लिखते हो शिवाजी पर। हमारे विषय में कुछ लिखो। भूषण कवि ने कहा—जहांपनाह! हुकुम करने से अभी ही कविता सुना देता हूँ। किन्तु पहले वचन दीजिये कि जान से नहीं मारोगे। औरंगजेब ने कहा— ठीक है, ऐसा ही होगा। कारण, अभी तो यह एक इज्जत का प्रश्न बन गया। भूषण कविता कहने लगे—

ठोर बाप बादशा शाहजहां
ताको कैद किन्हो मानो मक्का में आग लगाई है,
बड़ो भाई दारा वाको आख में चुनाई लिन्हो
शरम नहीं आयो मां को जायो सगो भाई है,
विदे कुरान खुदा की कसम खाई है।
भूषण भनतरे सुन नवरंगजेब सच्ची बात है,
इतने पाप कीन्हें तेने पादशाही पाई है।

कविता सुनकर औरंगजेब को प्रचण्ड क्रोध होने पर भी पूर्व वचनानुसार चुप रहना पड़ा।

भारत को यदि गारद में परिणत करना है, नष्ट करना है तब तो औरंगजेब के रास्ते पर चलें। माता-पिता-गुरुजनों को प्रणाम करने की कोई आवश्यकता नहीं। भारत को यदि भारत रखना है तब श्रीराम का पथ ही एकमात्र पथ है। औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहां को आगरा के किले में बंदी करके रखा था। वहाँ छोटी एक मस्जिद भी थी। बादशाह के लिये एक छोटा कमरा। हाथ में हथकड़ी और पैर

में डण्डाबेड़ी। एक कटोरी भीगा चना पड़ा रहता था। बादशाह को पशु की तरह मुंह के पास लगाकर खाना पड़ता। अन्य एक कटोरी में पानी रहता था, उसको भी इसी तरह पीना पड़ता था। एक दिन भयंकर गर्मी की दुपहरी में शाहजहां को भीषण प्यास लगी थी। डण्डाबेड़ी को खींच-खींच कर बहुत कष्ट से पानी की कटोरी के पास जाकर कुत्ते की तरह चुभक-चुभक कर जल पीने के लिये कटोरी में मुंह लगाया। ठीक उसी समय इधर-उधर से घूमते-फिरते, औरंगजेब वहाँ आकर उपस्थित हुआ। इस दृश्य को देखकर कौतुक हुआ उसने सोचा एक रूढ मजाक किया जाय। वह भीतर गया और जाकर उस पानी की कटोरी को लात मारकर तोड़ दिया। शाहजहां जो एक दिन सारे भारत का बादशाह, वह आज अपने पुत्र के हाथ बंदी, जल नहीं पी पाने के कारण बादशाह रो पड़ा और कहा—ऐ पिसर तू अजब मुसलमानी, ब पिदरे जिंदा आब तरसानी।

आफरीन बाद हिंदवान सत् बार,
मैं देहंद पिदरे मुर्दारावा दायॅम आब।।

अरे बेटा, तू एक अद्‌भुत मुसलमान है जिंदा बाप को जल नहीं पीने देता। हिन्दूजन को शत बार धन्यवाद क्योंकि वे अपने मृत पितृपुरुष को भी तर्पण करके जल देते हैं—

हां, भारत को 'भारत' रखना है तो केवल राम का पथ ही पथ है। तुलसीदासजी हमें वही पथ दिखा गये हैं। जो इस पर चलेंगे वे ही भारत के वास्तविक रक्षक हैं और जो इस पथ में नहीं चलेंगे भारत को गारद बनायेंगे। किन्तु सुनो, हम भारत को किसी भी हालत में गारद नहीं बनने देंगे। रामपथ के विरोधी को भारत छोड़ना पड़ेगा।

एक बार प्रो. ओबराय जी इस्लामिया कॉलेज में इतिहास के विद्वान् प्रो. अब्दुल लतीफ से मिलने गये। वे मकान में थे। उनके बाहर आने तक उन्हें (प्रो. ओबराय) कुछ मिनट तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। उन्होंने विस्मित होकर सुना कि उनके घर के भीतर से रामायण की चौपाइयों के गाने की आवाज आ रही थी। उनके बाहर आने पर उन्होंने पूछा—लतीफ साहब! आप क्या गा रहे थे? उन्होंने हंसकर उत्तर दिया, अरे यार! तुम्हारी ही किताब पढ़ रहा था। ओबरायजी ने कहा—रामायण के ग्रंथ पर मेरा ही ठेका है क्या? वे बोले—मेरा मतलब है कि मैं हिंदुओं का पवित्र ग्रंथ पढ़ रहा था। उन्होंने पुनः पूछा—क्या रामायण हिन्दुओं का ही धर्मग्रंथ है या भारत का राष्ट्रीय महाकाव्य भी। वे बोले—आप सच कहते हैं, 'रामायण भारत का राष्ट्रीय महाकाव्य भी है और विश्व मानवता के मंगल का महाकाव्य भी। इसमें इतने ऊँचे नैतिक और पारिवारिक मूल्यों का उपदेश है कि उसके बिना परिवार

उजड़ जायेंगे और हमारा समाज नष्ट हो जायेगा। इसलिये फुर्सत निकालकर कुछ समय के लिये परिवार के सब सदस्यों को बैठाकर रामायण सुनाता हूँ। इससे मुझे बड़ा सुख मिलता है। ओबराय जी सुनकर बड़े आनंदित हुए।'

प्रो. ओबराय ने कहा—सम्राट् औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह भी अपने गुरु के साथ बैठकर रामायण, गीता और उपनिषद् पढ़ा करते थे। गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन अब्दुर्रहीम खानखाना तथा पठान कवि रसखान भी रामायण के दीवाने थे। रहीम ने लिखा है—

रामचरितमानस विमल संतन जीवन प्राण,
हिन्दूवान को वेदसम यवनन प्रकट कुरान।

मलाया, इंदोनिजीया आदि देशों के मुसलमान आज तक चाव से रामायण पढ़ते हैं और बड़े उत्साह से रामलीला खेलते हैं।

इस पर प्रो. लतीफ ने कहा—यह सच बात है। यह हमारा हिन्दुस्तानी तमुददम है जिसे दुनिया के लोग भी इज्जत से सर पर चढ़ाते हैं। खुद मुहम्मद अली जिन्ना साहब ने जब वे कांग्रेस के मंत्री थे तब अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में भाषण करते हुए मुसलमान छात्रों से कहा था कि रामायण और महाभारत हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय महाकाव्य हैं। इनको पढ़े-समझे बिना कोई हिन्दुस्तान को नहीं समझ सकता और न ही भारत के साथ एकात्म हो सकता है। मैंने कहा—यदि सचमुच हिन्दुस्तान के बंधु इस नसीहत को मानते तो देश के विभाजन की मांग की कल्पना भी नहीं आ सकती थी। बेशक देश की संस्कृति ही देश की एकता का सबसे बड़ा आधार है।

तब प्रो. ओबरायजी ने बताया—प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की दूसरे क्रान्तिकारी अशफाक उल्ला से बड़ी दोस्ती थी वे उसे अपना छोटा भाई मानते थे उसे अपने घर ले जाते और उसे लक्ष्मण कहकर पुकारते। सबकी नजर में वह रामलखन की जोड़ी बड़ी प्यारी थी। वे घर पर साथ-साथ खाना खाते, साथ-साथ खेलते और साथ-साथ देशभक्ति के तराने गाते और अंत में दोनों साथ-साथ फांसी पर चढ़ गये। एक बार अशफाक उल्ला के पेट में भीषण दर्द हुआ, वे बेहोश हो गये, वे राम-राम चिल्लाने लगे। लोगों ने कहा—अल्लाह-अल्लाह बोलो। किन्तु वे राम-राम ही चिल्लाते रहे। रामप्रसाद बिस्मिल पहुँचे तो वे उठकर उनके गले से लिपट गये और कहा, अब मेरा राम आ गया है। इस दृश्य को देखकर लोगों को रामायण में वर्णित लक्ष्मण की बेहोशी के बाद राम से पुनः मिलने की याद आ गई। तो यह संस्कृति का चमत्कार है जो हमारे नस-नस में है इसने सबके दिल को जोड़ा है। अशफाक और बिस्मिल के दिलों को एक बना दिया है। इस राह पर चलने से सारा देश एक हो सकता है।

फिर उन्होंने थोड़ा विषय बदलकर पूछा—लतीफ साहब! इतिहास में आपका सम्राट औरंगजेब के बारे में क्या मत है? उन्होंने कहा—औरंगजेब ने हिन्दुओं में इसलाम फैलाने का सबसे बड़ा काम किया, लोग उसे जिन्दापीर कहते थे लेकिन व्यवहार में उसकी अतियों के कारण मुगलिया सल्तनत की इति हो गयी। मैंने पूछा—क्या आप खुदा से दुआ मांगोगे कि खुदा आपको औरंगजेब जैसा बेटा दे। वे कानों को छूकर बोले—लाहोलावल्लाह कुव्वत तोबा-तोबा। औरंगजेब ने अपने जिंदा बाप को कैद करके पानी तक के लिये तरसा-तरसा कर मारा। अगर मेरे घर औरंगजेब जैसा बेटा होगा तो मुझे भी मार डालेगा। मैंने पुनः कहा—औरंगजेब जैसा भाई मांग लीजिये। वे कानों को छूते हुए बोले—खुदा रहम करे, अपने तीन-तीन भाइयों का खून करने वाला औरंगजेब जैसा भाई कौन मांगेगा। मैंने हंसकर कहा—औरंगजेब जैसा दोस्त मांग लो? उन्होंने मजाक से कहा—औरंगजेब दोस्त हुआ ही किसका। अपने-पराये सबके साथ दगा ही किया है।

मैंने पूछा—लतीफ साहब! आप खुदा से क्या मांगते हैं कुछ भी तो मांगिये। वे बोले 'या खुदा या दो तो राम जैसा बेटा दो, राम जैसा भाई दो, राम जैसा दोस्त दो, राम जैसा दुश्मन भी दो, राम जैसा गुरु भी दो। राजा भी दो तो राम जैसा। वे मेरी ओर देखकर मुस्कराकर बोले—मैं इसलिये लीगियों की नजर से बचकर रामायण पढ़ा करता हूँ।

अतः भारत को भारत बनाये रखना है तो राम का पथ चुनना पड़ेगा और राम विरोधियों को भारत छोड़ना पड़ेगा।

आज संस्कारों की कमी एवं सही दिशा के अभाव में भारत के युवकगण भी विद्रोही मनोभावापन्न हो रहे हैं। पिता के साथ दुर्व्यवहार कर रहे हैं। एक पुत्र अपने पिता को कहता है—हमको जन्म देकर हमारे ऊपर कौन-सा उपकार किया है। तुम दोनों के आनंद-भोग के परिणाम से हमारा जन्म हुआ है। यह प्रकृति का नियम है। मेरा पालन-पोषण भी इसी एक ही नियम से हुआ है। उसके लिये आपके प्रति कृतज्ञ रहने का कोई कारण नहीं है।

पश्चिमी देशों में माता-पिता की क्या अवस्था है? वृद्धाश्रम ही शेष आश्रय है। शादी हुई कि गया। इस कारण उन सब देशों में कोई भी माता-पिता अपने पुत्र के विवाह से खुश नहीं होते। वे जानते हैं कि विवाह के दूसरे दिन से लड़का अब हमारा नहीं रहेगा।

उन देशों में कुत्ता-कुत्ती, शूकर-शूकरी की तरह नर-नारियों की भोग लीला खुले में (प्रत्यक्ष) दिखाई पड़ती है। जिनका चरित्र ही नहीं वे कैसे मनुष्य? चरित्र के द्वारा ही मनुष्य वर्चस्वी बनता है। चरित्रवान यदि होना है तो तुलसीदासजी का

रामचरितमानस पढ़ो। मेरे साथ एक अमेरीकन सज्जन भारत आये थे। मुंबई में विमान से उतरकर भीषण आश्चर्यचकित होकर उन्होंने देखा कि एक भद्र महिला अपने विदेशगत पति का पैर छूकर प्रणाम करती है। यह देखकर साहब ने कहा—What is it? Oh! India is really wonderful मैंने कहा, क्या हुआ? उन्होंने कहा—Here I see the hands of the wives are at the feet of their husbands. But in our countries (in the west), the hands of wives are in the pockets of the husbands. यानी यहाँ मैं देखता हूँ, पत्नियों के हाथ पतिदेव के चरण में रहते हैं। किन्तु हमारे पश्चिमी देशों में पत्नियों के हाथ रहते हैं पतिदेव की पॉकेट में। कारण यह है कि हमारे देश के पति नित्य नये रूप के शिकारी। जहाँ नवरूप दिखा वहीं उनका फंदा। क्लब में घूमो, नाचो-कूदो। नूतन रूप जहाँ देखा वहीं पुरानी पत्नी को तलाक यानी विवाह-विच्छेद, अब नयी पत्नी अतः नया रस। वहाँ पत्नी भी कम नहीं है। वे भी सदा सर्वदा पैसे की शिकारी। वे सोचती हैं कि पति कब छोड़ देंगे उनका क्या ठिकाना। इसलिये उसके पूर्व जो प्राप्त होता है संग्रह कर लो। पुनः वहाँ अनेक पुरुष ऐसा सोचते हैं। Where there is available milk in the market, who goes to bear the troubles of farming a cow. बाजार में जब प्रचुर मात्रा में दूध सुलभ है तब गाय पालन का कष्ट कौन उठाता है? यहाँ स्त्रियाँ पैसे का शिकार अच्छी प्रकार से करती है। इसलिये उनका हाथ पुरुषों के पॉकेट में रहता है। और अन्यों की क्या कथा कहें स्वयं प्रेसिडेन्ट कैनेडी की पत्नी तक ने शेष पर्यन्त इडनानेर के एक जहाज कंपनी के वृद्ध मालिक के साथ विवाह कर लिया। सिर्फ पैसे के लोभ से। तो पतिगण तो काम के कीट एवं पत्नी है अर्थ की यक्षिणी। उस देश में कोई पारिवारिक जीवन नहीं है। परिवार की संज्ञा क्या है? परिवार है 'सकल चारित्रिक और सामाजिक उत्तम गुणावली का पालना।' पारिवारिक मूल्यबोध का महानतम काव्य रामायण है। क्योंकि परिवार में किसके प्रति किसका क्या कर्तव्य एवं किसका क्या मूल्य है वह रामायण में जितने सुंदर ढंग से बताया गया वैसा और कहीं नहीं है। भारत युग-युग से दृढ़भाव से अपने स्वरूप में स्थित है। वह इस नैतिक मूल्य बोध की बुनियाद पर खड़ा है। इसलिये कहता हूँ भारत को बचाना है तो राम का पथ पकड़ो और भारत को यदि गारद बनाना है तो औरंगजेब का पथ है।

श्री राम ने सीता के लिये क्या किया? एवं स्वयं अपने भाई के प्रति क्या किया? इस पर विचार करना चाहिये। राजा दशरथ ने तो स्वयं अपने मुंह से राम को वनवास नहीं दिया। वे तो कुछ बोल ही नहीं पाये। कैसे अपने प्रिय आज्ञाकारी पुत्र को वनवास का आदेश देते? वे तो कैकेयी की बात सुनकर हतचेता होकर बेहोश पड़े हैं। कैकेयी ने कहा—महाराज ने मुझे दो वर देने का वचन दिया था।

अब वे हार गये हैं। मैंने ये दो वर मांगे हैं। कैकेयी अत्यंत संकोच के साथ राम से पूछती है—राम! तुम क्या इस वचन को मानोगे? राम ने कहा—निश्चित मां! परम आनंद के साथ मैं मानूंगा। कैकेयी को तो आशा ही नहीं थी कि राम सचमुच में स्वयं का राजतिलक छोड़कर वनवास चला जायेगा। उसने सोचा—एक बड़ा संघर्ष होगा। किन्तु राम ने कहा—माता! राम दो बार नहीं बोलता। मुझे पिता की आज्ञा से वनवास तो क्या अग्नि में कूदकर प्राण विसर्जन करने तथा विषपान करने में भी आपत्ति नहीं है। यह है राम की आज्ञानुवर्तिता।

किन्तु आज घर-घर में क्या देखते हैं? लड़के को यदि माता-पिता कहें कि बाजार से सामान ले आओ। तो तभी ना-नुकर आरंभ हो जायेगी, बहानेबाजी आरंभ हो जायेगी, मेरे पास समय नहीं है, पढ़ने का काम बाकी है, आज क्रिकेट मैच देखना है। राम में आज्ञानुवर्तिता बाद दे देवें तो उनका बाकी क्या मूल्य बचता है? इसलिये देखिये दशरथ ने तो अपने मुख से आदेश दिया नहीं, तब भी मेरी मां को दिया वचन मिथ्या न हो जाय, मेरे जीवित रहते पिता का वचन मिथ्या नहीं हो सकता। मेरे रहते पिता का वचन मिथ्या हो गया तब मेरे पुत्र-पौत्र मुझे धिक्कारेंगे! मैं सब कुछ छोड़ सकता हूँ पर पिता का वचन मिथ्या नहीं होने दे सकता यह है आदर्श पुत्र का चरित्र। अब देखें दो भाइयों का चित्रकूट में हुआ मीठा झगड़ा, किस प्रकार इतिहास में अमर हो गया। राम कहते थे, भरत! पिता के मौन आदेश और माता कैकेयी के वचन पर फूल चढ़ाते हुए मैंने वनवास स्वीकार किया और आप जैसे प्राण-प्यारे भाई के लिये राज्य छोड़ा। अतः भरत राज्य मेरा नहीं आपका है। भरतजी रो कर कहते हैं—राम दुहाई, आपके चरणों की सौगंध, ऐसा पाप मुझसे मत करवाइये। यह सदा-सदा आपका है और आपका ही रहेगा। दोनों भाइयों के अंतर से इदं न मम् की भावना गूंज रही थी। दोनों ने मानो राज्य को कन्दुक (गेंद) बनाकर परस्पर एक-दूसरे की ओर ठुकराकर फेंकना प्रारम्भ किया। दोनों खिलाड़ी भी इतने जागरूक थे कि गोल कोई भी नहीं होने देता था। अंत में निर्णय किया गया कि भाइयों का प्रेम अमर बना रहे और राज्य की कीमत लगाई दो जूते (चरणपादुकाएं)। 14 वर्ष तक अयोध्या के सिंहासन पर राम की पादुका राज्य करती रही। हमें आगे इतिहास में भी इस घटना का प्रभाव देखने को मिलता है कि शिवाजी महाराज के ज्येष्ठ पुत्र सम्भाजी महाराज की मृत्यु के अनन्तर उनके छोटे भाई राजाराम महाराज राजगद्दी पर कभी बैठे नहीं। थाई देश के राजा भी स्वयं को राम की पादुका के स्थान पर मानते हैं। राम का सिंहासन ऊँचा है, सोने का है, पहले है, उसके बाद में राजा का सिंहासन है, उससे नीचा है। अर्थ के प्रति निर्लोभवृत्ति एवं साम्राज्य के प्रति यज्ञभाव का इससे श्रेष्ठ उदाहरण सारे विश्व के इतिहास में भारत या भारत से प्रभावित देश के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिलता। भरतजी की अर्थ-व्यापार में इस

निर्लोभवृत्ति का गुणगान करते हुए गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं—

रमा विलास राम अनुरागी,
तजत वमन इव नर बड़ भागी।

अर्थात् राम के सच्चे अनुरागी ने रमा (लक्ष्मी) के भोग-विलास को वैसे ही त्याग दिया जैसे विचारवान् मनुष्य वमन को त्याग देता है। वह व्यक्ति बहुत भाग्यवान् है।

टाटानगर के बार एसोसिएशन के प्रेसिडेन्ट ने मुझसे कहा—अयोध्या के राज्यसिंहासन पर राम का कानूनी अधिकार था। उनका परम्परागत अधिकार था, संवैधानिक अधिकार था उन सब अधिकारों के लिये राम का लड़ाई करना उचित था। मैं इस प्रकार के मुकदमे की निःशुल्क वकालत कर देता। मैंने कहा—अरे वकील! तुम राम के होकर वकालत करते। यदि राम लड़ाई करता तो राम की पूजा कौन करता? इस प्रकार की लड़ाई करने वाले बहुत से राजपुत्र जन्मे हैं, मरे हैं। कौन उसका हिसाब रखते हैं! वे सब इतिहास के कूड़ेदान में फेंक दिये गये। जिन्होंने स्वार्थ को व्यर्थ जाना है, जिन्होंने तपस्या के द्वारा चित्त को विजित किया, वे ही प्रातःस्मरणीय हैं। राम का महत्त्व ही इस बात के लिये है कि उन्होंने अपने लिये कुछ नहीं किया, जो किया विश्व कल्याण के लिये किया।

अब देखें राजगृह में कलह उपस्थित हुआ पर गृहधर्म में राम, भरत आदि सब स्थिर रहे। इसी प्रकार विदेशी आक्रमण के समय भी हमारी परिवार व्यवस्था स्थिर रही। हमारी वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, ग्राम पंचायत व शिक्षा व्यवस्था स्थिर रही। भले हमारे राज्य कुछ काल या दीर्घ काल के लिये गुलाम बने पर हमारा राष्ट्र जीवन अखण्ड बना रहा और हम फिर से उठ खड़े हुए। आक्रान्ताओं का दमन कर फिर से अपना राज्य पा लिया। जबकि विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यतायें विदेशी आक्रमण पर सदा के लिये समाप्त हो गई।

कैकेयी के मन में किंचित् मात्र प्रायश्चित्त का भाव आया तो वह श्री रामचन्द्र की त्याग-तपस्या को देखकर ही। राम ने अपने इस तपोमय व्यवहार के द्वारा मां की उस मनोवेदना को दूर किया था। इसलिये देखा जाता है अयोध्यावासी जब राम को वापस लाने चित्रकूट गये थे तब कैकेयी साथ में थी। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने साकेत नामक ग्रंथ में लिखा है—

युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी
'रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।'
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा-
धिक्कार! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।

कैकेयी स्वयं बोलती है—जितने दिन यह कहानी चलती रहेगी उतने दिन मेरा यह जीव सकल लोक की धिक्कार सुनता रहे—

थूके मुझ पर त्रैलोक्य भलेहि थूके, जो कोई जो कह सके, कहें, क्यों चूकें।
छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे, हे राम दुहाई करूं और क्या तुझ से?

यदि त्रिलोक की जनता मेरे मुख पर थूके तो थूके, कोई यदि कटु कथा कहता है तो कहे, किन्तु हे राम! दुहाई तुम्हारी, मैं जो भरत की मां, इस मातृपद को, जिसे मुझ से कोई छीन न लेवे। कोई इस तरह न सोचे, भरत जैसे रामभक्त की मां अभागी कैकेयी कैसे हो सकती है।

राम ने कहा है—

'सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,
जिस जननी नें है जना भरत सा भाई',

पागल सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई—

'सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।'

भगवान् श्रीराम ने निज तपस्या सुलभ आचरण तथा वचन के द्वारा कैकेयी के मन को जीता था। कैकेयी हार गयी राम की तपस्या के आगे। यही कैकेयी जिसने एक दिन राम को वनवास भेजा था, किन्तु राम की तपस्या ने आज उसके मन के कांटे को उखाड़ फेंका था। आज इसलिये वह राम के पास उत्सर्गित होना चाहती है।

एक गुरुद्वारे में कुछ अकाली लोगों ने स्वयं को हिन्दू से अलग मानकर प्राचीन परम्परा की निंदा करनी प्रारंभ की थी। उन्होंने कहा था—देखोजी, क्या हुआ। दशरथ क्या बाप थे? बेटा वनवास गया तो उसका प्राण निकल गया। देखो, गुरु गोविन्द सिंह के चार बेटे थे दो दीवारों में चुने गये तो दो कत्ल। किन्तु उन्होंने प्राण नहीं छोड़ा बल्कि सब सहन किया तो यह क्या बात हो गयी कि दशरथ बेटे के शोक में मर गये?

मैंने उनको कहा—देखो भैयागण। इस प्रकार निंदा करके तत्त्व को तो समझा नहीं पायेंगे? इस खालसा पंथ के संस्थापक कौन? गुरु गोविन्द सिंहजी ने तो रामायण से प्रभावित होकर व्रजभाषा में गोविन्द रामायण लिखी है—

रामकथा जुग जुग अटल, सब कोउ भाखत नेत।

यह है गुरु गोविन्दसिंह की वाणी, गुरु गोविन्दसिंहजी दशरथ राजा के प्राणत्याग के प्रसंग में बोलते हैं—

प्राण गवन नृपवर करयो, प्रण नहि त्यागा जाय।
देने कहे जो वर हुते, तन युत दिये चुकाय॥

जो दो वर देने का वचन दिया था वह तो राजा दशरथ ने दिया ही, साथ ही साथ सूद स्वरूप अपने प्राण भी दे दिये। जो इस त्याग की महानता को समझते नहीं वे ही गोडामी के रोग से ग्रस्त होकर उलटी-पुलटी कथा कहते हैं, व्यर्थ की बकवास करते हैं। दशरथ का प्राणत्याग साधारण त्याग नहीं है—

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयऊ सुरधाम।। मानस 2/155/1

रामायण के प्रत्येक चरित्र में जो महानता है वह अमूल्य है। हमारी सांस्कृतिक परम्परा को जीवित रखे हुए है। यदि हम लोग रामायण का नित्य पाठ करें व उसके ऊपर मनन करें तब घर स्वर्ग में परिणत होगा। संघर्ष नहीं होगा। क्लेश कंटक आयेगा नहीं। घर-घर में राम-सीता का चरित्र दृष्टिगोचर होगा। इसलिये कहता हूँ रामायण का पारिवारिक मूल्यांकन करके उसको स्वीकार करें।

संसार के वाङ्मय में नैतिक जीवनमूल्यों को जीवन की प्रत्यक्ष परिस्थितियों में उतारकर इतनी सुंदर रीति से अन्यत्र कहीं प्रस्तुत नहीं किया गया जितना की रामायण के कथानक में। नैतिकता कर्तव्य की आंतरिक पुकार है।

फ्रांस के इतिहासकार मिचलेट (Michelet) ने रामायण के मूल्यांकन में लिखा है—जिस किसी ने भी महान् कार्य किया है या महान् आकांक्षाएं संजोयी उसे रामायण रूपी अमृत की प्याली से जीवन और यौवन का एक लंबा घूंट पीने दो। पश्चिम में सभी कुछ संकीर्ण है। यूनान छोटा और तंग है और वहाँ मेरा दम घुटता है। जुडिया शुष्क है तथा मैं वहाँ हांफ जाता हूँ। मुझे महान् एशिया और गहन प्राची की ओर देखने दो। वहाँ मिलता है मेरे मन का महाकाव्य रामायण—हिन्दमहासागर जैसा विस्तृत, सूर्य से ज्योतित एवं धन्य, एक दिव्य संगीत का ग्रंथ जिसमें कहीं भी लयभंग नहीं है। वहाँ एक अपार शांति का राज्य है, कर्तव्यों के संघर्ष के बीच भी अपार माधुर्य है, अनंत सौहार्द है जो सब जीवों पर प्रेम-दया, क्षमा का अपार और अथाह सागर लहरा देता है।

यदि इंग्लैण्ड को अपनी महानता की रक्षा करनी है तो भारतीय कुटुम्ब व्यवस्था को स्वीकार करना पड़ेगा। ये कुटुम्ब ऐसी चीज है, जिसके अन्दर अनेक लोग अनेक प्रकार की पूजा पद्धतियों, स्वभाव एवं आदतों के साथ एक साथ मिलकर रह सकते हैं। इसलिये ब्रिटेन के लिये भारत से परिवार व्यवस्था को लेना पड़ेगा यदि ब्रिटेन को ब्रिटेन रहना है तो।

—इंग्लैण्ड की प्रधानमंत्री मिसेस थेचर

रामायण : साम्प्रदायिक या धार्मिक

मई, 1993 ई. की एक सायं हमारे निवास स्थान पर हमारे एक मुस्लिम ग्राहक मुम्बई से पधारे। गृह आंगन में तम्बू, कनातें, शामियाने तथा प्रकाश प्रबंधों को देखकर गिला-शिकवा के स्वर में बोले कि मित्तलजी क्या जश्न (उत्सव) मनाया जा रहा है, हमें आप ने निमन्त्रित ही नहीं किया? तो मैंने बताया कि शेख साहब रामायण की कथा चल रही है। इससे उनकी तसल्ली हुई परन्तु उन्होंने फौरन पूछा कि मित्तलजी रामायण में क्या है? मैंने कहा कि शेख साहब आप स्नानादि से निवृत्त होकर आराम से दत्त-चित्त हो कर मेरे पास बैठें—मैं आपको सारी रामायण तो नहीं सुना सकता परन्तु एक-दो प्रसंग अवश्य सुना दूंगा। उसी अनुसार वह स्नान इत्यादि करके नाश्ता लेकर मेरे पास आ बैठे और रामायण का प्रसंग सुनाने का आग्रह किया—तो मैंने श्री रामजी के राज्याभिषेक का निर्णय तथा वनवास का प्रसंग लेकर बताना आरम्भ किया कि रघुकुल तथा भारत की परम्परा थी कि राजा का ज्येष्ठ पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी होता था। आगे मैंने बताया कि रघुकुल में एक महान् प्रतापी राजा दशरथ हुए हैं—उनकी तीन रानियां थीं—कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी। किसी युद्ध में कैकेयी ने महाराजा के प्राण बचाने के लिए अपने जीवन पर बड़ा भारी खतरा मोल लेकर ऐसा पराक्रम किया जिससे महाराजा का जीवन ही नहीं बचा अपितु वे विजयी भी हुए और उन्होंने प्रसन्न होकर रानी को कोई भी दो वर मांगने को कहा—रानी ने कहा कि उसे तो महाराजा का जीवन बचने तथा विजयी होने की ही अत्यन्त प्रसन्नता है और वरदान लेकर क्या करेगी। राजा के जोर देने पर भी जब रानी ने कुछ भी मांगने से इनकार कर दिया तो राजा ने कहा कि अच्छा, मैं वचन देता हूँ कि जीवन भर में तू जब चाहे दो वरदान मांग लेना मैं पूरे करूंगा।

इस घटना के काफी साल पश्चात् तीनों रानियों के सन्तान हुई। कौशल्या से श्री रामजी प्रकटे, सुमित्रा से श्री लक्ष्मण और श्री शत्रुघ्न तथा कैकेयी से श्री भरतजी। जब यह बेटे जवान हो गए तो महाराज श्री दशरथजी ने अपनी राज्य सभा में प्रस्ताव रखा कि वह अब राज्य से निवृत्त होना चाहते हैं तथा परम्परा अनुसार राज्य अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को देना चाहते हैं—तो सारी राज सभा ने इस प्रस्ताव की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए इस प्रस्ताव का समर्थन किया।

राजगुरु वशिष्ठजी ने कहा कि ज्योतिष के अनुसार अगले ही दिन राज्याभिषेक हो जाना चाहिए नहीं तो फिर 14 साल की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। कठिनाई यह आ गई कि श्री भरतजी अपने भाई शत्रुघ्न को साथ लेकर ननिहाल गये हुए थे। तो भी 14 साल प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। इस कारण सारी राज्यसभा ने बल दिया कि भरतजी तथा शत्रुघ्नजी की प्रतीक्षा किये बिना ही अगले ही दिन रामजी का राज्याभिषेक हो जाना चाहिए। अतः सर्वसम्मति से अगले ही दिन के लिए रामजी के राज्याभिषेक का निश्चय हो गया। सारी अयोध्या में प्रजा ने आनन्दोत्सव आरम्भ कर दिये। राम का राज्याभिषेक होगा, कितने आनन्द की बात है। घर-घर बधाइयां दी जाने लगीं। परन्तु इस अवसर पर एक दासी के बहकावे में आकर रानी कैकेयी ने रोष प्रकट किया तथा श्री दशरथ को याद दिलाया कि उन्होंने दो वर दे रखे हैं और वह अब दो वर मांगना चाहती है। इस पर राजा दशरथ ने कहा कि वह वर मांगे—रानी ने वचन मांगा कि दशरथजी मांगे हुए वरदान अवश्य पूर्ण करेंगे, जिस पर श्री दशरथजी ने वचन दिया कि रानी जो भी वर मांगेगी वह पूरा करेंगे। इस पर रानी ने मांगा कि राम के स्थान पर भरत को राज्य दिया जाए और रामचन्द्रजी को 14 साल का वनवास दिया जाए। यह सुनते ही दशरथजी व्याकुल हो गए और रानी को समझाने लगे कि वह ऐसा वर न मांगे, परन्तु वह नहीं मानी। दशरथजी मूर्च्छित हो गए। माता कैकेयी ने रामजी को बुलाकर सारी बात बताई जिस पर श्री रामचन्द्रजी फौरन वन जाने के लिए तैयार हो गए और उन्होंने माता कैकेयी को कहा कि इतनी सी बात तो आप मुझे सीधी ही कह देतीं तो मैं फौरन वनवास ग्रहण कर लेता, आप ने पिताजी को अनावश्यक कष्ट दिया—जब मैं यहाँ तक प्रसंग सुना चुका तो शेख साहब बोले कि क्या राम अपने हकूक (अधिकारों) के लिए लड़े नहीं वैसे ही मान गए। इतने बड़े देश का राज कोई इन्सान ऐसे ही छोड़ दे यह कैसे मुमकिन (सम्भव) हो सकता है—आप एक असम्भव तथा काल्पनिक बात सुना रहे हैं। तो मैंने उत्तर में कहा कि यह हकीकत (वास्तविकता) है या तुखैयल (काल्पनिक) इस प्रश्न का उत्तर मैं बाद में दूंगा वह पहले सारा प्रसंग सुन लें और मैंने बताया कि श्री रामचन्द्रजी वन की ओर जाने को तैयार हो गए, उनकी धर्मपत्नी सीताजी तथा अनुज (छोटे भाई) लक्ष्मणजी भी साथ जाने को तैयार हो गए तथा तीनों वनवास के लिए चले गए। पिता के रोकने पर भी रामचन्द्रजी नहीं रुके। उन्होंने कहा कि पिताश्री के धर्म का पालन करने हेतु मैं वन में जाऊँगा ही। अतः वह तीनों, वन को चले गए। इसी बिछोह के दुःख में कि उनके वचन के कारण राम, लक्ष्मण तथा सीताजी को वन को जाना पड़ा। श्री दशरथजी ने प्राण त्याग दिए। श्री भरतजी को ननिहाल से बुलाना पड़ा। मैंने आगे बताया कि अब

अयोध्या पहुँचने पर श्री भरतजी को इस सारे घटनाचक्र का पता चला तो वह बहुत दुःखी हुए और इस सारे कांड के लिए माता कैकेयी को बहुत फटकारा। पिता का अन्तिम संस्कार करने के बाद राज सभा बुलाई, सभी मंत्रियों ने तथा राज सभा के सदस्यों ने भी भरतजी को राजा बनने तथा राज्य सम्भालने की प्रार्थना की, परन्तु भरतजी ने प्रस्ताव रखा कि राज्य तो ज्येष्ठ पुत्र का है। इसलिए वह राजा नहीं बनेंगे तथा वन में जाकर श्रीराम को मना कर वापस लाएँगे तथा राज्याभिषेक श्रीराम का ही होगा—मंत्रिगण तथा राजगुरु को साथ चलने को निमन्त्रित किया।

यहाँ पर फिर शेख साहिब बोले कि भरतजी ने भी राज्य लेने से इनकार कर दिया और मिला हुआ राज्य छोड़कर पुनः राज्य के दूसरे प्रतिद्वन्द्वी रामजी को जंगल से वापस लाने की बात की हो यह मेरी समझ में नहीं आता कि क्या ऐसा हो सकता है। मुझे तो इस पर विश्वास नहीं। हमारे तो हज़रत मुहम्मद साहिब के सगे नवासों हसन तथा हुसैन को हजरत मुहम्मद साहिब के ही पैरोकार (अनुयायी) यज़ीद ने जंगे करबला में पानी से भी प्यासा तड़पाया। हुसैन को उसी की बीवी ने यज़ीद से मिलकर जहर दे कर मार डाला। हुसैन को यज़ीद ने प्यासा ही नहीं तड़पाया, बाद में कत्ल भी करवा दिया। यह सब राज्य के लिए हुआ। औरंगजेब ने अपने ही भाइयों को मरवा दिया, पिता को जेल में डाल दिया। राज्य का मोह कौन छोड़ सकता है? आप कहते हैं कि पहले राम ने राज्य छोड़ दिया फिर भरत ने भी झगड़ा नहीं किया, उलटे राम को जंगल से वापस लेने चल पड़े 'मुझे तो इस पर विश्वास नहीं आता'। इस पर मैंने फिर दोहराया कि इस शंका का निवारण मैं प्रसंग की समाप्ति पर अवश्य करूंगा। आगे मैंने सुनाया कि वन में भरतजी मंत्रिगण, राजसभा सदस्य तथा तीनों माताएं, राजा जनक सहित पधारे तथा श्रीराम से अयोध्या वापस जाकर राज्य सम्भालने की प्रार्थना की—माता कैकेयी ने निवेदन किया कि मैं अपने वचन से आपको मुक्त करती हूँ। आप अयोध्या वापस चलो और अपना राज्य सम्भालो, परंतु श्रीराम ने कहा कि यदि पिताजी जीवित होते तो विचार किया जा सकता था, अब पिताश्री द्वारा दिये गए वचनों को कोई वापस नहीं ले सकता। अतः पिताश्री के वचनधर्म की पूर्ति इसी में है कि मैं 14 वर्ष वनों में रहूँ। इस पर भरतजी ने कहा कि अच्छा ठीक है अपनी चरण पादुकाएं दे दें मैं अयोध्या ले जाऊँगा—तथा उनको अयोध्या ले जाकर स्वयं सिंहासनारूढ़ न होकर इन्हें ही सिंहासन पर सुशोभित करूँगा। ऐसा ही हुआ। सिंहासन पर श्रीराम की खड़ाऊं (चरण पादुकाएँ) विराजित कर दी गईं तथा स्वयं वनवासियों जैसी ही पर्णकुटि बनाकर उसमें 14 साल रहे—वहीं से राज्य कार्य चलाया। इस महान् देश पर 14 वर्ष श्रीराम की खड़ाऊं सिंहासन पर विराजमान रहीं तथा ज्यों ही पन्द्रहवें

साल के प्रथम दिन श्रीराम अयोध्या पधारे उनका राज्याभिषेक हुआ। सभी ने राम तथा भरत, दोनों की जय-जयकार की, बाजे बजे, देवताओं ने भी पुष्प वर्षा की।

इस पर फिर शेख साहब ने अपनी शँका का निराकरण चाहा तो मैंने कहा कि आप की शंका का निराकरण तो मैं अवश्य ही बाद में करूँगा पहले बताइए कि आप अपने परिवार का मॉडल राम तथा भरत जैसा चाहते हो या यज़ीद तथा हसन-हुसैन जैसा, या फिर औरंगजेब तथा शाहजहां वाला चाहते हो। कुछ देर सोचने के पश्चात् बोले कि इस दुनिया में कौन नहीं चाहेगा कि उसका परिवार श्रीराम तथा भरत जैसा हो। मैंने कहा कि बहुत अच्छा! तब आप के बच्चों पर राम और भरत जैसे संस्कार पड़ें, इसके लिए अपने घरों में बार-बार रामायण की कथा करवाया करो। रामायण कोई साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं। यह तो हमें यह बताता है कि जीवन कैसे जीना चाहिए। भाई का भाई से क्या सम्बन्ध हो, पिता का पुत्र से, राजा का प्रजा से, सेवक का स्वामी से, मित्र का मित्र से क्या सम्बन्ध हो और शत्रु से, शत्रु की पत्नी से तथा शरणागत से क्या सलूक किया जाए। रामायण का किसी भी मज़हब या सम्प्रदाय से न कोई सम्बन्ध है न टकराव। यह तो भारतीयों का धर्मग्रन्थ है—जीवन जीने की पद्धति सिखाता है। इसे पढ़ो, सुनो तथा परिवार में इसकी कथा करवाया करो, आपके बच्चों पर इसके अच्छे संस्कार पड़ेंगे। और आप के परिवार को राम और भरत के मॉडल प्राप्त हो सकें इसकी सम्भावनाएँ बढ़ेंगी। हसन और हुसैन केवल आपके हम मज़हब थे, आप के पूर्वज नहीं थे—आप नहीं चाहते कि आप के घर का वह मॉडल बने, तो घरों में उनका वर्णन बंद करो। आप परिवार को जो बनाना चाहते हो उसके अनुरूप कथा तथा उस कथा के पात्रों में श्रद्धा पैदा करो। जो नहीं चाहते उसे अपना कहना तथा उसका जिक्र बन्द करो।

तब मैंने आगे कहा कि अब मैं आप की शंका का समाधान करता हूँ। हम तो राम कथा को वास्तविक ही मानते हैं और इसे भारत का गौरवमय इतिहास मानते हैं। श्रीराम को भारत का गौरव मानते हैं। परन्तु हमें देखना यह है कि जब हम इस गाथा से अपने परिवार में श्री रामजी तथा भरतजी जैसे संस्कार प्राप्त करना चाहते हैं तो क्या वे इसे काल्पनिक मानकर प्राप्त होंगे या वास्तविक मान कर होंगे। काल्पनिक मानने से वे संस्कार कमजोर रह जाएँगे। इसलिए यदि यह काल्पनिक भी हो तो भी इसे वास्तविक ही मान लेना चाहिए। इसी में हमारा हित है और इस कथा को बार-बार अपने घरों में सुनना चाहिए। बार-बार अच्छा संस्कार मिलने से मनुष्य देवत्व को प्राप्त होता है तथा बुरा सुनने से मनुष्य राक्षस बन सकता है।

यदि यह काल्पनिक है तो जिस ऋषि ने पारिवारिक जीवन की इतनी महान् कल्पना की परिवार की ही नहीं बल्कि सारे मनुष्य जीवन तथा समाज की ऐसी

महान् कल्पना की वह ऋषि कितना महान होगा। हमें गौरव है उस आदि-कवि पर जिसने इतनी महान् कल्पना की है। हम उस महान् ऋषि वाल्मीकि को भी शत-शत प्रणाम करते हैं और उन श्रीराम तथा श्रीभरत को प्रणाम करते हैं जिनकी कृति के अनुसार हम अपना तथा अपने परिवार का जीवन बनाना चाहते हैं। उस भारत माता को भी सहस्र-सहस्र प्रणाम करते हैं जिसने ऐसे महान् सपूतों को जन्म दिया, जिसने श्री वाल्मीकि जैसे महान् साहित्यकार तथा विश्व के प्रथम कवि को जन्म दिया।

इस पर शेख साहब बोले कि हम तो अब तक रामायण को एक मज़हबी किताब समझते रहे। हमें पता नहीं था कि यह जीवन, परिवार, समाज तथा मनुष्य मात्र के लिए इतना उपयोगी ग्रंथ है। इसे अब मैं (शेख साहब) जरूर पढ़ूँगा। मुम्बई से ही खरीद लूँगा।

हमारा अन्त में इतना कहना है कि रामायण ही नहीं हमारा बहुत-सा साहित्य धार्मिक है, साम्प्रदायिक नहीं। परन्तु धर्म का गलत अर्थ मान लेने से हम उसका लाभ संसार-भर को नहीं दे पाए।

साभार : राष्ट्रीयता, लेखक : चतुर्भुज मित्तल

'मैं खुल्लमखुल्ला कबूल करता हूँ कि कुरान, बाइबिल तथा दुनिया के अन्यान्य धर्मों के प्रति मेरा आदर भाव होते हुए भी मेरे हृदय पर उनका इतना असर नहीं हुआ जितना की श्रीकृष्ण की गीता और तुलसीदास की रामायण का होता है।'

—महात्मा गांधी

× × ×

महर्षि वाल्मीकि विश्व के आदिकवि होने के नाते सारे विश्व वाङ्मय के पूज्यतम पूर्व पुरुष हैं। उन्होंने जो अमर रामचरित्र दिया उससे न केवल भारत का वरन् सारे विश्व का मुख समुज्ज्वल हुआ तथा साहित्य भण्डार समृद्ध हुआ।

—प्रो. ओबराय

गृह-वाटिका से रामायण काल तक

आधुनिक युग सामाजिक विषमताओं का युग है। परन्तु अभी तक पूर्वी देशों में, विशेषकर भारतवर्ष में आध्यात्मिकता का गुण पर्याप्त मात्रा में बचा हुआ है। यही गुण सभी विदेशियों को हमारी संस्कृति की ओर आकर्षित करता है। आज विश्व की सभी सामाजिक समस्याओं में केन्द्रीय स्थान परिवार से सम्बन्धित ही है तथा इसका निदान भी निकट भविष्य में होना चाहिए—यह सभी जानते हैं। भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता को ही परिवार में प्रथम स्थान प्राप्त है—पूरब यही कहता है, जबकि पश्चिम भौतिकवाद की कृत्रिम नींव पर खड़ा अपने पतन से बचने के लिए भारतवर्ष की आध्यात्मिकता के सम्मिश्रण की दिशा में प्रयत्नशील है।

भारतवर्ष में राम-राज्य से आदर्श क्या और कोई भी युग हो सकता है? क्या दशरथ के परिवार में आदर्शता का उच्चतम स्तर नहीं? इन्हीं प्रश्नों का उत्तर छिपा है—डॉ. हरवंशलाल ओबराय के एक प्रवचन में, जिसे उनकी छोटी बहिन—निर्मला कुमारी ने पंक्तिबद्ध किया था।

इस वृहज्जगत् में प्रत्येक घर एक छोटी-सी वाटिका है। उसमें माता-पिता रूपी माली प्रत्येक पुष्प को पल्लवित और पोषित करते हैं। फिर गृह एक सुन्दर उपवन स्वरूप हो जाता है। इसमें छोटे-बड़े, रंग-बिरंगे, सुगन्धित और बिना सुगन्ध के फूल सभी अपना-अपना व्यक्तित्व दिखाते हैं। माता-पिता उस सुन्दर उपवन को देख कर फूले नहीं समाते, क्योंकि यह सब उन्हीं की सद्भावनाओं का ही फल है।

वाह रे मानव! तुम अपने अहं पर विजय न पा सके। ज्यों-ज्यों परिवार के सदस्य किसी विशेष कार्य में समर्थ होते जाते हैं, उनके मन में अभिमान का अभ्युदय होने लगता है। धीरे-धीरे भाई-बहिनों में आपसी संघर्ष होने लगते हैं। फिर वे माता-पिता से भी मुकाबला करने लग जाते हैं। अन्त में वह उपवन असुन्दर-सा दीखने लगता है। यह असुन्दरता क्या है? **मान, बड़ाई, ईर्ष्या, दुर्लभ तजना ऐह!** (इसी मान, बड़ाई और ईर्ष्या से घर तबाह हो जाते हैं।)

क्यों न हम भगवान् राम के आदर्श जीवन से शिक्षा लें? जहाँ राम आदर्श पुत्र, दशरथ आदर्श पिता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—आदर्श भाई; कौशल्या और सुमित्रा आदर्श माता और वशिष्ठजी आदर्श गुरु हैं। उनके आदर्श आज भी भारत में गाए जाते हैं।

वह रामायण काल भी क्या था, जहाँ कि त्याग भरा जीवन था। जहाँ परिवार के प्रत्येक व्यक्ति ने एक-दूसरे के सुख के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर डाला। यदि राम ने माता-पिता की आज्ञा से चौदह वर्ष का वनवास लिया तो उनके साथ सीताजी और लक्ष्मणजी भी वनवासी हो गये। इधर उर्मिला घर में रह तपस्विनी जैसा जीवन व्यतीत करने लगी। उधर भरत, शत्रुघ्न, कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी माता भी राम के वियोग में अत्यन्त दुःखी होने लगी। राजा दशरथ का तो कहना ही क्या, जिन्होंने राम के वियोग में प्राण ही त्याग दिये।

राम राम रटते हुए ही दशरथ सुरधाम को सिधार गये।

राम दरबार के सभी व्यक्ति ब्रह्मज्ञानी थे। एक ब्रह्मज्ञानी में जो निःस्वार्थ त्याग, सच्चा प्यार और कष्ट सहन की क्षमता होती है, वह उन सभी में थी। आज भी उन सद्गुणों की आवश्यकता है। कितना सुन्दर था भगवान् राम का युग :

राम राज बैठें त्रैलोका, हरषित भए गये सब सोका।
बयरु न कर काहू सन कोई, राम प्रताप विषमता खोई।।

आज भी हमें उसी रामराज की स्थापना में प्रयत्नशील तथा तत्पर रहना चाहिए।

पाश्चात्य लोगों के व्यंग्य बाणों का उत्तर देती हुई भगिनी निवेदिता कहा करती थी, '....यदि यही रचना किसी यूरोपीय कलाकार ने की होती तो वे आप ही आप इसकी श्रेष्ठता का दावा करते....।'

तुलसी और रामायण की महिला पात्र

महात्मा गांधीजी से एक अमेरीकन प्रेस रिपोर्टर ने जिज्ञासा की कि आप तो कहते हैं कि मेरी सब प्रेरणा का मूल है तुलसी रामायण। तो आपके इस सत्याग्रह आंदोलन की प्रेरणा कहाँ से मिली आपको? गांधीजी ने कहा—तुलसी रामायण से। रिपोर्टर ने कहा—सारी तुलसी रामायण में कहीं सत्याग्रह का नाम भी नहीं है और आप कह रहे हैं तुलसी रामायण से। गांधीजी बार-बार कहते हैं 'सत्याग्रह' है, रिपोर्टर कहता है 'नहीं'। गांधीजी ने कहा—देखो, कहाँ सत्याग्रह छिपा हुआ है। भारत की एक अबला युवती नारी, एक असहाय सीता। भारत से सुदूर लंकाद्वीप में नरभक्षक राक्षसों के हाथ में परिवृता होकर है। रावण कहता है—'ऐ' सीता! आज संध्यापर्यन्त तुम यदि मेरी शय्यासंगिनी न हुई तो इस तलवार को देख, जिसको देखकर इन्द्र, कुबेर आदि भी भय पाते हैं। इसी तलवार से तेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर, ताजा मांस से सुबह का अल्पाहार होगा। सीता क्या उत्तर देती है—

हाथ में तृण लेकर सीता बोलती है—अरे निशाचर! बायें पैर की कनिष्ठा अंगुली से भी मैं तुझे स्पर्श नहीं कर सकती। इसके पश्चात् की कथा तुलसीदासजी कहते हैं—

स्याम सरोज दाम सम सुंदर।
प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।।

सो भुजकंठ कि तव असि घोरा।
सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।। 9/2 सुंदरकाण्ड

सीताजी कहती हैं—अरे दशकंधर! कान खोलकर सुन ले। मेरे स्वामी का श्याम कमल की माला के समान सुंदर तथा हस्तिशुण्ड की तरह बलशाली भुजद्वय के सामने तेरी यह तलवार कुछ भी नहीं। रे शठ, मेरी प्रतिज्ञा सुन। जिस तलवार को दिखाकर मुझे भय दिखाते हो तेरे कंधों पर उसी तलवार से मार पड़ेगी।

युद्ध करने के लिए कुंभकर्ण को जगाया। रावण से कुंभकर्ण ने जिज्ञासा की युद्ध के कारण के विषय में। रावण ने बहन शूर्पणखा के अपमान का बदला लेने के लिये सीताहरण की कथा से लेकर श्रीराम-लक्ष्मण और वानर सेना के साथ समुद्र

में सेतु निर्माण कर के लंका में चढ़ाई कर एवं युद्ध में समस्त राक्षस वीरों के एक-एक करके मरने की कहानी बताई। और भी कहा—इतने दिन हो गये किन्तु सीता किसी का वश नहीं मानती। कुंभकर्ण ने परामर्श दिया—तुम राम बनकर सीता के पास जाओ। रावण ने कहा—भाई! वह करके भी देख लिया। अपने स्वरूप में जब उसके पास जाता हूं तब उसके देह से इस प्रकार का भीषण तेज निःसृत होता है जिसको सहन करना कठिन है, पुनः जब राम का छद्म रूप धारण करके जाता हूँ तब मेरे मन में ऐसा सात्त्विक भाव उठता है जिससे सीता के प्रति मातृबुद्धि, मातृभाव जागृत होता है। परम वैराग्य जागता है। इसलिये इस प्रकार की चेष्टा मैं नहीं करता। यही है सतीत्व का बल।

एक है सती नारी, एक है पशु नारी। लोग तुलसीदासजी की समालोचना करके कहते हैं तुलसीदास ने शूद्र एवं नारियों की निंदा की है—

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी,
सकल ताड़ना के अधिकारी। मानस 5/58/3

यहाँ पर पशु नारी का अर्थ पाशविक चरित्र की नारी। पुनः पशु और नारी अलग-अलग पकड़ा जा सकता है। ढोल को ताड़न नहीं करने से आवाज नहीं होगी। गंवार लोग को ताड़न नहीं करने से कोई भी कार्य नहीं करवाया जा सकता। शूद्र माने यहाँ कोई जाति नहीं जिसकी स्वयं की कोई ज्ञान-बुद्धि, अक्ल नहीं उसको यहाँ शूद्र कहा गया है। ऐसे लोग की ताड़ना नहीं करने से उसके माथे में कुछ भी प्रवेश नहीं करता। पशु नारी को बिना ताड़न अनुशासन के रास्ते पर लाया नहीं जा सकता। पुनः जोतने वाले बैल को बिना ताड़न के उसे हल में नहीं जोता जा सकता है।

लोग यह कथा बिना समझे ही तुलसीदास पर दोषारोपण करते हैं कि स्त्री, शूद्र के प्रति अत्याचार किया है। मैंने कहा—तुम लोग जो तुलसीदास पर अत्याचार कर रहे हो उसका क्या होगा? आप लोग कहेंगे रामायण में राम चरित्र कहना ही कथा है। तब यह सब लिखने की क्या आवश्यकता थी। कहता हूँ, सुनो—महाकाव्य में लिखना होने से सब प्रकार के पात्रों पर ही लिखना होता है। नायक, खलनायक, नायिका-खलनायिका आदि। उनके मुख से जो कुछ कथन कहलवाया जाता है सब-कुछ में लेखक का अभिप्राय है यह मान लेना अनुचित है।

नाटक में खलनायक का चरित्र भी दिखाना पड़ता है। इसलिये उसके मुख से कभी-कभी विरुद्ध कथा भी कहनी पड़ती है। देखो, ढोल, गंवार आदि चौपाई कौन कह रहा है, या कौन कह सकता है? यह कथन न राम का है, न भरत का, न सीता का, न वशिष्ठ आदि का। ये बोल ही नहीं सकते। तब इस प्रकार क्यों कहा? देखो, यह चौपाई सागर की उक्ति है। सागर ने पथ अवरुद्ध करके रखा था।

राम उसके पास पथ के लिये अनुनय करते-करते थक गये, तब भी पथ नहीं मिला सागर से। तब शेष में राम ने सागर को सुखा देने का संकल्प किया, तभी भयभीत सागर ने राम के सामने आकर, हाथ जोड़कर यह कथन कहा था। इसलिये इस उक्ति के लिये तुलसीदासजी की समालोचना करने का कोई अर्थ नहीं है। क्योंकि समुद्र खलनायक की भूमिका में है। समुद्र देव होते हुए भी खलनायक की भूमिका में है। जैसे कर्ण (सूर्यपुत्र) कुन्ती का पुत्र होते हुए भी महाभारत में खलनायक की भूमिका में है। रावण ऋषि पुत्र होते हुए भी खलनायक की भूमिका में है।

प्रसंग चल रहा है सती नारी और पशु नारी। सती नारी सीता की चर्चा पहले कर चुके हैं। अब पशु नारी की कथा कहता हूं। रावण की बहिन शूर्पणखा। रावण ने उसको पंचवटी (दण्डकारण्य) में स्वच्छंद विचरण करने को भेजा। वहाँ दो नये नवयुवक आये, उनसे काम-लिप्सा पूर्ण कर सकती है और चाहे तो नर मांस का स्वाद ले सकती है। शूर्पणखा दौड़कर दण्डकारण्य पहुँची।

प्रथम में तो दिव्य सुंदर षोडशी का रूप सजकर राम के पास गयी। राम ने कहा—हम लोग वनवासी व्रत-नियम के अंतर्गत जीवन यापन करते हैं। इसलिए हमारे ऊपर से दृष्टि हटा लो। परन्तु पशु-नारी क्या यह सब सुन सकती है। लगाम कसने पर वह खाने को दौड़ पड़ी। प्रथम में लक्ष्मण ने उसको दूर करने का प्रयास किया। जब देखा किसी तरह वह मानने को तैयार नहीं है। तब हारकर लक्ष्मण ने थोड़ी ताड़ना की। उसके नाक-कान काटकर उसको विदा कर दिया।

प्रश्न है कि नाक-कान क्यों काटे? क्योंकि नाक है सम्मान का स्थान। नाक ऊँचा माने सम्मान से रहना। 'नाक काटना' माने सम्मान की हानि होती है। 'नासिका कुम्चन' माने घृणा प्रदर्शन। लक्ष्मण ने उसका नाक काट लिया क्योंकि पशु नारी सम्मान की पात्र नहीं है। कान क्यों काटा? कान सत्कथा सुनने के लिये है जो सत्कथा नहीं सुनता है उसको थोड़ा-सा काट देने से भविष्य में उसको याद रहेगा। यह पशु नारी के लक्षण हैं। यह ताड़न की अधिकारी है।

सती नारी जगत् पूज्या जगत्जननी सीता की चरणधूलि माथे पर लगाकर तुलसीदासजी कहते हैं—

जनकसुता जग जननि जानकी, अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।
ताके जुग पद कमल मनावउँ, जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ।।

मानस 1/17/4

इस प्रकार सती नारी पूजा के योग्य और पशु-नारी ताड़न योग्य। जिसकी जो रुचि, जिसका जो अधिकार, तुम लोग चुन लो। तुलसीदास ने किसी के प्रति अन्याय नहीं किया। उन्होंने उभय चरित्र को आमने-सामने रखकर स्पष्ट मात्र कर दिया।

प्रबुद्ध मनीषा की दृष्टि में मां सीता

भारत की रानी सीता है—भगिनी निवेदिता

भगिनी निवेदिता ने अपनी स्कूल की बच्चियों से पूछा—बोलो, भारतवर्ष की रानी कौन है? बच्चियों ने उत्तर दिया, सिस्टर! हम लोगों की रानी क्वीन विक्टोरिया है।

यह सुनकर उन्हें बहुत कष्ट हुआ कि भारत की बालिकाएं अपने इतिहास की श्रेष्ठ नारियों का नाम तक नहीं जानती? यह तो बहुत शोचनीय अधःपतन है। वे उत्तेजित होकर बोली, 'तुम लोग इतना ही नहीं जानती कि तुम्हारी रानी कौन है? उन्होंने स्वयं ही उत्तर दिया—'इंग्लैंड की अधीश्वरी क्वीन विक्टोरिया कदापि तुम लोगों की रानी नहीं हो सकती। हमारी रानी है—सीता।' निवेदिता 'सीता' शब्द पर जोर देते हुए बारम्बार उसी का उच्चारण करने लगी।

अपने कन्या विद्यालय में उन्होंने बालिकाओं को विशुद्ध भारतीयता के संस्कार दिये। माता सीता, द्रौपदी, माता कुन्ती, अहल्या बाई, महारानी लक्ष्मी बाई, चैन्नमा जैसी आदर्श महिलाओं के जीवन चरित्र उन कन्याओं को पढ़ाये जाते थे।

मां सीता—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा है—अरे भारत! तेरे पास दुनिया में और कोई चरित्र नहीं होता केवल एक सीता का चरित्र होता तो भी तू युग-युग के लिये पूजा जाता। सीता का ऐसा पावन चरित्र है पूरे भारत को, पूरी भारतीयता को पावन करने वाला, पूरी मानवता को पावन करने वाला चरित्र है। ऐसा महान् चरित्र सीता का। इसकी तुलना में दूसरा चरित्र दुनिया में किसी के पास नहीं है।

सीता के जीवन से राम का निर्माण—महात्मा गांधी

एक बार गांधीजी से प्रार्थना सभा के पश्चात् प्रश्नोत्तर काल में एक सुशिक्षित युवती ने बापू से पूछा, हम स्त्रियों को अपने जीवन में कौन-सा आदर्श रखना चाहिये?

तब बापू ने उत्तर दिया, 'तुम्हें ही नहीं, संसार की किसी भी स्त्री को सीता का आदर्श रखना चाहिए।

तुरन्त युवती ने फिर खड़े होकर पूछा, 'जिस प्रकार आप हमें 'सीता' का आदर्श रखने को कहते हैं, क्या पुरुष वर्ग को भी 'राम' का आदर्श रखने को कहते हैं?

बापू के 'नहीं' कहने पर, उस युवती ने पुनः पूछा, 'जब आप हमें कहते हैं तो पुरुषों को क्यों नहीं कहते?

मुझे विश्वास है कि सीता के जीवन में से राम का निर्माण होता है। राम को बनाने के लिये अलग प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। बापू ने सुनिश्चित, विशेष महत्त्वपूर्ण उत्तर दिया। चर्चा समाप्त हुई।

अब देखें सीता के जीवन से राम का निर्माण किस प्रकार होता है इसे देखें—वाल्मीकीय रामायण में राम द्वारा सीता त्याग करने के समय सीता के उद्‌गार लक्षणीय है—लक्ष्मण सीता को वन में छोड़कर उससे जब विदा लेने लगा तब सीता कहती है, 'लालाजी, राजा द्वारा मेरे त्याग का सन्देश आपने जैसे मुझे दिया वैसे ही रानी के नाते मेरा सन्देश भी आप उन्हें दीजिये। उन्हें कहिए कि प्रजानुरंजन के लिये आपने मेरा त्याग किया। मेरे सान्निध्य से आपके निष्कलंक जीवन को कोई कलंक लगे मुझे अच्छा नहीं लगता और इसलिए मेरा त्याग आपने किया। इसका मुझे दुःख नहीं। परन्तु एक बात ध्यान रखिये कि मेरे निष्कलंक जीवन का विश्वास होते हुए भी जिस प्रजा के अनुरंजन के लिये आपने मेरा त्याग किया है उस प्रजा के विषय में अपना कर्तव्य भली-भांति पूरा कीजिए। उसे न कर यदि आप मेरे लिए रोते बैठे तो वह मुझे अधिक दुःख होगा।

सीता को छोड़कर लक्ष्मण के वापस लौटने तक चार दिन राम राजसभा में नहीं गये थे। लक्ष्मण जब आया तब राम आंसू बहाते हुए बैठे थे। सीता का सन्देश सुनते ही राजसभा के लिए चलते हुए, लक्ष्मण का हाथ पकड़कर, राम ने कहा, 'लक्ष्मण, जो राजा अपना कर्तव्य भूलता है उसे गिरगिट की योनि प्राप्त होती है।

कर्तव्य तत्पर राम को दोष न देते हुए सीता ने उन्हें कर्तव्य की प्रेरणा देकर कार्यप्रवण किया। ऐसे लोकोत्तर सीता के जीवन में से राम का निर्माण होता है।

रामायण : राष्ट्रीय एकात्मता का महानतम काव्य

'रामायण भारत की आत्मा का महाकाव्य है', विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के इस कथन की व्याख्या निम्न प्रकार से हो सकती है—

1. रामायण समग्र भारत का प्रतिनिधि-ग्रन्थ है।

2. रामायण उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ को एकात्म सूत्र में बाँधने वाला ऐक्य मंत्र है।

3. रामायण भारतीय राष्ट्र की अंगीभूत अनेकानेक जातियों, उपजातियों को एक राष्ट्रात्मा में समन्वित करने वाला भावात्मक एकता का महानतम प्रयोग है।

4. रामायण में भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम जीवनमूल्य मुखर हो उठे हैं।

उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ का प्रथम ऐक्य मंत्र

रामायण काल से पूर्व विन्ध्याचल के नीचे के दक्षिणापथ में आर्यावर्त्त का विस्तार नहीं हुआ था। मनु भगवान् ने आर्यावर्त्त की सीमाएँ गिनाते हुए कहा है कि जिसके उत्तर में हिमालय व दक्षिण में विन्ध्याचल है, पूर्व एवं पश्चिम में समुद्र है वह आर्यावर्त्त है। पुराणों की गाथा के अनुसार विन्ध्याचल का ईर्ष्यावश हिमालय से ऊँचा उठने का प्रयास वस्तुतः विन्ध्यगिरि में वास करने वाली वनवासी जातियों का आर्यावर्त्त के विरुद्ध राक्षसप्रेरित विद्रोह था।

विन्ध्याचल तथा लंका के बीच का क्षेत्र अर्ध-सभ्य, वनवासी, वनचर जातियों का क्षेत्र (वानर देश, दण्डकवन, जनस्थान) आदि कहलाता था। इसी में कोल, किरात, भील, शबर, ऋक्ष, वानर, भल्लूक, गोंड, द्रविड़ आदि जातियाँ बसती थी।

लंका के राक्षस राजा रावण के दूत एवं नरभक्षी राक्षस सारे दक्षिण भारत में अपने आततायी प्रभाव का विस्तार कर फैले हुए थे। वे ऋषि-मुनियों को खा कर उनकी हड्डियों के पर्वताकार ढेर बना देते थे, वे बक्सर (वक्षसर) तक पहुँच कर विश्वामित्र का यज्ञ ध्वंस कर देते थे, वे भोले-भाले वनवासी वानरों को सताते थे। रावण ने किष्किंन्धा (वर्तमान अनागोंदी, निकट हम्पी, जिला बिल्लारी, तुंगभद्रा के तट पर, आन्ध्रप्रदेश) के वानर राजा बाली से मिल कर यह कूटनीतिक

षड्यन्त्र रचा था कि वे दोनों (राक्षस एवं वानर) मिल कर मानव देश आर्यावर्त्त की धज्जियाँ उड़ा देंगे।

विन्ध्याचल के इसी लाक्षणिक विद्रोह को अपनी संस्कृति-सुधा से शान्त करने हेतु दक्षिणापथ की यात्रा पर निकलने वाले प्रथम सांस्कृतिक दूत महर्षि अगस्त्य थे जिन्होंने हिमालय में अपनी तपस्या छोड़कर विन्ध्याचल की तलहटी में आये तथा उन्होंने वनवासी समाज को शिव अर्चना की दीक्षा दी। उन्होंने कहा रावण के कहने पर मत चलो। राम आने वाले हैं उनका स्वागत करो। आन्ध्र प्रदेश में भीलनी (शबरी) को बताया कि राम आ रहे हैं। इस प्रकार अपने अध्यात्म बल से विन्ध्याचल के (वनवासी जनगण को) शिष्य बनाया। उनके विरोध को शमित कर दिया। फिर अगस्त्य ने समुद्र से मार्ग मांगा। तीन चुल्लू में सागर को पी लिया। जैसे क्रोध को पीना यानी क्रोध से पार पाना। उसी तरह समुद्र को पीना यानी समुद्र को पार करना है। समुद्र पार कर मलय एवं इंडोनेशिया द्वीप समूह में भारतीय संस्कृति का प्रसार किया। अगस्त्य जी की हजारों मूर्तियां मलेशिया और इंडोनेशिया में है। अगस्त्यजी ने सर्वप्रथम वनवासी बंधुओं को भगवान राम के आगमन की सूचना दी थी। तथा वे पंचवटी (नासिक, महाराष्ट्र) में राम के दक्षिण आगमन की प्रतीक्षा करते रहे। उन्होंने भगवान राम के महान् अभियान की पूर्व-भूमिका निर्माण कर दी थी।

ऋषि अगस्त्य से पूर्व किसी का दक्षिण की ओर जाने का साहस नहीं हुआ। महर्षि अगस्त्य उस दिशा में जाकर उसे निर्भय करने का कार्य किया। उनके जाने के बाद तो ऋषियों के काफिले उस दिशा में निकल पड़े। प्राण देकर भी डटे रहे। भले ही राक्षस उन्हें मार कर हड्डियों का ढेर कर देते थे। यद्यपि नासिक के दण्डारण्यक में वनवासी जातियां वास करती थी पर यहां तक आततायी रावण का, राक्षसों का आततायी प्रभाव स्थापित हो चुका था। रावण ने अपने आततायी प्रभाव को विस्तार देने के लिए शूर्पणखा, मारीच, सुबाहु, खर दूषण, ताड़कादि को नियुक्त कर रखा था जो विश्वामित्र के यज्ञ का ध्वंस कर देते थे और ऋषियों को मार कर उनकी हड्डियों के पहाड़ खड़ा कर देते थे। फिर भी ऋषि उनसे विचलित नहीं थे। न उन्हें प्राणों की परवाह थी। उन पर अपनी श्रेष्ठ संस्कृति के प्रसार की धुन सवार थी। अतः इस कार्य में डटे रहे।

राक्षसों की बाधा दूर करने के लिए ही विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण का सहयोग मांगा। और उनको सारी विकट स्थिति से अवगत कराया। और वे उस विकट स्थिति से निपटने में समर्थ हों इसके लिए अनेक प्रकार की शस्त्र विद्या प्रदान की। उन्होंने भी ऋषियों को वचन दिया कि उचित समय राज्याभिषेक के पूर्व राक्षसों का दमन कर ऋषियों को अभय और आर्य संस्कृति के प्रसार में सहयोग

दूंगा। पर जब राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी तो वे दुःखी थे। क्योंकि राजा बनकर यह कार्य यथोचित रीति से नहीं किया जा सकता। अतः जब राजतिलक वनवास में परिवर्तित हो गया तो मन ही मन बड़े खुश थे। मां से कहते हैं पिता ने मुझे कानन राज्य दिया है। भरत को तो छोटा-सा अयोध्या का राज्य मिला है! मुझे तो बड़ा कानन राज्य मिला है।

अतः राम वनवास से प्रसन्न हैं। यद्यपि वनवास केवल राम को मिला है। सीता भी साथ जाने की अनुमति मांगती है, उसे स्वीकारते हैं क्योंकि वनवासी समाज को देश के साथ जोड़ना है, एकात्म करना है समरस करना है। उसमें आधा मातृवर्ग है जिसमें सीता सहायक सिद्ध होगी। अनुज लक्ष्मण भी साथ में जाने की अनुमति चाहते हैं? इसे भी स्वीकारते हैं क्योंकि यह भी इस कार्य में सहायक सिद्ध होगा।

उस अधूरे कार्य को पुनः आगे बढ़ाने और पूर्णता प्रदान करने के लिए वल्कल वस्त्र धारण कर प्रसन्न वदन इस कार्य के लिए आते हैं। भगवान राम ने अयोध्या के आस-पास के वनों में वास करने की अपेक्षा उत्तर से सुदूर दक्षिण में पंचवटी पहुंच कर नरभक्षी राक्षसों द्वारा खाये गये ऋषि-मुनियों की अस्थियों के समूह को जब देखा उनके नेत्र में अश्रु छा गये। और उन्होंने भुजा उठाकर धरती को निशाचर विहीन करने की प्रतिज्ञा की। तब अगस्त्य ने श्रीराम को आदित्य हृदय स्तोत्र दिया।

राक्षस आर्य ऋषियों एवं भोले-भाले वनवासी दोनों के सताने वाले थे, अतः दोनों के समान रूप से शत्रु थे। अतः भगवान राम की प्रतिज्ञा नर और वानर दोनों के लिए कल्याणकारी थी।

वस्तुतः, भगवान् राम जब अपने कंधों पर दुष्ट दलन हेतु धनुष-बाण एवं सरलमना, वनवासी जनों का हृदय जीतने हेतु असीम वात्सल्य लेकर, स्वयं वनवासी बन कर दण्डकवन के कण्टक पथ पर उतरे तब राष्ट्रीय एकता का महानतम चमत्कार प्रकट होने लगा। वीर सावरकर के शब्दों में, 'जिस दिन भगवान् राम का विजयरथ लंका विजयोपरान्त पुनः भारत भूमि की ओर लौटा, वह दिन (विजयादशमी का दिन) भारतीय राष्ट्र का वास्तविक जन्मदिवस था। उस दिन उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ, आसेतु हिमाचल एक ही भारत राष्ट्र में अंगीभूत हो गये थे।' अतः भगवान् राम ही हमारे प्रथम एवं अन्यतम राष्ट्र-निर्माता हैं।

आर्य-अनार्य, नर-वानर जातियों की भावात्मक एकता का महानतम प्रयोग

भगवान् राम जब वनवासी बन कर वनवासी-जनों की कुटिया पर प्रेमदान हेतु पहुँचे तो वह मानव इतिहास का अद्वितीय समन्वय प्रयोग था। भगवान् राम का गुह को प्रेमदान, केवट से प्रेम ठिठोली, हनुमान्, सुग्रीव, अंगद पर वात्सल्य,

बाली पर कृपा, जटायु पर करुणा, विभीषण को शरणागति, शबरी के जूठे बेरों की स्वीकृति आदि ऐसे अलौकिक आचार थे जो जन-हृदयों को स्नेह सूत्र से ऐसा बाँध देते हैं कि काल के थपेड़े भी उन्हें विलग नहीं कर सकते। रातू प्रखण्ड में एक नागपुरी गीत में वनवासी आज तक गाते हैं कि 'हमीं राम-लक्ष्मण के साथी हैं। हमीं उनकी सेना बने। हमीं ने रावण को मारा तथा हमीं सीता माता को लौटा कर लाए थे।'

रामजी के कूट कौशल से रावण का आतंक समाप्त

रावण का आतंक जो पूरे देश में छाया हुआ था उस आतंक को राम ने वनवास काल में खर-दूषण का वध करके बहुत कम कर दिया था। सबको लगने लगा रावण और उसकी सेना अजेय नहीं। इस प्रकार रावण का जो आतंक पूरे देश में व्याप्त था वह बहुत कम हो गया। अन्याय-अत्याचार कभी दीर्घ जीवी नहीं होते। खर-दूषण के वध से राम के पौरुष पराक्रम के प्रति लोग आश्वस्त हुए। न्याय, समता, सौहार्द का सूरज निकलने के प्रति सब की आशा बंधी।

राम ने रावण को खर-दूषण का वध करके चुनौती दी थी। रावण ने सीता का हरण करके उस चुनौती को स्वीकारा था।

अब बड़े युद्ध की तैयारी अनिवार्य थी। राम को सहायकों की जरूरत थी वे पराक्रमी बालि से मित्रता कर सकते थे। क्योंकि बालि रावण का मान-मर्दन कर चुका था। पर राजनीतिज्ञ की दृष्टि से यह मित्रता ठीक नहीं होती। बालि अपने बल और पराक्रम के अहंकार में किसी भी क्षण राम की अवमानना कर सकता था, युद्ध के समय रावण से सौदेबाजी कर राम के लिए संकट पैदा कर सकता था।

फिर बालि दुष्ट आततायी था। वह अपने निर्दोष भाई की बात भी सुनने को तैयार नहीं था। और बिना जाने, बिना कुछ खोज बिन किये ही सुग्रीव को अपराधी मानकर दण्डित किया। तथा उसकी पत्नी को अपने पास रखकर उसका उपभोग करने लगा।

छोटे भाई की पत्नी बेटी के तुल्य होती है अतः यह जघन्य अपराध था। इन सब आधारों पर ही राम ने सुग्रीव से मित्रता उपयुक्त समझी। बालि वध से दोहरा लाभ। बालि वध से रावण का जो आतंक जन-जन तक व्याप्त था वह समाप्त होगा। और जब सुग्रीव को राजा बनायेंगे तो वह उनके प्रति कृतज्ञ रहेगा और राम के शौर्य से अभिभूत भी रहेगा। ऐसे प्रतापी राम का मित्र होकर सुग्रीव अपने-आपको धन्य समझेगा। यह था राम का राजनीतिक चिंतन। इसके अनुरूप ही उन्होंने कार्य भी किया।

बालि वध के प्रसंग की आलोचना की जाती है। शिकार करना क्षत्रियों का शास्त्र सम्मत विधान है। बंदर को मृगशाखा कहा जाता है। इस दृष्टि से उनको मारना अनुचित नहीं कहा जा सकता।

फिर बालि आततायी दुष्ट है। उसको दण्डित करना क्षत्रियों का धर्म है। अतः बालि वध अनुचित नहीं कहा जा सकता।

शत्रु की प्रकृति या दुष्ट की प्रकृति के आधार पर दण्ड का विधान करना पड़ता है। हम सब जानते हैं कि उसको वर प्राप्त था कि उसको सम्मुख युद्ध में कोई पराजित नहीं कर सकता था। ऐसी स्थिति में दुष्ट की दुष्टता को शमित न करके उसको बढ़ने देना क्या धर्म होता? दुष्ट और शत्रु का दमन साम दाम, दण्ड भेद के द्वारा आवश्यक है। इसलिए श्रीराम लक्ष्मण से मेघनाथ का यज्ञ ध्वंस कराते हैं।

जो स्वयं अधर्म का आसरा लेता है उस पर धर्म नीति नहीं 'शठे शाठ्ये समाचरेत' की नीति लागू होती है। यह उपनिषद् कथन है। इस आधार पर भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्ण को भी अधर्म द्वारा मरवाया। जब कर्ण धर्म की दुहाई देने लगा तो भगवान श्रीकृष्ण ने पूछा, अभिमन्यु के वध के समय तेरा धर्म कहां गया था? द्रौपदी के चीर हरण के समय तेरा धर्म कहां गया था?

बालि तो इन्द्र का पुत्र था जो राम के सहयोग के लिए आया था। त्रिभुवन में रावण का आतंक व्याप्त था। उस आतंक को तोड़ने के लिए तथा अपने पक्ष की सेना के बन्दर-भालुओं के मनोबल को बढ़ाने के लिए बालि वध आवश्यक हो गया। बालि को इसी रूप में राम का सहयोग करना था। कभी-कभार शत्रु पक्ष पर विजय पाने के लिए अपने पक्ष के सैनिक की बलि भी लेनी पड़ती है। सीढ़ी बन जाए, पुल बन पाए आदि कारणों से।

बालि जब घायल हो जाता है रावण के आतंक पर एक करारी चोट लग जाती है। सब को लगने लगा रावण अजेय नहीं है। राम उसके वध में समर्थ हैं। यह कार्य हो जाने के पश्चात् बालि से कहा, तुम चाहो तो मैं तुम्हें स्वस्थ कर जीवन दान दे सकता हूं। तब उसे लगा मैं जितना कार्य करने आया था, जितना कार्य मेरे से अपेक्षित था हो गया है। अतः अब मेरा कार्य पूर्ण हो गया ऐसी उसे स्मृति आ गयी, अनुभूति हुई। फिर राम के सम्मुख मर कर जो सद्गति प्राप्त होगी वह फिर कहां सुलभ होगी! अतः मृत्यु को ही श्रेयकर माना।

बालि के वध द्वारा रावण के आतंक को लंका तक सीमित कर दिया। हनुमान और अंगद को भेजकर रावण के आतंक को लंका में भी समाप्त कर दिया।

फिर रावण जब विलास भवन में मग्न है उस रावण का अभिमान तोड़ने के लिए राम बाण का संधान करते हैं। यह बाण रावण के मुकुट और मन्दोदरी के कर्ण

आभूषण को काट कर जमीन पर गिरा देता है। इससे रावण की सभा में भय व्याप्त हो जाता है।

इस प्रकार राम पहले पहल रावण के आतंक को निर्मूल कर देते हैं।

रावण से युद्ध के पूर्व राम ने लंका का रामकरण करने का प्रयास किया। इसके अभाव में रावण पर विजय पाना कठिन था। राम के सहयोगी बने विभीषण, मंदोदरी, मेघनाथ की पत्नी सुलोचना, राजवैद्य सुषेण, कुंभकर्ण आदि का। अगर सीता को त्रिजटा, मंदोदरी, सुलोचना का सहयोग नहीं मिलता तो सीता का जीवित रहना कठिन हो जाता।

रामगृह एवं रामगढ़

रांची (हजारीबाग) जिले की सीमा पर स्थित रामगढ़ राम की सेना का गढ़ था। सरगुजा जिले में, अम्बिकापुर से 32 मील दूर 3202 फुट ऊँची पहाड़ी पर रामगढ़ नामक स्थान राम की वनवास यात्रा का रामगृह नामक प्राचीन तीर्थ है। रामायण में राम की वनवास यात्रा में नर्मदा, ताप्ती, रेणु आदि विशाल नदियों को पार करने का उल्लेख नहीं है। इससे स्पष्ट है कि भगवान् राम गंगा पार करने के पश्चात् चित्रकूट से विन्ध्याचल, झारखण्ड होते हुए दण्डकवन में प्रविष्ट हुए होंगे।

रामरेखा धाम

राँची जिले के सिमडेगा अनुमण्डल में ओडिशा एवं मध्यप्रदेश (जशपुर) को स्पर्श करता हुआ ऊँची पहाड़ी पर स्थित रामरेखा धाम तीर्थ राम-लक्ष्मण-सीता के चरण चिह्नों से सुशोभित है। वनवासी जनों ने भगवान् की स्तुति में गाया होगा।

धन्य भूमि वन पंथ पहारा।
जहँ-जहँ नाथ पाँव तुम धारा।।

धन्य नदी अरु निर्झर ठाँउं।
जहँ-जहँ नाथ दीन तुम पाँऊ।।

हम सब धन्य सहित परिवारा।
दीख नयन भरि दरस तुम्हारा।।

भक्तराज हनुमान् का जन्मस्थान आंजन

राँची जिले के गुमला अनुमण्डल में टोटो के निकट आंजन नामक ग्राम में आञ्जनेय श्रीहनुमान् का जन्म हुआ था। ऐसी मान्यता सारे छोटानागपुर में प्रचलित है। वहाँ आज भी अंजनी माता की मूर्ति है जो अपनी गोदी में बाल हनुमान् को लिए है।

वानर गोत्र

छोटानागपुर के उराँव जनों में लगभग 12 गोत्र ऐसे हैं जिनका अर्थ ही वानर है यथा—हनुमान, बजरंग, गड़ी, रेछी, बरई, बसोर, मैना, तिग्गा, बानरा, खंगार, पवन और वंशज।

उराँव : राम की वानर सेना

श्री शरतचन्द्र राय की प्रसिद्ध पुस्तक 'ओराँवज आफ छोटानागपुर' की भूमिका में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, इंग्लैण्ड के नृतत्व शास्त्र के अध्यक्ष डॉ. ए. सी. हेडन ने लिखा है, 'हमारे ग्रन्थ लेखक का विश्वास है कि उराँव वनवासी आर्यवीर रामचन्द्र की उस वानर सेना के अंग थे, जिसने उन्हें लंका के अनार्य राजा रावण को पराजित करने में सहायता की थी।' यह भी रोचक तथ्य है कि वनवासी बंधु अभी भी अपने पारम्परिक वेश में कुर्ते के पीछे कपड़े की एक लम्बी तुलुंग (पूंछ) लटकाए रहते हैं।

बिरसा भगवान् के प्रेरक : भगवान् राम

शताब्दी-पूजित बिरसा भगवान् को भगवान् राम के जीवन से महान् प्रेरणा मिली थी। बचपन में वे अपने चाचा से तथा अध्यापक आनन्द पंहार से रामायण पढ़ते थे। जी. ई. एल. मिशन स्कूल, चाईबासा में जब पादरियों ने बिरसा का धर्म लूटने का षड्यन्त्र किया तो बिरसा दौड़ कर राँची आया तथा चुटिया के राम-मन्दिर में भगवान् राम की मूर्ति से प्रार्थना कर मूर्ति का धनुष-बाण उतारते हुए उसने कहा—'हे राम ! जिस प्रकार आपने अपने धनुष-बाण से राक्षसों का नाश किया उसी प्रकार मैं भी धनुष-बाण से देशधर्म के शत्रुओं का कलेजा चीर डालूँगा। बिरसा शताब्दी वर्ष में बिरसा की रामभक्ति वनवासी-जनों के लिए महान् प्रेरणा किंवा पथप्रदर्शक है।

पादरी बुल्के की राष्ट्रघातक भ्रान्ति

पादरी बुल्के ने अपने शोध प्रबन्ध 'रामकथा, उत्पत्ति और विकास' के पृष्ठ 123 एवं 520 पर बार-बार लिखा है, 'उराँव वनवासी रावण की सन्तान है।' वानर गोत्रीय, हनुमान् व सुग्रीव के वंशज, रामभक्त वनवासी बन्धुओं को रावण की सन्तान कहना सत्य का घोर तिरस्कार है। इसी भ्रान्ति से भ्रमित होकर डॉ. संकलिया ने भी भ्रान्ति मूलक लेख किया है—'छोटानागपुर ही रामायण युग की लंका थी।' छोटानागपुर के विन्ध्य पठार को समुद्र स्थित लंकाद्वीप मान लेना कितना हास्यास्पद लगता है।

राजनीतिक द्वेष से प्रेरित द्रविड़ कड़गम की रावण लीला भी ऐसी ही राष्ट्रघातक प्रवृत्ति है।

राँची की रामनवमी शोभायात्रा : संसार का विशालतम झंडा-जुलूस

मैंने संसार के किसी देश में इतना बड़ा झण्डा जुलूस नहीं देखा जैसा रामनवमी पर राँची में निकलता है। राम के जन्म पर हनुमान् का झण्डा फहराने के पीछे भी वही प्रेरणा है, जिसने भगवान् राम एवं भक्तराज हनुमान् को एक कर दिया था, जिसने आर्य-अनार्य, नगरवासी-ग्रामवासी-वनवासी सभी को एक ही भावात्मक एकता के सूत्र में बाँध कर एकात्म बना दिया था। यही रामायण की सब से बड़ी देन है। जहाँ बजरंगी ध्वजों से पूजित होते हैं, वहाँ वे राष्ट्रपुरुष राम वनवासी बन्धुओं के हृदय में लहराते हुए राम प्रेम एवं राष्ट्र-प्रेम से शतशः आनन्दित होंगे।'

मैं जब भी रामायण पढ़ता हूँ, मेरा यह अभिप्राय अधिक से अधिक दृढ़ बनता जाता है कि यह महाकाव्य मानव की सबसे उत्कृष्ट रचनाओं में से एक है। इस महाकाव्य ने हमारी समस्त जनता (के हृदय और मन) पर प्रभाव डाला है—न केवल मूल या इसके अनुवाद पढ़ने वालों पर, बल्कि ऐसे लाखों-करोड़ों लोगों पर भी, जिन्हें अक्षर-ज्ञान तक नहीं और जिन्होंने रामायण की कथा घर पर ही या तो माता-पिता से सुनी है, अथवा सार्वजनिक समारोहों में ऐसे व्याख्याताओं (कथा वाचकों) से, जो हमारी पवित्र भूमि की विशिष्ट विभूति रहे हैं।

—श्री एस. श्रीनिवास शास्त्री

वनवासियों के प्रेम एवं गौरव का महाकाव्य : रामायण

रामायण महाकाव्य वास्तव में वनवासियों के प्रेम एवं गौरव का महाकाव्य है। रामायण के इतिहास अथवा भगवान् राम के चरित्र के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रसंग—चौदह वर्ष वनवास-काल-के वनवासी प्रसंग ही रहे हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी प्रसंग, इतने घटना-प्रधान एवं राष्ट्रीय इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं रहे जिनका, इस महाकाव्य में या किसी अन्य पुराण-इतिहास में वर्णन किया जा सकता।

रामायण का बालकाण्ड तो वनवास की पूर्व-भूमिका के समान है। अयोध्याकाण्ड वनवास का संकल्प है। शेष सारे काण्ड, वनवास-काल में श्रीराम के प्रति वनवासियों के प्रेम एवं श्रीराम की वनवासियों पर कृपा से परिपूर्ण वाल्मीकीय रामायण का उत्तरकाण्ड, पुनः सीता के वनवास के करुण अश्रुओं से भीगा हुआ है और तुलसी का उत्तरकाण्ड, भक्ति-रस के दार्शनिक विवेचन से आहै, जिसमें घटनाप्रधान कथानक प्रायः कोई नहीं है। यदि रामायण से वनवासी-प्रसंग निकाल दिये जाएं तो रामायण का मूल्य कुछ नहीं बचता।

चाहे राम ने सैकड़ों वर्षों तक राज्य किया हो अथवा देश ने कई सहस्राब्दियों तक रामराज्य का सुख भोगा हो, किन्तु राम के समकालीन आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि को राम के चौदह वर्ष के वनवास के अतिरिक्त और कोई घटना इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं प्रतीत हुई जिसे वे, अपनी अमर लेखनी के स्पर्श से, चिरस्मरणीय बना पाते। इसलिये रामायण, मात्र राम के चरित्र का ही अयन (धाम) न होकर, भारतीय राष्ट्र के सांस्कृतिक समन्वय उत्तरापथ और दक्षिणापथ के एकीकरण, नगरवासी, ग्रामवासी और वनवासी समाज के भावात्मक ऐक्य, जन-हृदयों के स्नेह-सूत्रीकरण का पावन धाम है। दूसरे शब्दों में रामायण, भारत का सांस्कृतिक स्नेहायन ही है।

वनवासी क्षेत्र : दक्षिणी बिहार

राँची नगर जो आज दक्षिण बिहार का सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वप्रसिद्ध महानगर बन

गया है, वह कुछ काल पूर्व, न नगर था न उपनगर, न महानगर, न ही छोटानागपुर प्रमण्डल का केन्द्र। 74 वर्ष पूर्व तक राँची जिला (मण्डल) तक भी नहीं था। तब राँची से पचास मील पश्चिम स्थित लोहरदगा ही मण्डल का केन्द्र था तथा राँची एक छोटा सा नगण्य वन्य-ग्राम था। तब के राँची क्षेत्र का चित्र यदि वर्तमान नगर देख ले तो प्राचीन तथा नवीन नगर एक-दूसरे को पहचान न पायेंगे। तब आज के सबसे अधिक चहल-पहल वाले प्रशस्त मुख्य पथ पर बीहड़ जंगल स्थित थे तथा शहीद-चौक तक कभी-कभी बाघ आदि हिंस्र-पशु भी घूमते रहते थे। इन हिंस्र पशुओं से बचने के लिए यहाँ के वनवासी, अपने हाथ में छड़ी धारण करते थे, जिसे मुंडारी भाषा में 'अरांची' कहा जाता है। राँची नाम की व्युत्पत्ति सम्भवतः उसी 'अराँची' शब्द से है।

छोटानागपुर

झारखण्ड—जिस छोटानागपुर पठार का केन्द्र आज राँची नगर है, उसका छोटानागपुर नाम राँची स्टेशन के सामने वाले गांव चुटिया के साथ संयुक्त होकर चुटिया-नागपुर कहलाता था। जेम्स रेनल ने सन् 1792 में अपने भारत के मानचित्र में इसे चुटिया नागपुर लिखा तथा 1812 में ब्रिटिश-संसद ने इसे अधिकृत रूप में छोटानागपुर नाम दे दिया। नागपुर (महाराष्ट्र) का भोंसला-राज्य बहुत बड़ा एवं शक्तिशाली था, उसे बड़ा नागपुर या मराठा नागपुर कहा जाता था तथा राँची-कमिश्नरी के पाँच जिलों तथा संथाल-परगना के क्षेत्र को छोटानागपुर कहा जाता था।

इससे पूर्व आर्यों एवं मुगलों के राजत्व-काल में इसे झारखण्ड नाम से पुकारा जाता था। यह नाम संस्कृत का 'झारखण्डः' अथवा 'झाड़ः खण्डः' हो सकता है। 'झाडः' अथवा 'झाड़ः' का अर्थ है, वृक्षों का झुरमुट, जंगल, लता, कुंज आदि।

वैदिक काल में आर्यावर्त्त

वैदिक काल में आर्यावर्त्त की सीमाएँ हिमालय से विन्ध्याचल तक थी। मनु भगवान् के शब्दों में—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वात् आसमुद्रात्तु पश्चिमात्।
हिमवान विन्ध्योर्मध्ये, आर्यावर्त्तः प्रकीर्तितः।।

अर्थात् जिसके पूर्व में भी समुद्र है, पश्चिम में भी समुद्र है, उत्तर में हिमालय है तथा दक्षिण में विन्ध्याचल है वही आर्यावर्त्त है।

लैमुरिया महाद्वीप

संसार-भर के भूगर्भ-शास्त्री एकमत हैं कि अति प्राचीन काल (वैदिक काल) में विन्ध्याचल के नीचे का त्रिभुजाकार दक्षिण का पठार भारत की मुख्य भूमि से जुड़ा हुआ नहीं था; वह लैमुरिया नामक एक महाद्वीप का अंग था जो

अफ्रीका महाद्वीप का ही प्रागैतिहासिक रूप था। लैमूर शब्द संस्कृत के लांगूल शब्द से ही निकला है। जिसका अर्थ दुम या पूँछ होता है। इसलिए लांगुली, वानर को कहा जाता है। मनु के जल-प्लावन के पश्चात् ही विन्ध्याचल के नीचे का पठार, लैमुरिया द्वीप से पृथक् होकर ही, भारत प्रायद्वीप के साथ आकर मिल गया।

वानर-देश

संस्कृत में लांगुली का अर्थ वानर अथवा लंगूर होता ही है। हनुमान् को भी लांगुली कहते हैं। वानर शब्द का अर्थ अनिवार्यतः बन्दर नामक पशु ही नहीं। इसका एक अर्थ है—ऐसा नर जिसके नर अथवा अनर होने में सन्देह हो 'नरो वा अनरो वा' अर्थात् अर्द्धविकसित-मानव। वानर का दूसरा अर्थ है वनवासी अथवा वनचारी। जैसे नगर में रहने वाले को नागर कहा जाता है उसी प्रकार, वन में रहने वाले को वानर कहा जाता है।

रामायण-काल में जब दक्षिण भारत का त्रिकोण पठार उत्तर भारत के साथ सट चुका था तो एक गम्भीर सांस्कृतिक संकट उत्पन्न हुआ। लंका का आततायी सम्राट् रावण, इन भोले-भाले वनवासी वानरों को सताता था तथा आर्यावर्त्त के विरुद्ध विद्रोह के लिए भड़काता था। इसी उद्देश्य से रावण ने बाली से युद्ध-समझौता कर रखा था।

महर्षि अगस्त्य का सांस्कृतिक अभियान

रावण के अत्याचार से संत्रस्त वनवासी-जनों का आक्रोश ही पुराणों में विन्ध्याचल के विद्रोह के रूप में चित्रित किया गया है। महर्षि अगस्त्य हिमालय की अपनी तपस्या छोड़ कर विन्ध्याचल की तलहटी में आए तथा उन्होंने वनवासी-जनों को भगवान् शिव की अर्चना की दीक्षा दी। वही शिव-पूजा की परम्परा, छोटानागपुर तथा समस्त दक्षिणी पठार के वनवासी-जनों में मण्डा-पूजा (शिव-मण्डप-पूजा) के रूप में आज तक प्रचलित है जिसमें वनवासी दस दिन तक उपवास करके ग्यारहवें दिन दहकते हुए अंगारों की लगभग 30 फुट लम्बी पट्टी पर चल कर अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं। महर्षि अगस्त्य ने ही वनवासी बन्धुओं को भगवान् राम के आगमन की सूचना दी थी तथा वे पंचवटी (नासिक), महाराष्ट्र में राम के दक्षिण-आगमन की प्रतीक्षा करते रहे।

भगवान् राम ने पंचवटी पहुँच कर नरभक्षी राक्षसों द्वारा खाए गए ऋषि-मुनियों की अस्थियों के समूह को जब देखा तो उनके नेत्रों से अश्रुजल छलक गया और उन्होंने भुजा उठा कर धरती को निशाचर-विहीन करने की प्रतिज्ञा की।

पुनि रघुराय चले बन आगे। मुनिवर वृन्द बिपुल सँग लागे।।
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया।।

जानतहू पूछिअ कस स्वामी। समदरसी तुम्ह अन्तरयामी।।
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुनाथ नयन जल छाए।।

दोहा—**निसिचर हीन करउँ मही, भुज उठाइ पन कीन्ह।**
सकल मुनिन्ह के आस्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह।।

राक्षस आर्य ऋषियों एवं भोले-भाले वनवासियों, दोनों को सताने वाले, दोनों के समान रूप से शत्रु थे। अतः भगवान् राम की प्रतिज्ञा, नर एवं वानर दोनों के लिए कल्याणकारी थी।

विन्ध्याचल के नीचे वाले दक्षिणी पठार में बसने वाली अनेक जातियों, उपजातियों को सामूहिक रूप से वनवासी (वानर) नाम से पुकारा जाता था। वानर शब्द का यौगिक अर्थ वनवासी ही है 'वनेषु बसन्ति इति वानराः' इसी क्षेत्र में कर्कखण्ड, झारखण्ड, व्याघ्रसर (बक्सर), आरण्य (आरा), सारण्य (सारण), चम्पारण्य (चम्पारण), दण्डकारण्य (जनस्थान) इत्यादि क्षेत्र, सामूहिक रूप से वानर देश कहलाते थे, जिनमें भोली-भाली, अर्ध-विकसित वनवासी-जातियाँ बसती थी जो लंका के असुर-शासन द्वारा ग्रस्त एवं प्रवंचित होती थी।

भगवान् राम के वनवास में शृंगवेरपुर पहुँचने पर निषादराज गुह ने राम-लक्ष्मण-सीता का सरल सहज स्नेह से बड़ा मधुर स्वागत किया—

यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बन्धु बोलाई।।
लिय फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा।।

भगवान् के दर्शन कर वनवासी नर-नारी बड़े आनन्दित हुए किन्तु उनके वनवास के सम्भावित कष्टों का विचार कर बड़े चिन्तित भी हुए—

राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर-नारी।।
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे।।
एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोयन लाहु हमहि विधि दीन्हा।।
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना।।

कई वनवासी यह कहने लगे कि राजा ने अच्छा ही किया कि इसी बहाने, हमें भी ब्रह्मा ने नेत्रों द्वारा भगवान् के दर्शन का लाभ दे दिया। इसके पश्चात् निषादराज ने भगवान् के वनवास की प्रतिज्ञा का विचार कर एक अशोक-वृक्ष को उनके ठहरने के लिए उचित स्थान बताया। सारी रात्रि-भर निषादराज धनुष-बाण लेकर लक्ष्मण के साथ भगवान् राम एवं भगवती सीता की सुरक्षा हेतु पहरा देता रहा—

गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठाँव ठाँव राखे अति प्रीति।।
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई। कटि भाथी सर चाप चढ़ाई।।

वनवासियों द्वारा भगवान् के दर्शन का सुख पाद्यं-अर्घ्यं-आचमनीयम्—

'गाँव निकट जन निकसहिं जाई। देखहिं दरसु नारि नर धाई।'।। अ. 114

दोहा—**एक देखि बट छाहँ भलि, डारि मृदुल तृन पात।।** अ. 114

भगवान् राम, सीता एवं लक्ष्मण के आगमन हेतु वनवासी जल कलश ले आए।

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ जान कहहिं मृदु बानी।। अ. 115
कोल किरात वेष सब आये। रचे परन तृन सदन सुहाए।। अ. 133
यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु भव निधि घर आई।। अ. 135
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना।।
करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहिं बिलोकहिं अति अनुरागे।। अ. 135
प्रभुहिं जोहारि बहोरि बहोरी। बचन विनीत कहहिं कर जोरी।। अ. 135

वनवासियों से प्रेमालाप

भगवान् राम भी वनवासियों पर प्रेम-वर्षण करते हुए मधुर वार्त्तालाप करते हैं।

राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे।। अ. 137

ग्राम्य नारियाँ भी अपने व्यवहार की भूल-चूक के लिए सीता-माता से क्षमा मांगती हैं।

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी।
बिलगुन मानब जानि गवाँरी।। अ. 116

शबरी के जूठे बेरों में अमृत-रस

भगवान् द्वारा वनवासी भीलनी का आतिथ्य स्वीकार करना सच्ची मानवता का सर्वश्रेष्ठ प्रसंग है।

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई।।
अरण्य/34

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा।।
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे।।
अरण्य/34

दोहा—**कन्द मूल फल सुरस अति दिए राम कहँ आनि।**
प्रेम सहित प्रभु खाइहै बारंबार बखानि।। अरण्य/34

सीता-माता की वनवासियों के प्रति आत्मीयता

वनवास हेतु निकलने के अवसर पर भगवान् राम ने सीताजी को वन के कष्टों का वर्णन करते हुए, वन-गमन से रोकना चाहा—

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट बेस बिधि कोटिक करहीं।।
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी।। अ. 63

यह सुनकर सीताजी वनवासी-जनों के प्रति आत्मीयता दर्शाते हुए उत्तर देती हैं—

बन देबीं बन देव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा।। अ. 66
कन्द मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू।। अ. 66

उदार हृदय के वनदेवी और वनदेवता ही सास-श्वसुर के समान मेरी सार-सम्हाल करेंगे।

कन्द, मूल और फल ही अमृत के समान आहार होंगे और पहाड़ ही अयोध्या के सैकड़ों राजमहलों के समान होंगे।

कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्राणपति संगा।।

केवट द्वारा भगवान् राम का पाद-प्रक्षालन

वनवासी केवट द्वारा अपनी नौका में भगवान् राम को गंगा पार कराते समय उनके पाद-प्रक्षालन का आग्रह वनवासी जीवन-परम्परा की बड़ी मधुर झाँकी प्रस्तुत करता है।

केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा।।
अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा।। अयो. 101

भगवान् राम जब केवट को उसकी गंगा पार उतारने की सेवा के लिए कुछ मजदूरी देना चाहते थे तथा सीताजी अपनी मणि-मुद्रिका उतार कर देने लगी तो भक्तप्राण केवट बोला—

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुःख दारिद दावा।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी।
अ. 102

वनवासी (वानर) जनगण का स्नेह-सूत्रीकरण

भगवान् राम का महानतम कार्य था भारत की विन्ध्यगिरि से नीचे बसने वाली वनवासी जातियों (वानर, ऋक्ष, भल्लूक, निषाद, भील, शबर आदि) को रावण के आसुरी-प्रभाव से मुक्त कर भारतीय समाज के साथ एकात्म करना।

उन्हीं में से उन्होंने हनुमान् जैसे वीर राष्ट्र-भक्त निर्माण किए, जिनको समूची आर्य जाति आज तक श्रद्धा से शीश नवाती है।

विद्यावान गुनी अति चातुर।
राम काज करिबे को आतुर।।
प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया।
राम लखन सीता मन बसिया।।

राँची जिले में गुमला के निकट, टोटो से 10 मील भीतर जंगल में स्थित आंजन ग्राम है, जो हनुमान्जी का जन्मस्थान माना जाता है। यहाँ अभी भी अंजनी माता की गोदी में बालक हनुमान् को लिए हुए मूर्ति है।

वनवासियों में वानर-गोत्र

छोटानागपुर के वनवासी अभी तक वानर के समान लांगूल लगाकर नृत्य करते हैं। इसे यहाँ की स्थानीय भाषा में तुलुंग कहा जाता है। वनवासियों के अनेक गोत्र हनुमान् तथा वानर नाम सूचक हैं जैसे पवन, वंशज, तिग्गा, हनुमान्, बजरंग, गड़ी, वानरा, बरई, बसोर, मैना, खंगार आदि। सभी का अर्थ वानर ही है। इसी प्रकार सिंहभूमि की भुंइयाँ जाति हनुमान्-वंशज होने का दावा करती है। वे अपने आपको पवन-वंशज ही पुकारते हैं। द्रविड़ वनवासियों में भी हनुमान् नाम प्रचलित है।

राँची एवं समग्र छोटानागपुर का रामनवमी-पर्व पर आयोजित झंडा-जुलूस, सारे विश्व में अद्वितीय है। भारतीय नृतत्त्व-शास्त्र के जनक श्रीसरतचन्दराम अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'उराँव ऑफ छोटानागपुर' में लिखते हैं कि उरांव, रामायण-महाकाव्य में वर्णित वानर ही हैं। भगवान् राम ने इन्हीं वनवासियों को अपना कर, इन्हीं की सेना सजा कर लंकाधिपति रावण को धूलि-धूसरित किया था।

पादरी बुल्के समस्त इतिहास-परम्परा की विडम्बना करते हुए अपने शोध-प्रबन्ध 'राम-कथा : उत्पत्ति और विकास' के 123वें पृष्ठ पर लिखते हैं कि 'छोटानागपुर के लोग भी यह मानते हैं कि रावण से ही उनकी जाति की उत्पत्ति हुई तथा इसी कारण उन्हें उराँव नाम मिला, इसी प्रकार पादरी ग्रिग्राई ने भी यही मत स्थापित किया था कि छोटानागपुर के वनवासी इतिहास-पुराण में वर्णित राक्षस ही हैं। विदेशी पादरी ग्रिग्राई एवं बुल्के का षड्यन्त्र यह है कि भारत के राम-भक्त वनवासी समाज को राम भक्ति की धारा से विलग कर उन्हें राम-द्वेषी चित्रित कर, ईसाई मत जैसे विदेशी धर्म का गुलाम बनाया जाय। अतः समस्त भारत हितैषी संस्थानों एवं नागरिकों को भारतीय समाज की हत्या के उद्देश्य से चलने वाली इस साहित्यिक धोखा-धड़ी का प्रबल विरोध करना चाहिए।

स्वयं वनवासी जनों में प्रचलित सर्वाधिक 'महत्त्वपूर्ण' 'ददाकटा' नामक कथा में राक्षसों के दाँत तोड़ने की प्रेरणा है। उसमें राम को दार्मेश (ईश्वर) या पिता, सीता को पार्वती माता, हनुमान् को चाचा कह कर सम्बोधित किया जाता है। जिन वनवासी बन्धुओं ने वीर-शिरोमणि हनुमान् के नेतृत्व में राक्षसों के दांत तोड़े तथा पापी की स्वर्ण लंका को जलाकर धूल में मिला दिया—उन्हें रावण का वंशज कहना सरासर झूठ है। आज भी वनवासी बंधुओं को चाहिए कि बुल्के जैसे पादरियों के झूठ-पाखंड के दांत तोड़ दें तथा रोमन-कैथोलिक-मिशन की भारतद्वेषी स्वर्ण-लंका को फूँककर भस्मीभूत कर दें।

प्रकाशित 31 मार्च 1980

रामहि केवल प्रेम पियरा,
जानि सके तो जाननिहारा।
जाति पांति पूछे नहीं कोई,
हरि को भजे सो हरि का होई॥

रामानन्दजी

× × ×

गोस्वामी तुलसीदास हमारी म्रियमाण जाति को मृत्युंजय बनाने वाले अमर कवि हैं।

—प्रो. ओबराय

× × ×

संयुक्त संघ राष्ट्र के महासचिव कोफी अन्नान ने अगस्त 2000 में 'मिलेनियम रीलिजियस पीस समिट' के समापन सम्मेलन में हिन्दुओं का आह्वान करते हुए कहा—हिन्दू धर्म में कई सर्वहितकारी तथा उच्च सिद्धांत हैं। हिन्दुओं ने यह सब कुछ अपने तक सीमित रखा है। उन्होंने हिन्दुओं से शान्ति के नाम पर आह्वान कर निवेदन किया कि 5 अरब गैर-हिन्दुओं को बिना धर्म परिवर्तन के ये गुण सिखायें ताकि उन मूल्यों पर जीकर विश्व शांति स्थापित कर सकें और सर्वहितकारी तथा पराविद्या का ज्ञान भी लोगों को मिल सके।

सप्तपर्ण पर्णसि

भाषा विचारों का वाहन है। मानव के भावरूपी राजकुमार भाषा के सुनहले रथ पर बैठ कर शब्दों एवं अर्थों के अलंकारों से सुसज्जित होकर विशाल विचारलोक में स्वच्छन्द विचरण करते हैं। आवेग-संवेग प्राणीमात्र के मन में उठते रहते हैं, किन्तु विचार-शक्ति मात्र मानव के पास ही है, जिसके द्वारा वह उद्दाम संवेगों को कुछ निश्चित भावनाओं में परिवर्तित कर सकता है। भावों एवं विचारों को एक निश्चित विषय की परिधि में क्रमानुसार बाँधना, भाषा एवं भाव दोनों का अनूठा खेल है।

मेरे विद्वान् मित्र डा. रामनरेश मिश्र 'हंस' हिन्दी एवं संस्कृत के लब्धप्रतिष्ठ-विद्वान् हैं। उन्होंने संस्कृत के महानतम वैयाकरण पाणिनि पर एक मौलिक शोध-प्रबन्ध लिख कर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है। अतः उनकी निबन्ध कला के विषय में कोई दो मत नहीं हो सकते।

डॉ. 'हंस' जी ने स्वयं विद्वान् होते हुए मेरे जैसे व्यक्ति से अपने नये निबन्ध-संग्रह 'सप्तपर्ण' की प्रस्तावना लिखने का प्रेमपूर्वक आग्रह किया है। उनके निबन्धों में निबद्ध भाव एवं भाषा का आनन्द लेने के लिए ही मैंने उनका यह आग्रह स्वीकार कर लिया। निबन्धों में मुझे यह जान कर सुखद आश्चर्य हुआ कि तुलसी मानस चतुःशती के उपलक्ष्य में जो मेरे तीन प्रवचन गोपालगंज के पालिका प्रशाल तथा स्नातक महाविद्यालय में, उन्होंने आयोजित करवाये थे उनमें मेरे द्वारा प्रस्तुत किये गये कुछ शोधपूर्ण तथ्यों एवं उद्धरणों को भी उन्होंने अपने निबन्धों में सुन्दरता से समाविष्ट कर लिया है। यह इनकी गुणग्राहकता का ही प्रमाण है। श्री 'हंस' जी सचमुच हंस ही हैं जो सुन्दर विचारों के मुक्ताकण जहाँ कहीं से मिलें, चुगते रहते हैं। उन्होंने अपने गोपालगंज निवास का नाम भी 'मानसरोवर' रखा है जो सार्थक ही है।

प्रो. 'हंस' जी ने 'मानस की कला' नामक निबन्ध में जहाँ और अनेक तथ्य एवं भावों को लिपिबद्ध किया, वहाँ एक वाक्य मेरे हृदय को काँटे के समान चुभन दे रहा है। उन्होंने लिखा, 'फादर बुल्के रामकथा की उत्पत्ति और विकास खोजते-खोजते तुलसी के अनुचर बन बैठे।' वास्तव में यदि प्रो. 'हंस' ये लिखते कि पादरी

एटकिन्स (Atkins) रामकथा की आलोचना की तैयारी करते-करते तुलसी के भक्त बन बैठे, तो वह अक्षरशः सत्य होता। किन्तु पादरी बुल्के रामकथा उत्पत्ति और विकास के छद्म रूप के नीचे उन सब आदर्शों के द्वेषी एवं हंता बने हुए हैं, जिनके लिए तुलसी एवं उनका मानस विश्व में पूजित है। बुल्के महोदय, बार-बार दोहराते हैं, 'मैं राम का भक्त नहीं तुलसी का भक्त हूँ।' यह विसंगत बात कोई ऐसा छद्म रूपधारी व्यक्ति ही कह सकता है जिसकी कथनी और करनी में आकाश-पाताल का अंतर हो। बुल्के निश्चय ही रामभक्त तो हैं ही नहीं क्योंकि वे बेल्जियम से राम के देश में रामभक्तों को रामभक्ति से च्युत करके ईसा भक्त बनाने के लिए ही आये थे, किन्तु राम को माने बिना कोई तुलसी भक्त होने का दम्भ करे तो, सारी सृष्टि के साथ स्वयं तुलसीदास को भी उसके कथन पर बहुत बड़ा आश्चर्य होगा। जबकि तुलसीदास के रोम-रोम में राम ही समाये हैं तथा तुलसी साहित्य की पंक्ति-पंक्ति राम रस में पगी हुई है, तब राम को अस्वीकार करके कोई तुलसीभक्त होने का दम्भ करे तो यह वैसा ही होगा जैसे कोई हमारे पिता, गुरु या इष्ट देवता का तिरस्कार अथवा हनन करके हमसे मित्रता का हाथ मिलाने के लिए आवे। पादरी बुल्के अपने पूरे शोध-प्रबन्ध का निष्कर्ष यही निकालते हैं कि राम वस्तुतः हुए ही नहीं, वरन् वे भिन्न-भिन्न रामकथाओं के कल्पित नायक मात्र हैं। श्री बुल्के के इस निष्कर्ष से रामभक्त तुलसीदास की आत्मा को कितना भीषण क्लेश होता होगा यह रामभक्त ही समझ सकता है?

भगवान् राम का महानतम कार्य था भारत की विन्ध्यगिरि से नीचे बसने वाली वनवासी जातियों (वानर, रीछ, मल्लूक, निषाद्, भील, शबर आदि) को रावण के आसुरी प्रभाव से मुक्त कर भारतीय समाज के साथ एकात्म करना। उन्हीं में से उन्होंने हनुमान् जैसे वीर राष्ट्रभक्त निर्माण किये जिनको समूची आर्य जाति आज तक श्रद्धा से शीश नवाती है। राँची जिला में स्थित आंजन ग्राम के निकट टोटो (गुमला) आज तक परम्परागत आस्था के आधार पर हनुमान् (आञ्जनेय) के जन्मस्थान के रूप में प्रतिष्ठित है। किन्तु पादरी बुल्के समस्त इतिहास की विडम्बना करते हुए अपने शोध-प्रबन्ध 'रामकथा उत्पत्ति और विकास' के पृष्ठ 123 पर लिखते हैं कि 'छोटानागपुर के उराँव लोग भी यह मानते हैं कि रावण से ही उनकी जाति की उत्पत्ति हुई, तथा इसी कारण उन्हें उराँव नाम मिला।' इस प्रकार की तथ्यविहीन समाजद्वेषी बातों को प्रचारित कर वे भारत के वनवासी समाज को रामभक्ति की धारा से विलग कर, उन्हें रामद्वेषी चित्रित कर, ईसाई बनाने के प्रयास में लगे हुए थे। पादरी बुल्के का शोध प्रबन्ध नाम से तो 'रामकथा-उत्पत्ति और विकास' कहा जाता है किन्तु उसका उद्देश्य रामकथा, विपत्ति और विनाश है। सम्भवतः डॉ. 'हंस' जी को इन सब तथ्यों का ज्ञान नहीं होगा, किन्तु

राँची में अनेक बार मंचों पर मेरे द्वारा भी बुल्के के पाखण्ड का खण्डन हो चुका है तथा अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन, उज्जैन में भी मैंने अपने शोध पत्र में इस साहित्यिक धोखा-धड़ी का भंडाफोड़ किया है।

अपने निबन्ध 'आषाढ़स्य प्रथमे दिवसे, में डॉ. 'हंस' जी महाकवि कालिदास के मेघदूत की अमर पंक्ति के शीर्षक से कुछ नवीन उद्भावनाएँ प्रस्तुत करते हैं।

'आठवें दशक की हिन्दी कविता' एक शोधपूर्ण लेख है। 'घुच्च अंधेराः टहटह उजाला' में भादों की घोर काली रात्रि में ज्योति स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के आविर्भाव पर्व के अत्यन्त मंगलकारी प्रकाश का दर्शन है। आषाढ़ एवं भाद्रपद, वर्षा के इन रस भींगे मासों की चर्चा के बहाने डॉ. 'हंस' जी ने सूर्यदर्शन एवं वर्षा मंगल की बड़ी सुन्दर दार्शनिक व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की हैं। पाँचों तत्त्वों का निरूपण, सृष्टि के प्रथम स्फोट में ऊँ से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से भूमि आदि का सृष्टि-क्रम, यह सब दार्शनिक गुत्थियाँ डॉ. 'हंस' जी ने साहित्यिक निबन्धों के भीतर खोल कर रख दी हैं। यह उनके गम्भीर अध्ययन एवं दार्शनिक चिन्तन का ही सुफल है।

डॉ. 'हंस' जी के निबन्ध, साहित्य के रंगमंच पर दर्शन की तत्त्व लीला प्रस्तुत करते हुए प्रतीत होते हैं। अतः वे विचारवान् एवं विद्वान् पाठकों के लिए बुद्धिरंजन करने वाले अधिक हैं तथा जनसाधारण का मनोरंजन करने वाले कम।

प्रकृति के पंच-महाभूतों के साहित्यिक एवं दार्शनिक रूपक भी भारतीय पुराण-विद्या एवं साहित्य-शास्त्र की अनूठी माधुर्य छटा लिए हुए हैं।

मैं डॉ. 'हंस' जी को हार्दिक बधाई देता हूँ कि उन्होंने अपनी लेखनी से इतने उच्च कोटि के विचारगर्भित निबन्धों की सर्जना की तथा मैं उन्हें हार्दिक साधुवाद देता हूँ कि उन्होंने मुझे उक्त साहित्य-दर्शन समन्वित निबन्धों को पढ़ने का सुअवसर प्रदान किया।

जब अत्यन्त बौद्धिक शक्तियों एवं अद्भुत वक्तृत्व शक्ति से सुसज्जित यूरोपियन भारत जाकर भारतवासियों से यह कहे कि उच्चतम ज्ञान की कुंजी यूरोप वालों के पास नहीं तुम्हारे पास है तथा तुम्हारे देवता, तुम्हारा दर्शन और तुम्हारी नैतिकता की यूरोप वाले छाया भी नहीं छू सकते, तब उसमें आश्चर्य क्या है कि भारतवासी हमारी सभ्यता से पीठ फेर ले।

—सर वैलेनटाइन

पादरी बुल्के का वनवासी समाज के प्रति घोर तिरस्कार

आपके सम्मानित साप्ताहिक के गत 17 फरवरी 1974 के अंक में पादरी कॉमिल बुल्के के विरुद्ध वनवासी-कल्याण संस्थान सम्मेलन में पारित प्रस्ताव का प्रमुखता से प्रकाशन देख कर कुछ विचारवान् लोगों का ध्यान पादरी बुल्के के ग्रन्थ 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास' में वर्णित तथ्यहीन स्थापनाओं की ओर आकृष्ट हुआ है।

यह बहुत रोचक व आश्चर्य का विषय है कि आपके पत्र के 3 मार्च, 74 के अंक में प्रो. रामचन्द्र वर्मा ने 'पादरी बुल्के पर अनुचित प्रहार' शीर्षक से अपने 'सम्पादक के नाम पत्र' में इस बात पर घोर आपत्ति की है कि आपने उक्त समाचार को अपने पत्र में मोटे अक्षरों में प्रमुखता से क्यों छापा है?

उन्हें इस बात पर भी आपत्ति है कि विश्व हिन्दू परिषद् ने सन् 1950 में प्रकाशित, पादरी बुल्के की चर्चित पुस्तक की पिछले 24 वर्षों में आलोचना क्यों नहीं की? वास्तव में यह कोई आपत्ति का पुष्ट कारण नहीं हो सकता। आज तक लोग हजारों वर्ष पूर्व लिखित पाणिनि और पतंजलि तक के ग्रन्थों की आलोचना करते रहते हैं। स्वयं पादरी बुल्के के कॉलेज में ही अनेक वर्षों से पढ़ाते हुए क्या श्री वर्मा ने श्री बुल्के के कथित शोध-प्रबन्ध को आद्योपान्त पढ़ा और उसके किसी अंश पर विवेकपूर्ण आलोचना के लिए लेखनी उठायी? विश्व हिन्दू परिषद् की तो स्थापना ही 1966 में हुई तथा छोटानागपुर में उसका प्रथम वनवासी कल्याण संस्थान सम्मेलन फरवरी 1974 में ही सम्पन्न हुआ। अतः उसमें इस प्रस्ताव का आना सब प्रकार से उचित ही था। उक्त प्रस्ताव जगद्गुरु शंकराचार्यजी की उपस्थिति में सहस्रों-नागरिकों की महती सभा में, सर्वसम्मति से पारित हुआ।

अपने उक्त पत्र में हमारे मित्र वर्माजी एवं 10 मार्च के अंक में सम्पादक के नाम पत्र लिखने वाली बहिन डॉ. वीना सक्सेना—दोनों उदारता या अज्ञान-वशात् पादरी बुल्के की वकालत करते हुए लिखते हैं कि श्री बुल्के ने उराँव वनवासियों को अपनी ओर से 'रावण की सन्तान' न बता कर निम्नलिखित तीन

लेखकों की स्थापनाओं का आधार लिया है—1. पी. डेहों, 2. आर. बी. रसेल, 3. शरच्चन्द्र राय। यदि यह बात अक्षरशः सत्य होती तो भी एक शोधकर्ता विद्वान् को 'अंधेन नीयमानाः यथान्धाः' (अन्धा अन्धेरे में अन्धों को ले जा रहा है) की नीति न अपनाकर प्रत्येक तथ्य को इतिहास, परम्परा तथा अपने विवेक के निष्कर्ष पर भी परखना चाहिए। इस दृष्टि से श्री बुल्के उपनिषद् में वर्णित उक्त सूक्ति के 'अन्धे' ही प्रमाणित होते हैं।

किन्तु श्री बुल्के ने उक्त तीनों ग्रन्थकारों को भी निष्पक्षता से उद्धृत नहीं किया। रसेल स्वयं लिखते हैं कि छोटानागपुर में उराँव तथा मुण्डा जातियों में अनेक गोत्र हैं, जिनका अर्थ ही वानर अथवा हनुमान् होता है यथा—हनुमान्, बजरंग, गड़ी, रेद्दी, बरई, बसोर, मैना और खंगार। श्री बुल्के ने कहीं भी उराँव जाति को रावण की सन्तति सिद्ध करने के लिए रसेल को उद्धृत नहीं किया। इसके अतिरिक्त शरच्चन्द्र राय ने (जो भारतीय नृतत्व शास्त्र के जनक माने जाते हैं) अपने उराँव जाति पर लिखे महानतम ग्रन्थ (उराँवज् ऑफ छोटानागपुर) में पृष्ठ 19 से 24 तक अनेक प्रमाण देकर यही सिद्ध किया है कि छोटानागपुर के उराँव वनवासी ही रामायण में वर्णित वनचारी वानर थे, जिन्होंने आर्यश्रेष्ठ श्री रामचन्द्र को लंका के राक्षसराज रावण के संहार में सहायता की थी। इस महान् दुर्लभ ग्रन्थ की भूमिका में कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी, इंग्लैण्ड के नृतत्व शास्त्र के अध्यक्ष, डॉ. ए. सी. हेडेन भी पृष्ठ 8 पर लिखते हैं—'हमारे ग्रन्थलेखक का विश्वास है कि उराँव वनवासी आर्यवीर रामचन्द्र की उस वानरसेना के अंग थे, जिसने उन्हें लंका के अनार्य राजा रावण को पराजित करने में सहायता की थी।' रामायण में रामचन्द्र इन्हें प्रेम से मित्र, भाई तथा वानर कह कर सम्बोधित करते हैं। जैसे नगर में रहने वाला नागर कहलाता है, उसी प्रकार वन में रहने वाले को वानर कहा जाता था। अतः वानर, कपि, आदि नाम पशुसूचक न होकर वनचारी, वनवासी, शरीर के फुर्तीले, साहसी, वीर, निर्भय वनवासी-बन्धुओं के गुणवाचक नाम थे।

यदि श्री बुल्के ने कुछ अन्य लेखकों को ईमानदारी से उद्धृत मात्र किया होता, तो सम्भवतः वे क्षम्य होते। उन्होंने अपनी द्वेषपूर्ण स्थापना के लिए अन्य लेखकों के मतों को कहीं तोड़ा-मरोड़ा है और कहीं पर्दा डालकर छिपा दिया है। बुल्के के समान एक पादरी ग्रिग्गार्ड ने भी उराँव बन्धुओं को राक्षस कहने का पाप किया था, जिसे श्री शरच्चन्द्र राय ने अपने ग्रन्थ के पृ. 4 पर आड़े हाथों लिया है। उराँव वनवासी राक्षसों को अपना जन्मजात शत्रु मानते आये हैं तथा उनकी 'दंदा कट्टा' (राक्षस के दाँत तोड़ने की कथा) में राम को धर्मेश अथवा महादेव का पर्याय, सीता को पार्वती का पर्याय माना गया है। राम को अब्बा, सीता को अम्मा और हनुमान् को चच्चा कहा गया है।

पादरी बुल्के ने स्वयं अपनी ओर से भी उराँव वनवासियों को रावण की सन्तान कहने का अक्षम्य अपराध किया है। अपनी पुस्तक के पृ. सं. 116 पर श्री बुल्के के अपने शब्द हैं—'लोकप्रिय नायक (राम) को विकट जंगलों में निवास करना पड़ता है, एक क्रूर-आदिवासी राजा उनकी पत्नी हर लेता है।' यहाँ श्री बुल्के ने अपनी ओर से रावण को क्रूर-आदिवासियों का राजा बताया है। श्री बुल्के पुनः अपने इसी ग्रन्थ के पृष्ठ 140 पर लिखते हैं—'द्वितीय सोपान में वनवास का स्थान गोदावरी तट पर माना जाता है और राम आदिवासियों के आक्रमणों से मुनियों की रक्षा करते हैं।' यहाँ पुनः श्री बुल्के रामायण के मूल कथानक में राक्षसों के स्थान पर आदिवासियों का आक्रमण लिखकर देश के चार करोड़ आदिवासियों का ही अपमान नहीं कर रहे हैं वरन् इतिहास, परम्परा और रामकथा का भी घोर तिरस्कार कर रहे हैं। पृष्ठ 520 पर भी श्री बुल्के अपनी ओर से लिखते हैं—'उराँव नामक आदिवासी अपने को रावण का वंशज समझते हैं।' रसेल की पाद-टिप्पणी लंका-दहन के विषय में है। श्री बुल्के की सारी शोध का मूल आधार बुल्के की निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—'हाल ही में मुझे पता चला कि राँची जिले के रायडीह थाने के कटकयाँ गाँव में एक रावना नामक परिवार अब तक विद्यमान है। यह गोत्र कम प्रचलित है, इसके स्थान पर प्रायः गिधि नाम चलता है। निष्कर्ष यह है कि हनुमान् की तरह रावण का नाम भी एक वास्तविक अनार्य नाम का संस्कृत रूपान्तर ही प्रतीत होता है।' (पृष्ठ 122-123)। श्री बुल्के की इस विचित्र खोज की जाँच के लिए मैंने कई बार रायडीह थाना के कटकयाँ गाँव में स्वयं जाकर अधिक से अधिक पूछताछ की है, किन्तु वहाँ कोई भी 'रावना' नामक परिवार न पहले था, और न अब ही है। 10 वर्ष पूर्व भी वहाँ जब वनवासी-जनों को बताया गया कि श्री बुल्के ने उन्हें 'रावण की सन्तति' चित्रित किया है, तो वे उत्तेजित होकर कहने लगे—'हम रामभक्त वनवासियों को जो रावण-सन्तान कह कर तिरस्कार करता है, हम धनुष-बाण से उसका कलेजा उसी प्रकार चीर डालेंगे, जैसे रावण का कलेजा चीरा गया था।'

वाल्मीकि-रामायण के अनुसार राम-रावण युद्ध में रावण कुल-समेत नष्ट हो गया था। मात्र विभीषण बचा था, जिसकी कुल परम्परा का कहीं उल्लेख नहीं है। प्रसिद्ध उक्ति है—

इक लख पूत सवा लख नाती, तिस रावण को दीया न बाती।

(गुरुग्रन्थ साहिब)

तब प्रश्न उठता है कि श्री बुल्के उराँव लोगों को रावण की सन्तति कहने का दुस्साहस कैसे करते हैं?

रामायण के आधार पर रावण तो पितृ वंश से राक्षस न होकर ऋषि पुलस्त्य का पोता एवं ऋषि विश्रवा का पुत्र, ब्राह्मण था। चरित्रहीनता के कारण उसे एक गुणवाचक नाम दिया गया—राक्षस (दूसरों को सताने वाला)। क्या श्री बुल्के उराँव-जनों को रावण सन्तति कह कर ब्राह्मण की सन्तान कहना चाहते हैं या दूसरों को सताने वाले राक्षस?

रावण की स्वर्ण-लंका एक अत्यन्त विकसित नगर सभ्यता का श्रेष्ठतम नमूना थी। किन्तु रावण स्वयं उसी प्रकार चरित्र भ्रष्ट था, जिस प्रकार आज की धन-वैभव, भौतिक सम्पदा-सम्पन्न पाश्चात्य सभ्यता में पोषित आततायी (दूसरों के स्वदेश और स्वधर्म को लूटने वाले), चरित्र भ्रष्ट अत्याधुनिक गुण्डे हैं। इसके विपरीत, वनवासी वानर (उराँव बन्धुगण) सदा से वनों में पर्णकुटी में रहने वाले, सरलमना, स्वदेश-स्वधर्मनिष्ठ भूमिपुत्र रहे हैं जो आचार-भ्रष्ट आततायी को उसकी सोने की लंका सहित भस्मीभूत कर सकने का सामर्थ्य रखते हैं। अतः इन प्रकृति के दुलारे वनवासी बन्धुओं को रावण-सन्तति कहना समूची मानवता का घोर अपमान है।

अमरीकी इतिहासकार विल डयूरंट ने दस खण्डों में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'स्टोरी आव सिविलाइजेशन' के प्रथम खण्ड 'अवर ओरियंटल हेरिटेज' में इस बात का उल्लेख किया है कि आधुनिक विश्व भारत से क्या आशा कर सकता है। उन्होंने कहा है (पृष्ठ सं. 633)

'यह सत्य है कि हिमालय की सीमाओं से पार भी भारत ने हमें व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शन, कथाओं, सम्मोहन और शतरंज तथा इन सबसे बढ़कर हमारे अंक और दशमलव प्रणाली की महान भेंट दी है परन्तु ये सब उसकी आत्मा का सार नहीं है। भविष्य में हम उससे जो सीख सकते हैं उसके मुकाबले में ये सब तुच्छ है। जैसे-जैसे नए आविष्कार, उद्योग तथा व्यापार महाद्वीपों को एकता में बाँधेंगे या एशिया के साथ हमको संघर्ष में डालेंगे, हम उनकी सभ्यताओं का अधिक निकटता से अध्ययन करेंगे तथा शत्रुता में भी उनके कुछ आचार-विचार को अपना लेंगे। संभवतः विजय, उद्दंडता और लूटमार के बदले में भारत हमें परिपक्व बुद्धि की सहनशीलता और शालीनता, असंग्रहशील आत्मा का शान्त-संतोष, समझदार व्यक्तित्व की शान्ति और सभी जीवित प्राणियों के प्रति एकता और प्रेम की शिक्षा देगा।

पादरी बुल्के का वनवासी समाज के प्रति घोर अन्याय

संस्कृति विहार, राँची के निदेशक प्रो. हरवंशलाल ओबराय ने इस बात पर गहरा दुःख एवं आश्चर्य व्यक्त किया है कि जिस विदेशी पादरी कॉमिल बुल्के ने अपने ग्रन्थ 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास' में भारत के कोट्यावधि वनवासी बन्धुओं को राक्षस एवं रावण की सन्तान चित्रित किया है तथा उसको प्रमाण मानकर जिस पूना के डॉ. संकलिया ने अपने एक शोध पत्र में ऐसी ही स्थापना की है कि छोटानागपुर ही रामायण में वर्णित स्वर्ण लंका है। उन दोनों भ्रान्त लेखकों को राष्ट्रपति ने पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया है। यह राष्ट्र की इतिहास-परम्परा का अपमान तथा राष्ट्र की अखण्डता को गम्भीर चोट है।

वास्तव में छोटानागपुर के वनवासी-जनों को भगवान् राम ने जिस निश्छल प्रेमामृत से गले लगाया था उसकी विश्व इतिहास में कहीं तुलना नहीं है। वनवासी-जनों के रोम-रोम में भी रामभक्ति भरी हुई है। राँची के निकट प्रभु रामचन्द्र की सेना का गढ़—रामगढ़, उनके चरणों का तीर्थ रामरेखा धाम (सिमडेगा), महावीर (आञ्जनेय-हनुमान्) का जन्मस्थान आंजन ग्राम, निकट गुमला सभी वनवासी बन्धुओं की राम भक्ति के जीवन्त प्रमाण हैं। हमारे वनवासी बन्धु ही रामायण काल के वर्णित वानर हैं तथा इनमें आज तक लगभग 10 गोत्र ऐसे हैं जिनका अर्थ ही वानर होता है यथा—हनुमान्, बजरंग, गड़ी, वानरा, तिग्गा, रेछी बाई, बसोर, मैना, खंगार आदि। छोटानागपुर के वनवासी बन्धुओं में उराँव, मुण्डारी और खरिया आदि भाषाओं में तथा सर्व प्रचलित नागपुरी भाषा में भी रामायण सम्बन्धी असंख्य लोकगीत प्रचलित है जिनमें रामभक्ति भरपूर है। रामनवमी के उत्सव पर राँची तथा समस्त छोटानागपुर में आयोजित होने वाला विराट् महावीर झण्डा जुलूस संसार भर में अद्वितीय है। उराँव वनवासी अभी तक अपने पारम्परिक नृत्यों में लंगोटी के पीछे कपड़े की एक लांगूल लगाकर नाचते हैं जिसे तुलुंग कहते हैं।

अतः रामायण काल के इन वनचारी-वनवासी रामभक्त वानरों को राक्षसराज रावण की सन्तान चित्रित करना भारतीय संस्कृति, भारतीय इतिहास एवं भारतीय समाज, सभी का घोर तिरस्कार है। इसके पीछे पादरियों का षड्यन्त्र यह है कि

रामभक्त वनवासियों को राम के शत्रु राक्षस चित्रित करके, रामभक्ति की धारा से विलग कर ईसाइयत जैसे विदेशी धर्म का गुलाम बनाया जाय।

अतः समस्त भारत हितैषी संस्थानों एवं नागरिकों को भारतीय समाज की हत्या के उद्देश्य से चलने वाली इस साहित्यिक धोखाधड़ी का प्रबल विरोध करना चाहिये। डॉ. संकलिया की भ्रान्ति भी पादरी बुल्के की साहित्यिक धोखाधड़ी पर आधारित है। छोटानागपुर के पठार को लंका चित्रित करना तो केवल अनर्गल ही नहीं हास्यास्पद भी है। लंका समुद्र स्थित द्वीप है। छोटानागपुर में न तो कोई सागर है न सागर जैसी कोई महान् नदी ही है। छोटानागपुर की पहाड़ियाँ जो विन्ध्याचल की ही श्रेणियाँ है मूल विन्ध्याचल तथा हिमालय से भी पुरानी है। इसलिये यहाँ कोयले से लेकर हीरे तक सभी खनिज पदार्थ मिलते हैं। इसलिये यहाँ अति प्राचीनकाल में भी कोई समुद्र या द्वीप होने की कोई सम्भावना नहीं है। वनवासी-जनों के प्रसिद्ध धार्मिक कृत्य दंदा कट्टा पूजा में राम को पिता, सीता को माता तथा हनुमान् को चाचा कह कर सम्बोधित किया जाता है। उस पूजा का भाव ही यह है कि दुष्ट राक्षसों के दाँत तोड़ना ताकि वे वनवासी भाइयों को सता न सकें। रामायणकाल में इन्हीं वनवासी वानरों की सेना ने वास्तविक लंका में जाकर राक्षसों के दाँत तोड़े थे। यह इतिहास की भयंकर विडम्बना है कि बुल्के एवं डॉ. संकलिया जैसे भ्रमित लेखक उन्हीं वनवासियों को राक्षस तथा उनके देश छोटानागपुर को लंका चित्रित कर रहे हैं।

पूर्व और पश्चिम, किसी भी दिशा के किसी भी देश में, किसी भी साहित्यकार को ऐसे नायक नहीं मिले हैं जैसे भारत के साहित्यकारों को राम और कृष्ण के रूप में मिले हैं।

× × ×

इसी प्रकार सीता के प्रति प्रेम और राधा तथा गोपियों के विशुद्ध एवं अनन्य प्रेम के सदृश, प्रेम का वर्णन भी मुझे तो अंग्रेजी द्वारा विदेशी साहित्य का निरंतर अध्ययन करते रहने पर भी किसी भी विदेशी साहित्य में पढ़ने को नहीं मिला।

—सेठ गोविन्ददास
कर्तव्य (पृष्ठ-ख)

रामायण काल की लंका

रामायण भारत में प्रतिष्ठित है और भारत रामायण में प्रतिष्ठित है। ऐसा नोबेल पुरस्कार विजेता विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है। वास्तव में रामायण और महाभारत, भारत के ये दो ऐसे प्रसिद्ध महाकाव्य हैं जिनकी छाप पूरे संसार की कला, पुरातत्त्व, इतिहास, परम्परा, सभ्यता और संस्कृति पर पड़ी है।

नेपाल कभी भारत का अभिन्न अंग था और अभी भी सांस्कृतिक भारत का सजीव अंग है। नेपाल को इस बात का गौरव प्राप्त है कि सीता का पैतृक निवास 'जनकपुर धाम' नेपाल में था और यहीं प्रसिद्ध 'वाल्मीकि आश्रम' था जहाँ सीता निर्वासन की अवधि में रही। इस प्रकार नेपाल रामायण से उसी प्रकार संयुक्त है, जिस प्रकार सीता राम से संयुक्त थी। तुलसीकृत रामायण नेपाल का श्रेष्ठ लोकप्रिय ग्रन्थ है। रामायण का संगीतमय गायन नेपालियों के हृदय को उल्लसित कर देता है और उनमें गर्व एवं साहस का संचार करता है। इन्हीं दिनों तुलसी रामायण के नेपाली काव्यानुवाद ने भारत और नेपाल की सांस्कृतिक आत्मीयता में नूतन कड़ी जोड़ दी है। नेपाल की परम्परागत रामायण भानुभक्त की रामायण है जो अत्यन्त सुन्दर एवं लोकप्रिय महाकाव्य है। नेपाल के राजधानी क्षेत्र का नाम हनुमान्ढोका है तथा विजयादशमी राष्ट्रीय महापर्व है।

श्रीलंका रावण की परम्परागत राजधानी होने के कारण सर्वप्रसिद्ध है। विद्वानों में लंका की वास्तविक भौगोलिक स्थिति के विषय में कुछ विवाद भी हैं, किन्तु अधिकांश विद्वानों का यही मत है कि वर्तमान श्रीलंका ही रामायण काल की लंका का एक बचा हुआ द्वीप है। वास्तव में रावण का लंका साम्राज्य मारीच द्वीप (मॉरीशस) से लेकर आस्ट्रिक द्वीप (आस्ट्रेलिया) तक फैला हुआ था। हिन्द महासागर में और भी कई द्वीप थे, जो जलमग्न हो चुके हैं। आस्ट्रेलिया में संसार की सबसे अधिक सोने की खानें थीं। सुमात्रा द्वीप का नाम स्वर्णद्वीप था। दक्षिणी बर्मा को भी स्वर्णभूमि कहते थे। राजधानी वर्तमान श्रीलंका द्वीप में थी। वहाँ अशोक-वाटिका अभी तक तीर्थस्थल के रूप में प्रतिष्ठित है। वहाँ राम, सीता, शिव, हनुमान् और विभीषण तक के मन्दिर हैं, किन्तु विचित्र तथ्य यह है कि रावण का एक भी मन्दिर नहीं है।

कोलम्बो से 6 मील दूर कालिनियाँ में एक बौद्ध विहार के दाहिनी ओर विभीषण का मन्दिर है। नोरेलिया के निकट हाग्गल वागिया में हजारों वर्ष पुराना सीताजी का मन्दिर है। इसी के निकट अशोकवनम् है जिसको सीता एलिया भी कहते हैं। मन्नार के निकट एक प्राचीन शिव मन्दिर है जहाँ रावण शिव ताण्डव स्तोत्र गाकर भगवान् शिव की पूजा करता था।

कुछ लेखक बिना किसी पुष्ट प्रमाण के लंका को छोटानागपुर या मध्यप्रदेश में बताने का व्यर्थ प्रयास करते रहते हैं। पादरी बुल्के छोटानागपुर को लंका और उरांव जनजाति को रावण की संतान बताते रहते हैं। डा. एच. डी. संकलिया भी अमरकण्टक के निकट नर्मदा नदी के एक छोटे टापू को लंका मानते हैं। वास्तव में राम का वनवास मार्ग—अयोध्या से चित्रकूट, फिर दण्डक-वन पार कर जनस्थान (पंचवटी) पहुँचना, वहाँ सीताहरण, फिर किष्किंधा पर्वत (हम्पी) पहुँच वहाँ से आठ मील दूर पर्वत पर सुग्रीव से मित्रता, फिर हनुमान्जी का सीता की खोज में जाना, उनका महेन्द्र पर्वत (ओडिशा) से छलांग लगाकर लंका पहुँचना, पुनः राम का रामेश्वर में लवण सागर पर पुल बाँधकर लंका में सैनिक अभियान इत्यादि, सभी तथ्य यही प्रमाणित करते हैं कि रामायण काल की लंका भारत के दक्षिणी छोर पर स्थित श्रीलंका द्वीप ही था। वहाँ के साहित्यकार भगवान् श्रीराम की उदार मानवता के गीत अभी तक गाते हैं जिन्होंने रावण जैसे परम शत्रु की मृत्यु के उपरान्त भी अपने हाथों से उसको अग्नि संस्कार का सम्मान दिया और सोने की लंका जीतने के उपरान्त भी वहाँ का साम्राज्य-सिंहासन रावण के भाई विभीषण को ही सौंप दिया।

जो सम्पत्ति दशशीश अरप करि, रावण शिव पै लीन्ही।
सोई संपदा विभीषण को अति सकुच सहित प्रभु दीन्हीं।।
ऐसो को उदार जग माहिं।।

भारत का दान है धर्म, दार्शनिक ज्ञान और आध्यात्मिकता। धर्म-प्रचार के लिए यह आवश्यक नहीं कि सेना उसके आगे-आगे मार्ग निष्कंटक करते हुई चले। ज्ञान और दार्शनिक तत्त्व रक्त से लथपथ घायल मानवों के ऊपर से सदर्प विचरण नहीं करते। वे शांति और प्रेम के पंखों से उड़कर शांतिपूर्वक आया करते हैं और सदा हुआ भी यही है।

—स्वामी विवेकानन्द

नायकर की नासमझी

आपके समाचार पत्र में हाल ही में एक समाचार पढ़ा। श्री ई. वी. रामास्वामी नायकर ने एक आमसभा में भगवान् राम के चित्र को जला कर अपवित्र कृत्य किया। यह बहुत ही खेद की बात है। यह अत्यन्त दुःख की बात है कि द्रविड़-कड़गम के एक वयोवृद्ध, श्वेत दाढ़ी वाले नेता फिर से आर्य-द्रविड़ की बहस को उठाने का यत्न कर रहे हैं।

यह सबको ज्ञात है कि भगवान् राम एक आदर्श आर्य थे साथ ही साथ वह विश्व के एक महानतम नेता और लोकनायक भी थे जिन्होंने करोड़ों लोगों का मन अपने आदर्श व्यवहार और शुद्ध चरित्र से जीत लिया था। इसमें सभी धर्म-सम्प्रदाय और देशों के लोग थे।

कुछ प्राच्य और पाश्चात्य इतिहास लेखकों ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि रामायण काल में आर्यावर्त्त की सीमा केवल हिमालय से विन्ध्याचल तक ही सीमित थी, और भगवान् राम ने पहली बार आर्यावर्त्त की सीमा बढ़ा कर भारत के दक्षिणतम छोर तक पहुँचाई थी। एक सिरफिरे व धर्मान्ध द्रविड़ नेता श्री नायकर समझते हैं कि भगवान् राम ने दक्षिण भारत से सभी द्रविड़ लोगों को मार भगाया और संपूर्ण भारत को आर्यावर्त्त नाम दिया। वास्तव में यह एक बहुत ही तुच्छ और गलत धारणा है। यदि यह सत्य होता तो रामास्वामी नायकर व द्रविड़ कड़गम आदि नाम दक्षिण भारत में न पाये जाते।

श्री नायकर और इस प्रकार के अन्य इतिहासकारों के मन में एक और गलत धारणा यह है कि रामायण काल के असुर एवं राक्षस केवल दक्षिण भारत के द्रविड़ ही थे, जिन्हें भगवान् राम ने मार भगाया था। कुछ समय पूर्व तक नायकर और उनके साथी बड़े गर्व से अपने आप को रावण और कुंभकर्ण का वंशज कहते थे। कुछ इतिहासकार रामायण काल के बन्दरों-भालुओं को भी द्रविड़ वंश के मानते हैं।

कोई अनपढ़ व्यक्ति भी जानता है कि भगवान् राम ने वानर राजा बाली को मारने के बाद उसका राज्य उसी के भाई सुग्रीव को दे दिया था। इसी प्रकार लंका के युद्ध में रावण को हराने के बाद भगवान् राम ने सोने की लंका को खुद

नहीं सम्हाला बल्कि पूरा राज्य सम्मान सहित रावण के छोटे भाई विभीषण को दे दिया। भगवान् राम ने श्रीवेरपुर राज्य को जीत कर वह सारा साम्राज्य निषादराज को सौंप दिया। यह सब दर्शाता है कि उस काल के सभी राजा-महाराजा भगवान् राम का बहुत सम्मान करते थे और उन्हें भगवान् की तरह पूजते थे।

श्री नायकर को यह भी जानना चाहिए कि आदिकाल से आर्य हिन्दू शिव, गणेश, हनुमान् और कालीमाता को पूजता रहा है। जिन्हें अक्सर द्रविड़ माना जाता है और दक्षिण भारत के अधिकांश मन्दिरों में इनकी मूर्तियाँ पायी जाती हैं।

यह सत्य है कि एक समय आर्य लोगों ने दक्षिण भारत में भारतीय सभ्यता एवं दर्शन का प्रचार-प्रसार किया। किन्तु कालान्तर में शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और माधवाचार्य आदि सन्तों ने दक्षिण भारत में भगवान् राम, भगवान् कृष्ण और अन्य देवताओं की पूजा अर्चना का प्रचार किया जिससे पूरे भारत में हिन्दू सनातन धर्म की लहर छा गई। श्री रामास्वामी नायकर और उनके मित्रों के हृदय में भारत (जो उनकी मातृभूमि है) एवं भगवान् राम (इष्ट देव जिन्होंने आदर्श भारतीय संस्कृति एवं राम राज्य की स्थापना की) के लिए गौरव और सम्मान होना चाहिए। उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय सभ्यता और दर्शन का मूल ग्रन्थ रामायण है, और राम राज्य एक आदर्श राज्य की संकल्पना है। यह सब महर्षि वाल्मीकि, वेदव्यास, तुलसीदास और कम्बन् आदि सन्तों ने भी बार-बार कहा है। यही बात हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी रोज प्रार्थना-सभा में भी दोहराते थे। जीवन के अन्तिम क्षणों में भी उनके मुख से यही शब्द निकला था—हे राम!

राष्ट्र का उद्देश्य

राष्ट्र स्वयं में महत्त्वपूर्ण तो है किन्तु स्वयं में लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य तो है आत्मविकास। इस बात को न समझ पाने के कारण ही विश्व में राष्ट्रवाद खतरा बन गया है और राष्ट्र को मानव एकता के बाधक रूप में देखा-समझा जाता है।

—ऋषि अरविन्द

उत्तर भारत को दक्षिण भारत की देन : श्रीराम-भक्ति

तुलसीदास से 700 (सात सौ) वर्ष पहले दक्षिण भारत में एक महाकवि कंब हुए। उस महाकवि ने तमिल भाषा में रामायण लिखा। उसको कंब रामायण कहते हैं। यह रामचरित्र का अलौकिक ग्रंथ है। इसकी सौन्दर्यमयी आभा के सामने पूर्व रचित सभी रामायण काव्य फीके पड़ गये। इस अमर रचना के कारण नवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी ईसवी तक का यह काल कंबन काल के नाम से अधिक विख्यात हुआ। रामायण के प्रारम्भ में एक वंदना कंब ऋषि ने की है। कितनी मनोहारी वंदना है, जरा बुद्धि लगायेंगे तो अर्थ खुलेगा। सहज में अर्थ समझ में नहीं आयेगा। अर्थ जानने के बाद आपको बड़ा आनंद होगा। वह तमिल में है इसका पद्यानुवाद इस प्रकार है—

आंजिले ओन्रू पेट्रान, आञ्जिले ओन्रेतावि
आगिन्ले ओन्रू आराग, आरियखकाग एगि।
आञ्जिले ओन्रू पेट्र, अणंगु कण्ड अयलार अरिल
आम्निले आने वेत्तान, अवन एम्मै अलित्तुक्काप्पान।।

पांच में से एक के पुत्र ने जो, पंच परमेश्वर के दूत बन, पांच में से एक मार्ग से, पांच में से एक को लांघकर, पंचनख वालों के देश में, पांच में से एक की पुत्री लख, पांच में से एक को लगाकर, लौटकर सकुशल आये जो, दोनों पंच जोड़कर प्रणाम करूं। पंच के प्रकोप से रक्षा करें।

अब सोचिये यह पंच क्या है? पांच में से एक का तमाशा क्या है? कम्ब ऋषि ने एक अलौकिक चमत्कार किया है। आप ध्यान देवें। यह बड़ी मीठी पहेली है। आपके हृदय को गुदगुदाने वाली पहेली है। आपकी श्रद्धा को जगाने वाली पहेली है और इसमें बड़ा काव्य का चमत्कार है।

पांच तत्त्व हैं जिससे सारी सृष्टि बनी है। यह पिण्ड और ब्रह्माण्ड पांच तत्त्वों से बना है। पांच तत्त्व कौन-कौन से हैं? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश।

पांचों तत्त्वों से ब्रह्माण्ड और पांच तत्त्वों से पिण्ड बना है। ये पांच तत्त्व प्रकृति माता के पांच पुत्र जैसे हैं।

मानव के शरीर में भी पांचों तत्त्वों का पंचीकरण हुआ। यह इस प्रकार से मिल-जुलकर बना है कि खोजना कठिन है यहाँ कौन सा तत्त्व है, कौन सा तत्त्व नहीं है। पर फिर भी मानव के शरीर में भगवान् ने एक Scale लगा दिया है कि कौन सा तत्त्व ऊँचा है कौन सा तत्त्व नीचा है। इसको मापने का एक मापकयंत्र मानव शरीर में लगा दिया है। चाहे सभी अंगों में सभी तत्त्व मिले-जुले हैं पर कमर से नीचे पांव में पृथ्वी तत्त्व की अधिकता होती है। टांगें पृथ्वी को छूती हैं। ये जो जंघाएं हैं यह शरीर रूपी यंत्र को ढोने को एक Mobile Stand है। जैसे कैमरा का Stand होता है। मानव शरीर के जीने के लिये इसमें कोई आवश्यक तत्त्व नहीं हैं। Stand है चलने में मदद करता है। पर दुर्भाग्य से किसी की रेल या किसी अन्य दुर्घटना से दोनों टांगें कट जाये तो भी जीते रहते हैं। उसके प्राणों को, उसके जीवन को, कोई नुकसान नहीं पहुँचता। चलना-फिरना कठिन हो जाता है। इसमें पृथ्वी तत्त्व की अधिकता है। सबसे स्थूल तत्त्व यही है।

इसके ऊपर आता है लंगोटी का स्थान। जहाँ से आप मल-मूत्र त्याग करते हैं। यह जल का विशेष स्थान है। आप कहेंगे कैसे? मानव शरीर में जितना हम जल पीते हैं उसका सबसे बड़ा कार्य यही है कि अन्दर की नस-नाड़ियों को धोना, पेट को साफ रखना और गन्दगी को, फुजला को मल-मूत्र के रूप में बाहर फेंक देना। जैसे घर में पानी के आने का एक नल है, पानी की निकासी का दूसरा नल है। इस तरह से मानव शरीर में जल डालते तो मुख से हैं पर निकालने का मार्ग अलग है और उसमें जल का सबसे बड़ा उद्देश्य सफाई है और कोई दूसरा उद्देश्य नहीं है। इसलिये वहाँ जल तत्त्व की अधिकता है।

इसके ऊपर तेज तत्त्व है। तेज में अग्नि तत्त्व की अधिकता है जठराग्नि। सारे शरीर में माथे को छुएं, सिर को छुएं, जबान को छुएं, हाथ को छुएं, पांव को छुएं साढ़े 98 डिग्री तापमान है। पर पेट की जठराग्नि ठण्डी हो जाय तो पूरा शरीर ठण्डा हो जायेगा। इसलिये सब कुछ जठराग्नि पर निर्भर है। इसलिये अग्नि तत्त्व जल से ऊपर है।

उससे ऊपर वायु का स्थान है। फुफ्फुस से लेकर नासिका तक वायु का विशेष स्थान है। इसमें वायु चल रहा है। वायु पूरे शरीर में संचार करता है। पर इसका विशेष स्थान यह है।

इसके ऊपर कपाल में आकाश का स्थान है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश; इन पांच तत्त्वों से पिण्ड बना है। पांचों तत्त्वों से ब्रह्माण्ड बना है। अब कंब

ऋषि कहते हैं—पांच में एक के पुत्र जो। अर्थात् पांच तत्त्वों में वायु के जो पुत्र हैं, पंच परमेश्वर के दूत बनकर अर्थात् पांचों तत्त्वों का जो परमेश्वर है भगवान् राघवेन्द्र 'मर्यादा पुरुषोत्तम' राम जो हैं उनके दूत बनकर वो गये। कैसे गये? पांच में से एक मार्ग से। पांच तत्त्वों में एक तत्त्व आकाश है। तो पांच में से एक मार्ग से अर्थात् आकाश मार्ग से। पांच में से एक को लांघकर अर्थात् समुद्र के जलतत्त्व को लांघकर गये। पंच-नखों वालों के देश में। जिनके बड़े-बड़े, पैने नख हैं। लोगों के कलेजों को फाड़ डालें ऐसे राक्षसों के देश में। अब पांच में से एक की पुत्री को लख अर्थात् पृथ्वी माता की पुत्री सीता माता को देखकर और पांच में से एक को लगाकर अर्थात् पांच तत्त्वों में से अग्नि तत्त्व से लंका को जलाकर सकुशल लौट आये, को दोनों पंच जोड़कर प्रणाम करूं। दोनों हाथों की हथेलियाँ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। पंच के प्रकोप से रक्षा करें। पृथ्वी के प्रकोप से, जल के प्रकोप से, अग्नि के प्रकोप से, वायु के प्रकोप से, आकाश के प्रकोप से सदा हमारी रक्षा करते रहें। एक हनुमान्जी की स्तुति में उन्होंने क्या चमत्कार कर दिया। यह है तमिल रामायण में।

आज दक्षिण भारत में कुछ लोग राजनीतिक स्वार्थलिप्सा के कारण और कुछ अंग्रेजों के सिखाये हुए उलटे-सीधे और विद्रोही मंत्रों के कारण कहते हैं कि हम रावण की संतान हैं। राम का पुतले जलाते हैं। उत्पात करते हैं। हम दक्षिण भारतीयों को कहते हैं—अरे मूर्खों! राम की भक्ति तो दक्षिण भारत ने उत्तर भारत को दी थी। उत्तर भारत ने तो राम को निर्वासन दे दिया, देश-निकाला दे दिया, वनवास दे दिया। दक्षिण भारत ने अपने हृदय में राम को बसाया। दक्षिण भारत ने दण्डकारण्य में, पम्पारण्य में, किष्किन्धारण्य में और जनकारण्य में उनको स्थान दिया। किष्किन्धारण्य में सुग्रीव ने मित्रता की और हनुमान् जैसे महावीर सेनानायक मिले। फिर वानरों की सेना सजाकर लंका पर विजय प्राप्त की।

भक्ति तो द्रविड़ देश में पैदा हुई भाई। क्योंकि भगवान् शंकराचार्य के बाद भगवान् रामानुजाचार्य ने सबसे पहले अपने विशिष्टाद्वैत में भक्ति का स्थान बनाया। शंकर स्वयं ज्ञानी भी थे, भक्त भी थे पर अद्वैत में, तर्क की दृष्टि से भक्ति का स्थान बहुत कम बनता है बनता ही नहीं। वे स्वयं भक्त थे। वे चाहते थे कि लोग भक्ति करें लेकिन उनके मत में भक्ति के लिये स्थान बनता ही नहीं था। तो भगवान् रामानुजाचार्य ने वेदान्त दर्शन में सबसे पहले भक्ति का स्थान बनाया। उसका नाम है विशिष्टाद्वैत। उनकी शिष्य परम्परा में रामानन्दाचार्य महाराज हुए और वे उत्तर भारत में आये और काशी में आकर उन्होंने राम भक्ति की लौ जगा दी। उनके शिष्यों में कबीर हुए, रविदास हुए। उनके सत्संगियों में गुरुनानक हुए, दादू हुए और उनसे प्रभावित गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज हुए। इसलिये भक्ति दक्षिण भारत की देन है। भक्ति तो द्रविड़ देश में उपजी।

तुलसीदास से सात सौ वर्ष पूर्व इतनी महान् रामायण लिखने वाला महाकवि कम्ब दक्षिण ने पैदा किया। तेलुगु में श्रीपाद रामायण, मलयालम में रामचरित, कन्नड़ में तोरवे रामायण भरी पड़ी है। रामायण पर सबसे बड़ा भारी वक्ता, उत्तम वक्ता दक्षिण भारत ने पैदा किया है। श्रीनिवास शास्त्री के Lectures on Ramayana इतने महान् व्याख्यान हैं। इनकी तुलना में रामायण के व्याख्यान आज तक संभवतः और कोई विद्वान् देश में नहीं कर सका।

भारत के प्रथम गवर्नर जनरल रहे राजगोपालाचारी कहते हैं कि मैं अपने लंबे जीवन में देश की सबसे बड़ी सेवा यदि कुछ कर सका तो रामायण और महाभारत को सरल भाषा में जनसाधारण तक पहुँचा सका। यही मेरी देश के प्रति सबसे बड़ी सेवा है। डॉ. राधाकृष्णन् और रामास्वामी अय्यर जैसे बड़े-बड़े उद्भट विद्वान् दक्षिण भारत ने पैदा किये। इसलिये रामकथा की परम्परा भी दक्षिण भारत ने दी।

आज कुछ मूर्ख लोगों तथा कुछ अंग्रेजों की चाल के कारण बड़ी विकृत परम्परा चल पड़ी है, वे लोग रामायण के द्वेषी बन गये हैं। अंग्रेजों ने क्या चाल चली? अंग्रेजों ने सोचा—उत्तर भारत में हिन्दू-सिख को लड़ाया जाय। हिन्दू और सिख अलग-अलग कर दिये जायें। हिन्दू और मुसलमान की लड़ाई सदा जारी रखी जाये और आर्य और द्रविड़ों को सदा लड़ाकर रखा जाय ताकि उत्तर और दक्षिण सदा कटा रहे। अंग्रेज बड़ा कूटनीतिज्ञ था। इस देश पर शासन करने के लिये लड़ाइयाँ कराना चाहता था। और लड़ाइयाँ करवाने के लिए वह जहरीले इंजेक्शन लगाता था। एक राममूर्ति था। उसको इन्होंने ईसाई बनाया। टोमस नाम रखा। फिर उसको पढ़ने इंग्लैण्ड भेजा और इंग्लैण्ड में उससे कहकर एक पुस्तक लिखवाई अंग्रेजी में—The Rama Retold राम की कहानी पुनः कही गई। उसमें उसने क्या कही राम की कहानी?

उसने कहा—राम उत्तर भारतीय थे। उत्तर भारत के राजा थे। दक्षिण भारत पर आक्रमण करने के लिये आये थे। राम आर्य थे। उन्होंने द्रविड़ों पर आक्रमण किया था। इसलिये राम द्रविड़ों के शत्रु हैं, दक्षिण भारत के शत्रु हैं। दक्षिण भारत के इष्ट देवता, आराध्य पुरुष इतिहास पुरुष हैं वह राम नहीं रावण हैं। यह एक बहुत जहर भरा इंजेक्शन अंग्रेजों ने टोमस नामक व्यक्ति द्वारा पुस्तक लिखाकर दिया उसके द्वारा दक्षिण भारत के मस्तिष्क को विकृत करने, उसमें जहर घोलने की कोशिश की। हर चीज का कुछ असर होता है। कुछ-कुछ ऐसे विष होते हैं जिनका तुरंत परिणाम होता है। कुछ ऐसे विष होते हैं जिनका बहुत देर बाद जाकर असर होता है। Slow Poison की तरह जहर धीरे-धीरे घुलता रहता है और वह इस प्रकार से बाद में असर करता है। दुर्भाग्य से ये D.M.K. और द्रविड़ कड़गम ये सब जहरीले इंजेक्शन की उपज हैं।

दक्षिण भारत में जाकर देखें तो बड़े-बड़े विशाल मंदिर मिलेंगे जिनकी तुलना का मंदिर उत्तर भारत में दिखाई नहीं देता। रामेश्वर जैसा देश का सबसे बड़ा मंदिर मिलेगा। हजार स्तम्भों वाला मंदिर। राम का ही तो मंदिर है जहाँ राम ने शिव की पूजा की। राम और शिव एकाकार हो गये वह राम का मंदिर है। इस प्रकार से सारे दक्षिण भारत के विचारवान् लोग, सब राम की प्रतिष्ठा करते हैं। कुछ मूर्ख, राजनीतिक लोग उत्पात मचाते हैं। वह उत्पात भी धीरे-2 अपनी मौत मर गया। ये जिस रावण की चर्चा करते हैं उस रावण की लंका में ही रावण का कोई मंदिर नहीं है जहाँ रावण की पूजा होती हो। मैं तीन बार लंका गया। पूरी लंका में राम के प्रति श्रद्धा, तमिल कवियों में राम के प्रति अगाध प्रेम यह देखने से हमें लगा यह तो दक्षिण भारत में द्रविड़ लोगों को उलटा-सीधा सिखाया जा रहा है वह बड़े धोखे का काम है। क्योंकि यदि लंका का रावण द्रविड़ों का आदर्श होता तो कम से कम लंका के लोग तो उसको अपना आदर्श मानते। सारी लंका में खोज कर देखो। लंका में एक भी रावण का मंदिर नहीं है जहाँ उसकी पूजा होती हो। वहाँ तो राम की, सीता की, शिव की, भगवान् बुद्ध की पूजा हो रही है।

वहाँ पर राणेश्वर महादेव का बड़ा भारी शिवतीर्थ है, रामेश्वर के समान ही, रामेश्वर के आकार का ही, इससे कुछ छोटा। लंका के तट पर मन्नार की खाड़ी जहाँ पर बड़े कीमती मोती मिलते हैं वहाँ एक विशाल शिवतीर्थ है जिसको छोटा रामेश्वर कहते हैं। वहाँ रावण की प्राचीन राजधानी थी। उस नगर का नाम है लुअर एलिया। वहाँ रावण शिव की स्तुति करता था और शिव की स्तुति में अपने दस-दस शीश को काटकर भेंट करता था और शिव ताण्डव स्तोत्र गाता था। आठ हजार फुट की ऊँचाई पर वह नगर है। विदेशी सैलानियों के लिये वह बहुत ही प्रिय स्थान है। क्योंकि बाकी लंका समुद्र के तट पर है। वह नगर त्रिकूट पर्वत पर स्थित है त्रिकूट पर्वत में एक लुअर एलिया, दूसरा श्रीपाद पर्वत, तीसरा सीता एलिया है। लुअर एलिया जो रावण की राजधानी, जिसको हनुमान्जी ने अपनी पूंछ से जलाया था। कुछ भाग उस पर्वत के हैं जो अभी तक जले हुए से नजर आते हैं। वहाँ पर राख नजर आती है। ऐसा माना जाता है हनुमान्जी का जलाया हुआ खण्ड वही है।

अब वहाँ से सात मील की दूरी पर स्थान है जिसको सीता एलिया बोलते हैं। उसका दूसरा नाम अशोकवनम् है। वहाँ रावण की अशोक वाटिका थी जहाँ सीताजी को रखा था। बाकी जितने आप तीर्थ देखें उसमें राम की मूर्ति बीच में है, बायीं ओर सीताजी हैं और दायीं ओर लक्ष्मणजी। लेकिन वहाँ के मंदिर में सीताजी बीच में है और राम दायीं ओर हैं लक्ष्मण बायीं ओर हैं चरणों में हनुमान्जी। मुख्य रूप से सीता की पूजा होती है। मंदिर पुराना है। कुछ टूट-फूट गया है फिर भी मंदिर अभी तक सुरक्षित है। छोटे रूप में ही है। एक ऊँचा घण्टे का स्थान है। शिखर में हनुमान्जी

सीता के सामने हाथ जोड़े खड़े हैं, कहीं मुद्रिका भेंट कर रहे हैं तो कहीं चूड़ामणि ले रहे हैं। ये सब मूर्तियाँ बनी हुई हैं। मंदिर के पिछवाड़े में एक पानी का झरना है जिसे सीता डागुला बोलते हैं जहाँ सीताजी स्नान किया करती थीं। वहाँ एक बड़ी भारी पत्थर की चट्टान है जिसके नीचे-नीचे पानी आ रहा है। लगभग सौ डेढ़ सौ फुट से चट्टान के नीचे यदि फूल डाले जायें तो फूल तैरते हुए चट्टान की दूसरी ओर सौ डेढ़ सौ फुट आगे निकल जाते हैं। एक छोटा-सा प्रपात बनता है। एक बहुत सुंदर दृश्य है। उसके पीछे पूरा जंगल है, अशोक वन है। अशोक के वृक्ष में प्रायः दो प्रकार के अशोक होते हैं। एक लाल रंग के फूलवाले और एक सफेद रंग के फूल वाले। वहाँ हमें जो देखने को मिले वे लाल रंग के फूल वाले थे। पास में एक National पार्क है उसके साथ जो पर्वत है उसको कहते हैं संजीवनी मलय। हनुमान्‌जी जब संजीवनी बूटी लेकर गये थे तो वहाँ पर संजीवनी बूटी रखी थी जिससे लक्ष्मणजी की बेहोशी दूर हुई थी। उसके बाद उसी बूटी का कुछ अंश वहाँ छूट गया उससे बूटी उगने लगी। और अभी तक श्रीलंका में संजीवनी बूटी के नाम से वह बूटी प्रचलित है और बेहोशी दूर करने की सबसे उत्तम औषधि मानी जाती है। आयुर्वेद में उसका खूब प्रचलन है। अब उस मंदिर के जीर्णोद्धार के लिये हमने वहाँ के Minister of Hindu Religion & Culture उसको, और वहाँ के राष्ट्रपति जयवर्द्धने को कहा कि यह महान् तीर्थ है। यह इतने छोटे रूप में है। इसका बढ़िया जीर्णोद्धार होना चाहिये। हमने यह भी उनको बताया—एक अमरीकन था, बड़ा श्रद्धालु था। जब उसने देखा सीता जैसा महान् चरित्र। स्वामी विवेकानंदजी ने कहा है अरे भारत! तेरे पास दुनिया में और कोई चरित्र नहीं होता, केवल एक सीता का चरित्र होता तो भी तू युग-युग के लिये पूजा जाता। सीता का ऐसा पावन चरित्र है—पूरे भारत को, पूरी भारतीयता को पावन करने वाला, पूरी मानवता को पावन करने वाला चरित्र है। ऐसा महान् चरित्र है सीता का। इसकी तुलना में दूसरा चरित्र दुनिया में किसी के पास है नहीं। इसलिये वहाँ जाकर जब उसने देखा कि उसका मंदिर इतना छोटा-सा और बाकी बड़े-बड़े शान-शौकत के, बड़े-बड़े विशाल बौद्धों के मंदिर बने हुए हैं तो उस बेचारे अमरीकन की श्रद्धा को चोट लगी। वह अमरीकन बड़ा जोर-जोर से रोने लगा। उसकी हिचकी न बंद होवे। हाय! सीतामाता का इतना महान् चरित्र और इतना छोटा मंदिर। रो पड़ा। उसका वर्णन हमने जो मिनिस्टर है Hindu Religion & Culture से कहा। श्रीपाद पर्वत है जिस पर सब धर्मों का दावा है कि हमारा है। मुसलमान, यहूदी, ईसाई उसे एडम्स पीक कहते हैं। बाबा आदम का पांव लगा हुआ है। वे कहते हैं—आदम को जब स्वर्ग से गिराया गया था तो यहीं गिरा। बौद्ध लोग उसको श्रीपाद कहते हैं। भगवान् बुद्ध के चरणों का तीर्थ है। शैव लोग उसको शिवपाद कहते हैं शिव के चरणों का तीर्थ है। सबका दावा है। सब जाति है पर बौद्धों का बाहुल्य है। उस क्षेत्र में बौद्ध हिन्दू है।

लंका के लोगों के मन में राम के प्रति शिव के प्रति श्रद्धा है। तमिल कवियों के मन में राम के प्रति अगाध श्रद्धा है, प्रेम है। सारी लंका में खोजकर देखो, लंका में एक भी रावण का मंदिर नहीं है। दो स्थानों पर रावण को दिखाया है। एक स्थान पर शिव की स्तुति करते हुए, शिव के सामने नाचते हुए वहाँ देवता तो रावण नहीं है, देवता तो शिव हैं। एक स्थान पर कैलास को हिलाते हुए। और ऊपर से शंकर भगवान् ने एक छोटी अंगुली दबा दी है इससे वह चीत्कार कर रहा है वह दस मुखों से चीख रहा है, अलग-अलग भाव दिये हुए हैं और दबा हुआ है और माफी मांग रहा है, यह तो रावण की पूजा नहीं हुई। रावण की पूजा तो लंका में, रावण की नगरी में नहीं होती। अरे दक्षिण भारत के भाइयो! तुम रावण की पूजा क्यों करते हो?

आपको बड़ा अचंभा होगा। आप रामेश्वर तक जाते होंगे। वहाँ से आप जल जहाज में बैठ जाओ। केवल डेढ़-दो घण्टे की यात्रा है। लंका में जाकर देखो, उस लंका में क्या है? मैं आपको अपने अनुभव से स्पष्ट बताता हूँ।

लंका में भगवान् बुद्ध के हजारों मंदिर हैं। अधिकांश मंदिरों में बीच में भगवान् बुद्ध है तो चार कोनों में चार और देवता है। पंच देवता की उपासना वहाँ भी है। पांच देवता कौन हैं? आपको अचंभा होगा। आपको सत्य बताता हूँ क्योंकि मेरे पास सब चित्र हैं। कौन देवता है? एक कोने में भगवान् विष्णु हैं। चतुर्भुज विष्णु की पूजा हर बुद्ध मंदिर में होती है क्योंकि बुद्ध भगवान् विष्णु के अवतार हैं और दूसरे कोने में गणपति की मूर्ति है। गणपति का मंदिर हर बुद्ध मंदिर में है। गणपति की पूजा साथ होती है। एक कोने में कार्तिकेय हैं। भगवान् शिव के दूसरे पुत्र उसकी भी पूजा हरेक बुद्ध मंदिर में होती है और चौथे कोने में आपको जानकर आश्चर्य होगा, रावण की नहीं, राम के शरणागत भाई विभीषण की मूर्ति हर बुद्ध मंदिर में है। पचासों तो विभीषण की मूर्तियों के फोटो हम लेकर आये हैं। हर बुद्ध मंदिर में विभीषण की पूजा साथ-साथ होती है विभीषण तो पूजित हो रहा है लंका में। रावण तो लंका में भी पूजित नहीं हो रहा है। तो रावण के नाम पर हमारे मूर्ख कुछ दक्षिण भारतीय यदि रावण की पूजा करना शुरू करे और रावण अपने घर में पूजा ही न जाय, दुत्कारा जाय तो फिर क्या कहेंगे? इससे बड़ी मूर्खता क्या हो सकती है?

लंका के कवि कहते हैं—हे राम! तेरे जैसा उदात्त चरित्र, तेरे जैसा महान् चरित्र; तेरे जैसा महान् मानवीय चरित्र सारे संसार में खोजने पर नहीं मिलता।

अंग्रेजों की दूसरी चाल थी कि राम ने आक्रमण किया। राम मानवता के मुक्तिदाता हैं। राम मानवता की रक्षा के लिये आते हैं। राज्यलिप्सा उनको तनिक भी नहीं है। वे श्रीवेरपुर का राज्य गुह को देते हैं। किष्किन्धा का राज्य बाली को

मारकर सुग्रीव को देते हैं और लंका में रावण को मारकर उसके भाई विभीषण को लंका का राज्य दे देते हैं। उनको तनिक भी, धूलि का एक कण भी नहीं चाहिये। अपने लिये कुछ नहीं मांगते हैं। सोने की लंका मिले न मिले, अवधपुरी की धूल मिले। अवधपुरी की धूल उससे अच्छी है।

लक्ष्मण ने भी कहा है—हे भगवन्! अब तो हम 14 वर्ष से मातृभूमि से बिछुड़े हुए हैं। पता नहीं पीछे क्या हो गया होगा? अब क्यों न हम यहीं राज्य कर लें। अपने पुरुषार्थ से, इतनी कठिनाइयों से हमने यह राज्य जीता है। तब भगवान् राम कहते हैं—

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।

हे लक्ष्मण! सोने की लंका मुझे तनिक भी अच्छी नहीं लगती। मेरी जननी भारतमाता जो है यह सौ-सौ स्वर्गों से अधिक ऊँची है। यह जिस राम की श्रद्धा है उस राम को कोई आक्रान्ता कैसे माने?

राम ने तो इसके द्वारा सारे विश्व को शिक्षा दी कि हमारी किसी देश की भूमि या स्वाधीनता छीनने की दृष्टि नहीं है। पर हमारी भूमि पर धर्म या संस्कृति पर किसी ने बुरी दृष्टि डाली, उस पर डाका डाला तो उसे भी नहीं सहेंगे और हमारे ऊपर किसी ने अतिक्रमण किया तो उसका उचित जवाब देंगे।

सभी राष्ट्र यह संदेश स्वीकार कर लें हम किसी पर लोभ की दृष्टि नहीं डालेंगे। हम विश्व को अपनी उपलब्धियों का, अपने ज्ञान-विज्ञान का ही प्रसाद बांटेंगे। प्रत्येक देश की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं, अपनी-अपनी उपलब्धियां हैं। उसके द्वारा सारे विश्व को उन्नत करेंगे जैसा भारत सदा से करता आया है। भारत ने सदा धर्म-दर्शन, सभ्यता-संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल का ही दान दिया है।

अगर यह दृष्टि सारा विश्व अपना लेवे तो एक दिन में ही सारे विश्व में राम-राज्य स्थापित हो जावे। दुःख-दैन्य अज्ञान सदा के लिए मिट जावे।

और, राम की मानवता को देखो। राम ने क्या किया? जब रावण मारा गया और मंदोदरी उसके दस-दस शीशों को उठाकर रोती है '**इक लख सुत सवा लख नाती, तिस रावण को दीया न बाती।**' एक लाख पुत्र और सवा लाख नाती होने के बाद भी तेरा कोई दीया-बाती करने वाला भी बचा नहीं। बहुत करुण विलाप करती है, उसके विलाप को देखकर विभीषण की आंखों में आंसू आ जाते हैं। और विभीषण की आंखों में आंसू देखकर भगवान् राम की आंखों में आंसू आ जाते हैं। राम विभीषण के कंधे पर हाथ रखकर कहते हैं—

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।

किसी आदमी के मर जाने से सारे वैर भी मर जाते हैं। हमारा प्रयोजन था धर्म की, मर्यादा की रक्षा करना। मर्यादा की संस्थापना यह हमारा कार्य था मर्यादा पुरुषोत्तम राम के रूप में। जो किसी परायी औरत को वह उठाकर ले जायेगा, समझाने पर भी नहीं समझेगा, वापस नहीं लौटाएगा, जिद पर अड़ा रहेगा तो अंत में स्वयं की दुर्गति के साथ-साथ कुलवंश का बीज नाश हो जायेगा। यह मर्यादा स्थापित करनी थी। यह मर्यादा स्थापित हो गई है। हमारा प्रयोजन पूरा हो गया है। आओ विभीषण, हम इसका संस्कार करें। हे विभीषण, यह मेरा भी उतना ही प्यारा है जितना तेरा प्यारा है। भगवान् राम ने अपने हाथों से अग्नि संस्कार किया। वाल्मीकीय रामायण प्रमाण है। भारतीय परम्परा कहती है—सत्य-श्रेष्ठ बातें, कहीं से भी प्राप्त हों उसे अवश्य ग्रहण करना चाहिए। रावण जैसा वेदों का ज्ञाता, विद्वान्, वैज्ञानिक-इंजीनियर कोई नहीं हुआ या यों कहें दुर्लभ है। बस असुरता के कारण राक्षस कहलाया। इतना विद्वान्-यशस्वी, वैभवसम्पन्न जीवन जीने वाला अब अस्त होने जा रहा है! उसके जीवन का निष्कर्ष, निचोड़, शिक्षा क्या है? जानने के लिए प्रभु श्रीराम ने लक्ष्मण को रावण के पास भेजा। रावण लक्ष्मण से कहता है कि ऐसी बात नहीं, मेरे मन में अच्छे विचार अच्छे संकल्प न उठे हों, लोक कल्याण के भाव न उठे हो, पर मैं उन्हें कल पर टालता रहा, दबाता रहा और बुरे विचार जब भी उठे क्रियान्वित करता रहा। मेरे मन में भाव आया कि समुद्र के जल को मीठा कर दूं, धरती से स्वर्ग तक सीढ़ी बना दूं पर, इन सबको कल पर टालता रहा। दबाता रहा। कल-कल करते-करते मेरा काल आ गया, अन्त समय आ गया और बुरे संकल्पों को शीघ्रातिशीघ्र साकार करता रहा। और इसी के परिणाम से आज मैं मृत्यु शय्या पर अब मृत्यु का इन्तजार कर रहा हूं। यही मानव स्वभाव की दुःखद त्रासदी है अच्छे संकल्पों को कल पर टालता रहता है, और बुरे भावों को तुरंत पूरा करने में पूरा जोर लगा देता है। जबकि होना इसके विपरीत चाहिए कि अच्छे संकल्प उठें तो सोचना चाहिए पता नहीं अगला श्वास आए और न भी आए। इसलिए कबीरदासजी कहते हैं—

काल करे सो आज, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होगी, बहुरी करेगो कब?

बहुत प्रसिद्ध लोकोक्ति है—**कर ले सो काम, भज ले सो राम।**

अतः कल किसने देखा, आज ही, अभी इसको करना है। और बुरे संकल्प उठें तो, कल पर टालते रहना चाहिए, हो सकता है कल आपका मन बदल जाए, विचार बदल जाए और बुरे काम से आप बच जाएं। सामान्य मानव और महान् पुरुष में अन्तर क्या है? जो अच्छे संकल्पों को तुरंत पूरा करने में लग जाता है

वह महान् बन जाता है। महापुरुष बन जाता है। देवता बन जाता है। और जो बुरे संकल्पों को पूरा करने में लग जाता है वह दुरात्मा बन जाता है। राक्षस, असुर, गुण्डा कहलाता है। हां, अगर विद्या अर्जन करना है, धन अर्जन करना है तो सोचना चाहिए आत्मा अमर है और काल अनन्त है। इन सब कारणों से लंका के कवि मुग्ध हैं, कहते हैं—अरे! राम जैसा उदात्त महापुरुष कहाँ किसने दुनिया में देखा होगा, इतने परम वैरी, महा दुष्ट रावण के मरने के तुरंत पश्चात् उसके प्रति सब वैर भुलाकर अपने हाथों से अग्नि-संस्कार कर रहे हैं। कहते हैं—विभीषण! तेरा भाई मेरा भी तो भाई है। तेरा प्यारा है तो मेरा भी तो प्यारा है। ऐसा कहकर राम अपने हाथों से संस्कार करते हैं। यह है राम की महानता। ऐसी महानता संसार में कहाँ मिलेगी?

पश्चिम में क्या होता है? रोम के राजा जिस किसी राजा को पराजित करते थे, उसके शरीर को रथ के पीछे बांधकर सारे रोम के बाजारों में घसीट कर जान से मार डालते थे। जनता उस पर पत्थर फेंकती थी, हँसती थी, वह रोता चिल्लाता था, चीखता था। ऐसी दुर्गति राजाओं की होती थी।

और इंग्लैण्ड में क्या होता था? एक Whitelist (वाइटलिस्ट) नाम का बड़ा भारी कवि था। पोप की धांधली के विरुद्ध कुछ लेख लिखे। कवितायें लिखी। बड़ा भारी अच्छा कवि था। पोप ने फरमान निकाला Whitelist नामक दुष्ट को फांसी दी जाय। टावर आफ लंदन पर फांसी दी जाये। लोगों ने कहा—महाराज! क्या करें, यहाँ पर हमारा वश नहीं चलता। इंग्लैण्ड में पोप का प्रभाव नहीं है। पोप के चेले इंग्लैण्ड में शासन नहीं कर रहे हैं। पोप के विरोधी लोग शासन कर रहे हैं। है तो क्रिश्चियन ही, पर पोप की बात नहीं मानते इसलिये उसको फांसी नहीं दी जा सकती। वह और 20-25 वर्ष जीता रहा। जीने के बाद वह स्वाभाविक मौत मर गया। उसके बाद फिर अचानक रोमन कैथोलिक लोगों का शासन आ गया। पोप ने कहा—मैंने फरमान निकाला था Whitelist नामक दुष्ट को फांसी दी जाय टावर आफ लंदन पर। लोगों ने कहा—महाराज! उसको फांसी क्या दें वह तो मर चुका है। वह तो God को प्यारा हो गया, वह तो अपनी स्वाभाविक मौत मर गया। उसने कहा—नहीं। पोप धरती पर खुदा का प्रतिनिधि है। पोप का आदेश पूरा होना चाहिये। महाराज अब क्या करें? उन्होंने कहा उसकी कब्र को खोदो, कब्र को खोदकर उसके दबे हुए मुर्दे को निकालो और उस मुर्दे की गली-सड़ी हड्डियों को टावर आफ लंदन पर फांसी दो।

इतिहास की सचाई है। रामायण का सम्मेलन है। संध्या का समय है। झूठ बोलने वाले के मुंह में कीड़े पड़ जायें। इतिहास में लिखित है कि पोप के फरमान से कब्र को खोदकर उसकी सड़ी-गली हड्डियों को टावर आफ लंदन पर फांसी

दी गई। कौए, गिद्ध, उसको नोचकर खाते रहे और पोप बड़ा प्रसन्न होता रहा। ऐसे दुष्ट, नीच-पामर लोग ये धर्मगुरु बने हुए हैं। जो इतना वैर रखते थे कि किसी के मरने के बाद भी उसको कब्र से निकालकर फिर फांसियाँ दिया करते थे। और कहाँ भगवान् श्रीरामचंद्रजी हैं। ऐसे दुष्ट परम वैरी का तुरंत मरने के बाद अपने हाथों से अग्नि-संस्कार कर रहे हैं। विभीषण ने कहा—महाराज! आपने मेरे पर इतनी कृपा की है। कम से कम आप लंकानगरी में पधारें। आप तो लंका की युद्ध भूमि में रहे। अपने हाथ से मेरा राज्यतिलक कर दें। तब भगवान् रामचन्द्रजी ने अपनी आंखों में अश्रुजल भरकर कहा—विभीषण! जिस दिन तू रावण की लात खाकर आया था हमारे पास शरणागत होकर, उसी दिन लंकेश कहकर तुम्हारा राज्यतिलक कर दिया था। हम पिता को वचन देकर 14 वर्ष के लिये वनवास में निकले हैं। 14 वर्ष तक हम किसी नगर की सीमा में पांव नहीं रख सकते। तेरी लंका कितनी सुंदर है, कितनी वैभवशालिनी है हम यह देखना नहीं चाहते। देखेंगे भी नहीं। हमने तेरी लंका की युद्ध भूमि को, समर स्थल को देख लिया और युद्धभूमि से हम लौटकर चले जा रहे हैं और तेरी लंका से हमारा कोई मतलब नहीं। हम प्रतिज्ञाबद्ध हैं तेरी लंका में पांव नहीं रख सकते। देखो, केवल एक-डेढ़ दिन बचा है 14 वर्ष पूरे होने में। उधर हमारा प्राण प्यारा भाई भरत नंदीग्राम में धरती पर बैठकर, हमारी पादुका पूजकर बैठा है और उसने कह रखा है कि 14 वर्ष के बाद क्षण भी ऊपर बीत गया तो भरतजी को जीवित नहीं पायेंगे। प्राण प्यारा भाई मुझे पुकार रहा है और उधर पिता का वचन मुझे मर्यादा में बांधे हुए है, इसीलिये विभीषण, तुम्हारी लंका तुझे ही मुबारक हो। हम तुम्हारी युद्धभूमि से ही लौटकर वापस जा रहे हैं। यह है राम। ऐसा निष्काम, ऐसी मर्यादा में, ऐसा महापुरुष दुनिया में किस देश ने कहाँ पैदा किया? कोई तुलना दुनिया में किसी महापुरुष से हो सकती है? इसलिये लंका के कवि भगवान् राम की अद्‌भुत महिमा गाते-गाते अघाते नहीं है। कलेनिया नामक एक बहुत भारी विश्वविद्यालय है कोलम्बो से दस मील की दूरी पर, वहाँ पर भगवान् राम विभीषण का राज्यतिलक कर रहे हैं और अनेक चित्र मूर्तियाँ बनी हैं और अनेक हनुमान्‌जी की मूर्तियाँ बनी हुई है। जाफना में हनुमान्‌जी के व राम के बहुत मंदिर हैं। लंका तो राम भक्ति से भरपूर है और लंका का नाम लेकर दक्षिण भारत में D.M.K., A.D.M.K. के लोग रावण के नाम पर नारे लगा रहे हैं। रावण के देश में रावण को कोई पूछता नहीं और ये मूर्ख लोग रावण का नाम लेकर नारा लगा रहे हैं।

प्रजातंत्र और श्रीराम

आज भारत जैसे विश्व के सबसे बड़े जनतंत्र में इतिहास की एक अत्यंत नाजुक घड़ी पर चुनाव जैसा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पर्व आया है। इस प्रसंग पर यह समझ लेना बहुत ही उपयोगी होगा कि जनतंत्र का महत्त्व क्या है, भारतीय जनमानस में उसकी परम्पराएं एवं संस्कार कितने गहरे हैं तथा आज की आपात स्थिति में, संगीन की नोक पर भयभीत-आतंकित भारतीयजन अपने मताधिकार का मूल्य कितना आंकता है।

जनतंत्र का स्वामी जन ही होता है। वास्तविक प्रभुसत्ता जनता जनार्दन ही है। तंत्र तो जन की इच्छानुसार चलने वाला प्रशासन का रथ है। अंग्रेजी में Minister शब्द का अर्थ ही होता है नौकर या अभिकर्ता (दलाल) Ministerial Staff का अर्थ है—नौकर-चाकर। अतः लोकतंत्र में लोक ही सारे भारत के प्रशासन का स्वामी है तथा प्रशासन तंत्र के मंत्री, उपमंत्री, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री आदि सब उसके वशवर्ती नौकर-चाकर हैं। किन्तु आज दुर्भाग्य से; भारत के आज के जनतंत्र में तंत्र का बोझिल छकड़ा जनतंत्र के वास्तविक स्वामी जन को ही अपने चक्के के नीचे कुचलकर दौड़ता जाता है। नौकर ने मालिक का गला घोंट डाला और आपातस्थिति के पैशाचिक आतंक में जन को चीत्कार तक करने की अनुमति भी नहीं है।

जनतंत्र का आधारभूत सिद्धांत है मानव व्यक्तित्व की पवित्रता एवं स्वतंत्रता। प्रजातंत्र के मंदिर में कोई देवता है तो वह मनुष्य ही है। उसकी गरिमा का विकास ही लोकतंत्र की पूजा-प्रतिष्ठा है। मानव की स्वाधीनता लोकतंत्र की प्राणवायु है। भगवान् वेदव्यास जैसे आध्यात्मिक महर्षि ने भी कहा है—**न हि मानुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।** अर्थात् मनुष्य से श्रेष्ठ और कोई सचाई नहीं है। जिस तंत्र में मनुष्य को मात्र कीड़ा-मकोड़ा समझकर उसे इच्छानुसार मसल दिया जाता है, जहाँ लाखों शांतिप्रिय नागरिकों को बिना कारण बंदी बनाकर कारागार में डाल दिया जाता है, वहाँ बिना अपील, वकील, दलील के डेढ़-दो साल तक सड़ाया जाता है, बालू मिले आटे का भोजन कराके स्वास्थ्य का हनन किया जाता

है, तनिक शिकायत करने पर लाठियाँ तथा लोहे के दण्ड से बर्बर प्रहार कर कपाल एवं हड्डियाँ तोड़ी जाती हैं। उस देश में जनतंत्र के स्वामी 'जन' की कैसी प्रतिष्ठा हो रही है इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

मानव के व्यक्तित्व की पवित्रता का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है उसकी स्वतंत्रता। यदि जन अपने तंत्र में भी स्वतंत्र नहीं है तो किसी पराये तंत्र में स्वतंत्रता की कल्पना नहीं की जा सकती। भारत में आपातस्थिति के विगत बीस मास में मानवीय स्वतंत्रता का पूर्णतया उच्चाटन कर दिया गया। मानव को भाव प्रकाशन तथा समाचार पत्रों को तथ्य प्रकाशन और विचार प्रदर्शन की भी स्वीकृति नहीं रही। स्वाधीनता प्रथम, द्वितीय गुण है अभय। भयभीत मानव पराधीन पशुतुल्य बन जाता है। भय, संत्रास, आतंक का भीषण दमनचक्र मनुष्य की मनुष्यता का गला घोंट देता है।

भारतीय परम्पराओं में भगवान् रामचन्द्र ने अपनी प्रजा को संबोधित करते हुए कहा था—

जौं अनीति कछु भाषौं भाई।
तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।। मानस 7/42/3

अर्थात् यदि मैं कभी भी कोई अनीति पूर्ण बात कहूँ तो हे जनता, जनार्दन आप निर्भय होकर मुझे रोक दें। इसी निर्भयता के कारण राम राज्य में एक साधारण धोबी की बात को भी अनसुना नहीं किया गया। तथा एक झोंपड़ी की क्षीण आवाज पर भगवान् रामचन्द्र जैसे चक्रवर्ती सम्राट् ने अपनी प्राणवल्लभा जानकी तक को वनवास दे दिया। पर आज के तथाकथित लोकतंत्र में देश के लक्षावधिक नर-नारी जब प्रधानमंत्री के भ्रष्ट तरीकों से चुनाव जीतने के विरुद्ध प्रयाग उच्च न्यायालय का सम्मान करते हुए यह मांग करते हैं कि प्रधानमंत्री अपने पद से हट जावे तो उन्हीं जनता-जनार्दन को ही अपराधी घोषित कर कारावास रूपी वनवास में डाल दिया जाता है।

बिना राम के आदर्शों का, चरमोत्कर्ष कहां है?
बिना राम के इस भारत में, भारतवर्ष कहां है?

—शिव ओम अम्बर

नेपाल में तुलसी रामायण और आचार्य भानुभक्त की रामायण

भानुभक्त की रामायण नेपाली भाषा में है। तुलसी रामायण अवधी भाषा में है। दोनों का विशेष प्रचलन है। और नेपाली लोग जब रात्रि को चौकीदारी करते हैं तो रामकथा गाते हैं, रामायण गाते हैं। इतने मस्त हो जाते हैं, इतना उनको रस मिलता है कि कभी रात्रि को नींद खुल जाए और कानों में ध्वनि पड़ जाए तो लगता है रातभर हम वही रसामृत पान करते रहें। बहुत प्यार से गाते हैं। बड़ी निष्ठा है उनके मन में।

दिल्ली में दिल्ली क्लाथ मिल में सूत की चोरी हो जाती थी। सूत की चोरी रोकने के लिए बड़े-बड़े पुलिस ऑफिसर रखे गए थे। Retire पुलिस ऑफिसर, Military ऑफिसर रखे गए थे। सूत की चोरी नहीं रुकी। अचानक भरतराम चरकराम जो वहां के मालिक हैं, उनमें से एक भाई से मेरी बात हुई। तो मैंने कहा, आप नेपाली लोगों को चौकीदारी के लिए रखिये और ऐसी मण्डली को रखिये जो रामायण गाते हों। थोड़ा प्रयास करने से ऐसी मण्डली मिल गई। और वे रातभर रामायण गाते थे। अचानक सूत की चोरी बंद हो गई। चरतराम बहुत आनन्दित हुआ कि वाह भई, बड़े-बड़े Military के Retire कर्नल रखे, ब्रिगेडियर रखे, पुलिस के Retire D.G. रखे, बड़े-बड़े अफसर रखे, Security अफसर रखे, चोरी जारी रहती थी। ये अनपढ़-गंवार लोग हैं, कुछ पढ़े-लिखे भी नहीं हैं और कोई पद भी नहीं है, वेतन भी साधारण लेते हैं। सूत की चोरी रुक गई। उसके नायक को बुलाया। क्या बात है, बड़े-बड़े अफसर रखे चोरी नहीं रुकी। तुम्हारे आने से चोरी रुक गई। क्या बात है? वह आँखों में अश्रुधारा बहाकर कहने लगा, सेठ बाबू! सुन। नौकरी पर रखना है तो रख, नहीं तो हम जाते हैं, हम चोरी आदि कुछ नहीं जानता है। हम तुलसी रामायण का पाठ करता है। तुलसी रामायण का पाठक चोर नहीं हो सकता। यह कहकर रोने लगा। श्रद्धा से वह चरकराम के चरणों में गिर गया कि यह रामायण का चमत्कार है।

श्याम देश में रामचरित्र का पवित्र प्रकाश

रामायण की महागाथा विश्व की सर्वप्रसिद्ध इतिहास गाथा है जिससे मानव जगत् के अधिक से अधिक प्राणी सुपरिचित हैं। इसी कारण इन्डोनीजिया के तेरियन-तेरियन सेन्दरात्रि रामायण महोत्सव तथा विगत वर्ष के अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन से लेकर मैक्सिको (अमरीका) में अभी तक प्रचलित रामसीता महोत्सव तक सारे विश्व में, भूमंडल के पूर्वी छोर से पश्चिमी छोर तक सर्वत्र रामकथा गूँज रही है।

भारत के पूर्व में ब्रह्मदेश है, जो सन् 1936 तक भारत का ही अंग था। उसके पूर्वी सीमान्त को स्पर्श करता हुआ एक अन्य देश श्याम (थाई देश) है। जो कुछ दृष्टियों से वर्तमान भारत से भी अधिक भारतीय संस्कृति में रंगा हुआ है।

राम-राज्य आदर्श-विभूषित देश

थाई देश संसार का एकमात्र धन्य देश है, जिसने राम-राज्य के अलौकिक आदर्श को अपने देश में साकार करने का सबसे प्रामाणिक प्रयास किया है। यह इतिहास की एक विचित्र विडम्बना ही है कि राम के अपने देश भारत में राम-राज्य उतने अलौकिक रूप में साकार नहीं हुआ जितना पड़ोसी देश श्याम में। आंग्ल भाषा में जिसे थाईलैंड पुकारा जाता है, उसे वहाँ के निवासी श्याम या थाई देश कहकर ही संबोधन करते हैं। थाई एक जाति का नाम है, जो लगभग दो हजार वर्ष पूर्व चीन से निर्वासित होकर इस क्षेत्र में आ बसी थी। अतः थाई देश, जाति से चीनी नृवंश का होते हुए भी हृदय से इतना अधिक भारतीय है कि उसकी राम-राज्य निष्ठा के सम्मुख स्वयं भारतीय भी लज्जित हो जावें।

श्याम देश का संकेत हमारे रामायण महाकाव्य में भी मिलता है। सुग्रीव ने जब सीता की खोज के लिये वानरों को भिन्न-भिन्न दिशाओं में भेजा तो उसने मलय, यव द्वीप तथा श्याम देश की ओर जाने का भी संकेत किया। श्याम 1350 ई. तक कम्बोडिया (कम्बुज देश) का अंग था, जिसे भारत के प्रातःस्मरणीय ऋषि कम्बु ने नाम संस्कार देकर भारतीय संस्कृति की दीक्षा दी।

राम ही राजा

महर्षि वाल्मीकि ने कहा—'न हितद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपति।' अर्थात् वह राष्ट्र राष्ट्र ही नहीं जहाँ राम राजा नहीं। थाई देश ने इसी कथन को मानो जीवन का आदर्श स्वीकार कर लिया है। इसलिए वहाँ के राजाओं के नाम राम नाम से विभूषित हैं। यथा—रामखम्हेङ् (राम राजा) सन् 1283, श्री सूर्यवंश राम—सन् 1355, रामाधिपति—सन् 1350, रामराजा—सन् 1394, देवनगर के राम— सन् 1767, महवज्र बुद्धराम, महामतंक राम, सुखदेव राम, रामामात्य, रामाधिपति, रामसुवन, रामपुत्र इत्यादि।

अयोध्या तथा भारतीय तीर्थों की गरिमा

थाई देश में भारतीय तीर्थ धामों को भी उचित सम्मान मिला है। श्याम देश की प्राचीन राजधानी द्वारावती नामक नगर में थी। इसी के समीप सन् 1350 में श्याम के नरेश रामाधिपति ने जो षष्ठ राम कहलाते थे अयोध्या नामक नगरी बसायी, जो श्याम देश की सर्वप्रसिद्ध राजधानी बन गई। सन् 1369 में रामाधिपति के स्वर्गवास के पश्चात् उनका पुत्र रामसुवन (जो लवपुरी में शासक था) सिंहासन पर बैठा। अयोध्या तथा लवपुरी श्याम देश के अब तक समृद्ध नगर हैं। थाई देश की प्राचीन राजधानी अयोध्या वर्तमान राजधानी बैंकाक से लगभग पचास किलोमीटर उत्तर में स्थित है तथा लवपुरी बैंकाक से लगभग 155 किलोमीटर की दूरी पर श्याम देश के मध्य में स्थित है। अयोध्या नगर जिस प्रान्त में स्थित है उसका नाम विष्णु लोक है। इससे पूर्व की राजधानी सुखोदय है जिसे आजकल सुखोथई उच्चारण किया जाता है।

इसी प्रकार श्याम देश में स्वर्ग लोक, इन्द्रपुरी, राज्यपुरी, प्राचीनपुरी, सुरेन्द्रपुरी, महाराष्ट्र, स्वराष्ट्र, धर्मराज्य आदि नगर आज तक प्रसिद्ध हैं। श्याम देश की प्राचीन राजधानी अयोध्या के समान ही इण्डोनीजिया की राजधानी का नाम भी अयोध्याकर्ता रखा गया था जो रूपान्तरित होकर जोगजाकर्ता तथा जकार्ता (वर्तमान राजधानी) बन गया। अठ्ठारहवीं शताब्दी में श्याम देश की राजधानी समुद्र तट पर स्थित एक नये नगर, वर नगर में स्थापित की गयी जिसका उच्चारण परिवर्तित होते-होते आजकल बैंकाक हो गया है।

रामायण का जीवन्त रूप (राजा राम का प्रतिनिधि)

श्याम देश ने रामायण को इतनी आत्मीयता से अपना लिया है कि राम शत-प्रतिशत उनके अपने हो गये हैं।

थाई देश के राजा के सिंहासन के पीछे ऊँचा सोने के पत्र पर खचित राम के सिंहासन का चित्र है जिसे मारुति (हनुमान) ने शीश पर उठाया हुआ है। मूल चित्र

सोने का है जिस पर कीमती मणियों द्वारा नक्काशी का काम किया गया है। राजा का सिंहासन आगे, उक्त सिंहासन के चरणों में स्थित है। राजा अपने आपको राम का प्रतिनिधि मानता है। वह कहता है जैसे भगवान श्रीराम के वनवास जाने पर पीछे उनकी पादुका राज्य करती थी वैसे ही मैं उनकी पादुका के स्थान पर बैठा हूँ। राम सिंहासन के उक्त सुवर्ण चित्र की प्रतिकृति संस्कृत विहार संग्रहालय में सुरक्षित है।

राजपुरोहित वामदेव

थाई देश में आज तक राजपुरोहित का उपनाम वामदेव ही प्रचलित है। वामदेव वसिष्ठ के साथ महाराज दशरथ के दूसरे पुरोहित थे। चाहे आज श्याम देश में बौद्ध धर्म ही राज धर्म है फिर भी आज तक थाई देश के राजा भूमि बलराम का राज्य-तिलक राजपुरोहित वामदेव वेदमंत्रों के साथ उसी प्रकार सम्पन्न करवाता है जिस प्रकार कभी त्रेतायुग में भगवान राम का राज्याभिषेक वसिष्ठ-वामदेव ने वेद मन्त्रोच्चार सहित करवाया होगा।

धनुर्धारी राम की ओजस्वी मूर्ति

थाई देश के राष्ट्रीय संग्रहालय के मुख्यद्वार पर धनुर्धारी भगवान श्रीराम की ऐसी अलौकिक एवं ओजस्वी मूर्ति स्थापित है जिसकी तुलना की दूसरी मूर्ति सम्भवतः विश्व में दुर्लभ ही है। 18 फुट ऊँची ओजपूरित, विश्व को चुनौती देती हुई यह कांस्य मूर्ति देखते ही मन ओज से ऊर्जस्वित हो उठता है। इस अलौकिक प्रतिमा के चित्र अभी तक थाई देश के डाकटिकटों तथा दस टिक्कल के मुद्रा-पत्रों (नोटों) पर छपते हैं। उक्त मूर्ति के रंगीन चित्र संस्कृति विहार संग्रहालय में सुसज्जित हैं।

रामकीर्ति : रामाकिएन (थाई देश की राम कथा)

थाई भाषा में रामकथा को रामकिएन कहते हैं जिसका अर्थ रामकीर्ति ही होता है। यह थाई देश के कोटि-कोटि रामभक्तों की श्रद्धा का ही चमत्कार है कि थाई लोग राम को अपने देश का तथा रामायण की घटनाओं को साक्षात् अपने देश की घटनाएँ ही मानते हैं।

थाई देश की रामलीला

थाई देश में रामलीला कई प्रकार से होती है। मुखौटा लीला जिसमें नर्तक खोन (मुखावर्त) पहन कर नृत्य करते हैं। भिन्न-भिन्न पात्रों के लिए भिन्न-भिन्न मुखौटे होते हैं। पात्रों के स्थान पर मंच निदेशक बोलता रहता है। पात्र ऊँची कुदान लेने में अभ्यस्त हैं। अभिनय के लिए दो रामकिएन लिखे गये—एक महाराजा राम प्रथम द्वारा और दूसरा महाराजा राम द्वितीय द्वारा।

छायाचित्र लीला

थाई देश में छायाचित्रों द्वारा रामलीला भी अत्यन्त रोचक एवं प्रभावोत्पादक रहती है। रामायण के भिन्न-भिन्न पात्रों के चलते-फिरते कठपुतली चित्र बड़ी सुन्दर लीला प्रस्तुत करते हैं। दो दण्डों के द्वारा छाया-चित्र को चलाया जाता है। इसे थाई देश में नाङ् कहा जाता है।

इस प्रकार थाई देश में राजा से लेकर प्रजा तक, अतीत से लेकर वर्तमान तक, राजनीति से लेकर व्यवहार नीति तक, साहित्य कला से लेकर लोक कला तक, मूर्ति-शिल्प से लेकर कठपुतली नृत्यों तक जनजीवन के रोम-रोम में रामचरित्र की पवित्र सुवास सर्वत्र, सर्वव्यापक तत्त्व के रूप में आज तक विद्यमान है। श्याम देश के हृदय में प्रतिष्ठित उस राम को हमारी शत-कोटि वन्दनाएँ समर्पित हो।

'भारतीय इतिहास के महान् तथा घटनापूर्ण-काल में अपने व्यस्त जीवन की संध्या-बेला में मैंने रामायण की जो कहानी कही है, मेरी राय में, भारतवासियों के प्रति की गयी यह मेरी सर्वोत्तम सेवा है। इस कार्य से मुझे मन की शांति और तृप्ति मिली है।'

—च. राजगोपालाचारी

× × ×

'...हालांकि मध्य तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के अधिकांश भूभाग भारतीय सभ्यता के (उत्कर्ष) समृद्ध केन्द्र थे परन्तु वे स्थान कभी भी भारत के राजाओं द्वारा आधिपत्य नहीं थे न ही वे स्थान भारत द्वारा किसी सैनिक योजना के द्वारा भयानकता व डर का गवाह बने। (वे पूर्णतः स्वतंत्र थे, राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से) और उनके लोगों ने भारतीय तथा स्थानीय तत्त्वों के मध्य एकात्मता का प्रतिनिधित्व किया। उनका किसी भारतीय राज्य से सम्बन्ध नहीं था, भारत भूमि को पवित्र भूमि के रूप में देखते थे...'

—अरुण भट्टाचार्य

× × ×

सांस्कृतिक दृष्टि से भारत ने चीन पर विगत 20 शताब्दियों से न केवल विजय प्राप्त की है अपितु उस पर वर्चस्व भी बनाया। जबकि इस सफलता के लिए उसने एक भी सैनिक नहीं भेजा।

—हू शिह, अमरीका में पूर्व चीनी राजदूत

बालि द्वीप

सौन्दर्य

बालि द्वीप रंग-बिरंगे फूलों, धान के लहराते पौधों, अलंकृत देवपीठों और नृत्य-नाटिकाओं की झनकारों से युक्त इस धरती से अतीत किसी माया-लोक का टुकड़ा प्रतीत होता है।

हिन्दुत्व

वहां का वातावरण पूर्णतया हिन्दू है और इसलिए और भी विशिष्ट लगता है कि विश्व भर में वहीं ऐसे हिन्दू हैं, जो भारतवंशी नहीं हैं। वैदिक और तांत्रिक परम्पराओं के मिश्रण के परिणामस्वरूप वहाँ का हिन्दू धर्म कुछ अलग-सा लगता है।

तंत्र

तांत्रिक प्रभाव के कारण ही शायद वहां की जीवन पद्धति पूर्णतया अनुष्ठानमयी है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश के सम्मिलित रूप अनंत की उपासना की जाती है, अनंत की मूर्ति नहीं बनायी जाती वरन् पत्थर का एक ऊँचा-सा रिक्त सिंहासन अनंतपीठ के रूप में मन्दिरों में और प्रत्येक गृह में भी होता है।

मन्दिरों में खुदाई (देव मूर्तियां)

मन्दिरों में खुदाई के सुन्दर अलंकरण होते हैं, सबसे अधिक मूर्तियाँ देवताओं के पहरेदार एक वामनरूपी अर्धदेवता की होती है। इन मूर्तियों से बालि में चौराहे और सभी सार्वजनिक स्थान अलंकृत होते हैं तथा अभिनय स्थल भी।

पूजा-पद्धति

सुबह से संध्या तक पाँच बार उपासना और बालि (नारियल की पत्तियों से बने टोकरीनुमा दोने में कुछ फूल, पके हुए चावल, चीनी और धूप) घरों के प्रत्येक कमरे, द्वारों, चौराहों यहाँ तक कि स्कूटरों और कारों पर भी रखे जाते हैं। बालि में राम को विष्णु का अवतार मानकर रामायण पर धार्मिक दृष्टि से आस्था और श्रद्धा है।

रामायण

सुबह से लेकर रात तक बालि के गाँव-गाँव में अनेक-अनेक रूपों में रामायण के प्रस्तुतीकरण होते रहते हैं। रामायण कथा का समावेश प्राचीन अनुष्ठान परक नृत्यों जैसे केचक और लेगांग आदि में भी कर दिया गया है। इन अनुष्ठान-नृत्यों में प्रारम्भिक पूजा-अनुष्ठान उसी प्रकार प्रस्तुत होते हैं। केचक में नृत्य के पहले ओझा आकर बीच में रखे प्रकाशित दीपस्तंभ के पास पूजन करता है और एकत्र अभिनेताओं पर अभिमंत्रित जल छिड़कता है, उसके बाद नृत्य प्रारम्भ होता है। लेगांग के अंत में पूजन-प्रक्रिया में नर्तकियाँ आपस में और दर्शकों पर फूलों की पंखुड़ियां बरसाती है। इस प्रकार इन नृत्यों के आनुष्ठानिक रूप की रक्षा बराबर की जाती है।

मुक्ताकाशी रंगस्थली

बालि के इन नृत्यनाट्य प्रदर्शनों के लिए एक विशेष प्रकार की मुक्ताकाशी रंगस्थली का निर्माण किया जाता है। पृष्ठभूमि में खुदाई से अलंकृत एक विशाल भित्ति होती है, उसके बीच में एक द्वार ऊँचे कपाटों वाला, और एक बड़ा-सा प्रांगण। द्वार कुछ ऊँचाई पर होता है, जिससे अभिनय स्थल तक आने के लिए मुंडेरदार सीढ़ियां होती है, उनकी मुंडेरों पर सुन्दर मूर्तियाँ अंकित होती है। प्राचीन-काल में मन्दिरों के प्रांगण में रंगमंच की यही व्यवस्था रहती होगी, जिसका उपयोग अब सभी नाट्यरूपों के लिए किया जाता है।

केचक

केचक बड़ा ही प्रभावी नाट्यरूप है, विश्व में वह अकेला ही नाट्यरूप होगा जिसमें किसी भी प्रकार के मौखिक अथवा वाद्यसंगीत का प्रयोग नहीं होता। उसके दसियों पुरुष अभिनेता केचक-केचक की ध्वनि करते हुए मंच पर अनेक आकृतियों के नृत्य-मंडल बनाते हैं। कभी पृष्ठभूमि में ध्वनि के रूप में प्रभावी होते हैं और कभी नाटक के पात्र भी बन जाते हैं। सीताहरण के दृश्य में रावण द्वारा खींची जाती बिलखती सीता को ऊँचे हाथ उठाए केचक-केचक करते हुए नर्तक समूह में ढक लेते हैं, कभी रावण की उग्र आक्रामक गति से डरकर पीछे हट जाते हैं और डरी-सहमी सीता दिखायी देती कि सब उन्हें फिर चारों ओर से घेरकर पर्दा सा बन जाते। सीताहरण का दृश्य केचक में जितना प्रभावशाली लगता है, उतना किसी अन्य नृत्यनाट्य रूप में नहीं लगता। इस प्राचीन अनुष्ठान नृत्य में रामकथा का समावेश बड़ी ही कुशलता और प्रभाववत्ता के साथ किया गया है, जिससे वह इसमें बड़ी स्वाभाविकता से समाविष्ट हो गयी है।

वायांगवांग

बालि के वायांगवांग में प्रमुखतः रामकथा ही प्रस्तुत होती है, वायांगवांग पर आधारित रामायण बैले आधुनिक सृष्टि है। इसमें दो घंटे में, सीताहरण से लेकर रावण वध तक की पूरी कथा दिखा दी जाती है। यह बड़ा ही लोकप्रिय है और प्रतिदिन उसका प्रस्तुतीकरण कहीं-न-कहीं होता रहता है। बालि की नृत्यनाट्य की सरकारी अकादमी में परम्परागत नृत्य और संगीत पद्धतियों के साथ रामायण नृत्यनाट्य भी प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनमें परम्परागत प्रदर्शनों की गतियों और मुद्राओं का प्रभाव व्यंजित होता है।

रामायण पाठ

बालि में रामायण ककाविन के पाठ की भी शताब्दियों पुरानी रोचक परम्परा है। ककाविन के विशेषज्ञ पाठकर्ताओं के दो दल परम्परागत पोशाकों में मंडप में आमने-सामने बैठ जाते हैं। एक दल की ओर से रामायण ककाविन के छंदों का पाठ किया जाता है, और दूसरे दल का नायक उन छंदों की आधुनिक बालि भाषा में व्याख्या करता है। रामायण ककाविन की रचना संस्कृत के वर्णवृत्तों में की गयी है, अतः बसंततिलका, सुमधुर मालिनी और शार्दूल विक्रीड़ित छंदों की विभिन्न लयों के अनुसार पाठ बड़ा ही आकर्षक लगता है।

कलाएं

सभी प्रमुख मन्दिरों अथवा दर्शनीय स्थलों पर रामायण-कथा के अंकित पट बिकते हैं—इन पर बड़ी कलात्मकता से राम-रावण युद्ध अथवा सीता की अग्नि-परीक्षा आदि के प्रसंग अंकित रहते हैं। इसके अतिरिक्त हड्डियों पर खुदाई करके विष्णु के विभिन्न अवतारों की मूर्तियों का निर्माण अथवा काष्ठपटों में राम-सीता और अन्य देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का अंकन बालि की प्रमुख कलाएं हैं।

।विद्या धर्मेण शोभते।

विद्या धर्म से शोभायमान होती है।

× × ×

दुनिया के महान् धर्मों का 40 वर्षों तक अध्ययन करने के दौरान मुझे इतना पूर्ण, इतना वैज्ञानिक, इतना दार्शनिक और इतना आध्यात्मिक दूसरा कोई धर्म नहीं मिला जितना वह धर्म जिसे हिन्दू धर्म के नाम से जाना जाता है। आप इसे जितना अधिक जानेंगे उतना ही अधिक प्यार करेंगे और जितना ही अधिक समझेंगे उतना ही इसका आदर करेंगे।

—ब्रिटिश आयरिश महिला, डा. एनी बीसेंट

'रामायण' विश्व ऐक्य का आधार

रामायण भारत की आत्मा का महाकाव्य है। यह शब्द नोबेल पुरस्कार विजेता रवीन्द्रनाथ टैगोर के हैं। वास्तव में रामायण और महाभारत दो महान् ग्रंथ हैं जिन्होंने पूरे विश्व की कला, इतिहास, संस्कृति और सभ्यता पर, वहां के मनीषियों एवं जन-जीवन पर बहुत प्रभाव डाला है।

होमर के मानस पर भारतीय महाकाव्यों का प्रभाव—पाश्चात्य विद्वानों का विचार है सभ्यता यूनान के एथेन्स नगर से प्रारम्भ हुई जो सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तू की स्मृतियों से प्रसिद्ध है तथा यूरोप के भिन्न-भिन्न नगरों को सभ्यता का दान देने के बाद वह लहर अमेरीका में पहुंची। उसे अंतिम दान देकर फिर वह सभ्यता की धारा सदा के लिये विलुप्त हो गई। इस प्रकार पश्चिमी लोगों को भ्रान्ति है कि सभ्यता का क्षेत्र एथेन्स से हालीवुड तक ही है तथा उसे अन्य किसी प्रदेश की सभ्यता का अंश भी उसे प्राप्त नहीं हुआ।

वास्तव में यूनान के एथेन्स नगर का नाम यूनान के जिस राष्ट्रीय महाकवि होमर के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है, वह राष्ट्रीय महाकाव्यों का गायक स्वयं भारतीय महाकाव्यों से प्रभावित, प्रेरित और संचालित था। होमर भारत के महाकवि सूरदास के समान दोनों नेत्रों से विहीन प्रज्ञाचक्षु होकर एथेन्स नगर की सीढ़ियों पर बैठा हुआ अपने हृदय के गुम्फित भावों को काव्य कलिकाओं में प्रकट करता जाता था। उसके दो प्रसिद्ध महाकाव्य हैं—इलियड और ओडिसी। यूरोपीय साहित्य में होमर के इलियड और ओडिसी का वही स्थान है जो भारतीय एवं एशियाई साहित्य में राम कथा और महाभारत कथा का है। होमर का काव्य शताब्दियों तक यूनानी शिक्षा का आधार रहा है और पेशेवर चारण (काव्योपजीवी) पूरे देश का भ्रमण करते हुए होमर की काव्य रचनाएं गा-गाकर सुनाया करते थे और यूनान के साहित्यकार होमर से अपनी कथावस्तु ग्रहण करते रहे हैं। होमर की रचनाएं इतनी उत्कृष्ट कोटि की थी कि पूर्ववर्ती गाथा-साहित्य लुप्त हो गया। वह होमर का इलियड स्वयं रामायण से प्रभावित एवं प्रेरित है। तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि इलियड की कथा रामायण से उधार ली गयी है या

प्रभावित है या पूरी तरह प्रेरित है क्योंकि इलियड की कथा से कई शताब्दियों पूर्व रामायण की कथा प्रचलित थी।

फ्रेंच साहित्यकार फाउची अपने रामायण के फ्रेंच अनुवाद की भूमिका में लिखते हैं—रामायण की रचना होमर के काव्यों से बहुत पुरानी है। होमर ने अपने विचार उससे ही लिये हैं।

पहले तीन अध्यायों की पूर्ण समानता देखकर लेखक को अपनी पुस्तक 'राम और होमर' में ऐसा लिखना पड़ा कि वाल्मीकीय रामायण को पढ़कर ही होमर ने अपने ग्रंथ रचे हैं। ये बातें पंजाब यूनिवर्सिटी के प्रो. आर. ए. दास ने तीन-चार हजार वर्ष के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों से जो उन्होंने लंदन के तिजोरी बैंक में अमानत रखे हैं, से सिद्ध की।

रामायण की कथा आप सब जानते हैं। इलियड जो यूनानियों का महाकाव्य है उसकी कथा क्या है उसको संक्षेप में आपको बताता हूँ।

एक राजा ने अपने बेटे को वनवास दे दिया। उसके साथ उसकी पत्नी गयी। उसके साथ भाई भी चला गया। जंगल में रहने लगे। वनवासी लोगों से मित्रता कर ली। उस राजकुमार का नाम था Manalus उसकी पत्नी का नाम हेलेन था। उसकी स्त्री श्रेष्ठ सुंदरी थी। उसको Troy नामक द्वीप का राजकुमार पेरिस प्राप्त करना चाहता था। प्राप्त करने की चेष्टा करता रहा पर स्वयंवर में उसने Manalus को वरा। अतः वह हाथ मलता रह गया। वह उसे प्राप्त नहीं हुई। पर घात लगाये रहा।

एक बार Manalus शिकार को गया था। तब उसने हेलेन को अकेली देखकर (Troy द्वीप का राजकुमार) उसको उठाकर ले गया। और समुद्र के पार जाकर द्वीप में उसको बंदी बना दिया। तब Manalus ने दो बार दूत को भेजा। देखो, मेरी पत्नी वापस भेज दो। शराफत से काम लो पर उसने नहीं माना।

पेरिस का एक भाई था। पेरिस को उसने कहा—क्यों परायी औरत को घर में रखते हो, क्यों उसको उठाकर ले आये हो? अच्छा नहीं किया। इसे वापस कर दो। उसने उसको लात मारकर बाहर कर दिया। तो वह आकर Manalus से मिल गया।

आखिर में उससे युद्ध हुआ और युद्ध में जैसे रावण के पेट में अमृत कुंभ था। जब तक अमृत कुंभ का भेदन नहीं होता तब तक ग्रीवा कटने पर फिर लग जाती थी। रावण मरता ही नहीं था। तब विभीषण ने भेद बताया कि इसके पेट में अमृत कुंभ है। पेट में बाण मारिये, तब मरेगा। उसी प्रकार उसने वहाँ एक सेनापति बनाया कहानी में ऐटीलिज को। ऐटीलिज सेनापति था ट्राय द्वीप के

राजकुमार पेरिस का। उसको तीर मारते तो तीर टूट जाते थे। वह नहीं मरता था। शरीर फौलाद का बना हुआ था। तब पेरिस के भाई Antenor ने बताया यहाँ मारने से नहीं मरेगा। इसकी मां ने जनमते ही अमृत कुंड में डुबोया था। उसका शरीर वज्र का बन गया। अतः वहाँ मारने से नहीं मरेगा। पर उसकी मां ने इसे एड़ी से पकड़कर डुबोया था अमृत कुंड में। इसलिये एड़ी सूखी रह गई, कच्ची रह गयी। इसलिये ऐड़ी पर मारिये तब वह मरेगा। एड़ी पर मारा तब वह मरा। और Troy में आग लगायी गयी, हेलेन को वापस लाया गया। पूरी रामायण की कहानी। यूनान के अंधे होमर ने रामायण की कथा चुराकर इलियड महाकाव्य लिखा।

रामायण	इलियड
1. रामायण, लंका विजय का महाकाव्य है। राम+अयण का एक अर्थ है राम का सैनिक अभियान। दूसरा अर्थ है राम का धाम। लंका—तिब्बती एवं अनेक वनवासी भाषाओं में लंका का अर्थ ही द्वीप है।	1. यूनानी महाकाव्य इलियड का नाम Ilium इलियम से बना है। जिसका अर्थ है Troy (Troy द्वीप की विजय)। इलियड में एशिया माइनर के Troy द्वीप पर यूनानियों की विजय का वर्णन है।
2. राम व लक्ष्मण में परस्पर अतीव प्रेम है।	2. Sparta के दो राजपुत्रों Manalus और Agamemnon में परस्पर प्रेम है।
3. दशरथ की आज्ञा से वनवास।	3. पिता Argal ने राज्य से निकाल दिया।
4. राम ने सीता को स्वयंवर में जीता। सीता विश्व की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी है। जिसके रूप का वर्णन करने में तुलसीदासजी लिखते हैं—गिरा अनयन नयन बिनु बानी। (1-228/2 मानस) इसे प्राप्त करने के लिये लंकाद्वीप का रावण ललचाता रहता है।	4. Manalus ने हेलेन को स्वयंवर में जीता, जिसके रूप-सौंदर्य का वर्णन करने वाला महाकवि स्वयं अनैन है। इसे प्राप्त करने के लिये Troy द्वीप का राजकुमार पेरिस Paris सदा ललचाता रहता है।
5. लंका समुद्र के बीच स्वर्णिम द्वीप है।	5. Troy समुद्र पर ऊँचे महल वाला द्वीप है।

6. लंका में विश्रवा की राक्षस-पत्नी से उत्पन्न बलशाली पुत्र रावण का राज्य था।	6. Troy में राजा Priam का पुत्र पेरिस बड़ा घमण्डी था।
7. राम की अनुपस्थिति में रावण सीता को चुरा ले गया।	7. Manalus की अनुपस्थिति में Troy का राजकुमार पेरिस हेलेन को चुरा ले जाता है।
8. राम वनवासियों की विशाल सेना लेकर लंका को घेर लेते हैं।	8. Manalus ग्रीक राजकुमारों की 1200 जहाजों का बेड़ा लेकर Troy को घेर लेता है।
9. रावण का भाई विभीषण रावण के पापों से सहमत नहीं था।	9. Troy का बुद्धिमान Antenar एण्टेनर पेरिस के कुकृत्यों से सहमत नहीं।
10. विभीषण रावण को उपदेश देता है कि सीता को लौटा दे।	10. एण्टेनर पेरिस को उपदेश देता है कि हेलेन को लौटा दे।
11. विभीषण रावण को छोड़कर राम से जा मिलता है।	11. एण्टेनर पेरिस को छोड़कर Manalus के साथ जा मिलता है।
12. विभीषण राम की सेना को बचाता है तथा रावण की मृत्यु की युक्ति बतलाता है।	12. एण्टेनर न होता तो Manalus मारा जाता।
13. युद्ध में रथ तथा घुड़सवार, दैवी अस्त्रों का प्रयोग।	
14. मेघनाथ के बाण लौट आते थे।	14. Troy के सेनापति के बाण लौट आते थे।
15. हनुमानजी की गर्जना से आतंक छा जाता था।	15. ग्रीक योद्धा Achilles की गर्जना से आतंक छा जाता था।
16. हनुमान ने लंका तोड़ डाली।	16. Troy के लौहद्वार को तोड़ा।
17. हनुमान ने बहुत विशाल और बहुत सूक्ष्म रूप बनाकर सुरसा को पराजित कर, लंकिणी एवं अक्षयकुमार को मारकर युक्ति से लंका की दुर्गप्राचीर के भीतर प्रवेश किया।	17-18. Colysseus ने एक विशाल लकड़ी का घोड़ा बनाने की युक्ति बताई जिसके भीतर बैठे हुए ग्रीक योद्धा घोड़े के साथ ही Troy में प्रविष्ट हो जाएं।

18. भारी पत्थरों एवं वृक्षों से भी युद्ध हुआ। तलवार, भाला एवं धनुषबाण का भी प्रयोग हुआ।

19. कुंभकर्ण जब युद्ध भूमि में गिरा तो बड़ी संख्या में सेना नीचे दबकर मर गई।

19. Troy का वीर मार्स Mars जब मरकर गिरा तो सात एकड़ जमीन घिर गई।

20. देवता आकाश में युद्ध देखने के लिये प्रकट हुए।

20. देवता आकाश में दर्शक।

21. हनुमान के अंग वज्र के थे।

21. Anchilles के अंग वज्र के थे।

22. रावण मरता नहीं था। उसके उदर में अमृत कुंभ था। पेट में बाण लगने से मरा।

22. बाण शरीर पर लगकर टूट जाते थे।

23. महाभारत कथा में दुर्योधन की माता गांधारी ने दुर्योधन के नग्न शरीर को देखने मात्र से उसे वज्र के समान अंग वाला बना दिया था। उसके शरीर पर गदा पड़ने पर टूट जाती थी किन्तु उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता था। केवल गुप्त-अंग को लंगोट से ढक लेने के कारण ही अंग दुर्बल रह गया था। श्रीकृष्ण के संकेत पर भीम ने वहीं गदा मारी तब दुर्योधन की मृत्यु हुई।

23. Anchilles की एड़ी मर्मस्थान था। वहीं बाण लगने से Anchilles मरा। Anchilles के जन्म के समय उसकी माता ने उसे एक अमृत सरोवर में डुबोया जिससे सब अंग वज्र के बन जायें, केवल उसकी एड़ी से जहाँ से उसकी माता ने पकड़ कर डुबोया, कमजोर रह गयी।

24. हनुमान ने अपने को स्वेच्छा से बंधवा लिया ताकि उसे रावण की राजसभा में पहुँचने का अनायास ही अवसर मिल जाय। लंकावासी कुतूहलवश हनुमान को मनोविनोद के लिये बांधकर रावण के दरबार में ले गये।

25. हनुमान की पूंछ को आग लगाने से लंका का नाश हो गया।

24-25. यूनानियों के लकड़ी के घोड़ों को खेल-खेल में भीतर ले जाने से Troy का पतन हो गया।

26. राम सीता सहित लौटकर अपनी राजधानी अयोध्या में पधारे। अयोध्या का अर्थ है युद्ध में न जीतने योग्य।	26. Manalus हेलेन सहित लौटकर अपनी राजधानी स्पार्टा में पधारे। स्पार्टा में जन्म के साथ ही बच्चों को एक पहाड़ी से लुढ़का दिया जाता था ताकि कमजोर बच्चे मर जायें।

इस प्रकार यूनान का इलियड रामायण का अनुवाद है। सुकरात का भारत के एक मनीषी से वार्त्तालाप यूनानी इतिहासकारों द्वारा भी प्रमाणित तथ्य है। अरस्तू का सिकन्दर से भारत से भगवद्गीता और एक संत लाने का आग्रह, सिकन्दर का भारत के दार्शनिकों से वार्त्तालाप, प्लेटो की विचारधारा पर भारतीयता की छाप, सभी विश्व विश्रुत तथ्य है। स्पष्ट है जिस यूनान को पश्चिम अपना गुरु मानता है वह स्वयं भारत से प्रेरित एवं प्रभावित है अतः प्रथम सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र यूनान न होकर भारत है।

कविवर अब्दुल रहीम खानखाना—कविवर रहीम स्वयं अपनी तपःपूत लेखनी से रामचरितमानस अपना अर्घ्य चढ़ाते हुए कहते हैं यह हिन्दुओं के लिए वेद के समान, मुसलमानों के लिए कुरान के समान है—

रामचरित मानस विमल, सन्तन जीवन प्राण।
हिंदुवान को वेद सम, यवनन प्रकट कुरान।।

सरमद शहीद व दाराशिकोह—तुलसीदासजी जब बूढ़े थे उस समय शाहजहां का राज्य था। तुलसीदासजी अकबर के समय और जहांगीर के समय में थे। छः मुगल बादशाहों का शासन देखा था। वे 125 वर्ष तक जीये। औरंगजेब ने अपने पिता को कैद किया। उस समय एक फकीर था। उसका नाम सरमद शहीद था। वह आया था फिलस्तीन से (पैलेस्टाइन से)। उन्होंने औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह को अपना शिष्य बनाया। उसको रामायण पढ़ायी, उपनिषद्, गीता पढ़ायी। औरंगजेब ने दाराशिकोह को हाथी के पैर के नीचे कुचलवा दिया और सरमद को दिल्ली के लाल किले पर, फांसी पर लटकवा दिया। फांसी पर चढ़ते हुए सरमद ने एक रुबाई गायी। रुबाई बड़ी मार्मिक है। इसका भावार्थ यह है—सरमद इश्क की गली में बहुत बदनाम हुआ। यहूदी के दीन से तू इसलाम में आ गया और फिर मालूम नहीं क्या हुआ तूने अल्लाह को भी छोड़ दिया। असली सत्य की खोज के लिये और अंत में लक्ष्मण और राम की शरण में आ गया। राम और लक्ष्मण की जय बोलकर उसने प्राण छोड़े। दिल्ली की जामा मस्जिद की सीढ़ियों के पास उसकी समाधि बनी हुई है।

1917 में **जिन्ना** ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा था—रामायण और महाभारत इस देश के राष्ट्रीय महाकाव्य हैं। इनको समझे बिना आप भारत से एकात्म नहीं हो सकते।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की दूसरे क्रान्तिकारी अशफाक उल्ला से बड़ी दोस्ती थी। वे उसे अपना छोटा भाई मानते, वे उसे अपने घर ले जाते और उसे लक्ष्मण कहकर पुकारते। सबकी नजर में वह राम-लखन की जोड़ी बड़ी प्यारी थी। वे घर पर साथ खाना खाते, साथ खेलते, साथ देश भक्ति के तराने गाते और अंत में दोनों साथ-साथ फांसी पर चढ़ गये। एक बार अशफाक उल्ला के पेट में भीषण दर्द हुआ, वे बेहोश हो गये, वे राम-राम चिल्लाने लगे। लोगों ने कहा—'अल्लाह-अल्लाह' बोलो किन्तु वे राम-राम चिल्लाने लगे। जब रामप्रसाद बिस्मिल पहुंचे तो वे उठकर उनके गले लिपट गये और कहा, 'अब मेरा राम आ गया है। इस दृश्य को देखकर लोगों को रामायण में वर्णित लक्ष्मण की बेहोशी के बाद राम से मिलने की बात याद हो आई। यह हमारी संस्कृति नस-नस में है। इसने सबके दिलों को जोड़ा है। अश्फाक और बिस्मिल के दिलों को एक बना दिया है, पूरे देश को एक बना दिया है।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी इतिहासकार मिचलेट ने वाल्मीकीय रामायण के मूल्यांकन में लिखा है, 'जिस किसी ने महान् कार्य किया है या महान आकांक्षाएं संजोयी है, उसे रामायणरूपी अमृत की प्याली से जीवन और यौवन का एक लम्बा घूंट पीने दो। पश्चिम में सभी कुछ संकीर्ण हैं, यूनान छोटा और तंग है तथा वहां मेरा दम घुटता है। जुडिया शुष्क है तथा मैं वहां हांफ जाता हूँ। मुझे महान् एशिया और गहन प्राची की ओर देखने दो। वहां मिलता है मेरे मन का महाकाव्य रामायण—हिन्द महासागर जैसा विस्तृत, सूर्य से ज्योतित एवं धन्य एक दिव्य संगीत का ग्रंथ जिसमें कहीं लय भंग नहीं। वहां एक अपार शान्ति का राज्य है, कर्तव्यों के संघर्ष के बीच भी अपार माधुर्य है, अनन्त सौहार्द्र है जो सब जीवों पर प्रेम, दया, क्षमा का अपार और अथाह सागर लहरा देता है।

गांधीजी और रामायण

तारक मन्त्र 'राम'

प्रायः संदेह किया जाता है कि जैसा रामायण में वर्णित है, 'राम-राम' लिखने मात्र से समुद्र में पत्थर कैसे तैरे होंगे। गांधीजी का दावा है कि पत्थर तैरने की बात तो दूर, राम नाम के प्रभाव से इन्सान तैरते भी देखे गये हैं और यह सच भी है। रत्नाकर डाकू कैसे तरा, तुलसीदास के प्रारम्भिक जीवन का पाप-पंक कैसे धुला? स्वयं गांधी अधमात्मा से महात्मा कैसे बने? स्वयं गांधीजी के शब्दों में, 'मैं संसार

में यदि व्यभिचारी होने से बचा हूँ तो राम नाम की बदौलत। मैंने दावे तो बड़े-बड़े किये हैं, किन्तु यदि मेरे पास राम नाम न होता तो तीन स्त्रियों को मैं बहिन कहने के लायक न रहा होता। जब-जब मुझ पर विकट प्रसंग आये हैं, मैंने राम का नाम लिया है और बच गया हूँ।'

रामनाम से प्राणरक्षा और प्रण-रक्षा

जब गांधीजी का अपना सगा पुत्र रामदास मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ था और सभी डाक्टरों ने निराशाजनक जवाब दे दिया था, उस समय भी गांधीजी का राम-विश्वास चलायमान नहीं हुआ था। कुछ डाक्टरों ने कहा कि उसे अण्डा और मांस इत्यादि दिये बिना बचने की एक प्रतिशत भी सम्भावना नहीं है। गांधीजी ने आपद्-धर्म का बहाना करके बच्चे के प्राण बचाने के लिए भी हिंसा को स्वीकार नहीं किया। सारी रात राम नाम स्मरण करते रहे और बच्चे के मुंह में गंगाजल डालते रहे। उनकी निष्ठा के चमत्कार से बच्चा सर्वथा निरोग हो गया।

राम ही रक्षक

अपनी रक्षा के लिए उन्होंने कभी किसी को शस्त्र लेकर अपने संग नहीं चलने दिया। अफ्रीका में गोरों के एक आक्रमण के पश्चात् जब बापू जख्मी हो गये, उसके पश्चात् उनके मित्र कैलनवक ने अपनी जेब में रिवाल्वर रखकर बापू की रक्षा के लिए संग चलना चाहा। गांधीजी ने स्पष्ट कहा, 'फेंक दो रिवाल्वर। तुम्हारा विश्वास भगवान् पर है या रिवाल्वर पर? मेरी रक्षा के लिए मेरे साथ आने की जरूरत ही क्या है? क्या मैं भगवान् के हाथ में सुरक्षित नहीं हूँ? जब तक उसे मुझसे काम लेना है, वह अवश्य मेरी रक्षा करेगा।'

गांधीजी के लिए रामधुन की शक्ति फौजी ताकत से सैकड़ों गुना बड़ी थी। उनका रघुपति राघव राजाराम, पतित-पावन भी था। राम ने ही उन जैसे पतित को उन जैसा पावन बना दिया।

वे अन्यत्र कहते हैं, 'मैं खुल्लमखुल्ला कबूल करता हूँ कि कुरान, बाइबिल तथा दुनिया के अन्यान्य धर्मों के प्रति मेरा आदर भाव होते हुए भी मेरे हृदय पर उनका इतना असर नहीं हुआ जितना की श्रीकृष्ण की गीता और तुलसीदास की रामायण का होता है।' क्या ही अच्छा हो यदि आज गांधीजी के नाम की कमायी खाने वाले नेतागण गांधीजी की महानता के इस रहस्य को समझ पाएं एवं धर्मनिरपेक्ष तथा ईश्वरविहीन जीवन तंत्र को त्याग एक जीवित ईश्वर में जीवित आस्था अपना लें।

शान्ति का आकांक्षी जिज्ञासु भाव से महात्मा गांधी के पास पहुंचा और उसने शांति प्रदात्री संजीवनी बूटी की याचना की। महात्माजी ने मानस का पारायण करने

को कहा। जिज्ञासु चौंका। उसने कहा, जिस मानस में तोता, मैना की कहानियों की भाँति यह लिखा हुआ है कि कौवे ने कहा, गरुड ने सुना वह ग्रंथ बीसवीं सदी के बुद्धिजीवी के सब शंकाओं को किस प्रकार दूर कर सकेगा और किस प्रकार शांति दे सकेगा। महात्माजी ने कहा आखिर वह उनके पास आया ही क्यों? उन्हें शान्ति का उपाय बताने में सक्षम समझकर ही तो। तब फिर जब वे एक उपाय बता रहे हैं, तब उसका प्रयोग किये बिना ही उस उपाय की नुक्ताचीनी करने लग जाना कहां की बुद्धिमानी होगी। वह जिज्ञासु महात्माजी के प्रति श्रद्धालु था ही अतः उसने महात्माजी की बात मानकर मानस का पारायण प्रारम्भ कर दिया।

उसका मनोयोग बढ़ता गया और जब वह ग्रन्थान्त में काक भुसुण्डि गरुड़ संवाद तक पहुँचा, तब तो यह स्थिति हो गई कि स्वतः स्फूर्त होकर उसने अपनी पहली शंका के लिये महात्माजी से करबद्ध क्षमा-याचना की। रत्नों का आकांक्षी होकर वह मूढ़तावश फेनों से उलझ रहा था। इसका स्पष्ट संकेत उसकी बुद्धि ने दे दिया।

गांधीजी को डैमोक्रेसी (जनतन्त्र) के सच्चे आशय का बोध तुलसी के महाकाव्य रामचरितमानस से हुआ। श्री देवेन्द्र स्वरूप ने पाञ्चजन्य में प्रकाशित अपने लेख में सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय के खण्ड '35' को उद्धृत करते हुए इस सन्दर्भ में गांधीजी का कथन प्रस्तुत किया है। गांधीजी ने कहा, 'मेरी डैमोक्रेसी' तो रामायण में लिखी पड़ी है, उसमें जो भाव निकलता है, रामचन्द्रजी उसी के अनुसार राज्य करते थे। गांधीजी राम नाम और राम राज्य को हिन्दू-मुस्लिम एकता और राष्ट्रीयता का आधार मानते थे। 20 मार्च 1927 को हरिद्वार में 'राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्' में भाषण देते हुए उन्होंने कहा, 'संस्कृत का अध्ययन करना प्रत्येक भारतीय विद्यार्थी का कर्तव्य है। हिन्दुओं का तो है ही, मुसलमानों का भी है, क्योंकि आखिर उनके पूर्वज भी तो राम और कृष्ण ही थे और अपने इन पूर्वजों को जानने के लिए उन्हें भी संस्कृत सीखनी चाहिए।'

अन्तिम यात्रा

गांधीजी की प्रार्थनासभा में जब पहली बार बम का धमाका हुआ तो लोग उठकर भागने लगे। गांधीजी ने डा. सुशीला नैयर को कहा, 'ये लोग भागते क्यों हैं? प्रार्थना में यदि गोलियाँ भी चले तो भागना नहीं चाहिये।' यदि राम नाम गाते मृत्यु हो तो इससे अधिक मंगलमय अवसर क्या हो सकता है! फिर गांधीजी ने कहा—'मुझे इन लोगों की आलोचना करने का क्या अधिकार है? क्या जाने जब स्वयं मुझ पर ऐसा संकट आयेगा तो मैं उसका सामना कर सकूंगा या नहीं। यदि मैं प्रार्थना-सभा में स्वयं छाती पर गोलियाँ खाकर भी निर्भय रहूँ तथा राम-नाम गाता रहूँ तो समझना कि गांधी ठीक कहता था।'

यह गांधीजी की अपने अलौकिक महाप्रयाण की एक भविष्यवाणी ही थी। ठीक 4-5 दिन पश्चात् 30 जनवरी 1948 के दिन बिल्कुल ऐसा ही संकट उपस्थित हुआ। प्रार्थना-सभा में जनता जनार्दन का अभिनन्दन करने के लिए उनके हाथ जुड़े हुए थे। उनकी नग्न छाती पर गोलियाँ बरसीं, वे निर्भय होकर राम-नाम कहते हुए उस प्रार्थनासभा में देह त्याग कर अमर हुए।

H.G. Wells और रामायण—संसार के वाङ्मय में नैतिक जीवन-मूल्यों को जीवन की प्रत्यक्ष परिस्थितियों में उतारकर इतनी सुन्दर रीति से कहीं अन्यत्र प्रस्तुत नहीं किया जितना कि रामायण के कथानक में। नैतिकता कर्तव्य की आन्तरिक पुकार है। जब H.G. Wells ने महात्मा गांधी को Charter of Human Rights (मानवाधिकारों का घोषणा-पत्र) के लिये प्रारूप भेजने को कहा तो उन्होंने लिखा कि मानव अधिकारों का घोषणा-पत्र बनाने से पूर्व संयुक्त राष्ट्र-संघ को मानव कर्तव्यों का घोषणा (Charter of Human Duties) बनाना चाहिये। जब H.G. Wells ने मानव कर्तव्यों का घोषणा-पत्र भेजने को कहा तो गांधीजी ने उन्हें रामचरितमानस की एक प्रति भेज दी तथा लिखा कि—'रामायण हम भारतीयों के कर्तव्यों का घोषणा-पत्र है।'

डॉ. ग्रियर्सन—सन् 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेजों ने डॉ. ग्रियर्सन को भेजा। कोलकाता में पोर्ट विलियम् कॉलेज खोला गया। वहाँ पर भारत की 13-14 भाषाओं में बाइबिल छापने की योजना की गई। बाइबिल छपवाओ और प्रचार करो और भारत में आई.सी.एस., पी.सी.एस. किये हुए मिलिटरी अफसर हैं उनको भारतीय भाषा पढ़ाओ ताकि जो भारतीय षड्यंत्र रचते हों बात करते हों, उनको बम से मार डालेंगे उनको छुरे से मार डालेंगे, अंग्रेज अफसर तुरंत हिन्दुस्तानी समझ लें और उसकी बात को जान लेवें। ताकि सन् 1857 जैसी क्रांति पुनः न हो सके। डॉ. ग्रियर्सन को पोर्ट विलियम् कॉलेज में प्रिंसिपल बनाकर भेजा गया। वह बहुत विद्वान् था। अनेक भाषाओं का जानकार था। उसने भारतीय भाषायें पढ़ी। हिन्दी भी पढ़ी, तुलसी रामायण भी पढ़ी। रामायण पढ़कर बहुत ही कृत-कृत्यता का, कृतज्ञता का अनुभव किया।

और उसने कहा, अरे इंग्लैण्ड! तुम्हारे पास सबसे ऊँचा नैतिक आदर्श क्या है? तुम्हारे पास सबसे ऊँचा नैतिक आदर्श बाइबिल और सबसे ऊँचा साहित्यकार तुम्हारे पास शेक्सपियर है। अरे इंग्लैण्ड! यदि एक पलड़े में बाइबिल और शेक्सपियर दोनों को एक साथ में रखा और दूसरे पलड़े में भारत की सिर्फ तुलसीकृत रामायण को रखा तो तुलसी रामायण का पलड़ा भारी होगा। तुम्हारे बाइबिल और शेक्सपियर उसके सामने हलके होंगे। खुद अंग्रेजों ने इसे भेजा, भारतीय को पंजे के नीचे दबाये रखने के लिये। उसने कहा—मेरी अंतरात्मा सच कह रही है तुम्हारी बाइबिल और शेक्सपियर रामायण के सामने तुच्छ हैं।

ब्रिटिश पादरी ए. जी. एटकिन्स रामचरितमानस से इतना प्रभावित हुआ कि वह बाइबिल छोड़कर मानस प्रचार में लग गया—इंग्लैण्ड से एक मिशन भारत में हिन्दुओं को क्रिश्चियन बनाने के लिये भेजा। उसको उत्तरप्रदेश एवं बिहार का क्षेत्र दिया गया। उन्होंने बाइबिल सोसायटी को लिखा—तुलसी रामायण उत्तर भारत की बाइबिल है। वहाँ से आदेश आया कि तुलसी रामायण छुड़ाकर ईसाई बाइबिल पढ़ाओ। उसने कहा—अच्छा! रामायण के गुण-दोष क्या हैं यह जानकर उसकी आलोचना करूंगा फिर उसको उखाड़कर के बाइबिल पढ़ाऊंगा एवं उनके हाथ में बाइबिल दूंगा। इसलिये उसने काशी जाकर हिन्दी पढ़ी, अवधी पढ़ी और हिन्दुस्तानी बाइबिल रामायण पढ़ी। उसने सोचा—मैं आलोचना करूंगा, इसके लिये बिन्दु लिखता गया। फिर उसने सोचा मैं जो आलोचना करूंगा, उसे लोग हलका न सोचें कि हलके आदमी ने, घटिया आदमी ने आलोचना की है। पहले अच्छी धाक बैठा लूं। वह स्वयं बहुत अच्छा साहित्यकार था, कवि भी था। उसने तुलसी रामायण के दोहा-चौपाई का अंग्रेजी में पद्यानुवाद करना शुरू किया। तुलसीदास के दोहा-चौपाई छंद का भावानुवाद नहीं हूबहू अनुवाद, भाषा एवं भाव उभय का मणि-कांचन संयोग। जैसे-जैसे गहराई में गये आनंद आना शुरू हुआ। जब बालकाण्ड शेष हुआ तब सोचा—यदि यह प्रकाशित हो जाये तो लोग मेरी प्रशंसा करेंगे। तब आलोचना करूंगा। लोग कहेंगे कि किसी अनाड़ी ने आलोचना नहीं की। वरन् एक अधिकारी विद्वान् आलोचना कर रहा है। तब उसे उखाड़ कर फिर बाइबिल दूंगा।

उसने इस अनुवाद को राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन को दिखाया। उनको खूब अच्छा लगा। वे रामायण लेकर गोविंद वल्लभजी के पास पहुँचे। उसके पश्चात् वे दोनों गांधीजी के पास पहुँचे। गांधीजी थे तुलसी रामायण के भक्त। उन्होंने कहा—तुलसी मेरा प्राणवायु। तुलसीदासजी की रामायण एवं गीता इन दोनों ग्रंथों ने गांधीजी का निर्माण किया था। उनको भक्ति की खुराक तुलसीकृत रामायण से एवं ज्ञानलाभ गीता से मिलता था। गांधीजी ने यह अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा तो उन्हें खूब अच्छा लगा। उनकी दोनों आंखों से गंगा-जमुना बहने लगी। उन्होंने कहा—अरे, ओ पादरी! आपने तो बहुत अद्‌भुत कार्य किया है। दोहा-चौपाई छंद में अंग्रेजी भाषा में तुलसी रामायण! आज पर्यन्त यह कार्य कोई नहीं कर सका उसे आपने कर दिखाया। आप क्रिश्चियन धर्मावलंबी पादरी भले ही हों किन्तु साहित्य के क्षेत्र में आपका बहुत बड़ा अवदान रहेगा। यह अनुवाद कार्य चालू रखें। इसे बंद न करें। साहित्य एक अनुपम वस्तु है साहित्य की आपके द्वारा अनुपम सेवा होगी।

जब आधे पर्यन्त पहुँचे तब बाइबिल सोसायटी इंग्लैण्ड को लिखा—मैं भारत आया था बाइबिल का प्रचार करने के लिए किन्तु यहाँ आकर देखा उत्तर भारत का बाइबिल तुलसी रामायण। तब रामायण पढ़ना शुरू किया, समालोचना

करने की दृष्टि से। किन्तु तुलसी रामायण के रंग में आज इतना रंजित हो गया कि तुम्हारी बाइबिल तुम अपने पास ही रखो। मैं तो तुलसीदास का हो गया हूँ। इस ग्रंथ में इतने गुण भरे हुए हैं कि गुणों की खान है। पद-पद में, पंक्ति-पंक्ति में चमत्कार है, गुण ही गुण भरे हुए हैं। इतने श्रेष्ठ ग्रंथ को छोड़कर बाइबिल जैसे घटिया ग्रंथ को पढ़ाना, यह मानवता का अपमान होगा। इसलिये उठाकर रखो अपनी बाइबिल। मैं तो अब तुलसीदास का हो गया हूँ। मुझे अब बाइबिल की आवश्यकता नहीं है। मैं अपने जीवन का पथ-प्रदर्शक पा गया हूँ। जीवन के 25 वर्ष लग गये यह अनुवाद करने में।

यह अनुवाद जिस दिन समाप्त हुआ उस दिन उन्होंने तुलसी बाबा से निवेदन किया—तुलसी बाबा! लोग रामायण का नवाह-पारायण करते हैं, कोई मास-पारायण करता है मैंने तो जीवन के 25 वर्ष आपका पारायण किया है। बाबा! पारायण की समाप्ति पर पुष्पांजलि देते हैं, फूल माला पहनाते हैं पुस्तक को। मेरे तो जीवन का समस्त कार्य परिपूर्ण हो गया। अब तो मेरी कोई भी चाह बची नहीं। कुछ भी अवशिष्ट उपलब्धि रही नहीं। आज मैं कितना आनंदित-प्रफुलित, ऐसा आनंद जीवन में कभी नहीं पाया। आज मैंने अपने जीवन का श्रेष्ठतम कार्य परिपूर्ण किया। मेरा जीवन परिपूर्ण हो गया। अब और कुछ भी पाने की इच्छा शेष नहीं रही और न कुछ करने की इच्छा शेष है। मैं तुमको क्या समर्पित करूं? तुलसी बाबा तुमको अशेष प्रणाम!

किन्तु मजे की बात यह हुई कि प्रणाम करने गये वह पादरी साहब अपने प्राण-पुष्प ही अर्पित कर बैठे। अपने प्राणों को ही त्याग दिया। यह अंग्रेजी कृत तुलसी रामायण हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस ने छापा। गांधीजी के लड़के देवदास गांधीजी तब हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस के जनरल मैनेजर थे। गांधीजी ने बिड़ला को कहकर उसके खर्च से रामायण छापी। किन्तु पुस्तक निकलने के पूर्व ही पादरी साहब का जीवन शेष हो गया। यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ दिल्ली में तुलसी जयंती के पुण्यलग्न में। उद्घाटन किया सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् ने।

बालकृष्ण शर्मा, दिनकरजी, बड़े-बड़े मूर्धन्य व्यक्ति, गण्यमान्य उपस्थित थे उस समारोह में। देवदास गांधीजी ने यह ग्रंथ डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के हाथ में दिया। प्रो. ओबराय उस समय सभा में उपस्थित थे। जितने ज्ञानी-गुणी व्यक्ति उसमें उपस्थित थे सबकी आंखें छल-छल कर रही थी द्रवित हो रही थी। पादरी ने तो बहुत अद्भुत कार्य किया है। यह सब तुलसी का चमत्कार है।

इसलिये सोहनलाल द्विवेदी लिखते हैं—

जब मुगल महीपों के बादल छाये, भारत नभ में अपार।
दासता पराजय गृह विग्रह से, गहराया तम का प्रसार॥

तब राम नाम का अमृत ले, आए गौरव गाते अमन्द्र।
मृतहृत जनता को मिले प्राण, चमके तुम बन सौभाग्य चन्द्र॥

जार्ज बर्नार्ड शॉ—इंग्लैण्ड का बहुत बड़ा साहित्यकार जार्ज बर्नार्ड शॉ कहता है—शेक्सपियर क्या है मेरे सामने। लोग भी मानने लगे कि शेक्सपियर के बाद सबसे बड़ा नाटककार यही हुआ है। कई अर्थों में शेक्सपियर से भी महान् है। वह कहता है—युग आने वाला है, युग बतायेगा कि शेक्सपियर ऊँचा था या मैं ऊँचा था। लेकिन कुछ भी है, शेक्सपियर से किसी तरह कम नहीं है। इस युग में सबसे बड़ा ऊँचा साहित्यकार, बड़ा गंभीर लिखने वाला जार्ज बर्नार्ड शॉ। वह कहता है—अरे इंग्लैण्ड! तुम्हारे पास सबसे बड़ा महाकाव्य क्या है? Paradise lost नामक एक महाकाव्य मिल्टन ने लिखा। उसमें शैतान को धक्का मारकर निकाल दिया स्वर्ग से। शैतान कहता है—ऐ गॉड! मैं तुम्हारा पहले नंबर का शत्रु हूँ। गॉड, तुमने प्रचारक रखे हुए हैं। पंडित, पुरोहित रखे हुए हैं जो दिन-रात तेरा प्रचार करते रहते हैं। मेरा कौन प्रचार करता है? शैतान का कोई प्रचार करता है? कोई प्रचार नहीं करता। तुमने ग्रंथ बना रखे हैं प्रचार के लिये। शैतान का कोई ग्रंथ है? शैतान ने कोई ग्रंथ नहीं बना रखा है। तुमने मंदिर, गिरजाघर बना रखे हैं। हमने कुछ नहीं बना रखा है। तुम्हारे पंडित-पुरोहित दिन-रात प्रचार करते रहते हैं फिर भी देख लो चर्च में ज्यादा लोग जाते हैं या वेश्यालयों में। ज्यादा लोग मेरी तरफ ही आते हैं। देख लो खुदा मैं तुमको एक घूंसा मारकर गिरा दूंगा। मैं पहले नंबर का शत्रु हूँ और लोग मेरे पास ज्यादा हैं। मिल्टन कृत Paradise lost में यही भाव है, यही तथ्य है।

बर्नार्ड शॉ लिखता है—तुलसी रामायण की तुलना में मिल्टन का महाकाव्य Paradise lost वैसा ही है जैसे उत्तम वारी (शराब) की तुलना में किसी गंदी नाली का पानी। तुलसी रामायण उत्तम वारी है।

तुलसी रामायण की तुलना अच्छी शराब से दी है। क्योंकि पश्चिम के लोग शराब को अच्छा समझते हैं। भारत का होता तो कहता—उत्तम अमृत की तुलना में गंदी नाली का पानी। पर उसने कहा—उत्तम शराब की तुलना में गंदी नाली का पानी। तो मिल्टन तुलसी की तुलना में कहीं नहीं ठहरता।

एफ.एस. ग्राउस (फ्रैड्रिक सालोमन) आई.सी.एस. परीक्षा पास कर जो अंग्रेज भारत में उच्च पदों पर आए उनमें एफ.एस. ग्राउस (फ्रैड्रिक सॉलोमन) जो वर्तमान उत्तरप्रदेश के मथुरा तथा बुलन्दशहर जैसे जिलों में कलक्टर के पद पर रहे, उन्होंने अंग्रेजी में 'रामचरितमानस' का प्रामाणिक गद्यानुवाद किया। ग्राउस के बारे में यहां तक प्रसिद्ध है कि वे अपने वार्तालाप में यथाप्रसंग मानस की चौपाइयों को उद्धृत करते रहते थे। एक ऐसा ही रोचक प्रसंग तब आया जब वे मथुरा के जिला मजिस्ट्रेट थे और उनके सामने वैरागी साधु को किसी अपराध के कारण

पेश किया गया। जब ग्राउस ने उसे अपनी सफाई देने के लिए कहा तो उसने इतना ही कहा कि वह अपने पक्ष में कुछ खास कहना नहीं चाहता। उसने तो सब कुछ भगवान् पर छोड़ दिया है और वह मानस की यह चौपाई कह बैठा—

होइहि सोइ जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावै साखा।।

ग्राउस साहब अपराधी के मनोभाव को समझ गए और मानस की भाषा में ही उसे उत्तर दिया—

कर्म प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करहिं सो तस फल चाखा।।

अब वैरागी को मौन साधना पड़ा।

आर.टी.एच. ग्रिफिथ ने तो चारों वेदों का अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया था तथा वाल्मीकीय रामायण का भी अंग्रेजी में उल्था किया था। ग्रिफिथ का रामचरितमानस पर भी असाधारण अधिकार था और इस महाकाव्य के अनेक मार्मिक प्रसंग उन्हें कण्ठस्थ थे। एक प्रसंग ऐसा उपस्थित हुआ जब कॉलेज के एक उद्दण्ड छात्र को उनके सामने लाया गया तो छात्र ने ग्रिफिथ साहब के मानस प्रेम का फायदा उठाते हुए निम्न चौपाई कही—

जो लरिका कछु अनुचित करहीं।
गुरु पितु मातु मोद जिय भरहीं।।

यदि बच्चे कुछ अनुचित भी करते हैं तो माता-पिता व गुरु उसका बुरा नहीं मानते। ग्रिफिथ साहब लड़के का आशय समझ गए और उसकी अनुशासनहीनता को क्षमा के योग्य न मानते हुए उसे उसी शैली में उत्तर दिया—

जौं न देउँ सठ दण्ड कठोरा।
वृथा होहि श्रुति मारग मोरा।।

यदि मैं तुझे दण्ड नहीं दूं तो यह उचित नहीं होगा।

रामभक्त अंग्रेज न्यायाधीश पी. डब्ल्यू मार्श सन् 1930 में मेरठ में एक अंग्रेज कमिश्नर श्री पी. डब्ल्यू मार्श थे। अंग्रेज होते हुए भी वे श्रीराम के भक्त थे। वे निष्पक्ष न्याय के लिए भी प्रसिद्ध थे।

एक दिन उनकी अदालत में एक पटवारी के विरुद्ध मुकदमा आया कि उसने रिश्वत लेकर किसी की जमीन दूसरे के नाम चढ़ा दी है। पटवारी अत्यंत चालाक था तथा यह जानता था कि मार्श साहब भगवान् राम के भक्त हैं एवं रामायण के अच्छे जानकार हैं। अतः अपने को रामभक्त साबित करने के लिए सुनवाई के समय अदालत में रामायण की निम्न चौपाई सुनाई—

दीन दयाल बिरिदु संभारी।
हरहु नाथ मम संकट भारी।।

मार्श साहब पूरी पड़ताल के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंच चुके थे कि पटवारी ने जान-बूझकर अपराध किया है। पटवारी की चौपाई का उत्तर चौपाई से ही देते हुए बोले—

जौ नहिं दंड करौं खल तोरा।
भ्रष्ट होई श्रुति मारग मोरा।।

पटवारी उनके हृदय की बात समझ गया तथा दंड से नहीं बच पाया।

चेन्नई से लगभग 80 कि.मी. दूर 'मदुरान्तकम्' नामक नगर है। यहाँ रामायण काल में विभाण्डक नामक ऋषि तप किया करते थे। लंका जाते समय और लंका-विजय के पश्चात् लौटते समय श्रीराम की इन ऋषि से भेंट हुई थी। इसकी स्मृति में यहाँ श्री रामजी का मंदिर है। इस क्षेत्र में श्रीराम को 'कोदण्डरामन' अर्थात् धनुर्धर राम कहा जाता है। यह मंदिर एक विशाल झील के किनारे बना हुआ है। वर्षा ऋतु में जब कभी अति-वृष्टि होती तो गाँवों और फसलों की काफी हानि होती थी। यद्यपि सुरक्षा की दृष्टि से एक कच्चा बाँध भी बना हुआ था। लोगों की मान्यता थी कि भगवान श्रीराम इस क्षेत्र की रक्षा करते हैं।

यह घटना उस समय की है जब यह क्षेत्र ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार में था। भयंकर वर्षा हुई थी। बाँध कभी भी टूट सकता था। जिला कलक्टर प्लेस ने बाँध का निरीक्षण कर कह दिया कि आज रात में ही यह बाँध ढह जाएगा। यह सुनकर लोगों में भय व्याप्त हो गया। तब वृद्ध अय्यर ब्राह्मण ने कहा कि श्रीराम हमारी रक्षा कर सकते हैं। कलक्टर ने कहा कि तो अपने राम से प्रार्थना करके देख लो। ब्राह्मण ने कहा, पहले यहाँ के राजा बाढ़ आने पर मंदिर में मनौती करते थे। अब आप शासक हैं अतः आप मनौती कीजिये। अंग्रेज कलक्टर ने उसकी विश्वासभरी वाणी सुनकर कहा—'ठीक है, यदि बाँध बच गया तो मैं 'कोदण्डरामन' के इस मंदिर के पास ही उनकी सहधर्मिणी सीता का मन्दिर बनवा दूँगा।'

बाँध के एक छोर पर सैकड़ों ग्रामीण 'रामरक्षा-स्तोत्र' का पाठ कर रहे थे। कलक्टर मनौती माँग कर सशंकित झील के उमड़ते जल को देख रहा था। रात गहरा रही थी, वर्षा हो रही थी। आधी रात को अचानक भयंकर आवाज के साथ बाँध फट गया। लोग आर्तभाव से श्रीराम को पुकारने लगे। उसी समय कड़-कड़ की आवाज के साथ आकाश से हजारों सूर्यों जैसा प्रकाश उतरा। कलक्टर की आँखें मुँद गई फिर कुछ क्षण भर के लिए खुली तो देखा कि बाँध पर दो दिव्य धनुर्धारी युवक खड़े हुए हैं। उनके दर्शन कर कलक्टर भाव विभोर हो गया। वह आगे बढ़ने को हुआ कि तीव्र प्रकाश से उसकी आँखें चौंधिया गयीं और वह अचेत हो गया।

लोगों ने देखा कि वर्षा रुक गयी है, और झील का पानी काफी घट गया, बाँध सुरक्षित है। वे श्रीराम की जय-जयकार करने लगे। प्रातःकाल कलक्टर ने वृद्ध ब्राह्मण व अन्य लोगों को बुलाकर अपने दर्शन की बात बतायी। वृद्ध ब्राह्मण ने कहा कि आप बहुत बड़े पुण्यात्मा हैं। इसीलिए आपको राम-लक्ष्मण के दर्शन हुए। बाद में कलक्टर ने अपनी मनौती के अनुसार सीताजी का मन्दिर बनवाया। तभी से कोदण्डरामन का नाम 'एकीकात रामन' (अर्थात् झील का रक्षक राम) हो गया।

मन्दिर में लगे शिलालेख में इस घटना का उल्लेख है। चेन्नई के राजस्व रिकार्ड ऑफिस में भी कलक्टर के हाथ का लिखा वर्णन दर्ज है।

रूस का बड़ा भारी विद्वान् वरान्निकोव—उसने अपने जीवन के 25-30 वर्ष लगाकर पहले वाल्मीकीय रामायण का फिर तुलसी रामायण का रूसी भाषा में अनुवाद किया। अनुवाद चल रहा था। द्वितीय महायुद्ध शुरू हो गया। जर्मनी ने लेनिनग्राड पर हमला कर दिया। तब वह स्टालिन के पास जाकर बोला—मुझे कलम छोड़कर बंदूक उठानी पड़ेगी। उसने पूछा—क्यों? उसने कहा—देश पर हमला हो गया है, देश की रक्षा करनी है। उसने कहा—जाओ वरान्निकोव! हमारे पास देश के रक्षक बहुत हैं पर हमारे पास दूसरा वरान्निकोव नहीं है जो तुलसी रामायण का अनुवाद कर सके। जाओ, तुम अपना अनुवाद करो। उसने कहा—मातृभूमि पर हमला हो गया है उसकी रक्षा मैं नहीं करूंगा क्या? उसने कहा—हमारे पास रक्षक बहुत हैं, यह देश की रक्षा से भी अधिक महत्त्व का कार्य है—तुलसी रामायण का अनुवाद। यह कार्य दूसरा कोई नहीं कर सकता, तुम्हीं कर सकते हो।

तो मैं कैसे करूं? तोपें छूट रही हैं, दिन-रात बमबारी हो रही है, शोर मचा हुआ है, इसमें शांतिपूर्ण काम नहीं कर सकता। तो उसने कहा—अच्छा! इसका प्रबंध मैं करता हूँ। तो उसने एक सेना की टुकड़ी को आदेश देकर उसकी सारी लाइब्रेरी अजरबेजान (या अरबैजान) रूस की सीमा पर, जहाँ ईरान से सीमा लगती है काकेशिखर पर्वत के पास यह शांतिपूर्ण स्थान है वहाँ भिजवा दी। तब उसने वहाँ अपना अनुवाद कार्य पूरा किया।

क्या यह उल्लेखनीय नहीं कि जब रूस महायुद्ध में फंसा था, उस कठिन वेला में भी रूसी कम्यूनिस्ट पार्टी तथा वहाँ के शासन ने अपने देश के एक ऐसे सांस्कृतिक कार्य को पूरा होने में सहयोग दिया जिसका मूलाधार एकमात्र गोस्वामी तुलसीदास का लिखा ग्रंथ, रामचरितमानस था। दूसरा देश होता तो कह सकता था कि यहाँ तो लड़ाई आंगन में आ गयी और आपको रामायण की पड़ी है। यही नहीं सरकार ने रामायणी पं. वरान्निकोव को 'लेनिन पदक' प्रदान करके सम्मानित किया। लेनिन पदक कम्यूनिस्ट पार्टी शासन वाले देश का सर्वोच्च गरिमामण्डित सम्मान या पुरस्कार माना जाता है। ये कोई मार्क्सवाद के

न कार्यकर्ता थे न मार्क्सवाद के पंडित थे। वरन् वे तो एक साधक थे रामायण और भाषाविज्ञान के।

प्रो. वरान्निकोव ने अपनी विस्तृत 300 पृष्ठीय भूमिका में राम के प्रजापालक, दीन हितकारी, दीन-दुःखियों की पीड़ा को शमन करने हेतु राज्यसिंहासन त्याग और तुलसी की देश को विदेशी शासन से मुक्ति दिलाने की भक्ति की तीव्रता से आवेष्टित युक्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

ये गरीब परिवार में जन्मे थे। पिता बढ़ई थे। वे उन्हें सम्यक् शिक्षा न प्राप्त करा सके। अतः वह खुद परिश्रम करके पढ़ते रहे। संघर्ष किया। इस प्रकार बढ़ई का बेटा रूस का तुलसीदास बन गया।

अनुवाद पूरा करने के बाद अपने बेटे को बुलाया। कहा—बेटा! तुम मेरा श्राद्ध करोगे? उसने कहा—पिता जी! श्राद्ध क्या होता है? उसने कहा—भारत के बच्चे अपने बड़ों की स्मृति में श्रद्धा समर्पित करते हैं उसको श्राद्ध कहते हैं। तो उसने कहा—मुझे क्या करना होगा? उसने कहा—मेरा तुलसी रामायण का अनुवाद छपवा देना और मेरी समाधि पर एक पत्थर की शिला लगाकर तुलसी रामायण की निम्न पंक्तियाँ भी अंकित करवा देना। ऊपर देवनागरी लिपि में, उसके नीचे रूसी भाषा में उसका अनुवाद, अर्थ छपवा देना। उसने कहा—यह क्यों? उसने कहा—इसमें बड़ा रहस्य छिपा हुआ है? उसने पूछा—क्या रहस्य छिपा है पिता जी? रहस्य यह है कि जिंदगी भर मुझे कम्यूनिस्ट लोग ताना मारते रहे हैं कि तुम कम्यूनिस्ट देश में जन्मे, कम्यूनिस्ट आत्मा-परमात्मा, पुनर्जन्म नहीं मानते, धर्म-कर्म नहीं मानते और तुम कम्यूनिस्टों के देश में जीकर, रहकर भारत की एक दकियानूसी किताब के अनुवाद में सारी जिंदगी तबाह कर रहे हो। तुलसी रामायण के अनुवाद में जीवन बर्बाद कर रहे हो!

तुम इतने बड़े विद्वान् होकर और कोई बड़ा काम कर सकते थे, देश-समाज की सेवा कर सकते थे तुम तुलसी के पीछे अपना जीवन नष्ट क्यों कर रहे हो? मैं उनको कुछ उत्तर नहीं देता था। मैं कहता—अभी काम करने दो, बाद में जवाब दूंगा? अब मेरी समाधि उसका जवाब देती रहेगी। उनकी समाधि पर तुलसीदास की यह चौपाई अंकित है जिसे वहाँ की सरकार ने साकार किया है।

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु॥ मानस 1/5

भला आदमी दूसरों में भलाई ढूंढ़ता रहता है। भले आदमी को जहाँ भी अच्छी बात मिलती है उसको लेता है। अरे! शेक्सपियर में अच्छी बात है, अरे! वेद-गीता में अच्छी बातें है, अरे! रामायण में अच्छी बात! उसकी प्रशंसा करता है उसको ग्रहण करता है। जहाँ कहीं अच्छी बातें मिलती है उसको ग्रहण करता है।

और, बुरे आदमी ने बताया कि इटली के चोर ने चोरी की नई तकनीक निकाली है—हाँ, हाँ, बताना-बताना। अरे अमरीका में हिप्पीकट बाल रखते हैं वह कहेगा—अच्छा-अच्छा। जिस आदमी की जैसी पसंद, जैसी रुचि, वैसी वस्तु ढूंढ़ता रहता है। बुरे आदमी को बुराई पसंद है, वही वह सबमें ढूंढ़ता रहता है, बुरा आदमी बुराई ग्रहण करता है। भला आदमी भलाई ग्रहण करता है। सुधा सराहिअ अमरता। अमृत की सराहना इसी बात के लिये कि वह सदा अमर बनाये रखता है और गरल सराहिअ मीचु विष की सराहना इसी बात में है कि वह मनुष्य को मार डालता है। जितनी विष की गुणवत्ता अच्छी है उतनी ही अधिक कीमत। कुछ विष ऐसे है जो छूते ही, सूंघते ही मार डालते हैं। उसकी कीमत बहुत अधिक। गरल की सराहना इसी बात में है कि वह मार डालेगा। इसलिये भला आदमी भलाई खोजता है बुरा आदमी बुराई खोजता है। उसने कहा—मैं भला था। तुलसी रामायण में मुझे जीवन की सबसे ऊँची भलाई मिली। मैंने ग्रहण कर ली। तुम नीच आदमी, दुष्ट आदमी, लोगों को मारने वाले, रेलवे को उखाड़ने वाले, हत्या करने वाले, तुम्हें जहाँ कुछ बुराई मिली, लेते रहे। तुलसी रामायण में मुझे जीवन की सर्वोत्तम भलाई मिली। यह वरान्निकोव की समाधि मैं आंखों से देखकर आया हूं। मैंने आंखों से श्रद्धांजलि चढ़ाई है। कम्यूनिस्ट देश में रहकर तुलसी के प्रति कितना सम्मान एवं समर्पण प्रस्तुत किया है। केवल इतना ही नहीं अब वहाँ एक रिवाज चल पड़ा है कि वे लोग अपने मन को ठीक करने के लिये मास्को में रामायण का मंचन करते हैं। वे रामायण पर लीलाएं करते हैं। क्योंकि उनके यहाँ भयंकर भोगवादी लीला है। उससे वे तंग आ चुके हैं। उसके कारण वे अपने जीवन को शांत करने के लिये रामायण की शरण में आते हैं।

काण्ट लिओ टाल्सटाय—बौद्धिक ओज से भरपूर, शारीरिक दृष्टि से समकालीन लोगों में स्वस्थ, वेश और प्रतिभा के कारण अत्यन्त प्रतिष्ठित, एक बड़ी जमींनदारी के स्वामी, आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त रूसी भाषा के महान् लेखक और विश्व साहित्य के प्रतिष्ठित यशस्वियों में से एक काण्ट लिओ टाल्सटाय का बाह्य जीवन समृद्धमय था, पर उन्हें लगा—जीवनधारा रुक-सी गई है।

प्रत्येक प्राणी के लिए और स्वयं उनके लिए भी जीवन में पीड़ा, मृत्यु और निरन्तर क्षय के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिए निश्चय कर लिया था कि इस भांति वह जीवित नहीं रह सकता। या तो जीवन का कोई अर्थ उसे जानने को मिलना चाहिए, नहीं तो फिर वह अपने-आप को गोली मार देगा।

इस आन्तरिक संघर्ष ने उन्हें द्रष्टा-चिन्तक, जीवन तत्त्व के सत्य का अन्वेषी बनने को पुनः विवश किया। टाल्सटाय के स्वलिखित कागज में एक 'अज्ञात प्रश्नावली' इस प्रकार से है—

(1) मैं क्यों जी रहा हूं?

(2) मेरे और अन्य सब लोगों के अस्तित्व का कारण क्या है?

(3) मेरे अस्तित्व और दूसरे सारे अस्तित्वों का प्रयोजन क्या है?

(4) मेरे अन्तर में अच्छाई-बुराई का जो विभाजन मैं अनुभव करता हूं इसका अर्थ क्या है और ऐसा क्यों होता है?

(5) मुझे कैसे जीना चाहिए?

(6) मृत्यु क्या है? उससे मैं अपने को कैसे बचा सकता हूं?

इन छह अज्ञात प्रश्नों की खोज के लिए टाल्सटाय दार्शनिकों की ओर झुका—यह जानने के लिए कि मानव जीवन के प्रयोजन के विषय में दार्शनिकों की राय क्या है? हर प्रकार की दार्शनिक पुस्तकें उसने पढ़ना शुरू किया। शोपेनहावर, प्लेटो, कांट, पास्कल के दर्शन में उन्हें अपने प्रश्नों का सही उत्तर न मिला। समूचा विज्ञान भी उसके मन को समाधान न दे सका। टाल्सटाय को यह जानकर बड़ा खेद हुआ कि इन दार्शनिकों ने उन्हीं प्रश्नों का उत्तर अत्यन्त स्पष्ट और सुनिश्चित रूप से दिया है जिसका प्रत्यक्ष जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। पर जहां निश्चित सुझाव और मार्गदर्शन की आवश्यकता है वहां वे उसे टाल गये हैं। आयु के सातवें दशक के अंत में और अस्सी वर्ष के आरम्भ में भारतीय दर्शन की ओर मुड़े। भारतीय दर्शन के प्राचीन स्मारक वेदों और उपनिषदों की ओर भारत के श्रेष्ठ महाकाव्यों (रामायण और महाभारत) और लोक साहित्यों की ओर जीवन के अंतिम अर्थ और मानव जीवन के लक्ष्य का उत्तर पाने के लिए। तब से मृत्यु पर्यन्त उन्होंने भारतीय संस्कृति की ओर बहुत ध्यान दिया और उसे रूस में लोकप्रिय बनाया। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि रूसी पाठकों ने भारतीय जनता के प्राचीन ज्ञान और उनके वीरतामय महाकाव्यों को विशेषकर रामायण और गीता को प्रेम करना टाल्सटाय के माध्यम से सीखा।

इस प्रकार से सारे भूमण्डल में रामायण का प्रचार हुआ और वहाँ एक राम-सीता उत्सव, वहाँ के आदिवासी (रेड इंडियन्स) अमरीका में अभी तक खेलते हैं। तो भूमण्डल का एक भी देश ऐसा नहीं है जिसमें राम कथा का प्रचार नहीं हुआ है। रामकथा का प्रचार बहुत पहले से चला आ रहा है। विगत चार सौ वर्षों में तुलसीदास ने इस काम को इतने अधिक चमत्कृत ढंग से प्रचारित किया कि आज रामायण के प्रताप से हम भारतीय जीवित हैं। हिन्दू धर्म जीवित है। रामायण के प्रताप से हम दिग्विजयी बने हैं। रामायण के प्रताप से विदेशों में या दूर-दूर देशों में हमारे राष्ट्र राज्य बने हैं। रामायण के प्रताप से विदेशों में हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी है। अपने देश में भी हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी है। देश में 1,200 वर्षों तक विदेशी शासन

रहा। इसलाम 1,000 वर्ष तक चलता रहा। मंदिर तोड़े गये, बच्चों को दीवार में चुना गया, लोगों को तेल की कड़ाही में पकौड़े की तरह भूना गया, गरम तवों पर जलाया गया। आरों से चीरा गया, बहुत अत्याचार हुए, रमणियों पर बलात्कार हुए। सब कुछ हुआ, फिर भी भारत बचा रहा क्योंकि उसके पास रामायण थी। रामायण ने भारत को जीवित रखा। भारत में विदेशी विधर्मियों ने बहुत मंदिर तोड़े, बहुत विश्वविद्यालय जलाये, बहुत कुछ नाश किया पर उसने रामायण पर प्रतिबंध नहीं लगाया। अगर रामायण पर प्रतिबंध लगाते तो भारत का सर्वनाश हो जाता। भारत जीवित रहा तो रामायण के कारण। अतः रामायण भारतीय जीवन की संजीवनी है।

आरा, बलिया, छपरा से गिरमिटिया मजदूर लेकर गये कृषि काम के लिये। जो देश वैभव के शिखर पर था वह देश अंग्रेजों की आर्थिक नीति के चलते अकाल एवं भुखमरी का शिकार हुआ। उन्होंने हमारी परम्परागत अर्थव्यवस्था को नष्ट करके अपने हित के लिये आर्थिक शोषण प्रारंभ किया। फलस्वरूप भारतीयों के पास दो ही विकल्प भुखमरी से बचने के लिये रह गये या तो फौज में भरती होकर अंग्रेजों के हित में प्राण देवें या फिर बंधुआ मजदूर बनकर भारत से बहुत दूर टापुओं में अंग्रेजों के हित में कृषिकार्य करने जायें। फिजी द्वीप समूह है भारत से सात हजार मील दूर। पूर्वी इंडोनेशिया के पार, आस्ट्रेलिया के पार वहाँ पर साढ़े तीन हजार द्वीप हैं। वहाँ पर जंगलों को साफ करके उनमें गन्ना लगाने का काम करने के लिये, लेकर गये। मारीशस ले गये वहाँ पर इसी प्रकार का काम कराने के लिये। भारत से साढ़े सात हजार मील दूर और वहाँ पर भारतीयों को ले जाया गया मजूदरी के लिये जहाज में। हजारों लोगों को जहाज में भर दिया।

कोलकाता में लाकर 100 आदमी इसमें, 200 आदमी उसमें, 400 आदमी उसमें भर दिये। भाई से भाई बिछुड़ गया। पति से पत्नी बिछुड़ गई। पिता से पुत्र, माता से पुत्र बिछुड़ गया। उनको तो गिनती के कुली की तरह बिठाने हैं। कोई कितना भी बोले-रोये कि मैं, मेरा भाई, मेरा पुत्र, मेरी पत्नी, मेरा पति कोई सुनने वाला नहीं। परिवार उजड़ गये। लोग बहुत दुःखी हुए रास्ते में जंगली और समुद्र के जंतुओं ने आक्रमण किये उसके कारण भी, वहाँ जाने पर जंगली पशुओं ने कई लोगों को मारकर खा लिया। वहाँ के आदिवासी थे सिर को काटकर खा जाने वाले, उन लोगों के साथ भी संघर्ष हुआ। बहुत कष्ट में पड़े। कुछ लोगों को मारीशस में उतारा। कुछ लोगों को सूरीनाम, दक्षिण अमरीका ले गये। वहाँ जाकर कुछ लोगों को ब्रिटिश गिआना, डच गिआना ले जाकर उतारा। वहाँ कोड़े मार-मारकर काम लिया जाता था। इस प्रकार बहुत दुःख में पड़े। भाई भाई से, पति पत्नी से, पिता पुत्र से बिछुड़ गये। बहुत दुःखी हुए। अपने मन को शांत करने के लिये, दुःख दूर करने के लिये रात को तुलसी रामायण लेकर बैठते थे। उससे मन शांत होता था आंसू बहा-बहा

करके। अयोध्या कांड ऐसा है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—मैंने बचपन में पहली बार रामचरितमानस पढ़ा तब से अब तक (मैं राष्ट्रपति बन गया) मेरे लिये एक बार भी तुलसी रामायण के अयोध्या काण्ड को आंख के आसुंओं की श्रद्धांजलि चढ़ाये बिना, पढ़ना संभव नहीं हुआ है। जब-जब अयोध्या काण्ड पढ़ा है आंखें छल-छल करके बहती है। रामायण तो करुण काव्य है। आंखों के मैल को आंसुओं में बरसा देता है। उससे हृदय निर्मल हो जाता है। दुःख हलका हो जाता है और इसलिये बिचारे फिर गिआना, मारीशस, सूरीनाम जो हिन्दू ले जाये गये थे वे अपने साथ तुलसी रामायण ले गये थे। उसको पढ़कर अपना गम भुलाते थे। उस समय तुलसी रामायण की कृपा से पढ़ने-लिखने लगे। धीरे-धीरे हिन्दी का प्रचार हुआ। धीरे-धीरे बहुसंख्यक हो गये। धीरे-धीरे हिन्दी वहाँ की राजभाषा बन गयी। धीरे-धीरे वहाँ हिन्दू प्रधानमंत्री बन गया। जिस तुलसी की कृपा से मारीशस, फिजी, सूरीनाम, गिआना आदि चारों देशों में हिन्दू 60-65 प्रतिशत हो गये। आज वहाँ कोई मिनिस्टर है, कोई तुलसी की कृपा से साढ़े सात हजार मील दूर फिजी में, भारत से साढ़े चार हजार मील दूर मारीशस में, भारत से 12 हजार मील दूर गिआना और सूरीनाम में आज हिन्दी राज भाषा है। वहाँ हिन्दू बहुल क्षेत्र हो गये। यह सब तुलसी की कृपा का प्रताप है।

स्वाधीनता के काल में फिजी के हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार होता था। उन्होंने महात्मा गांधी को लिखा कि आपने मारीशस की समस्या हल करने के लिये जिस प्रकार वहाँ अपना एक दूत भेजा, यहाँ पर भी किसी को भेजिये। उन्होंने अपने संबंधी केनदास गांधी को वहाँ भेजा। वह कहता है—जिस दिन उनकी राजधानी में पहुँचा वहाँ साढ़े तीन हजार द्वीपों के समस्त हिन्दू पहुँचे हुए थे। सारा फिजी भारत बना हुआ था। पूरा फिजी सड़कों पर उतर आया था। वहाँ लोग हारमोनियम गले में टांगे हुए, हारमोनियम पर रामायण की चौपाई गाते हुए, आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित कर रहे थे। उन्हें लगा कि आज भारत मिलने आया है। उसका स्वागत रामायण से करें। रामायण ने उन्हें जीवित रखा है।

मारीशस के मंत्री कहते हैं इस रामायण से हमारा धर्म बचा रहा। एक भी प्रवासी हिन्दू (भारत से आया हुआ) धर्मान्तरित नहीं हुआ। कितने प्रलोभन दिये गये। अपनी मातृभूमि से हजारों मील दूर बैठे हुए भी एक भी हिन्दू ने अपना ईमान नहीं बदला। एक भी हिन्दू मुसलमान या ईसाई नहीं बना। इस रामायण ने हमें साहित्य दिया, रामायण ने हमें भाषा दी, रामायण ने हमें बल दिया। रामायण ने हमें स्वराज्य दिया, रामायण ने हमें सम्मान की जिंदगी दी। कुली से प्रधानमंत्री तक का पद एवं जीवन प्रदान किया। यह रामायण का चमत्कार है। मारीशस के वर्तमान राष्ट्रपति राजेश्वर पुरयाग अपने पुरखों की भूमि बजीतपुर पहुँच कर बच्चों की तरह फफक-फफककर रो पड़े। जैसे लम्बे समय से बिछुड़ा बालक अपनी माँ की गोद में आते

ही बिलख उठता है। इन्ही अपने पुरखों की भूमि को तलाशने में वे पचीस साल से लगे थे। आखिरकार वंशावली विशेषज्ञों की मदद से उन्हें सफलता मिली। बिहार में पटना से 25 कि.मी. दूर बजीतपुर गांव से उनके परदादा लक्ष्मण महतो नोनिया को 150 साल पहले 'पत्थर हटाकर सोना कमाने' का लालच देकर मारीशस ले जाया गया था। पुरयाग ने अपने परदादा की जी तोड़ मेहनत की दास्तान सुनायी। इतना ही नहीं, फरवरी 2008 में मारीशस के प्रधानमंत्री नवीनचन्द्र रामगुलाम भोजपुर (बिहार) में अपने पैतृक स्थान हरिगांव आकर भाव-विभोर हो गये थे। जनवरी 2012 में त्रिनिदाद टोबैगो की प्रधानमंत्री कमलाप्रसाद बिसेसर बक्सर के भेलापुर गांव आयी थी जहां से उनके परदादा भवनी स्वरूप 1889 ई. में त्रिनिदाद गये थे। बिसेसर ने गांव वालों के सामने कहा था, मेरे परदादा गांव से गीता और रामायण लेकर गये थे और देखिये, उन्होंने, इस गांव ने एक प्रधानमंत्री दिया है। इन सबके पुरखे गांव से गीता और रामायण लेकर गये थे, जिसने इनकी रक्षा की और आज इस सम्मान तक पहुँचाया। (साभार बप्पारावलः अप्रैल 2013, पृष्ठ 32) सूरीनाम में वहाँ के लोगों ने उसका नाम श्रीराम कर दिया। सूरीनाम में हिन्दू मंदिर बन गये। हिन्दू वहाँ 60 प्रतिशत हैं। भारतीय पद्धति पर वहाँ हिन्दू संस्कारित किये जाते हैं। अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन के अध्यक्ष श्री लल्लन प्रसाद व्यास राम-कथा पर केन्द्रित विश्व विख्यात महाकाव्य रामचरितमानस की विश्वव्यायी लोकप्रियता और प्रासंगिकता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं। तत्पश्चात् उन्नीसवीं शताब्दी में जब लाखों प्रवासी भारतीय कुली या मजदूर बनकर पूर्व और पश्चिम के सुदूर देशों—फिजी, मारिशस, गुयाना, सूरीनाम, त्रिनिदाद आदि पहुंचे तथा बीसवीं शताब्दी में व्यापारी बनकर अफ्रीकी, अमेरिकी, यूरोपीय और अनेक एशियाई देशों में पहुंचे तो इन अधिकांश आस्थावादी धार्मिक लोगों के द्वारा रामचरितमानस भी वहां पहुंच गयी। मानस के आध्यात्मिक अवलम्ब के बल पर ही उन्होंने इन देशों में बड़ी से बड़ी समस्याओं और संकटों का सामना किया, अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा की और बाद में ऐसी महत्त्वपूर्ण सामाजिक स्थिति बना ली जिससे वे उन देशों के भाग्यविधाता यानी गवर्नर जनरल, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री व मुख्य न्यायाधीश आदि बने। मानव इतिहास में यह घटना क्रम अपना एक अलग ही महत्त्व रखता है। जब तुलसीदासजी बूढ़े हो गये, तब गुरु गोविंदसिंह 15-16 वर्ष के थे। गुरु गोविंदसिंह ने तुलसीदासजी से प्रेरणा प्राप्त कर गोविंद रामायण लिखी व्रज भाषा में। उसमें गुरु गोविंदसिंह कहते हैं—

राम कथा जुग-जुग अटल सब कोऊ भाखत नेत।
स्वर्गवास रघुवर कियो सगली पुरी समेत।
जो यह कथा सुने अरु गावैं, दुःख दोष तहँ निकट न आवै।
रामभक्त की यह गति होई, आधि-व्याधि छू सकैं न कोई।।

ये गुरु गोविंदसिंह की रामायण की पंक्तियाँ हैं। एक-एक महापुरुष तुलसीदास से प्रभावित हुआ है।

जनकपुरधाम नेपाल में है। जब भगवान् राम वहाँ गये। जानकी से विवाह हुआ। लोग ब्याह में थोड़ा मजाक करते हैं। व्यंग्य-विनोद करते हैं। तो वहाँ की सखियों ने कहा कि जनकपुत्री जो गुणशीला है उसे निर्गुण राम को क्यों दे रहे हो? तो तुरंत लक्ष्मणजी ने उत्तर दिया—हमारे रामचंद्र तो देही हैं, देह के स्वामी हैं जानकी विदेही, बिना देह वाली।

ब्रह्म देश

भारत के पूर्व में ब्रह्मदेश है वह सन् 1936 तक भारत का ही अंग था। यह बहुत ही रोचक तथ्य है। वर्तमान राजधानी रंगून का नाम ही रामावती अर्थात् राम की नगरी था। रामावती से रम्मनवती, रंगनवती इत्यादि नाम परिवर्तित होते-होते रंगून हो गया है।

थाईलैण्ड

बर्मा के साथ वाला देश है थाई देश। इसे आंग्ल भाषा में थाईलैण्ड पुकारा जाता है। इसे श्याम देश भी कहते हैं। जावा, कम्बोडिया, इंडोनेशिया थाईदेश के ही भाग हैं। दुनिया में रामराज्य को सबसे अधिक जीवंत रूप में आज तक जिस ने जीवन में धारण कर रखा है और राम राज्य विभूषित देश है—थाईदेश। महर्षि वाल्मीकि ने कहा—

न हि तद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपति।

अर्थात् वह राष्ट्र ही नहीं जहाँ राम राजा नहीं। थाईदेश ने इसी कथन को मानो जीवन का आदर्श स्वीकार कर लिया है। इसलिये वहाँ के राजाओं के नाम राम से जुड़े हुए हैं। यथा बुद्धराम, जीवनराम, कृपाराम, रामाधिपति, रामराजा, महामंतक राम, सुखदेवराम, रामा मात्य, रामसुमन, रामपुत्र आदि। वहाँ हर राजा का नाम राम है आज तक। वहाँ की राजधानी का नाम अयोध्या। थाईलैण्ड में जो अयोध्या है उसकी आबादी तीन लाख, हमारी अयोध्या में मुश्किल से 30 हजार। हमारी अयोध्या में गंदगी के ढेर, गोबर के ढेर नजर आते हैं। उनकी अयोध्या में धूल का कण भी नजर नहीं आता है। आपकी अयोध्या खपरापोस मकान है फूस के झोपड़े हैं उनकी अयोध्या में सोने के महल हैं। प्रशस्त राजपथ है। फव्वारे चल रहे हैं। देखने से लगता है, स्वर्ग है। वे लोग कहते भी हैं कि विश्वकर्मा ने जिस अयोध्या नगरी को बनाया कि मनु भगवान् ने जहाँ राजधानी की, वह विश्वकर्मा की बनायी हुई अयोध्या नगरी कौन-सी है? आपकी अयोध्या या हमारी अयोध्या। हम कहते हैं सच्ची बात तो यह है कि हमारी अयोध्या ही विश्वकर्मा की बनायी हुई क्योंकि हमारी अयोध्या त्रेतायुग

की है। तुम्हारी अयोध्या आधुनिक काल की है। तुमने तो पिछले 1,000-1,200 वर्षों में अयोध्या नाम रखा है और श्रद्धा से रखा है। हमारी अयोध्या की प्रेरणा या नकल से रखा है और दुर्भाग्य से हमारी अयोध्या पर बार-बार आक्रमण हुए हैं। राम मंदिर तोड़कर मस्जिद बना दी गई थी। अभी भी पुनः मंदिर नहीं बनाया जा सका है। इसलिये हमारी अयोध्या क्षत-विक्षत है, लहूलुहान है तुम्हारी अयोध्या सुरक्षित है। वहाँ के Parliament में भगवान् मनु का चित्र है। मनु प्रथम विधि-निर्माता हैं उसके बिना Parliament कैसी? हमारी Parliament में मनुस्मृति फाड़ी जाती है। वहाँ राजपुरोहित का उपनाम वामदेव ही प्रचलित है। वामदेव वशिष्ठ के साथ महाराज दशरथ के दूसरे पुरोहित थे। इस देश में जो मुद्रापत्र छपते हैं, करंसी नोट छपते हैं उस करंसी नोट के ऊपर भगवान् राम का चित्र छपता है। थाई देश में राजमहल है उसके चारों ओर की परिक्रमा में भरपूर रामायण की कथा अंकित है।

वहाँ राजा के सिंहासन के पीछे राम के सिंहासन का चित्र है। जिसको हनुमान्जी ने शीर्ष के ऊपर उठा रखा है। मूल चित्र सोने का है। उस पर मणियों से काम किया हुआ है। राजा कहता है मैं तो राम के चरणों में बैठा हूँ। राम का सिंहासन पीछे है, ऊँचा है। राजा का सिंहासन आगे, नीचा है। जैसे राम के वनवास चले जाने पर पीछे उनकी पादुका राज्य करती थीं। मैं तो राम की पादुका के समान बैठा हूँ। जीवित राजा अपने आपको राम की पादुका मानता है। हमने कहा—ऐसी बात है! ऐसी आपकी अपार श्रद्धा है! हम इसका फोटो लेंगे। उन्होंने कहा हम फोटो नहीं लेने देंगे। मैंने कहा—क्यों? उन्होंने कहा—ये हमारे इष्ट देवता है। मैंने कहा—आपके इष्ट देवता हैं क्या हमारे इष्ट देवता नहीं हैं? क्या हमसे हमारा इष्ट देवता, हमारा राम ही छीनोगे? उसने कहा—नहीं, पर हम फोटो उतारने नहीं देंगे। हमने कहा—देखो, हम राम के अंशज, वंशज हैं। राम के देश के हैं, राम के देश की मिट्टी हमारे तन को लगी है। राम हमारे राष्ट्रपुरुष हैं, राम हमारे आदर्श पुरुष हैं, राम हमारे नीति पुरुष हैं, राम हमारे धर्मविग्रह हैं। राम हमारे भगवान् हैं। राम हमारे प्राण सर्वस्व हैं। राम हमारे सब कुछ हैं। आपने इष्ट देवता मान लिया, कुल देवता मान लिया तो आपके राष्ट्रपुरुष तो नहीं हुए। राम आपके देश के तो नहीं हैं। हम तो राम के देश से हैं। हमारे तो अनेक रिश्ते हैं। तब सात दिन बाद फोटो लेने की अनुमति मिली। सोने का चित्र होने से Flesh से जब भी कैमरा से फोटो लेवें तो चमक आ जाए। और चमक आ जाने से उसके नय-नक्श साफ नजर नहीं आए। हमने कहा इससे काम नहीं बना। हमने कहा इसको तो Trace (ट्रेस) करना पड़ेगा। ट्रेस आप कैसे करेंगे। मैंने कहा, ट्रेस करने के लिए इसके ऊपर ट्रेसिंग पेपर लगाकर ट्रेस करना पड़ेगा। फोटो तो कैमरा से दूर से ले सकते हैं। पर अब उसको छुए बिना चित्र कैसे बनेगा? उन्होंने कहा हम छूने नहीं देंगे। हमने कहा, क्यों? उन्होंने कहा हमारे इष्ट देवता हैं। हमने कहा बार-

बार आपके ही इष्ट देवता हैं। हमारे भी तो इष्ट देवता हैं। हमने कहा, इष्ट देवता की बात तय हो चुकी है। वह कहता है यह हमारे सिंहासन से ऊँचा है। इसको आप ट्रेस करने के लिए कैसे आप चढ़ेंगे? क्या मेरे सिंहासन पर पांव रखकर इसको ट्रेस करेंगे। हमारे सब पूर्वजों का नाम राम रहा है। तो राम के पूर्वजों के सिंहासन पर पांव नहीं रखने दूंगा। मैंने कहा हम तुम्हारे राम के सिंहासन पर पांव भी नहीं रखेंगे। हम तुम्हारे पूर्वजों के सिंहासन को छुएंगे भी नहीं। फिर भी हम ट्रेस कर लेंगे। वह कहता है कैसे करेंगे? दो ऊंची मेज रखकर, उस पर दो लकड़ी के पट्टे रखकर मचान बना लेंगे, उस पर चढ़कर उसकी पाद पूजा करेंगे, उसके बाद उसको ट्रेस करेंगे। लगभग सात फुट लम्बा वह चित्र, ट्रेस किया हुआ हमारी प्रदर्शनी में लगा हुआ है। थाईदेश के राष्ट्रीय संग्रहालय के मुख्यद्वार पर धनुर्धारी भगवान् श्रीराम की ऐसी अलौकिक एवं ओजस्वी मूर्ति स्थापित है जिसकी तुलना में दूसरी मूर्ति संभवतः विश्व में दुर्लभ ही है। 18 फुट ओजपूरित, विश्व को चुनौती देती हुई इस कांस्य मूर्ति को देखते ही मन ओज से ऊर्जस्वित हो उठता है। इस अलौकिक प्रतिमा के चित्र अभी तक थाईदेश के डाकटिकटों तथा दस टिक्कल के मुद्रापत्रों (करंसी नोटों) पर छपते हैं।

रामकीर्ति : रामाकिएन (थाईदेश की रामकथा)—थाई भाषा में रामकथा को रामकिएन कहते हैं। जिसका अर्थ रामकीर्ति होता है। यह थाईदेश के कोटि-कोटि रामभक्तों की श्रद्धा का ही चमत्कार है कि थाई लोग राम को अपने देश का तथा रामायण की घटनाओं को साक्षात् अपने देश की घटनायें ही मानते हैं।

थाईदेश में रामलीला—थाईदेश में रामलीला कई प्रकार से होती है। मुखौटा पहन कर नृत्य करते हैं। छायाचित्रों द्वारा रामलीला भी अत्यंत रोचक एवं प्रभावोत्पादक रहती है।

थाईदेश की प्राचीन राजधानी अयोध्या के समान ही इंडोनेशिया की राजधानी का नाम भी अयोध्याकर्त्ता रखा गया था जो रूपांतरित होकर जोग्याकर्त्ता तथा जकार्ता (वर्तमान राजधानी) बन गया है। इंडोनेशिया में सबसे बड़ा रामायण मूर्तिशिल्प तीर्थ है जिन पर रामायण की मूर्तियाँ उत्कीर्ण की हुई हैं आप देखें तो आपके नेत्र धन्य हो जायें। इंडोनेशिया की राजधानी जकार्ता से 12 किलोमीटर दूर स्थान है—प्रबनन। प्रबनन क्या है? परम ब्राह्मण। वहां सात मन्दिर हैं जिसके बनारस शैली के शिखर हैं। साढ़े तीन हजार से अधिक मूर्तियां रामायण पर वहां है। पूरी रामकथा मूर्ति शिल्प के रूप में वहीं हैं और संसार में कहीं अन्यत्र नहीं है, भारत में भी नहीं। सारी रामकथा प्रारम्भ से अन्त तक मूर्तियों में हो यह केवल इंडोनेशिया में है। इंडोनेशिया दुनिया में सबसे पहला अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन करवाता है। इंडोनेशिया की सरकार की ओर से रामलीला के पत्रक छपते हैं उनमें वे लोग एक संस्कृत की उक्ति छापते हैं—

यावत सादयन्ति ग्रीवा सरिताय महितले।
तावत रामायण गाथा लोकेषु प्रचलित सदा।।

जब तक धरती पर पर्वत खड़े रहेंगे और नदियाँ बहती रहेंगी, लोक-लोकांतरों में रामायण की कथा जन-जन में प्रचारित होती रहेगी। यह धर्म है हमारा। कर्तव्य है हमारा कि हम रामायण का प्रचार करें भारत सरकार की ओर से। दुर्भाग्य से हम तो करते नहीं हैं। इंडोनेशिया जो इस समय दुनिया का सबसे बड़ा मुस्लिम देश है वह अभी भी यह प्रचार करता है कि जब तक धरती पर पर्वत खड़े रहेंगे और नदियाँ बहती रहेंगी तब तक रामायण की कथा लोक-लोकांतरों में प्रचारित होती रहेगी। वहाँ के मंदिरों में जाकर रामकथा की मूर्तियाँ देखें। राम की लीला देखें। रामलीला, कृष्णलीला के चित्र देखें। आपका हृदय गद्‌गद हो जायेगा। इंडोनेशिया में हर साल रामायण महोत्सव राजकीय स्तर पर आयोजित होता है। इनमें मुस्लिम अभिनेता श्रद्धापूर्वक राम लक्ष्मण हनुमान् आदि का हृदयस्पर्शी अभिनय कर श्रोताओं को भाव-विभोर कर देते हैं। रामलीला काल में अभिनयकर्ता भूशयन करते हैं, मदिरा, मांस आदि का सेवन छोड़कर शुद्ध सात्त्विक आहार ग्रहण करते हैं।

भारतीय मुसलमान और रामायण : इंडोनेशिया में रामलीला। इस पर पाकिस्तान के राजदूत ने कहा कि कुरान में रामलीला का आदेश कहाँ है? इंडोनेशिया के राजदूत ने कहा—We have not changed our history. We cannot change our blood. Ramayan & Mahabharat are in my blood. यदि भारत का मुसलमान इंडोनेशिया की तरह होता तो आज हम सिंध और पंजाब तक होते। 95 प्रतिशत मुस्लिम में हिन्दू रक्त है। यदि भारत की संस्कृति को मानते, उसके प्रति उदार होते तो देश की हत्या नहीं होती। मुसलमानो! तुम भारतीय संस्कृति को मानो। जब 1,400 साल बाद यहूदी अपनी मातृभूमि वापस पा सकता है तो हम पुनः क्यों नहीं एक हो सकते हैं। अवश्य एक होंगे। गयी भूमि को प्राप्त करने का सबको स्वप्न देखना चाहिये।

आज प्रश्न उठता है भारत के मुसलमानों की समस्या का हल क्या है? क्या रहीम और रसखान ने मार्गदर्शन नहीं किया, अशफाक उल्ला खां ने मार्गदर्शन नहीं किया। दाराशिकोह ने मार्ग नहीं दिखाया। यदि मुसलमान रहते हुए भारत एवं भारतीयता के भक्त रहते तो क्या भारतमाता खंडित हो पाती? अभी भी चेतना हो तो क्या खंडित रह पायेगी?

इंडोनेशिया की जनता को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये दीर्घकालीन संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने गीता की शपथ ली। हममें भगवान् कृष्ण की बुद्धि एवं अर्जुन का बल है अतः विजय सुनिश्चित है। अंत में 17 अगस्त 1945 ई. को वह गणराज्य बना। उसी दिन घर-घर स्वतंत्रता के प्रतीक लाल व सफेद राष्ट्रीय ध्वज

फहराये गये। सन् 1945 को वहाँ प्रथम राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई। इस राष्ट्र को साम्राज्यशाही के कई बड़े-बड़े प्रहारों का सामना करना पड़ा। अंत में नवंबर 1949 में हेग में संपन्न गोलमेज कान्फ्रेंस में डच सरकार ने इण्डोनेशिया को इरियन (न्यूगिनी) छोड़कर शेष इण्डोनेशियाई क्षेत्रों की संप्रभुता सौंपने की सहमति दे दी। इस तरह इंडोनेशिया गणतंत्र को कानूनी मान्यता मिल गई। किन्तु देश की जनता को अपने राष्ट्र के अभिन्न अंग न्यूगिनी की पीड़ा साल रही थी। जनता न्यूगिनी की आजादी के लिये सतत संघर्षशील रही पर डच लोग तैयार नहीं हुए। अंत में डचों ने आखिरी दांव फेंककर कि यदि ऐतिहासिक आधार पर यह प्रमाणित कर दिया जाये कि न्यूगिनी इण्डोनेशिया का अभिन्न अंग है तो उसे स्वतंत्रता दे दी जायेगी। धार्मिक दृष्टि से शून्य डचों को क्या पता था कि भारतीय कवि वाल्मीकि ने किष्किंधा कांड के एक श्लोक में इस प्रश्न का उत्तर बहुत पूर्व लिखकर सुरक्षित कर दिया है। इंडोनेशिया वैसे भी रामायण-परायण देश था।

लोग राम के अध्ययन-मनन में लग गये। अंततः इंडोनेशियाई लोगों ने न्यूगिनी से संबंधित एक श्लोक रामायण में खोज ही लिया। यह महत्त्वपूर्ण श्लोक इस प्रकार है—

यत्नवन्तो यवद्वींप सप्तराज्योपशोभितम्।
सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णाकरमण्डितम्॥30॥

यवद्वीपमतिक्रम्य शिशिरो नाम पर्वतः।
दिवं स्पृशति शृंगेण देवदानवसेवितः॥31॥

सीता की खोज में पूर्व दिशा की ओर जाने वाले वानर दल को संबोधित करते हुए सुग्रीव ने कहा था—'सात राज्यों' से शोभित यवद्वीप (जावा) में, फिर सुमात्रा (स्वर्णद्वीप) में जाना। सुमात्रा के बाद एक शिशिर नामक पर्वत है। यह शिशिर पर्वत न्यूगिनी में है। यह अकाट्य प्रमाण पाकर साम्राज्यशाही डचों के पैरों तले की जमीन खिसक गयी। उन्होंने घुटने टेक दिये और बिन हीला-हुज्जत के न्यूगिनी को इण्डोनेशिया के हवाले कर दिया। यह चमत्कार वाल्मीकीय रामायण के एक श्लोक ने किया।

राम-कृष्ण, भीम, अर्जुन आदि राष्ट्रीय महापुरुषों के रूप में सम्मानित हैं। भूतपूर्व राष्ट्रपति सुकर्ण का नाम महाभारत के महारथी कर्ण के नाम पर था। इंडोनेशिया का बालि द्वीप तो शत-प्रतिशत हिन्दू धर्मावलंबी है। बालि में घर के दो भाग है—नर गृह और देवगृह। नर गृह में लोग रहते हैं तथा देवगृह में दैनिक पूजा-उपासना करते हैं। वहाँ अभी तक वर्ण-व्यवस्था, गौ पूजा, शिव-विष्णु उपासना, अंत्येष्टि संस्कार, श्राद्ध आदि सभी प्रथायें प्रचलित हैं।

अगला देश **कम्बुज** है जिसे कंबोडिया कहते हैं। जिसे कुम्भ ऋषि ने स्थापित किया था। संसार का सबसे बड़ा मंदिर है तो कम्बुज में है। इस मंदिर का नाम है—अंकुरवट। यह कितना बड़ा है आपको अचंभा होगा। 14 वर्गमील के घेरे में यह मन्दिरों का नगर है। मन्दिर ही मन्दिर 14 वर्गमील के अन्दर। आप कल्पना नहीं कर सकते इतना बड़ा मंदिर है। इस मंदिर के बीच में विष्णु भगवान् का मंदिर है। उसके चारों ओर ढाई सौ फुट चौड़ी खाई है जिसमें जल भरा हुआ है। उसमें जाने के लिये चार पुल बने हुए हैं। पुल पार कर के मंदिर की पीठिका में 14 हजार गरुड हैं जिन्होंने मंदिर के विमान को सिर पर उठा रखा है। उस मन्दिर विमान के सात सोपान हैं—भूलोक, भुव लोक, स्वलोक, मह-जन-तप और सत्य लोक। फिर जाकर विष्णु भगवान् के दर्शन हैं। निर्माता है—यशोवर्मन। यशोवर्मन प्रथम ने बनाना शुरू किया नौवीं शताब्दी में और यशोवर्मन तृतीय ने पूरा किया 85 वर्ष बाद। 85 साल लगे मंदिर को बनाने में। अलौकिक मंदिर है, उसमें सात खण्डों में रामायण-महाभारत की इतनी सामग्री है कि उसका अध्ययन करने के लिये यदि भगवान् सौ वर्ष का जीवन और देवें, यहीं बैठो, कहीं मत जाओ, इसी का अध्ययन करो, तो भी सौ वर्ष का जीवन उसके अध्ययन के लिये पर्याप्त नहीं है। कितनी सामग्री है एक स्थान पर सोच ही नहीं सकते हैं!

उस समय भारत में पठानों का राज्य था। उस समय एक हिन्दू राजा ने विश्व का सबसे विशाल मंदिर बनवाया। उसकी महिमा में वहाँ एक विशाल लेख है—

चीन चंपा यवद्वीप भूभृत तुंग मस्तकैय,
यस्य आज्ञा मारुतिमाला यदा सदा चुम्दाय यतै।

चीन के राजा, चंपा-वियतनाम के राजा, यवद्वीप जावा इंडोनेशिया के राजा, भू भृत माने राजा अपने 'उत्तंग मस्तकै' माने अपने ऊँचे मस्तकों से। चीन, चंपा, यवद्वीप के राजा अपने ऊँचे मस्तकों से, 'यस्य आज्ञा' राजा यशोवर्मा की आज्ञा को मारुतिमाला समझकर उसको शीश झुकाते थे, चूमकर मान दिखाते थे। उसका इतना मान था कि चीन उसकी आज्ञा के सामने अकड़ नहीं दिखाता। कोई अकड़ नहीं दिखाता है पर मन से नहीं मानते हैं। कुछ लोग मन से मुकर जाते हों। ऐसा भी नहीं। वरन् चीन, चंपा, यवद्वीप के राजा उसकी आज्ञा को सूत्र मानकर चूमते थे, मारुति माला समझकर उसको शिर पर चढ़ाते थे। ऐसा प्रतापी राजा था।

अगला देश (लव देश) लाओस नाम श्रीराम के पुत्र लव पर पड़ा है। यहाँ भगवान् राम की लीलायें खेली जाती हैं। यहाँ दो प्रकार की रामायण कथा प्रचलित है। लक्ष्मण और राम की कथा—'लक' शब्द लक्ष्मण है और लाभ शब्द राम के लिए प्रयोग हुआ है। यह कथा लाओस में बहुत प्रचलित है। यह वाल्मीकीय रामायण के आधार पर लाओस रामायण है। इस रामायण के कुछ कथानक भित्ति चित्रों के

रूप में लाओस की राजधानी लुआग प्रवंग के मन्दिरों में देखने को मिलते हैं। यहां के राजमहल में वार्षिक रामायण उत्सव बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। लाओस रामायण सरयू और गंगा के स्थान पर मीकांग नदी के परिपेक्ष्य में रची हुई है।

ब्रह्मजात—यहां एक अन्य रामायण ब्रह्मजात भी प्रचलित है। यह ग्रंथ बौद्ध विद्वानों द्वारा रचित है। इसमें राम को बुद्ध भगवान् के समान दिखाया गया है और रावण को देवदत्त (बुद्ध का चचेरा भाई) जो उनका शत्रु हो गया था।

वियतनाम—भारत के ऋषि कौंडिल्य भारतीय संस्कृति की ज्योति वियतनाम ले गये थे। उन्होंने इस देश को चम्पा नाम दिया। शैवधर्म, विष्णु पूजा और बौद्धधर्म अभी भी इस देश में चल रहे हैं। चम्पा का राजधर्म शैवधर्म था। शिव, शक्ति, गणेश, दुर्गा, राम, कृष्ण, विष्णु आदि देवों की भव्य प्रतिमाएं बहुत पायी जाती है। कई संस्कृत शिलालेख भी वहां है।

जापान में वीणावादिनी सरस्वती की मूर्ति। 1,200 वर्षों से जापान के बच्चे-बच्चियां इस सरस्वती को नमस्कार करके स्कूल-कॉलेज में पढ़ने जाते हैं। जापान में चतुर्मुख ब्रह्मा। महर्षि वशिष्ठ जापान में। एक बार चंगेज खां ने जापान पर हमला कर दिया, घेर लिया चारों ओर से जापान को। जापान के लोगों ने सोचा अब क्या करें? उनको कोई उपाय नहीं सूझा फिर वे शंकर भगवान् की विशेष उपासना करते हैं। शंकर भगवान् ही हमारे रक्षक हो सकते हैं। शिव मन्दिरों में जाकर उन्होंने सामूहिक रूप से शिव की स्तुति की। शिव के स्तोत्र गाये। प्रार्थना के स्वरों से उनके मन को बल मिला और चंगेज खां का मन बदल गया। चंगेज खां ने सेनाओं को कहा, लंगर उठाओ और इंडोनेशिया की ओर बढ़ जाओ। जापान बच गया। जापान ने शिव को अपना राष्ट्रीय देवता माना। जापानी लिपि जो है उसका आविष्कार करने वाले महापुरुष हैं भारतीय संत बौद्धिसेन भारद्वाज। जापान की लिपि जो ऊपर से नीचे लिखी जाती है उसके आविष्कारक हैं भारतीय संत जो सातवीं शताब्दी में वहां गये थे। जिनका चित्र बोस्टन में लगा हुआ है और हमारे यहाँ जैसे गणेशजी।

यह गणेशजी का चित्र तिब्बत में है। गणेशजी को हम लिपि विद्या का आविष्कारक मानते हैं। क्योंकि वेद श्रुति था। सुना गया। लिखा नहीं गया। उसी प्रकार से रामायण वाल्मीकि ने रची, लिखी नहीं। लवकुश को सुनायी। लवकुश ने रामदरबार में जाकर सुनायी। रामायण लिखी नहीं गयी। सुनायी गयी। वेद भी सुनाया गया। सबसे पहले जो ग्रंथ लिखा गया वह महाभारत है। वेदव्यासजी ने रचा, लिखा नहीं। लिखा गणेशजी ने। लिखने के लिए बुलाया गणेशजी को। संसार का सबसे प्रथम कोई आशुलिपिक है तो गणेशजी हैं। इसलिए गणेशजी को हम मानते हैं लिपि विद्या के आविष्कारक हैं। अभी भी किसी कोश में जाकर देख

लो गणेश विद्या। गणेश विद्या का अर्थ है—लिपि विद्या। गणेशजी लिपि विद्या के आविष्कारक हैं। अतः कुछ लिखने से पहले हम लिखते हैं श्री गणेशाय नमः। जिस गणेशजी ने लिपि विद्या दी है हम जब लिखने लगते हैं उनको पहले नमस्कार करते हैं। इसलिए हम गणेशाय नमः लिखते हैं। जापान के लोग इसलिए 1,200 सालों से कुछ लिखने से पहले श्री भारद्वाजाय नमः लिखते हैं। भारद्वाजजी ने लिपि लिखी थी इसलिए नमस्कार करते हैं।

सिंगापुर में अभी भी भारतीय उत्सवों का प्रचलन है। चीन में चीनी भाषा में रामायण लिखी गयी। हालैण्ड में स्थित महर्षि वैदिक विश्वविद्यालय के शोध से पता चला है कि विश्वभर में एक हजार नगर ऐसे हैं जिनका नाम राम से ही शुरू होता है। ये शहर संसार के कोने-कोने में हैं—इराक, ईरान तथा सऊदी अरब में भी राम के नाम से जुड़े शहर हैं। आठ 'रामनगर' तथा बीस 'रामपुर' सहित भारत में 62 नगरों के नाम 'राम' से ही प्रारम्भ होते हैं। 'राम' नाम की महिमा उजागर करने वाले कुछ देशों के नगर इस प्रकार हैं—**ईरान**—रामिया, रामिस्क, रामरोहद, रामसार, रामहमोज। **इराक**—रामा, रामाल्लाह, रमन, राबन, रामूथा। **लेबनान**—रामीथी। **लीबिया**—रामलहल, कबिरह। **सीरिया**—रामर, रामट। **मोरक्को**—सानिया, रामेल। **अफगानिस्तान**—रामबुब। **संयुक्त अरब अमीरात**—राम्स। **मैक्सिको**—रामोनल, रामीरेज। **अमेरीका**—रामह, रामपो, रामरिटो, रामीरेज। **ब्राजील**—रामोज, रामल्हों। **अलास्का**—रामोज। **पेरू**—रामोन। **डेन्मार्क**—रम्मी, रामसि, रामटेन। **इंग्लैण्ड**—रामटेम्पासाइड, रामसगबेट। **फ्रान्स**—रामह्यूबेल, सेंट रामबाउलर, सेंट रामर्बट। **जर्मनी**—रामबर्ग, रामबो, रामस्टीन। **पुर्तगाल**—रामलहर। **स्पेन**—राम कस्ट हट, रामाल्स डेला विक्टोरिया। **स्वीडन**—रामाज, रामसबर्ग। **बेल्जियम**—इवोजगमेट, रामसेल। **रूस**—रामसुख, रामेखा, रामेस्क, रामिट, रामोगला, रामजा। **दक्षिण अफ्रीका**—रामे, रामसगेट। **केन्या**—रामा, रामू। **बोत्स्वाना**—रामोत्सवा, रामसडेम। **जिम्बाब्वे**—रामक्काडाम। **आस्ट्रेलिया**—रामसे। **श्रीलंका**—रामबेवा। **रवाण्डा**—रामबरा।

इस प्रकार सारे दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक देशों तथा सहस्रों द्वीपों में भारतीय संस्कृति का प्रकाश आज भी जगमगा रहा है। इसे देखकर फ्रेडरिक लुई ने लिखा—

'जब यूरोप सभ्यता से बहुत दूर था, उस समय के जो अवशेष एशियाई प्रदेशों में पाये जाते हैं वे इस बात के प्रमाण हैं कि भारत के निवासियों ने सभ्यता का निर्माण कर ठोस आधार पा लिया था।' प्रम्बनम में संसार का विशालतम एवं सुंदरतम रामायण मूर्तिशिल्प तीर्थ है। इंडोनेशिया ने सर्वप्रथम अन्तरराष्ट्रीय रामायण

महोत्सव आयोजित किया। कंबुज, लव देश, चंपा, चीन, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, नेपाल सभी में रामायण प्रतिष्ठित है। ईरान, अरब, मध्यपूर्व अफ्रीका तक में रामायण के अनुवाद हुए हैं। यूरोप एवं अमरीका के विद्वान् रामायण पर मुग्ध हैं। सूरीनाम, मारीशस, फिजी, गिआना में रामायण ही वहाँ के भारतवंशियों का जीवनप्राण है।

खालसा पंथ के संस्थापक होते हुए भी गुरु गोविंदसिंह ने गोविंद रामायण लिखी। जिस पर आज बड़े-बड़े शोध हो रहे हैं।

गुरु ग्रंथ साहिब में 30 हजार बार राम नाम आया है। बौद्धों ने रामायण पर मुग्ध होकर दशरथ जातक, अनामक जातक नामक रामायण पर आधारित ग्रंथ लिखे।

जैन धर्म के विमलसूरि ने परमचरित्र और हेमचंद्र आचार्यश्री ने जैनी रामायण द्वारा राम के चरणों में अपना अर्घ्य चढ़ाया है, आदि।

डॉ. लोहिया अनीश्वरवादी थे फिर भी वे राम-कृष्ण-शिव की चर्चा करते हैं क्योंकि ये राष्ट्र की एकता के ही नायक नहीं वरन् विश्व ऐक्य के आधार हैं। ये तीनों मानव-जाति के आदर्श पुरुष हैं। वे श्रीराम, कृष्ण व शिव को भारतीय संस्कृति का आधार मानते थे। रामकथा संसार व्यापी है। इसलिये उन्होंने अन्तरराष्ट्रीय रामायण मेले की योजना प्रस्तुत की। क्योंकि रामायण मेला विश्व मैत्री का प्रबल सांस्कृतिक आधार भी है। रामकथा भारत के उत्तर और दक्षिण भाग को ही जोड़ने वाली नहीं, सिर्फ दक्षिण-पूर्व एशिया को मात्र एकात्म सूत्र में बांधने वाला एशियाई एकता का ही आधार नहीं वरन् अन्तरराष्ट्रीय सौहार्द का अनुपम साधन है। रामानन्द सागर कृत रामायण सिरियल जब दिखायी जा रही थी तो विश्व के विद्वान् मंत्र मुग्ध थे कि ऐसे भी आदर्श चरित्र हो सकते हैं। जापान आदि कई देशों ने उसका अपनी भाषा में अनुवाद कर प्रसारित किया था। इस प्रकार सारा विश्व रामायण पर मुग्ध है।

अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन के अध्यक्ष श्री लल्लन प्रसाद व्यास एक लेख में लिखते हैं कि सन् 1984 से अब तक के गत पचीस वर्षों में पचीस अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलनों के सफल सार्थक आयोजन विश्व में अपना एक अलग ही कीर्तिमान है। श्री व्यास ने आशा व्यक्त की है कि यदि रामायण पर आधारित एक 'सांस्कृतिक राष्ट्र मण्डल' बनाया जा सके, तो इससे मानव-मूल्यों को बढ़ावा मिलेगा। साथ ही साथ यह 'ब्रिटिश कॉमनवेल्थ' से कहीं अधिक प्रभावी होगा।

रामभक्त श्रीहनुमान्

श्रीरामचरित्र की धुरी श्रीहनुमान् चरित्र ही है। श्रीहनुमान्जी के नेत्रों में रामचरित्र है, उनकी वाणी में राम नाम है, उनके प्रत्येक कृत्य में राम काज है, उनकी प्रत्येक चेष्टा राम प्रेरित है, उनके रोम-रोम में भी राम रमे हैं। रामकथा का घटनाचक्र मारुतिनन्दन हनुमान्जी जैसी सुदृढ़ धर्म धुरी पर ही घूम रहा है।

श्री हनुमान्जी का जीवन निष्काम कर्मयोग पर जीवितभाष्य ही था। वे यज्ञमय जीवन के मूर्तिमन्त अवतार थे। 'राम काज करिबे को आतुर' श्रीहनुमान्जी ने इतने उपकार कर्म किये किन्तु अहंकार उन्हें छू तक नहीं पाया।

भगवान् श्रीराम ने अपना राज्याभिषेक हो जाने पर सबको पुरस्कार बाँटे किन्तु श्री हनुमान्जी को क्या दें यही समझ में नहीं आ रहा था। भगवान् राम ने कहा—

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्।।
मदंगे जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्।।

वा. रामा. 7/40/23-24

'हे हनुमान्जी! तुम्हारे एक-एक उपकार का ऋण चुकाने में मैं प्राण न्योछावर करने को उद्यत हूँ परन्तु तुम्हारे जो अनेकों उपकार शेष रह जाते हैं, उनके लिए तो हम सपरिवार-सपरिकर सदैव तुम्हारे ऋणी ही रहेंगे। मैं नहीं चाहता कि मैं तुमसे उऋण हो जाऊँ। मैं चाहता हूँ कि मैं तुम्हारा चिरऋणी बना रहूँ और तुम्हारे उपकार मेरे अंग में पच जायें, क्योंकि किसी का बदले में प्रत्युपकार तभी किया जा सकता है जब वह भी वैसी आपत्ति में पड़ा हो। मैं स्वयं भी नहीं चाहता कि तुम पर कोई आपत्ति आये (अर्थात् मैं नहीं चाहता कि तुम कभी विवाह करो, तुम्हें वनवास मिले, पत्नी हरण से रोते भटकते फिरो और तब हम तुम्हारी सहायता कर सकें)।

जब हनुमान्जी अशोक वाटिका, लंका (वर्तमान नाम सीता एलिया निकट नूवर एलिया, श्रीलंका का 8,000 फुट ऊँचा पर्वतीय अशोकवनम्) में सीताजी

का पता लगाकर किष्किंधा पर्वत पर लौटे तो भगवान् ने उन्हें हृदय से लगा कर कहा, 'मैं तो इस समय स्वयं दीन हूँ, इस शुभ संवाद के बदले तुम्हें क्या दूँ। लो, तुम्हारा आलिंगन कर मैं तुम्हें अपना सर्वस्व दे रहा हूँ। (वा. रा.)

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहि कोउ सुरनर मुनि तनुधारी।।

श्रीहनुमान्जी निरभिमान भाव से उत्तर देते हैं—

सो सब तव प्रताप रघुराई।
नाथ न कछू मोरि प्रभुताई।।

ऐसे ज्ञानियों में हनुमानजी अग्रगण्य है। एक समय श्री रामचन्द्रजी ने हनुमान से पूछा—हमारे साथ तुम्हारा क्या रिश्ता है, सम्बन्ध है। तब हनुमानजी ने उत्तर दिया—महाराज! शरीर की दृष्टि से मैं आपका दास हूं, जीव की दृष्टि से आपका अंश और स्वरूप की दृष्टि से, आत्मा की दृष्टि से आप में और मेरे में कोई अन्तर नहीं है—

देहदृष्ट्या तु दासोऽहं, जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
आत्मदृष्ट्या त्वमेवाहं इति मे निश्चिता मतिः।।

वे अध्यात्मिक ज्ञान में ही अग्रगण्य नहीं लौकिक और व्यावहारिक ज्ञान में भी निपुण हैं। मां सीता से वार्तालाप, रावण की राज सभा में रावण से वार्तालाप से स्पष्ट है।

जामवंत के प्रबोधन से मां सीता का पता लगाने लंका के लिए प्रस्थान करते हैं। जामवंत ने सब काम करके आना है पर क्या-क्या करना है यह हनुमानजी को पता नहीं है। क्या-क्या करना है यह समस्या थी। रास्ते में राक्षसी मिली मैं तेरे को खाऊंगी। पर उससे भी आशीर्वाद मिला कि सब काम करके आना, पर क्या करना है यह नहीं बताया। लंकिनी की बुद्धि जब रक्त वमन के पश्चात् ठीक हो गयी दूषित सारा रक्त बह गया जैसे भीष्म पितामह का भी जब दूषित रक्त बह गया तब उन्होंने भी श्रीकृष्ण की आज्ञा से पाण्डवों को उपदेश दिया, द्रौपदी का समाधान किया। कहा कि दूषित रक्त बह जाने के कारण ही मैं सत् उपदेश देने में समर्थ हुआ। तेरे चीर हरण के समय दूषित रक्त होने से तेरे प्रश्न का उत्तर उस समय नहीं दे सका था। वैसे ही यहां हनुमानजी के घूसे से लंकिनी का भी सारा दूषित रक्त बह गया तो वह सत् उपदेश और सारे कार्यों को करने का आशीर्वाद देती है पर क्या कार्य करना है यह नहीं बताया। पर हनुमानजी जब सीता माता के पास पहुंचे तब त्रिजटा अपना स्वप्न बता रही थी। एक बंदर आकर के सारे बागों को उजाड़ देगा, लंका को जला देगा, रावण के मन में दहशत उत्पन्न कर देगा! त्रिजटा पूरा

विवरण प्रस्तुत करती है कि हनुमानजी क्या-क्या करेंगे। तब हनुमानजी को लगा मुझे ये-ये काम करना है। मां को देखकर बच्चे को भूख लग जाती है। सीता माता से कहते हैं मेरे को भूख लगी है, पर सीता माता कहती है मेरे पास कुछ नहीं है। मां मैं अपना भोजन देखकर आया हूं। मुझे तो बस आपकी आज्ञा चाहिए। सुन्दर आम के एवं अन्य फलों के बगीचे हैं। सीता माता की आज्ञा से आम के बाग में जाकर आम खाने लगे। उनका रस चूसकर उसकी गुठली निशाचरों पर थूकने लगे। बहुत से आम मुंह में भर लेते, उसका रस चूस करके गुठलियां निशाचरों पर थूक देते जो सोये हुए पड़े थे। निशाचर का अर्थ होता है जो रात को जागते हैं दिन में सोते हैं। गुठली की मार से निशाचर जाग उठे और देखा एक बड़ा भारी बन्दर सारे बाग को उजाड़ रहा है।

हनुमानजी भक्तों में शिरोमणि हैं। केवल राम नाम तक ही सीमित नहीं हैं। राम नाम के साथ राम की सेवा में उनके कार्य सम्पादन में भी निपुण हैं, स्वयं करने में ही नहीं करवाने में भी निपुण हैं। विभीषण के महल में राम नाम लिखा है, स्वयं उनके मुख से राम-नाम का उच्चारण सुनकर वे विभीषण से परिचय करते हैं। फिर विभीषण को प्रबोधित करते हैं—स्वयं राम संकट में है, उनका आदर्श संकट में है। केवल राम नाम कहने से, राम नाम की चादर ओढ़ लेने से कार्य पूरा नहीं होता, राम के नाम के साथ उनके गुण और कार्य, उनकी सेवा का भी योग होना चाहिए। तभी भगवद् नाम लेना सार्थक होगा। विभीषण से उन्हें सीता माता का पता चलता है, विभीषण के कारण ही लंका दहन में समर्थ होते हैं।

ऐसी प्रेरणा मध्य युग में गुरु गोविन्दसिंह ने बंदा वैरागी को दी थी। जब उनके चारों वीर पुत्र एवं उनके सैनिक धर्म कार्य में संघर्ष करते-करते बलिदान हो गये तब उन्होंने दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान किया और शिवाजी से मिलकर हिन्दू राज्य धर्म राज्य की स्थापना कर सके। रास्ते में बंदा वैरागी से भेंट होती है। गुरु गोविन्दसिंह दक्षिण में माला जपने वाले बंदा वैरागी को कर्तव्य बोध देते हुए कहते हैं—

'**धन्य जीबो तिंह को जग में मुख ते हरि चित्त में युद्ध विचारे।**'

अर्थात् जीवन उसी का धन्य है जो मुख से हरि का स्मरण करते हुए चित्त में संसार के कर्तव्य संग्राम के लिए सदा प्रस्तुत रहे। गुरु गोविन्दसिंह की प्रेरणा से बंदा वैरागी ने कैसा दुर्धर्ष संघर्ष किया मुगल सल्तनत के विरुद्ध यह हम सब जानते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण भी गीता में अर्जुन को यही संदेश देते हैं—**तस्मात् सर्वेषु कालेषु माम अनुस्मरेत युद्ध च।**8/7

सब कालों में मुझे स्मरण करता हुआ युद्ध कर।

सामान्य व्यक्ति अपनी स्वाभाविक कठिनाई बता सकता है कि यदि भगवान् का स्मरण करेंगे तो युद्ध जैसा भीषण कर्म कैसे कर सकते हैं? भगवान् का स्मरण शांत चित्त से हो सकता है। युद्ध क्रोध एवं आवेश में हो सकता है। दोनों का मेल कैसे बैठाया जाए। गीता में यही विशेषता है कि इसने सर्वोच्च ज्ञान का सबसे कठिन कर्म के साथ मेल का मात्र सिद्धान्त कथन ही नहीं किया वरन् प्रत्यक्ष इतिहास में उसको सफल ढंग से प्रयोग करके दिखा भी दिया। प्रारम्भ में अर्जुन क्रोध एवं द्वेष से भरकर युद्ध भूमि में प्रविष्ट हुआ था। उसने कहा, भगवान्! मुझे शक्ल तो दिखाओ कौन माई के लाल मेरे से लड़ने के लिए आए हैं। जब उसने देखा कि अपने ही स्वजन और गुरुजन सामने शत्रु की पंक्ति में खड़े हैं तब उसके मन में मोह एवं राग उत्पन्न हो गया। तब हथियार फेंककर युद्ध भूमि से भागने का विचार करने लगा। भगवान् ने कहा, हे अर्जुन! न हम तुम्हें द्वेष से मारने देंगे न राग के कारण भागने देंगे अर्थात् राग-द्वेष दोनों को एकतरफ छोड़कर शुद्ध कर्तव्य भावना से प्रभु को स्मरण करते हुए कर्म करो। प्रभु के फूल प्रभु के चरणों में चढ़ाने के लिए स्वधर्म पालन में महायुद्ध लड़ो। यह बहुत क्रियात्मक जीवन दर्शन है। ईश्वर को भुलाकर युद्ध सत्य रूप न रहकर केवल नृशंसता, सर्वसंहार बन जाएगा। कर्म से भागकर केवल ईश्वर के स्मरण की माला जपते रहने से यह नैतिकता विरोधी ढोंग बन जाएगा।

एक बार कविवर रहीम ने गोस्वामी तुलसीदासजी से पूछा—

काज करे संसार के मिलन चहत करतार।
कह रहीम कैसे निभे दो रथ एक सवार।।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने उत्तर दिया—

काज करे संसार के, प्रभु पर राखे टेक।
तुलसी यों निभ जाएंगे दो घोड़े रथ एक।।

लोक में भी प्रसिद्ध उक्ति है—

कर से कर्म करो विधि नाना। मन राखो जहां कृपा निधाना।।

इस प्रकार राम नाम के साथ उनका गुण, कर्म, चरित्र हमारे जीवन में आना चाहिए। राम नाम के साथ-साथ सेवा का भी योग होना चाहिए। तभी राम नाम लेना सार्थक होगा।

यही कारण है कि रामायण में सतीक्षण का भी नाम आता है जो केवल राम नाम में ही रत रहे। राम कार्य में अपना विनियोग नहीं किया अतः वे आदर्श चरित्र के रूप में उभर कर नहीं आते हैं और न राम कथा में उनकी एकाध स्थान छोड़कर कहीं कोई चर्चा ही है।

हनुमानजी ज्ञान, कर्म, भक्ति के साथ-साथ बल की साकार प्रतिमा थे। यदि बल न हो तो ज्ञान और भक्ति मन में ही रह जायेंगे। ज्ञान और प्रेम को अपने जीवन में, समाज जीवन, राष्ट्र जीवन, विश्व जीवन यानी संसार में स्थापित करने के लिए बल की नितान्त आवश्यकता है। बिना बल के हम न ज्ञान की रक्षा कर सकते हैं, न भक्ति की। इसलिए उपनिषदों में बल की बड़ी महिमा गायी गई है। दुर्बल कुछ नहीं कर सकता। एक बलवान मनुष्य आता है और सैकड़ों को झुका देता है। ऋषि कहता है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।
वीर भोग्या वसुंधरा आदि।।

दुर्बल के लिए दासता एवं दुःख-दैन्य सदैव तैयार रहता है।

स्वयं राम ने शक्ति उपासना की। राम-रावण के पहले दिन के युद्ध में रामजी स्वयं निराश होने लगे। शरीर पर कई घाव हो गये। राम की आंखों से अश्रु प्रवाहित होने लगे कि साक्षात् शक्ति का अवतरण हो गया है, रावण पर विजय प्राप्त करना असम्भव है। जामवंतजी ने कहा, शक्ति का उत्तर महाशक्ति से दो। शक्ति उपासना का उत्तर महाशक्ति की उपासना से दो। तब रामजी ने दुर्गा की उपासना की, शक्ति के अवतरण के लिए महाशक्ति की अराधना करके महाशक्ति को प्रसन्न किया। इस प्रकार स्वयं भगवान राम ने शक्ति की अराधना की। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से युद्ध के पूर्व शक्ति की उपासना करवायी।

हनुमानजी ने भी बल की कभी उपेक्षा नहीं की। वे बल की साकार प्रतिमा थे। इसलिए जब आवश्यकता हुई तो समुद्र को एक छलांग में ही लांघ गये! आवश्यकता पड़ने पर लंका दहन कर रावण एवं असुरों के मन में आतंक मचा दिया। हनुमानजी की शक्ति के सहयोग से ही आततायी रावण का संहार होकर धर्म राज्य की राम राज्य की पुनः स्थापना हो सकी।

केवल अकेले की शक्ति पर्याप्त नहीं है। सामूहिक बल आवश्यक है अतः संघबद्धता यानी संगठन की आवश्यकता है। हनुमानजी ने वानर सेना को संगठित किया, सुग्रीव को भगवान राम से जोड़ा, विभीषण को भी जोड़ा। भगवान राम ने भी वनवासियों को संगठित कर उस संगठित सेना के बल पर ही रावण का प्रतिकार किया।

इसलिए भारतीय संस्कृति ने ज्ञान-प्रेम, बल के साथ-साथ संघबद्धता पर जोर दिया है—

ॐ संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवाभागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।।

(ऋग्वेद 10-191-2)

कदम से कदम मिलाकर चलो, स्वर में स्वर मिला कर बोलो, मन में समान विचार धारण करो। तो समान विचार, समान आचार, समान उच्चार इसी के माध्यम से संगठन का निर्माण होता है। और वेद कहते हैं पूर्व काल में देवताओं ने इसी पद्धति से संगठित हो करके यज्ञ में अपना हविर्भाग प्राप्त किया था।

इन चारों की समन्वित धारा को ही सनातन धारा या सनातन धर्म कहा है। जब तक यह सनातन धारा या धर्म सबल रहे हैं तब तक हमने चतुर्दिक विकास किया। ज्ञान की दृष्टि से हम जगद् गुरु, वैभव की दृष्टि से सोने की चिड़िया, बल की दृष्टि से अजेय, संगठन की दृष्टि से अभेद्य थे। यही कारण है कि जब हम स्वयं प्रशासनिक दृष्टि से अनेक राजे-रजवाड़ों में बंटे होने के बाद भी वृहत्तर भारत की स्थापना कर सके।

गीता के 16वें अध्याय में भगवान ने बताया प्रारम्भ से ही दो प्रकार की सृष्टि—दैवी और आसुरी सर्ग। दैवी प्रकृति के लोग सतोगुणी होने से इन पर ही विवेक और प्रेम का शासन कारगर होता है पर जो आसुरी प्रकृति के हैं तमोगुणी हैं जिनका मस्तिष्क विकृत और हृदय शुष्क है उन पर प्रेम और विवेक का शासन कारगर नहीं होता है। उसे वे हमारी दुर्बलता समझते हैं, वे तो दण्ड की भाषा ही समझते हैं। तभी तो साक्षात् ज्ञान और प्रेम के अवतार भगवान राम और कृष्ण को दण्ड का सहारा लेना पड़ता है। साक्षात् प्रेम-करुणा के अवतार चैतन्य महाप्रभु को भी काजी जगाई माधों के विरुद्ध शक्ति प्रदर्शन करना पड़ा, जलती मशाल का जुलूस निकालना पड़ा, मार काजी काट काजी के स्लोगन के साथ उसका घेराव करना पड़ा तब काजी की बुद्धि ठिकाने पर आयी।

तुलसीदासजी ने केवल रामायण की ही रचना नहीं की उन्होंने स्थान-स्थान पर अखाड़े भी स्थापित किये।

तुलसीदासजी ने मानसिंह को राणा प्रताप के विरुद्ध युद्ध से विरत किया। अकबर की राजनीति से अलग कर उसे समस्त भारत वर्ष की तीर्थ यात्रा में लगाया। और उसे कहा, तुम अपनी समाधि हरिद्वार की हरकी पैड़ी में बनवाना ताकि सुरेश्वरी गंगा के पावन जल से अनन्तकालपर्यंत निरवधि (निरन्तर) तुम्हारे देशद्रोह, भ्रातृद्रोह एवं जातिद्रोह के पाप का परिक्षालन होता रहेगा।'

आप सब हरकी पैड़ी पर जाने से मानसिंह की छतरी देखेंगे। अनेक लोग भी कहते हैं—'इस विश्वासघाती की छतरी यहाँ क्यों? इसका कारण हुआ तुलसीदासजी की आज्ञा। मानसिंह के भ्रातृद्रोह के प्रायश्चित्त के लिए ताकि उसके पाप गंगा से धुलते रहें। और भी एक कारण है, मानसिंह चाहते थे कि लोग उसे उसके अधम कार्य के लिये चिरकाल तक धिक्कार देते रहें। तुलसीदासजी ने यह

चमत्कार करके दिखा दिया। जो यह संदेश देती है कि विचार और साहित्य की शक्ति एक राष्ट्र का इतिहास बदल सकती है।

समर्थ रामदासजी ने भी ग्राम-ग्राम में अखाड़े स्थापित किये। पूरे भारत में सात सौ मठ मन्दिर अखाड़े स्थापित कर एक सशक्त संगठन तंत्र खड़ा किया। 27 संत इस कार्य में लगे। अखाड़ों के साथ-साथ रामकथा भी गांव-गांव पहुंची। ये अखाड़े के सदस्य ही शिवाजी की सैन्य शक्ति का आधार बने। इन मन्दिरों में भगवान श्रीराम तथा हनुमानजी की मूर्तियां स्थापित की जाती थी तथा प्रतिदिन वहां नवयुवक एकत्र होकर अखाड़े में मलखंभ, कुश्ती, व्यायाम आदि करते थे। जब शिवाजी महाराज आगरा से औरंगजेब की कैद से निकल भागे थे तब इन्हीं मठ-मन्दिरों के सहयोग से वे सुरक्षित अपने गृहक्षेत्र तक पहुंच सके थे।

आधुनिक समय में स्वामी विवेकानन्द ने युवकों को आह्वान करते हुए कहा—तुम्हें महावीर के चरित्र को आदर्श के रूप में रखना होगा—

(1) देखो किस प्रकार रामचन्द्र की आज्ञा पर समुद्र लांघ गये। उन्होंने जीवन-मृत्यु की तनिक भी चिन्ता नहीं की। वे अपनी इन्द्रियों के पूर्ण स्वामी थे। और अद्‌भुत प्रज्ञा से सम्पन्न थे। तुम्हें व्यक्तिगत सेवा के इस महान् आदर्श के नमूने पर अपने जीवन का निर्माण करना होगा। उसके द्वारा अन्य समस्त आदर्श भी जीवन में स्वतः धीरे-धीरे प्रकट होंगे। (2) हनुमानजी जहां एक ओर सेवा के आदर्श प्रतीक हैं वहीं दूसरी ओर वे समस्त संसार को आवश्यकता पड़ने पर आतंकित कर देने वाले सिंहवत् साहस के भी प्रतीक हैं। राम के हित के लिए प्राण बलिदान करने में तनिक भी संकोच नहीं है। (3) राम की सेवा के अतिरिक्त प्रत्येक चीज की ओर से विरक्त हैं (4) यहां तक कि विश्व के महान् देवता ब्रह्मा अथवा विष्णु के स्थान को प्राप्त करने की भी लालसा नहीं है। (5) उनके जीवन का एक ही व्रत है राम की प्रत्येक इच्छा को क्रियान्वित करना। ऐसी ही पूर्ण समर्पणकारी भक्ति चाहिए।

हनुमानजी ही सुग्रीव और विभीषण को रामजी से जोड़ते हैं, सीता का पता लगाते हैं। लंका दहन करते हैं, लक्ष्मण को पुनः जीवित करते हैं। राम को विजयश्री दिलाकर पुनः राम को पदासीन कर स्वयं को उनके चरणों में समर्पित कर देते हैं। आप सदैव हनुमानजी को राम के श्री चरणों में ही पायेंगे। यानी इतना सब करने के बाद भी अभिमान लेशमात्र नहीं। अतः हनुमानजी दास भाव की साकार प्रतिमा हैं। दास भाव का जैसा प्रकटन हनुमानजी के चरित्र में हुआ है वैसा अन्य किसी चरित्र में नहीं हुआ। राम कथा के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रंथ में नहीं हुआ।

वानर शब्द वन से ही बना है जिसका अर्थ है—वन्य, वनवासी।

वानं वनसंयूत कंद मूल फलानि आराति इति वानरः। (आप्टे)

आप्टे ने प्रसिद्ध संस्कृत कोश में लिखा है—वन में रहने वाले, वन के कन्द-मूल फल का आहार करने वाले मनुष्य ही वानर कहे जाते हैं। श्यामजी पराशर के मत में हनुमान्‌जी रामायण काल के वायु सेनापति (Air Martial) थे।

श्रीहनुमान्‌जी के जन्मस्थान के विषय में बड़ी खोज की आवश्यकता है। वाल्मीकीय रामायण में हनुमान्‌जी सीताजी को अपना परिचय बताते हुए कहते हैं 'गिरियों में उत्तम माल्यवान पर्वत है, वहाँ गोकर्ण पर्वत है, फिर केशरी हरि है, वही मेरे पिता हैं। समुद्रतट पर शंब सादन का उद्धार करते हुए, जो मैं हरिण क्षेत्र में वायु द्वारा उत्पन्न हुआ हूँ, वह मैं लोक में हनुमान् नाम से विख्यात हूँ।' माल्यवान पर्वत कर्नाटक में प्राचीन विजयनगर साम्राज्य की राजधानी हम्पी के निकट माना जाता है।

श्री बाल गोविन्द द्विवेदी ने शम्बसादन को स्वीडन देश सिद्ध किया है जो जर्मनी के ऊपर उत्तरी ध्रुव क्षेत्र का अत्यन्त शीतप्रधान देश है। श्री द्विवेदी ने हरिण क्षेत्र का अर्थ हार्ननगर लगाया है। इसी प्रकार हरि को उन्होंने केशरी वानर न मान कर हरिवर्ष पर्वत माना है। कपि प्रवीर का अर्थ सूर्य लगाया है। उन्होंने वाल्मीकीय रामायण के श्लोक का नया अर्थ लगाया है—'मैं महर्षि की आज्ञा से प्रतिवर्ष होने वाले प्राकृतिक संग्राम में कपि प्रवीर सूर्य द्वारा आहत दैत्य रूप देश शम्बसादन (स्वीडन) में वायु के द्वारा उत्पन्न हुआ हूँ।' हरिवर्ष का अर्थ उत्तरी ध्रुव क्षेत्र, साइबेरिया, रूस, स्कैण्डेनेविया के वायु प्रधान देश को माना है।

प्रसिद्ध ज्योतिषविद् भास्कराचार्य के मत में माल्यवान पर्वत चीन, तिब्बत में है। श्री द्विवेदी के मत में माल्यवान देश हिमालय से ऊपर त्रिविसृप (तिब्बत) से लेकर एक ओर हरिवर्ष (साइबेरिया) तक और दूसरी ओर रम्यक वर्ष (कनाडा) तक फैला हुआ था। यह बड़ा विस्तृत माल्यवान (किन्नर) देश है। गोकर्ण पर्वत तिब्बत में गोकर्ण तीर्थ है जो गंगा का मूल उद्‌गम स्थान है। यह विशाल पर्वत है जो मंगल (मंगोलिया) तक फैला हुआ है। इसे मेनका भी कहा जाता है। आंबी नदी (उमा) को मेनका पुत्री भी कहा जाता है। पार्वती मैना पुत्री प्रसिद्ध है।

शबर देश (साइबेरिया) केशरी हरिवर्ष है। श्री द्विवेदी हरिवर्ष को ही गन्धमादन पर्वत मानते हैं। गन्धमादन अतल समुद्र (अटलांटिक समुद्र) तक फैला है। इसके पश्चात् समुद्रतट पर शम्बसादन दैत्य का स्थान शम्बसादन देश (स्वीडन) है। वहाँ के हरिण क्षेत्र (हार्ननगर) में श्रीहनुमान्‌जी का जन्म हुआ।

शम्बसादन—सादन - स्वादन - स्वीदन - स्वीडन नाम बना। शम्ब (भू कटिबंध रेखा) से सादित (बिद्ध) होने के कारण भी शम्बसादन नाम हुआ।

सूर्य के नाड़ी वृत्त से अत्यन्त दूर हो जाने के कारण 11 नवम्बर से 15 जनवरी तक सूर्य का दर्शन न होने के कारण अन्धकार छाया रहता है। 'बाल समय रवि

भक्ष कियो तब तीनों ही लोक भयो अंधियारो, शम्बसादन से पूर्व-भाग में अर्कदेश (आर्चेजिल) स्थित है। अर्कांगिल का अर्थ ही है अर्क (सूर्य) को निगल जाना।

शब्दतः और अर्थतः स्वीडन देश ही शंब (भूमध्य रेखा) द्वारा 66 1/2 अंश पर बिद्ध है तथा समुमवेला में भी है। अतः स्वीडन ही हनुमान्जी का जन्मस्थान सिद्ध होता है।

राँची मण्डल के गुमला अनुमण्डल में टोटो के पास आंजन गाँव हैं। वहाँ 3 मील जंगल में जाकर नदी-पर्वत पार कर एक पर्वतीय गुफा में अंजनी माता की मूर्ति है जो गोदी में शिशु रूप हनुमान्जी को लिए है। छोटानागपुर में सैकड़ों वर्षों से यही मान्यता चली आती है कि यही हनुमान्जी का जन्मस्थान है। प्रतिवर्ष सहस्रों यात्री दर्शनार्थ आते हैं। राँची जिला गजेटियर में विगत 200 वर्षों से यही लिखित है कि वही हनुमान्जी का जन्मस्थान है। कोई उसे अंजनी माता का मायका-घर, हनुमान्जी का ननिहाल मानते हैं। कहते हैं किसी समय वहाँ 300 शिवलिंग तथा 300 सरोवर थे तथा वहाँ के नागवंशी राजा प्रतिदिन सभी सरोवरों के जल से सभी लिंगों की पूजा करके अन्न-जल ग्रहण करते थे। विश्व हिन्दू परिषद् ने आंजन में एक विशाल मन्दिर एवं धर्मशाला बनाने का संकल्प किया है। उराँव जाति के 12 गोत्र हैं जिनका अर्थ ही वानर है। वे अपनी ददाकट्टा पूजा (राक्षस के दांत तोड़ने की पूजा) में राम को अब्बा, सीता को अम्मा तथा हनुमान् को चच्चा कहते हैं। लंका से तिब्बत तक, साइबेरिया से स्वीडन तक, आंजन से अयोध्या तक, इंडोनेशिया से मैक्सिको तक, त्रेतायुग से कलियुग तक, नर से वानर तक जिनका यश गूंज रहा है उनके यश में श्रद्धा के वाक्पुष्प चढ़ाकर हम अपनी प्रणामांजलि प्रस्तुत करते हैं।

यदि हमारे समाज में, इस राष्ट्रीय जीवन रूपी जहाज में छिद्र है तो आओ, हम इसकी संतानें, हंसते-हंसते अपने हृदय का रक्त बहा दें। यदि हम ऐसा न कर सके तो हमारा मर जाना ही उचित है। हम अपना भेजा निकाल कर उसकी डॉट बनाएंगे और जहाज के उन छिद्रों को भर देंगे पर उसकी कभी भर्त्सना न करेंगे! इस समाज के विरुद्ध एक शब्द न निकालेंगे।

—स्वामी विवेकानन्द

सूरदास की हृदय वीणा से निःसृत रामायण गीतिका

जिस अलौकिक भक्तकवि ने अपने काव्यामृत के पावन छींटों से कोटि-2 मानवों के अज्ञान तिमिर से अन्धे हुए मोह मुदित नेत्रों को पुनः ज्ञान ज्योति प्रदान कर दी, उस नेत्रहीन कलावन्त, सन्तप्रवर सूरदास की अनन्त महिमा को कौन गा सकता है?

सामान्यतया जनसाधारण की यही धारणा है कि भक्तप्रवर सूरदासजी ने श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकंद को ही अपनी साधना का केन्द्रबिन्दु मान कर अपने हृदय का समूचा प्रेम उन्हीं पर उंडेल दिया तथा संतप्रवर गोस्वामी तुलसीदासजी की हृदय-रागिनी का एकमात्र स्वर रघुकुल गौरव रामचन्द्र महाराज का गुणानुवाद ही था। पर, वास्तव में कृष्णभक्त सूरदासजी ने जो लोकपावनी श्री रघुनाथ गाथा गाई है तथा श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी ने जो अलौकिक कृष्ण चरित गाया है वह काव्यानन्द एवं ब्रह्मानन्द का अद्भुत, सुस्वादु सम्मिश्रण होने पर भी सामान्य हिन्दी प्रेमियों के भावपूर्ण आस्वादन का विषय नहीं बना।

कोटिशः वंदित, जनगण पूजित श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी जब व्रज में गए तो व्रजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र की मूर्ति के सम्मुख भक्त के बालसुलभ हठ के साथ बोल उठे—

कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवे, जब धनुष-बाण लियो हाथ।

भक्त की अनन्य निष्ठा के सम्मुख भगवान् को भी झुकना पड़ा और भक्तकवि नन्ददासजी के शब्दों में, 'राखी जिन की टेक मदन मोहन धनुधारी।' किन्तु जब कविप्रवर तुलसीदासजी महाकवि सूरदास से मिले तो दोनों महापुरुषों ने जहाँ एक-दूसरे को अपने अनन्त प्रेम में आप्लावित कर दिया वहाँ दोनों को अपनी-अपनी भक्ति निष्ठा के रंग में भी रंग दिया। भगवान् को कृष्ण रूप में देख कर शीश तक न झुकाने वाले गोस्वामी तुलसीदासजी अब श्रीकृष्णचन्द्र की

रूप-माधुरी पर ऐसे मुग्ध हुए कि उन्हें तन-मन की सुधि भी न रही—

जैसे हो तैसे सुखदायक, ब्रजनायक बलिहारी।
तुलसीदास प्रभु मुख छवि, निरखत मन सब जगुति बिसारी।।

श्रीकृष्ण गीतावली के सुललित पदों में गाते हुए वे कहते हैं कि श्रीकृष्ण के यशरूपी अमृत को मैंने खूब पीया है—

नन्दलाल बाल जस संत सुर-सरबस,
गाइ सो अमिय रस तुलसि हुँ-पियो है।।

इसी प्रकार भक्त शिरोमणि सूरदासजी भी रघुकुलकुमुद दिवाकर श्री रामचन्द्रजी के लोक पावनकारी चरित्र के प्रति आकर्षित हुए बिना न रहे। स्वयं गोस्वामी तुलसीदासजी के पावन दर्शन में उन्होंने युगल स्वरूप श्रीसीताराम के दर्शन कर लिए थे। तुलसीदासजी की प्रशस्ति में सूरदासजी गा उठे—

धन्य भाग ममसन्त-सिरोमनि
चरन कमल तकि आयऊं
बदन प्रसाद-सदन दृग भरि,
लखि सुख सन्दोह समायऊं
दया दृष्टि ते मम दिसि हेरेऊ
तनु पुलकित मानस धीर
सुधा समान वचन कहि
पोषेउ सुमरित सीय रघुवीर
श्रीतुलसी सुचि सन्त समागम
अद्‌भुत अमल अनूप।
सूरदास जीवन फल पायो,
दरसन जुगल स्वरूप।।

यह महाकवि की महाकवि को श्रद्धांजलि, कितनी अनूठी है।

श्रीराम-जन्म

रघुकुल गौरव श्रीरामचन्द्र के जन्मोत्सव का वर्णन करते हुए सूरदासजी अपने तानपूरे पर मस्ती से गाते हैं।

अयोध्या बाज़त आजु बधाई
अति हरषित कौशल्या माता
रामचन्द्र निधि आई।

गावैं सखी परस्पर मंगल,
ऋषि अभिषेक कराई।
भई भीर दसरथ के आंगन
सामवेद ध्वनि गाई।।
पूछत ऋषहि अयोध्या के
पति, कहि हो जनम गुसाई
बुद्धवार नौमी तिथि नीकी,
चौदह भुवन बड़ाई।
चारि पुत्र दसरथ के प्रकटे
तिहूं लोक ठकुराई।
सदा सर्वदा राज राम को
'सूर' दादि तहं पाई।

बाल क्रीड़ा

सूरदास ने राम इत्यादि चारों शिशुरूप भाइयों की धनुष-बाण क्रीड़ा का अत्यन्त अनूठा शब्दचित्र खींचा है—

धनुहीं बान लिए कर डोलत।
चारहूं वीर एक संग सोहत,
वचन मनोहर बोलत।।
लच्छिमन, भरत, सत्रुहन,
सुन्दर, राजिव लोचन राम।
अति सुकुमार परम-पुरषारथ
मुक्ति, धर्म, धन, काम।
कटि पर पीत पिछौरी बांधे
काक पच्छ धर सीस।
सर क्रीड़ा दिन देखत
आवत, नारद सुर तेंतीस।।

जनकपुरी में राम-लक्ष्मण

जब राम-लक्ष्मण जनकपुरी में पहुँचे तो जहाँ मिथिला के कोटि-कोटि नर-नारियों ने उनके पावन दर्शन से आंखों को तृप्त किया वहाँ अन्धे सूरदासजी ने हजारों वर्ष पूर्व के उस दृश्य का बिना आंखों के भावपूर्ण दर्शन कर लिया—

देखौ माई ! राम लखन दोउ आवत।
मधुर चालि, दृग भले मनोहर,
खंजन लोल कुरंग लजावत।।

धनुष-भंग का वर्णन भी बड़ा कलारुचिर है—

चितै रघुनाथ बदन की ओर।
रघुपति सों अब नेम हमारौ,
विधि सों करति निहोर।।

सीताजी रघुनाथजी के मुख की ओर देख रही हैं तथा विधाता से निहोरा करती हैं कि हमारा नियम (विवाह का निश्चय) तो रघुपति से ही है।

यह अति दुसह पिनाक, पिता प्रन राघव वयस किसोर।
इन पे दीरघ धनुष चढ़ै क्यों,
सखि ! यह संसय मोर।

यह धनुष बड़ा कठोर है, पिता का प्रण भी पक्का है, राघव आयु के किशोर ही हैं। इनसे धनुष का चिल्ला कैसे चढ़ेगा! सीताजी ऐसा संशय कर रही है। किन्तु श्रीराम के बल के तथा सूरदास की अतिशयोक्ति के बलिहारी श्रीराम ने कर के नख की नोक पर धनुष को उठा कर चिल्ला चढ़ा दिया—

सिय-अन्देस जानि 'सूरज'
प्रभु लियौ करज की ओर।
टूटत धनु नृप 'लुके'
जहां तहां ज्यों तारागन भोर।

विवाह के अनन्तर महाराज दशरथ, श्रीराम एवं अन्य बरातियों को विदा करते समय महाराज जनक तो प्रेम रस में भीगे ही, उस दृश्य का वर्णन करते हुए सूरदासजी भी रस-मुग्ध हो गए—

रामचन्द्र दसरथहि विदा करि,
'सूरदास' रस भीन।

अयोध्या के आनंदोत्सव

सूरदासजी भी अयोध्यावासियों के आनन्द में डूब कर गाने लगे—

'दसरथ चले अवध आनन्दत।'
पुनः अवधपुर आए दसरथ राई
राम लखन अरु भरत, सत्रुहन,
सोभित चारौ भाई।

घुरत निसान, मृदंग संख धुनि
भेरि झांझ सहनाई।
उमंगे लोग नगर के निरखत
अति सुख सबहिनि पाई
कौसिल्या आदिक महतारी,
आरति करहिं बनाई।

यह सुख निरखि मुदित सुर नर मुनि, सूरदास बलि जाई।

राम वनवास—हर्षोल्लास की चरम सीमा के पश्चात् तुरंत राम के वनवास की हृदय विदारक घटना राम चरित्र का सर्वाधिक मर्मस्पर्शी स्थल है। सूरदास ने इस स्थल का भी बड़ा हृदयस्पर्शी वर्णन किया है।

यह सुनि बोली नारि कैकई, अपनो बचन संभारौ।
चौदह वर्ष रहै बन राघव, छत्र भरत सिर धारौ।

महाराज दशरथ का विलाप तो मर्मान्तक है—

महाराज दसरथ यौं सोचत।
हा रघुनाथ, लछन, वैदेही! सुमिरि नीर दृग मोचन।

वे पुनः अश्रु-विगलित वाणी में कहते हैं—

रघुनाथ पियारे आजु रहौ हो।
बिछुरत प्रान पयान करैंगे, रहौ आजु, पुनि पंथ गहौ, हो।
अब 'सूरज' दिन दरसन दुरलभ,
कलित कमल कर कंठ गहौ, हो।

'हे प्राण प्यारे राम, तुम से बिछुड़ने पर तो मेरे प्राण प्रयाण कर जायेंगे। इसके बाद तो तुम्हारा दर्शन भी दुर्लभ हो जावेगा। तनिक एक बार अपने कमल जैसे कोमल करों से मेरे गले से तो लिपट जाओ।' कोमल भावों की व्यंजना में सिद्धहस्त महाकवि सूरदास ने अपने कृष्ण बाललीला चित्रण में जो वात्सल्य का अनूठा चित्र खींचा है उसी वात्सल्य रस में पगा हुआ राम-वनवास का यह प्रसंग है।

सीताजी का पति के संग वनगमन के लिए आग्रह भी भारतीय संस्कृति का एक उज्ज्वल आदर्श है—

तुम्हरे चरन कमल सुख सागर,
यह व्रत हौं प्रतिपालिहौं।
सूर सकल सुख छांडि आपनौ
बन विपदा संग चलिहौं।

राम-वनवास की घड़ी में, धीरता का मूर्तिमान अवतार माता कौशल्या भी रो उठती है—

फाटत नहीं बज्र की छतिया,
अब मोहि नाथ अनाथ कहै हो।
कहा अपराध किए कौशल्या,
पुत्र विछोह दुसह दुख दैहो।

हे राम, हमारी वज्र की छाती फट क्यों नहीं जाती। हाय, जो तुम सब के नाथ थे अब वनवासी बन कर अनाथ कहलाओगे। मां कौशल्या ने कौनसा अपराध किया है जो उसे पुत्र वियोग का दुःसह दुःख दे रहे हो। सूरदास के इन पदों में मूर्तिमति करुणा भी रो उठती है।

वन-गमन के समय लक्ष्मण की दशा भी अत्यन्त अश्रु प्रेरक है—

लछिमन नैन नीर भरि आए।
उत्तर कहत कछू नहि आयो, रहे चरन लपटाए।
अन्तरजामी प्रीति जानिके, लछिमन लीन्हे साथ।।
'सूरदास' रघुनाथ चले बन, पिता बचन धरि माथ।

दशरथ की मर्मान्तक मूर्च्छा का वर्णन भी हृदय में टीस पैदा करने वाला है—

आजु रघुनाथ पयानौ देत।
विह्वल भए सुवन सुनि पुरजन, पुत्र-पिता को हेत।।
ऊँचे चढ़ि दसरथ लोचन भरि सुत मुख देखे लेत।
रामचन्द्र से पुत्र बिना मैं भूंजब क्यौं यह खेत।।
देखत गमन नैन भरि आए, गात गह्यौ ज्यौं केत।
ताता-तात कहि बैन उचारत, ह्वै गए भूप अचेत।।
कटि तट तून, हाथ सायक धनु, सीता बन्धु समेत।
'सूर' गमन गह्वर कौं कीन्हौ जानत पिता अचेत।।

श्रीराम से बिछुड़ने पर पशु-पक्षियों तक ने खाना-पीना त्याग दिया—

पशु पंछी तृन कन त्याग्यौ, अरु बालक पियौ न पयौ।
'सूरदास' रघुपति के बिछुरैं, मिथ्या जनम भयौ।

भरत का शोक

भरत के शोक का जो चित्रण सूरदासजी ने किया है वह सम्भवतः तुलसी के वर्णन से भी बाजी ले जाता है—

आजु अजोध्या जल नहिं अचवौं, मुख नहिं देखौं माइ।
सूरदास राघव-बिछुरन तैं मरन भलौ दव लाई।।

भरतजी कहते हैं—'श्रीराम के बिना आज से मैं अयोध्या में जल का आचमन नहीं करूंगा, और न माता कैकेई का मुख देखूंगा। श्री रघुनाथजी से बिछुड़ने की अपेक्षा तो चिता में जल मरना अच्छा है।'

भरत-मिलाप

प्रज्ञाचक्षु सूरदास ने राम-भरत मिलन का जो दृश्यांकन किया है वह दो आंख वाले कलाकारों की चित्रांकन-कला को भी मात देने वाला है—

भरत मुख निरखि राम बिलखाने।
मुंडित केस सीस, बिह्वल दोउ,
उमंगि कण्ठ लपटाने।।

सीताहरण

श्रीराम और श्रीकृष्ण की मूलभूत एकता दर्शाते हुए सूरदासजी ने कृष्णलीला वर्णन में माता यशोदा द्वारा लोरी के रूप में बालकृष्ण को सुलाने के लिए रामायण की कथा सुनवाई है। कथा सुनते-सुनते सीताहरण का प्रसंग आने पर बालकृष्ण तुरंत रक्तिम नेत्र लिए हुंकार उठते हैं—

सुनु सुत एक कथा कहौं प्यारी।
नगर एक रमणीक अयोध्या बड़े महल अगम अटारी।।
तहं नृपति दशरथ रघुवंशी, जाके नारि तीनि सुखकारी।
चारहुँ पुत्र वीर अति सुन्दर तिन महं एक व्रतधारी।।
रावन हरन करयो सीता को, सुनि नन्दनन्दन नींद बिसारी।
'सूर' स्याम कर उठे चाप को, लक्ष्मण देहु, जननि भ्रम भारी।।

राम विरह

सीता की खोज में वन-वन भटकते हुए राम के विरह-विलाप से समस्त दण्डकारण्य जैसे अश्रुपात करने लगता है—

फिरत प्रभु पूछत बन द्रुम बेली।
अहो बन्धु काहु अवलोकी
इहिं मग बधू अकेली।
अहो बिहंग, अहो पन्नग नृप,
या कंदर के राई।

अब के मेरी विपति मिटाऔ,
जानकि देहु बताई।।

श्रीराम ने धरती पर सीताजी के चरण चिह्न को देखा तो तुरंत लपक कर उस धूलि को शरीर पर ऐसे चढ़ा लिया जैसे शंकरजी विभूति लगाते हैं—

यह सुनि धावत धरनि,
चरन की प्रतिमा पथ में पाई।
नैन नीर रघुनाथ सानि सो
सिव ज्यौं गात चढ़ाई।।
कहुँ हिय हार, कहूँ कर-कंकन
कहुँ नूपुर; कहुँ चीर।
'सूरदास' बन बन अवलोकत,
बिलख बदन रघुवीर।।

सीता का राम के नाम संदेश

रससिद्ध कविश्वर महाकवि सूरदास ने अपने सुललित पदों में गृध उद्धार, शबरी उद्धार, सुग्रीव मिलाप, बाली वध तथा हनुमान् के दूतकार्य का ऐसा अनूठा वर्णन किया है कि समूची रामलीला के कलारुचिर दर्शन हो जाते हैं। सीताजी हनुमान्जी के द्वारा श्रीराम को निम्न सन्देश भेजती है—

कपि ! तुम यह संदेसो कहियौ।
रघुपति ! तुम पात पतिव्रत हमरैं-
करुना नाथ ! सोध अब लहियो।।
मोहि चिन्ता नहिं आपनी,
तुमहिं हंसिहैं लोग।
मानो राघव बल नहीं,
रावन मारन जोग।

रावण वध

इसके अतिरिक्त सूरदासजी ने अपने सैकड़ों पदों में अशोक वाटिका का वर्णन, सीता-त्रिजटा संवाद, हनुमान्-सीता संवाद, रावण-सीता संवाद, हनुमान्-रावण संवाद, मन्दोदरी-रावण संवाद, लंका-दहन, विभीषण-रावण संवाद, विभीषण शरणागति, सेतु बन्धन, अंगद-रावण संवाद तथा राम-रावण युद्ध का अत्यन्त भावपूर्ण वर्णन किया है। रावण वध में सूरदास ने वीर एवं रौद्र रस का

अद्‌भुत चित्र खींचा है—

रघुपति अपनौ प्रन प्रति पाल्यौ।
तोरयौ कोपि प्रबल गढ़,
रावन टूक टूक करि डारियौ।।
कहँ भुज कहूँ धड़, कहूँ सिर लौटत,
मानौ मद मतवारौ।
भभकत तरफत स्रोनित में तन,
नाहीं परत निहारौ।।

मातृभूमि का अनंत प्रेम

वाल्मीकीय रामायण में लंका-विजयोपरान्त जब लक्ष्मण राम को सुझाव देते हैं कि हम यहीं लंका में ही राज्य क्यों न कर लेवें तब प्रभु रामचन्द्र कहते हैं—

अपि स्वर्णमयी लंका
न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्म भूमिश्च
स्वर्गादपि गरीयसी।

नेत्रहीन किन्तु दृष्टिवान् महाकवि सूरदास ने इसी भाव को अपने एक अत्यन्त रसीले पद में गाया है—

हमारी जन्म भूमि यह गाऊं।
सुनहु सखा सुग्रीव विभीषन,
अवनि अजोध्या नाऊं।
देखत बन उपवन सरिता सर
परम मनोहर ठाऊं।
अपनी प्रकृति लिए बोलत हौं
सुरपुर मैं न रहाऊं
ह्यां के वासी अवलोकत हौं
आनन्द उर न समाऊं।
'सूरदास' जो विधि न संकोचे
तो बैकुण्ठ न जाऊं।

धन्य हैं श्रीराम जो अपनी सदावत्सला मातृभूमि पर स्वर्ग एवं बैकुण्ठ

न्योछावर करने को उद्यत हैं और धन्य है वह देव वन्दिता पुण्य भूमि जिसे रघुवंश नायक श्रीरामचन्द्र महाराजा की जन्म भूमि कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ। किन्तु शत बार धन्य है मां भारती का वह कीर्तिवान् कलावन्त, भक्तियुग का मूर्धन्य कवि, भक्त-शिरोमणि सूरदास जिसने श्री राम एवं उनकी जन्मभूमि दोनों का यश गाकर अपनी काव्य कला को धन्य कर लिया।

'भारतीय सभ्यता यूनानी सभ्यता से कहीं अधिक उच्चाकांक्षी, अधिक सूक्ष्म, बहुमुखी, अनुसंधान प्रिय और गंभीर, रोमन सभ्यता की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च और कोमल, पुरानी मिस्री सभ्यता से अधिक उदार और आध्यात्मिक, अन्य किसी भी एशियाई सभ्यता से कहीं अधिक विशाल और मौलिक, अठारहवीं सदी से पहले के यूरोप की सभ्यता से कहीं अधिक बौद्धिक, इन सब सभ्यताओं में जो कुछ था, उस सबकी तथा उससे भी अधिक की स्वामिनी यह भारतीय सभ्यता सभी अतीत मानव संस्कृतियों से अधिक शक्तिशाली, आत्मस्थित, प्रेरणादात्री तथा महाप्रतापशाली रही है।'

—ऋषि अरविन्द

× × ×

मेरी ओर से अपने देशवासियों को एक संदेश जरूर दीजियेगा, और वह यह है कि वे भूलकर भी हमारी नकल न करें। हमारे पास धन है, किन्तु वह अमूल्य वस्तु नहीं है, जो भारत के पास है। संसार भारत से अध्यात्म की ज्योति पाने की आशा रखता है।

—विख्यात अर्थशास्त्री प्रो. शुम पीटर

रावण ऋषिपुत्र, वेदपाठी ब्राह्मण होते हुए भी असुर क्यों कहा गया?

लक्ष्मण भगवान् राम से पूछते हैं रावण तो विश्रवा ऋषि का पुत्र है, वेदपाठी ब्राह्मण होते हुए भी सोने की लंका देखी तो उस पर उसका मन डोल गया। पुष्पक विमान देखा तो उस पर उसका मन मचल गया। सुंदर नारी को देखा तो उस पर उसका मन विचलित हो गया। ऐसा क्यों?

इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं—

पिता यस्य सदाचारी, माता यस्य पतिव्रता।
कांचन कामिनीम् दृष्ट्वा तस्य न चलति मनः॥

अर्थात् जिसके पिता सदाचारी हों तथा माता पतिव्रता हो, उनकी संतान का मन कामिनी एवं कांचन को देखकर चलायमान नहीं होता। बच्चों पर माँ का प्रभाव विशेष पड़ता है।

सोने की लंका कुबेर की थी। हम लक्ष्मी की पूजा में चांदी का सिक्का रखकर पूजा करते हैं। कुबेर की पूजा सोना रखकर ही करते हैं क्योंकि सोने का अधिपति कुबेर है। वह दक्षिण दिशा का लोकपाल भी है।

सोने की लंका का मालिक कुबेर होते हुए भी माल्यवान का मन डोल गया। कुबेर पर चढ़ाई कर दी। कुबेर ने अपनी रक्षार्थ विष्णु को पुकारा। विष्णु ने सुदर्शन चक्र से माल्यवान की गर्दन उड़ा दी। तब माल्यवान का पुत्र माली आया। उसकी भी वही गति विष्णु ने की तब माली का भाई सुमाली आया। सुमाली पर अस्त्रप्रहार करने के लिये भगवान् विष्णु ने जैसे ही शस्त्र उठाया वैसे ही सुमाली भाग खड़ा हुआ। लंका से सीधे पश्चिम की ओर अफ्रीका का प्रथम देश है सोमालीलैण्ड, वहाँ पहुँच गया।

वहाँ अपनी बहिन कैकसी से सोने की लंका जीतने में मदद मांगी। बहिन कैकसी ने कहा, मैं औरत की जात क्या कर सकती हूं? तुम अपने बाप और भाई को मरवाकर कायर की तरह भाग कर आ गये और मुझसे कहते हो, लंका जीतो!

सुमाली ने कहा, हम युद्ध से लंका नहीं जीत सकते। हम विष्णु के सुदर्शन चक्र का ताप नहीं सह सकते। पर, उत्तराधिकार के नियम से जीत सकते हैं। ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य। पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा और विश्रवा के पुत्र हैं कुबेर। कुबेर के पिता विश्रवा अभी जीवित हैं। तुम उनके पीछे छाया की तरह लगकर उनको अपनी सेवा से संतुष्ट करके, उनसे संतान प्राप्त कर लो और वह संतान भी उत्तराधिकार के नियम से लंका की अधिकारी बन जायगी।

कैकसी विश्रवा के पीछे छाया की तरह पड़ गई। विश्रवा जहाँ भी जाये पूर्व-पश्चिम, उत्तर, दक्षिण वह भी पीछे-पीछे जाये। पूजा की सामग्री, पुष्प, समिधा आदि की सारी व्यवस्था कर देवे। 12 वर्ष पश्चात् प्रयागराज में विश्रवा ऋषि ने पूछ ही लिया, तुम छाया की तरह क्यों पीछे पड़ी हो? यज्ञ के लिये समिधायें आदि लाना एवं अन्य सेवाकार्य क्यों करती हो? मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, तुम मेरे पीछे-पीछे क्यों आती हो? मेरा-तेरा क्या सम्बन्ध है? तो कैकसी ने आंखों में अश्रु भर कर कहा कि आप यह सम्बन्ध मानें या न मानें मैंने आपको पति रूप में वरण कर लिया है। आपका पीछा छोड़ने वाली नहीं हूँ। विश्रवा ऋषि को दया आ गई। उस राक्षसकन्या से विश्रवा ऋषि के तीन पुत्र पैदा हुए। एक सतोगुणी पुत्र विभीषण, एक रजोगुणी पुत्र रावण और एक तमोगुणी पुत्र कुंभकर्ण।

तब कैकसी ने पुत्रों से कहा—सोने की लंका पाना चाहते हो तो तपस्या करो, पुरुषार्थ करो, प्रयत्न के द्वारा ही कुछ किया जा सकता है।

तीनों ने तप करके वर प्राप्त किया। रावण ने विभीषण से पूछा—तुमने क्या वर मांगा? उसने कहा—मेरी बुद्धि अधर्म में न लगे, यह वर मांगा। तब रावण ने धिक्कारा कि हम राक्षस कुल के असुर हैं। असुरों का काम ही अधर्म करना है। असुरों का जन्म ही अधर्म के लिये हुआ है। फिर हम धर्म से थोड़े ही लंका प्राप्त कर सकते हैं। तुम मेरे लिये बेकार हो। फिर कुंभकर्ण से पूछा—तुमने क्या वर मांगा? उसने कहा—मैं मांगना तो चाहता था इन्द्रासन पर थोड़े नशे में होने के कारण इन्द्रासन के स्थान पर निद्रासन मांग लिया। तब रावण ने कहा—तुम भी बेकार हो।

फिर हम देखते हैं रावण की ललचायी दृष्टि सोने की लंका पर जाती है और अपने भाई कुबेर को वहाँ से खदेड़ देता है। फिर सीता माता पर दृष्टि जाती है तो उस पर ललचा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं रावण ऋषिपुत्र, वेदपाठी ब्राह्मण होते हुए भी बुद्धि का मलिन होने से असुर कहलाया।

शरद पूर्णिमा के पावन आलोक में वाल्मीकि तथा रवीन्द्र

शरद पूर्णिमा के पुण्य पावन कौमुदी पर्व का मुख समुज्ज्वल करने वाले अनेकानेक महत्त्वों में से सर्वाधिक गरिमा मण्डित घटना है इसी ज्योत्स्ना पर्व पर आदिकवि वाल्मीकि के रूप में धरा पर एक दिव्य ज्योति का सुगम अवतरण। सौभाग्य से भारत में काव्यानन्द एवं ब्रह्मानन्द की जो सुमधुर रागिनी आदिकवि के मुख से निसृत हुई वह वाल्मीकि से रवीन्द्र तक अविच्छिन्न ही प्रवाहित होती चली आयी है। महर्षि वाल्मीकि है विश्व के आदिकवि तथा विश्व के प्राचीनतम एवं उज्ज्वलतम महाकाव्य रामायण के अमर गायक और रवीन्द्र (जिनका शताब्दी वर्ष विश्वभर में मनाया जा रहा।) है भारतीय साहित्य परम्परा के आधुनिकतम विश्वकवि। प्राचीनतम महाकवि और आधुनिकतम महाकवि की युगान्तर स्पर्शी समता को लक्ष्य कर महात्मा गाँधी ने कवि गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर को भी व्यास और वाल्मीकि की परम्परा का कवि कहा है।

प्रतिभा का दिव्य स्रोत

वाल्मीकि तथा रवीन्द्र—दोनों की काव्य प्रतिभा श्रमजन्य न होकर अन्तःस्फूर्त थी। वाल्मीकि तो प्रारम्भ में अनपढ़ तथा असंस्कृत दस्यु ही थे। केवल राम नाम के दिव्य स्पर्श से उनके अन्तःकरण से काव्यानन्द का वह दिव्य झरना फूट निकला जिसने अपने आनन्द की उर्मियों से सारे विश्व को आप्लावित कर दिया। रवीन्द्र भी विदेशी एवं यंत्र-वत् चलने वाली शिक्षा पद्धति से ऊब कर आठवीं कक्षा में ही विद्यालय को अन्तिम नमस्कार कर बैठे थे। किन्तु जिस रवीन्द्र के बारे में उसके स्कूल के मुख्याध्यापक डॉ. क्रूज ने कहा था कि यह शिक्षा के लिये पैदा ही नहीं हुआ, उसी रवीन्द्र के अन्तर में एक विश्वकवि छिपा बैठा था जो एक दिन अचानक प्रातःकाल के उगते हुए सूर्य के दर्शन में से शत-शत गीतों की स्वर लहरी में जाग उठा। दोनों महाकवियों ने इतिहास के यशोमन्दिर में वह अविनश्वर पद प्राप्त किया जिसका विश्व-वाङ्मय में उपमान नहीं मिलता।

रवीन्द्र का वाल्मीकि को अर्घ्य

कवि-गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदिकवि वाल्मीकि के व्यक्तित्व से इतने अधिक चमत्कृत हुए थे कि उन्होंने अपनी तरुणावस्था में अपना प्रथम संगीत-नाटक आदिकवि के स्तव में वाल्मीकि-प्रतिभा नाम से लिखा। स्वयं रवीन्द्रनाथ का वाल्मीकि की भूमिका में प्रथम बार नाट्य-मंच पर आना भी वाल्मीकि के साथ उनकी आन्तरिक एकता का द्योतक है। नाटक अनेक स्वदेशी और विदेशी संगीत स्वरों से सुमधुर बन गया था। स्वयं रामायण के बारे में यह लिखते हैं—'रामायण और महाभारत गंगा और हिमालय के समान समस्त भारत की वस्तु जान पड़ती हैं, व्यास और वाल्मीकि तो केवल उपलक्ष मात्र हैं।....यह निश्चय है कि भारत में अपना सर्वस्व महाभारत और रामायण में रख दिया है। इसी कारण सदियों पर सदियाँ बीतती जाती हैं परन्तु महाभारत और रामायण की धारा भारतवर्ष में ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। गाँव-गाँव, घर-घर प्रतिदिन ये दोनों काव्य बड़े आदर के साथ पढ़े जाते हैं। मोदी की दुकान और राजा के महलों, सर्वत्र इनका एकसा आदर है। धन्य हैं ये दोनों कविवर, काल के भारी जंगल में इनके नाम तक का पता नहीं रहा, किन्तु उनकी पवित्र वाणी कई करोड़ स्त्री-पुरुषों के घरों में आज भी शक्ति और शान्ति की वर्षा किया करती है। उनकी वाणी आज भी बीती हुई कई सदियों के भावों की अच्छी मिट्टी ला-लाकर भारत के हृदय क्षेत्र को उपजाऊ बनाये हुए है। वह अन्यत्र कहते हैं शान्त रसमय गृहस्थ धर्म को ही अश्रुजल से अभिषिक्त कर रामायण ने उसे महान् वीर्य के ऊपर स्थापित किया है।....भारतवासियों ने रामायण को शिरोधार्य ही नहीं माना है, इसको उन्होंने हृदय सिंहासन पर स्थापित किया है। रामायण भारतवासियों का केवल धर्म ग्रन्थ ही नहीं है यह उनका महाकाव्य भी है। आदिकवि व आदिकाव्य दोनों को श्रद्धांजलि चढ़ाते हुए कविगुरु लिखते हैं, 'मैं केवल इतना ही जताना चाहता हूँ कि वाल्मीकि के रामचरित को पढ़ने वाले पाठक केवल कवि का काव्य न समझे, उसे समस्त भारतवर्ष का रामायण समझे। ऐसा समझने से ही वे रामायण के द्वारा भारतवर्ष का और भारतवर्ष के द्वारा रामायण का यथार्थ रूप देख सकेंगे।' रवीन्द्र की श्रद्धा स्वयं मुखर हो उठी है, 'रामायण उन्हीं अखण्ड अमृत के प्यासों का चिर परिचय धारण किए हुए है। इसमें जिस भातृ-प्रेम, जिस सत्य निष्ठा, जिस पातिव्रत्य और जिस प्रभु भक्ति का वर्णन है उसके प्रति यदि हम लोग हृदय की सरल श्रद्धा और भक्ति बनाए रख सकें तो अवश्य ही हमारे कारखाने के मकान के झरोखों में महान् समुद्र का निर्मल वायु प्रवेश का मार्ग पावेगा।

रामायण में उर्मिला की उपेक्षा

रवीन्द्रनाथ रामायण में लक्ष्मण पत्नी उर्मिला की नितान्त उपेक्षा पर दुःख प्रकट करते हुए लिखते हैं, 'कवि ने अपनी कल्पना के फुहारे की सारी करुणा

जानकी के पवित्र अभिषेक में ही खर्च कर डाली है। किन्तु वहीं सीता की छाया में घूँघट काढ़े मलिनमुखी इस लोक के सब सुखों से वंचित एक और राजवधू खड़ी है। उसके चिर-दुःख संतप्त नम्र मस्तक पर कवि के कमण्डलु से एक बूँद भी अभिषेक का जल नहीं पड़ा।' वे आगे लिखते हैं, 'मैं कह सकता हूँ कि संस्कृत साहित्य में काव्य यज्ञ-शाला की प्रान्तभूमि में जिन उपेक्षिता स्त्रियों से मेरा परिचय हुआ है, उसमें उर्मिला को ही मैं प्रधान समझता हूँ। शायद इसका कारण यह भी है कि उर्मिला यह नाम बहुत ही मधुर है। इस नाम के समान मधुर नाम संस्कृत के काव्यों में और नहीं है।....अतएव यह नाम रखने के लिये, कम-से-कम मैं वाल्मीकि मुनि का कृतज्ञ हूँ। कविगुरु (वाल्मीकि) ने उर्मिला के साथ बहुत अन्याय किया है, किन्तु यह विशेष सौभाग्य की बात है कि देवसंयोग से उर्मिला का नाम माण्डवी या श्रुतकीर्ति नहीं रखा। अपनी कला रुचिर शैली में उस उपेक्षिता देवी के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुए लिखते हैं—'उर्मिला ने पहले पहल जिस दिन माँग में सिन्दूर लगाया था, उसी दिन के समान वह सदा ही नववधू है।....और जिस दिन अयोध्या अंधेरी करके दोनों भाई सीता को साथ लेकर तपस्वी के वेश से वन गए थे क्या उस दिन भी यह नववधू राजभवन के किसी एकान्त कमरे में डण्ठल से गिरी हुई कली के समान मूर्च्छित नहीं हुई थी? उस दिन के उस विश्वव्यापी विलाप में इस फट रहे छोटे से कोमल हृदय का असह्य शोक क्या किसी ने देखा था? जिस ऋषि का हृदय विरहिणी क्रौञ्च-वधू के वैधव्य दुःख को पल भर भी न सह सका उन्होंने भी आँख उठाकर एक बार इस दुखिया की ओर नहीं देखा।' रवीन्द्र का हृदय रो उठता है, 'बेचारी उर्मिला सीता की अश्रुधारा के साथ एकदम बह गई।....सीता और उर्मिला के दुःखों की कोई तुलना न कर बैठे, इसी भय से क्या महाकवि ने सीता के सुवर्ण मन्दिर के पारस से इस शोक से उज्ज्वल दुखिया को एकदम निकाल बाहर किया है? सीता के चरण के पास भी बैठाने का उन्हें साहस नहीं हुआ।' यह बात सर्वविदित ही है कि रवीन्द्र के उक्त विचारों के कषाघात से राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के हृदय में 'साकेत' नामक महाकाव्य प्रस्फुटित हो निकला।

बाली वध का ऐतिहासिक दिवस

जहाँ शरद पूर्णिमा स्वयं महर्षि वाल्मीकि का जन्म जयन्ती उत्सव है वह वाल्मीकीय रामायण के अन्तर्साक्ष्य के अनुसार यह भ्रातृद्रोही बाली के संहार का भी दिवस है। आदिकवि का वर्णन है—

इन्द्र ध्वज इवोद्धूतः पौर्णमास्यां महीतले।
आश्वयुक्सभये मासि गतश्रीको विचेतनः।
वाण्पसंरूद्ध कण्ठस्तु वाली चार्तस्वरः शनैः।।

(वा. रा. कि. काण्ड सर्ग 16 श्लोक 37)

आश्विन मास की पूर्णिमा के दिन इन्द्र ध्वजोत्सव के अन्त में जिस प्रकार ऊपर फेंका गया इन्द्रध्वज पुनः पृथ्वी पर गिर पड़ता है, उसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु के अन्त में बाली, श्रीहीन, अचेत तथा आँसुओं से रूँधे हुए कण्ठ वाला होकर धराशायी हो गया तथा शनैः-शनैः आर्तनाद करने लगा।

वाल्मीकि का शारदी मंगल

महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में स्थान-स्थान पर शरद ऋतु का कलारुचिर वर्णन किया है—

पाण्डुरं गमनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्र मण्डलम्।
शारदी रजनी चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनाम्।।

श्रीराम ने देखा आकाश श्वेत वर्ण का हो रहा है, चन्द्रमण्डल स्वच्छ दिखायी देता है तथा शरद ऋतु की रजनी के अंगों पर चाँदनी का अंगराग लगा हुआ है।

मैं चुनौती देता हूँ कि कोई भी आकर यह दिखा दे कि भारत के जातीय जीवन के अमुक युग में ऐसे अध्यात्मिक दिग्गज नहीं हुए जो पृथ्वी को आन्दोलित न करे सके हों....संसार पर उसका प्रभाव तो सर्वदा उस मृदु ओस की तरह रहा है जो न तो सुनायी पड़ता है और न दिखता ही है, पर जो धरती की सुंदर से सुंदर कलियों को खिला देता है—ऐसा प्रभाव जो स्वभावतः ही मृदु है, स्वदेश की सीमा लाँघ कर विदेशों में पहुँचने के लिए अवश्य कुछ अनुकूल परिस्थितियों की अपेक्षा रखता है, यद्यपि स्वदेश की सीमा में उसका असर सदा ही जारी रहा।

—स्वामी विवेकानन्द

× × ×

यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा देश है, जो स्वयं को 'मानव जाति का पालना' होने की घोषणा करने का अधिकारी है अथवा प्रारम्भिक सभ्यता का द्रष्टा है, जिसकी सभ्यता की किरणों ने प्राचीन विश्व के सभी भागों को आलोकित किया है, जिसके ज्ञान के वरदान ने मनुष्य को 'द्विज' बनाया है, अथवा प्राकृत से संस्कृत किया है, तो वह देश वास्तव में भारतवर्ष है।

—क्रूजर (Creuzer) फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान्

महर्षि अगस्त्य

(1) हिमालय में बदरीनारायण के मार्ग में तप।

(2) महर्षि वसिष्ठ के भाई।

(3) विंध्याचल को पारकर सबसे प्रथम दक्षिण पथ में जाने वाले उत्तर भारत के ऋषि।

(4) पंचवटी में राम की प्रतीक्षा।

(5) श्रीराम की असुर नाश की प्रतिज्ञा, दिव्य शस्त्रदान।

(6) तमिल व्याकरण की रचना 'अगस्त्यीयम्'।

(7) उत्तर भारत के दक्षिण में सर्वाधिक पूज्य ऋषि।

(8) समुद्र पारकर मलय एवं इंडोनेशिया द्वीपसमूह में भारतीय संस्कृति का प्रसार।

हिन्दू संस्कृति की अपूर्व शक्ति और दीर्घायुता का सर्वप्रथम कारण प्रकटतः भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और परस्पर विरोधाभासी आस्थाओं को व्यवस्थित तथा समायोजित करने की इसकी क्षमता है। अनेक रूपी तत्त्वों को समायोजित करने और उन्हें सामाजिक और अलग-अलग पहचान देने की इसकी योग्यता सम्भवतः मानव इतिहास में अभूतपूर्व है।

—विलियम कॉप

कम्बर (कम्बन)

(1) कम्बर (कम्बन) नवीं शती के परम रामभक्त और यशस्वी कवि थे।

(2) चोल राज्य के तिरुवलुन्दूर नगर में उनका जन्म हुआ था। उनके पिताजी का नाम आदवन् था। वे राजपुरोहित थे।

(3) बचपन से ही कम्बर में श्रीराम के प्रति दृढ़ अनुराग था, अडिग भक्ति थी।

(4) प्रसिद्ध वैष्णव कवि और सन्त नामालवार उनके गुरु थे।

(5) कम्बर ने गुरुकृपा एवं भगवद्भक्ति से काव्यस्फूर्ति पाकर प्रसिद्ध कम्बन रामायण की रचना की।

(6) ठीक 5 वर्ष के बाद सन् 885 ई. फाल्गुन पूर्णिमा को श्रीरङ्गन की साहित्य सभा ने काम्ब रामायण को मान्यता प्रदान की। रामभक्त कम्बर को कवि-चक्रवर्ती की उपाधि से विभूषित किया गया।

(7) चोल एवं चेर सम्राट् उनका बड़ा सम्मान करते थे तथा श्रद्धा रखते थे।

(8) उन्होंने काम्ब रामायण में आदि से अंत तक रावण के विनाश को ही पवित्र उद्देश्य रखा है। श्रीराम द्वारा रावण के अंत का स्मरण प्रत्येक महत्त्वपूर्ण स्थल पर कराया है।

(9) घटना वर्णन में वाल्मीकि का ही अनुसरण किया है। कहीं-कहीं भक्त हृदय की विलक्षण अनुभूति, विचित्र काव्यशैली एवं प्रतिभा के कारण घटना वर्णन अत्यन्त मौलिक हो गए हैं।

(10) चरित्र चित्रण में उन्होंने दैवी सम्पद् की सराहना तथा आसुरी सम्पद् की निंदा की है।

(11) कम्बन हनुमानजी को अपना गुरुरूप मानते थे।

(12) कम्बन ने सीताहरण के प्रसंग पर दर्शाया है कि रावण उस भूखण्ड को ही उखाड़ कर ले भागता है जिस पर सीताजी खड़ी हैं। कम्बन की भावना है कि राक्षस माता सीता का स्पर्श न कर सके।

(13) पुष्पवाटिका प्रसंग भी कम्बन की प्रतिभा की देन है।

प्रो. साहब का राम पर आक्षेप

आप सब राम को मर्यादा पुरुषोत्तम मानते हैं। वह तो रिक्शा पुलर से भी घटिया व्यक्ति थे जो अपनी पत्नी तक की रक्षा नहीं कर सके।

अकसर वे हिन्दू धर्म के देवी-देवता की हंसी उड़ाते रहते थे। हम तो दीन हैं भगवान् है दीनानाथ। हम तो पतित हैं और भगवान् पतितपावन। हनुमानजी ने पूरा पहाड़ उठा लिया तो रांची विश्वविद्यालय के छात्र सोचते हैं हम सब मिलकर रांची विश्वविद्यालय को उठा लेवें।

इस तरह का मखौल प्रायः अपनी क्लास में करते रहते थे। इससे मेरे मन को बहुत चोट पहुंचती थी। भगवान् राम के प्रति अशोभनीय आलोचना ने मेरे मन को बहुत व्यथित और विचलित किया। मेरा फिर आगे की कक्षा में मन नहीं लगा। मैं वापस अपने आवास में लौट आया। रात को भी सो न सका। तब मैंने एक पत्र शिक्षक महोदय के नाम से लिखा। जिसमें मैंने फ्रांस के साहित्यकार मिचलेट को उद्धृत किया जो उन्होंने रामायण के मूल्यांकन में कही थी। फिर मैंने गांधीजी को उद्धृत किया जो अपनी सारी महानता का रहस्य राममन्त्र को मानते थे, जो उनके इष्टदेव के साथ-साथ उनका राष्ट्रीय आदर्श था। सपना था भारत में रामराज्य की स्थापना करना। और गांधीदर्शन कोर्स में है और उसे आपको ही पढ़ाना है। अतः राम की अमर्यादित आलोचना, गांधीजी का भी अपमान है।

हम स्वयं अपने जीवन में कोई मर्यादा स्थापित तो कर नहीं सकते। पर जिन्होंने मर्यादा की स्थापना की उसकी टांग अवश्य खींच सकते हैं। साधन विहीन, परिचयविहीन, वनवासी राम ने एक सीता की रक्षा के लिए वनवासी समाज एवं बंदर, भालुओं को ही संगठित करके, उनकी सेना सजाकर त्रिभुवनजयी रावण को कुल-कुटुम्ब सहित उखाड़ कर फेंक दिया। अगर हम राम के इस आदर्श पर चल पाते तो देश का विभाजन नहीं हो सकता था। देश विभाजन के पश्चात् पांच हजार हिन्दू नारियों को नग्न करके, उनके गुप्तांगों में पाकिस्तान जिन्दाबाद लिखकर जुलूस निकाले गए, जिसमें नारे लगे—हँस के लिया पाकिस्तान, लड़कर लेंगे हिन्दुस्तान। यह नहीं होता। आज भी हिन्दू बहू-बेटियों का अपहरण जारी है

और अरब देशों में बिक रही हैं। रांची भी इसका अपवाद नहीं है। आप पत्नी के साथ एकांत स्थान में जा रहे हैं और दस गुण्डे आपको घेर कर आपकी पत्नी को छीन लेवें और कहें कि थाने में रिपोर्ट की तो तुम्हारी गर्दन कलम कर दी जाएगी। तो आप इतने बहादुर हैं, मूंछ पर ताव देकर घर लौट जाएंगे। थाने में रिपोर्ट लिखवाने की आपकी हिम्मत नहीं होगी।

दर्शन की कक्षा के ठीक नीचे ही उर्दू की क्लास चलती है। मुहम्मद साहब के विषय में जो ऐतिहासिक तथ्य इतिहासकारों ने रखे हैं उसे कहकर आप वापस सकुशल लौट आयें तो जानूं।

मैं तो रामायण का आचार्य नहीं हूं पर मेरा रामायण के आचार्यों से परिचय है। उनके साथ आपकी खुली सभा हो जाए कि राम रिक्शा पुलर से भी घटिया व्यक्ति थे या मर्यादा स्थापित करने वाले आदर्श पुरुष—स्पष्ट हो जाएगा।

निवेदक आपका छात्र,

संतोष लाठ

इस पत्र को लेकर प्रो. ओबरायजी के पास गया और उन्हें सारी घटना बतायी। तब उन्होंने पत्र को संशोधित करवाया। उस पत्र में मेरे 5-6 मित्र छात्रों ने भी हस्ताक्षर कर दिये। उसकी एक प्रति प्रो. महोदय को, एक प्रति हेड को दी और एक प्रति मैंने अपने पास रख ली।

सेवा में,

अध्यक्ष महोदय (दर्शन विभाग),

रांची विश्वविद्यालय, रांची।

सविनय निवेदन है कि हमने एम.ए. दर्शन की कक्षा में प्रवेश इसलिए लिया था कि भारत दर्शन की जन्मभूमि होने के कारण हमें दर्शन के क्षेत्र में भारत की गौरव गरिमा एवं जगद्गुरुत्व का दर्शन प्राप्त होगा। आपको अतीव दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि हमारी कक्षाओं में विषय से विषयांतर करके अनावश्यक राजनीतिक चर्चा और भारत एवं भारतीयता की निंदा चलायी जाती है जिससे एक ओर हमारा पाठ्यक्रम पूरा नहीं हो पाता और दूसरी ओर हमारे जीवन की पवित्रतम आस्थाओं पर भयंकर आघात पहुंचता है।

दिनांक 15.1.81 को धर्मदर्शन की कक्षा में माननीय प्राध्यापक महोदय ने रामायण और रामचरित्र की इतनी भद्दी एवं उपहासपूर्ण आलोचना की कि मेरे जैसे निष्ठावान छात्र के हृदय को बड़ा आघात लगा। मुझे अगली कक्षाएँ छोड़कर वापस घर लौटना पड़ा। उन्होंने कहा कि राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है

किन्तु कोई घटिया से घटिया व्यक्ति भी उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ पारिवारिक आचरण करेगा।

उनकी दुःखदायी अशोभन आलोचना दिनभर मेरे हृदय को सालती रही। उन्होंने शिव-पार्वती के विषय में भी बड़े अशोभन शब्द प्रयोग किए। रामायण एवं महाभारत भारत के राष्ट्रीय महाकाव्य हैं। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के शब्दों में रामायण भारत की आत्मा का महाकाव्य है।....रामायण में भारत प्रतिष्ठित है तथा भारत में रामायण प्रतिष्ठित है।

फ्रांस के महान् इतिहासकार मिचलेट ने रामायण के मूल्यांकन में लिखा है, 'जिस किसी ने भी महान् कार्य किये हैं या महान् आकांक्षा संजोयी है, उसे रामायणरूपी अमृत के भरपूर प्याले से जीवन और यौवन का एक लम्बा घूंट पीने दो। पश्चिम में सभी कुछ संकीर्ण है। यूनान छोटा और तंग है और वहां मेरा दम घुटता है। जुडिया शुष्क है तथा वहां मैं हांप जाता हूं। मुझे महान् एशिया और गहन प्राची की ओर देखने दो—वहां मिलता है मेरे मन का महाकाव्य रामायण। हिन्द महासागर जैसा विस्तृत, सूर्य से ज्योतित एवं धन्य एक दिव्य संगीत का ग्रंथ जिसमें कहीं लयभंग नहीं है। वहां एक अपार शान्ति का राज्य है। कर्तव्यों के संघर्ष के बीच भी अपार माधुर्य है, अनन्त सौहार्द है जो सब जीवों पर प्रेम, दया और क्षमा का अपार और अथाह सागर लहरा देता है।'

विश्ववंद्य महात्मा गांधी राम नाम को अपना जीवनमन्त्र मानते थे। वे इसे ही अपनी सारी महानता का रहस्य बताते थे। उन्होंने रामराज्य के आदर्श के लिए सारा जीवन उत्सर्ग कर दिया। गांधीदर्शन भी हमारे पाठ्यक्रम में है। अतः राम की निंदा गांधी दर्शन एवं भारत, सभी की निंदा है।

जहां दर्शन सत्य की तर्कसम्मत बौद्धिक व्याख्या है वहां धर्म परम सत्य के प्रति समर्पणकारी आध्यात्मिक साधना है। आपने स्वयं अपने ग्रंथ Comparative Religion में स्वीकार किया है कि All religions aim at the transformation of man into superman. जो तर्क की कैंची दर्शन में चलती है वह धर्म के क्षेत्र में चलने पर निष्ठाओं का खून कर बैठती है। संसार का कोई भी धर्म तर्क के तेज छुरे की धार के सामने धर्म के रूप में बच नहीं सकता। आस्था एवं निष्ठा तर्क से परे है। इसलिए हमें पूरी सावधानी बरतनी चाहिए कि हम अपने उपहास मात्र में देश के करोड़ों लोगों की धर्मनिष्ठा को कुचल तो नहीं रहे हैं।

इसका भाव स्पष्ट है कि धर्म कोई कूड़ा-कचरा नहीं है जिसकी निन्दा करना ही दर्शन का कार्य हो। भारत में धर्म एवं दर्शन, दोनों परस्पर अभिन्न हैं। किन्तु, जहां दर्शन प्रकाश की खोज है वहां धर्म प्रकाश की प्राप्ति है। दर्शन मात्र

बौद्धिक विलास रह जाता है, धर्म जीवन की सर्वोच्च एवं सर्वस्व समर्पणकारी साधना है।

कठोपनिषद् में कहा है—'नैषा तर्केण मतिरापनेया' 1/2/7 यह ब्रह्मज्ञान तर्क से प्राप्त नहीं होता।

दुर्भाग्य से हिन्दू ही वह अभागा समाज है जो इस प्रकार की अशोभन एवं तिरस्कारपूर्ण ठोकरों का शिकार बनता रहता है। यह हिन्दू की उदारता का अनुचित लाभ उठाना है। यदि माननीय प्राध्यापक में हिम्मत है तो अहिन्दू छात्रों के बीच इसलाम या ईसाइयत के पैगम्बर के विषय में ऐसे शब्द बोलकर देखें। अमेरीका में प्रकाशित हजरत मुहम्मद से सम्बन्धित एक पुस्तक की संक्षिप्त समीक्षा छापने पर मुसलमानों ने Statesman (Calcutta) के पूरे भवन में आग लगा दी थी। क्या अपने इष्टदेव की नग्ननिंदा सुनने के लिए अभागा हिन्दू ही बचा है?

आशा है आप उचित मार्गदर्शन कर हमारी धार्मिक आस्थाओं को इस प्रकार क्षत-विक्षत होने से अवश्य बचाएंगे। अन्यथा हमारी कक्षा में बैठने की इच्छा नहीं रहेगी।

आपका आज्ञाकारी शिष्य—

1. संतोष लाठ,	2. .....
3.	4. .....
5.	6. .....
7.	8. .....
9.	10. .....

सात दिन पश्चात् मुझे Expell करने की नोटिस जारी कर नोटिस बोर्ड में लगा दी गई और क्लास में नोटिस पढ़ने के पूर्व अनुशासन पर भाषण देने के पश्चात् नोटिस पढ़कर सुनायी।

तब मैंने उन प्रो. महोदय से कहा—मेरे हृदय पर डाका डाला गया और किस प्रकार और किसने डाका डाला यह बताते हुए मैंने शिकायत की तो मुझे ही दण्डित किया गया। मुझे दण्डित करने का निर्णय लेते समय मुझे बुलाया भी नहीं गया और एकपक्षीय निर्णय ले लिया गया। तब प्रो. साहब ने कहा—आपको भी निर्णय लेने के समय बुलाया जाना चाहिए था। यह मुझे भी अखर रहा था। तब मैंने कहा, आप किस आधार पर अनुशासन की बात कह रहे हैं? क्या मैं अपने मन की पीड़ा भी अभिव्यक्त नहीं कर सकता?

फिर मैं हेड के पास चला गया और उन्हें कहा—मैंने विश्वविद्यालय में इसलिए प्रवेश नहीं लिया कि अपने आदर्श पुरुषों-महापुरुषों, देवविग्रह की अभद्र आलोचना सुनूं। आप मुझे क्या Expell करते हैं मैं स्वयं ऐसी शिक्षा को लात मारकर जा रहा हूं। अब यह Issue, all India का बनेगा। तब छात्रों ने और प्रोफेसरों ने कहा, इस विषय को यहीं स्थगित कर दो। तब मैंने कहा नोटिस बोर्ड में Expell का नोटिस लग चुका है, और क्लास में नोटिस सबके बीच पढ़ा जा चुका है। अतः इन्हें भी लिखित रूप से गलती स्वीकार करनी पड़ेगी। तब उन्होंने लिखित रूप से अपनी गलती स्वीकार कर आगे न दुहराने का वचन दिया।

मैं भारत के बहुत से देहातों में घूमा हूं। यहां के किसानों के चेहरों पर हमेशा एक प्रकार की चमक देखी है। वह उनकी गरीबी को एक प्रकार से सम्पन्न बना देती है। किन्तु अफ्रीका व दक्षिण अमरीका के ग्रामीण क्षेत्रों की निर्धनता बड़ी दर्दनाक है, करुण है। मेरे खयाल से भारत के गरीब किसान के चेहरे की रोशनी का रहस्य है उसकी आध्यात्मिक आत्म-निर्भरता और उसका स्वाभिमान। भारतवासी कृपया ऐसा कोई काम न करे, जिससे उनके ये सुनहरे गुण किसी कदर कम हो जाय।

—प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. गॉलब्रेथ

× × ×

मैं नहीं चाहूंगा कि स्वतंत्र भारत का भवन सभी ओर दीवारों से घिरा रहे और उसके खिड़की-दरवाजे बन्द रहें। सभी देशों की संस्कृतियों का प्रवाह हमारे मकान के अन्दर आवश्यक स्वतंत्रता से बहे। लेकिन मैं यह कभी बरदाश्त नहीं करूंगा कि इन प्रवाहों से मेरे पैर ही उखड़ जाएं।

—गांधीजी

× × ×

हमारे आक्रमण, उद्दंडता एवं लूटपाट के बदले भारत हमें सिखायेगा सहिष्णुता और परिपक्व मन की मृदुता और अजेय आत्मा का निश्छल संतोष। सामंजस्य भावना की शीतलता तथा सभी प्राणीमात्र से एकरूपता युक्त शान्तिप्रद स्नेह।

—विल ड्यूरांट

दर्शन का वास्तविक प्रयोजन

दर्शन का वास्तविक प्रयोजन सृष्टि के परम सत्य का दर्शन ही है न कि मात्र वाणी विलास या शब्दजाल। जब तक अन्तःकरण में कोई भी स्वार्थ भावना छिपी रहती है तब तक मानव को सत्य भी अपने स्वार्थ के संस्कारों में रंगा हुआ दिखायी देता है। जब अन्तःकरण पूर्णतया निष्काम एवं निःस्वार्थ हो जाता है तब उसमें जो ज्ञान का प्रकाश आलोकित हो उठता है, वही सत्य है। उसे केवल आत्मानुभूति द्वारा ही जाना जा सकता है। उस सत्य का दर्शन इन्द्रियों द्वारा सम्भव ही नहीं। उस सत्य दर्शन की अनुभूति का जब वाणी में कथन किया जाता है तो भाषा की विवशता के कारण वह सत्य का दर्शन न रहकर सत्यसम्बन्धी शब्दजाल मात्र बन जाता है। सत्य के विषय में वाग्विलास शास्त्रार्थ की तुलना में सत्य की अनुभूति उतनी ही भिन्न है जितना कि आम के वृक्ष गिनने की तुलना में आम का वास्तविक स्वाद चखना। क्योंकि सभी दार्शनिक ग्रंथ भाषा में लिखे गए हैं, इसलिए दार्शनिक पांडित्य वाणीविलास, शब्दों को तोड़-मरोड़ कर शब्दसंग्राम, तर्क के घात-प्रतिघात, चालाकी भरी दलीलबाजी, वाग्वंचना मात्र रह जाता है और सत्य का दर्शन अलग छूट जाता है।

यदि सत्य का दर्शन ही नहीं हुआ तो दर्शन की मटकी में तर्क की मथानी से थोथे शब्दों के सारहीन पानी को बिलोने से क्या लाभ होने वाला है।

डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा है—सत्य के विषय में बोलने वाले हजारों लोगों में से कोई एक ही सत्य की व्याख्या कर सकता है और सत्य पर व्याख्यान देने वाले हजारों लोगों में से कोई एक ही सत्य का साक्षात्कार करता है। दर्शन धन्य तभी होता है जब वह सचमुच सत्य का दर्शन करा सके। राधाकृष्णन् स्वयं विनम्रतापूर्वक स्वीकार करते हैं कि वे स्वयं सत्य की व्याख्यामात्र करने वाले व्याख्याता ही थे किन्तु रामकृष्ण परमहंस एवं महर्षि रमण जैसे सत्य के द्रष्टा उनसे कहीं ऊंचे थे। राधाकृष्णन् स्वयं विश्व के मूर्धन्य दार्शनिक होते हुए भी रामकृष्ण एवं रमण महर्षि जैसे नितान्त अनपढ़ सत्यद्रष्टाओं की चरण धूलि को मस्तक पर चढ़ाते थे। डॉ. राधाकृष्णन् लिखते हैं—हमने जिह्वा की वाचालता, भाषा की चालाकी और तर्क की तोड़-मरोड़ बहुत सीख ली है, किन्तु दुर्भाग्य से अभी तक हृदय को टटोलना

नहीं सीखा। इसी कारण हम इस विराट् विश्व में आस्थाविहीन हुए अनाथों की तरह भटक रहे हैं। राधाकृष्णन् अपनी पुस्तक 'Recovery of faith' के नौवें पृष्ठ में लिखते हैं—

'Human Societies like human beings live by faith and die when faith disappears. If our society is to recover its health, it must regain its faith.' वे इतने उच्चकोटि के तार्किक एवं दार्शनिक होते हुए भी प्रतिदिन नियमपूर्वक अपने पूजा के कमरे में भगवान् कृष्ण की पूजा करते थे और स्वयं कहते थे कि दार्शनिक शास्त्रार्थ और तर्क की कैंची को पूजा के मन्दिर में प्रवेश का कोई अधिकार नहीं। आज जब नास्तिकता, भौतिकता एवं अर्थपरायणता के युग में धर्म का मजाक उड़ाना एक फैशन-सा बन गया है, किन्तु इसी युग में भोगवाद के सबसे बड़े गढ़ अमेरीका में भाषण करते हुए डॉ. राधाकृष्णन् ने धर्म की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा है—Religion is fulfilment of man's life, an experience in which every aspect of his being is raised to its highest extent. अर्थात् धर्म मानव जीवन की पूर्ण तृप्ति है, एक ऐसी अनुभूति है जिसमें उसके व्यक्तित्व का प्रत्येक पहलू सर्वोच्च स्तर तक उठ जाता है।

दर्शन के क्षेत्र में जहां आधुनिक काल के महानतम दार्शनिक धर्म एवं श्रद्धा के प्रबल समर्थक एवं संरक्षक थे, वहां भारतीय दार्शनिकों में सर्वोच्च गौरव गरिमा के पात्र शंकराचार्य स्वयं प्रखर तार्किक और दार्शनिक शास्त्रार्थों द्वारा दिग्विजय करने वाले, निर्गुण-निराकार ब्रह्म की स्थापना करने वाले, वेदान्तद्रष्टा होते हुए भी प्रतिदिन निष्ठापूर्वक दैनिक पूजा-अचर्ना करते थे और उन्होंने राम-कृष्ण के यश के स्तोत्र गाये एवं अनेकानेक शिव मन्दिरों की प्रतिष्ठापना की। अतः दर्शन का धर्म एवं आस्था से कोई वैर-विरोध हो ही नहीं सकता। इसके विपरीत सचाई यह है कि भारत में दर्शन धर्म की गोदी में ही पला-बढ़ा है। अतः दर्शन की चर्चा में धर्म की निंदा का कोई स्थान ही नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है, **श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।** 17/3 अर्थात् मनुष्य श्रद्धा से ही बना हुआ है और वास्तव में श्रद्धावान् ही वास्तविक मनुष्य है। मनुष्य का शरीर तो उसका बहिरंग मात्र है, उसके भीतर वास्तविक पुरुष है जो श्रद्धामय है। बहिरंग शरीर तो मृत है, किन्तु श्रद्धा अमर है। यदि बुद्ध के जीवन से करुणा शेष कर दी जाए तो बुद्ध के जीवन का मूल्य दो कौड़ी भी नहीं बचता क्योंकि करुणा ही वास्तविक बुद्ध है। शरीर के नष्ट हो जाने के हजारों वर्ष बाद भी अभी तक बुद्ध के नाम से पूजे जा रहे हैं। इसी प्रकार महावीर के जीवन से जीवदया, गांधी के जीवन से सत्य व अहिंसा, नेताजी के

जीवन से ज्वलन्त देशभक्ति यदि शेष कर दी जाए तो इन महापुरुषों के जीवन का मूल्य भी शून्य हो जाता है। अतः महान् श्रद्धा ही किसी पुरुष को महापुरुष बनाती है, महान् बनाती है।

शरीर की हत्या करना यदि ऐसा घोर अपराध है जिसके लिए प्राणदण्ड का विधान है तो श्रद्धा का खून करने वाले को कितना बड़ा दण्ड मिलना चाहिए, यह विचारणीय प्रश्न है। ईसा को फांसी देने वालों ने तो मात्र ईसा के शरीर की हत्या की, किन्तु ईसा के जीवन से प्रेम और अहिंसा को निकाल देने से श्रद्धा का इतना बड़ा खून हो जाएगा जिसे सम्भवतः इतिहास कभी क्षमा नहीं करेगा। अतः किसी की श्रद्धा को कुचलना कभी भी उचित नहीं माना जा सकता।

समस्त शिष्टाचार एवं अनुशासन का मूल आधार श्रद्धा ही है। माता-पिता के प्रति श्रद्धा होने पर ही बेटा आज्ञाकारी एवं सेवाव्रती बनता है। यदि राम की माता-पिता के प्रति श्रद्धा न होती तो वे वनगमन के आदेश को न मानकर औरंगजेब के समान पिता को बंदी बनाकर भाइयों के खून का घृणित काण्ड रच सकते थे, किन्तु राम की श्रद्धा ने उन्हें युग-युग तक पूज्य बना दिया और औरंगजेब की अश्रद्धा ने उसे धरती का दुर्भाग्य और इतिहास का कलंक बना दिया। भक्त श्रवण की मातृ-पितृ श्रद्धा ही उसे अमर बना गई। बिना श्रद्धा के वह देश के कोने-कोने में सब तीर्थों में अपने अंधे माता-पिता को कंधे पर ढोकर क्यों तीर्थ करवाता फिरता। आज का कोई श्रद्धाविहीन बेटा अपने रोग से मरते हुए माता-पिता को औषधि और आहार तक पूछने की फुर्सत नहीं निकालता। गुरुजनों के प्रति श्रद्धा के कारण ही उनका जीवनभर सम्मान किया जाता है। आज के श्रद्धाविहीन छात्र अध्यापकों पर पत्थरबाजी, छुरेबाजी तथा घृणित व्यवहार करने से नहीं चूकते। देश के प्रति श्रद्धा होने से ही भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव हंसते-हंसते फांसी पर चढ़ सकते हैं तथा गांधी, तिलक और सुभाष अपना समस्त जीवन मातृभूमि की सेवा के लिए उत्सर्ग कर सकते हैं। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर अमर श्रद्धावान् महापुरुष थे, उनके गीतांजलि के गीत श्रद्धा के अमर गीत हैं। उन गीतों से श्रद्धा को घटा दिया जाए तो पागलों के प्रलाप जैसे प्रतीत होंगे। चैतन्य महाप्रभु श्रद्धा के बिना कांके की मानसिक आरोग्यशाला में भर्ती के योग्य रह जाते हैं। बिना श्रद्धा के तुलसीदास को मात्र दिवास्वप्न देखने वाला मानसिक रोगी गिना जाता और मीराबाई एक बाजारू औरत जैसी बन जाती। इस युग के सबसे बड़े महापुरुष महात्मा गांधी स्वयं स्वीकार करते हैं कि यदि मेरे पास राम नाम की अटल श्रद्धा न होती तो मेरे लिए आत्महत्या के सिवा और कोई दूसरा चारा न रहता। इसलिए श्रद्धा मानव की सबसे बड़ी पूंजी है, यही उसे उठाने वाली और जीवन को मूल्य देने वाली अलौकिक शक्ति है जिसके बिना मनुष्य जीवन में न कोई महान् कार्य कर सकता

है, न महान् त्याग कर सकता है, और न ही किसी महान् सत्य की उपलब्धि कर सकता है। भगवान् कृष्ण ने स्पष्ट घोषणा की है जिसे शंकराचार्य से राधाकृष्णन् तक सभी ठीक मानते हैं कि 'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं' 4/39 अर्थात् श्रद्धावान व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। 'संशयात्मा विनश्यति' 4/40 और श्रद्धाहीन संशयालु नष्ट हो जाता है। यदि हमें अपने गुरुजनों या प्राध्यापकों के वचन में श्रद्धा न हो तो हम निरन्तर यही संशय करते रहेंगे कि जो पाठ वे पढ़ा रहे हैं वह अशुद्ध होगा।

हम कुछ विद्यार्थी बड़े प्रयास से, पारिवारिक संस्कार से, गुरुजनों की दीक्षा से और अपनी कठिन साधना से अपनी धार्मिक आस्था को सम्हालकर, बचाकर चलते हैं ताकि वास्तविकता की आंधी में कहीं हमारे श्रद्धा के दीपक बुझ न जाएं। किन्तु हमारे आराध्यदेव भगवान् राम की इतनी अन्यायपूर्ण एवं भद्दी आलोचना करके हमारे श्रद्धा के दीपक को बड़ी जोरदार पांव की ठोकर मारी गई है जिससे हमारा हृदय कांप उठा है। और हमने प्रार्थना की है कि हमारी श्रद्धाओं पर ऐसे भीषण अत्याचार न किये जाएं। हम अपने दुःख की फरियाद मात्र कर रहे हैं। यदि चोट खाकर लहूलुहान होने वाला जख्मी व्यक्ति दुःख से क्रन्दनकर प्रार्थना करता है कि ऐसा अत्याचार न किया जाए और प्रहार करने वाले के स्थान पर प्रहार सहकर फरियाद करने वाले को ही अनुशासनहीनता का दोषी माना जाता है तब ऐसे न्यायालय में वादी का गूंगा रहना और साक्षी का अंधा रहना ही पर्याप्त है। इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है।

भारत एक धर्मप्राण देश है। धर्म ही इसका प्राण है। यहां के महापुरुष धर्म की रक्षा के लिए हंसते-हंसते प्राण निछावर करते रहे हैं। इसलिए धर्म प्राणों से भी अधिक प्यारा है। किसी के प्राणों का हरण करना हत्या कहलाता है। किन्तु किसी के धर्म को लूटना, उसकी धार्मिक आस्था पर प्रहार करना उसके प्राणहरण से भी अधिक बड़ा अत्याचार है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में—प्रत्येक राष्ट्र के प्राण भी किसी बिन्दुविशेष में केन्द्रित होते हैं। वहीं उस राष्ट्र का राष्ट्रीयत्व बसता है और जब तक उस मर्मस्थान पर आघात नहीं होता तब तक वह राष्ट्र नहीं मर सकता....किन्तु जब उस मूल उद्देश्य पर जिस पर राष्ट्रीय जीवन का सम्पूर्ण महल टिका है, छोटा-सा आघात भी होगा तो राष्ट्र प्रचण्ड शक्ति से उसका प्रतिरोध करेगा।....धर्म ही हमारे तेज, बल और इतना ही नहीं हमारे राष्ट्रीय जीवन का भी मूलाधार है। यदि तुमने इस मर्मस्थल को छोड़ दिया तो सावधान! तुम सर्वनाश को निमंत्रण दे दोगे।....सदा सर्वदा तुम धर्म से बंध चुके हो और तुम्हें इसके सहारे ही खड़े रहना होगा। भले ही तुम्हारी धर्म में मेरे जितनी निष्ठा न हो। तुम इसी धर्म से बंधे हुए हो और यदि इसे छोड़ दोगे तो चूर-चूर हो जाओगे। यही हमारी जाति का प्राण है और तुम्हें इसे पुष्ट करना होगा।....राष्ट्र का प्राण धर्म है, उसकी भाषा

धर्म है तथा उसका भाव धर्म है।' इस दृष्टि से धर्मप्राण भारत में धार्मिक आस्था पर आघात स्वयं भारतीयता पर एवं भारत के प्राण पर घातक आघात है। हमने सविनय विनती की है कि भारत, भारतीयता एवं मानवता के हित में ऐसा प्रहार न किया जाए।

धर्मनिरपेक्ष भारत में किसी की आस्था पर प्रहार करना घोर अन्याय है। वैसे भी संयुक्त राष्ट्रसंघ के विधान के अनुसार संसार के किसी भी प्रचलित धर्म का तिरस्कार करना भी अपराध है। कक्षा की शान्ति, साम्प्रदायिक शान्ति और विश्व शान्ति के हित में किसी की भी धार्मिक आस्था पर ऐसा अशोभन प्रहार नहीं होना चाहिए।

पश्चिम में विवाह का आदर्श है भोग द्वारा नर-नारी का संयोग। भारत का आदर्श रहा है तपस्या द्वारा अमर मिलन। प्रारम्भ में पार्वती ने कामदेव के उद्दीपन में आकर कामदेव के कृत्रिम वसन्त द्वारा प्रभावित होकर शिव को प्राप्त करने की चेष्टा की, किन्तु यौवन के उद्दाम वेग में किया गया मिलन कभी सफल नहीं होता। कामदेव भस्म हो गया। शंकर के तृतीय नेत्र से निकलने वाले तेज की ज्वाला से सारी सृष्टि दग्ध होने लगी और पार्वती को बड़ी आत्मग्लानि हुई तब उसने अपने सब रत्नाभूषण फेंककर शिव की प्राप्ति के लिए तप करना प्रारम्भ किया। भूख-प्यास, सांसारिक आवश्यकता को भुलाकर वह कन्याकुमारी के स्थान पर कुंवारी कन्या के रूप में तीन समुद्रों के मिलन बिन्दु पर एक चट्टान पर बैठकर अनन्य भाव से शिव का चिन्तन करती रही। उस तपस्या के प्रभाव से शंकर को कैलास से आकर कन्याकुमारी में स्वयं पार्वती को वरण करना पड़ा। इस तरह सारा भारत शिव-शक्ति के अखण्ड मिलन से पावन हो गया।

यौवन के उद्दाम वेग में शकुन्तला ने बिना अपने पालक (ऋषि कण्व) से अनुमति लिए दुष्यन्त का वरण कर लिया। परिणामस्वरूप दुर्वासा ऋषि के शाप से दुष्यन्त शकुन्तला को बिल्कुल भूल गया। पहचान की मुद्रिका को भी भूल गया। शकुन्तला को तिरस्कारकर निकाल दिया। शकुन्तला को आत्मग्लानि सहनी पड़ी। शकुन्तला ने जंगल में तपस्या की, उधर दुष्यन्त को भी स्मृति लौटने पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। तपस्या के पश्चात् दुष्यन्त और शकुन्तला का अमर मिलन हुआ। उनकी सन्तान भरत के नाम पर हमारे देश पर 'तपसा विजयम्' की मुद्रा अंकित हो गई।

धर्मात्मा पाण्डव कौरवों से अपना राज्य वापस लेने में समर्थ थे। किन्तु उन्होंने वनवास की तपस्या के पश्चात् केवल इन्द्रप्रस्थ का राज्य ही नहीं पाया वरन् कोटि-कोटि मानवों के हृदय सिंहासन पर श्रद्धा का राज्य भी प्राप्त कर लिया। किसी महान् आदर्श के लिए तप किए बिना कोई भी महापुरुष इतिहास में पूजित नहीं हो सका है। अतः किसी विश्व पूजित महापुरुष का मखौल उड़ाना और उनके

प्रति महर्षि वसिष्ठ से लेकर महात्मा गांधी तक युगों से चली आई हुई श्रद्धा को अपमानजनक ठोकर मारना कभी भी सहनीय नहीं है। क्या राम के प्रति अटल श्रद्धा रखने वाले महर्षि वसिष्ठ से लेकर गांधी तक सभी मूर्ख थे और हमारे प्राध्यापक महोदय अधिक श्रेष्ठ बुद्धि के स्वामी हैं?

अपनी आजीविका के लिए कष्ट सहना मात्र मजदूरी है, किन्तु किसी महान् तपस्या के लिए कष्ट सहना तपस्या है। श्रद्धा वह दिव्य मुद्रा है जो श्रम को तप का गौरव प्रदान कर देती है। पेट भरने के लिए, घास-फूस खाने वाले अनेक अभागों को देखकर उन पर दया आती है। आजीविका के लिए मजदूरों के कष्ट को देखकर उन पर तरस आता है। किन्तु किसी महान् श्रद्धा के लिए घास की रोटी खाने वाले महाराणा प्रताप के प्रति पूजा का भाव पैदा होता है। श्रद्धा ही दयनीय को पूजनीय बना देती है।

भारतीय संस्कृति का आदर्श है 'तपसा विजयम्' अर्थात् तपस्या द्वारा विजय प्राप्त होती है। पश्चिम का आदर्श है भोगेन विजयम्। बातूनी लोग जो न तो पश्चिम के समान दूसरों के धन, राज्य को छीनकर विजय कर सकते हैं और न तपस्या द्वारा अपने आपको जीत सकते हैं। उनका ध्येय वाक्य है 'वचसा विजयम्' अर्थात् बातों से ही विजय करने का प्रयास करना। ये थूक से बड़े पकाने के बराबर है, गपोड़े-बाजी के पकोड़े खाने के तुल्य हैं।

भगवान् राम ने राज्य प्राप्ति में समर्थ होते हुए भी भोगों को ठुकराकर तपस्या द्वारा आत्मविजय की। वे मुसीबतों के मारे हुए नहीं थे जिन पर किसी को तरस खाने की जरूरत है। उन्होंने एक महान् श्रद्धा के लिए स्वेच्छा से हँसते-हँसते तपस्या का मार्ग वरण किया। भगवती सीता ने भी तपस्या का ऐसा महान् आदर्श रखा जिसकी तुलना विश्व की कोई नारी आज तक कर नहीं सकी है। सीता ने हँसते-हँसते पातिव्रत्य धर्म के आग्रह के साथ वनवास के कण्टकाकीर्ण पथ को चुना। अपहरण के पश्चात् लंका में भी निरन्तर तपस्या में लीन रहीं। उस तपस्विनी के शरीर से एक ऐसा अद्भुत तेज निकलता था जिसके सम्मुख जाने पर देवताओं को विजय करने वाला रावण भी भयभीत हो जाता था। युगों से राम और सीता की तपस्या के कारण ही मानवता अपने हृदय मन्दिर में उनकी पूजा करती चली आयी है। किसी अन्य भोगी राजा-रानी की पूजा भारत ने नहीं की। प्राध्यापक महोदय द्वारा आज के किसी भोगी, पामर-पापी, घटिया आदमी को राम से अच्छा बताना तपस्या का घोर अपमान है।

जिस योगिराज अरविन्द ने फ्रांस के नोबेल पुरस्कार विजेता साहित्यमनीषी रोम्या रोला के दर्शन को पूर्व और पश्चिम के दर्शन का महानतम समन्वय माना, वे श्री अरविन्द लिखते हैं—भगवान् राम सत्य, न्याय, धर्मपालन के सर्वोच्च

आदर्श हैं तथा वे सात्त्विक मानवता के महान् अवतार के रूप में पूजे जाते रहेंगे। जिस अरविन्द दर्शन को देश-विदेश के विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाता है उनके जीवन से अतिमानस की श्रद्धा निकाल दी जाए तो पाँडिचेरि में 40 वर्ष मौन तपस्या का मूल्य दो छदाम भी नहीं बचता तथा उन पर लिखे जाने वाले शोधग्रंथों का मूल्य भी रद्दी के कागज से अधिक नहीं बचेगा।

बिना गोभक्ति की श्रद्धा के सम्राट् दिलीप, भगवान् कृष्ण, गांधी, विनोबा की गोसेवा का क्या अर्थ बचता है? बिना धर्मश्रद्धा के हकीकत राय, गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर, मतिदास एवं गुरु गोविन्द सिंह के दीवार में चुने जाने वाले लाडलों के बलिदान का महत्त्व ही क्या बचता है। सत्य के प्रति निष्ठा के बिना हरिश्चन्द्र का चाण्डाल के घर बिकना और सुकरात का विष का प्याला पीकर बलिदान हो जाना निरर्थक हो जाएगा। वास्तव में अपने स्वार्थ के लिए या तुच्छ भोगों के लिए कष्ट सहना तो मात्र जीवन का बोझा ढोना है।

हमें विवेक से धर्म के शाश्वत तत्त्व को उसके इर्द-गिर्द बढ़े हुए झाड़-झंखाड़ से अलग करके पहचानना चाहिए। यदि वृथा जंगली झाड़, घास पात को साफ नहीं करेंगे तो बगीचे के फूल भी दब जाएंगे या नष्ट हो जाएंगे। अतः गलत रूढ़ियों के झाड़-झंखाड़ को समय-समय पर विवेक के द्वारा दूर करते रहने से धर्म की वाटिका के फूल खिलेंगे।

जिस प्रकार मक्खी 56 प्रकार के पकवानों पर बैठती है पर वह भोजन से रसग्रहण करने के लिए या भोजन करने के लिए नहीं वरन् विष्ठा करने के लिए बैठती है। वैसे ही कुछ आधुनिक या नास्तिक लोग धर्मग्रंथों (रामायण, महाभारत आदि) से कुछ पाने के लिए अध्ययन नहीं करते वरन् उस पर विष्ठा करने के लिए बैठते हैं।

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक संस्कृति और सभ्यता होती है जो उसकी गौरवशाली परम्परा को प्रस्तुत करती है। राम हमारी संस्कृति के एक जाज्वल्यमान दीप हैं जो प्राचीन काल से ही भारतीय जीवन के प्रेरणास्रोत हैं। आज हम अपनी निर्धनता, अज्ञानता, अपनी सभी कमजोरियों का दोष स्वयं को न देकर धर्म को और अपने राष्ट्रनायकों के ऊपर मढ़ देते हैं। अपनी इस असाध्यावस्था में हमारी दृष्टि परमुखापेक्षी हो गई है। स्वयं तो अकर्मण्य बने हुए बैठे रहते हैं तथा अपना मानसिक संताप राष्ट्रपुरुषों पर लांछन लगाकर दूर करते हैं। यह तो 'खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे' कहावत को चरितार्थ करना है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम को अप्रतिष्ठितकर उनके रिक्तस्थान की पूर्ति हम किस से करेंगे? राम को निकालने के बाद हमारे पास क्या बचता है? क्या

राम को विस्थापित करके हम उस गौरव को प्राप्त कर लेंगे जिसकी ओर हमारी लोलुप दृष्टि लगी हुई है। क्या विश्व का तथा हमारा कल्याण हो सकेगा। क्या रोम, मिस्र की प्राचीन गौरवशाली सभ्यता-संस्कृति जो अब समाप्त हो गई वह दूसरों द्वारा आरोपित धर्म-संस्कृति पाकर अपने पूर्वरूप की अपेक्षा आज अधिक उन्नतिशील है?

देश की उन्नति में व्यक्ति और समाज का हाथ होता है और वही राष्ट्र को महान् बनाता है। धर्म तो प्रेरणा देता है। आज हम पश्चिम के भौतिक जीवन से आकर्षित हैं। हम भी उसी को प्राप्त करना चाहते हैं। उनका जीवन, उनका दर्शन, उनका व्यवहार सब अनुकरणीय लगता है। लगता है उसे पाकर हम पूर्ण हो जाएंगे। यह हमारी मानसिक दासता का परिचायक है जो हमें अंग्रेजों से प्राप्त हुआ। वे शासक थे तथा शासक का हर क्रियाकलाप श्रेष्ठ माना जाता रहा है। हमारे समाज के कुछ पिट्ठुओं ने उसी का अनुकरण कर उस समय उनका साथ दिया और आज भी हम पर शासन कर रहे हैं।

हमारा सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन अक्षुण्ण रहा है। विश्व में किसी भी धर्म एवं संस्कृति की परम्परा इतनी पुरानी नहीं है। हमने इतने क्रूर प्रहारों के आगे भी घुटने नहीं टेके।

यूनान और मिस्र बालू की भीत की भांति धराशायी हो गए तथा वे भी जो इसके समकालीन थे। हमारे धर्म एवं दर्शन की संजीवनी शक्ति थी और हमारे इष्ट राम का ही आदर्श था जिसने हममें साहस भरा तथा जीवित रखा।

फिर क्या हम पश्चिम की विचारधारा को, उनके दर्शन को अपनाकर उन्हीं की भांति बन जाएंगे? कदापि नहीं। इसका स्पष्ट उदाहरण अफ्रीका तथा अन्य देश हैं जो आज भी उतने ही पिछड़े हैं जितना कि पहले थे। जो दर्शन तथा सामाजिक स्वतंत्रता, मानववाद की माला जपते हैं वही आज दक्षिण अफ्रीका में अत्याचार कर रहे हैं। दर्शन एवं धर्म मात्र कहने की ही वस्तु नहीं होती परन्तु आचरण की भी होती है। हमारा भी वही हाल है जो उनका हुआ। सब बदलने पर भी व्यक्ति वही रहेंगे। आज स्वयं अपने आदर्शों को गाली देते हैं। कल आरोपित दर्शन को देंगे। माना कि सब बुरा है। पर इसको कौन है बुरा बनाने वाला? स्वयं आप ही हैं। हम लाख कहते फिरते हैं कि ये बुरा है। पर उसे सुधारने का प्रयत्न रत्तीभर भी नहीं करते। राम बुरे हैं उसकी जगह आप राम से श्रेष्ठ आचरण करके दिखाइये, अपनी बुराइयों को त्यागिये। हम आपकी पूजा करेंगे।

हम अपने धर्म एवं संस्कृति पर चलकर पुनः महान् बन सकते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण जापान है जिसका अपना दर्शन एवं संस्कृति है, जहां बुद्ध को

गाली नहीं दी जाती। वे अपने बल पर उन्नतिशील बने तथा हम अपनी भ्रष्ट करतूतों पर पर्दा डालने के लिए राम को शिकार बनाते हैं।

राम मात्र भारत को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व को आदर्श पुरुष के रूप में प्रेरणा देते आए हैं, देते रहेंगे। गांधीजी ने तो रामराज्य का आदर्श रखा। राम-राम कहते-कहते स्वर्ग सिधारे। और आज तक प्रायः सभी प्राच्य एवं पश्चिम के विद्वानों ने राम की महत्ता स्वीकार की है। इसके विपरीत राम के देश में राम को नहीं अपनाना—'घर का जोगी जोगड़ा आन गांव का सिद्ध' उक्ति को चरितार्थ कर रहा है।

विश्व पुरुष श्रीराम के विषय में मेरी क्या हैसियत है जो कुछ कहूं। उनकी महिमा का भारतवर्ष की समस्त भाषाओं में गुणगान हुआ है। प्रत्येक भारतीय भाषा में रामायण लिखी गई है। विश्व की सभी समृद्ध भाषाओं में तुलसी की रामचरितमानस का अनुवाद हुआ है। वाराणसी के मानस मन्दिर में विभिन्न भाषाओं में लिखी गई रामायणें 400 की संख्या में विद्यमान हैं। जिज्ञासु जाकर इन्हें देख सकते हैं।

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।

—मैथिलीशरण गुप्त

× × ×

डॉ. राममनोहर लोहिया कहते हैं देश की प्राण शक्ति का नाम 'राम' है। इसे चैतन्य किये बिना देशोद्धार नहीं हो सकता। अपने इस उद्घोष को साकार करने के लिए उन्होंने चित्रकूट में श्रीराम मेले का सूत्रपात किया। आज तो उसकी गणना भारत के प्रमुख मेलों में होती है।

× × ×

सनातन भारत निर्जीव नहीं है और न उसने अपने अन्तिम रचनात्मक शब्द ही कहे, वह जीवन्त है और उसे अपने लिए तथा मानव जाति के लिए अभी कुछ करना शेष है।

—ऋषि अरविन्द

प्रभुश्री राम पर आक्षेप और निवारण

राम के लिये भद्र शब्द का प्रयोग होता है कृष्ण के लिये कहीं भी कृष्ण भद्र शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम शब्द ही धर्म और ब्रह्म का बोध कराता है। मर्यादा शब्द धर्म का एवं पुरुषोत्तम शब्द ब्रह्म का बोध कराता है।

धर्म हर व्यवहार को मर्यादित करता है। संतुलित करता है ताकि हम ब्रह्म तक पहुँच सके।

सभी अवतारी पुरुष अपने युग की आवश्यकतानुसार अपनी शक्ति को प्रकट करते हैं अतः सभी अवतार अपने आप में पूर्ण हैं। फिर रामचन्द्रजी सूर्यवंशी हैं। सूर्य 12 कलाओं में पूर्ण होता है और भगवान् कृष्ण चन्द्रवंशी हैं वह 16 कलाओं में पूर्ण होता है।

भगवान् राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं तो भगवान् कृष्ण लीला पुरुषोत्तम हैं।

राम के युग में मर्यादाओं की स्थापना की आवश्यकता थी, भगवान् कृष्ण के समय बहुत-सी पुरानी मर्यादाओं को तोड़कर नयी मर्यादाओं की स्थापना की आवश्यकता थी। अतः भगवान् राम मर्यादा पुरुषोत्तम तो भगवान् कृष्ण लीला पुरुषोत्तम।

ये दोनों धाराएं जन्म के साथ ही परिलक्षित होती हैं। भगवान् राम अपने कार्यों के अनुरूप अपना प्रकटन दिन के 12 बजे स्वीकारते हैं और भगवान् कृष्ण रात्रि के 12 बजे प्रकट होते हैं और रात में चोरी से जाकर अपनी पालक माता के पास सो जाते हैं।

भगवान् कृष्ण की प्रथम वाणी ही फूटती है—मैया मैं नहीं मिट्टी खायो।

राम पर एक आरोप शूर्पणखा के नाक-कान काटने का लगाया जाता है। जिस कामातुर नारी द्वारा एक सती साध्वी नारी पर प्राणघातक आक्रमण इसलिये किया गया है कि इस नारी को रास्ते से हटाकर ही तपस्वियों के ब्रह्मचर्य को नष्ट करके अपनी कामवासना की तृप्ति की जा सकेगी।

बाली वध के प्रसंग की आलोचना की जाती है। शिकार करना क्षत्रियों का शास्त्र सम्मत विधान है। बंदर को मृगशाखा कहा जाता है। इस दृष्टि से उनको मारना अनुचित नहीं कहा जा सकता।

बाली आततायी दुष्ट है उसको दण्डित करना क्षत्रिय का धर्म है। अतः बाली वध को अनुचित नहीं कहा जा सकता।

शत्रु की प्रकृति या दुष्ट की प्रकृति के आधार पर दण्ड का विधान करना पड़ता है। हम सब जानते हैं उसको वर प्राप्त था कि उसको सम्मुख युद्ध में कोई पराजित नहीं कर सकता था। ऐसी स्थिति में दुष्ट की दुष्टता को शमित न करके उसे बढ़ने देते क्या यही धर्म होता? दुष्ट और शत्रु का दमन साम-दाम-दण्ड-भेद के द्वारा उसका दमन आवश्यक है। इसलिये श्रीराम मेघनाथ के यज्ञ का विध्वंस कराते हैं।

जो स्वयं अधर्म का आसरा लेता है, उस पर धर्म की नीति नहीं, 'शठये शाठये समाचरेत' की नीति ही लागू होती है, यह उपनिषद् वचन है। इसी आधार पर भगवान् कृष्ण ने भी कर्ण आदि को अधर्म के द्वारा मरवाया। जब कर्ण धर्म की दुहाई देने लगा तब भगवान कृष्ण ने कहा—अभिमन्यु के समय तेरा धर्म कहां गया था....।

बहुत बार अपने पक्ष के योद्धा को भी मरवाना पड़ता है। बाली तो इन्द्र देव का अवतार था जो राम के सहयोग के लिये आया था। त्रिभुवन में रावण का आतंक व्याप्त था, उस आतंक को तोड़ने के लिये तथा अपने पक्ष के सैन्य बंदर, भालुओं के मनोबल को बढ़ाने के लिये बाली वध आवश्यक हो गया। बाली को इसी रूप में राम का सहयोग करना था।

बाली जब घायल हो जाता है रावण के आतंक पर एक करारी चोट लग जाती है। सबको लगने लगा रावण अजेय नहीं है, राम उसका वध करने में समर्थ है। यह कार्य हो जाने के कारण बाली से कहा कि तुम चाहो तो मैं तुम्हें स्वस्थ कर जीवनदान दे सकता हूँ। तब उसे लगा कि मैं जितना कार्य करने आया था, जितना कार्य मेरे से अपेक्षित था वह हो गया है, अतः अब मेरा कार्य पूर्ण हो गया है, ऐसी उसे स्मृति आ गयी। अनुभूति हुई।

फिर राम के सम्मुख मरकर जो सद्गति प्राप्त होगी वह फिर कहाँ सुलभ होगी। अतः दोनों दृष्टियों से अपनी मृत्यु को ही श्रेयष्कर माना।

राम ने रावण का आतंक जो पूरे देश में छाया हुआ था, उस आतंक को वनवास के काल में लंका तक ही सीमित कर दिया था। बाली वध और हनुमान-अंगद को भेजकर लंका में भी उसके आतंक को समाप्त कर दिया।

प्रत्येक युग का अपना धर्म होता है, अपनी मर्यादा होती है। न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य का निर्णय इस प्रकार भी होता था, सत्यवादी को अग्नि नहीं जलाती थी। सत्यवादी के लिये अग्नि शीतल हो जाती थी। यह बात भक्त प्रह्लाद के विषय में पाते हैं। हनुमानजी के विषय में पाते हैं, तो क्या सीता के विषय में सत्य नहीं होगी।

फिर यज्ञ के द्वारा, अग्नि के द्वारा शुद्ध करने का विधान है। चूँकि अनचाहे भी रावण के यहाँ सीता को रहना पड़ा था, अतः शुद्धि संस्कार आवश्यक था।

धोबी के विरोध को गलत जानते हुए भी उसे स्वीकार करते हैं और सीता को निष्कलंक जानते हुए भी उसका परित्याग करते हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि सर्वोच्च पद पर कोई दाग नहीं होना चाहिये। यदि सर्वोच्च पद पर कोई कलंक लग जाय या भ्रष्ट हो जाय तो सारा देश व समाज नष्ट हो जाता है। अतः लोकानुरंजन के लिये सब प्रकार का कष्ट सहना सहर्ष स्वीकार किया। राजा का अपना कोई व्यक्तिगत जीवन नहीं होता है। पति तो वह एक का है, पर राजा तो वह पूरे देश का है, अतः पति से अधिक जिम्मेवारी राजा की है।

राजा को परिवार के प्रति निष्ठुर होना चाहिए नहीं तो परिवार वाले उसे खा जायेंगे।

आपको ध्यान में होगा आडवाणी पर हवाला का आरोप लगा था तब उन्होंने पद त्याग दिया था जब तक पुनः निर्दोषता सिद्ध नहीं हो जाती। आडवाणी पर भी मिथ्या आरोप लगा था।

इसी दृष्टि से सीता का भी रानी के रूप में राजमहल में रहना ठीक नहीं है। उचित नहीं है। जब तक उसकी निर्दोषता प्रमाणित नहीं हो जाती तब तक वह ऋषि की कुटिया में रहे। अतः उसे ऋषि की कुटिया में भेज दिया।

अहल्या पर भी आरोप लगा तो उसका भी सार्वजनिक जीवन समाप्त होकर व्यक्तिगत तप का जीवन आरम्भ होता है। राम जब अहल्या की कुटिया में पहुंच कर उसको पुनः मान्यता देते हैं तो शेष समाज भी उन्हें स्वीकार कर लेता है।

चूँकि इन सब भावों को सीता को बिना बताये करना पड़ा इसलिए रामजी और अधिक दुःखी हुए। इन सब भावों को समझकर सीता राम पर कोई दोषारोपण नहीं करती है, क्योंकि वह भी नहीं चाहती कि मेरे कारण राम के चरित्र पर कोई दाग लगे। इसलिए लक्ष्मण से कहा वे अपने भाव पर, लोकानुरंजन पर दृढ़ रहें, मेरे लिये दुःखी न हों। क्योंकि राम-सीता अभिन्न हैं। राम की आत्मा सीता है, सीता की आत्मा राम है। दोनों की एक-दूसरे के प्रति सम्यक् समझ (Under standing) है। इसलिए हर परिस्थिति में राम के अनुकूल हैं तभी राम आदर्श राज्य

की स्थापना कर पाते हैं, अपना काम पूरा कर पाते हैं। बिना पत्नी की अनुकूलता के यह सम्भव होना कठिन होता। शिवाजी जैसा पराक्रमी, सामर्थ्यशाली राज्य के घर-भेदियों को कड़े अनुशासन से उन्होंने नियंत्रित किया। पर घर के ही भेदियों को नियंत्रित नहीं कर सके। गृहकलह की ज्वाला प्रज्वलित करने वाली यदि स्वयं की ही पत्नी हो, तो क्या गृहस्वामी को सुख प्राप्त होगा?

शायद इसी कारण शिवाजी अल्पायु हुए। पुरुष पराक्रमी है, तेजस्वी है, कुशल योद्धा है, पर उसके पराक्रम और पौरुष के तेज को और प्रखर करने के लिए, उसकी धर्मपत्नी भी अनुकूल चाहिए। शिवाजी अपने शौर्य और धैर्य के कारण, सभी आक्रमणों के समय, पहाड़ की तरह अचल रहे। परंतु अपने ही गृहकलह और घरभेदी के कारण अन्दर ही अन्दर ढहते गये। योद्धा की यह अन्तर्गत आघाडी उसकी गृहलक्ष्मी को ही संभालना चाहिए।

नेपोलियन जैसा पराक्रमी वीर, रणभूमि में अजेय, परन्तु प्रिय पत्नी उसके अनुकूल नहीं होने के कारण, सदैव व्यथित रहा। सेंट हेलेना द्वीप पर उसकी एक पत्नी राजविलास में ही मग्न थी। नेपोलियन के इच्छा प्रकट करने पर भी वह कभी उससे मिलने नहीं आयीं। नेपोलियन ने अपने अन्तिम इच्छापत्र में लिखा था कि 'मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरा हृदय मेरी पत्नी को उपहार के रूप में भेजा जाए।' परन्तु उसने उसके प्रेम की उपेक्षा की। असामान्य वीरों की सफलता उनकी धर्मपत्नी के सहयोग पर ही निर्भर करती है। 'रामायण' श्रीराम के सफल जीवन की गाथा है। उनके जीवन की सफलता में सीता ने सब समय पूरा योगदान किया है अतः राम की सफलता के मूल में सीता का हर स्थिति में साथ है।

यही कारण से तो सीता वाल्मीकि आश्रम में तप कर रही है और रामजी राजभवन में अपने आपको तपा रहे हैं। इसलिए रामजी राजसी भोग, राजसी रहन-सहन त्याग देते हैं। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे से एकरूप, अभिन्न हैं, एक-दूसरे की आत्मा हैं। प्राण हैं, जीवन हैं।

श्रीराम जानते हैं सीता गर्भवती है। बालक को बाद में गुरुकुल में भेजा जायेगा ही तो जन्म से पहले भेज देवें जिससे बालक का निर्माण और भी श्रेष्ठता से होगा। इस प्रसंग में प्रह्लाद का उदाहरण स्मरणीय है। बालक का जन्म भी गुरुकुल में हो और गर्भकाल से ही उसे श्रेष्ठ संस्कार प्राप्त होवें। और हम वास्तव में देखते हैं, सीता के दोनों बालक कितने तेजस्वी होते हैं। गर्भकाल में सीता की इच्छा पुनः ऋषि-मुनियों के दर्शन एवं सत्संग की थी अतः बाल्मीकि आश्रम के निकट छुड़वा देते हैं, वहाँ उसे योग्य आश्रय, मार्गदर्शन आदि सब प्राप्त हो जाय। ऐसे स्थान पर नहीं छुड़वाया जिससे उसे बाघ-भालू या जंगली जानवर खा जाये। जब बालक पेट में होता है, तो पेट से ही उसे श्रेष्ठ संस्कार मिले इसके लिये

हिन्दू शास्त्र परम्परा में बहुत विधि निषेध बताये गये। गर्भकाल में कैसा खान-पान आचार-विचार, व्यवहार होना चाहिये। हमारे यहाँ तो गर्भाधान भी एक संस्कार है, जिसमें किसी पुण्यात्मा-दिव्यात्मा को आह्वान किया जाता है, हमारे आँगन में आकर शिशु क्रीड़ा करें, इसके लिये वेद मंत्र हैं, जिसका भाव है—वह धर्म का पुत्र है, ईश्वर का पुत्र है, काम का पुत्र नहीं। गर्भकाल में काम भाव न उठे इसलिये अभी भी परम्परा है कि प्रसव पति गृह में न होकर मैके में हो। अतः सीता परित्याग एक आदर्श की स्थापना के लिये है—न वह सीता के प्रति अन्याय है और न ही बालकों के प्रति।

शम्बूक वध के सम्बन्ध में इतना कथन पर्याप्त है कि अनेक विद्वानों जैसे डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. देवकीनन्द श्रीवास्तव, डॉ. रामप्रसाद मिश्र की दृष्टि में वाल्मीकि का उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त अंश है क्योंकि वाल्मीकि ऋषि ने अपने रामायण की समाप्ति की फलश्रुति युद्ध कांड (लंकाकांड) की समाप्ति पर लिख दी है। अनेक विद्वानों ने वाल्मीकि ऋषि को शूद्र जाति का माना है। यदि यह सत्य है तो वे तपस्यारत एक शूद्र को राम के द्वारा वध का प्रकरण कैसे लिख सकते थे? वैसे भी यह कथा विश्वसनीय नहीं है। कारण कि राम के पूर्व जीवन से मेल नहीं बैठता। गुह, निषाद, शबरी, कोलकिरात, बन्दर भालू को गले लगाने वाला शम्बूक का वध कैसे कर सकता है? इसलिए तुलसीदासजी ने प्रभु राम के राज्यारोहण के साथ ही राम कथा को पूर्ण विराम दे दिया। उसके पश्चात् की कथा को प्रक्षिप्त मानें।

सुभद्रा

सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु ने गर्भ में ही चक्रव्यूह भेदन का रहस्य जान लिया। माता-पिता के संतानोत्पत्ति के संकल्प में मनोवैज्ञानिक शक्ति है जिसका प्रमाण इतिहास में बार-बार मिलता है। इसलिए पवित्र गृहस्थाश्रम में दम्पती के पवित्र संकल्प से उत्पन्न संतान तथा नाइट क्लबों, व्यभिचार भवनों या कामवासना पूर्ति के भोग विलास के क्षणों से उत्पन्न संतान में देव और दानव का अन्तर अनिवार्य है।

विभीषण की शरणागति के विषय में विचार

क्या विभीषण का राम के पक्ष में आना राष्ट्रद्रोह था या धर्मविवेक?

विभीषण की शरणागति के संदर्भ में राम के चरित्र और रावण के चरित्र दोनों की समीक्षा करनी चाहिए तभी सही फैसला हो सकता है एवं विभीषण का चरित्र भी स्पष्ट होगा।

राम सब समय रावण को संधि का अवसर देते हैं कि सीता को ससम्मान लौटाकर क्षमा याचना कर लो तो हम क्षमा कर देंगे।

दूसरी तरफ रावण है जो अपनी व्यक्तिगत अनुचित इच्छा की पूर्ति के लिए सारी लंका को ही दावं पर लगा देता है, अपनी राक्षस जाति के अस्तित्व को ही मिटा देना चाहता है।

प्रथम से ही विभीषण धार्मिक एवं रामभक्त है। हनुमान उसे प्रेरित करते हैं जिस राम का तुम भजन करते हो, उसी राम की पत्नी को तुम्हारा भाई चोरी और छल से उठा लाया है। विभीषण को उसे अपने धर्म का बोध कराया। गुरु गोविन्द सिंह ने भी इसी तरह बंदा वैरागी को प्रेरित किया था कि जिस हिन्दू धर्म का तप भजन कर रहे हो उसके अस्तित्व पर ही संकट उपस्थित हो गया है।

विभीषण आखिरी दम तक रावण को समझाने का प्रयास करता है—अपना मान-अपमान सब भुलाकर।

विभीषण राम की शक्ति को जानता है और वह समझ जाता है रावण अपने व्यक्तिगत हठ के लिए सारी लंका को युद्ध में झोंक देगा और सर्वनाश करा कर ही मानेगा और यदि रावण जीतता है तो फिर उसके पापाचार पर अंकुश रखने वाला कोई नहीं बचेगा और उसके अत्याचारों का कोई अन्त नहीं होगा। क्योंकि उस समय राम सबसे शक्तिशाली क्षत्रिय राजा थे। यह सीता स्वयंवर के समय ही सिद्ध हो गया था और साथ में धर्मप्रयाण भी हैं। यदि राम पराजित हो जाते हैं तो सत्य धर्म का गला घुट जायेगा। धर्म से लोगों की आस्था ही समाप्त हो जायेगी और सब असत् पथगामी बनेंगे।

तब क्या विभीषण को रावण का मात्र भाई होने के कारण उसे रावण का ही पक्ष लेना चाहिए या युद्ध में उसे तटस्थ हो जाना चाहिए।

यदि विभीषण युद्ध से तटस्थ हो जाता है तो क्या वह धर्म सम्मत होता? नहीं, कभी नहीं। शास्त्र स्पष्ट करते हैं सत्य को जानते हुए भी, जो तटस्थ होते हैं वे भी उतना ही पाप करते हैं क्योंकि अप्रत्यक्ष रूप से पापी के पाप में सहायक ही बनते हैं। फिर पापी को तो अपने अहं या अज्ञान के कारण पाप का इतना बोध नहीं रहता। पर जो ज्ञानी है उसे तो पाप का बोध रहता है अतः तटस्थ होना उस स्थिति में पापी से भी बड़ा अपराध ही माना जायेगा।

स्वजन के आधार पर विभीषण रावण के पाप से आंख मीच लेता, तब तो अर्जुन जो युद्ध से विरत होना चाहता है उसका आधार तो स्वजन मोह ही था। दुर्योधन आदि भले ही चचेर भाई हों, भीष्म सगे दादाजी और उसको चाहने वाले भी थे। वैसे ही द्रोणाचार्य सगे आचार्य, शल्य सगे मामा, कर्ण सगा भाई था। तब कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध में लगा कर सारा वंश समाप्त करवा दिया क्या यह उचित कहा जायेगा?

फिर तो पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। मात्र अपना भाई होने पर सब अपराध क्षमा।

यहां विभीषण के मामले में युधिष्ठिर की यह युक्ति कि दूसरे के आक्रमण पर हम 105 हैं एवं स्वयं के समय 100 और 5 की उक्ति ठीक नहीं बैठती।

फिर लंका भी सांस्कृतिक दृष्टि से भारत राष्ट्र के अन्तर्गत ही आ सकता है। पहले तो लंका भी कुबेर का राज्य ही था। आर्य धर्म ही प्रचलित था। रावण के पिता विश्रवा ऋषि ही थे।

अतः लंका की रक्षा के लिए रावण का नाश आवश्यक था। और इसके लिए विभीषण का राम से सहयोग होने पर लंका की क्षति कम एवं रावण का नाश जल्दी होगा। और यही उद्देश्य लेकर ही राम की शरण में आया था। विभीषण के मंत्रियों के साथ-साथ रावण की मां ने भी यही सलाह दी।

विभीषण ने अपने व्यक्तिगत मान-अपमान की भावना से राम की शरणागति स्वीकार नहीं की वरन् लंका एवं निर्दोष लंकावासी की रक्षा यानी अपनी राष्ट्र रक्षा की भावना से ही राम की शरण में जाता है। और राम ने इसी अनुरूप अपना वचन निभाया।

अतः विभीषण के संदर्भ में 'घर का भेदिया लंका ढाये' कहना नितान्त गलत है। विभीषण धर्म को, सत्य को, सर्वोपरि मानकर ही सत पक्ष राम के साथ है। एक व्यक्ति की मूढ़ता से पूरी राक्षस जाति का, पूरे राष्ट्र का नाश न होवे इसलिए विभीषण सत्य पक्ष राम के साथ है।

प्रभु श्रीराम के अस्तित्व पर विचार

राम और कृष्ण के अस्तित्व पर प्रश्न उठाये जाते हैं कि रामायण और महाभारत मनः कल्पित कथा है, रचना है।

तो अब प्रश्न उठता है क्या वाल्मीकि और वेदव्यासजी भी काल्पनिक थे। वे काल्पनिक नहीं थे। तो उन्होंने जो रचना की अगर वे काल्पनिक रचना करते तो लिखते उसे स्वीकारते जैसे आज के साहित्यकार काल्पनिक रचना करते हैं तो उसे अपने प्राक्कथन में लिख देते हैं। स्पष्ट कर देते हैं वैसे वाल्मीकि और वेदव्यासजी स्पष्ट कर देते।

भारतीय परम्परा में आर्ष प्रचलित दो ही इतिहास ग्रंथ मान्य हैं—एक रामायण व दूसरा महाभारत।

पुराण हमारे इतिहास ग्रंथ हैं। पुराणों में वर्णन के आधार पर ही मिस्र की नदी नील के स्रोत का पता लगा।

रामायण और महाभारत में स्पष्ट रूप से राम एवं कृष्ण के जन्म की कथा, पालन व पोषण, शिक्षण, कहां-कहां गये क्या-क्या कार्य किये इसका स्पष्ट चित्रण है और वह साहित्य परम्परा से हमारे पास निरन्तर चला आ रहा है और वह लोक चित्त लोक मानस में अंकित है और उससे सम्बन्धित सभी उत्सव का दृढ़ता पूर्वक पालन हो रहा है। लोक चित्त स्वयं में एक प्रमाण है।

हमारा साहित्य, हमारी संत या ऋषि परम्परा, उनके आप्त वचन इसके प्रमाण हैं।

उन्होंने जो कार्य किये जहां गये उसकी स्मृति, उससे सम्बन्धित उत्सव, स्मृति चिह्न आज भी अक्षुण्ण है।

वास्तव में रामायण और महाभारत भारत के ये दो ऐसे प्रसिद्ध महाकाव्य हैं, राम और कृष्ण ऐसे दो अवतार पुरुष हैं, इतिहास पुरुष हैं जिसकी छाप पूरे संसार की कला, पुरातत्त्व, इतिहास परम्परा, सभ्यता और संस्कृति पर पड़ी है।

देश और विदेशों में राम के, हनुमान के अगणित मन्दिर है।

कोई कवि या साहित्यकार नहीं जिसने राम पर लेखनी चलाकर अपने को धन्य न किया हो।

तभी तो संविधान में राम-कृष्ण की छवि छपी है।

गांधी अपनी सारी महानता का रहस्य राम मंत्र को मानते हैं और राम राज्य के लिए आजीवन प्रयासरत रहे। उनके प्राण भी राम नाम के साथ छूटे।

तो क्या किसी काल्पनिक पात्र का ऐसा विश्वव्यापी प्रभाव हो सकता है। नास्तिक लोहियाजी भी राम, कृष्ण, शिव को मानते हैं।

अन्तरराष्ट्रीय रामायण मेले की स्थापना की। वे राम को सारे एशिया के ऐक्य का आधार मानते थे। रामायण सिरियल से सारा विश्व प्रभावित था कि ऐसा ऊँचा आदर्श भी हो सकता है।

दो हिन्दू आपस में मिलते हैं तो राम-राम के साथ, विलग होते हैं तो राम-राम के साथ और संसार से विदा लेते हैं तो राम-राम के साथ।

अपने बच्चों के नाम राम-सीता रखने की परम्परा, पुरातत्त्व, स्थापत्य, चित्रकारिता राम-सीता को प्रमाणित करते हैं।

वनवास काल में जहां-जहां राम गये वहां भगवान राम के मन्दिर, स्मृति-चिह्न आज भी बने हुए हैं। लोक चित्त में आज भी वह समादृत हो रहा है, स्वयं लंका में अनेकों राम मन्दिर बने हुए हैं। आश्चर्य है वहां एक भी रावण का मन्दिर नहीं है जहां रावण की पूजा हो रही हो। तो लोक-चित्त स्वयं में एक प्रमाण है।

तो वाल्मीकि, हमारा साहित्य, हमारी परम्परा, हमारा लोक चित्त और देश-विदेश में फैले हुए राम के मन्दिर, उनकी स्मृति से सम्बन्धित चिह्न, स्वयं लंका का साहित्य—ये सब राम के अवतार या अस्तित्व का प्रमाण है। रामसेतु का प्रकटन इन सबको पुष्ट करने वाला प्रमाण है।

रामकथा ने सारे विश्व की यात्रा की है। विश्व वाङ्मय को प्रभावित किया है। होमर का इलियड काव्य रामायण का ही रूपान्तरण है।

अंग्रेजों के पूर्व एवं अंग्रेजों के समय तक भी महाभारत हमारे न्याय के प्रमाण में आधार ग्रंथ के रूप में स्वीकृत था। सुरेन्द्रजी अपने दादाजी के कथन को इस संदर्भ में उद्धृत करते हैं। महाभारत के आधार से कोर्ट अपना निर्णय एवं दण्ड विधान करते थे। अतः रामायण महाभारत को काल्पनिक ग्रंथ कहना राष्ट्रीय अपराध है।

सीता का वनवास और राम तथा प्रजा

राजा का अपना कोई व्यक्तिगत जीवन नहीं होता। उसका सारा जीवन राष्ट्र के प्रति समर्पित है। उसका व्यक्तिगत जीवन परिवार, नाते-रिश्तेदार, मित्र, सुहृद आदि गौण होते हैं। उसकी प्रथम और अन्तिम जिम्मेदारी राष्ट्र के प्रति है। प्रजानुरंजन, प्रजा की भलाई व कल्याण ही उसका एकमात्र व्रत होता है। इसलिये निर्दोष होते हुए भी प्रजानुरंजन के लिये सीता का त्याग करना पड़ा। क्योंकि सर्वोच्च पद पर कोई दाग, कलंक, आरोप नहीं होना चाहिये।

अन्य व्यक्तियों को अपना व्यक्तिगत जीवन होता है परिवार जीवन होता है। उसके मित्र, नाते रिश्तेदार, पारिवारिक व्यक्ति मुख्य होते हैं। परिवार में पत्नी, बच्चों की रक्षा उसका मुख्य कर्तव्य होता है। वहां परिवार की सेवा, सुरक्षा एवं प्रतिष्ठा के लिये अपना सर्वस्व त्याग-बलिदान करना उसका कर्तव्य है। निष्कलंक पत्नी के सम्मान की रक्षा के लिये बड़ा-से-बड़ा त्याग उसका कर्तव्य है।

पर जो राजा के पद पर है उसका व्यक्तिगत जीवन और परिवार जीवन नहीं होता है। उसका पूरा जीवन राष्ट्र के लिये है, प्रजा के लिये है। अतः निष्कलंक सीता को निर्वासन के लिये राम नहीं प्रजा दोषी है, और जवाब प्रजा से ही माँगा जाना चाहिये। ऐसा वाल्मीकि ऋषि लव व कुश को समझाते हैं। उन दोनों को संगीत विद्या में पारंगत करते हैं, सीता माता की निर्दोषता बताते हुए जनता को प्रायश्चित्त कर सीता वापसी की प्रेरणा देने का कार्य लव-कुश को सौंपते हैं। लव व कुश अयोध्यावासियों के बीच रामकथा गा-गाकर सुनाकर उनकी भूल का एहसास कराते हैं, जिससे सीता वापसी का मार्ग प्रशस्त हो सके।

रामायण भारत की आत्मा का महाकाव्य है। रामायण में भारत और भारत में रामायण प्रतिष्ठित है।

—विश्वगुरु रवीन्द्र

राम का वनवास और वशिष्ठजी

श्री रामजी के वनवास और राजा दशरथजी के शरीर त्यागने पर भरतजी और शत्रुघ्नजी को ननिहाल से बुलाया गया। अयोध्या पहुँचकर भरतजी श्रीराम के वनवास और पिताश्री के प्राण त्याग की सारी स्थिति को जानकर वशिष्ठजी के पास गये और उन्हें उलाहना देते हुए कहा, रामजी के वनवास में कहीं-न-कहीं आपका भी हाथ है। वशिष्ठजी के आश्चर्य चकित होने पर भरत ने कहा, महारानी कैकेयी ने क्या वर माँगा। पहला वर भरत का राज्याभिषेक व दूसरा वर श्रीराम का वनवास। पर इसके क्रियान्वयन में क्रम बदल दिया गया। आप इतना तो कर सकते थे कि पहले वर के अनुसार पहले भरत को ननिहाल से बुलाकर भरत का राज्याभिषेक किया जाय फिर राम वनवास जाएं। तो पहले मुझे बुलाया जाना चाहिये था फिर मैं देखता कि राम के राज्याभिषेक को छोड़कर उन्हें कौन वनवास भेजता। तब न राम का वनवास होता न पिताजी को प्राण विसर्जन करना पड़ता और इस दुर्घटना से हम सब बच जाते और न माताओं को विधवा होना पड़ता। इस अनहोनी से आप सबकी रक्षा कर सकते थे।

'**जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिए**'

कभी-कभी शास्त्रीय मान्यताओं को ठीक से समझ नहीं पाने के कारण समाज जीवन में गलत मान्यताएँ प्रचलित हो जाती हैं, उसमें से एक गीत है—

'**जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिए**'

यह कथन उनके लिये है जो अध्यात्म के सर्वोच्च शिखर पर स्थित हैं—ध्यान, धारणा, समाधि में, ब्रह्मानन्द-भजनानन्द में डूबे रहना और शरीर के योगक्षेम को प्रारब्ध के ऊपर भगवान् के ऊपर छोड़े रखना, जैसे—शुकदेव, दत्तात्रेय आदि। ये ऋणत्रय से मुक्त, शास्त्रीय विधि निषेध से परे चले गये। कोई भी कर्तव्य उन्हें व्यापता नहीं है इन पर यह बात चरितार्थ होती है। पर यह जन सामान्य या प्रारम्भिक साधकों के लिये नहीं है। इससे समाज को बड़ा गलत संदेश जाता है—राम गुलाम रखे तो गुलाम बने रहिए, राम गरीब रखे तो गरीब बने रहिए। इसमें तो पुरुषार्थ का कोई अवसर ही नहीं बचता। जब तक हमारे अन्दर कामना है, वासना है, मलिनता है, विकार है, कर्तव्यबोध है, तब तक ऋणत्रय हैं और पुरुषार्थ की भूमिका भी है। इसलिये मा. श्री जुगलजी ने इस पर एक लेख भी लिखा जिसमें वे कहते हैं—

जाहि विधि 'रहे' राम, ताहि विधि रहिए।

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि

जाहि विधि रहे राम ताहि विधि रहिए

आप संभवतः शीर्षक पढ़कर चौंक गए होंगे, क्योंकि हमारे समाज में तो यही उक्ति प्रचलित है—'**जाहि विधि राखे राम, ताहि विधि रहिए**'। इस उक्ति ने हो सकता है प्रयत्नों से हारे किसी व्यक्ति या समाज को जीने का सहारा दिया हो, पर यह हमारे तेजोभंग का कारण भी कम नहीं बनी है। इस उक्ति में परिस्थितियों से थक-हारकर, मन को समझाकर संघर्ष से विरत होने का सहारा तो ढूँढ़ा जा सकता है, पर परिस्थितियों को चुनौती देकर योग्य परिवर्तन होने तक सतत संघर्ष में रत रहने का आह्वान कहाँ है? प्रभु श्रीराम के जीवन का संदेश तो थककर बैठने या आत्ममुग्ध होकर संतोष कर लेने का नहीं रहा है, वह तो दुष्टों का विनाश कर सज्जन शक्ति एवं शाश्वत सनातन धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा होने तक संघर्षरत रहने का रहा है। अतः मेरा अन्तर्मन बार-बार यह सोचता है कि आज मानवीय जीवन मूल्यों में एवं धर्माचरण में प्रतिदिन आती हुई गिरावट से देश एवं समाज को उबारने हेतु देशवासियों को पुनः श्रीराम के चरित्र को अपने जीवन में उतारने का आह्वान देना पड़ेगा और वह आह्वान होगा—'**जाहि विधि रहे राम, ताहि विधि रहिए।**'

इसका अर्थ यह है कि राम जैसे रहे, वैसा जीवन यापन करने का संकल्प जाग्रत् करना होगा यानी सोद्देश्य जीवन, मर्यादापूर्ण जीवन, मूल्याधिष्ठित जीवन एवं उसके लिए आजीवन कष्ट सहते रहने का सहज अभ्यास। तभी इस देश में पुनः राम राज्य लाने का स्वप्न साकार हो सकेगा। जब कैकेयी ने राम को राज तिलक की जगह वनवास देने का वरदान दशरथ से मांग लिया तो राम कैकेयी से कहते हैं—'**नाहमर्थपरो देवि-लोकामावस्तुमुत्सहे**' यानी हे माता! मैं अर्थ का नहीं, लोक का आराधक हूँ। तुलसीदास जी कहते हैं कि राम ने वन में राक्षसों द्वारा ऋषियों को दिए जाने वाले कष्टों को देखकर वन के सामान्य सुखों को भी त्याग दिया एवं हाथ उठाकर '**निसिचर हीन करउँ महि**'....का दृढ़ संकल्प लिया। उस संकल्प की पूर्ति के लिए ही वे स्थान-स्थान पर राक्षसों का सफाया कर मुनियों को अभयदान देते रहे एवं इसी की चरम परिणिति कुलसहित रावण की मृत्यु में हुई। कुछ लोग अज्ञानवश कह देते हैं कि सीता का हरण हुआ अतः राम ने रावण

को मारा। वस्तुतः ऐसा नहीं है, सीताहरण न भी हुआ होता तो भी इस भूभाग को निशाचर-विहीन करने हेतु अन्ततः रावण से निर्णायक युद्ध अनिवार्य था क्योंकि उसी ने सारे देश में असुरों का मकड़जाल बिछा रखा था।

वैसे सीता उद्धार भी राम के लिए केवल अपनी पत्नी का उद्धार नहीं था, यह तो आसुरी शक्ति से प्रपीड़ित स्त्री जाति का उद्धार था, क्योंकि लंका में रावण सहित सभी राक्षसों ने पूरी पृथ्वी भर से सुन्दर स्त्रियों को जोर-जबरदस्ती पकड़ कर अपनी भोग्या बनाने की परम्परा ही स्थापित कर रखी थी। राक्षसी राज्य के अन्त से ही इस पर विराम लगा।

राम चाहते तो वानरराज सुग्रीव या विभीषण की सहायता के बिना भी रावण का संहार कर सकते थे। खर-दूषण को अकेले ही सेना सहित मारकर उन्होंने यह कर दिखाया था। खर-दूषण के बारे में तो स्वयं रावण ने कहा है—**खर दूषन मोहि सम बलवन्ता, तिनहिं को मारइ बिनु भगवन्ता।** (अरण्य-22/2) परन्तु राम इसे व्यक्तिगत नहीं, सामूहिक रूप देना चाहते थे। अतः वानरराज सुग्रीव, हनुमान, अंगद, जामवंत एवं विभीषण सभी को इसकी बड़ाई दी।

कुछ लोग तुलसीदास पर ब्राह्मणों के साथ पक्षपाती होने का आरोप गढ़ते हैं, यदि ऐसा होता तो तुलसी राम का चरित्र ही नहीं उठाते। रावण ब्राह्मण तो था ही, पंडित था, ऋषि था एवं भक्त भी था। परशुराम का भी ऐसा ही उदाहरण है। दोनों का गर्व भंग राम ने (जो क्षत्रिय थे) किया। पथभ्रष्ट ब्रह्मतेज पर क्षात्रतेज का प्राबल्य प्रकट हुआ। इसका एक विपरीत उदाहरण भी है वशिष्ठ एवं विश्वामित्र के बीच संघर्ष का। इसमें क्षात्रतेज पर ब्रह्मतेज की विजय हुई। सारांश यह है कि जो शक्ति लोक कल्याण में सार्थक होती है, वही शाश्वत और सफल होती है। सूत्र है—तेज का सात्त्विक प्रयोग। इसे भली प्रकार समझने की आवश्यकता है। वैसी ही बात नारियों के प्रति प्रभु के दृष्टिकोण की है। राम ने परित्यक्ता अहल्या का उद्धार किया, शबरी की कुटिया पर जाकर उसका मान बढ़ाया पर ताड़का का वध करने में तनिक भी संकोच नहीं किया। शूर्पणखा जो कामातुर होकर कभी लक्ष्मण को तो कभी राम को अपना पति बनाना चाहती थी, को नाक-कान विहीन करने में लक्ष्मण को रोका नहीं। यहाँ भी बात लोककल्याण की ही है।

कुछ लोग राम को ईश्वर नहीं, मानव ही मानना चाहते हैं। ऐसे लोगों के सामने भी यह तो स्पष्ट ही है कि राम के मानवीय गुण देवत्व की दिव्यता से भी आगे बढ़ जाते हैं। राम के अलौकिक गुणों पर थोड़ा दृष्टिपात करें तो सहज ही यह समझ में आयेगा कि वे लोकोत्तर पुत्र, लोकोत्तर बंधु, लोकोत्तर शिष्ट, लोकोत्तर पति एवं लोकोत्तर राजा तो थे ही पर शत्रु के रूप में भी वे लोकोत्तर थे। मृत्यु के उपरान्त रावण एवं उसके परिवार के लोगों के साथ जो व्यवहार राम ने किया, वह

अकल्पनीय है। इसी कारण आदि कवि वाल्मीकि से प्रारम्भ हुआ उनका चरित्र गुण-गान आज भी सबके लिए उतना ही प्रेरक बना हुआ है। इसमें न देश की सीमा है, न समय की और न भाषा की। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने ठीक ही कहा है—

'राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाए सहज संभाव्य है।'

परन्तु युग के संकटों से चुनौती लेने के लिए केवल स्तुतिगान पर्याप्त नहीं है। राम के नाम का महत्त्व निश्चय ही है, पर राम का काज उससे भी बढ़कर है। हम राम के कार्य को समझें, समय की तुला पर उसे तोलें एवं हनुमान जी की तरह यह संकल्प धारण करें एवं अन्य मित्रों से कराएँ—'राम काजु कीन्हें बिनु, मोहि कहाँ बिश्राम।' तुलसी ने राम का सहारा लेकर समाज को जगाया, हम भी आज की चुनौतियों का उनके दिव्य गुणों को अपनाकर, उनके जैसे कष्ट सहने की शक्ति धारण कर आगे बढ़ें तो कोई कठिनाई नहीं होगी।

सामान्यतः हम सभी अपने सुख-साधन हेतु राम की अर्चना करते हैं, लोककल्याण हेतु नहीं। ऐसे स्वार्थी लोगों को उलाहना देते हुए महाकवि गुलाब खंडेलवाल ने लिखा है—

जिनका नाम लिए दुःख भागे
मिला उन्हें तो जीवन भर दुःख ही दुःख आगे-आगे।
छूटा अवध साथ प्रियजन का, शोक अथाह था पिता मरण का,
देख कष्ट मुनियों के मन का, वन के सुख भी त्यागे।
गूंजी ध्वनि जब कीर्तिगान की, फिर चिर दुःख दे गई जानकी
मांग उन्हीं सी शक्ति प्राण की, मन तू सुख क्या मांगे?
मिला उन्हें तो जीवन भर दुःख ही दुःख आगे-आगे।

अर्थात् लोकहित साधक को प्रभु राम जैसी कष्ट सहने की शक्ति की प्रार्थना करनी चाहिए, सुख की प्रार्थना नहीं। हमारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, समाजसेवी सभी को चाहिए कि पहले स्वयं राम के गुणों को अपने जीवन में उतारें एवं तब लोगों में उनका बीजारोपण करें। आज के स्वार्थ केन्द्रित, अर्थ केन्द्रित, भोगवादी एवं व्यक्तिवादी जीवन से उत्पन्न संघर्ष से मुक्ति पाने का दूसरा कोई सहज विकल्प नहीं है। राम-रसायन ही समाज एवं राष्ट्र के शरीर में पुनः अपेक्षित चैतन्य भर सकता है। अतः हम केवल 'सहने' नहीं, राम की तरह 'रहने' का संकल्प लें।

साभार : कर्मयोगी का पथिक जुगलकिशोर जैथलिया अभिनन्दन ग्रंथ

राम का नाम ही नहीं, राम का काम भी

आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री

'परशुराम की प्रतीक्षा' में दिनकर ने भारतीय जनता की भक्तिजनित अकर्मण्यता पर क्षोभ प्रकट करते हुए कहा है, 'दो उन्हें राम तो मात्र नाम वे लेंगी।'[1] वास्तव में यह क्षोभ बहुत पुराना है। भक्ति का आवरण डाल कर तमोगुणी आलस्य बहुत बार सतोगुणी स्थैर्य के रूप में अपने को प्रचारित करता है और इस प्रकार धर्मग्लानि को मिटाने के स्थान पर बढ़ाता है। विष्णुपुराणकार ने इसी मनोवृत्ति की भर्त्सना करते हुए कहा था—

अपहाय निजं कर्म, कृष्णकृष्णेतिवादिनः।
तेहरेर्द्वेषिणः पापाः धर्मार्थजन्म यद्धरेः।।[2]

अर्थात् अपने कर्म को त्याग कर केवल कृष्ण-कृष्ण रटने वाले तो हरि के द्वेषी और पापी हैं क्योंकि हरि का जन्म ही धर्म (की स्थापना) के लिए होता है। सामाजिक कर्तव्य को भक्ति के साथ जोड़ने वाली यह परम्परा मध्यकाल में बहुत दुर्बल हो गयी थी। कुछ अंश तक इसके लिए सामयिक परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी थी पर ऐसा लगता है कि संसार-विमुख होकर वैयक्तिक भावसाधना में निरत रहने की विधि पर आचार्यों द्वारा अधिक जोर दिये जाने के फलस्वरूप भी सामाजिक कर्तव्यों के प्रति अवहेलना बुद्धि दृढ़ हुई थी। 'हरेर्नाम, हरेर्नाम, हरेर्नामैव केवलम्, कलौ नास्त्येव, नास्त्येव, नास्त्येव गतिरन्यथा'[3] अर्थात् कलियुग में हरिनाम को छोड़कर और कोई दूसरी गति है ही नहीं, मध्य युग में यह प्रायः सर्वमान्य सिद्धांत बन गया था। भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठ मानने के कारण[4] बहुत से भावुक भक्त उनका तिरस्कार करने लगे थे। इस एकांगदर्शिता से सामाजिक समग्रता को क्षति पहुँच रही थी। इसी पृष्ठभूमि में तुलसी का उदय हुआ था।

तुलसी ने इस परिस्थिति को पहचाना था। राम का नाम उनका भी सबसे बड़ा संबल था किन्तु वे राम के काम को भी नहीं भूले थे। मध्यकालीन भक्तों में उनके सदृश बहुत कम विचारक थे जिन्होंने राम के नाम और काम दोनों पर जोर दिया हो। इसका सर्वप्रथम कारण उनका यह विश्वास था कि 'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि'[5] जहाँ ज्ञान, योग एवं शांत भाव की साधनाओं में

निर्वैयक्तिकता पर बल दिया जाता है वहीं सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्य भाव की साधनाएँ बहुत अधिक वैयक्तिक हैं। इन दोनों स्थितियों में जगत् को प्रायः विस्मृत कर दिया जाता है। दार्शनिक दृष्टि से जगत् को मिथ्या या सत्य मानना अलग बात है, व्यावहारिक दृष्टि से उसकी उपेक्षा ज्ञानियों और वैयक्तिक साधना पर बल देने वाले भक्तों ने समान रूप से की है। तुलसीदास ने तात्त्विक दृष्टि से जगत् को सत्य माना था या मिथ्या, इस पर विवाद हो सकता है किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि वे जगत् को 'सीय राम मय' मानते थे। फलतः व्यवहार में वे उसकी सेवा करना अपना धर्म समझते थे। इसीलिए उन्होंने श्रीराम से कहलाया था कि मुझे सेवक प्रिय हैं और उनमें भी अनन्यगति सेवक। अपने अनन्य सेवक का लक्षण बताते हुए तुलसी के राम कहते हैं—

सो अनन्य जाके अस मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।[6]

अर्थात् जो दृढ़तापूर्वक इस चराचर जगत् को प्रभु का व्यक्त रूप मानकर इसकी सेवा में रत रहता है वही (श्रीराम का) अनन्य भक्त है। सेव्य के रूप में समस्त व्यक्त जगत् रूपी राम को स्वीकारने का अर्थ ही है कर्मठतापूर्वक 'हेतु-रहित परहित निरत' रहना। यह व्याख्या श्रीराम ने ही की है। जटायु ने तो राम के लिए ही प्राण दिये थे किन्तु प्रभु ने उसकी सराहना करते हुए कहा था, 'परहित बस जिन्ह के मन माहीं, तिंह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।'[7] इसका सीधा-सादा अर्थ यही है कि तुलसी ने श्रीराम के सगुण-साकार-अवतारीरूप को स्वीकार करते हुए भी उन्हें इतिहास और भूगोल से नहीं बांधा है। 'देस, काल, दिसि बिदिसहु माहीं, कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं'[8] कहने वाले तुलसीदास की मान्यता है कि राम की सेवा अर्थात् राम का काम करने का अवसर 'सबहि सुलभ सब दिन, सब देसा'। फिर भी यह सच है कि कोई विरला भाग्यवान ही राम का काम कर पाता है अधिकतर लोग तो राम के काम का बहाना करके रावण का ही काम करते रहते हैं क्योंकि उनके हृदय में तो काम, क्रोध, लोभ, मोह का अंधेरा छाया रहता है। इसीलिए, तुलसी केवल कर्म पर जोर नहीं देते, बाहर-भीतर उजाला करने वाले राम नाम के जप पर भी जोर देते हैं—

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जो चाहसि उजिआर।।[9]

इसका अर्थ यही है कि तुलसीदास के लिए कर्म-चेतना स्वतंत्र न होकर भक्ति का अनिवार्य अंग है। कर्म विपथगामी न हो जाये इसके लिए आवश्यक है कि वह भक्ति द्वारा (जिसका आधार नामजप है)[10] अनुशासित हो और भक्ति नितांत वैयक्तिक भावसाधना (जिसकी विकृति बहुत आसान है) के कारण

निष्क्रिय न हो जाये इसके लिए उसे चराचर जगत् के रूप में अभिव्यक्त प्रभु की सेवा में नियोजित कर दिया जाये, यही तुलसीदास का अभिप्राय ज्ञात होता है।

तुलसी ने रामनाम की अमित महिमा का बार-बार गान किया है, केवल मानस में ही नहीं, अपनी समस्त कृतियों में। मानस के बालकाण्ड में नामवंदना के दोहों में उन्होंने भाव-भरी युक्तियों से सिद्ध किया है कि राम का नाम उनके निर्गुण-सगुण दोनों रूपों से श्रेष्ठ है। प्रभु के ये दोनों रूप 'अगम' हैं किन्तु नाम-जप से दोनों 'सुगम' हो जाते हैं अतः स्पष्ट है कि नाम ने इन दोनों को अपने बलबूते से अपने वश में कर रखा है। सच्चिदानन्द-ब्रह्म तो सभी जीवों के हृदय में विद्यमान हैं, फिर भी जग के सभी जीव दीन-दुःखी हैं। नाम के निरूपण एवं नाम के यत्न से या यों कहें नाम के अर्थ पर मनन करते हुए उसके निरंतर जप से अंतःस्थित ब्रह्म प्रत्यक्ष होकर जीव के दुःख-कष्ट दूर कर उसे उसी प्रकार परमानंदमय बना देते हैं जिस प्रकार रत्न से उसका मूल्य प्रकट होकर व्यक्ति के अभावों को दूर कर उसे इच्छित वस्तुएँ प्रदान करने में समर्थ है। प्रभु श्रीराम ने अवतार ग्रहण कर ताड़का, खरदूषण, कुंभकर्ण, रावण आदि कुछ निशाचरों का वध किया और अहल्या, शबरी, गीध, सुग्रीव, विभीषण आदि कुछ भक्तों को निवाजा किन्तु उनके नाम ने तो कलि के समस्त कलुषों को नष्ट कर असंख्य भक्तों को निवाजा है। घोर कलिकाल में तो राम का नाम ही एकमात्र कल्पवृक्ष है। अतः तुलसीदास का निष्कर्ष है—

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू।
राम नाम अवलंबन एकू।।[11]

तुलसी ने रामनाम की ओट लेते समय विनयपूर्वक यह कहकर कि कलि में कर्म, भक्ति और विवेक (ज्ञान) रह ही नहीं जाते अतः एकमात्र राम का नाम ही अवलंब है, उन साधनों का न तिरस्कार किया है, न निषेध। वे जानते हैं कि जैसे भूमि में ही सब बीज अंकुरित हो सकते हैं, आकाश में ही सब नक्षत्रों का निवास है वैसे ही राम नाम समस्त धर्मों का आकर है—

जथा भूमि सब बीज मै, नखत निवास अकास।
रामनाम सब धरम मै जानत तुलसीदास।।[12]

अतः वे निश्चिंत हैं कि रामनाम ही जापक के अंतःकरण में समयोचित आवश्यक धर्मों की प्रेरणा देता रहेगा।

इसमें संदेह नहीं कि श्रद्धासहित नामजप करते रहने वाले भक्त के मन में उस मनोवैज्ञानिक रक्षाकवच के प्रभाव से अद्भुत सात्त्विक गुणों का उत्कर्ष होता है और वह क्रमशः नामी के गुण, कर्म, शील, स्वभाव की ओर आकृष्ट होता जाता

है, जिसके फलस्वरूप वह पहले से अच्छा मनुष्य बनता है। फिर भी रामनाम की इस महिमा को आधुनिक विचारक अपने-अपने संस्कारों के अनुरूप स्वीकार या अस्वीकार कर सकते हैं। प्रश्न अभी उसकी सत्यता या असत्यता का नहीं है, वह अलग विचार्य विषय हो सकता है। अभी प्रश्न तो यह है कि मध्यकाल के अन्य संतों-भक्तों की तरह नाम-महिमा का गान करने के बाद तुलसी भी क्या उन्हीं की तरह केवल निर्वैयक्तिक या अतिशय वैयक्तिक साधनाओं में लीन हो गये? रामनाम नींव सही, उस पर उन्होंने अपनी साधना का भवन कैसा उठाया? यहीं अपनी समाजोन्मुखी वैयक्तिक साधना के कारण तुलसी अन्य संतों, भक्तों से पृथक् हो जाते हैं। उसका एक प्रमाण यह भी है कि उन्होंने राम के नाम पर जितना बल दिया है, राम के काम पर भी उतना ही बल दिया है। उनके आदर्श भक्त चरित्र एकांत में साधना ही नहीं करते, राम का काम सिद्ध हो, उसके साधन भी बनते हैं।

तुलसी ने राम के काम पर कितना जोर दिया है, यह इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जायेगा। निषादराज को जब यह लगता है कि भरत संभवतः श्रीराम पर आक्रमण करने की योजना बनाकर चित्रकूट जा रहे हैं तब वे राम के काम आने की भावना से भरत से युद्ध कर मृत्यु तक का वरण करने के लिए तैयार होकर कह उठते हैं, 'समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा, रामकाजु छनभंगु सरीरा।'[13] सुग्रीव सीता की खोज के लिए वानरों को भेजते समय 'रामकाजु अरु मोर निहोरा'[14] कह कर उत्साहित करते हैं। किसी भी सत्कार्य के लिए दूसरे को प्रवृत्त करते समय हिन्दी भाषी जन इस कथन को आज लोकोक्ति की तरह व्यवहृत करते हैं। श्रीराम के कार्य के लिए शरीर-त्याग करने वाले जन तुलसी की दृष्टि में अनन्य रूप से धन्य, बड़भागी और हरिपुर के अधिकारी हैं, तभी उन्होंने अंगद से कहलवाया था, 'कह अंगद बिचारी मन माहीं, धन्य जटायू सम कोउ नाहीं। राम काज कारन तनु त्यागी, हरिपुर गयउ परम बड़भागी।[15] हनुमान को सागर लांघने के लिए अभिप्रेरित करते हुए जामवंत ने कहा था, 'राम काज लगि तव अवतारा।'[16] प्रभु का कार्य संपन्न किये बिना सच्चे प्रभुभक्त विश्राम कैसे कर सकते हैं? हनुमान की यह उक्ति उनकी भावना की निश्छल अभिव्यक्ति है, 'राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम।'[17] राम का कार्य जिससे सधे, भक्त वही करता है, व्यक्तिगत मान-अपमान का विचार उसे नहीं रहता। हनुमान मेघनाद के हाथों बंदी बनकर रावण की सभा में इसीलिए उपस्थित हुए थे कि शायद उनके समझाने से रावण को सद्बुद्धि आ जाये। उन्होंने द्विधाहीन शब्दों में कहा था, 'मोहि न कछु बाँधे कर लाजा, कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा।'[18] कार्य सिद्ध होने पर भक्त उसका श्रेय स्वयं नहीं लेता, प्रभु की कृपा को देता है और साधन बन पाने के कारण अपने जन्म को सफल मानता है। उसकी मान्यता है, 'प्रभु की कृपा भयउ सबु काजू, जन्म हमार सुफल भा आजू।'[19] राम

के काम आ जाना ही भक्त के जीवन की चरितार्थता है, इसे तुलसी ने लक्ष्मण को शक्तिबाण लगने के प्रसंग के माध्यम से गीतावली में बहुत खूबी से उभारा है। हनुमान से लक्ष्मण के घायल होने का संवाद सुनकर सुमित्रा माता की जो मनःस्थिति हुई उसे तुलसी ने इन शब्दों में अंकित किया है—

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामिकाज संग्राम सुभट सों लोहे ललकारि लरे हैं।
सुवन सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति-भगति बरे हैं।
छिन-छिन गात सुखात छिनहि छिन हुलसत होत हरे हैं।।[20]

स्वामी राम के लिए प्रतिपक्षी सुभट से संग्राम में ललकार कर भिड़ने और लोहा लेने के कारण लक्ष्मण गंभीर रूप से घायल हो गये हैं, यह सुनकर सुमित्रा माता को शोक और संतोष दोनों हुए। पुत्र मुमूर्षु है, जब यह विचार मन में आता तो उनका शरीर सूख जाता किन्तु जब उनके मन में यह भाव आता कि प्राणों को संकट में डालकर आज लक्ष्मण राम की भक्ति में खरा सिद्ध हुआ तो उनका शरीर उल्लसित हो हरा हो उठता। इसी पद में तुलसी ने सुमित्रा माता से शत्रुघ्न को यह आज्ञा दिलायी है कि अब वे जाकर लक्ष्मण का स्थान लें। सुमित्रा माता के दिव्य चरित्र का किंचित् आभास दे पाने के कारण यह पद तो महिम्न है ही, इस दृष्टि से भी मैं इसका महत्त्व मानता हूँ कि इससे यह बिल्कुल साफ हो जाता है कि लक्ष्मण की तरह श्रीराम के कार्य के लिए प्राणों को संकट में डालनेवालों के लिए ही यह कहा जा सकता है कि वे 'रघुपति-भगति बरे हैं।'

प्रश्न उठ सकता है कि मानस के अनुसार क्या है राम का काम और आज का मनुष्य उसे कैसे संपन्न कर सकता है? यह स्मरण रखना चाहिए कि मानस जीवन के प्रति एक विशिष्ट मूलभूत दृष्टि निरूपित करने वाला काव्यग्रंथ है, किसी सरकार या राजनीतिक दल के कार्यक्रम को शब्दबद्ध करने वाला दस्तावेज नहीं। कार्यक्रम बदली हुई परिस्थितियों में बदले जा सकते हैं या पुराने पड़ जा सकते हैं। मानस की दृष्टि धर्मपरायण (अर्थात् कर्तव्यपरायण) मर्यादावादी (अर्थात् सामाजिक चेतना-संपन्न) आस्तिक (अर्थात् सत्चित् और आनंद के चरम मूल्यों के प्रति आस्थायुक्त) दास्य भाव के भक्त (अर्थात् चराचर जगत् रूपी प्रभु की परम प्रेमपूर्वक सेवा करने वाले अनन्य सेवक) की दृष्टि है, जिसका लक्ष्य है ऐसे विषमता रहित समाज की सृष्टि करना जिसमें सब सुंदर हों, सब नीरोग हों, सब निर्दंभ और धर्मरत हों, चतुर और गुणी हों, गुणज्ञ और पंडित हों, ज्ञानी और कृतज्ञ हों, जिसमें कोई भी दरिद्र-दुःखी दीन न हो; अबुध, लक्षणहीन और कपटी न हो। इसीलिए यह मानते हुए कि राम के जन्म के अनेकानेक हेतु हो सकते हैं। तुलसी ने गीतोक्त हेतुओं को दुहराते हुए कहा है कि जब-जब धर्म की हानि होती

है, अभिमानी, अधम, असुर अवर्णनीय अनीति करने लगते हैं; विप्र, धेनु, देवता और धरती को कष्ट देने लगते हैं, तब-तब प्रभु विविध शरीर धारण कर सज्जनों की पीड़ा हरते हैं, असुरों को मारकर देवताओं और श्रुतियों की मर्यादा की रक्षा करते हैं। यह ठीक है कि वैयक्तिक साधना पर बल देने वाले आचार्यों की यह स्थापना भी उन्हें स्वीकार है कि भक्तों के साथ लीला करने के लिए उन्हें सुख देने के लिए प्रभु अवतार ग्रहण करते हैं पर सामाजिक मंगल विधान को भी वे अवतार के प्रमुख कारणों में से एक मानते हैं। इसीलिए निशाचरों द्वारा भक्षित ऋषियों की अस्थियों का समूह देखकर करुणार्द्र हो उनके राम भुजा उठाकर अपना यह वज्र संकल्प घोषित करते हैं कि मैं पृथ्वी को निशाचर विहीन कर दूंगा, 'निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।[21] इस संदर्भ में यह भी स्मरणीय है कि निशाचर से तुलसी का अभिप्राय काल्पनिक योनिविशेष से न होकर समाज के अत्याचारी व्यक्तियों से था। तुलसी ने बहुत स्पष्ट शब्दों में लिखा है—

बरनि न जाई अनीति, घोर निशाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहि कवन मिति।।

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा।
जे लम्पट पर धन पर दारा।।
मानहिं मातु पिता नहिं देवा।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।।
जिनके यह आचरन भवानी।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी।।[22]

ऐसे निशाचरी अन्याय का प्रतिरोध कर रामराज्य (सामाजिक न्याय पर आधारित राज्य) की स्थापना के कार्य से जो जुड़ता है वह किसी भी देश या किसी भी काल में क्यों न हो, राम का काम करता है। राम का काम केवल ध्वंस-मूलक नहीं है, इसे बराबर याद रखना चाहिए। अन्याय के विध्वंस के साथ-साथ व्यक्ति और समाज दोनों के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक स्तरों पर उन्नयन का कार्य भी राम का काम है। मेघनाद से युद्ध करते हुए लक्ष्मण भी राम का काम कर रहे थे और अयोध्या में बैठे न्याययुक्त राज्य संचालन कर भरत भी राम का ही काम कर रहे थे। कभी-कभी मन में यह भावना जागती है कि लंका के मोर्चे पर लड़ने वाले ही राम के सच्चे सेवक थे। औरों की बात तो जाने दीजिए, लक्ष्मण के घायल होने का समाचार पाकर स्वयं भरत ने यह परिताप व्यक्त किया था, 'अहह दैव मैं कत जग जायऊँ, प्रभु के एकहु काज न आयउँ,[23] इस भावपूर्ण उक्ति का यह अर्थ नहीं है कि भरत प्रभु के किसी काम नहीं आये थे। यह तो प्रभु के अधिकाधिक काम में आने की लालसा की अभिव्यक्ति मात्र है। कुछ लोग अपने भोलेपन के

कारण पूछ बैठते हैं कि भरत के मन में यदि इतना ही परिताप था तो वे तत्काल युद्ध में भाग लेने के लिए लंका चले क्यों नहीं गये? वे भरत रघुवर के 'अगम सनेह' को नहीं जानने के कारण ही ऐसा कहते हैं। 'सबतें सेवक धरमु कठोरा'[24] माननेवाले भरत उस समय भी 'अग्यासम न सुसाहिब सेवा'[25] के सिद्धांत का पालन करने के कारण ही अयोध्या में अपने कर्तव्य पर अडिग रहे। तुलसीदास ने गीतावली में इस प्रसंग में भरत के अंतर्द्वंद्व का मार्मिक चित्रण इस प्रकार किया है—

आयसु इतहि स्वामि-संकट उथ, परत न कछू कियो है।
तुलसीदास बिहर्‌यो अकास सो कैसे के जात सियो है।।[26]

भरत ऊहापोह में पड़े सोच रहे हैं कि इधर स्वामी की आज्ञा है 14 वर्षों तक अयोध्या में रहकर राज्य संचालन करने की, उधर स्वयं स्वामी संकटग्रस्त हैं, कुछ करते नहीं बनता, मानो आकाश फट गया हो, वह कैसे सीया जाये! फिर भी; अपनी भावनाओं पर पत्थर रखकर भी वे आज्ञापालन में ही रत रहते हैं, युद्ध के मोर्चे पर नहीं चढ़ दौड़ते। उनके इस सूक्ष्म कर्तव्य-ज्ञान को समझकर ही हनुमान की यह दशा हो गयी थी, 'धनि भरत! धनि भरत! करत भयो मगन मौन रहयो मन अनुराग रयो है।'[27] भरत अपने इस आचरण से यही दरसाते हैं कि महत्कार्य की सिद्धि उस कार्य में रत व्यक्तियों द्वारा उसके बड़े-छोटे, आकर्षक-अनाकर्षक सभी अंगों को महत्त्व देकर गुरुजनों द्वारा प्रदत्त, सहज प्राप्त या स्वयं स्वीकृत कार्यांश को अनुशासनपूर्वक करते रहने से ही हो सकती है। अतः पताका के दंड की भांति स्वयं प्रसिद्धिपराङ्मुख रहकर भी अपने कर्तव्य का पालन करते रहना राम के सेवकों का सहज लक्षण होना चाहिए। अग्रिम मोर्चे पर रहकर यश प्राप्त करने की दुर्बलता उनमें नहीं होनी चाहिए।

फिर सच बात तो यह है कि मोर्चा कहाँ नहीं है! हर व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्र में काम करते समय मोर्चे पर ही तो खड़ा है। यहाँ तक कि हर एक के मन में भी राम-रावण युद्ध चल रहा है। यदि व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह का शिकार होकर विषय-वासना की तृप्ति को ही अपना परम ध्येय मान बैठता है तो मुंह से वह चाहे कुछ भी कहे, वास्तव में वह रावण के पक्ष में लड़ता है। तुलसीदास ने प्रत्येक व्यक्ति के वपुष ब्रह्माण्ड में चलनेवाले राम-रावण युद्ध का चित्रण करते हुए स्पष्ट कहा है, 'मोह दसमौलि, तदभ्रांत अहंकार, पाकारिजित काम विश्रामहारी। लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध पापिष्ठ, बिबुधांतकारी।।[28] अपना मोह (अज्ञान) ही रावण है, अहंकार ही कुंभकर्ण है, काम ही इंद्रजेता मेघनाद है, लोभ, मत्सर और क्रोध ही रावण के सेनानायक अतिकाय, महोदर और बिबुधांतक हैं। इसी तरह उसी पद में आगे कहा गया है कि यम-नियम आदि ही देवता हैं, मोक्ष के साधन ही राम की सेना के भालू-बंदर हैं, ज्ञान ही सुग्रीव हैं, वैराग्य ही हनुमान

हैं। मोहग्रस्त व्यक्ति जब अपने भीतर के मोर्चे पर ही हार जाता है तब वह राम का काम कैसे कर सकता है। राम का काम तो अपने सद्गुणों को जगाकर अपने कर्तव्य कर्म में सेवा भाव से रत रहना ही है। अपने मोर्चे पर सफलता पाने वाले को प्रभु जो काम उचित समझेंगे, सौंपते चले जाएंगे। लक्ष्मण को भक्तियोग का उपदेश देते समय प्रभु ने उसका प्रथम साधन ही इसी भाव को बताया था। 'प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती, निज-निज धरम-निरत स्रुति रीती।'[29] अपनी स्वस्थ परम्परा के प्रति श्रद्धावान् रहकर जो व्यक्ति अपना कर्तव्य कर्म करता रहता है, उसी के मन में विषयों के प्रति विराग होता है और तभी श्रीराम के धर्म के प्रति अनुराग संभव हो सकता है। स्पष्ट है कि तुलसीदास नामजप के प्रति श्रद्धालु होते हुए भी निष्क्रियता के नहीं, कर्म को अपने में समेट लेनेवाली भक्ति के प्रचारक थे। तभी उन्होंने जंगमतीर्थराज संत समाज के संगम में यदि राम-भक्ति को गंगा और ब्रह्मविचार को सरस्वती कहा था तो विधिनिषेधमय कर्म की कथा को यमुना बताकर उसे ही कलिकाल का मल दूर करने में समर्थ बताया था।[30] इसी प्रकार 'सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग'[31] कहकर तुलसीदास ने गृहस्थों को तो अनिवार्यतः कर्म करते रहने का अर्थात् श्रीराम के अनुकूल कर्म करते रहने का निर्देश दिया है।

तुलसी के उपास्य श्रीराम स्वयं सैकड़ों संकट झेलकर भी अपने कठिन कर्तव्य कर्म का निर्वाह करते रहे। तुलसीदास ने बहुत उत्साह के साथ उनके दिव्य कर्मों का—मर्यादापूर्ण चरित का गुणगान किया है और बार-बार उनकी इस महिमा की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। राजतिलक के बाद वंदना करते हुए चारों वेदों के माध्यम से तुलसी ने दंडकारण्य के कंटकों से छिदे श्रीराम के चरण-युगल का भजन करने की प्रेरणा दी है–

ध्वज, कुलिस, अंकुस, कंजजुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद, मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे।[32]

श्रीराम के चरण अपने कर्तव्य कर्म की पूर्ति में काँटों से छिदें और उनके भक्त निष्क्रिय रहें, यह कैसे संभव है। कर्मरत उपास्य की यह बाँकी छवि भक्तों को भी राम के काम के लिए केवल पैरों में नहीं, रोम-रोम में काँटे छिद जायें तो भी कर्तव्य पथ पर बढ़ते जाने के लिए अभिप्रेरित करती रहेगी। इसी स्तुति में वेदों ने यदि एक ओर 'जपि नाम तव बिन श्रम तरहिं भवनाथ सो समरामहे' कहकर नामजप के महत्त्व को स्वीकारा है तो 'मन, वचन, कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागही' कहकर मन-वाणी और कर्म की एकता एवं निर्विकारता पर भी जोर दिया है। तुलसीदास ने यदि विनयपत्रिका में कहा है—

प्रिय रामनाम तें जाहि न रामो।
ताको भलो कठिन कलिकालहुँ आदि मध्य परिनामो।[33]

तो गीतावली में यह भी कहा है–

मुद मंगल मय संत समाजू, जो जग जंगम तीरथ राजू।
राम भक्ति जहँ सुरसरिधारा, सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा।
विधिनिषेधमय कलिमल हरनी, करम कथा रविनंदनि बरनी।।

मानस 1/2/7-9

नित नये मंगल मोद अवध सब, सब बिधि लोग सुखारे।
तुलसी तिन्ह सम तेउ जिन्हके प्रभुतें प्रभु-चरित पियारे।[34]

एक ओर राम से भी अधिक प्रिय राम का नाम हो, दूसरी तरफ प्रभु से भी अधिक प्रिय प्रभु चरित हो तभी भक्त की भावना में पूर्णता आती है। राम नाम जपते हुए राम के चरित्र से प्रेरणा प्राप्त कर राम के काम में जुटे हुए भक्तों का निर्माण करना ही तुलसी का उद्देश्य है। इसीलिए उनका संदेश है—

राम सुमिरि साहसु करिय मानिय हियै न हारि।[35]

संदर्भ संकेत

1. परशुराम की प्रतीक्षा (प्र.सं.) पृ. 24
2. लो. तिलक कृत गीता रहस्य के दशम मुद्रण के पृ. 525 पर उद्धृत
3. देवर्षि नारद द्वारा कथित एवं चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित
4. सातुकर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा।
   ——नारदीय भक्ति-सूत्र, सं. 25
5. मानस 7।119 क
6. वही 4।3
7. वही 3।31।9
8. मानस 1।185।6
9. वही 1।21
10. वही 1।22।6
11. मानस 1।27।7
12. दोहावली 29
13. मानस 2।190।3
14. वही 4।22।6
15. वही 4।27।7-8
16. वही 4।30।6
17. वही 5।1
18. वही 5।21।6
19. वही 5।30।4
20. गीतावली 6।13।1-4
21. मानस 3।9
22. वही 1।183-184।1-3
23. मानस 6।60।3
24. वही 2।203।7
25. वही 2।30।4
26. गीतावली 6।10।7-8
27. वही 6।11।8
28. विनय पत्रिका 57।7-8
29. मानस 3।16।6
30. मानस 1।2।7-9
31. मानस 2।172
32. मानस 6।13।4।3-4
33. विनय पत्रिका 228।12
34. गीतावली 1।44।9-10
35. रामाज्ञा प्रश्न 5।1।3

साभार :

विष्णुकान्त शास्त्री, अमृत महोत्सव अभिनन्दन ग्रंथ से

श्रीराम-तत्त्व

रामाय रामभद्राय राम चन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः।।

गीता में भगवान् कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।4.6।।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।4.7।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।4.8।।

वह परब्रह्म श्रीकृष्ण रूप में अवतरित होकर गीता में यह घोषणा करते हैं कि—

'मैं अजन्मा, अव्यय और ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सम्पूर्ण भूतों का नियमन करने वाला ईश्वर भी हूँ, तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका माया को वशीभूत करके अपनी लीला से शरीर धारण करता हुआ भासित होता हूँ।।4.6।।

जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब ही माया से अपने स्वरूप को रचता हूँ।।4.7।।

सत् मार्ग में स्थित सज्जनों की रक्षा करने के लिये, पाप कर्म करने वाले दुष्टों का नाश करने के लिये और धर्म की अच्छी प्रकार स्थापना करने के लिये मैं प्रत्येक युग में प्रकट हुआ करता हूँ।।4.8।।

वही परब्रह्म राम रूप से अवतरित हुए थे। गीता के दशवें अध्याय में अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए भगवान् कहते हैं—'रामः शस्त्रभृतामहम्'—शस्त्रधारियों में मैं दशरथ पुत्र राम हूँ।

वह परब्रह्म जो कि देश, काल, वस्तु-परिच्छेद से रहित है, जिसमें सजातीय, विजातीय व स्वगत भेद नहीं है, जो नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्-चित्-आनन्द-घन का अद्वैत स्वरूप है, अपनी अनिर्वचनीय शक्ति का प्रयोग करके, अपने निर्गुण, निराकार स्वरूप से च्युत हुए बिना ही सगुण-निराकार, सगुण-साकार रूप में भासित होता है।

वही जीव-जगत्-ईश्वर रूप को धारण करता है, वह काल से परे होते हुए भी काल-विशेष में प्रकट होता है, वह निर्गुण-निष्क्रिय होता हुआ भी अवतार लेकर लीला करता है।

वह परब्रह्म अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र रूप से त्रेतायुग में प्रकट हुए थे। श्रीकृष्ण के लीला संहरण के पश्चात् कलियुग प्रारम्भ हुआ। कलियुग के 5,104 वर्ष बीते हैं। इसके पूर्व का द्वापर युग 8 लाख 64 हजार वर्ष का बीता। त्रेतायुग का काल-मान 12 लाख 96 हजार वर्ष का है। इसी त्रेतायुग में रामावतार हुआ था।

अभी कुछ समय पूर्व अमेरिका की स्पेस-रिसर्च की संस्था 'नासा' ने उपग्रह द्वारा भारत और श्रीलंका के बीच एक पुल का पता लगाया। उन्होंने उसका चित्र भी लिया, उनके अनुसार यह पुल मानव-निर्मित है और लगभग 20 लाख वर्ष पुराना है। वाल्मीकीय रामायण, श्रीमद्भागवत व अन्य पुराणों के अनुसार भी रामावतार लगभग बीस लाख वर्ष पूर्व हुआ था।

श्रीराम के जीवन का प्राचीनतम व प्रामाणिक विवरण महर्षि वाल्मीकि-कृत रामायण में उपलब्ध है। इस कृति के बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में यह प्रसंग है कि एक बार वाल्मीकि ने देवर्षि नारदजी से पूछा कि इस समय संसार में गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ कौन है? सदाचार से युक्त, समस्त प्राणियों का हित साधक, विद्वान्, सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन पुरुष कौन है?

मन पर अधिकार रखने वाला, क्रोध को जीतने वाला, कान्तिमान् और किसी की भी निन्दा नहीं करने वाला कौन है? तथा संग्राम में कुपित होने पर किससे देवता भी डरते हैं?

महर्षि वाल्मीकि के इस वचन को सुनकर तीनों लोकों का ज्ञान रखने वाले देवर्षि नारदजी ने कहा—

'हे मुने! इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए एक ऐसे पुरुष हैं जो लोगों में राम नाम से विख्यात हैं, वे ही मनोजयी, महाबलवान, कान्तिमान, धैर्यवान और जितेन्द्रिय हैं।

वे बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, वक्ता, शोभायमान तथा शत्रु संहारक हैं। वे आजानुबाहु हैं, उनके कन्धे विशाल हैं, ग्रीवा शंख सदृश है, ललाट भव्य है, नेत्र कमल जैसे हैं, उनकी कमनीय कान्ति नीलमणि जैसी है, वे दिव्य शुभ लक्षणों से सम्पन्न हैं।

वे धर्म के ज्ञाता, सत्य-प्रतिज्ञ, जीवों के तथा धर्म के रक्षक हैं। वे अखिल शास्त्रों के ज्ञाता, समस्त लोकों के प्रिय, गम्भीरता में समुद्र और धैर्य में हिमालय के समान हैं।

वे क्रोध में कालाग्नि के समान, क्षमा में पृथ्वी के सदृश, त्याग में कुबेर और सत्य में द्वितीय धर्मराज हैं।'

इसके पश्चात् नारदजी ने वाल्मीकि को संक्षेप में राम के वनवास, सीताहरण, रावण-वध व राज्याभिषेक की घटनाएँ सुनायीं। नारदजी के वहाँ से पधारने के कुछ समय पश्चात् वाल्मीकि ने तमसा नदी के तट पर क्रौंच पक्षी के एक जोड़े को विहार करते हुए देखा। उसी समय एक निषाद ने नर क्रौंच को तीर से बेध डाला। अपने पति की हत्या हुई देखकर भार्या क्रौंची करुणाजनक स्वर में चीत्कार कर उठी। इस करुण दृश्य को देखकर सहसा ही वाल्मीकि के हृदय से वाणी निकली।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंच मिथुनादेक-मवधीः काम-मोहितम्।।2.15।।

'हे व्याध! तूने प्रेमपाश में मग्न-मोहित इस पक्षी युगल को छिन्न-भिन्न कर डाला। इसलिये तुझे जीवन में कभी प्रतिष्ठा न मिले। तेरी अपकीर्ति ही हो'—यह श्लोक निरन्तर वाल्मीकि के मन में गूँजता रहा।

इसके पश्चात् साक्षात् ब्रह्माजी आश्रम में आए और उन्होंने वाल्मीकि को रामचरित पर महाकाव्य लिखने का आदेश दिया।

रामायण राम की वाङ्मयी मूर्ति है। रामायण विश्व का आदि महाकाव्य है। यह समग्र भारत का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसमें भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम जीवनमूल्यों का प्रतिपादन हुआ है। रामायण में इस सनातन मानवीय सत्य का प्रतिपादन हुआ है कि भद्र शक्तियों की अन्ततोगत्वा आसुरी शक्तियों पर विजय होती है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है—'सम्पूर्ण रामायण विशाल फलक पर चलने वाली एक गृह-कथा है।' संस्कृति का आधार कुटुम्ब होता है। रामायण काल में चार संस्कृतियाँ थीं—असुर संस्कृति, वानर संस्कृति, भील-शबर संस्कृति, आर्य संस्कृति। राम ने अपने परम उदार चरित्र में इन चारों संस्कृतियों को निमज्जित कर पावन बना दिया। और इससे भी आगे बढ़कर उन्होंने वृक्ष, पर्वत, नदी, पशु-पक्षी सभी से एक आत्मीय सम्बन्ध स्थापित किया। रामायण में विश्व बन्धुत्व की प्रतिष्ठा हुई है।

रामायण काल के पूर्व आर्य-संस्कृति हिमालय और विन्ध्य पर्वत के बीच में ही सीमित थी। राम ने इसे आसेतु हिमाचल विस्तृत किया। वाल्मीकि ने रामायण में राम का राष्ट्र-पुरुष, संस्कृति-पुरुष, महामानव पुरुषोत्तम के रूप में यशोगान किया है। लाखों वर्षों के व्यतीत हो जाने पर भी रामकथा आज भी जन-जन के हृदय को स्पर्श करती है, आन्दोलित करती है।

वाल्मीकीय रामायण के पश्चात् भारत की व विश्व की अनेकों भाषाओं में रामकथा का यशोगान हुआ है।

मारीशस, फिजी, गिआना, श्रीलंका, म्यांमार, थाई देश, इण्डोनेशिया, कम्बुज, चम्पा, चीन, तिब्बत, जापान, ईरान, अरब, मध्यपूर्व अफ्रीका तक रामकथा की महिमा फैली है। यूनानी महाकाव्य इलियड तो रामायण का ही रूपान्तर मात्र है। कबीर ने निर्गुण राम को गाया तो दशरथी राम को लेकर तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना द्वारा सांस्कृतिक व आध्यात्मिक जागरण का युग प्रारम्भ कर दिया। गुरु ग्रन्थ साहब में लगभग 30 हजार बार राम का नाम आया है। मोहनदास कर्मचन्द गाँधी राम-नाम के प्रताप से स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व कर पाये और महात्मा रूप से जन-जन के हृदय में बस गये।

चैत्र शुक्ला नवमी को अभिजित मुहूर्त में अवतरित कौशल्या-नन्दन श्रीराम का मंगल-चरित्र पूजनीय व अनुकरणीय है। उनमें एक आदर्श पुत्र, श्रेष्ठ शिष्य, आदर्श भ्राता मूर्तिमन्त है। उनमें पति, स्वामी, मित्र, बन्धु, योद्धा, तपस्वी, राजा व मानव का श्रेष्ठतम रूप जीवन्त है। वे राज्याभिषेक को लेकर हर्षित नहीं हुए और वनवास जाते समय उनकी मुखकान्ति म्लान नहीं हुई। सीता-वियोग को लेकर उनका विलाप पत्थरों को भी द्रवित करने वाला था तो रावण-वध के पश्चात् सीता-मिलन के समय उनका कठोर उपेक्षाभाव भी लोक मर्यादा का अभिव्यंजक था। सीता-निष्कासन के समय उन्होंने व्यक्ति-धर्म के ऊपर राजधर्म को वरीयता दी। इन प्रसंगों में सीता की महिमा देदीप्यमान हुई और राम का सीता के प्रति अगाध आत्म-प्रेम, अद्वैत-प्रेम उत्कट होकर प्रकाशित हुआ। शबरी के जूठे बेर खाने में, गुह-केवट, वानरों व जटायु को अपनाने में राम का लोक-मंगल करुणा-पूरित हृदय उद्भासित है। राम-चरित यह भी सिखाता है कि एक शत्रु से किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये।

भारतीय मनीषा राम-महिमा से दीप्त है और भारतीय-चित्त राम की महिमा से सिक्त है। माँ की लोरी से शवयात्रा तक, प्रासादों से कुटिया तक, विवाह-प्रसंग से लेकर रणभूमि तक, भोजन से भजन तक राम-नाम का अमृत और तेज व्याप्त है। लोक जीवन, लोक संस्कृति, लोक साहित्य व लोक में राम-धुन गुंजायमान हैं।

राम के सागरीय व्यक्तित्व में सीता, लक्ष्मण, हनुमान, भरत, उर्मिला आदि के आदर्श जीवन नदियों की तरह समर्पित होकर चरितार्थ होते हैं।

राम ने व्रत लिया था कि जो कोई भी एक बार यह कह देगा कि हे राम! मैं तुम्हारा हूँ, मैं उसकी रक्षा करूँगा। यह राम उद्घोष आज भी जन-जन को सम्बल प्रदान करता है।

ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरणों में कोटि-कोटि नमन।

परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि महाराज
साभार : सनातनता संस्कृति का विज्ञान

हमारे आदर्श राम या बाबर, आदर्श पुस्तक रामायण या बाबरनामा एवं आदर्श स्थान रामजन्मभूमि मन्दिर या बाबरी मस्जिद

प्रश्न मन्दिर और मस्जिद का नहीं है। प्रश्न भारत की पहचान का है। भारत की अस्मिता का है। प्रश्न है—भारत की पहचान राम मन्दिर से बनेगी या बाबरी मस्जिद से। भारत के आदर्श पुरुष कौन होंगे—राम या बाबर। आज बाबर की तुलना सिर्फ राम से ही नहीं की जा रही है वरन् बाबर को राम से श्रेष्ठता भी प्रदान की जा रही है। अतएव आज इस पर तुलनात्मक दृष्टि से विवेचन करने की आवश्यकता है।

राम उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ को जोड़ने वाले ऐक्य निर्माता

रामायण काल से पूर्व विन्ध्याचल के नीचे के दक्षिणापथ में आर्यावर्त्त का विस्तार नहीं हुआ था। मनु भगवान् ने आर्यावर्त्त की सीमाएँ गिनाते हुए कहा है कि जिसके उत्तर में हिमालय व दक्षिण में विन्ध्याचल है, पूर्व एवं पश्चिम में समुद्र है वह आर्यावर्त्त है। पुराणों की गाथा के अनुसार विन्ध्याचल का ईर्ष्यावश हिमालय से ऊँचा उठने का प्रयास वस्तुतः विन्ध्यगिरि में वास करने वाली वनवासी जातियों का आर्यावर्त्त के विरुद्ध राक्षसप्रेरित विद्रोह था।

विन्ध्याचल तथा लंका के बीच का क्षेत्र अर्ध-सभ्य, वनवासी, वनचर जातियों का क्षेत्र (वानर देश, दण्डकवन, जनस्थान) आदि कहलाता था। इसी में कोल, किरात, भील, शबर, ऋक्ष, वानर, भल्लूक, गोंड, द्रविड़ आदि जातियाँ बसती थी।

लंका के राक्षस राजा रावण के दूत एवं नरभक्षी राक्षस सारे दक्षिण भारत में अपने आततायी प्रभाव का विस्तार कर फैले हुए थे। वे ऋषि-मुनियों को खा कर उनकी हड्डियों के पर्वताकार ढेर बना देते थे, वे बक्सर (वक्षसर) तक पहुँच कर विश्वामित्र का यज्ञ ध्वंस कर देते थे, वे भोले-भाले वनवासी वानरों को सताते थे। रावण ने किष्किंधा (वर्तमान अनागोंदी, निकट हम्पी, जिला बिल्लारी, तुंगभद्रा के तट पर, आन्ध्रप्रदेश) के वानर राजा बाली से मिल कर यह कूटनीतिक षड्यन्त्र रचा था कि वे दोनों (राक्षस एवं वानर) मिल कर मानव देश आर्यावर्त्त की धज्जियाँ उड़ा देंगे।

भगवान् राम जब अपने कंधों पर दुष्ट दलन हेतु धनुष-बाण एवं सरलमना, वनवासी-जनों का हृदय जीतने हेतु असीम वात्सल्य लेकर, स्वयं वनवासी बन कर दण्डकवन के कण्टक पथ पर उतरे।

भगवान् राम जब वनवासी बन कर वनवासी-जनों की कुटिया पर प्रेमदान हेतु पहुँचे तो वह मानव इतिहास का अद्वितीय समन्वय प्रयोग था। भगवान् राम का गुह्य को प्रेमदान, केवट से प्रेम ठिठोली, हनुमान्, सुग्रीव, अंगद पर वात्सल्य, बाली पर कृपा, जटायु पर करुणा, विभीषण को शरणागति, शबरी के जूठे बेरों की स्वीकृति आदि ऐसे अलौकिक आचार थे जो जन-हृदयों को स्नेह सूत्र से ऐसा बाँध देते हैं कि काल के थपेड़े भी उन्हें विलग नहीं कर सकते। उन्होंने नगरवासी को ग्रामवासी एवं वनवासी से जोड़ा। उत्तरापथ और दक्षिणापथ को ऐक्यबद्ध किया। इस प्रकार राम सारे भारत के प्रतिनिधि नायक हैं। रामायण उत्तरापथ और दक्षिणापथ को एकात्म सूत्र में बाँधने वाला ऐक्य मन्त्र है। रामायण भारतीय राष्ट्र के अंगीभूत अनेकानेक जातियों, उपजातियों को एक राष्ट्रीयता में समन्वित करने वाला भावात्मक एकता का महानतम प्रयोग है।

इसके विपरीत बाबर ने विदेशी आक्रान्ता बनकर देश की स्वाधीनता लूटी, देश एवं देशवासियों को खण्ड-विखण्डित किया। राम तो राज्य गद्दी छोड़कर वनवासी बने—वनवासियों को प्रेमदान देने के लिये एवं देश व संस्कृति के साथ एकात्म करने के लिये। इसके विपरीत बाबर जो एक बर्बर, नृशंस लुटेरा था हमारे देश की स्वाधीनता छीनकर यहाँ के वासियों को पीड़ित व लांछित किया। भाई-भाई को परस्पर तोड़ा, खण्डित किया। सहस्रों हिन्दू स्त्री-पुरुषों को गुलाम बनाकर मध्य एशिया के काबुल-कंधार आदि स्थानों में ले जाकर बेचा गया।

वीतरागी महान् संत गुरु नानकदेव जिनका प्रत्यक्ष राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था। उनके दो शिष्यों बाला एवं मरदाना में से एक मुसलमान था। उस युग में कुछ ऐसी राजनीतिक आपदाएं आई जिनको ब्रह्मज्ञानी गुरु नानकदेव भी आँख से ओझल नहीं कर सके। वे बाबर के विषय में कहते हैं—

पाप की जंझ ले काबलो धाया, जोरी मंगै दान वे लालो।
सरम धरम दोए छप्प खलोए, कूड फिरै परधान वे लालो।।

वह क्रूर आक्रमणकारी बाबर अपने साथ पाप की सेना लेकर काबुल से भारत पर चढ़ आया। वह बलात्कार से धन-सम्पत्ति मांगता है। शर्म (लोक-लज्जा) और धर्म, दोनों भाग कर छिप गए हैं। अर्थात् उस अत्याचारी के सामने शर्म और धर्म को भी शर्म आती है। सब तरफ झूठ एवं पाप ही प्रधान है।

गुरु नानक के थोड़े काल बाद गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा था—'नृप पाप परायण धर्म नहीं, करि दण्ड विडम्ब प्रजा नितहिं।' गुरु नानक ने मुगल

राजाओं को कसाई कहा तो तुलसी ने उन्हें चोर कहा—

वेद धर्म दूरि गये। भूमि भूप चोर भये।

राम तीर्थ संस्थापक और बाबर तीर्थ विध्वंसकारी

यूरोप में राष्ट्र को एक राजनीतिक इकाई माना जाता है। सारे यूरोप की सभ्यता और संस्कृति लगभग एक समान होने पर भी वहाँ 20 राष्ट्र हैं और नये राष्ट्र उभरने की सदा सम्भावना बनी रहती है। भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। इसलिये भारत में सैकड़ों राज्य होने पर भी एक संस्कृति के आधार पर भारत एक राष्ट्र सदा से रहा है। इस सांस्कृतिक एकता को पोषित-संवर्द्धित किया है हमारी तीर्थ परम्परा ने। इसलिये आदि शंकराचार्य ने अपने केरल राज्य से निकलकर देश के चार कोनों में चार मठ स्थापित किये। इस दृष्टि से उत्तरापथ को दक्षिणापथ से जोड़ने के लिये भगवान् श्रीराम ने रामेश्वर तीर्थ की स्थापना की। भारत का प्रत्येक तीर्थ पूरे भारत का प्रतिनिधित्व करता है। तीर्थ भ्रमण द्वारा सारा देश अपने आपको एकात्म अनुभव करता है। इसलिये हमारे आचार्यों ने, अवतारों ने, महापुरुषों ने भारतीय जनगण हेतु तीर्थों की स्थापना की जिससे देश एक अखण्ड राष्ट्र बना रहा।

इसके विपरीत बाबर सदृश विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं ने कृष्ण जन्मभूमि मथुरा, रामजन्मभूमि अयोध्या व काशी विश्वनाथ के मंदिरों को ध्वस्त किया। पवित्र धाम रामेश्वरम् की मूर्तियों को आगरा और दिल्ली ले जाकर उन्हें उलटा करके अपने महलों की सीढ़ियों में चुनवा दिया। हिन्दुओं की भावनाओं को कुचलने के लिये पवित्र मन्दिर की मूर्तियों का मल-मूत्रोत्सर्ग करने के स्थान पर फर्श बनाने के लिये उपयोग किया। तो भारत की पहचान इन उन्मत्त धर्मोन्मादों से बनेगी या राम से?

स्त्रीशील रक्षक रामचन्द्र और स्त्रीशील भक्षक बाबर

राम ने स्त्रीशील की रक्षा के लिये त्रिभुवनजयी रावण को कुल-कुटुम्ब सहित उखाड़कर फेंक दिया। भारत ने मातृ शक्ति, स्त्री जाति को सर्वोच्च सम्मान दिया। स्त्री जाति का अपमान कभी नहीं सहा। महाभारत काल में अपने ही भाई ने जब मातृशक्ति का अपमान किया तो उसको भी कुल-कुटुम्ब सहित उखाड़कर फेंक दिया।

इसके विपरीत हजारों स्त्रियों के शील को भंग करने वाला था बाबर। स्वयं गुरु नानकदेव ने बाबर द्वारा नारी जाति की जो बड़ी दुर्दशा की गई उसका बड़ा करुण चित्र खींचा है—

जिन सिर सोहन पट्टियां, मांगी पाए सिन्धूर,
से सिर काती मुन्नियन, गल विच आवे धूड़।

जिन भारतीय महिलाओं (हमारी माँ-बहिनों) के सिर में सुन्दर बालों की पट्टियाँ शोभा पाती थीं और उनकी मांग में सौभाग्य सूचक सिन्दूर शोभित होता था, उन्हीं देवियों के शीशों को कृपाण की धार से मूंड डाला गया है तथा उनके गले में धूल झोंक दी गई है।

यह रक्त के आंसू लाने वाला चित्र और भी कितना भयंकर है—

दूतां नूं फरमाया, लै चलै पत गंवाए,
बाबर वाणी फिर गई, कोयर न रोटी खाए।

भारत में मुगलों के अत्याचारी शासन के मूल संस्थापक नर-पिशाच बाबर ने अपने दूतों को कहा कि इन नारियों की पत छीन कर इनका सौभाग्य लूट कर ले जाओ। उस बाबर ने ऐसी घोषणा कर दी। तब किसी कुंवर (राजकुमार) को रोटी नसीब नहीं होती थी।

बाबर के आदर्श पर चलने वाले पाकिस्तान ने हजारों हिन्दू स्त्रियों का नंगा जुलूस निकलवाया। और इसी आदर्श पर चलने के कारण आज भी हिन्दू बहू-बेटियाँ प्रतिदिन चुराई जा रही है, देश-विदेशों में बेची जा रही हैं, और चुराने वाले को उनके समाज में बड़े आदर का स्थान प्राप्त होता है। और हिन्दू बालिकाओं को फंसाने के लिये 'लव जिहाद' के रूप में सुनियोजित आन्दोलन चला हुआ है। जिसमें अनियंत्रित व विकृत काम लिप्सा की पूर्ति और राजनीतिक षड्यंत्र शामिल हैं।

राष्ट्र भक्ति, राष्ट्रमुक्ति एवं लोकतंत्र तथा लोकमंगल की आदर्श स्थापना

भगवान् राम ने जहाँ उत्तरापथ और दक्षिणापथ को, विन्ध्याचल के ऊपर के आर्यावर्त्त और विन्ध्याचल के नीचे वाले दंडक वन, वानर देश गौंड क्षेत्र, द्रविड़ देश को, आर्य एवं अनार्य सभी को एक सुदृढ़ राष्ट्रीय एकता में बाँधकर एक चमत्कार किया, वहाँ उन्होंने राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रमुक्ति एवं लोकतन्त्र तथा लोकमंगल की ऐसी आदर्श मर्यादाएँ स्थापित की कि आज तक हम राम राज्य के स्वप्न को पुनः साकार करने के लिये तरसते रहे हैं। भगवान् राम ने वानर राजा बाली को मारने के बाद उसका राज्य उसी के भाई सुग्रीव को तथा श्रीवेरपुर राज्य को जीतकर सारा साम्राज्य निषादराज गुह्य को सौंप दिया।

लंका विजय के पश्चात् भगवान राम ने लक्ष्मण के लंका में ही बसकर राज्य चलाने के सुझाव के उत्तर में जो देश भक्ति का सूत्र दिया वह आज तक हमारी राष्ट्रभक्ति का महामंत्र बना हुआ है।

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।

अर्थात्

स्वर्णमयी लंका भी लक्ष्मण, तनिक न मुझको भाती,
जननी जन्मभूमि तो मेरी, सौ स्वर्गों से भी ऊंची।

इसी राष्ट्र प्रेम के मन्त्र से अभिमन्त्रित हुए भारत के देशभक्त बालक आज तक गाते हैं—

स्वर्णमयी लंका न मिले मां, अवधपुरी की धूल मिले।
सोने में कांटे चुभते हैं, मिट्टी में है फूल खिले।।

लंका विजय के पश्चात् भगवान राम ने राज्याभिषेक के प्रसंग पर प्रजाजनों को अत्यन्त उदार लोकतंत्र-निष्ठ वाणी में कहा—

जो अनीति कछु भाषौ भाइ, तो मोहि बरजहु भय बिसराइ।।

एक चक्रवर्ती सम्राट् द्वारा सामान्य प्रजाजनों को खुलेआम यह अधिकार देना कि यदि वह भूल से कभी अनीति का शब्द बोल दे अथवा अनीतिपूर्ण कर्म करने लगे तो प्रजाजन निर्भय होकर सम्राट को भी वर्जित कर दें—एक बहुत बड़ा लोकतान्त्रिक आदर्श है।

श्रीराम प्रजानुरंजन के लिये, लोकमंगल के लिये बड़ा से बड़ा व्यक्तिगत त्याग करने के लिये सदैव तत्पर रहे। प्राणवल्लभा सीता का त्याग भी करने को प्रस्तुत रहे। यही कारण है कि धोबी के विरोध को गलत जानते हुए भी उसको स्वीकार करते हैं, सीता को निष्कलंक जानकर भी। क्योंकि सर्वोच्च पद पर कोई दाग नहीं होना चाहिये। सर्वोच्च पद भ्रष्ट है तो सारा देश नष्ट है उसका भ्रष्ट होना अवश्यम्भावी है। भ्रष्टता ऊपर से नीचे फैलती है झरने की तरह। झरना नीचे फैलता जाता है। नदी का मूल स्रोत संकरा होता है बाद में फैलता जाता है। भ्रष्टता भी ऊपर से प्रारम्भ होती है और नीचे फैलती जाती है।

इसके विपरीत बाबर व बाबरनामा ने या उसके पथानुयायियों ने राष्ट्रभक्ति का कौन-सा कार्य किया था, कौन सा मन्त्र दिया? वरन् बाबर के पथानुयायी बाबरनामा के आदर्शानुसार सारे देश भर में आग एवं हत्या से आतंक मचाकर हमारी सदावत्सला भारत मां के टुकड़े कराकर पाकिस्तान बना दिया और बचे भारत में उनकी वही विभाजन की पुरानी दृष्टि बनी हुई है।

और बाबर के आदर्शों पर चलने वाले इसलामी राज्यों में बर्बर तानाशाही है जहाँ इसलाम के इतर सम्प्रदायों को अपने आदर्शों के साथ, सम्मान व स्वाधीनता के साथ जीने का हक नहीं है। वह अपनी पूजाविधि, संस्कार विधि का पालन नहीं कर सकता, अपने आराध्य देव को श्रद्धासुमन नहीं चढ़ा सकता। अपने अराधना स्थल बनाने की बात तो दूर रही।

मातृभूमि से एक दिन भी अधिक वियोग सह्य नहीं

प्रभु श्रीराम को 14 वर्ष का वनवास मिला था। 14 वर्ष के लिए मातृभूमि से वियोग उनके लिए लाचारी था। पर 14 वर्ष से एक दिन भी अधिक मातृभूमि से वियोग उन्हें सह्य नहीं था। विभीषण के अनेक आग्रह के पश्चात् भी लंका नगरी में प्रवेश नहीं किया। त्रिभुवन में जिस लंका का डंका बजता था उसे देखने की इच्छा नहीं हुई जैसे जनकपुरी की शोभा देखने की इच्छा हुई और गुरु की आज्ञा से देखी भी। नहीं तो भरत के पास दो-चार दिन या कुछ दिन विलम्ब से पहुंचने का सम्वाद भेज सकते थे। पर मातृभूमि से एक दिन भी वियोग गवारा नहीं हुआ। यह थी प्रभु श्रीराम की मातृभूमि के प्रति निष्ठा।

क्या ऐसी कोई भी निष्ठा भारतभूमि के प्रति बाबर या उनके अनुयायियों में थी?

नैतिक मूल्यों का सुन्दरतम संग्रह

संसार के वाङ्मय में नैतिक जीवनमूल्यों को जीवन की प्रत्यक्ष परिस्थितियों में उतार कर इतनी सुन्दर रीति से कहीं अन्यत्र प्रस्तुत नहीं किया गया जितना कि रामायण के कथानक में। नैतिकता कर्तव्य की आन्तरिक पुकार है। जब H.G. Well ने महात्मा गांधी को Charter of Human Right (मानवाधिकारों का घोषणापत्र) के लिए प्रारूप भेजने को कहा तो उन्होंने लिखा कि मानव अधिकारों का घोषणापत्र बनाने से पूर्व संयुक्त राष्ट्रसंघ को मानव कर्तव्यों का घोषणापत्र (Charter of Human Duties) बनाना चाहिए। जब वेल्स ने मानव कर्तव्यों का घोषणापत्र भेजने को कहा तो गांधीजी ने उन्हें रामचरितमानस की एक प्रति भेज दी तथा लिखा कि 'रामायण हम भारतीयों के कर्तव्यों का घोषणापत्र है।'

बाबरनामा ने ऐसा कौन-सा नैतिक मूल्यों का प्रारूप प्रस्तुत किया? विश्ववंद्य गांधीजी राम नाम को अपना जीवन मंत्र मानते थे, इसे ही सारी महानता का रहस्य बताते थे। उन्होंने राम-राज्य के आदर्श के लिये सारा जीवन उत्सर्ग कर दिया। वह कहते हैं—राम मंत्र ने ही मेरी रक्षा की है अन्यथा दो स्त्रियाँ को बहन कहने के योग्य नहीं रहता।

राम नाम से पत्थर तो क्या मनुष्य तरते देखे हैं। रत्नाकार डाकू से महर्षि वाल्मीकि बनते देखा है, काम में अन्धे युवक रामबोला को गोस्वामी तुलसीदास बनते देखा है, बिगड़े हुए बनिये के बच्चे को विश्ववंद्य महात्मा गांधी बनते देखा है। राम राज्य धर्मपरायण-नीतिपरायण, न्याय और कानून के सामने सब बराबर है। जहाँ कुत्ते को भी न्याय मिलता है। और बाबर मजहबी उन्मादी। उसके अनुसार जो इसलाम को नहीं मानता है वह काफिर है। इस लोक में नृशंस रूप से वध के

योग्य है। उनके स्त्री-पुत्र, धन सम्पत्ति पर उसका अधिकार और परलोक में अनन्त अग्नि में अनन्त काल तक जलाया जायेगा। बाबर काफिरों के नरमुण्डों के पहाड़ पर खड़ा होकर गाजी की उपाधि धारण करने वाला जिसके विषय में वीतरागी संत गुरु नानकदेव स्वयं कहते हैं—

कलि काती राजे कसाई, धरम पंख कर उडरिया।
कूड अमावस सच्च चन्द्रमा, दीसे नांहि के चढ़िया।।

अर्थात् कलियुग का यह काल छुरे के समान तीक्ष्ण है, राजा कसाई बन गए हैं, धर्म पंख लगा कर उड़ गया है अर्थात् सब ओर अधर्म का ही बोल-बाला है। झूठ की काली अमावस्या की रात है। जिसमें सचाई का चन्द्रमा कहीं भी उदित दिखाई नहीं देता।

हऊ भालि बिकनी होई, अन्धेरे राह न कोई।
बिच हउमैं दुःख रोई, कहू नानक किस विध गति होई।।

गुरु नानक कहते हैं, मैंने बहुत ढूंढ़ा, खोजा किन्तु सब तरफ पाप का अन्धेरा छाया हुआ है, उसमें कोई धर्म की राह दिखाई नहीं देती। अहंकार में सारा जग दुःख पा रहा है। हाय, इस संकट से मुक्ति कैसे होगी?

गुरु नानकदेव ने जनता की दुरवस्था का चित्र बड़ा मार्मिक खींचा है—

राजे शींह, मुकद्दम कुत्ते। जाए जगाइन बैठे सुत्ते।

सोई हुई या निश्चिंत बैठी हुई निरीह, निरपराध जनता पर मुगल राजे भूखे शेर के समान टूट पड़ते थे और उनके मुकद्दम शिकारी कुत्तों के समान शिकार में उनकी मदद करते थे।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ के शब्दों में 'रामायण भारत की आत्मा का महाकाव्य है।' रामायण में भारत प्रतिष्ठित है तथा भारत में रामायण प्रतिष्ठित है। रामायण समग्र भारत का प्रतिनिधि-ग्रंथ है। रामायण में भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम जीवन मूल्य मुखर हो उठे हैं। विश्वकवि के शब्दों में 'रामायण से भारत वर्ष ने जो कुछ श्रेष्ठ था वही पाया है। रामायण के सरल अनुष्टुप छन्दों के द्वारा भारतवर्ष का हृदय हजारों वर्षों से उछल रहा है।

फ्रांस के महान् इतिहासकार मिचलेट ने रामायण के मूल्यांकन में लिखा है, 'जिस किसी ने भी महान् कार्य किये हैं या महान् आकांक्षा संजोयी है, उसे रामायणरूपी अमृत के भरपूर प्याले से जीवन और यौवन का एक लम्बा घूंट पीने दो। पश्चिम में सभी कुछ संकीर्ण है। यूनान छोटा और तंग है और वहां मेरा दम घुटता है। जुडिया शुष्क है तथा वहां मैं हांफ जाता हूं। मुझे महान् एशिया और गहन प्राची की ओर देखने दो। वहां मिलता है मेरे मन का महाकाव्य रामायण। हिन्द महासागर जैसा विस्तृत, सूर्य से ज्योतित एवं धन्य एक दिव्य संगीत का ग्रंथ

जिसमें कहीं लयभंग नहीं है। वहां एक अपार शान्ति का राज्य है। कर्तव्यों के संघर्ष के बीच भी अपार माधुर्य है, अनन्त सौहार्द है जो सब जीवों पर प्रेम, दया और क्षमा का अपार और अथाह सागर लहरा देता है।'

रामायण विश्व-मैत्री व विश्व ऐक्य का आधार ग्रन्थ

डॉ. लोहिया अनीश्वरवादी थे, फिर भी श्रीराम, कृष्ण आदि की चर्चा करते हैं, क्योंकि ये राष्ट्र की एकता के नायक नहीं विश्व ऐक्य का आधार हैं। ये सारे मानव जाति के आदर्श पुरुष हैं। श्रीराम को वे भारतीय संस्कृति का आधार मानते थे। रामकथा संसार व्यापी है। इसलिये उन्होंने अन्तरराष्ट्रीय रामायण मेले की योजना प्रस्तुत की। क्योंकि रामायण मेला विश्व-मैत्री का प्रबल सांस्कृतिक आधार भी है। रामकथा भारत के उत्तर-दक्षिण भाग को ही जोड़ने वाली मात्र नहीं, सिर्फ दक्षिण पूर्व एशिया को मात्र एकात्म सूत्र में बाँधने वाली एशियाई एकता का ही आधार नहीं वरन् अन्तरराष्ट्रीय सौहार्द का अनुपम साधन है।

एशिया के विभिन्न देशों में आज तक रामायण को पूज्य दृष्टि से देखा जाता है और उस कथानक के नाटक खेले जाते हैं। रामायण इस दृष्टि से पुरातन होती हुई भी नित्य नवीन है। यह जीवित परम्परा है। इतना ही नहीं कि हिन्दुओं में ही इसे जीवित कहा जा सकता है, जिन देशों में रामायण वहाँ के जनों के जीवन पर छा गयी है, वहाँ की मुस्लिम जनता भी इससे उतनी ही प्रभावित है। दक्षिण-पूर्व एशिया के सब देशों को आपस में एक सूत्र में बाँधने वाली शृंखला, सबकी एक समान धरोहर, एकमात्र रामायण ही है।

इस काव्य की कथा का आधार लेकर भिन्न-भिन्न देशों में भित्ति-चित्र अंकित किये गये हैं, इस काव्य को लेकर अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं, नाटक खेले गये हैं, रामायण मानव संस्कृति के एक बड़े भाग के लिये बाइबिल बन गई है।

श्रीलंका में सीता एलिया (अशोक वाटिका) है। ब्रह्मदेश की राजधानी का नाम था रामावती, जो बदल कर रम्मनवती, रंगनवती, रंगन होते हुए रंगून हो गया। थाई देश के सभी राजाओं का नाम राम उपाधि से विभूषित है। वहाँ की प्राचीन राजधानी का नाम अयोध्या था। इण्डोनेशिया की प्राचीन राजधानी का नाम था अयोध्याकर्त्ता जो बदलकर आजकल जकार्ता हो गया है। प्रम्बनम में संसार का विशालतम एवं सुन्दरतम रामायण-मूर्तिशिल्प तीर्थ है। इण्डोनेशिया ने सर्वप्रथम अन्तरराष्ट्रीय रामायण महोत्सव का आयोजन किया। कम्बुज, लवदेश, चम्पा, चीन, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, नेपाल सभी में रामायण प्रतिष्ठित है। ईरान, अरब, मध्यपूर्व, अफ्रीका तक में रामायण के अनुवाद हुए हैं। यूनानी महाकाव्य इलियड तो रामायण का ही रूपान्तर मात्र है। यूरोप एवं अमरीका के विद्वान् रामायण पर मुग्ध हैं। सूरीनाम, मॉरीशस, फिजी, गिआना में रामायण ही वहाँ के भारतवंशियों का जीवन-प्राण है।

सर्वधर्म-पंथों का पुण्य महाकाव्य

बौद्धों ने मुग्ध होकर दशरथ-जातक, अनामक जातक नामक रामायण पर आधारित ग्रन्थ लिखे। जैनों ने विमलसूरि के पउमचरिय और हेमचन्द्राचार्य की जैन रामायण के द्वारा राम के चरणों में अपना अर्घ्य चढ़ाया। सन् 1585 में अकबर के फरमान से रामायण का फारसी में अनुवाद हुआ। गुरुग्रन्थ साहब में लगभग 30 हजार बार राम का नाम गूँज रहा है। फिलिस्तीन का सूफ़ी फकीर सरमद शहीद भारत में आकर औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह के साथ बैठकर रामायण पढ़ता था। गुरु गोविन्दसिंह ने गोविन्द रामायण लिखी। संस्कृत और हिन्दी साहित्य पर रामायण की छाप तो अमिट ही है। तमिल में कम्ब रामायण, तेलुगु में श्रीपाद-रामायण, मलयालम में रामचरित, कन्नड़ की तोरवे रामायण, बंगाली कृतिवास रामायण, हिन्दी रामचरितमानस, उड़िया बलरामदास रामायण, असमिया रामायण, मराठी भावार्थ रामायण, गुजराती रामबालचरित तथा राजस्थानी रघुनाथ रूपक गीतां रो—ये रामायण की दिग्विजय के प्रमाण हैं।

क्या ऐसी कोई सार्वभौमिक स्वीकृति और सर्वग्राह्यता बाबरनामा ने प्रस्तुत की है?

संसार का विशालतम झण्डा-जुलूस

मैंने संसार के किसी देश में इतना बड़ा झण्डा-जुलूस नहीं देखा जैसा रामनवमी के अवसर पर राँची में निकलता है। राम के जन्म पर हनुमान् के झण्डे फहराने के पीछे भी वही प्रेरणा है जिसने भगवान् राम एवं भक्तराज हनुमान् को एक कर दिया था, जिसने आर्य-अनार्य, नगरवासी-ग्रामवासी-वनवासी सभी को एक ही भावात्मक एकता के सूत्र में बाँधकर एकात्म बना दिया। यही रामायण की सबसे बड़ी देन है। जहाँ श्रीराम फहरते हुए—बजरंगी ध्वजों से पूजित होते हैं, वहाँ वे राष्ट्रपुरुष राम वनवासी बन्धुओं के हृदय में लहराते हुए राम प्रेम एवं राष्ट्र प्रेम से शतशः आनन्दित होंगे।

अब आप विचार करके देखें कि भारत की पहचान राम से बनेगी या बाबर से। राष्ट्र के नायक राम हैं या बाबर। राम जिसने उत्तर एवं दक्षिण भारत को जोड़ा, नगर के साथ ग्रामवासी व वनवासी को जोड़ा, जाति, उपजातियों को एकबद्ध ही नहीं अपनी सुवास दक्षिण पूर्व एशिया ही नहीं वरन् पूरे संसार में फैलायी या विदेश बर्बर आक्रमणकारी बाबर जो एक हाथ में तलवार और एक हाथ में कुरान लेकर आया और आग और आतंक द्वारा सारे देश को रौंद डाला।

धर्म हमारे राष्ट्र का प्राण है

भारत एक धर्मप्राण देश है। धर्म ही इसका प्राण है। यहां के महापुरुष धर्म की रक्षा के लिए हंसते-हंसते प्राण निछावर करते रहे हैं। इसलिए धर्म प्राणों से भी अधिक प्यारा है। किसी के प्राणों का हरण करना हत्या कहलाता है। किन्तु किसी के धर्म को लूटना, उसकी धार्मिक आस्था पर प्रहार करना उसके प्राणहरण से भी अधिक बड़ा अत्याचार है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में—प्रत्येक राष्ट्र के प्राण भी किसी बिन्दुविशेष में केन्द्रित होते हैं। वहीं उस राष्ट्र का राष्ट्रीयत्व बसता है और जब तक उस मर्मस्थान पर आघात नहीं होता तब तक वह राष्ट्र नहीं मर सकता....किन्तु जब उस मूल उद्‌गम पर जिस पर राष्ट्रीय जीवन का सम्पूर्ण महल टिका है, छोटा-सा आघात भी होगा तो राष्ट्र प्रचण्ड शक्ति से उसका प्रतिरोध करेगा।....धर्म ही हमारे तेज, बल और इतना ही नहीं हमारे राष्ट्रीय जीवन का भी मूलाधार है। यदि तुमने इस मर्मस्थल को छोड़ दिया तो सावधान! तुम सर्वनाश को निमंत्रण दे दोगे।

अब प्रश्न उठता है भारत देश में कौन-सा धर्म राष्ट्रीय धर्म है और उत्तम है। उत्तम धर्म वह नहीं जिसने आग और तलवार द्वारा दुनिया को रौंद डाला हो, देवालय ध्वस्त, जनगण त्रस्त, परिवार अस्त-व्यस्त, विधर्मी निरस्त, विश्वविद्यालय ज्वालस्थ कर नर मांस पर, नर शोणित से जघन्य बर्बरता की क्रूर कहानी लिख कर अपने पंथ का फैलाव किया है। या वह धर्म (इसाई) जिसने क्रूसेड और इंक्विजीशन द्वारा व्यापक नर संहार किये, भिन्न पंथ वालों को लाखों की संख्या में तेल छिड़क कर जीवित जलाया तथा आलोचकों के दबे हुए शवों को कब्र से निकाल कर टॉवर ऑफ लन्दन पर फांसियाँ दीं। उत्तमता की कसौटी है—विश्वमंगल की निःस्वार्थ साधना, बिना किसी देश की स्वाधीनता छीने तथा किसी माँ-बहिन की मान-मर्यादा को लूटे, परहित के लिए आत्मत्याग एवं आत्म यज्ञ, जो हिन्दू धर्म का आधारभूत संस्कार है। आर्य धर्म की इसी महत्ता के कारण ही महात्मा ईसा हिन्दू आचार्यों के शिष्य बनकर भारत में शिक्षा-दीक्षा हेतु आए तथा हजरत मुहम्मद के पितृव्य अबुल हिक्म हिन्द देश, हिन्दू धर्म एवं हिन्दू देवों की स्तुतियाँ गाते थे।'

'हे अल्लाओं के अल्लाह महादेव! कोई पतित से पतित व्यक्ति भी यदि आपकी शरण में आवे तो मुक्त हो जाय।'

हे मेरे प्रभु! मेरा समस्त जीवन एवं सर्वस्व लेकर मुझे मात्र एक दिन के लिये भारतवर्ष का वास दे दो क्योंकि वहाँ पहुँचकर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है।

रोमां रोलां जो शुरुआती जीवन में मार्क्सवादी था, मार्क्सवाद से मोह भंग होने पर ईसाइयत की ओर झुका, वहाँ भी अपने जीवन की उलझनों का समाधान न पाकर भारत की ओर झुका और वहाँ समाधान पाकर कहता है—मैंने यूरोप और एशिया के सभी धर्मों का अध्ययन किया है, परन्तु मुझे उन सबमें हिन्दू धर्म

ही सर्वश्रेष्ठ दिखाई देता है...मेरा विश्वास है कि इसके सामने एक दिन समस्त जगत् को सिर झुकाना पड़ेगा। अन्यत्र कहता है—अगर संसार की सतह पर कोई ऐसा देश है, जहाँ जीवित लोगों के सभी स्वप्नों को, उस प्राचीन काल से स्थान मिला है जब से मनुष्य ने अस्तित्व का स्वप्न देखना आरम्भ किया, तो वह देश हिन्दुस्तान है।

हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है, हिन्दू धर्म ही राष्ट्रीय धर्म है

हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयत्व है, हिन्दू धर्म ही राष्ट्रीय धर्म है इस विषय में हो सकता है हमें भ्रमित किया गया हो, पर विदेशियों यहाँ तक अरब जैसे मुस्लिम राष्ट्रों को भी इसमें कोई भ्रम नहीं है।

भारत और हिन्दुत्व दोनों एक और अभिन्न हैं। और हिन्दू ही हिन्दुत्व का संरक्षण नहीं करते तो कौन इसे बचायेगा? यदि भारत की अपनी सन्तान ही अपने धर्म के प्रति निष्ठावान नहीं रहती तो कौन उसकी रक्षा करेगा। हम बाहरी लोग आपकी चाहे कितनी भी प्रशंसा करें, किन्तु, आपका उद्धार आपके ही हाथ में है। आप किसी भ्रम में नहीं रहें। भूलो मत! हिन्दुत्व के बिना हिन्दुस्तान का कोई भविष्य नहीं है। हिन्दुत्व ही वह मिट्टी है, जिसमें भारतवर्ष का मूल गड़ा हुआ है। यदि यह मिट्टी हटा ली गयी तो भारत-रूपी वृक्ष सूख जायेगा। भारत में प्रश्रय पाने वाले अनेक धर्म है, अनेक जातियाँ है, किन्तु इनमें से किसी की भी शिरा भारत के अतीत तक नहीं पहुँची है। इनमें से किसी में भी यह दम नहीं है कि भारत को वे राष्ट्र के रूप में जीवित रख सकें। इनमें से प्रत्येक भारत से विलोप हो जाय, तब भी भारत भारत ही रहेगा। किन्तु यदि हिन्दुत्व विलोप हो गया तो क्या शेष रहेगा? तब शायद इतना याद रहेगा कि भारत नामक कभी कोई भौगोलिक देश था। भारत के इतिहास को देखिये, उसके साहित्य, कला स्मारकों को देखिये सब पर हिन्दुत्व स्पष्ट रूप से खुदा हुआ है।

जामा मस्जिद के शाही इमाम सैय्यद अब्दुल्ला बुखारी जब मक्का गये तो वहां के एक निवासी ने पूछा—'आप हिन्दू हैं?' शाही इमाम ने चौंककर कहा—'नहीं-नहीं, मैं मुसलमान हूँ।' बाद में उन्होंने प्रश्नकर्ता से पूछा—'आपने मुझे हिन्दू क्यों कहा?' तो उसका सहज उत्तर था—'इसलिये कि आप हिन्दुस्तान से आये हैं।'

(साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दि. 1.5.1977)

एक भारतीय से एक फ्रांसीसी ने पूछा कि 'आपका मजहब क्या है? उसने उत्तर दिया, 'हिन्दू'। फ्रांसीसी ने कहा, वह तो आपकी राष्ट्रीयता है। आपका मजहब क्या है? क्या आप वेदान्त को मानने वाले हैं या इसलाम को।

जवाहरलाल नेहरू ने Discovery of India में भारत की खोज की तो क्या खोज की? Discovery of India में जवाहर लाल नेहरू को स्वीकारना पड़ा कि वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, त्रिपिटक, जैन सूत्र ग्रन्थ आदि से निर्मित दृष्टि ही भारत वर्ष की पहचान करने वाली दृष्टि है। भारत की सभ्यता-संस्कृति के निर्माण करने तत्त्व, भारत को भारत बनाने वाली दृष्टि, उसकी पहचान, उसकी अस्मिता, उसकी आइडेन्टिटी यही तो भारत की राष्ट्रीयता के निर्धारक तत्त्व होने चाहिये। कोई यहाँ आकर कुरान शरीफ और हदीस के बारे क्या कुछ जानना चाहेगा? उसको यह विषय जानना होगा तो वह अरब जायेगा, मिस्र जायेगा। कोई यहाँ आकर बाइबिल के बारे में क्रिश्चियनिटी के बारे में नहीं जानना चाहेगा। यदि जानना चाहेगा तो रोम या इंग्लैण्ड जायेगा। इन्दिरा गांधी ने रामकृष्ण मिशन में अपने भाषण के दौरान स्वीकार किया था कि सन् 1939 तक मुसलमान अपने हिन्दू नाम ही रखते थे, गीता का पाठ करते थे। इन्दिरा गांधी ने सन् 1983 के नई दिल्ली में आयोजित रामकृष्ण विवेकानन्द युवा सम्मेलन में स्वीकार किया था, 'बहुत समय तक यूरोप में भारत के सभी धर्मों को हिन्दू में शामिल किया जाता था।' राजीव गाँधी (दिवंगत) जब प्रधानमंत्री बने तो शेष विश्व को भारत से परिचित कराने के लिए भारत उत्सव का आयोजन मास्को में किया गया। उसका प्रारम्भ वैदिक गीत, भारतीय नृत्य से हुआ। उसमें प्रदर्शित वस्तुएँ हिन्दू धर्म-संस्कृति से सम्बन्धित थी। (राजीव गाँधी जो कहते थे मेरा पिता पारसी, मेरी माता हिन्दू, मेरी पत्नी ईसाई, पर मेरा कोई धर्म नहीं है)—ये सब भारतीय संस्कृति की प्रतिनिधि हैं। सन् 1957 में केरल में प्रथम बार वामपंथी सरकार बनी जिसमें मुख्यमंत्री ई. एम. एस. नम्बूद्रिपाद बने। शपथ ग्रहण समारोह में माओ (चीन से) आए तो उन्हें नटराज की मूर्ति भेंट करते हुए नम्बूद्रिपाद ने कहा—'यह भारत का प्रतीक है।' स्पष्ट है सबको भारत से परिचय कराने के लिए हिन्दुत्व का सहारा लेना पड़ता है। अतः इस देश का राष्ट्रीय समाज हिन्दू है, इस देश का राष्ट्रीय धर्म, संस्कृति हिन्दू है।

इस्लामिया कॉलेज के इतिहास के विद्वान् प्रो. अब्दुल लतीफ, फिलस्तीन के सरमद शहीद, औरंगजेब का बड़ा भ्राता दाराशिकोह, रहीम, रसखान, मलाया, इण्डोनिजीया के मुसलमान राम-कृष्ण भक्त रहे हैं। मुहम्मद अली जिन्ना जब कांग्रेस में थे तब वे श्रीराम को राष्ट्रीय महापुरुष और रामायण को राष्ट्रीय ग्रन्थ मानते थे।

इस प्रकार इस देश में हिन्दुत्व ही राष्ट्रीयता है। राम मन्दिर पर आघात हिन्दू राष्ट्रीयता पर आघात है। राष्ट्र के राष्ट्रीय स्वाभिमान पर आघात है। और राष्ट्रीय स्वाभिमान खोकर कोई भी राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। अतः जब भी कोई राष्ट्र स्वाधीन होता है, तब राष्ट्रीय अपमानों का मोचन सर्वप्रथम करता है, राष्ट्रीय

स्वाभिमान को पुनः जागृत करता है। प्रत्येक विदेशी आक्रान्ता जनगण के मनोबल को तोड़ने के लिये उनके श्रद्धा बिन्दुओं पर आघात करता है। और स्वाधीन राष्ट्र का उसका मोचन करना प्रथम कर्तव्य होता है। इसमें कोई भी देश अपवाद नहीं है।

साम्यवादी देश रसिया

भारतीय सांसदों का एक प्रतिनिधिमंडल 1968 में रूस गया था। इस प्रतिनिधिमण्डल में भारतीय मजदूर संघ के संस्थापक दत्तोपंत ठेंगड़ीजी भी थे। रूस यात्रा के दौरान सांसदों को लेनिनग्राद शहर में जार राजा का महल दिखाने ले जाया गया। वह पूरा महल पुराना लगता था, किन्तु कुछ मूर्तियाँ नई दिखाई देती थी। पूछताछ करने पर पता चला कि मूर्तियाँ ग्रीक देवी-देवताओं की है। श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी ने पूछा, आप लोग तो नास्तिक हैं, धर्म और भगवान के खिलाफ हैं, फिर आपकी सरकार ने देवी-देवताओं की मूर्तियों को फिर से बनाकर यहाँ क्यों रखा है? उत्तर था कि हिटलर ने महायुद्ध के दौरान ये मूर्तियाँ हमें अपमानित करने के लिये तोड़ दी थी। महायुद्ध में हमारी विजय होने के पश्चात् राष्ट्रीय सम्मान की पुनर्स्थापना करने के लिये हमने इन देवताओं की मूर्तियाँ को पुनर्निर्माण कर स्थापित किया। इस प्रकार हमने राष्ट्रीय अपमान के कलंक को सदा के लिये धो डाला।

सन् 1914-15 में रूसियों ने पोलैण्ड की राजधानी वार्सा को जीत लिया तो उन्होंने शहर के मुख्य चौक में एक चर्च बनवाया। रूसियों ने यह पौलेण्डवासियों को निरन्तर याद करवाने के लिये बनवाया कि पोलैण्ड में रूस का शासन है। जब पोलैण्ड 1918 में आजाद हुआ तो पोलैण्डवासियों ने पहला काम उस चर्च को ध्वस्त करने का किया, हालाँकि नष्ट करने वाले सभी लोग ईसाईमत को मानने वाले ही थे। चूँकि चर्च राजनीतिक कारणों से पोलैण्ड को अपमानित करने के लिये रूस ने बनवाया था अतः पुनः राष्ट्रीय स्वाभिमान प्रतिष्ठापित करने के लिये उसे नष्ट कर दिया।

इसी प्रकार भारत की अंग्रेजों से मुक्ति होते ही देश में सारे अंग्रेजी चिह्नों, नामों, स्मारकों को हटाकर भारतीय चिह्न, नाम, स्मारकों को पुनः प्रतिष्ठित किया गया राष्ट्रीय स्वाभिमान को पुनः स्थापित करने के लिये।

यही दृष्टि सोमनाथ मन्दिर के पुनः निर्माण के पीछे थी। उस समय सरदार पटेल, कन्हैयालाल मुंशी, गांधी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को किसी ने साम्प्रदायिक कहने का साहस नहीं किया न मुसलमानों ने आपत्ति का साहस किया पर आज राम मन्दिर के सन्दर्भ में स्थिति बदल गई। नेहरू, कांग्रेस एवं कम्युनिस्ट पार्टी की तोषण नीति के परिणामस्वरूप आज कश्मीर समस्या, मिजोरम समस्या, यानी

इसाई समस्या, असम समस्या मुंह बाये खड़ी है, फिर भी हम समझना नहीं चाहते हैं।

6 जून, 1986 को श्री अज्ञेयजी और नवभारत टाइम्स के सम्पादक राजेन्द्र माथुर दीनदयाल उपाध्याय शोध संस्थान के मंच से बोले। उनका निष्कर्ष यह था, राष्ट्रीय बोध और राष्ट्र की मुख्यधारा की स्वीकृति-अस्वीकृति और पहचान का प्रश्न यदि अल्पसंख्यकों की स्वीकृति, अस्वीकृति और उनके प्रमाण पर छोड़ दिया जायेगा तो भारत ही नहीं दुनिया के किसी भी देश में राष्ट्रीयता, राष्ट्र के व्यक्तित्व और उसकी मुख्यधारा को कभी परिभाषित और रूपायित नहीं किया जा सकेगा। यह इतिहास का एक सार्वकालिक सत्य है कि भारत का अस्सी प्रतिशत बहुमत वाला समाज हिन्दू समाज है उसने ही देश का व्यक्तित्व बनाया है।

आर्नोल्ड टॉयनबी आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ इतिहासज्ञ माने गये। वर्ष 1960 में वे भारत आये तथा उन्होंने यहां तीन भाषण किये। इन भाषणों में उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया कि काशी और मथुरा के जन्म स्थलों पर अभी भी मस्जिदें बनी हैं तथा उन्हें हटाने का कोई प्रयास भी नहीं हुआ है?

काशी का ज्ञानवापी मस्जिद, कृष्ण जन्मभूमि पर बना ईदगाह तथा देश के मन्दिरों को तोड़कर बनायी गई हजारों मस्जिदें राष्ट्रीय अपमान और गुलामी की प्रतीक हैं। औरंगजेब को काशी और मथुरा में मस्जिद बनाने के लिए और भी काफी स्थान थे। बाबर को भी मस्जिद बनाने के लिए पूरी अयोध्या थी लेकिन उसने श्रीराम-जन्मभूमि मन्दिर को ध्वस्त कर उसी स्थान पर मस्जिद का ढांचा खड़ा करने की कोशिश की। इसी तरह औरंगजेब ने भी ज्ञानवापी मन्दिर तथा श्रीकृष्ण-जन्मभूमि मन्दिर के स्थान पर ही मस्जिदें बनवायी। स्पष्ट है कि ये मस्जिदें विदेशी हमलावरों की विजय और भारत की हार और अपमान के स्मारक हैं। कोई भी स्वाभिमानी और स्वतंत्र राष्ट्र गुलामी की निशानियों को सहेजकर नहीं रखता, बल्कि उन्हें नष्ट कर देता है।

पर हमारे राजनेता वोट के अलावा कुछ समझना ही नहीं चाहते। राजनेता तो उसे कहा जाता है जिसकी दूर दृष्टि हो पर यहाँ तो सारे परिणाम सामने हैं फिर भी चुनाव के आगे इनका दिमाग जाता ही नहीं। ये हो गये हमारे राष्ट्रीय नेता जो कहते हैं—मन्दिर था या है नहीं जानता, पर मस्जिद है इसे जानता हूँ, मचान बाबा फचान बाबा को नहीं जानता पर इमाम बुखारी को जानते हैं। नेता जो आरक्षण के नाम पर देश को टुकड़ों-टुकड़ों में बाँट दिया तो एक शहर एवं गाँव को अलग-अलग टुकड़ों में बाँटकर कुछ नेता सद्भावना यात्रा पर निकले हैं, पर इन्हें समझ लेना चाहिये कि राष्ट्र विरोधी गतिविधियों के बावजूद भी यहाँ

अल्पसंख्यक सुरक्षित इसलिये नहीं कि उन्हें संविधान में सुरक्षा की गारंटी मिली है या ये हमारे नेता सद्भावना यात्रा कर रहे हैं, वरन् इसलिये कि यहाँ का बहुसंख्यक हिन्दू समाज बड़ा ही उदार, सहिष्णु और उपासना पद्धति के आधार पर कहीं भेदभाव नहीं करता।

यहाँ यहूदी आये। यहाँ पारसी आये। यहाँ ईसाई आये। यहाँ मुसलमान आये। सबका स्वागत हुआ, धर्म पालन एवं प्रसार की छूट मिली। कुछ लोग भ्रान्तिवश कहते हैं मुसलमान और ईसाई लोग तो भारत में विजेता बनकर आये और अपने बाहुबल से फले-फूले। तब हमारी उदारता की क्या भूमिका रह जाती है? पर ऐसे विचार और तर्क इतिहास की अवहेलना करना है। यह एक सर्वविदित तथ्य है, जब भारत के केरल राज्य में ईसाई सर्वप्रथम 50 ए.डी. के लगभग पहुँचे तो वहाँ के हिन्दू शासक और हिन्दू जनता ने उन्हें वहाँ बसने, धर्म प्रचार, गिरजाघर बनाने की छूट ही नहीं दी, वरन् उदारतापूर्वक यथाशक्ति उनकी सहायता भी की। हिन्दू शासकों के सहयोग का ही फल था कि ईसाई केरल में फले-फूले।

भारत में मुसलमानों के साथ भी यही घटित हुआ। केरल में ही 700 ए.डी. के लगभग पहुँचे और उन्हें सरकारी पैसे से मस्जिद बनाकर दी। और आज हम ही जो अखण्ड भारत चाहते हैं छोटे दिल, साम्प्रदायिक हो गये? और ये राजनेता समाज को सहस्रों खण्डों में बाँट रहे हैं, वह राष्ट्रीय हो गये। और कहते हैं हम भी हिन्दू हैं। हिन्दू तो जयचन्द्र, मानसिंह, जयसिंह भी था, रावण और कंस भी था, पर वे इतिहास के कचरादान में फेंक दिये गये। यही अवस्था इनकी होगी।

आज हमारी दुरवस्था, पराजय का कारण अतिशय उदारता, सहिष्णुता है। आज हमने इन राजनेताओं के फेर में पड़कर, शत्रु, मित्र, राष्ट्रीय-अराष्ट्रीय की पहचान ही भुला दी है। सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता जो हमारे सद्गुण थे, स्वामी रामतीर्थ के शब्दों में यथार्थ व्यावहारिकता के अभाव में सद्गुण विकृति बन गये हैं। हमारे देश, काल, पात्र, परिस्थिति को भुला देने से ये सद्गुण ही हमारे भक्षक बन गये हैं। माँ-बहन के चेहरे सुन्दर हैं यह कोई अपराध नहीं है। सुन्दर बगीचा लगाना अपराध नहीं है। पर उसकी रक्षा के लिये कांटे की झाड़ियां लगाना आवश्यक है। अतः आज आवश्यकता है यथार्थ व्यावहारिक होने की।

हमारी न मुसलमानों को चुनौती है और न मुसलमानों से लड़ाई है। राजनेता तो मुसलमानों को सिर्फ वोट के कारण चाहते हैं पर हम मनुष्य के नाते चाहते हैं। हम मानते हैं ये हमारे ही हैं। हमसे पिछड़ गये हिन्दू भाई हैं जिन्होंने भय या प्रलोभन से अन्य उपासना पद्धति अपना ली है, पर इतिहास, पूर्वज परम्परा, संस्कृति-सभ्यता के साझे अधिकारी हैं। वे अपनी पूजा पद्धति की रक्षा करते हुए मुहम्मद जायसी, रहीम, रसखान, ऊशाउल्लाखान की तरह भारतीय रह सकते हैं।

पहले भी हमारी संस्कृति के आधार एक थे और आज भी। तभी तो भारत के सभी अंचलों से शिलापूजित होकर आ रही है। यही नहीं 36 देशों से भी शिलापूजित होकर आयी है।

यदि जापान का प्रधानमंत्री भारत की धूलि को मस्तक पर चढ़ाता है, यदि इण्डोनेशिया का राष्ट्रपति अपने देश में सर्वप्रथम अन्तरराष्ट्रीय रामायण-सम्मेलन कराता है, यदि तिब्बत के दलाईलामा अपना राज्य व धन खोकर भी भारत के बौद्ध तीर्थों में शान्ति पाते हैं, यदि मारिशस के प्रधानमंत्री सर्वप्रथम 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' अपने देश में आयोजित करते हैं, यदि सात हजार मील पूर्व का फिजी और बारह हजार मील दूर पश्चिम का सूरीनाम 'रामचरितमानस' गाते तथा 'हिन्दी भाषा' को राजभाषा का सम्मान देते हैं, यदि संसार के 85 देशों के हिन्दू आज भी कुंभ मेले पर गंगा-स्नान के लिए तरसते हैं तो यह सब सांस्कृतिक एकात्मता का ही चमत्कार है।

और सांस्कृतिक एकता में राम और रामायण का बड़ा योगदान है। क्या ऐसा कोई योगदान बाबर और बाबरनामा का है?

आज भी देश की इस जर्जरावस्था में भारत का विश्व को कुछ संदेश हो सकता है तो यहाँ की संस्कृति ही। पाश्चात्य विचारक भी इस आशा से भारत की ओर निहार रहे हैं।

आर्नोल्ड टॉयनबी के अनुसार

विज्ञान और प्रविधि के विकास के साथ हो सकता है कि बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक सारा संसार अमरीका के प्रभाव क्षेत्र में आ जाए। किन्तु इक्कीसवीं शती में, जब विज्ञान का स्थान अध्यात्म लेगा और तकनीक का स्थान धर्म लेगा तब भारत ही सारी मानव-जाति का आध्यात्मिक गुरु होगा।

अन्यत्र आर्नोल्ड टॉयनबी ने सम्पूर्ण मानव जाति की यात्रा कथा का सर्वेक्षण करने के बाद यह लिखा—'यह बिल्कुल स्पष्ट होता जा रहा है कि उस अध्याय का अन्त भारतीय उपसंहार से ही होगा जिसका प्रारंभ पाश्चात्य है। यदि मानव जाति का आत्मविनाश में अन्त न होना हो तो यहाँ हमारे पास वह दृष्टिकोण और भावना है जिससे मानव जाति के लिए एक परिवार के रूप में विकास की सम्भावना है और इस आणविक युग में सर्वनाश से बचने का यह एकमात्र विकल्प है।

प्राच्य एवं पाश्चात्य अमेरिकन विद्याविशारद विल डूरेन्ट कहता है—

हे भारत! इसके पहले कि पश्चिम अपनी घोर नास्तिक भोगवादी सभ्यता से निराश, शान्ति के लिए तरसता हुआ अति व्याकुल तुम्हारी शरण में आवे, कहीं

भूल से अपनी लम्बी राजनीतिक पराधीनता के लिए तू अपने श्रेष्ठ अध्यात्म को ही दोषी मानकर अपना घर मत फूंक डालना।

स्पष्ट है भारत की पहचान प्रभु श्रीराम से है, रामायण से है, रामजन्मभूमि से है, न कि विदेशी विधर्मी नृशंस आक्रान्ता बाबर से, न बाबरनामा से और न बाबरी मस्जिद से है। अतः भगवान् राम की पुनः प्रतिष्ठा के लिये वहां भव्य राम मन्दिर का निर्माण एक राष्ट्रीय आवश्यकता है, मानवता के हित को सही दिशा देने के लिये भी परम आवश्यक है जिससे मानव मात्र लौकिक अभ्युदय और पारमार्थिक निःश्रेयस सिद्ध कर अपने मानव जीवन को सार्थक कर सके।

हमारे पूर्वजों ने धर्मरक्षा के लिए सब कुछ साहसपूर्वक सहन किया था। यहां तक कि मृत्यु को भी गले लगाया। विदेशी विजेताओं ने मन्दिर के बाद मन्दिर तोड़े, किन्तु जैसे ही वह आंधी गुजरी मन्दिर का शिखर पुनः खड़ा हो गया। दक्षिण भारत के ऐसे कुछ प्राचीन मन्दिर विशेषकर गुजरात का सोमनाथ मन्दिर तुम्हें अक्षय ज्ञान प्रदान करेंगे। जाति (राष्ट्र) के इतिहास के प्रति जो गहरी दृष्टि वे प्रदान करते हैं वह ढेरों पुस्तकों से नहीं मिल सकती। ध्यान से देखो इन मन्दिरों पर सैकड़ों आक्रमणों एवं सैकड़ों पुनरुत्थानों के चिह्न किस तरह अंकित हैं। वे बार-बार नष्ट हुए और खण्डहरों में से पुनः उठ खड़े हुए। पहले की भांति सशक्त और नवजीवन से युक्त। यही हमारा राष्ट्रीय जीवन प्रवाह है। और इसका अनुसरण करो और गौरव प्राप्त करो।

—स्वामी विवेकानन्द

× × ×

महमूद गजनवी ने जो हीन, जंगली और असंस्कृत कृत्य किये क्या उनके बारे में यहां के मुस्लिम गर्व का अनुभव करते हैं। ऐसा है तो यह दुर्भाग्यपूर्ण है। इसके लिए भी यह हानिकारक है। गजनवी ने जो किया था, बहुत बुरा किया था। इसलामी राज में जो बुराइयां हुई हैं उन्हें मुसलमानों को समझना और कबूल करना चाहिए। गुनाह कबूल करने से हलका होता है। भारत में बैठकर मुसलमान अगर अपने लड़कों को सिखायें कि गजनवी को आना है तो उसका मतलब यह हुआ कि वे चाहते हैं कि हिन्दुस्तान और हिन्दुओं को खा जाओ। इसे कोई बर्दाश्त करने वाला नहीं है।

—महात्मा गांधी

श्रीराम सेतु सदा सनातनम्

आर्य जाति के इतिहास में अनेक धर्मप्राण ऋषि-महर्षि और अनेक राजऋषि हुए हैं। उन सबमें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम का स्थान सर्वोपरि है। वेदों और धर्मशास्त्रों में हमें धर्म का स्वरूप और उपदेश तो प्राप्त होते हैं किन्तु उन उपदेशों में बताए धर्म का प्रयोग कैसे होना चाहिए, इसका उदाहरण भगवान श्रीराम की जीवन यात्रा में ही मिलता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि जब धर्म या कर्म के स्वरूप में सन्देह हो तो धर्मज्ञ महापुरुषों के बर्ताव को देखकर उसके स्वरूप का निश्चय कर लेना चाहिए।

'यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र बर्तेथाः।' इसके अनुसार यदि हम सम्पूर्ण धर्म और धर्मपूर्ण बर्ताव का आदर्श किन्हीं एक महापुरुष में देखना चाहें तो सर्वप्रथम भगवान श्रीराम के जीवन पर दृष्टिपात करना होगा—

'श्रीराम ने जिसे धारण किया, वही आदर्श धर्म है, जिसे उन्होंने संस्कार प्रदान किया, वही हिन्दू संस्कृति है और जिसको वे आचरण में ले आए, वही हिन्दुओं का आदर्श सदाचार एवं शिष्टाचार है।' इसलिए कहा गया है 'रामो विग्रहवान धर्म' श्रीरामचन्द्रजी धर्म के साक्षात् विग्रह हैं।

ऐसे प्रभु श्रीराम के द्वारा निर्माण कराए गए राम सेतु को आज भारत सरकार तोड़ने पर व्याकुल है, जिसका सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, पुरातात्त्विक, सामरिक, ऊर्जा, पर्यावरण और सुनामी जैसी दैवीय आपदाओं से रक्षा आदि की दृष्टि से बना रहना अत्यन्त आवश्यक है। जो विश्व की प्राचीनतम मानव निर्मित धरोहर है।

प्रभु श्रीराम के द्वारा विश्वकर्मा के ओरस पुत्र नल, नील, अंगद, हनुमान और वानर सेना के द्वारा श्रीलंका जाने के लिए 'राम सेतु' का निर्माण कराया था। इसी सेतु से होकर श्रीरामचन्द्रजी अपने सेना सहित लंका गए थे। हमारे सभी पौराणिक ग्रन्थों में राम सेतु निर्माण का बड़ा ही विस्तृत एवं रोचक वर्णन उपलब्ध है।

(वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, स्कन्दपुराण, कूर्मपुराण, भागवतपुराण, गरुड़पुराण, नारदपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण और सभी भारतीय भाषाओं में प्रकाशित रामायणों में राम सेतु का विस्तार से वर्णन है।)

राम सेतु, रामार ब्रिज, नल सेतु और हनुमान सेतु के अतिरिक्त एडम्स ब्रिज, आदम पुल आदि नामों से भी राम सेतु जाना जाता है।

प्रत्येक देश अपने पूर्वजों की धरोहर को सुरक्षित रखने का हर सम्भव प्रयत्न करता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सेण्ट पाल गिरजाघर, लन्दन को हिटलर ने भी बमवर्षा से मुक्त रखा था। पेरिस को योरोपीय संस्कृति का उत्स माना जाता है, उसकी पुरा-सम्पत्ति को क्षति न पहुंचने पाए, इसका पूरा ध्यान मित्र राष्ट्र की सेनाओं ने रखा था। सालोमन द्वारा बनवाए गए मन्दिर की एक शेष ध्वस्त दीवार को यहूदी आज तक श्रद्धा से पूजते हैं, अल-अक्सा के लिए झगड़ा होता रहता है, सोफिया चर्च (कुस्तुन्तुनिया, जिसे तुर्कइस्तम्बुल कहते हैं) आज भी यथावत् सोफिया मस्जिद के नाम से सुरक्षित है।

राम सेतु का ही इतना विरोध क्यों?

कुतुबमीनार-दिल्ली को कोई क्षति न पहुंचे इसलिए मैट्रो रेल का रास्ता बदल दिया गया। ताजमहल की सुन्दरता तथा सुरक्षा को ध्यान में रखकर आगरा क्षेत्र के 300 से अधिक कारखानों को बन्द करवा कर लाखों लोगों को बेरोजगार कर दिया गया। हजरतबल (कश्मीर) में मोहम्मद साहब के बाल को संरक्षित कर रखा गया है, परन्तु रामसेतु को तोड़ने के लिए यह सरकार 2,740 करोड़ रुपया खर्च करने जा रही है। संप्रग सरकार अपने देश की कालजयी संस्कृति और अद्भुत स्थापत्य की धरोहर को अमेरिका के इशारे पर नष्ट करने में जुटी हुई है। इस प्रकार और इसके सहयोगियों का **राम से वैर, रामनाम से वैर, रामधाम से वैर और रामकाज से वैर है,** यह अब किसी से छिपा नहीं रह गया है।

जाके प्रिय न राम वैदेहि, तजिये ताहि कोट वैरी सम जद्यपि परम स्नेही।

विनय न मानत जलधि जड़, गए तीन दिन बीत।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होए न प्रीत।।

ऐतिहासिक संदर्भ में रामसेतु के निहितार्थ

रामाय रामचन्द्राय राममद्राय मेद्यसे
रघुनाथाय नाथाय सीतया पतये नमः

भारत एक सनातन राष्ट्र है। इसकी संस्कृति सनातन संस्कृति है। 'सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा' यजुर्वेद। इनके मूल में वेद है। वेद को सारे पश्चिम के विद्वानों को झक-मारकर मानव पुस्तकालय की प्रथम पुस्तक के रूप में स्वीकारना पड़ा है। और वेद के काल निर्णय के जितने भी प्रयास हुए चाहे वह वेद में वर्णित भाषा के आधार पर हों या व्याकरण के आधार पर या नक्षत्रमाला के आधार पर हों या भूगर्भ शास्त्र के आधार पर हो सारे प्रयास विफल सिद्ध हुए हैं क्योंकि वेद अपौरुषेय है अनन्त एवं सनातन है। इसकी पुष्टि राम सेतु के प्रकटन से भी हो गई है।

जिस पश्चिम ने षड्यंत्र पूर्वक इस राष्ट्र की, इस संस्कृति की, वेद की सनातनता और अपौरुषेयता को अस्वीकार किया था जाने-अनजाने उन्हीं के द्वारा राम सेतु की विद्यमानता के प्रकटन ने इस सनातन सत्य को पुनः प्रकट कर दिया कि यह एक सनातन राष्ट्र है, इसकी संस्कृति सनातन संस्कृति है और यह वेद पर आधारित है। वेद स्वयं अपौरुषेय, सनातन एवं अनन्त है।

यह सभी मानते हैं रामायण काल में वेद प्रतिष्ठित हो चुके थे। राम सहित चारों भाई गुरुकुल में वशिष्ठजी के यहां पढ़ते हैं तब वेदों का भी अध्ययन करते हैं। और राम और लक्ष्मण सीता अपहरण के पश्चात् उसकी खोज में ऋषिमूलक पर्वत के पास पहुंचते हैं। बालि के भय से सुग्रीव ऋषिमूलक पर्वत पर हनुमानजी सहित वास करता था। उसे संदेह हुआ कहीं ये बालि के दूत या भेदिये तो नहीं हैं जिसे उसने मेरे वध के लिए भेजा है। तो उनका भेद लेने के लिए हनुमानजी को भेजते हैं। हनुमानजी की रामचन्द्रजी से जो वार्ता होती है और हनुमानजी के लौटने पर प्रभु राम लक्ष्मण से कहते हैं—जिसने वेदों का, व्याकरण का सांगोपांग अध्ययन न किया हो वह ऐसी भाषा बोल नहीं सकता। स्पष्ट है रामायण काल में वेद प्रतिष्ठित थे।

मनमोहन सिंह की सरकार के काल में अमेरीका के नासा नामक ज्योतिष एवं विज्ञानशाला की वेधशाला ने, भारत एवं अन्य देशों के उपग्रहों ने भी समुद्र के गहरे चित्र खींचे और वह चित्र जब प्रकाशित हुए तो पाया कि श्रीलंका और भारत के बीच एक बहुत बड़ी दीवार है, सेतु है, ब्रिज है।

उसका Base 2 मील यानी 3 किलोमीटर चौड़ा है। गहराई से ऊपर आते हैं तो सेतु की 50 से 100 फीट चौड़ाई बनती है जिससे लोग आते जाते हैं। एक छोर से दूसरे छोर तक उसकी लम्बाई 48 किलोमीटर है यानी 30 मील। उसकी मिट्टी और पत्थर लिया—उसकी बनावट के चित्र खींचे तो पाया यह मनुष्य निर्मित है। कार्बन डेटिंग की तो पाया 17 लाख वर्ष पुराना है। जैसे ही ये तथ्य उद्घाटित हुए वैसे ही विज्ञान जगत् के अन्दर ज्योतिष जगत् के अन्दर, विद्वत् जगत् के अन्दर एक हलचल मची।

इस प्रकार के सेतु का वर्णन किसी पुस्तक में मिलता है या नहीं? तो ध्यान में आया पश्चिम ने जिसे Myth कहा, माइथोलॉजी कहा, मनगढ़न्त कहा उस एक मात्र रामायण में ही मिलता है।

वैश्विक दुष्टता, आतंक, अपराध इसको जो नेतृत्व दे रहा रावण था। उस समय मानवीय शक्ति और दैवीय शक्ति ने जो युद्ध लड़ा था उस समय सेतु बांधा गया था। इसके अतिरिक्त विश्व की किसी इतिहास पुस्तक के अन्दर इसका कोई वर्णन नहीं मिलता है। और यह रामायण का वर्णन है। त्रेता युग का वर्णन है। कलियुग के 5100+8 लाख 64 हजार द्वापर के त्रेता के मध्य पूर्व में राम आये तो साढ़े 6 लाख मध्य के पूर्व तो 50 हजार से लाख वर्ष और जुड़ जाएगा। इस प्रकार 16-17 लाख वर्ष बन जाता है।

(1) स्पष्ट है काल गणना कहती है यह प्रभु राम के आने का समय है?

(2) दूसरी बात कोई भी इतिहास संदर्भ उपलब्ध है तो वह रामायण है।

तो तुरन्त एक आवाज उठी नासा ने और अन्यों ने जो भी फोटो प्रकाशित की है वह सेतु और कोई नहीं है, नल-नील के द्वारा, हनुमानजी के नेतृत्व में प्रभु राम की छत्रछाया में निर्मित सेतु ही है। इसके अतिरिक्त और कोई नहीं है।

इतिहास में नल-नील सेतु का कहीं हनुमान सेतु नाम मिलता है। इसलिए लोगों ने कहा यह और कुछ नहीं यह राम द्वारा निर्मित कराया गया सेतु है इसलिए राम सेतु है। जिसे पश्चिम ने अपना ठप्पा लगाने के लिए एडम्स ब्रिज और आदम पुल के नाम से पुकारा है।

अब पश्चिम के लिए समस्या! क्योंकि उन्होंने भारत की श्रेष्ठता को अस्वीकारा, उसके राष्ट्र जीवन को अस्वीकार करते हुए कहा—

भारत कोई राष्ट्र ही नहीं है।

यह तो अंग्रेजों की कृपा से अब एक मिले-जुले राष्ट्र का रूप ले रहा है।

आर्य स्वयं इस देश में आक्रान्ता के रूप में आए।

वेद शैशव मन का चिंतन है।

संस्कृत मृत भाषा है।

रामायण-महाभारत Myth हैं। माइथोलॉजी है, गपोड़े हैं।

भारत में कहीं कुछ श्रेष्ठता दिखती है तो उसे हमने पश्चिम से लिया है!

पर इस राम सेतु के प्रकटन से अब स्थिति पूरी तौर पर विपरीत हो गयी। ये तथ्य स्वयं खंडित हो जाते हैं। अब उनके सामने एक समस्या आ गयी है।

राम सेतु से तो यह सिद्ध हो जाएगा कि विश्व की इस धरती पर 17 लाख वर्ष पूर्व एक समृद्ध, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक जीवनमूल्य था। उस जीवनमूल्य ने विश्वभर में विस्तार पाया था। इसलिए मानवीय जीवनमूल्य इतने विकसित हो सकते हैं, इतने ऊँचे हो सकते हैं वैज्ञानिक हो सकते हैं, और उन्हीं जीवनमूल्यों के आधार पर विश्व का संचालन होता था। इसलिए विश्व की उन्नतम मानवीय सभ्यता का प्रमाण स्थापित हो जाएगा और भारत विश्व गुरु था इसको स्वीकारने के लिए दुनिया की मजबूरी बन जाएगी।

आज के युग को विज्ञान और तकनीकी का युग माना जाता है। उस समय हमारा विज्ञान और तकनीकी कितनी उन्नत थी कि मात्र पांच दिन में इतना लम्बा चौड़ा और गहरा पुल बना दिया और जो आज तक समुद्र के गर्भ में भी अक्षुण्ण है। और सुनामी जैसी प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा का आधार भी बना हुआ है। इसलिए अमेरीका ने नासा को कहा इस सारे को Lock-up में डालकर चुप्पी साध लो।

अब अगर पश्चिम की सत्य के प्रति दृष्टि होती तो वह अपनी भूल स्वीकार करते हुए यह स्वीकार करता कि भारत की सभ्यता पांच हजार वर्ष पुरानी नहीं लाखों वर्ष पुरानी है। सभ्यता का विस्तार भारत से पश्चिम की ओर हुआ है और राम सेतु विश्व का प्रथम आश्चर्य, मानवमात्र की अनमोल धरोहर है और इसे संरक्षित किया जाना चाहिए। और राम सेतु के प्रकाश में भारत का और विश्व के इतिहास का पुनर्विवेचन होना चाहिए।

पर पश्चिम की सत्य के प्रति दृष्टि नहीं है। उसके पास तो सदा षड्यंत्र की दृष्टि रही है। उसका सारा इतिहास षड्यंत्र का इतिहास है, कपटाचार का इतिहास है।

भारत ने तो सदा धर्म-दर्शन, सभ्यता और संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल का दान निःस्वार्थ भाव से अपने निष्कंलक चरित्र और निर्मल ज्ञान के द्वारा बिना किसी देश की स्वाधीनता लूटे, धन पर डाका डाले, शील पर आघात किये दिया है।

उसके बदले में वह भारत को आग-आतंक शोषण दे रहा है। भारत को ही मिटाने में लगा है।

पर सत्य पर बहुत काल तक पर्दा नहीं डाला जा सकता। सत्य किसी का गुलाम नहीं होता। इसलिए तो जिस पश्चिम ने षड्यंत्र पूर्वक सत्य पर पर्दा डाला था उसी पश्चिम से भगवान ने पर्दे का अनावरण भी करा दिया। पर वह अब पुनः पर्दा डालने के लिए अपनी स्थापनाओं को वापस ले रहा है। पर हम उस पर निर्भर थोड़े हैं भारत के उपग्रह ने भी तो चित्र खींच लिए हैं।

भारत का भविष्य

क्या भारत मर जायगा? तब तो संसार से सारी आध्यात्मिकता का समूल नाश हो जायगा, सारे सदाचारपूर्ण आदर्श जीवन का विनाश हो जायगा, धर्मों के प्रति मधुर सहानुभूति नष्ट हो जायगी, सारी भावुकता का लोप हो जायेगा और उसके स्थान पर काम रूपी असुर और विलासिता रूपी राक्षसी राज करेगी। धन उसका पुरोहित होगा। प्रतारणा, पाशविक बल और प्रतिद्वन्द्विता ही उनकी पूजा पद्धति होगी और मानवता उनकी बलि-सामग्री हो जायेगी। ऐसी दुर्घटना कभी नहीं हो सकती। **—स्वामी विवेकानन्द**

× × ×

हमें अपने प्राचीन साहित्य में, धर्म में, शास्त्र में जिस विद्या का भग्नांश ही प्राप्त हुआ है उसकी तुलना में आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान की सारी विद्या है नवजात शिशु का अर्थहीन प्रलाप मात्र। जैसे शिशु जो पदार्थ भी सामने देखता है उसे हाथ में उठा, हाथ फिरा, तोड़-फोड़कर बाह्य जगत् का थोड़ा-बहुत ज्ञान संचय करता है किन्तु जगत् क्या है, पदार्थ का असली स्वरूप क्या है व सम्बन्ध क्या है, कुछ भी नहीं जानता, वैसे ही पाश्चात्य विज्ञान प्रकृति के सब स्थूल पदार्थ हाथ में उठा, हाथ फिरा, तोड़-फोड़कर कुछ ज्ञान संचय करता है। किन्तु जगत् क्या है, पदार्थ का असली स्वरूप क्या है, स्थूल-सूक्ष्म में क्या सम्बन्ध है, इस विषय में वह कुछ नहीं जानता और इस विद्या के अभाव में पदार्थ के वास्तविक स्वभाव से अवगत नहीं हो पाता। **—ऋषि अरविन्द**

भारत एक सनातन राष्ट्र

भारत एक सनातन राष्ट्र है, इसकी सीमाएं भी प्राकृतिक हैं, इसकी संस्कृति सनातन है। इसके मूल में वेद हैं, ऋषि हैं, ईश्वर है। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद सनातन अपौरुषेय और अनन्त है। इसलिये वेद की काल मीमांसा के जितने भी प्रयास हुए हैं, वह असफल सिद्ध हुए हैं। मैक्समूलर तथा उनके शिष्य मैक्डॉनल 1,400 ईसा-पूर्व तथा जैकोबी 4,500 ईसा पूर्व बतलाते हैं। लोकमान्य तिलक ने ओरायन नामक ग्रंथ में सिद्ध किया कि वेद अन्तर्साक्ष्य के आधार पर वेद में वर्णित 'अग्राहयण नक्षत्र' का काल ज्योतिष गणना के आधार पर ईसा से कम से कम सात हजार वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। और प्रति दस हजार वर्ष के चक्र के पश्चात पुनः वही स्थिति आ जाती है। अतः वेद मंत्रों का काल आज से 9 हजार वर्ष पूर्व सिद्ध हो जाता है। उससे पहले कितने 10-10 हजार वर्ष के कालचक्र बीते होंगे, इस पर शोध की आवश्यकता है। डॉ. अविनाशचन्द्र घोष द्वारा अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'ऋग्वैदिक इण्डिया' में ऋग्वेद का काल वेद में वर्णित भूगर्भशास्त्र के आधार पर 25,000 से 50,000 ईसा पूर्व सिद्ध करते हैं। काल की इतनी भिन्नता संसार के किसी ग्रंथ में नहीं पायी जाती। स्पष्ट है वेद के काल गणना के सारे प्रयास असफल सिद्ध हुए हैं। और अब तो राम सेतु के प्रकटन ने भी वेद की सनातनता पर अपनी मुहर लगा दी है। जब राम सेतु का काल 17 लाख वर्ष माना जा रहा है, और यह सर्वसम्मत तथ्य है कि रामायण काल में वेद प्रतिष्ठित थे। हमारी ऋषि परम्परा भी सनातन है। भारत ने जब भी आंखें खोली अपने को विकसित राष्ट्र के रूप में पाया। क्योंकि ब्रह्माजी ने पहले मानसिक सृष्टि की।

मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः। गीता 10/6

पहले चार (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) फिर ऋषियों को प्रकट किया उसके बाद मैथुनिक सृष्टि प्रारम्भ हुई। इस प्रकार ऋषि भी सनातन है और ईश्वर तो सनातन सत्य है ही।

सभ्यता का केन्द्र यूनान नहीं भारत

पाश्चात्य विद्वानों का विचार है सभ्यता यूनान के एथेन्स नगर से प्रारम्भ हुई जो सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तू की स्मृतियों से प्रसिद्ध है तथा यूरोप के भिन्न-

भिन्न नगरों को सभ्यता का दान देने के बाद वह लहर अमेरीका में पहुंची। उसे अंतिम दान देकर फिर वह सभ्यता की धारा सदा के लिये विलुप्त हो गई। इस प्रकार पश्चिमी लोगों को भ्रान्ति है कि सभ्यता का क्षेत्र एथेन्स से हालीवुड तक ही है तथा उसे अन्य किसी प्रदेश की सभ्यता का अंश भी उसे प्राप्त नहीं हुआ।

वास्तव में यूनान के एथेन्स नगर का नाम यूनान के जिस राष्ट्रीय महाकवि होमर के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है, वह राष्ट्रीय महाकाव्यों का गायक स्वयं भारतीय महाकाव्यों से प्रभावित, प्रेरित और संचालित था। होमर भारत के महाकवि सूरदास के समान दोनों नेत्रों से विहीन प्रज्ञाचक्षु होकर एथेन्स नगर की सीढ़ियों पर बैठा हुआ अपने हृदय के गुम्फित भावों को काव्य कलिकाओं में प्रकट करता जाता था। उसके दो प्रसिद्ध महाकाव्य हैं—इलियड और ओडिसी। यूरोपीय साहित्य में होमर के इलियड और ओडिसी का वही स्थान है जो भारतीय एवं एशियाई साहित्य में राम कथा और महाभारत कथा का है। होमर का काव्य शताब्दियों तक यूनानी शिक्षा का आधार रहा है और पेशेवर चारण (काव्योपजीवी) पूरे देश का भ्रमण करते हुए होमर की काव्य रचनाएं गा-गाकर सुनाया करते थे और यूनान के साहित्यकार होमर से अपनी कथावस्तु ग्रहण करते रहे हैं। होमर की रचनाएं इतनी उत्कृष्ट कोटि की थी कि पूर्ववर्ती गाथा-साहित्य महत्त्वहीन होकर लुप्त हो गया। वह होमर का इलियड स्वयं रामायण से प्रभावित एवं प्रेरित है। तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है इलियड रामायण का ही अनुकरण और अनुवाद है। रामायण के कथानक के समान इलियड में भी रानी के आग्रह पर राजा पुत्र को वनवास देता है। उसके साथ छोटा भाई और पत्नी भी चल पड़ते हैं। वन में एक राक्षस उनकी पत्नी उठा लेता है। नायक वनवासी लोगों से मित्रता कर उसकी सेना सजाकर युद्ध की तैयारी करता है। राक्षस का राज्य एक द्वीप में है। नायक दो बार दूत भेजता है। अन्त में युद्ध होता है। राक्षस का एक बंधु नायक का भक्त होता है। राक्षस का कुल समेत नाश होता है। इस प्रकार यूनान का इलियड रामायण का अनुवाद है। यूनान में छठी शताब्दी ई.पू. से दार्शनिक चिन्तन प्रारम्भ होता है, जबकि भारत में यह काल प्रखर दार्शनिक वाद-विवाद का भास्वर, मध्याह्न काल है। पश्चिम में जब प्रथम दार्शनिक थेल्स अनुमान लगा रहा था कि सम्भवतः जल ही सृष्टि का परम सत्य है। उस समय तक भारत में वैदिक दर्शन, उपनिषदों का महानतम वेदांत दर्शन, कल्पसूत्र, जैन एवं बौद्ध आचार्य दर्शन—सभी पूर्णतः विकसित एवं प्रतिष्ठित हो चुके थे। इसलिए सुकरात का भारत के एक मनीषी से वार्तालाप यूनानी इतिहासकारों द्वारा भी प्रमाणित तथ्य है। अरस्तू का सिकन्दर से भारत से भगवद्गीता और एक संत लाने का आग्रह, सिकन्दर का भारत के दार्शनिकों से वार्तालाप, प्लेटो की विचारधारा पर भारतीयता

की छाप, सभी विश्व विश्रुत तथ्य हैं। यूनानी जब भारत में आए तो कपास देखकर विस्मित हुए। कहा—भारतीय क्या विचित्र लोग हैं। ये पौधों पर रुई उगाते हैं। तब तक उन्होंने न गन्ना देखा था, न खाण्ड चखी थी। गन्ने का रस निकलता देखकर बोले—भारतवासी भी अजीब लोग हैं, ये लकड़ियों को निचोड़कर शहद निकालते हैं। दुनिया जीतने की इच्छा रखने वाले यूनानियों ने न कपास का कपड़ा पहना था, न खाण्ड चखी थी तथा संभवतः इस्पात (Steel) भी नहीं देखा था। पोरस से सन्धि के समय सिकन्दर को 20 पौण्ड (10 सेर) फौलाद का उपहार दिया तो सिकन्दर भी विस्मित हो गया। स्पष्ट है सभ्यता, संस्कृति, दर्शन, कला-कौशल का केन्द्र यूनान नहीं भारत रहा है।

अपनी विदेश यात्राओं में प्रो. ओबराय ने अमेरीका की नार्थ कैरोलिना यूनिवर्सिटी में यह पाठ पढ़ाते हुए देखा कि यूनान ही विश्व सभ्यता की जननी है। उन्होंने प्रतिवाद किया—मानव सभ्यता की आदि जननी भारत है न कि यूनान। इस पर एक रोचक वाद-विवाद छिड़ गया। उन्होंने पूछा—2,300 वर्ष पूर्व जब सिकन्दर की विश्व विजय की आकांक्षा थी तो उसने यूनान से, जो यूरोप का एक भाग है, अन्य यूरोपीय देशों की ओर प्रयाण क्यों नहीं किया। इसके उत्तर में वहां के अध्यापक ने कहा—इसका कारण हम नहीं जानते हैं। उन्होंने हंसकर कहा—बेचारा सिकन्दर इन देशों का अभियान तो तभी कर सकता था, जब इन देशों का कहीं कोई अस्तित्व होता। उस समय तक लगभग सारे यूरोप में मनुष्यों और पशुओं का कच्चा मांस खाने वाले, असभ्य, नंगे, बर्बर लोगों का निवास था। जिनकी चर्चा करना तक भी यूनानी इतिहासकारों ने अपनी लेखनी का अपमान समझा।

चौथी शताब्दी तक इंग्लैण्ड तो रोमन साम्राज्य का गुलाम था। उस काल की लैटिन भाषा के कोश में आंग्ल, एंग्लो आदि शब्दों का अर्थ ही गुलाम किया जाता था। इंग्लैण्ड के लोग रोम के बाजारों में गुलामों की तरह बिकते थे। उन्हें नग्न-अर्ध नग्न रूप में मण्डी में बैठाकर क्रय-विक्रय किया जाता था।

मास्को में प्रकाशित Ancient History Davier द्वारा लिखित An outline of the History of world तथा C या O Stephenson द्वारा लिखित Mediaeval History के अनुसार रोम गुलामों पर सबसे अधिक अत्याचार करने वाला साम्राज्य था। वहां अन्य गुलामों के समान अंग्रेज गुलामों को भी रोमन अमीरों के द्वार पर गले में जंजीर बांध कर कुत्ते की तरह बैठाया जाता था। उन्हें गलियों या चौराहों में सोना पड़ता था। उनसे अपराध होने पर उन्हें समुद्र में मगरमच्छ के सामने जीवित ही डाल दिया जाता था। और उनके निरपराध होने पर उन्हें खुले गोलाकार क्रीड़ाक्षेत्र (Stadium) में हिंस्र पशुओं से अथवा गुलामों

को आपस में शस्त्रों से लड़वाकर मनोविनोद किया जाता था। हार जाने पर उनको मारकर उनके शव को रथ के पीछे फंसाकर घसीटा जाता था।

यूरोप के अंधकार युगीन इतिहास का एक पुराना मानचित्र मिला है ई. पू. 6 शती का। जिसमें धरती को एक गोल थाली जैसा दिखाया गया है तथा उसमें यूरोप और एशिया का बेढब चित्र ऊपर-नीचे दिखाया गया है। उसमें इंग्लैंड का कोई संकेत नहीं है।

बाइबिल में धरती को चपटा मानने के कारण गैलीलियो, जीनो तथा ब्रूनो आदि वैज्ञानिकों द्वारा धरती को गोल कहने के कारण सताया गया, जीवित जलाया गया। भारत के वेद में भूगोल शब्द का प्रयोग भूमि के गोल होने का प्रमाण है।

इसलिये भारत ही विश्व सभ्यता का केन्द्र है। हमारा इतिहास सृष्टि के प्रारम्भ से शुरू होता है। पश्चिम ने जो भ्रम फैलाया आर्य बाहर से आये हैं। यदि आर्य बाहर से आक्रान्ता बनकर आए होते तो देश का आर्यों से पूर्व का नाम क्या था? इतिहास एवं वैदिक वाङ्मय के अनुशीलन से पता चलता है कि इस देश का प्राचीनतम नाम आर्यावर्त्त ही है। यदि आर्यों से पूर्व कोल्ह-भील, द्रविड़ आदि का निवास था तो इस देश का नाम कोल्हावर्त्त, भीलावर्त्त या द्रविड़वर्त्त होना चाहिए था, जिसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। आर्यावर्त्त इस देश का जातिपरक नाम है। इस देश का भूगोल परक नाम हुआ सप्तसिन्धु। ऊपर में सिन्धु, नीचे सरस्वती और बीच में पंजाब की पांच नदियाँ। (शतद्रु, विपासा, इरावती, चन्द्रभागा, वितस्ता) अतः अब तो सिद्ध तथ्य है आर्य भारत के ही मूलवासी हैं और यहां से मनु के जलप्लावन के समय सारे यूरोप के देशों में फैल गए। मनु के जलप्लावन की घटना विश्व प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना है, जिसका उल्लेख भारतीय ईरानी, यहूदी, ईसाई, इसलामी, बेबिलोनी, मिस्री, यूनानी, चीनी तथा चाल्डिया के प्राचीन ग्रंथों में पाया जाता है। मनु के जलप्लावन के समय तत्कालीन आर्यावर्त्त हिमालय से विंध्याचल तक जल में डूब गया था। उस समय आर्य जाति के बहुत से सदस्यों ने अफगानिस्तान, ईरान के रास्ते से जाकर एशिया एवं यूरोप की सीमा पर सबसे ऊंचे पर्वतशिखर ऐलबरुण (काकेशस पर्वत) की छाया में शरण ली। यहां आर्यों के बीजों की रक्षा हुई भयंकर जल प्रलय के समय, उसे आर्यानाम् बीजम कहा गया। तथा आजकल अजरबेजान कहलाता है। जलप्लावन के बाद अजरबेजान से आर्यों की शाखा पुनः लौटकर भारत में आयी तथा एक शाखा वहीं से आगे यूरोप और मध्य एशिया के विभिन्न देशों में जा बसी। यहां से भारतीय संस्कृति का विस्तार प्रारम्भ हो जाता है। क्योंकि उस समय हमारे पास एक राष्ट्रीय लक्ष्य था—'**कृण्वन्तोविश्वमार्यम्**' का। भारत के आर्यों की एक शाखा ईरान में बस गई जो पारसी कहलाये उसके

द्वारा भी भारतीय संस्कृति का विशेषकर सूर्य पूजा का प्रसार विश्व के देशों में हुआ। ईसाइयत से पूर्व आर्यावर्त्त से आयरलैण्ड तक मित्र (सूर्य) पूजा प्रचलित थी। अर्नेस्ट रेनन (Ernest Renan) ने कहा, यदि ईसाइयत का प्रसार अपने इतिहास के उषाकाल में रुक जाता तो सारा संसार सूर्य पूजक होता है।

इसलिये विल डूरेन्ट स्पष्ट रूप से कहता है—भारत ही हमारी जाति की जन्मस्थली थी और संस्कृत ही हमारी यूरोप की सब भाषाओं की जननी है। भारत हमारे दर्शन की जननी था, हमें अरब के माध्यम से प्राप्त गणित-ज्ञान की जननी था, बुद्ध के माध्यम से ईसाई आदर्शों की जननी और ग्राम पंचायत परम्परा द्वारा आत्मानुशासन और लोकतंत्र की जननी था। भारत अनेक दृष्टियों से सारे विश्व की माता है।

इसी बात की पुष्टि में फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् क्रूजर (Creuzer) भी कहते हैं—यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा देश है, जो स्वयं को 'मानव जाति का पालना' होने की घोषणा करने का अधिकारी है अथवा प्रारम्भिक सभ्यता का द्रष्टा है, जिसकी सभ्यता की किरणों ने प्राचीन विश्व के सभी भागों को आलोकित किया है, जिसके ज्ञान के वरदान ने मनुष्य को 'द्विज' बनाया है, अथवा प्राकृत से संस्कृत किया है, तो वह देश वास्तव में भारतवर्ष है।

स्पष्ट है भारत अग्रजन्मा एवं 'सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा' होने से वेद भगवान का आदेश है—'कृण्वन्तेविश्वमार्यम्' सारे संसार को श्रेष्ठ, महान्, सज्जन, आर्य बनाओ। और मनु भगवान् का आदेश है विश्ववासियों को—स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पथिव्यां सर्व मानवाः। अपने-अपने चरित्र व आचरण की शिक्षा भारत से ग्रहण करें। यह पौराणिक नहीं ऐतिहासिक तथ्य है, भारत प्रथम से ही विश्व मनीषा के लिये आकर्षण का केन्द्र रहा है आशा और मार्गदर्शन का केन्द्र रहा है। भारत की शिक्षा ग्रहण कर एवं भारत आकर अपने को धन्य एवं कृत-कृत्य माना। जो कि ऊपर लिखित विल डूरेन्ट, क्रूजर आदि के कथन से भी स्पष्ट है। अतीत में विश्व का गुरु भारत था और भविष्य का भी गुरु भारत ही होगा। विश्व में भारत का सांस्कृतिक साम्राज्य पहले फैला फिर कहीं-कहीं आर्थिक, व्यापारिक एवं राजनीतिक विस्तार भी हुआ। पूर्व में फिजी द्वीप समूह, उत्तर में साइबेरिया पश्चिम में मैक्सिको, बोलीविया, पेरू एवं ग्वेटेमाला तथा दक्षिण में ऑस्टिक द्वीप तक भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ था। आज भी विश्व के इतिहास से चार पर्दे हटा दिये जाएं—यथा ईसा से पूर्व यूरोप, मुहम्मद से पूर्व अरब, कोलम्बस से पूर्व अमेरीका तथा फिलीप से पूर्व फिलिपाइन तो आपको सारे विश्व में भारतीय संस्कृति की झलक मिलेगी।

हमारे राष्ट्र जीवन का आधार वेद—

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में कहा गया है—

माता भूमिः पुत्रो अहं पथिव्याः

अर्थात् भूमि मेरी माता है, मैं उसका पुत्र हूं। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त विराट राष्ट्र पुरुष की वंदना की गयी है—

'ऊँ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमि ँ सर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्।।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां ँ शूद्रो अजायत।।'

विराट् राष्ट्र पुरुष के हजारों सिर, आंखें, पैर भूमि के अन्दर तथा बाहर बतलाए गए हैं। उसके मुख, हाथों, उदर तथा पैरों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की उत्पत्ति दी गई है। इसमें विराट राष्ट्र पुरुष की स्पष्ट झलक है।

ऋग्वेद (10, 192, 2) में कहा है—

संगच्छध्वं सं वो मनांसि जानताम्
देवाः भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।

हम सब कदम-से-कदम मिलाकर चलें, सब मिलकर विचार-विमर्श करें, एक मन हो जाएँ। बुजुर्गों का कहना है कि मनुष्य से देवत्व प्राप्त करने का यही रास्ता है।

वाल्मीकीय रामायण की किसी टीका में भगवान् श्रीराम ने मातृभूमि के प्रति अनन्य भक्ति को स्वर्ग से महान् माना है—

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। विष्णु महापुराण में देश प्रेम एवं भारत-भक्ति का वर्णन करते हुए लिखा है—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात्।।

युगों-युगों से यही भावना बार-बार भारत के अनेक ऋषियों, मुनियों, चिन्तकों, लेखकों, सुधारकों, सन्तों तथा भक्तों ने व्यक्त की है।

भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है।

पश्चिमी राष्ट्र राजनीतिक इकाई से बनता है। यूरोप के रूस से लेकर आयरलैण्ड तक संस्कृति लगभग समान है। पूरे यूरोप में समान भाषा, समान धर्म,

समान रहन-सहन, वेश-भूषा, सभ्यता भी समान है। पूरे यूरोप का भूखण्ड लगभग भारत जितना ही है फिर भी बीसियों राष्ट्र हैं और नये राष्ट्र बनने की सम्भावना सदा बनी रहती है। भारत में सन् 1947 तक ब्रिटिश शासन में साढ़े पांच सौ रियासतें थी। उससे पूर्व भी देश में हजारों छोटे-बड़े राज्य रहे होंगे। मारवाड़, मेवाड़, चोल-चालुक्य आपस में लड़ते रहते थे। राज्य तो अनेक थे किन्तु संस्कृति एक होने के कारण राष्ट्र एक था। पर यह बात यूरोपवासी को समझ में नहीं आती है। क्योंकि उनकी जो जीवन प्रणाली है उसमें संस्कृति का कहीं कोई स्थान नहीं है। पर हमारी जीवन प्रणाली में संस्कृति को अभिन्न स्थान प्राप्त है। हमारे जो सांस्कृतिक सूत्र हैं वह सारे देश में एक हैं। एक ही चेतन तत्त्व ने आत्म-तत्त्व ने, ब्रह्म तत्त्व ने अपने आपको जीव जगत्, ईश्वर के रूप में अभिव्यक्त किया है। अर्थात् एक ही तत्त्व विविध रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। स्पष्ट है सारी विविधताओं में एक ही तत्त्व समाया हुआ है। अतः हमारे ऋषियों ने विविधता में एकत्व को देखकर यह घोषणा की—'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति' अर्थात् सत्य एक है विद्वान् लोग उसे भिन्न-भिन्न प्रकार से अभिव्यक्त करते हैं। इस मौलिक एकत्व दृष्टि का जब व्यक्ति और समाज के जीवन में व्यावहारिक रूप से क्रियान्वयन प्रारम्भ हुआ तो उसमें कुछ उपसिद्धान्त विकसित हुए जिन्होंने कि सभी विविधताओं में एकत्व की दृष्टि प्रदान की। ये उपसिद्धान्त थे—

(1) रूप अनेक ईश्वर एक।

(2) पंथ अनेक गंतव्य एक।

(3) भाषा अनेक भाव एक।

(4) व्यवस्था अनेक धारणा एक।

उपर्युक्त उपसिद्धान्त ही भारतीय संस्कृति की विशेषता बने। हम सब मूल रूप में, वास्तविक रूप में आत्मा, ईश्वर या ब्रह्म हैं। मानव जीवन का लक्ष्य इस मूल स्वरूप को, आत्म-स्वरूप को, ईश्वर रूप को पाना है, अतः जीवन काल में चारों धामों, द्वादश ज्योतिर्लिंग आदि के दर्शन आवश्यक है। जब तक मूल लक्ष्य अपने आत्मस्वरूप को नहीं पायेंगे तब तक पुनर्जन्म होता रहेगा, जैसा करेंगे वैसा भरेंगे उसके अनुसार ही पुनर्जन्म होगा। ये सब बातें परम्परा से हमारे अन्दर बैठा दी गई है। और हमारे यहां धर्म Art of life है। जीवन जीने की कला है। हमारे यहां न लोक की उपेक्षा है न परलोक की। लोक परलोक, प्रवृत्ति-निवृत्ति का सामरस्य है। इसलिए चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को स्वीकारा गया है। यह सब बातें परम्परा से हमारे मन-बुद्धि में बैठा दी गई है। पश्चिम को ये सब बातें इसलिए समझ में नहीं आती क्योंकि उनके यहां जीव-जगत्-ईश्वर की अवधारणा

भिन्न है और धर्म उनके यहां Part of life है, अतः उनके जीवन में इन बातों को स्थान नहीं है। अतः पश्चिम में राजनीति के आधार पर एक देश है पर भारत में संस्कृति के आधार पर एक देश है, संस्कृति के आधार पर पूरा विश्व एक परिवार है, पश्चिम में राजनीति के आधार पर पूरा विश्व बाजार है, साम्राज्य-उपनिवेश है।

भारत की राजनीतिक एकता चाहे अनेक बार खंडित होती रही है। किन्तु, हमारी सांस्कृतिक एकता सनातन काल से अभेद्य रही है। वास्तव में उत्थान-पतन के अनेक झंझावातों में तथा विदेशी आक्रमणों के प्रचण्ड बवण्डरों में भारत को सदा एक बनाये रखने वाली यह सांस्कृतिक एकता ही उसकी संजीवनी शक्ति है।

भाषाएँ बांटती हैं, संस्कृति जोड़ती है। राजनीति तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है। जातियां बांटती हैं, संस्कृति जोड़ती है। वर्ण आश्रम, जाति-उपजाति, प्रदेश, वेश-भूषा, आर्थिक स्तर आदि को संस्कृति ने जोड़ रखा है। भारतीय समाज नगरवासी, ग्रामवासी और वनवासी तीन स्तरों पर विकसित हुआ है। किन्तु, सभी स्तरों पर एक ही महान् संस्कृति का स्वर्णिम-सूत्र पूरे समाज को एकात्मता में बांधने में सहायक सिद्ध हुआ है। अतः राष्ट्र की एकता का स्वर्णिम-सूत्र संस्कृति ही है। यह सूत्र टूटते ही भारत खण्ड-खण्ड हो जाएगा।

जो संस्कृति अपने देश में समन्वय का स्वर्णिम-सूत्र है, वही संस्कृति भारत के सांस्कृतिक दिग्विजय एवं अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों की प्राणधारा है। संस्कृति के स्वर्णिम-सूत्र ने ही भारत को जगद्गुरु के सिंहासन पर बिठाया है। सांस्कृतिक सम्बन्ध हृदयों का बंधन है जिसे काल के थपेड़े तोड़ नहीं पाते। इसलिये यदि समस्त दक्षिण-पूर्व व उत्तर एशिया के पचासों देश भारत को पुण्यभूमि मानकर भारत के कपिलवस्तु, गया, हरिद्वार की धूलि को मस्तक पर चढ़ाते हैं; यदि फिजी, गिआना, मारीशस, सूरीनाम, त्रिनीदाद के लोग गंगास्नान के लिए हजारों मील दूर से भारत की यात्रा पर आते हैं, और हिन्दी को राष्ट्र भाषा का सम्मान देते है। इंडोनेशिया के मुसलमान रामलीला-कृष्णलीला को राष्ट्रीय महोत्सव के रूप में मनाते हैं; अपने देश में सबसे पहले अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन रखते हैं, जापान का प्रधानमंत्री भारत की धूल को अपने मस्तक से लगाता है, तो केवल सांस्कृतिक सम्बन्धों के कारण ही।

भारत एक सांस्कृतिक राष्ट्र के साथ-साथ धार्मिक राष्ट्र है। भारत एक धर्म-प्रधान राष्ट्र होने से स्वदेश एवं स्वधर्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यहां देवभक्ति और देशभक्ति की एक अखण्ड अभिन्न परम्परा रही है। वेद से लेकर विवेकानन्द साहित्य तक सर्वत्र देवभक्ति और देशभक्ति साथ-साथ चली है। देश और धर्म को भिन्न-भिन्न मानने से देश की सेवा धर्मपूर्वक नहीं हो सकेगी और परलोक की उपेक्षा होगी, देश की उपेक्षा करके धर्मपालन हमें इहलोक में

उत्थान न दे सकेगा जैसा कि हम मध्ययुग में पाते हैं। मध्ययुग में संत देश के प्रति उदासीन थे। यदि धर्म से राजनीतिक बेहोशी फैलती है, राष्ट्र के प्रति उदासीनता आती है तो उससे क्या लाभ? यदि धर्मसाधना से देश लुट जाए तो वह साधना किस काम की? शास्त्र का मत है—'यतोऽभ्युदय-निःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः।' जिससे इहलोक का अभ्युदय, परलोक में मोक्ष की प्राप्ति हो, वही धर्म है। अतः भारत में राजनीति धर्म का एक अंग है। इसे राजधर्म, श्रेष्ठ धर्म कहा है। बिना धर्म के राजनीति वेश्या के समान हो जायेगी। अतः भगवान् राम-कृष्ण जहां धर्म के रक्षक हैं वहां राष्ट्र निर्माता भी हैं? गीता का अवतरण राष्ट्ररक्षा और धर्मरक्षा दोनों के लिए हुआ है।

भारत में देशभक्ति ही सर्वोच्च धर्म है तथा भारतभक्ति ही भगवान् की भक्ति भी सिद्ध होती है। चारों धामों की तीर्थयात्रा के धार्मिक कृत्य से राष्ट्रीय एकता का जो चमत्कार हिन्दू धर्म ने कर दिखाया वह विश्व इतिहास में अद्वितीय है। तीर्थयात्रा की परम्परा से देवदर्शन और देशदर्शन, दोनों साथ-साथ सिद्ध हो जाते हैं। गंगोत्री के गंगाजल की कांवर भरकर यात्री सारे देश की यात्रा करते हुए जब रामेश्वर में पहुंच कर उस गंगाजल से भगवान् शिव का अभिषेक करते हैं या रामेश्वर से सागर के जल की कांवर लेकर हिमालय में केदारधाम में भगवान् शिव का अभिषेक करते हैं उन्हें अलौकिक आध्यात्मिक संतुष्टि और भारत की सांस्कृतिक अखण्डता की अनुभूति होती है।

हिन्दू इस देश भारत को ही अपनी जन्मभूमि, पितृभूमि, पुण्यभूमि, धर्मभूमि, मोक्षभूमि एवं अपना सर्वस्व मानते हैं। यही कारण है कि हिन्दू मात्र के लिए यह धर्मभूमि और कर्मभूमि दोनों है। हिन्दू का भारत से जन्म-मरण एवं जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है। हिन्दू मात्र की समूची श्रद्धा भारत के भीतर है, भारत के बाहर कहीं नहीं है।

मुसलमान की पुण्यभूमि भारत नहीं अरब देश हैं तथा ईसाइयों के लिए येरूशलम पुण्यभूमि बन जाता है, भारत नहीं। इस तरह भारत में रहते हुए भी अहिन्दुओं की श्रद्धा भारत के बाहर चली जाती है। इसलिए वे पाकिस्तान के नाम पर देश के टुकड़े करते हैं तथा वे नागालैण्ड, मिजोरम, बोडोलैण्ड, छोटानागपुर आदि को अलग ईसाई राज्य बनाकर भारत को खण्ड-खण्ड करना चाहते हैं।

हिन्दू धर्म-दर्शन पूर्णतया स्वदेशी धर्म-दर्शन है। इसकी सभी शाखाएं भारत में ही जन्मी तथा फली-फूली है। अतः हिन्दू धर्म ही भारत का धर्म है। इसी के उत्थान से भारत का उत्थान होगा। इसे ही ऋषि अरविन्द घोष सनातन धर्म कहते हैं और वे कहते हैं—सनातन धर्म के उत्थान से ही भारत का उत्थान होना है और सनातन धर्म के पतन से भारत का पतन जुड़ा हुआ है।

इस प्रकार स्पष्टतः भारत भक्ति ही देशभक्ति और देवभक्ति दोनों ही है। तभी भारत की वंदना भारत माता के रूप में, जगदम्बा के रूप में, मां भवानी के रूप में, जगज्जननी के रूप में की गयी है। इसलिए स्वाधीनता आन्दोलन के प्रसंग में भारत का उद्घोष था, जयघोष था—वन्दे मातरम्!

जिस प्रकार देवभक्ति की पुकार है उसी प्रकार देशभक्ति की पुकार है। देश के लिए स्वामी विवेकानन्द रोते हैं, तड़पते हैं। स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। तिलक रोते हैं। ऋषि बंकिम देश के लिये रोते हैं और उसे मां दुर्गा में तदाकार देखते हैं। ऋषि अरविन्द घोष अपने तीन पागलपन में एक में वे कहते हैं, मैं देश को मृण्मय नहीं चिन्मय और मां भवानी में उसे तदाकार देखते हैं। वीर सावरकर रोते हैं। मालवीय जी रोते हैं। सुभाष-गांधी रोते हैं। महर्षि दयानन्द रोते हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर रोते हैं। क्या मेरी मां दुर्बल है? जिसने सारे विश्व को सभी दृष्टियों से स्तनपान कराया है, वह कभी दुर्बल नहीं हो सकती। महर्षि दयानन्द जी कहते हैं—सुराज्य से स्वराज्य कोटिशः अच्छा है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—पचास वर्षों के लिए सभी देवी-देवताओं को भूल जाओ, तुम्हारा एकमात्र आराध्यदेव, भारत है। सुभाष बोस कहते हैं—तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।

यदि इस पृथ्वी तल पर ऐसा कोई देश है, जो मंगलमयी पुण्यभूमि कहलाने का अधिकारी है, ऐसा देश, जहाँ संसार के समस्त जीवों को अपना कर्मफल भोगने के लिये आना ही है—ऐसा देश जहाँ ईश्वरोन्मुख प्रत्येक आत्मा का अपना अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने के लिये पहुँचना अनिवार्य है, ऐसा देश जहाँ मानवता ने ऋजुता, उदारता, शुचिता एवं शांति का चरम स्पर्श किया हो—तथा इन सबसे आगे बढ़कर भी जो देश अन्तर्दृष्टि एवं आध्यात्मिकता का घर हो—तो वह देश भारत ही है।

—स्वामी विवेकानन्द

भारत की सांस्कृतिक एकता

भारत का स्वरूप

संस्कृति का महत्त्व

वैदिक राष्ट्रवाद

वैदिक ऐक्य मंत्र

रामायण

महाभारत

पुराण

काव्य

जातियों का समन्वय

उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ

तीर्थों द्वारा ऐक्य संवर्धन

संस्कृत द्वारा सांस्कृतिक ऐक्य

आध्यात्मिक मूल्य

समान नैतिक मूल्य

समान सुख-दुःख की अनुभूति

जीवन दृष्टि

धर्म, समन्वय एवं सद्भाव

भाषाओं की विविधता में भाव की एकता

प्रदेशों की अनेकता में देश की एकता

आधुनिक राष्ट्रनायकों का योगदान

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार हिन्दू जाति एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में रही है, जिसका एक ही इतिहास, साहित्य और सभ्यता है।

पाश्चात्य विद्वान् विन्सेन्ट स्मिथ ने भी लगभग इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। उनका कहना है—'निःसंदेह भारत में एक आधारभूत एकता है। यह एकता भौगोलिक पृथक्ता या राजनैतिक श्रेष्ठता से प्राप्त होने वाली एकता से कहीं गहरी है। यह एकता असंख्य परस्पर विरोधी रक्त, रंग, भाषा, पोशाक, रीति-रिवाज तथा साम्प्रदायिक घेरे से बहुत ऊपर उठी हुई है।

राधाकृष्णन के अनुसार—'हिन्दू धर्म नैतिक जीवन पर बल देता है और उन सभी वर्गों में भ्रातृत्व स्थापित करना चाहता है जो नैतिक नियम अथवा धर्म द्वारा निर्धारित मार्ग पर चलना अपना कर्तव्य समझते हैं। हिन्दू धर्म कोई सम्प्रदाय नहीं प्रत्युत उन सभी का एक महान् भ्रातृ संघ है, जो सत्य को मानते हैं और निष्ठापूर्वक सत्य की खोज करते हैं।'

भारत के भूतपूर्व विदेशमंत्री प्रसिद्ध न्यायविद् स्वर्गीय मुहम्मद करीम छागला ने भी हिन्दू धर्म की व्याख्या करते हुए कहा था, 'तुम चाहे आस्तिक हो, चाहे नास्तिक हो, चाहे सन्देहवादी हो। फिर भी हिन्दू हो। वास्तव में हिन्दू कोई रिलिजन नहीं। यह तो एक जीवन विधि है, विचार पद्धति है। फ्रांसीसी लोग अपनी तर्क-बुद्धि और सूक्ष्म विश्लेषण के अन्तर्गत समस्त भारतीयों को चाहे वे किसी भी जाति या सम्प्रदाय के क्यों न हों, हिन्दू ही कहते हैं। मैं समझता हूं कि जो देश में रहते हैं, इसे अपना घर मानते हैं, उनके लिये यही सम्बोधन है। सच बात तो यह है कि हम सब हिन्दू हैं, भले ही हम भिन्न-भिन्न धर्मों, मजहबों या सम्प्रदायों को मानने वाले हों। मैं हिन्दू हूं क्योंकि मैं अपने पूर्वजों को आर्यों की सन्तान मानता हूं और उस संस्कृति तथा विचारधारा का पोषक हूं, जिसे वे अपनी भावी पीढ़ियों के लिये विरासत में छोड़ गये हैं। इस व्याख्या से जैन, सिख, बौद्ध आदि सम्प्रदायों के अनुयायियों को ही नहीं बल्कि समझदार, उदारचेता ईसाई और मुसलमान भी अपने को हिन्दू कहने में संकोच नहीं करेंगे।

डॉ. एनी बीसेन्ट कहती हैं—यह समझना भूल नहीं कि हिन्दुत्व के बिना भारत का कोई भविष्य नहीं। हिन्दुत्व ही वह जमीन है जिसमें भारत की जड़ें गहराई तक पहुंची हुई है और उसे उस जमीन से अलग कर दिया जाये तो वह कटे पेड़ की तरह मुरझा जायेगा। भारत में अनेक जातियां और धर्म हैं, परन्तु उनमें से किसी का भी भारत के अतीत के साथ सम्बन्ध नहीं है और न ही उनके कारण भारत की राष्ट्रीयता कायम है। यदि भारत ने हिन्दुत्व की रक्षा नहीं की तो फिर कौन बचायेगा उसे? भारत की रक्षा भारत ही कर सकता है। भारत और हिन्दुत्व में कोई अन्तर नहीं, वे समानार्थक हैं।

भारत की अखण्डता एवं विश्व शान्ति का स्वर्णिम सूत्र : सद्भावना यात्रा

यात्रा से मनुष्य का जीवन एवं जगत् के प्रति दृष्टिकोण व्यापक बनता है। नये-नये व्यक्तियों, वस्तुओं और भूखण्डों के परिचय द्वारा व्यक्तित्व परिपक्व होता है। वेद का संदेश है चरैवेति-2 अर्थात् मानव तुम चलते जाना निरन्तर चलते जाना, बढ़ते जाना। यही प्रगति का लक्षण है। किन्तु चलना सोद्देश्य होना चाहिए, निरुद्देश्य नहीं। सोद्देश्य चलने वाला व्यक्ति, यात्री या यायावर कहलाता है और निरुद्देश्य घूमने वाला आवारा या लोफर। आवास या आजीविका की खोज में देश-विदेश घूमने वाले मानव समूह या मण्डलियाँ घुमन्तू जातियाँ कहलाती हैं। ये खानाबदोश लोग यूरोप में रामणि, रोमा कहलाते हैं। रोमानिया ऐसा देश है जहाँ ऐसे ही घुमन्तू लोगों की अधिकता है। वैसे ये सारे यूरोप, अमेरिका में फैले हुए हैं। रोमानिया, रोमा नाम इनका मूलतः रोम से निकला है। सम्भवतः भारत से ईरान होकर यूरोप की ओर जाने वाले घुमन्तू मानव समूह में रोम जाति के लोग अधिक रहे होंगे। इन्हें जिप्सी (Gipsy) भी कहा जाता है। सम्भवतः यूरोप में इनकी रंग-बिरंगी वेश-भूषा को देखकर लोगों ने इन्हें मिस्र (Egypt) वासी मान लिया होगा। इसलिये इजिप्टवासी की भांति जिप्सी नाम चल पड़ा।

भगवान् बुद्ध ने कहा—

चरथ चिक्कने चारिकम्
बहुजन हिताय बहुजन सुखाय
धर्म चक्रं प्रवर्तनाय

मित्रो! तुम सभी दिशाओं में चलते जाओ। बहुत जनों के हित के लिये, बहुत जनों के सुख के लिये, धर्म चक्र के प्रवर्तन के लिये निरन्तर बढ़ते जाओ।

महापण्डित राहुल सांस्कृत्यान ने घुमक्कड़ शास्त्र नाम पुस्तक में घूमने वाले व्यक्तियों और मानव समूहों की बड़ी महिमा गायी है। वे घुमक्कड़ जाति में घुमन्तुओं और यात्री को सम्मिलित कर लेते हैं और आज संसार में जो कुछ प्रगति

संभव हुई है वह (पर्यटन प्रियता) घुमक्कड़ी के कारण ही हुई। घरघिसु लोगों से कुछ भी प्रगति नहीं हो सकती। राम के वनवास के बिना रामायण का इतिहास कैसे बनता? पाण्डवों के वनवास के बिना महाभारत का घटनाक्रम नितान्त फीका होता। श्रीकृष्ण अपनी जन्मभूमि मथुरा और लीलाभूमि गोकुल-वृन्दावन छोड़कर द्वारिका, हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ, कुरुक्षेत्र, प्राग्ज्योतिषपुर, विदर्भ आदि स्थानों पर घूमते न रहते तो देश का इतिहास आज भिन्न प्रकार का ही होता। शंकराचार्य यदि अपनी जन्मभूमि कालड़ी छोड़ कर देश के चारों धाम की पदयात्रा न करते तो देश की सांस्कृतिक अखण्डता ही असंदिग्ध हो जाती। उस अखण्डता को जीवित रखने के लिए देश के लाखों, करोड़ों लोग निरन्तर चलते हुए इन चारों धाम की यात्राएं करने चले आते हैं एवं तीर्थयात्रा की परम्परा से देव दर्शन और देश दर्शन होना, दोनों साथ-साथ सिद्ध हो जाते। गंगोत्री के गंगाजल की काँवर भर कर यात्री सारे देश की यात्रा करते हुए जब रामेश्वर में पहुँच कर उस गंगाजल से भगवान् शिव का अभिषेक करते हैं या रामेश्वर के सागर के जल की काँवर लेकर हिमालय में केदारधाम में भगवान् शिव का अभिषेक करते हैं तो उन्हें अलौकिक आध्यात्मिक सन्तुष्टि और भारत की सांस्कृतिक अखण्डता की अनुभूति होती है।

यूरोप में राष्ट्र राजनीतिक इकाई को माना जाता है। सारे यूरोप की सभ्यता-संस्कृति लगभग एक समान होने पर भी राजनीतिक अनेकता होने के कारण वहाँ व्यक्तियों के 20 से अधिक राष्ट्र बन गये हैं। और, राष्ट्रों के और बढ़ने की सम्भावना सदा बनी रहती है। भारत में जहाँ सन् 1947 में 550 देसी राजे-रजवाड़े थे और उससे पूर्व हजारों राज्य रहे होंगे। भारत के सांस्कृतिक ऐक्य के चमत्कार से राजनीतिक इकाइयाँ अनेक होते हुए भी राष्ट्र सदा एक ही रहा है। इस सांस्कृतिक एकता के चमत्कार का संवर्द्धन किया हमारी तीर्थयात्रा परम्परा ने, भारत को बचाया संस्कृति ने और संस्कृति को जीवन्त रखा यात्रा-परम्परा ने। यदि राष्ट्र जीवित संस्कृति है तो संस्कृति की श्वसन क्रिया तीर्थयात्रा है। अतः आधारभूत रूप से सांस्कृतिक यात्रा ही करनी चाहिये। क्योंकि वह संस्कृति की साधना के लिए ही है। मात्र मनोरंजन के लिये यात्रा करना उतना फलदायी नहीं जितना कि इतिहास-दर्शन, देश-दर्शन, देव-दर्शन व सांस्कृतिक आदान-प्रदान के उद्देश्य से यात्रा करना है।

संस्कृति संस्कारों की श्रेष्ठ परम्परा है। यह जीवनमूल्यों की पावन प्रणाली है। जीवन में कुछ आदर्श हैं जो जीवन को वास्तविक मूल्य प्रदान करते हैं। श्रेष्ठ आदर्श को जीवनमूल्य कहा जाता है। ऊँचे जीवनमूल्यों को इतना पवित्र एवं मूल्यवान माना जाता है कि उनकी रक्षा के लिए मानव अपने स्वयं के जीवन को भी हंसते-हंसते बलिदान कर देता है। जैसे देवहितार्थ एवं देशहितार्थ महर्षि दधीच

का अस्थिदान, वचन पालन के लिये हरिश्चन्द्र का राज्य एवं अपने परिवार का बलिदान, पितृवचन की मर्यादा के लिए भगवान् राम का राज्य त्याग, प्रण रक्षा के लिए प्रताप की वह तपस्या, स्वाधीनता के मूल्य के लिये भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव, चन्द्रशेखर आजाद आदि के बलिदान, धर्म की रक्षा के लिए हकीकतराय और गोविन्दसिंह के लाडलों का बलिदान, इन सबको जीवनमूल्य प्रदान करने वाले ये ही जीवनमूल्य है। यदि ये जीवनमूल्य ही नष्ट हो गए तो जीवन का मूल्य दो कौड़ी का भी नहीं बचता। इसलिये जीवनमूल्यों पर संकट आने पर जीवनमूल्यों की मर्यादा बचाने के लिये महापुरुष अपना जीवन तक बलिदान कर देते हैं। जीवनमूल्यों की परम्परा ही संस्कृति है। यात्रा द्वारा देश के उत्तर, दक्षिण, पूर्व व पश्चिम सब दिशाओं के लोग परस्पर मिलते हैं। विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। समान आस्थाओं का सम्मान करते हैं तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सीख सांस्कृतिक आदर्श की साधना करते है।

भारत पर सैकड़ों विदेशी आक्रमण एवं 1,000 वर्ष के विदेशी शासन के उपरान्त भी भारत को बचाये रखने वाला यह सांस्कृतिक ऐक्य का तत्त्व ही है। हमारे देश में भाषाएं अनेक हैं किन्तु भाव एक है। रूप अनेक हैं, किन्तु जीव का आभ्यन्तर स्वरूप एक है। वेश, परिवेश अनेक हैं, किन्तु देश एक है, संदेश एक है। आकृतियाँ अनेक हैं पर संस्कृति एक है। पथ अनेक हैं पर लक्ष्य एक है। इस संस्कृति के ऐक्य के बिना आज भारत ही नहीं बचता।

इस प्रकार अपने देश में यात्रा द्वारा सांस्कृतिक ऐक्य की परम्परा है। इसी प्रकार विदेशों की सांस्कृतिक यात्रा द्वारा भी अन्तरराष्ट्रीय सांस्कृतिक मैत्री का मार्ग खुलता है।

इतिहास के उषाकाल से ही भारत ने संसार के समस्त देशों को अपना अध्यात्म और संस्कृति की सुधा को निःस्वार्थ भाव से बांटा है। इसी कारण भारत सांस्कृतिक दृष्टि से जगत्गुरु का सम्मान प्राप्त कर सका है। भारत के वेदविदों, मुनियों, भिक्षुओं, आचार्यों, और संस्कृति साधकों द्वारा विश्वभर में स्थापित सांस्कृतिक साम्राज्य के विस्मृत अध्याय को खोजना या टूटी हुई शिथिल पड़ी सांस्कृतिक कड़ियों को पुनः जोड़कर, अतीत के कल को आज से सजीव करना और आगे के अधिक सुसंस्कृत त्यागी काल का निर्माण करना सांस्कृतिक यात्रा का उद्देश्य होता है।

डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा है कि जब आप किसी अपरिचित व्यक्ति के नेत्रों में झांकते हैं तो बोध होता है वह अपना बन्धु ही है। इससे आगे बढ़कर वेदान्त कहता है—दूसरे के हृदय में झांक कर देखो तुम्हें बोध होगा कि उसके हृदय

मन्दिर में भी तुम्हीं विराजमान हो। गीता में कहा है कि जो इनके अन्तर में ही छुपे हुए अपने आप को पहचान लेता है वह सर्वत्र आत्म दर्शन ही करता है। जिसने सब आत्माओं की आत्मा विश्वात्मा जगदात्मा, सकल भूतान्तरात्मा, सर्वात्मा को पहचान लिया वह सर्वत्र परमात्मा का दर्शन करता है। तुलसीदासजी के शब्दों में—

सीयराम मय सब जग जानी
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

ऐसे परमात्म-दर्शी व्यक्ति के लिये पराया और विदेशी, बचा ही कौन? गुरुनानक के शब्दों में—

ना कोई बैरी न ही बेगाना,
सकल संग हमारी बन आई।
बिखर गई सब तात पराई।।

सांस्कृतिक तीर्थंकर गुरुनानक ने चारों दिशाओं में घूमकर चार उदासियाँ करके जन-जन के हृदय में झाँककर जान लिया था कि संसार में कोई भी वैरी और बेगाना नहीं बचा। सबके साथ हमारी आत्मीयता बन गई और परायापन सदा के लिये भूल ही गये हैं। सांस्कृतिक सद्भावना यात्रा के चमत्कार से संसार भर में परायापन, विदेशीपन और वैरभाव दूर होकर सच्ची सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आत्मीयता का विकास हो सकता है।

भारत ने सदा राजनीतिक अथवा कूटनीतिक संबंधों की अपेक्षा सांस्कृतिक संबंधों को अधिक महत्त्व दिया है। दो राष्ट्रों के बीच में कूटनीतिक अथवा राजनयिक मैत्री सम्बन्ध देश-काल, पात्र, परिस्थिति के परिवर्तन के साथ कूटनीतिक प्रहार एवं आकस्मिक आघात में भी बदल सकते हैं। द्वितीय महायुद्ध में रूस तथा जर्मनी के बीच प्रारम्भिक कूटनीतिक मैत्री अकस्मात् कूटनीतिक प्रहार में परिवर्तित हो गई। राजनयिक अथवा कूटनीतिक मैत्री सम्बन्ध किसी न किसी राजनीतिक स्वार्थ पर अवलम्बित होते हैं। उस स्वार्थ की पूर्ति हो जाने के बाद उन सम्बन्धों का कुछ महत्त्व ही नहीं बचता तथा स्वार्थ पूर्ति में बाधा हो जाने पर आज के स्वार्थ से परम मित्र कल स्वार्थ वश परम शत्रु बन जाते हैं। राजनयिक हस्तमिलाप स्वार्थ एवं अवसरवादिता का हस्तमिलाप है। जिस प्रकार से कुश्ती के दंगल में उतरने वाले दो मल्ल हाथ मिलाकर खेल शुरू करते हैं और दावंपेच करते हुए निरन्तर एक-दूसरे को चारों खाने चित, पछाड़ने की ताक में रहते हैं। उसी प्रकार से राजनयिक दौत्य-सम्बन्ध वाले देश ऊपर से कृत्रिम हाथ मिलाते हैं और छलना भरी मुसकान से अन्तर के छुद्रभावों को छिपाने की चेष्टा करते

हैं तथा निरन्तर दूसरे देश को अवसर मिलने पर धूल चटाने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। भारत की अन्य देश के प्रति न कभी कोई राजनीतिक ईर्ष्या थी और न उसने राजनीतिक छल-प्रपंच या सौदेबाजी को ही कभी महत्त्व दिया है। भारत सदा अपनी सांस्कृतिक फुलवारी की सुमधुर सुवास बांटने तथा अन्यान्य देशों के जीवनमूल्यों के साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान कर मानवता को अधिक शान्ति एवं समृद्धि के स्वर्ग में लाने के लिये चेष्टा करता रहा है। मात्र मनोरंजन एवं आमोद-प्रमोद के लिए यात्रा करने वाले, ऐयाश और निरुद्देश्य यात्रा करने वाले लोग आवारा, लोफरबाज व हिप्पी हैं। सोद्देश्य सांस्कृतिक सद्भावना यात्राएं करने वाले तो धरती को सुख शान्ति का और सुप्त प्रेरणाओं को जगाकर भारत को पुनः जगत्गुरु के सिंहासन पर आसीन करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

स्थिर बिन्दु

आर्किमिडीज ने कहा था कि मुझे कोई स्थिर आधार (खड़े होने का स्थल) मिल जाये, तो मैं दुनिया को हिला सकता हूँ। किन्तु बेचारा ऐसा स्थिर बिन्दु न पा सका। स्थिर बिन्दु तुम्हारे अन्दर है, वह है तुम्हारी आत्मा! उसे पकड़ो, और सारा संसार तुम चलाने लगोगे।

वास्तव में कर्ता भी तुम्हीं हो और कर्म भी तुम्हीं। तुम ही आत्मा हो और तुम ही नाम मात्र अनात्मा हो। तुम ही सुन्दर गुलाब हो, और प्रेमी बुलबुल भी तुम ही है। तुम फूल हो और भौंरा भी तुम हो। हर एक चीज तुम हो। भूत और प्रेत, देवता और देवदूत, पापी और महात्मा, सब तुम ही हो। यह है संन्यास, त्याग का मार्ग! अपना केन्द्र अपने से बाहर मत बनाओ, ऐसा करने से तुम गिर पड़ोगे! अपना पूर्ण विश्वास अपने में रखो, अपने केन्द्र में बने रहो। फिर तुम्हें कोई भी चीज न हिला सकेगी। **—स्वामी रामतीर्थ**

हिन्दुत्व सत्य के अनुसंधान की सतत साधना है और यदि आज यह मृतप्राय, निष्क्रिय, विकास के प्रतिकूल हो गया तो इसका कारण है कि हम थक गये हैं और जैसे ही हमारी यह थकान दूर होगी, हिन्दुत्व सम्पूर्ण विश्व पर एक ऐसी प्रखर दीप्ति के साथ छा जायेगा जो सम्भवतः इसके पहले सभी के लिये अज्ञात होगा।

—गांधीजी

राष्ट्र के सांस्कृतिक आधार

सृष्टि के आदि-ग्रन्थ वेद ने गाया—'वयं जागृयाम पुरोहिताः।' (वाः संहिता 9/23) अर्थात् हम राष्ट्र हितैषी सदा राष्ट्र में जागते रहें। यह जागृति ही राष्ट्र का मूल्य है।

भगवान् मनु

मानवता के आदि पुरुष भगवान् मनु ने कहा है—'सर्वं परवशं दुःखं, सर्वं आत्मवशं सुखं'—अर्थात् सब परवशता ही दुःख है और सब आत्मवशता ही सुख है। यह सूत्र आध्यात्मिक एवं राष्ट्रीय दोनों दृष्टियों से एक महान् सत्य की उद्घोषणा करता है। यदि कोई व्यक्ति समाज अथवा राष्ट्र या किसी अन्य के वश में जीता है तो उस परवशता से बड़ा कोई अन्य दुःख नहीं है। इसीलिये हर व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र स्वाधीनता के परम सुख के लिये साधना करता रहता है। आध्यात्मिक दृष्टि से जो व्यक्ति अपने सच्चे 'मैं' के स्वरूप को भूल कर शरीर और मन, इन्द्रियों के द्वारा जड़ प्रकृति के नश्वर विषय-भोगों का दास बना रहता है, वह भी जड़ वस्तुओं की परवशता के कारण गुलामी का दुःख भोगता है। इसीलिए विचारवान मुमुक्षुजन आत्मस्वराज्य, आत्मोपलब्धि, आत्म-साक्षात्कार अथवा मोक्ष के परम सुख के लिये साधना करते रहते हैं।

भगवान् राम और भगवान् कृष्ण भारत के परम्परा प्रतिष्ठित राष्ट्रपुरुष रहे हैं। जहाँ भगवान् राम ने हिमालय के तुषार-मंडित हिमशिखरों से ले कर कल्लोल-नृत्यकारी तरंगों के मध्य स्थित सुवर्णद्वीप लंका तक उत्तर एवं दक्षिण भारत को एक कर दिया, वहाँ भगवान् कृष्ण ने प्राग्-ज्योतिषपुर (गुवाहाटी) को नरकासुर की पराधीनता से मुक्त कर, मगध के जरासंध को भीम द्वारा मरवा कर, भारत के हृदय देश में कंस एवं दुःशासन का मर्दन कर, सिन्धुराज जयद्रथ का अर्जुन द्वारा ग्रीवोच्छेदन करवा कर, पश्चिम के कालयवन आदि विदेशी आक्रान्ताओं के संभाव्य आक्रमणों को निर्मूल करने के हेतु पश्चिमी समुद्रतट पर द्वारिका जैसी सुदृढ़ राजधानी बसा कर भारत के पूर्व से लेकर पश्चिम तक को स्वाधीन एवं भयमुक्त कर भारत को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में पिरो दिया।

भगवान् राम

भगवान् राम ने जहाँ उत्तरापथ और दक्षिणापथ को विंध्याचल के ऊपर के आर्यावर्त्त और विंध्याचल के नीचे वाले दंडकवन, वानर देश, गौंड देश एवं द्रविड़ देश को, आर्य एवं अनार्य सभी को एक सुदृढ़ राष्ट्रीय एकता से बांध कर एक चमत्कार किया, वहाँ उन्होंने राष्ट्र भक्ति, राष्ट्र मुक्ति एवं लोकतन्त्र तथा लोकमंगल की ऐसी आदर्श मर्यादायें स्थापित की कि आज तक हम रामराज्य के स्वप्न को पुनः साकार करने के लिए तरसते रहते हैं। लंका विजय के पश्चात् भगवान् राम ने लक्ष्मण को लंका में ही बस कर राज्य चलाने के उनके सुझाव के उत्तर में जो देश भक्ति का सूत्र दिया वह आज तक हमारी राष्ट्र भक्ति का महामंत्र बना हुआ है।

अपि स्वर्णमयी लंका, न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्म भूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी।।

अर्थात्

स्वर्णमयी लंका भी लक्ष्मण, तनिक न मुझको है भाती,
जननी जन्मभूमि तो मेरी, सौ स्वर्गों से भी ऊँची।

इसी राष्ट्रप्रेम के मंत्र से अभिमंत्रित हुए भारत के देशभक्त बालक आज तक गाते हैं—

स्वर्णमयी लंका न मिले माँ, अवधपुरी की धूल मिले।
सोने में कांटे चुभते हैं, मिट्टी में है फूल खिले।।

लंका-विजय के पश्चात् भगवान् राम ने राज्याभिषेक के प्रसंग पर प्रजाजनों को अत्यन्त उदार, लोकतन्त्र-निष्ठ वाणी में कहा—'जो अनीति कछु भाषौ भाई, तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।'

एक चक्रवर्ती सम्राट द्वारा सामान्य प्रजाजनों को खुलेआम यह अधिकार देना कि यदि वह भूल से कभी अनीति का शब्द बोल दे अथवा अनीति पूर्ण कर्म करने लगे तो प्रजाजन निर्भय हो कर सम्राट को भी वर्जित कर दें, एक बहुत बड़ा लोकतान्त्रिक आदर्श है। इसकी तुलना में इन्दिरा गांधी के तानाशाही शासन का चित्र बड़ा विचित्र है।

जो अनीति कुछ भाषौ भाई। मत बरजहुँ, न तु करूं पिटाई।
जो पीड़ा में करे रुलाई। मीसा, डी. आई. आर. हूं लाई।

लोकरंजन के आदर्श के लिये राम कितना बड़ा त्याग करने को प्रस्तुत हैं, इसे महाकवि भवभूति ने अपनी अमर लेखनी के स्पर्श से एक राष्ट्रीय आदर्श बना दिया है।

स्नेहं दयां च सौख्यं च, यदि व जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य, मुंचतो नास्ति मे व्यथा।।
स्नेह, दया और सौख्य सभी कुछ, प्राणवल्लभा सीता भी।
लोकाराधन हेतु त्यागने में, मुझको न तनिक व्यथा।।

भगवान् श्री कृष्ण

भगवान् श्री कृष्ण, जिनका जन्माष्टमी पर्व स्वाधीनता पर्व की पूर्व संध्या को है, वे हमारे राष्ट्र के महानतम मुक्तिदाता राष्ट्रपुरुष होने के साथ-साथ सारी विश्व-मानवता के लिये आध्यात्मिक मुक्तिदाता भी हैं। उन्होंने अपने जीवनकाल में देश को आततायी शासन से मुक्त करने हेतु जीवनभर संघर्ष किया और धर्म की रक्षा के लिये महाभारत के विश्वयुद्ध का सफल संचालन किया। महारथी अर्जुन को राष्ट्रीय स्वाधीनता हेतु धर्मयुद्ध के लिये प्रेरित करते हुए वे कहते हैं—

हतो वा प्राप्यसि स्वर्गम्, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मात् उत्तिष्ठ कौंतेय, युद्धाय कृत निश्चयः।। गीता 2/37
मर जाने पर स्वर्ग मिलेगा, जय होने पर भूतल राज।
इसीलिये तुम खड़े हो अर्जुन, निश्चय लड़ो धर्म के काज।।

एकादश अध्याय में अपना विराट् रूप दर्शन करवाने के पश्चात् भगवान् अर्जुन के निमित्त से पूरे राष्ट्र को राष्ट्रीय स्वाधीनता का मंत्र देते हुए आह्वान करते हैं—

तस्मात्-त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।।11/33
अतः उठो वीर, यश लाभ कर लो,
शत्रु जीत, वैभव राज्य भोगो,
मेरे से मृत, पूर्व ही शत्रु सारे
निमित्त मात्रं बनो सव्यसाची।।

भगवान् बुद्ध ने स्वाधीनता का मंत्र दोहराते हुए गाया—

अत्ताहि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परोसिया।
अत्तना हि सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं।।
आत्मा ही आत्मा का स्वामी कौन पराया नाथ बने।
अपने आप को वश में करके दुर्लभ नाथ की प्राप्ति हो।।

राष्ट्रीय स्वाधीनता की ज्योति को सदा जाज्वल्यमान रखने का आदर्श-सूत्र आचार्य चाणक्य ने दिया—

'न त्वेवार्यस्य दासभावः'

कौटिल्य का प्रसिद्ध उद्घोष था—'आर्य या अन्य सुसंस्कृत व्यक्ति कभी दासता में जीने के लिए जन्म नहीं लेता।

इस राष्ट्र निर्माता महापुरुष ने अपनी विचक्षण बुद्धि एवं अलौकिक राष्ट्रभक्ति द्वारा अनेकों छोटे-छोटे दुर्बल राज्यों में बँटे हुए देश को पुनः एक शक्तिशाली, देशव्यापी साम्राज्य के रूप में संगठित किया और विश्व विजय की लालसा से आधी दुनिया जीतकर भारत पर आक्रमण करने वाले यूनानी आक्रान्ताओं को सदा के लिये कुचल डाला। रणनीति एवं कूटनीति दोनों पर समान अधिकार रखने वाला, आसेतुहिमाचल जितने विशाल एवं शक्तिशाली साम्राज्य का संस्थापक व प्रधानमंत्री स्वयं पाटलिपुत्र में गंगा के तीर पर एक फूस की झोपड़ी में स्वार्थ रहित एवं अहंकार शून्य निष्काम कर्मयोगी का जीवन जीता था। इस प्रकार चाणक्य का कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व दोनों ही राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं समर्पण के जीवन्त आदर्श बन गये।

आचार्य चाणक्य ने लोकरंजन के आदर्श को पुनः प्रतिष्ठित करते हुए गाया—

नात्मनः सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च सुखे सुखम्।
नात्मनः प्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।।
नहीं निजी सुख राजा का कुछ, प्रजाजनों के सुख में सौख्य।
न राजा का प्रिय हित अपना, प्रजाजनों का प्रिय हित मुख्य।।

भारत में राष्ट्र एक राजनीतिक इकाई की अपेक्षा एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में अधिक प्रतिष्ठित रहा है। महाकवि इकबाल ने लिखा है—

यूनानो मिस्र रोमां सब मिट गए जहां से,
बाकी है अब तलक भी, नामों निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमां हमारा।

यूनान, मिस्र, रोम जैसे प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित राष्ट्रों के मिट जाने के उपरान्त भी शताब्दियों के विदेशी आक्रमणों को झेलता हुआ भी भारत अभी तक बचा है, इसका रहस्य क्या है? भारत के अमरत्व के रहस्य की बात यह है कि जहाँ यूनान, मिस्र, रोम आदि राष्ट्र राज्य-केन्द्रित थे, वहाँ भारत सदा से संस्कृति-केन्द्रित रहा है। पश्चिम में राज्यों के नष्ट होते ही राष्ट्र लुप्त हो गए। किन्तु भारत में राज्यों के नष्ट होने, सत्ता के छिन जाने तथा 1,300 वर्ष की पराधीनता के बादल छा जाने पर भी भारतीय संस्कृति का सूर्य अस्त नहीं हुआ।

जहाँ राजे-रजवाड़े, चप्पा-चप्पा भूमि के लिये युद्ध करके देश को सैकड़ों टुकड़ों में बांटते रहे वहाँ जगद्गुरु शंकराचार्य जैसे सांस्कृतिक देवदूतों ने सारे भारत की नंगे पांव, तीन-तीन परिक्रमा कर , चारों कोनों में चार पीठ स्थापित कर भारत की सांस्कृतिक एकता के सम्पादन का चमत्कार कर दिखाया। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, रामानन्दाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि ने भी शंकराचार्य की सांस्कृतिक ऐक्य-परम्परा को आगे बढ़ाया। भारतीय राष्ट्र-जीवन में यह भी एक आनन्ददायक आश्चर्य का विषय है कि जहाँ प्राचीनकाल में सभी ऋषि उत्तर भारत ने दिए, वहाँ मध्यकाल में मानो उत्तर भारत का ऋण चुकाने के लिए सभी आचार्य दक्षिण भारत ने ही दिये।

संत तुलसीदास

मध्यकाल के सन्तों ने राष्ट्र की स्वाधीनता एवं स्वाभिमान के लिये अपनी अमर वाणी का अमृतमंत्र फूँका। राष्ट्रकवि गोस्वामी तुलसीदास ने पराधीन राष्ट्र को जगाते हुए उद्बोधन किया—

'पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं।'

यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि अभावग्रस्त एवं सुख से वंचित व्यक्ति सपनों में कल्पना के सुख भोग कर अपने अभावों की क्षतिपूर्ति करता है। दिन भर का भूखा व्यक्ति सपने में सुख के पकवान भोगकर अपना मन बहला लेता है। किन्तु गोस्वामी तुलसीदास की चेतावनी है कि पराधीन व्यक्ति सपने में भी सुख नहीं पा सकता। उसका जाग्रत्काल जितना भयंकर है, उसका स्वप्नकाल उससे भी अधिक भयंकर होता है। कुटिल मन्थरा के चरित्र में तुलसीदास ने अवसरवादी, सिद्धान्तहीन व्यक्तियों की चालाकी भरी छल-छाया का चित्र खींचा है।

कोउ नृप होउ हमहि का हानी।
चेरि छाड़ि अब होब कि रानी।।

देश के स्वाभिमान की रक्षा हेतु महाराणा प्रताप जब स्वयं अपनी पत्नी एवं बच्चों सहित घास की रोटी खाने की स्थिति में आ गए और उनके पास सैनिकों को वेतन देने योग्य कुछ भी नहीं बचा था तो अनेक राजपूत सैनिक प्रताप का साथ छोड़कर अकबर की सेना में सम्मिलित होने लगे थे। वे राष्ट्रभक्ति शून्य, युद्ध को मात्र व्यवसाय मानने वाले सैनिक, अवसरवादिता का चालाकी भरा तर्क देते थे कि 'राज्य प्रताप का हो या अकबर का हो, हमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। हमें बस लड़ने से काम है। हम सैनिक की चाकरी छोड़कर कोई शासनाधिकारी थोड़े ही बनने वाले हैं।'

गुलामी की चूरी खाने का लोभ लग जाने पर जो मानसिक गुलामी छा जाती है, उसका चित्र गोस्वामी तुलसीदास ने कवितावली में शुक-सारिका संवाद के

बहाने प्रस्तुत किया है—

हम पंख पाई पींजवनि तरसत
अधिक अभाग हमारो।

अर्थात् 'हम स्वर्ग के पंछी अपने स्वस्थ पंखों से एक ही उड़ान में मुक्तगगन में उड़कर स्वाधीनता का आनन्द ले सकते हैं किन्तु यह परम दुर्भाग्य की बात है कि मुक्ति के सब साधन होते हुए भी मानसिक गुलामी के कारण पिंजरे की चूरी के लिए तरसते हैं। जो राजपूत अपने शौर्य के लिये जगत् प्रसिद्ध रहा है, वही यदि मुगल दरबार की चूरी के लोभ में अपनी बूआ और बेटी के डोले उठा कर अकबर के रनिवास में भेजने लगे तो इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है?

महाकवि सूरदास

महाकवि सूरदास जिनकी पंचशताब्दी इसी वर्ष मनायी जा रही है, मुख्य रूप से भक्ति एवं अध्यात्म के गीत गाते रहे। वे प्रज्ञाचक्षु महाकवि आध्यात्मिक स्वाधीनता की अमर रागिनी गाते हैं—

रे मन आपु को पहिचानि।
सब जनम हैं भ्रमत खोयौ, अजहुं तौ कछु जानि।।
ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै, सु तौ ताकैं पास।
भ्रमत हीं वह दौरि ढूंढैं, जबहिं पावै बास,
भरम ही बलवंत सब में ईस हूँ कैं आई।
जब भगत भगवंत चीन्हैं, भरम मन तैं जाई।।
सलिल लौ सब रंग तजिकै, एक रंग मिलाइ।
सूर जौ द्वै रंग त्यागे, यहै भक्त सुभाइ।।

सूरदास ने व्यक्तिगत स्वाभिमान, कुलाभिमान एवं समाज के स्वाभिमान को भी अपनी लेखनी से अमर बना दिया है। युद्ध भूमि में भीष्म की प्रतिज्ञा बड़ी स्वाभिमान पूर्ण है—

जौ पै हरि हिं न शस्त्र गहाऊं।
तो लाजौं गंगा जननी को, शान्तनु सुत न कहाऊं।।

सूरदास अपने अमर भक्ति काव्य में कहीं-कहीं साम्ययोग (आधुनिक शब्दावली में समाजवाद) की छटा भी दिखाते हैं—

खेलत को कासौ गोसैया,
अति अधिकार जनावत याते।
अधिक तुम्हारे हैं कछु गैया।।

ग्वाल-बाल भगवान् कृष्ण को ताना मारते हुए कहते हैं—'हे गोस्वामी, खेल में कौन किस के साथ खेले? क्या आप अधिक अधिकार इसीलिए जता रहे हैं कि आपके घर में गैया अधिक है?

यह कितना मीठा व्यंग्य है?

राष्ट्र-संत समर्थगुरु रामदासजी ने छत्रपति शिवाजी को निमित्त बनाकर राष्ट्र-विजय के लिये वैसा ही निष्काम कर्मयोग का उपदेश दिया जैसा भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निमित्त बनाकर महाभारत युद्ध में दिया था।

धर्मासाठी मरावे। मरोनि अमछपांसि मरावे।
मारितां मारिनां ध्यावें। राज्य आपुले।।

अर्थात् धर्म हेतु मरने को प्रस्तुत, हम बलि वीर रिपु सब मारें।

मरते मारते प्राप्त करें हम, निज स्वदेश में अपना राज्य

दशम गुरु गोविन्दसिंह ने देश व धर्म की रक्षा के लिये खालिस (युद्ध) आर्यों का पंथ सजाया।

जे आरज तूं खालिस होवें, हंस-हंस सीस धर्म हित खोवें।
सकल जगत में खालसा पन्थ गाजे, जगे धर्म हिन्दू सकल मंड भाजे।।
यही देहु आज्ञा तुरक गहि खपाऊँ। गऊ घात का दोख जग सों मिटाऊँ।
यही आस पूरण करों तुम हमारी। छुटै कष्ट गैयन, मिटे खेद भारी।

राष्ट्र रक्षा के लिये गुरु महाराज धर्मरक्षा एवं गो-रक्षा को अनिवार्य मानते थे। आज देश का दुर्भाग्य है कि धर्म-स्वातंत्र्य विधेयक और गो-रक्षा विधेयक का समर्थन करने वाले प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई को विद्रोही शक्तियों के आन्दोलन के कारण त्याग-पत्र देना पड़ा।

गुरु गोविन्दसिंह की भविष्यवाणी है—

राज करेगा खालसा, याकी रहा न कोय।

अर्थात् शुद्ध धर्मात्मा खालिस आर्यों का ही राज्य होगा। दुष्टों का अन्त होकर रहेगा।

आर्य समाज के संस्थापक, वेदोद्धारक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सन् 1857 की क्रान्ति के समय रानी लक्ष्मीबाई एवं तात्या टोपे आदि को स्वराज्य की प्रबल प्रेरणा दी तथा घोषणा की कि 'सुराज्य की अपेक्षा स्वराज्य हजारों गुणा अधिक मूल्यवान है।'

भारतीय राष्ट्र का आधार

संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है

भू-खण्ड राष्ट्र का देह है। भाषा उसकी वाणी है, सभ्यता उसका शृंगार है। कलाएं उसका सौन्दर्य है। साहित्य उसकी दृष्टि है। विज्ञान उसका वैश्विक शोध है। अर्थ उसका भंडार है। संस्कृति उसकी आत्मा है। संस्कृति के बिना बाकी सब निष्प्राण हो जाएगा।

इकबाल का कथन—'यूनानो मिस्र रोमा सब मिट गए जहां से' इसमें उन देशों के भूखण्ड अभी तक वर्तमान हैं, किन्तु उनकी संस्कृतियाँ मिट गयी।

संस्कृति का विचार मनुष्य के सन्दर्भ में ही किया जाता है। अन्य योनियां भोग योनियां हैं चाहे वह पशु शरीर हो या देव शरीर। पशु शरीर में हम निकृष्ट सुख-दुःखों को भोगते हैं। देव शरीर में उत्कृष्ट सुखों को। मानव योनि कर्मयोनि के साथ भोगयोनि है। मनुष्य पीछे किए हुए कर्मों को भोगता भी है साथ ही कर्म-योनि होने से नए कर्म करने की स्वतंत्रता भी उसे प्राप्त है। पर पशु योनि में कर्म की स्वाधीनता नहीं है। वह प्रकृति से बंधी हुई, स्थिर योनि है। वह न अपना विकास कर सकती है और न पतन ही। वह आदिकाल से जैसा रहता आया है, खाता आया है वैसा ही आज भी है। वह अपना भौतिक विकास ही नहीं कर सकता तो मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक विकास का तो उसमें कोई अवसर नहीं है। अपने जीवन निर्वाह के लिए जितने ज्ञान की आवश्यकता है वह प्रकृति या भगवान् के घर से लेकर ही आता है। वह संस्कारों के द्वारा पालतू बनाया जा सकता है, उससे अधिक उसका विकास सम्भव नहीं है। पर मनुष्य के साथ यह बात नहीं है, मनुष्य को कर्म की स्वाधीनता प्राप्त है। इस दृष्टि से शरीर के स्तर पर, मानसिक स्तर पर उसमें विशेषता, अपूर्वता प्रकट है। मनुष्य के शरीर में अंगूठे की बनावट, मनुष्य कमर सीधी कर मस्तिष्क ऊंचा करके चलता है। उसमें वाणी का प्रकाश, मन में कल्पनाशक्ति का विकास है। उसमें सर्जनेच्छा है, सुखेच्छा है, जिगीषा, विजिगीषा का भाव है। वह प्रकृति के बंधन को समझकर प्रकृति के पार जा सकता है। वह कर्म के बंधन को समझकर कर्म के पार जा सकता है। पर

पशु सदैव प्रकृति एवं कर्म से बंधा होता है। मनुष्य दोनों के पार जाकर अपने मूल स्वरूप को, दिव्य स्वरूप को, अपने सच्चिदानन्द रूप को प्राप्त कर सकता है। अतः संस्कृति का विचार मनुष्य के सन्दर्भ में ही किया जाता है। मनुष्य ही आगे की यात्रा विकास की ओर, पूर्णता की ओर कर सकता है। इसीसे भारत में जन्म की सार्थकता है। क्योंकि प्रत्येक देश का एक मूल स्वर, एक मूल चेतना, एक विशिष्ट स्वभाव, प्रकृति होती है....और इसी दृष्टि से भारत में उपलब्ध अखण्ड साधु-संतों की परम्परा की सार्थकता है जो कि हमें नर से नारायण तक गति करा सके। स्पष्ट है प्रभु ने हमें विकास के सब साधन, मानव योनि, भारत देश में जन्म, संतों की अखण्ड परम्परा और वैदिक सनातन धर्म में जन्म दिया।

चूंकि मनुष्य अनन्त पथ का यात्री है, अनन्त योनियों को पार करता हुआ उसके शुभ-अशुभ संस्कारों के साथ वह संसार में आता है। और मनुष्य जब संसार में आता है तब अनेक पशु प्रवृत्तियों से बंधा रहता है। यथा आहार, निद्रा, भय, मैथुन, ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ आदि ऐसी प्रवृत्तियां हैं जो मनुष्य और पशु में समान हैं। अतः शिक्षा, संस्कार, तप, सत्संग, साधना के द्वारा मनुष्य को पाप व पशु प्रवृत्तियों से ऊपर उठाकर उसे मनुष्यत्व में, मनुष्यत्व से देवत्व में, देवत्व से ब्रह्मत्व यानी विकास के सर्वोच्च शिखर तक पूर्णता तक पहुंचाने का प्रयास किया जाता है। इस दृष्टि से प्रकृति, विकृति व संस्कृति पर विचार करें—

प्रकृति, विकृति और संस्कृति

मनुष्य रूपी नरपशु का शिक्षा द्वारा परिष्कार या संस्कृत न किया जाए और उसे प्रकृति पर छोड़ देने पर वह विकृति की ओर चला जाएगा। जैसे गाय का ताजा दूध अपनी प्राकृतिक अवस्था में अधिक देर तक नहीं ठहर सकता, उसमें स्वभावतः विकृति आ जाएगी, उससे दुर्गन्ध आने लगेगी और कुछ दिनों में उसमें कीड़े पड़ जाएंगे। अतः दूध को प्रकृति पर न छोड़कर उसको संस्कारित कर उससे घी, मक्खन, पनीर, खोआ, मिठाइयां प्राप्त कर लेने से वह दीर्घकाल तक चलेगा। और विकृति की सम्भावना नहीं रहती है। संस्कृति, च्युत-अपूर्ण मानव को अच्युत बना देती है। ये नर का पशुत्व से नरत्व, देवत्व और नारायणत्व तक विकास करती जाती है। अतः यदि नर को सही शिक्षा, संस्कार, सही दृष्टि, सही परिवेश न मिले तो निश्चित रूप से उसमें विकृति आएगी और वह नरपशु से नरपिशाच बनेगा। जैसे रावण, कंस, हिरण्यकशिपु, नादिरशाह, तैमूर, हिटलर, Eachman आदि बने हैं। रोमन, शक, हूण, कुषाण जाति का इतिहास, इसलाम, ईसाइयत, कम्यूनिस्टों का इतिहास विकृति के उदाहरण हैं। जब कि प्रारम्भ से ही सही चिन्तन, सही दिशा, सही परिवेश, सही व्यवस्था, सही संस्कार का परिणाम है—राम, कृष्ण, सीता, सावित्री, दमयन्ती, विक्रमादित्य, राणा प्रताप, शिवाजी, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, मां

शारदा, भगिनी निवेदिता, तिलक, सुभाष, गांधी यानी हमारे महापुरुषों की अखण्ड परम्परा। सद्गृहस्थों की अखण्ड परम्परा संस्कृतीकरण का उदाहरण है जिसने स्वयं का, राष्ट्र और सारी विश्व मानवता का मुख उज्ज्वल किया है।

तब प्रश्न उठता है कि संस्कृति क्या है?

संस्कृति मानव जीवन को संस्कारित करने की वह दिव्य परम्परा है जिसमें मानव मन को परिष्कृत कर उसके अन्दर छिपे हुए दिव्य गुणों को, उसके मूल वास्तविक परिपूर्ण स्वरूप को प्रकट करने की चेष्टा की जाती है, उसमें स्थित करने की चेष्टा की जाती है। इस क्रम में नर से नरत्व, नरत्व से देवत्व, देवत्व से ब्रह्मत्व तक उसका जो मूल परिपूर्ण स्वरूप है, उस तक उठाने का प्रयास किया जाता है।

तब प्रश्न उठता है कि संस्कार क्या है?

संस्कार का अर्थ है सजाना-संवारना, पूर्णता प्रदान करना। इस दृष्टि से उसमें तीन क्रियाएं सन्निहित हैं—दोषोपनयन, हीनांगपूर्ति और अतिशयआधान।

जीव अनन्त पथ का यात्री है। न जाने कितनी योनियों को पार करता हुआ वह मानव शरीर को प्राप्त होता है। वह असंख्य योनियों के संस्कार-पुंज को अपने साथ लेकर आता है। शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के संस्कार उसमें सम्मिलित हैं। इस प्रकार काल के प्रवाह से उसमें अशुभ संस्कार आ गए हैं, दोष आ गया है। उसे दूर करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रक्रिया को दोषोपनयन कहते हैं। काल के प्रवाह से अनेक अंग उपेक्षित रह जाते हैं, उन उपेक्षित अंगों की पूर्ति को हीनांगपूर्ति कहते हैं। फिर उसका मूल, दिव्य, वास्तविक-परिपूर्ण स्वरूप प्रकट होवे; इसके लिए उसके अन्दर दिव्य गुणों का आधान किया जाता है। इसे अतिशयआधान कहा जाता है। इसमें मुख्य 16 संस्कार हैं जिसके द्वारा मानव के मूल दिव्य, परिपूर्ण स्वरूप को प्रकट करने की चेष्टा की जाती है और यह संस्कार परम्परा गर्भाधान से प्रारम्भ हो जाती है और अन्त्येष्टि तक चलती है। यानी जीव के आने के पूर्व से प्रारम्भ होकर जीव के जाने के बाद तक चलती है। गर्भाधान के द्वारा हम दिव्य आत्मा का आह्वान करते हैं, बुलाते हैं तो उसको बैठाने के लिए स्थान शुद्धि, भावशुद्धि चाहिए। हम जहां-तहां, जैसे-तैसे नहीं बैठते। स्थान को शुद्ध कर आसन लगाकर बैठते हैं। गर्भाधान द्वारा हम दिव्यात्मा-पुण्यात्मा को बुला रहे हैं तो उसके लिए उपयुक्त शुद्धि भी चाहिए। फिर जाने के बाद यह संस्कार देते हैं कि कपाल भेदन करके जाना चाहिए था। अन्य मार्ग से गमन से, आने-जाने का क्रम बना रहेगा। इस प्रकार गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक, सूर्योदय से सूर्यास्त तक, लोक से परलोक तक हमारे जीवन का कोई भी क्षण, कोई भी कण और कोई भी कर्म धर्म से रहित, संस्कार से रहित नहीं है। धर्म व संस्कार

हमारे जीवन का केन्द्र-बिन्दु है, प्राण-बिन्दु है जिससे हमारा समग्र व्यक्तिजीवन, परिवार जीवन, समाज जीवन, राष्ट्र जीवन, विश्व जीवन संचालित है। धर्म या संस्कार से बाहर कुछ भी नहीं है।

इस प्रकार मानव मन का परिष्कार करने, शोधन करने, पूर्णता प्रदान करने वाले जितने भाव एवं कार्य हैं, वह संस्कार कहलाते हैं। इन्हीं संस्कारों की दिव्य परम्परा को संस्कृति कहते हैं। इस दृष्टि से संस्कृति का अर्थ श्रेष्ठतम कृति से भी होता है। जो मनुष्य को ऊंचा उठाये वह संस्कृति है, जो नीचे गिराये वह विकृति है। इस प्रकार श्रेष्ठकृति या सम्यक् कृति को भी संस्कृति कहते हैं। संस्कृति जीवन का सार है, जीवन का तात्पर्य है, जीवन के आदर्शों का विकास है, जीवन के मूल्यों का विकास है। अतः संस्कृति जीवन के मूल्यों की, जीवन के आदर्शों की सतत साधना है जो मानव को मानवजीवन का मूल्य प्रदान करती है तथा जिसकी रक्षा हेतु भारतीय वीरों ने, महापुरुषों ने अपना जीवन हंसते-हंसते उत्सर्ग कर दिया। वे जीवनमूल्य हैं—स्वतंत्रता, समानता, बंधुता आदि।

अतः मानव के सर्वोच्च विकास के लिए जो जीवनमूल्य सर्वाधिक महत्त्व के हैं उनकी एक क्रमबद्ध व्यवस्थित परम्परा ही संस्कृति है। इस दृष्टि से भारतीय मनीषियों ने चार जीवनमूल्य, आदर्श या पुरुषार्थ रखे जिसके अन्दर अन्य सारे जीवनमूल्य समाविष्ट हो जाते हैं।

ऐसे ही एक और परिभाषा दी जाती है। जब किसी विशिष्ट भूखण्ड में मानव समाज दीर्घकाल तक वास करता है तब उसमें कुछ विशेषताएं या आदर्श, या सद्गुण विकसित हो जाते हैं। उसकी परम्परा का नाम संस्कृति है।

इन जीवनमूल्यों का, आदर्शों का, सद्गुणों का दर्शन ऋषियों को ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा हुआ। अतः इसे ऋषि संस्कृति भी कहते हैं। देवों को हुआ इसलिए देव संस्कृति भी कहते हैं। मनु को हुआ इसलिए मनु संस्कृति या मानव संस्कृति भी कहते हैं। ब्राह्मणों को हुआ इसलिए ब्राह्मण संस्कृति भी कहते हैं।

यद्यपि संस्कृति भौगोलिक सीमाओं में नहीं बांधी जा सकती। उसका भूगोल से विशेष सम्बन्ध नहीं है। पर जिस भूमि पर सर्वप्रथम प्रकट होती है, उसका महत्त्व अवश्य है और जिस मानव समाज ने उसे अंगीकार किया और जहां से वह सर्वत्र फैली और जिस मानव समूह से उसे सर्वत्र प्रसारित किया, उस भूमिविशेष उस मानव-समूहविशेष के नाम से वह संस्कृति जानी जाती है। उस भूमिविशेष का नाम आर्यावर्त्त है, भारत है, हिन्दुस्तान है, इण्डिया है, और उस मानव-समूहविशेष का नाम है आर्य, भारतीय है, हिन्दुस्तानी है, इण्डियन है, इसलिए यह मानव संस्कृति, वैदिक संस्कृति आर्य संस्कृति, भारतीय संस्कृति, हिन्दू संस्कृति है। इसे

इण्डियन कल्चर भी कहा जाता है, इन नामों से सारे विश्व में जानी-मानी और पहचानी जाती है।

प्रत्येक मानव का जन्म किसी परिवार में होता है। इसलिए संस्कारों की श्रृंखला भी परिवार से प्रारम्भ होती है। संस्कारों की परम्परा पिता से पुत्र, पुत्र से पौत्र, पौत्र से प्रपौत्र तक चलती रहती है। वैसे ही गुरु से शिष्य, शिष्य से प्रशिष्य को उत्तराधिकार के क्रम से स्वतः ही पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त होती रहती है। मनु से उसके पुत्र इक्ष्वाकु, इक्ष्वाकु से उसके पुत्र मान्धाता, मान्धाता से दिलीप-रघु-हरिश्चन्द्र-दशरथ-राम को प्राप्त होती है। ऐसे ही गीता के चौथे अध्याय में ज्ञान की परम्परा गुरु से शिष्य को कैसे प्राप्त होती है? यह स्वयं भगवान् बताते हैं। भगवान् स्वयं आदि गुरु हैं। उन्होंने सबसे पहले सृष्टि के आदि में सूर्य को, सूर्य ने अपने पुत्र मनु को दी। मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को दी इस प्रकार परम्परा से यह ज्ञान चला आ रहा है।

संस्कृति एवं सभ्यता

सभ्यता जीवन का श्रृंगार है, किन्तु संस्कृति जीवन का सार है। सभ्यता जीवन के साधनों का विकास है और संस्कृति स्वयं जीवन का, उसके आदर्शों का विकास है। मानव एवं राष्ट्र के पूर्ण विकास के लिए अनिवार्य जीवनमूल्यों की परम्परा ही संस्कृति है।

मनुष्य का समग्र अध्ययन भारतीय वैदिक परम्परा में ही संभव हुआ

पाश्चात्य परम्परा में Mind और Matter शरीर और मन या बुद्धि से परे उनका चिन्तन गया ही नहीं। अरस्तू ने मनुष्य को एक Rational animal कहा। पर भारतीय संस्कृति कहती है कि शरीर से इन्द्रियां श्रेष्ठ, बली और व्यापक हैं। इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ है, बली है, व्यापक है। मन से श्रेष्ठ बुद्धि है, बुद्धि से श्रेष्ठ आत्मा है। शरीर मन द्वारा नियंत्रित होवे, मन बुद्धि द्वारा नियंत्रित होवे, बुद्धि नैतिकता द्वारा नियंत्रित होवे एवं नैतिकता आत्माभिमुखी हो, उससे नियंत्रित हो।

पश्चिम के आधे-अधूरे अध्ययन का ही परिणाम है कि यूनान में शारीरिक विकास, शारीरिक सौन्दर्य पर ही बल दिया गया। वहां की मूर्तिकला ने मांसल निपुणता का ही परिचय दिया है। उनके चेहरों पर आन्तरिक भावों का प्रकाश नहीं है। इसने वीर सैनिक एवं सेनापति दिए। इससे आगे न बढ़ सकी। इनकी शारीरिक उपासना इहलौकिक है। जबकि मिस्र की शारीरिक उपासना पारलौकिक है। वहां के राजा लोग पारलौकिक चिन्तन में ही आधे से अधिक समय बिता देते थे। अपने राज्यकाल का आधा समय एवं धन शरीर को सुरक्षित रखने के लिए पिरामिड बनाने में लगा देते थे। रोम में बड़े-बड़े वमन-कक्ष बने हुए थे। जिसमें भोजन करने

के पश्चात् वमन कर पुनः भोजन करते हैं, यह जिह्वा की तृप्ति का अनूठा प्रयास था। ये संस्कृतियां मात्र भौतिकता या शरीर पर आधारित थी। यानी ये धर्महीन, आत्मज्ञानविहीन, पशुभाव-प्रधान एवं अर्थ और काम से प्रेरित थी। इन्होंने पशुबल से स्थूल शरीर को स्वतंत्र किया, पशुबल से अन्य दुर्बल जातियों को सताया, उन पर आधिपत्य जमाया। वे जातियां मनुष्य से पशु बन गई थी। ये संस्कृतियां मात्र भौतिकता पर टिकी होने के कारण, भोगप्रधान संस्कृति होने के कारण नश्वर सिद्ध हुई। छोटे-छोटे विदेशी आघातों से सदा के लिए विलीन हो गई।

मनुष्य का समग्रता से अध्ययन भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में ही सम्भव हुआ। हमने शरीर, मन, बुद्धि के साथ आत्मा का भी विचार किया। आत्मा को ही परम सत्य माना। शरीर और मन को अस्वीकारा नहीं पर उसे परम सत्य नहीं माना। अतः परम महत्त्व भी नहीं दिया। इसके आधार में आत्मा को रखा। शरीर और मन को यथायोग्य स्थान दिया। अतः मनुष्य के सामने चार आदर्श रखे जिसमें सभी अन्य गौण आदर्श एवं मूल्य समाहित हो जाते हैं। इसमें दो शाश्वत और दो अस्थायी हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म और मोक्ष शाश्वत हैं, अर्थ और काम बीच में पड़ाव की तरह हैं। अन्त में धर्म और मोक्ष भी एक हो जाते हैं। यह संस्कृति आत्मा की अमरता पर आधारित होने से अजेय सिद्ध हुई है। सभी प्रकार के झंझावातों को सहने में समर्थ सिद्ध हुई है।

हम अपनी कामनाओं की पूर्ति करते हुए पूर्णता की ओर बढ़ सकें, पूर्णता लाभ कर सकें। इसके लिए चार आदर्श रखे—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ये ही भारतीय संस्कृति के चार महानतम आदर्श हैं। यही मानव जीवन के लक्ष्य है। इसके अन्तर्गत सारी कामनाएं आ जाती हैं।

चार पुरुषार्थ

धर्म

धर्म एक वैदिक शब्द है। इसका समतुल्य या पर्यायवाची शब्द विश्व के किसी भी साहित्य भण्डार में नहीं है। संस्कृत के 'धृ' धातु से 'धर्म' शब्द बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है धारण करने वाला। 'धर्मो धारयते प्रजाः' धर्म ने ही प्रजा को धारण किया हुआ है। जिन नियमों, उपनियमों या गुणों का अवलम्बन कर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व विश्व की सत्ता की धारणा होती है उसे ही धर्म कहा जाता है। धर्म यानी समाज को विधिवत् धारण करने वाला शाश्वत सिद्धान्त। धर्म उन विश्वव्यापी नैतिक सिद्धान्तों का बोध कराता है जिससे पूरे समाज और विश्व (चराचर) की सत्ता कायम रहती है। धर्म विश्व-व्यापी नैतिक सिद्धान्तों का विश्वमंगलकारी विधान है।

धर्म को वैदिक काल में 'ऋतम्' कहा जाता था, जिसका शाब्दिक अर्थ 'विश्वव्यापी नैतिक सिद्धान्त' है। इसी 'ऋतम्' शब्द से लैटिन शब्द 'Rect' आदि शब्द बने हैं। अतः धर्म विश्वव्यापी नैतिक शासन है जो सब के व्यापक कल्याण के लिये सब के हित में उचित एवं ठीक है। बिना ऋतम् के न सत्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं न ही उसकी उपलब्धि या साक्षात्कार सम्भव है। अतः स्पष्ट है कि परम सत्य की उपलब्धि के लिये ऋतम् (धर्म) का पालन अनिवार्य है।

धर्म हमारे समग्र जीवन से सम्बन्धित होने से Art of life है। Part of life नहीं जैसा कि हम सेमिटिक परम्परा यहूदी, ईसाई और इसलाम में पाते हैं। ये तीनों पूजा पद्धति तक सीमित हैं। ईसाई सप्ताह में एक बार चर्च में जाकर धर्म की इतिश्री कर मानवता को त्रास देने, संहार एवं शोषण करने लग जाते हैं या भोग विलास में लग जाते हैं। वहीं मुसलमान रोजा की नमाज अदा करने के पश्चात् जो इसलाम को नहीं मानते वे सब काफिर हैं, और निर्मम ढंग से वध के योग्य हैं अतः उनका संहार करने, वध करने में लग जाता है। इन तीनों के यहां धर्म पूजा पद्धति तक सीमित है यानी Part of life है भारत में धर्म सर्वसमावेशी है। जीवन के सभी पहलुओं या पक्षों का समावेश धर्म में है। कोई भी पक्ष धर्म से अछूता या बाहर नहीं है। धर्म Part of life नहीं वरन् Art of life है पर यह चीज पश्चिम के विचारकों को समझ में नहीं आती। वे धर्म को Part of life समझते हैं सिर्फ उपासना पद्धति या पूजा पद्धति तक ही सीमित रखते हैं, इसलिए भारत का धर्म उन्हें समझ में नहीं आता।

धर्म की कोई अवधारणा सेमिटिक परम्परा में नहीं है। उनकी अवधारणा Religion तक सीमित है। Religion होना सहज है। अपने ललाट पर चन्दन या विभूति लगा लें तो हिन्दू कहलायेंगे, गले में क्रॉस बांध लें क्रिश्चियन कहलायेंगे, अपनी टोपी में वक्र चन्द्र का प्रतीक लगा लें आप मुसलमान कहलायेंगे। आवश्यकता केवल Religion होने की नहीं धार्मिक या आध्यात्मिक होने की है। इसके लिए जीवन में ईश्वर निष्ठा के साथ-साथ यम-नियम की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। यह तब सम्भव होता है, जब शरीर और इन्द्रियां मन द्वारा, मन बुद्धि द्वारा, बुद्धि आत्मा द्वारा अनुशासित होवे। हमारे अन्दर षड्-रिपु हैं—काम-क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर। जिसके कारण कामना वासना विकार उत्पन्न होते हैं। उसे बुद्धि द्वारा, बुद्धि नैतिकता द्वारा नियंत्रित होनी चाहिए, और नैतिकता आत्मोन्मुखी, अध्यात्मोन्मुखी, ब्रह्मोन्मुखी, ईश्वरोन्मुखी होनी चाहिए। इसी क्रम से जीवन विकसित हुआ है, इसी क्रम से हम अपना विकास कर सकते हैं—अध्यात्मिक, धार्मिक बन सकते हैं। जीव-जगत् सबमें एक ही चेतना तत्त्व, एक ही आत्म तत्त्व, एक ही ब्रह्म तत्त्व, एक ही ईश्वर समाया हुआ है। सबमें अपना

आपा ही पिरोया हुआ है, अतः सब अपने हैं। कोई पराया, वैरी-बेगाना गैर है ही नहीं, तब किसको लूटे-पीटें-ठगें। सब परस्पर में पूरक-अनुकूल है, और परस्पर अवलम्बित हैं। अतः सबके प्रति सह-अस्तित्व का भाव, जीओ और जीने दो ही का भाव उत्पन्न होगा। धार्मिक या आध्यात्मिक होने के लिए आवश्यक है ईश्वर की न्यायप्रियता, सर्वशक्तिमत्ता और सर्वव्यापकता के साथ-साथ कर्म के सिद्धान्त, पुनर्जन्म, आत्मा की अमरता तथा मोक्ष के सिद्धान्त में अटल विश्वास हो। इन सबमें दृढ़ निष्ठा का परिणाम था प्राचीन भारत और अंग्रेजों से पूर्व के भारत में अपराध नहीं होता था, घरों में ताले नहीं लगते थे, पानी मांगने पर दूध से स्वागत होता था। सबमें परस्पर स्नेह, सहयोग सामंजस्य था। हमारे लिए पर-द्रव्य लोष्ठवत्, पर-नारी मातृवत् और सभी जन आत्मवत् थे। प्राण जाय पर वचन न जाय की रीत थी।

धर्म का सरल सहज अर्थ कर्तव्यपालन से है। शरीर से लेकर ब्रह्मपर्यन्त समस्त कर्तव्यों की विधिवत् परिपूर्ति का नाम ही धर्म है।

शरीर धर्म–शरीर के प्रति सात कर्तव्य हैं—शौच, स्नान, व्यायाम, भोजन, परिश्रम, सेवा और विश्राम।

कुल धर्म—परिवार की सेवा, सुरक्षा और प्रतिष्ठा।

इससे ऊपर जाति धर्म—जाति की सेवा, सुरक्षा और प्रतिष्ठा।

इससे ऊपर समाज धर्म—समाज की सेवा, सुरक्षा और प्रतिष्ठा।

इससे ऊपर देश धर्म—देश की सेवा, सुरक्षा और प्रतिष्ठा।

इससे ऊपर विश्व धर्म—विश्व की सेवा, सुरक्षा और प्रतिष्ठा।

सबसे ऊपर विश्वपति धर्म—ईश्वर की सेवा, पूजा व प्रतिष्ठा।

अतः धर्म भारतीय जीवन के ताने-बाने का केन्द्रीय तन्तु है जिसमें व्यक्ति-जीवन परिवार जीवन, समाज जीवन, राष्ट्र जीवन व विश्व जीवन गुंथा हुआ है। सूर्योदय से सूर्यास्त तक जन्म से मृत्यु पर्यन्त, कल्प से कल्पान्त तक कोई भी क्षण कोई भी कण, कोई भी व्यवहार धर्म से रहित नहीं है। चारों पुरुषार्थों में धर्म की निर्णायक भूमिका थी। धर्म के अनुशासन में ही अर्थ और काम शुभ मंगलकारी, समाजोपयोगी और मुक्ति का हेतु बनते हैं अन्यथा बंधनकारी और बार-बार जन्म-मृत्यु का आधार बनते हैं तथा व्यक्ति और समाज दोनों के लिए पीड़ादायक बनते हैं। धर्म करते-करते ही मोक्ष के अधिकारी, पात्र बनते हैं।

धर्मो रक्षति रक्षितः—जो धर्म का पालन करता है धर्म भी उसकी रक्षा करता है। जितनी मात्रा में हम धर्म का पालन करते हैं उतनी मात्रा में धर्म हमारी रक्षा

करता है। जैसे शरीर धर्म का जितना हम पालन करेंगे उतनी मात्रा में शरीर हमारी रक्षा करेगा या साथ देगा। वैसे ही हम परिवार धर्म का पालन करेंगे तो परिवार भी हमें सुरक्षा व प्रतिष्ठा प्रदान करेगा। वैसे ही समाज धर्म, राष्ट्र धर्म, विश्व धर्म का पालन करेंगे तो ये भी हमें सेवा, सुरक्षा व प्रतिष्ठा प्रदान करेंगे।

हमारे यहां धार्मिक राज्य (रामराज्य) रहा मजहबी राज्य कभी नहीं। धार्मिक राज्य का तात्पर्य न्याय के राज्य से है, कानून के राज्य से है। Law and order में सभी को समान दृष्टि से देखा जाता है। पंथ या पूजा पद्धति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं था। सभी मतों को समान संरक्षण और आदर प्राप्त था। हमारे यहां राज्य सदैव धर्मसापेक्ष व पंथनिरपेक्ष रहा है।

हमारे राजा आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या में दीक्षित होते थे। क्योंकि बिना ब्रह्मविद्या या आत्मविद्या में दीक्षित हुए कुशल प्रशासक नहीं बन सकता। ब्रह्मविद्या में दीक्षित व्यक्ति ही राग-द्वेष से रहित होकर सबको शोषणमुक्त शासन दे सकता है। इसलिये गीता में ज्ञान की परम्परा कहाँ से प्रारम्भ होती है, इस विषय में स्वयं भगवान् श्री कृष्ण बता रहे हैं, गीता के चौथे अध्याय के प्रथम श्लोक से तीसरे श्लोक तक—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।1।।
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप।।2।।
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।3।।

मैंने गीताज्ञान सबसे पहले सूर्य को (सूर्यवंशी राजा को) कहा था। सूर्य ने अपने पुत्र मनु को, मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को दिया। इस प्रकार से यह ज्ञान राजाओं ने जाना। कालक्रम में लुप्त होने पर पुनः भगवान् एक कुशल प्रशासक (अर्जुन) को दे रहे हैं। एक श्रेष्ठ प्रशासक दूसरे प्रशासक को दे रहे हैं।

इसी प्रकार वृहदारण्यक उपनिषद् में आता है, श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालक के साथ राजा अश्वपति के पास ब्रह्मविद्या की जिज्ञासा लेकर पहुँचता है। तब राजा उनको सविधि उपदेश देता हुआ कहता है, इससे पूर्व यह विद्या किसी ब्राह्मण को विदित नहीं थी, अब मैं क्षत्रिय तुमको इसका उपदेश देता हूं।

बिना ब्रह्मविद्या में दीक्षित हुए सबमें एकत्व देख नहीं सकते। बिना एकत्व देखे हम राग-द्वेष से मुक्त नहीं हो सकते और राग-द्वेष से मुक्त हुए बिना हम सबको शोषण मुक्त न्याय व शासन नहीं दे सकते। इसलिये ग्रीक दार्शनिक अरस्तू कहता है राजा को दार्शनिक होना चाहिये। और भारत में हम देखते

हैं आत्मविद्या प्रारम्भ होती है राजर्षियों से। और हमारे राजा आत्म विद्या में दीक्षित होते थे।

तभी राजा अश्वपति यह घोषणा कर सके कि मेरे जनपद में न कोई चोर है, न कोई कृपण है, न ही मद्य पीने वाला है, न कोई अग्निहोत्र रहित है, न कोई अनपढ़ है, न कोई व्यभिचारी है, फिर व्यभिचारिणी का तो कहना ही क्या?

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

छा. उ., 5/11/5

इसलिए भीष्म पितामह युधिष्ठिर को शान्ति पर्व में उपदेश देते हुए कहते हैं—'राजाकालस्य कारणम्' (शान्ति पर्व 69-79)।

राजा अपने समय का निर्माता होता है। सर्वोच्च पद पर बैठा व्यक्ति सत् है तो सारा समाज सत्पथ का अनुगामी होता है। इसलिए कहा जाता है 'यथा राजा तथा प्रजा'। राजा में दोष है तो समाज में भी दोष होगा। गुरु में कमी हो तो वह शिष्य में भी आ जाती है। माता-पिता में दोष है तो वह दोष बच्चों में आ जाता है। अतः उच्च पद पर बड़े पदों पर, सर्वोच्च पर बैठा सत्पुरुष ही होना चाहिए। इसलिए हमारे राजा ब्रह्मविद्या-आत्मविद्या में शिक्षित, दीक्षित, संस्कारित होते थे। फलतः सारा समाज सत्पथ का अनुगामी होता था जिससे सारे देश में सुख-शान्ति, समन्वय का साम्राज्य था। सब कर्तव्यपरायण होते थे। इसलिए ज्ञान की दृष्टि से जगत् गुरु और वैभव की दृष्टि से सोने की चिड़िया था भारत।

भारत में विधिवेत्ता राजा या राजनेता नहीं ऋषि-मुनि होते थे, जो राग-द्वेष से रहित होकर मानव मात्र के हित को ध्यान में रखकर विधान रचते थे। अंग्रेजों के पूर्व तक यही स्थिति देखते हैं। जिन्होंने स्वयं का निर्माण किया है और स्वयं शासित है, वही दूसरों पर शासन करने के लिये विधान रच सकते हैं।

हमारे यहां धर्म न कभी आत्मपीड़क बना न परपीड़क बना वरन् आत्मसेवक, जन-जन का सेवक, विश्व का सेवक बना। हिन्दू धर्म वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से, सर्वे सन्तु सुखीनः की भावना से, विश्व मंगल की भावना से परिचालित रहा।

और बड़े मजे की बात है। जिन्होंने भी धर्म का विरोध किया, धर्म को बहिष्कृत करने का प्रयास किया वे धर्म को बहिष्कृत न कर सके परन्तु एक नीच कोटि के धर्म के उपासक हो गए, असुरता में, पशुता में, पिशाचत्व में चले गए।

प्राचीन उदाहरण देखना हो तो पुराणों में वर्णित असुरों के जीवन को देख लेवें यथा—रावण, कुंभकर्ण, हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, बेंन राजा, दुर्योधन आदि को या लोक कल्याण के नाम पर चलने वाली साम्यवादी धारायें रूस और चीन को देख लेवें। लेनिन, स्टालिन आदि ने जनक्रान्ति के नाम पर करोड़ों लोगों की बलि चढ़ा दी वही चीन के माओ ने किया और दोनों ने ही अपने आस-पास के देशों को साम्यवाद प्रसार के नाम पर पिछलग्गू राष्ट्र खड़े किए और उनका निर्मम शोषण किया। ऐसे ही आधुनिक मनोविज्ञान के जनक फ्रायड को लेवें या उसके पदचिह्नों पर चलने वाले आधुनिक मनोवैज्ञानिकों को देख लेवें या प्रगतिशील कम्युनिस्टवादी साहित्यकारों को लेवें, ये प्रगति के नाम पर धर्म की परम्परागत श्रेष्ठ मान्यताओं के अनुशासन को बाद देकर मानव की निम्न प्रवृत्तियों को खुली छूट दे रहे हैं, उसकी प्रशस्ति गा रहे हैं। उन्हें निम्नकोटि के धर्म का उपासक बनाकर पतन के गर्त में डाल रहे हैं। ये सब धर्म को बहिष्कृत न कर सके वरन् स्वयं एक निम्नकोटि के धर्म के उपासक हो गये। रूस के लिओ टाल्सटाय ने अपनी पुस्तक What is Religion में इसका स्पष्ट प्रतिपादन किया है।

अर्थ

अर्थ हमारा आर्थिक एवं राजनीतिक आदर्श है। जिसमें धर्म पर चलते हुए धन-धान्य की प्राप्ति एवं राज्य की वृद्धि एवं समृद्धि को उचित महत्त्व दिया गया है। अर्थ न अनर्थ होना चाहिए, न व्यर्थ। डकैत का पैसा अनर्थ है, कंजूस का पैसा व्यर्थ है। धर्म के द्वारा अर्थ उपार्जित होना चाहिए और व्यापक लोकहित में उसका सदुपयोग होना चाहिए। फिर अर्थ का न अभाव होना चाहिए और न प्रभाव। दोनों स्थितियों में अपराध होते हैं।

अर्थ के अभाव में मनुष्य का विकास रुक जाता है। उसकी सारी चेतना पेट पर केन्द्रित हो जाती है और उसके लिए कुछ भी अपराध करने को तैयार हो जाता है। राष्ट्रपति वराह वेंकट गिरि देश की अतिशय निर्धनता से दुःखी होकर अश्रुपूरित वाणी में कहते हैं—'इस आजाद देश के सामान्य नागरिक को भोजन, कपड़ा और आवास की उतनी सुविधाएं भी प्राप्त नहीं हैं जितनी कि कारागार में कैद भुगतने वाले किसी चोर, डाकू या कातिल जैसे अपराधियों को भी प्राप्त होती है।' इसीलिए भुखमरी का शिकार एक गरीब सज्जन भूख से लाचार होकर अपराधी बनता है ताकि जेल में रोटी-कपड़ा और कोठरी तो मिल जाएगी। इन्होंने इन्दिराजी को एक योजना भी दी थी जिससे गरीबों को सस्ते में भोजन, वस्त्र, आवास मिल सके। पर इन्दिराजी ने उसे स्वीकारा नहीं। यह सामान्य कहावत है, 'भूखे पेट भजन न होहि गोपाला' अतः सबकी प्राथमिक आवश्यकता की अवश्य

पूर्ति होनी चाहिए। किसी को अर्थ का अभाव न हो इसके लिए प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था द्वारा सबकी आजीविका सुरक्षित कर दी गयी थी।

अर्थ के प्रभाव से भी अपराध होता है। जब हम अर्थ को साधन न मानकर साध्य मान लेते हैं कि रुपया खुदा तो नहीं है पर खुदा से कम भी नहीं है। 'बाप बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपया' आदि भाव आने पर ही चोरी, मिलावट, कालाबाजारी, घूसखोरी, भ्रष्टाचार को प्रश्रय मिलता है। सब बिकाऊ बन जाता है, बस सबकी कीमत अलग-अलग होती है। इसी कारण संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। अर्थ के प्रभाव ने ही पश्चिम में प्राचीन काल में साम्राज्यवाद को, वर्तमान काल में बाजारवाद को, उपभोक्तावादी संस्कृति को, Use and throw की संस्कृति को जन्म दिया। भारतीय संतुलित धर्म आधारित अर्थव्यवस्था ने परिवारवाद को जन्म दिया। परिवार में परिवार के प्रत्येक सदस्य की हितचिन्ता होती है और बाजार में ऐसी वस्तु निर्मित होती थी जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले। पर बाजारवाद में विक्रेता की क्रेता को ठगने, लूटने की वृत्ति होती है। तभी आज बाजार अनावश्यक सामानों से भर गये हैं और Use and throw की संस्कृति को बढ़ावा दिया जा रहा है। धर्म के अभाव में पश्चिमी अर्थव्यवस्था अनर्थ को जन्म दे रही है। पर भारत में धर्म पर आधारित अर्थव्यवस्था ने, अर्थ का प्रभाव किसी पर न हो, अर्थ का संतुलन बना रहे, अर्थ की विषमता न्यून हो, और अर्थ का व्यापक सदुपयोग हो इसलिए यज्ञ, दान एवं ट्रस्टीशिप के भाव को प्रश्रय देकर समाज में अर्थ को संतुलित किया गया था।

काम

काम हमारा मनोवैज्ञानिक आदर्श है, जिसमें धर्म की मर्यादाओं में रहते हुए सांसारिक सुख-कामनाओं की प्राप्ति को उचित महत्त्व दिया गया है। बिना धर्म के अंकुश के काम भी व्यभिचार बन जाता है।

धर्म विहीनम् कामम् भोगम्।
संयम् हीनम कामम् रोगम्।

कामना पूर्ति के लिए माता-पिता गुरुजनों की आज्ञा से गृहस्थाश्रम में जाने का विधान है। हमारे यहां विवाह संस्कार है, गृहस्थ आश्रम है। हमारे सभी देवी-देवता और अधिकांश ऋषि विवाहित है। गर्भाधान संस्कार है। जिसके अनुसार तुम काम की नहीं धर्म की संतति हो। धर्म के अनुकूल और धर्म के अविरुद्ध काम ही प्रशस्त है। धर्म के अनुकूल प्रजनन ईश्वरीय कर्म है जिसके द्वारा सृष्टि अनुवर्तन होता है। काम हमारे यहां देव है बाइबिल की तरह पाप या शैतान नहीं। दर्पित कंदर्प ही दण्डित होता है।

मोक्ष

यह हमारा आध्यात्मिक आदर्श है, जिसमें हम अपने यथार्थ आत्म स्वरूप का, आत्म-ब्रह्म ऐक्य का अनुभव प्राप्त करते हैं।

काम मनोवैज्ञानिक आदर्श है, अर्थ हमारा आर्थिक एवं राजनैतिक आदर्श है। धर्म नैतिक आदर्श है, मोक्ष आध्यात्मिक आदर्श है।

इहलोक में समुत्कर्ष और परलोक में परम निश्रेयस् दोनों की प्राप्ति भारतीय संस्कृति द्वारा अभीष्ट है। हजारों वर्षों के झंझावातों के उपरान्त भी इस संस्कृति की परिपूर्णता, वैज्ञानिकता, मनोवैज्ञानिकता, सामाजिकता, नैतिकता और आध्यात्मिकता को कोई भी कलम का धनी चुनौती नहीं दे सका और तलवार का धनी नष्ट नहीं कर सका। इसी मृत्युंजय संस्कृति के कारण ही आज तक भारत बना हुआ है।

चार आश्रम

भारत के ऋषियों ने चारों आदर्शों की प्राप्ति के लिए तथा व्यक्तिगत जीवन के विकास के लिए जीवन को चार आश्रमों में बांटा—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासाश्रम।

ब्रह्मचर्य आश्रम—यह रससंचय का काल है। इसमें जीवन का पूरा नक्शा दे दिया जाता था। परा-अपरा दोनों विद्याएँ दी जाती थी। अपराविद्या मुख्य-रूप से, पराविद्या गौणरूप से। जीवन का लक्ष्य स्पष्ट कर दिया जाता था। ब्रह्मचर्य काल तपोमय होता था। जैसे पौधा जब तक पूरा वृक्ष नहीं बन जाता तब तक उसका रससंचय काल रहता है। उस काल में वह जितना रससंचय कर लेगा इसी के आधार पर आगे चलकर पूर्ण फल-फूल लगेंगे। अतः ब्रह्मचर्याश्रम में, विद्यार्थी काल में व्यक्ति जितना स्वास्थ्यरस, शक्तिरस, ज्ञानरस, धर्मरस का संचय कर लेगा, उसी के आधार पर भावी जीवन में उसका भवन खड़ा होने वाला है। अतः यह तपकाल है। गुरु-शिष्य मिलकर ही गुरुकुल बनता है। गुरुकुल की शिक्षा का प्रारम्भ उपनयन संस्कार से होता है। इसके अन्तर्गत गायत्री मंत्र की दीक्षा दी जाती है। गायत्री मंत्र द्वारा ब्रह्मशक्ति की उपासना की जाती है। दीक्षित बालक इसके द्वारा स्वयं प्रयास करके विश्वबुद्धि से प्रेरणा और ऊर्जा ग्रहण करने लगता है।

गुरुकुल में पूरे जीवन की साधना कर, ज्ञान प्राप्त करके स्नातक में यदि पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा का भाव है तो वह कामना के परिपाक के लिए विवाह संस्कार द्वारा गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है।

गृहस्थाश्रम में वह साधक पितृकुल से जुड़कर कर्म व उपासना करता है। गृहस्थाश्रम में जहां वह यज्ञ की प्रक्रिया द्वारा देवों से जुड़कर अपनी कामना की

पूर्ति करता है, वहीं पर वह पंच महायज्ञों का प्रतिदिन अनुष्ठान करके अपने निष्कामता के संस्कार को भी दृढ़ करता जाता है। पंच महायज्ञों के अनुष्ठान द्वारा साधक देवों से, ऋषियों से, पितरों से, मानव समाज से, वनस्पतियों से, प्राणी समुदाय से एक आत्मीयतापूर्ण सहभागिता व साहचर्यपूर्ण सम्बन्ध जोड़ लेता है। इस प्रकार पंच महायज्ञ के द्वारा वह पूरे पर्यावरण से जुड़ जाता है।

भारतीय संस्कृति कृतज्ञताप्रधान संस्कृति होने से कर्तव्यप्रधान संस्कृति है। वह मानती है कि जन्म से ही हमें तीन ऋण प्राप्त हैं—देव ऋण, ऋषि ऋण एवं पितृ ऋण। शरीर एवं संसार में हमें जो भी भोग उपलब्ध हैं वह देवों की कृपा का फल है। अतः उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना देवयज्ञ है। ज्ञान की जो परम्परा हमें प्राप्त हुई है वह ऋषियों की कृपा का फल है। उसे सुरक्षित रखना और संवर्द्धन करना ऋषि यज्ञ है। समाज को सुसंतान देना पितृ यज्ञ है। तीनों ऋणों से उऋण हुए बिना चित्त में वैराग्य एवं भक्ति का उदय नहीं होता। चित्त में आत्मसाक्षात्कार के लिए वांछित सूक्ष्मता, शुद्धि व शक्ति का उपादान नहीं होता।

गृहस्थाश्रम में धर्मपूर्वक अर्थ उपार्जन एवं धर्मपूर्वक काम उपभोग किया जाता है। धर्मपूर्वक उपार्जित अर्थ का उपयोग कामनापूर्ति के अलावा यज्ञ, दान आदि पुण्य कर्म में भी किया जाता है। यज्ञ, दान, तप द्वारा मनुष्य पवित्र बनता है। गृहस्थाश्रम में 'मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव।' की वेदाज्ञा द्वारा धारित-संचालित होकर व्यक्ति अपने समाज से एक आत्मीय रिश्ता जोड़कर विकास करता रहता है।

पचास वर्ष की आयु के पश्चात् पुत्र को परिवार का दायित्व सौंपकर वानप्रस्थ आश्रम को अपनाने का विधान है। इसमें परिवार जीवन गौण और समाज जीवन प्रमुख हो जाता है। वानप्रस्थियों द्वारा ही गुरुकुल एवं अन्य सामाजिक संस्थाओं का निर्वहन किया जाता था। इसलिए सामाजिक कार्य के लिए कार्यकर्ताओं का अभाव नहीं होता था। ब्रह्मचर्य आश्रम में व्यक्तिजीवन प्रमुख होता है। इसमें व्यक्तिगत जीवन के विकास की दृष्टि होती थी, गृहस्थाश्रम में परिवारजीवन की विकास की दृष्टि होती है। वानप्रस्थ आश्रम में समाजजीवन, राष्ट्रजीवन के विकास की दृष्टि होती है। यह आश्रम तपःपूर्वक दिव्य उपासना करने के लिए भी होता है। यह मुख्यतः देवकुल द्वारा मर्यादित आश्रम है। उपास्य देव एवं उपासक मिलकर देवकुल बनता है।

अन्तिम 25 वर्षों के लिए संन्यास आश्रम का विधान है। संसार हमें छोड़े या छिटकाये, इसके पूर्व हम ही संसार को छोड़ने के लिए प्रस्तुत हो जावें। संसार हमें छोड़ेगा तो हमें दुःख होगा। हम ही स्वयं संसार को छोड़ देवें, त्याग देवें तो

हमें आनन्द होगा। कुल के लिए व्यक्तिविशेष के हित का त्याग, ग्राम के विकास के लिए एक परिवारविशेष के हित का त्याग एवं राष्ट्र के लिए ग्रामविशेष के हित का त्याग कर देना चाहिए। वैसे ही आत्मा के हित के लिए पूरी पृथ्वी का त्याग कर देना चाहिए।

इसलिए गीता कहती है कि जब ईश्वर की पुकार आ जाए, आत्मा की पुकार आ जाए तब सब धर्मों को त्याग कर आत्मा की शरण में या ईश्वर की शरण में चले जाना चाहिए—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। 18/66, गीता

शरीर, इन्द्रिय, मन एवं संसार के सब कर्तव्यों को त्यागकर एकमात्र मेरी शरण में आ जाओ।

संसार में कर्तव्यों का कोई अन्त नहीं है। एक सीमारेखा के पश्चात् संसार से विरक्त या अलग हो जाना चाहिए। फिर कर्म-साधना से निर्मल होकर, उपासना से निर्मलतर एवं निश्चल होकर साधक ज्ञानसाधना करने का अधिकारी बनता है। ज्ञान-साधना करने हेतु साधक संन्यास आश्रम में प्रवेश करता है। यह आश्रम 'आत्मकुल' द्वारा धारित है। यह आश्रम पराविद्या की प्राप्ति के लिए होता है। इसी जन्म में जीवन्मुक्ति प्राप्त करने, आत्मब्रह्म-ऐक्य की अनुभूति करने हेतु ही संन्यास आश्रम है।

वर्ण व्यवस्था

भारत की मृत्युञ्जय संस्कृति में भारतीय समाज को एक सुन्दर व्यवस्था में निबद्ध किया गया है ताकि व्यक्ति और समाज, दोनों का क्रमशः विकास होता जाय और मानव पुरुषार्थ चतुष्ट्य के जीवनमूल्य को प्राप्त कर सके। चातुर्वर्ण्य की रचना बड़े मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय आधार पर की गई थी। यह हमारी जाति व्यवस्था थी, जात-पांत का भेदभाव नहीं। व्यवस्था और भेदभाव में आकाश-पाताल का अन्तर है। जिस घर में व्यवस्था है वहाँ स्वर्ग का वास है और घर में भेदभाव होते ही घर नरक तुल्य बन जाता है।

दुर्भाग्य से आजकल चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को जात-पांत का भेदभाव कहकर इसकी निन्दा करना आजकल के अधकचरे लीडरों का धन्धा बन गया है। समाजवादी और कम्यूनिस्ट नेतागण भी पश्चिमी विचारधारा से प्रभावित होकर आये दिन हिन्दू समाज, वर्ण व्यवस्था, ब्राह्मणवाद आदि को जाने-अनजाने गाली सुनाते रहते हैं। कई हिन्दुत्वाभिमानी नेता भी जाति व्यवस्था की ऐसी असन्तुलित आलोचना कर बैठते हैं जिससे हिन्दुत्व को लाभ होने के स्थान पर हानि होती है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कहा, 'वर्ण व्यवस्था जो कभी

हिन्दू समाज की जीवन व्यवस्था थी, आज वह समाज की मरण व्यवस्था बन रही है।'

इस कथन में स्वामीजी का दुःख ध्वनित होता है कि आज दुर्भाग्य से हिन्दू-हिन्दू को अछूत मानकर घृणा करने लगा है जिसके फलस्वरूप चतुर्थ वर्ण के अभागे हिन्दू अपना स्वधर्म त्याग कर ईसाई और मुसलमान बन जाते हैं तथा इस प्रकार हिन्दू समाज का क्रमशः मरण होता जाता है।

गांधीजी ने शूद्रों को हरिजन नाम देकर उनका मान बढ़ाया और स्वयं हरिजन कॉलोनी में रहकर और साबरमती में हरिजनोद्धार हेतु आश्रम बना कर उन्होंने सवर्णों और अन्त्यजों के बीच के भेद को मिटाने का भरपूर प्रयास किया किन्तु वर्ण व्यवस्था में उनकी श्रद्धा बनी रही। वे एक बार वर्धा में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक शिविर में सब वर्णों के हिन्दुओं को साथ-साथ मिलकर कार्यक्रम करते हुए देखकर विस्मित हुए तथा संघ संस्थापक डा. हेडगेवार को कहा, 'जो कार्य मैं जीवनभर परिश्रम कर सफलतापूर्वक नहीं कर सका वह चमत्कार आप हिन्दू संगठन के माध्यम से कर सके हैं।' कई हिन्दू नेताओं (जैसे श्री सन्तराम बी.ए.) ने सब वर्णों के संगठन के स्थान पर जात-पांत तोड़क मण्डल बनाया किन्तु वह सारे समाज से अलग-थलग एक पांचवीं जाति के समान एक छोटा खण्ड बना जो धीरे-धीरे समाप्त हो गया।

जो प्रगतिवादी नेता मंचों पर जातिवाद के विरुद्ध भयंकर विष वमन करते हैं वे स्वयं अपने आचरण में, लोक व्यवहार में, राजनीति में और चुनाव के प्रसंगों पर स्वयं जात-पांत को बड़े घृणित ढंग से बढ़ावा देते हैं और कुछ जातियों को दूसरी जातियों के विरुद्ध भड़का कर, एक पंथ को दूसरे पंथ के प्रति संशयालु बनाकर वे भयभीत एवं भ्रमित लोगों के मत बटोरकर अपना राजनीतिक उल्लू सीधा करते हैं। इस प्रकार भारत में जातिवाद एक ऐसा बेकार का पत्थर मान लिया गया है जिसको जल्दी से जल्दी फेंक देने का जनता को उपदेश दिया जाता है और चालाक लीडर उसी पत्थर पर अपने राजनीतिक शस्त्रों को घिसकर तेज करते हैं ताकि वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए समाज को काट सकें।

भगवान् ने गीता में कहा—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः 4/13

हे अर्जुन! मैंने गुण कर्म के विभाग से चातुर्वर्ण्य की सृष्टि की है किन्तु चारों का कर्ता मैं स्वयं निर्लिप्त होने के कारण अकर्ता ही हूँ। गीता में भगवान् स्वयं चारों वर्णों का कर्तव्य निभाते हुए भी स्वयं निर्लिप्त ही रहते हैं। वे ब्राह्मण के समान अर्जुन को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दे रहे हैं। एक क्षत्रिय के समान युद्ध

संचालन भी करते हैं, वैश्य के समान गो-पालन करते हैं और शूद्र के समान सारथि बनते हैं, रथ-संचालन करते हैं, घोड़ों की मालिश करते हैं और यज्ञ में जूठी पत्तल उठाते हैं और इस पर भी चारों वर्णों के कर्मों से निर्लिप्त-निर्विकार और सबसे ऊपर रहते हैं। आदर्श वर्ण व्यवस्था गुण एवं कर्म के आधार पर होती है जन्म के आधार पर नहीं, किन्तु गुण एव कर्म भी जन्म से प्रभावित होते ही हैं अतः जन्म के आधार को भी टाला नहीं जा सकता। जिस प्रकार एक नाटक में परस्पर भाई-भाई के समान प्रिय सदस्यों को भिन्न-भिन्न पात्रों की भूमिका दी जाती है और भूमिका देते समय यह विचार किया जाता है कि ऋषि की भूमिका के लिए किस व्यक्ति की वाणी, शरीर और गुण सम्पदा अधिक उपयुक्त है। इसी प्रकार राजा के लिए कौन उपयुक्त है आदि-आदि। वे नाटक में अपना-अपना कर्तव्य बहुत सुन्दर रीति से निभाते हैं किन्तु परस्पर विरोधी भूमिका होने पर भी उनके मन में कोई भेदभाव नहीं होता। समाज में चार वर्णों की परस्पर सहयोग भावना अनिवार्य है, शिक्षक, रक्षक, पोषक और सेवक। ब्राह्मण ज्ञाता है, क्षत्रिय त्राता है, वैश्य दाता है और शूद्र सहेता है। इन शास्त्री, शस्त्री, धनी और श्रमी के बिना आलिम, आमिल और ताजिर और मजदूर के बिना कोई समाज चल ही नहीं सकता।

वेद में चारों वर्णों की उत्पत्ति एक ही परम पुरुष से बतायी गई है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां ँ शूद्रो अजायत।।

उसी परमपुरुष के मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई, भुजाओं से क्षत्रिय, मध्य भाग से वैश्य तथा चरणों से शूद्र। इस प्रकार चारों वर्ण एक ब्रह्म के अभिन्न अङ्ग होने के कारण उनमें परस्पर संघर्ष, वैमनस्य, भेदभाव आदि का स्थान ही नहीं बचता। जिस व्यक्ति के मुख के आदेश को भुजायें न माने, जिसके उदर के अन्न से पूरे शरीर का पोषण न हो, जिसके पांव शरीर की सेवा करने के काम में हड़ताल कर दें उस शरीर का नाश अवश्यंभावी है। जहाँ चरण सेवा करते हैं, वहाँ मस्तिष्क उनकी भलाई का विचार करता है, हाथ निरंतर रक्षा के लिये तत्पर रहता है उदर अपने खाये हुए भोजन से उचित मात्रा में पांव को भी पोषण देता है और पांव तीनों वर्णों के सहयोग के बदले उनकी सेवा को प्रस्तुत रहता है, वहाँ शरीर स्वस्थ, सुन्दर एवं समाजोपयोगी बनता है। मानव के सुसंगठित शरीर के समान समाज का शरीर है जिसका कोई अंग अस्पृश्य, तिरस्करणीय, अनुपयोगी अथवा त्याज्य नहीं है। यह हमारी व्यवस्था गुण कर्म के आधार पर हो तो ही सर्वोत्तम है किन्तु बहुत से गुण परम्परा से वंश परम्परा के द्वारा भी पिता से पुत्र तथा पुत्र से

पौत्र में संस्कार बीज के रूप में प्राप्त होते हैं। अतः जन्म परम्परा का भी महत्त्व कम नहीं है।

फिर यह भी देखना आवश्यक है किस वातावरण में संस्कारों में पल रहा है और उसके प्रयास किस दिशा में हैं?

इन तीनों मानकों के आधार पर ही वर्ण का निर्णय होता था और वर्ण व्यवस्था थी, वर्ण भेद नहीं। इस रूप में वर्ण व्यवस्था जब तक सम्यक् रूप में चलती रही तब तक जीवन व्यवस्था के रूप में थी। पर कालान्तर में वर्ण व्यवस्था वर्ण भेद में परिणत हो गयी, ऊंच-नीच का भाव जुड़ गया और केवल जन्म ही आधार रह गया। केवल जन्म ही आधार रहने से विशेषाधिकार जैसी वस्तु बन जाती, गुण अर्जन का प्रयास न्यून हो जाता है, फलतः विकृत होकर आज मरण व्यवस्था के रूप में परिणत होती जा रही है। पर इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अच्छी से अच्छी व्यवस्था में कालान्तर में विकृति आ जाती है। इस संदर्भ में जागरूकता-सावधानी एवं समय के अनुसार आवश्यक संशोधन करते जाना चाहिए जो भारत में सदा से होता आया है। हमने शक, हूण, कुषाण, ग्रीक एवं बौद्धों को अपनी वर्ण-व्यवस्था में आत्मसात् कर लिया। वर्तमान में मुस्लिम एवं ईसाइयों को भी शुद्ध कर आत्मसात् करने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से अभी हम जागरूक नहीं हुए हैं। अतः इस क्षेत्र में पुनः जागृति की आवश्यकता है।

भारतीय समाज और जाति-व्यवस्था

भारतीय समाज जाति-व्यवस्था की भित्ति पर खड़ा है। आजकल जाति-व्यवस्था की कतिपय आलोचना की जा रही है। किन्तु आलोचक यह भूल जाते हैं कि जाति-व्यवस्था हमारे सामाजिक जीवन की ऐसी सुदृढ़ व्यवस्था रही है कि जिसने समाज के सभी सदस्यों को छोटी-छोटी इकाइयों में संगठित रहने में सहायता की तथा हजारों वर्षों के विदेशी आक्रमणों के उपरांत भी समाज को विशृंखलित नहीं होने दिया। जहां जाति-व्यवस्था हमारी जीवन व्यवस्था रही है वहां जातिविद्वेष हमारी मरण व्यवस्था कही जा सकती है।

व्यक्ति को स्वधर्म पालन में अपने से बड़ी इकाई के प्रति समर्पण के भाव का विकास करते जाना चाहिए। शरीर धर्म में शौच, स्नान, व्यायाम, भोजन, परिश्रम, सेवा, विश्राम ये सात कर्तव्य हैं। शरीर धर्म से ऊपर कुल धर्म है, जिसमें परिवार की रक्षा, सेवा, प्रतिष्ठा करना कर्तव्य है। उसके ऊपर जाति धर्म, उसके ऊपर समाज धर्म, उससे ऊपर राष्ट्र धर्म तथा फिर विश्व धर्म है। अतः जाति सेवा तो राष्ट्र सेवा एवं विश्व मानवता की सेवा के लिए एक आवश्यक

सीढ़ी है। समाज सुधार की अन्धी दौड़ में हमें वे आवश्यक सीढ़ियां ही नहीं तोड़ देनी चाहिए जिनके सहारे हम विश्व कल्याण के सर्वोच्च शिखर तक पहुंच सकते हैं।

भारतीय संस्कृति और नारी

भारतीय संस्कृति में नारी को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। ईश्वर के बाद मां को ही स्थान दिया गया है। शक्ति पूजा में मां की आराधना ईश्वर के रूप में की जाती है। नारी की हमने मां लक्ष्मी, मां सरस्वती, मां दुर्गा के रूप में वंदना की है। नवरात्र के अवसर पर कुमारी कन्या का विधिवत् पूजन करते हैं। बंगाल में जन्मती बच्ची को भी मां के नाम से सम्बोधित किया जाता है। मनु भगवान् भी कहते हैं—'जहां नारियों का सम्मान होता है, पूजा होती है वहीं देव, धन, ऋद्धि-सिद्धि, कीर्ति का वास है।' विदेश यात्रा में स्वामी विवेकानन्द से पूछा, आप नारी को किस दृष्टि से देखते हो और उसे सर्वोच्च सम्मान कब मिलता है? तब स्वामीजी ने कहा था—हम नारी को मां के रूप में देखते हैं और उसे सर्वोच्च सम्मान पाने के लिए मां बनने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। पत्नी तो वह कुछ काल के लिए है। माता वह अनन्त काल के लिए है। पत्नी तो वह एक-की है पर वह माता सबकी हो सकती है।

मानव-जाति की प्रथम गुरु माता ही है। वह निर्माता के साथ परित्राता भी है। पत्नी के रूप में वह अर्द्धांगिनी है, घर की साम्राज्ञी है, बिना पत्नी के कोई भी यज्ञकर्म सम्पन्न नहीं हो सकता। बहन और पुत्री के रूप में वह सदैव स्नेह की पात्र रही है।

पर सेमिटिक परम्परा में नारी में आत्मा नहीं है। पुरुष के मन बहलाव के लिए है, सेवा के लिए है। वह स्वयं पापिन है और पुरुष को भी पाप के संसार में लाने वाली है और वहां मां बनना घृणित कार्य है—वहां के मनीषियों ने मां को बड़ी गालियां दी है। और स्त्री को देवी के रूप में पूजना, महापराध है। यानी स्त्री को मां दुर्गा, मां लक्ष्मी, मां सरस्वती के रूप में पूजना महापाप है। आज भी पश्चिम में नारी मुक्ति, नारी जागरण के पश्चात् भी वहां नारी Sex symbol है। भोग्या है तभी तक उसकी पूछ है, सम्मान की पात्रा है। वहां नारी का भोग्या रूप ही सर्वत्र प्रसारित है। चाहे वह नृत्य हो, गीत हो, विज्ञापन हो, साहित्य हो, कला आदि कुछ भी हो। इसलिए एक बहुत प्रसिद्ध कथन प्रचलित है—भारत में अपनी पत्नी को छोड़कर सबको मां के रूप में देखा जाता है। इसके विपरीत पश्चिम में अपनी मां को छोड़कर सबको भावी पत्नी के रूप में देखा जाता है।

भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा

संस्कृत और संस्कृति, दोनों परस्पर जुड़े हुए हैं। दोनों का परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है और संस्कृत उस आत्मा को प्रकाशित करने वाली राष्ट्र की बोली है, भाषा है। भारतीय संस्कृति के सभी महान् एवं ऐतिहासिक अभिलेख संस्कृत तथा संस्कृत मूल वाली भारतीय भाषाओं में सुरक्षित है। अतः हमारी संस्कृति संस्कृत में ही बोलती है। संस्कृत में ही सुरक्षित है। संस्कृत के माध्यम से ही युगानुकूल परम्परा द्वारा हम तक पहुंची है। संस्कृति जीवन के महानतम आदर्शों की संस्कार परम्परा है। किन्तु, यदि कोई पूछे कि वे आदर्श क्या हैं? तो बिना भाषा के माध्यम के उन आदर्शों का निर्वचन कोई नहीं कर सकता। भाव भाषा के माध्यम से यात्रा करते हैं और भारतीय संस्कृति देव-भाषा संस्कृत के दिव्यरथ में बैठकर ही देशों, कालों एवं युगों की यात्रा करती हुई अभी तक अमर बनी हुई है।

भारतीय संस्कृति और शास्त्र प्रमाण

भारतीय संस्कृति श्रुति, युक्ति और अनुभूति को साथ-साथ महत्त्व देती है। शास्त्र, शास्त्र के अनुकूल तर्क और फिर स्वयं की अनुभूति ये तीनों साथ-साथ चलने चाहिए। शास्त्र त्याग करने वाला व्यक्ति चाहे कितना भी उच्चपदस्थ एवं तपस्वी हो, उसकी आज्ञा पालनीय नहीं है। अवतार होने पर भी बुद्ध के आदेश पालनीय नहीं बने। त्याग का आदर करते हुए भी त्यागी की शास्त्रविरुद्ध वाणी का पालन नहीं होना चाहिए।

भारतीय संस्कृति और अधिदेव

बिना अधिदेव को माने भारतीय संस्कृति न तो सिद्ध हो सकती है और न ही उसे हम समझ सकते हैं। गीता में ज्ञान की परम्परा बताते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं सर्वप्रथम गीता का उपदेश सूर्य को दिया। भगवान् राम समुद्र से रास्ता मांगने के लिए तीन दिन प्रार्थना करते रहे, प्रार्थना कारगर न होती देखकर कोप किया तो समुद्र देव प्रकट हुए और समुद्र पार करने का मार्ग बताया। भगवान् राम के अवतरण के साथ-साथ देवशक्तियां बंदर-भालू के रूप में रावण के संहार के लिए प्रकट हुईं। कुन्ती माता के पांचों पुत्र एवं कर्ण बिना देवों की सत्ता के सिद्ध नहीं हो सकते न ही भीष्म पितामह गंगा के पुत्र थे सिद्ध होगा।

भारतीय शास्त्र परम्परा एक ईश्वर को मानती है। उसके साथ ही प्रकृति की भिन्न शक्तियों का शासन भिन्न-भिन्न देवों के अधीन माना जाता है, जैसे वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर, इन्द्र आदि। ये देवता प्रकृति के भिन्न-भिन्न विभागों के

शासक हैं। पर इन देवताओं का भी ईशन करने वाला जो देवाधिदेव है उसे परमेश्वर (परम + ईश्वर) अर्थात् सब पर शासन करने वाला परम शासनकर्ता कहा जाता है। अधिदेव को मानने पर ही संत रविदास जी के नारियल को स्वीकारने स्वयं गंगा माता हाथ बढ़ाकर ग्रहण करने वाली घटना सिद्ध होगी एवं रामकृष्ण परमहंस देवजी की विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना भी अधिदेव को सत्य मानने पर ही मान्य होगी। प्राचीन साहित्य में वर्णन आता है नदियां बोली, यह सब अधिदेव की दृष्टि से सही है। स्पष्ट है बिना अधिदेव को स्वीकारे एवं माने भारतीय संस्कृति की व्याख्या नहीं हो सकती।

भारतीय संस्कृति और तपोवन

भारतीय संस्कृति वन संस्कृति है। तीन आश्रम यथा ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम सीधे वन से जुड़े हुए हैं। और गृहस्थाश्रमी भी, प्रेरणा प्राप्त करने के लिए वन में ऋषियों की कुटिया में सत्संग के लिए आते हैं। यहां तक राजा अपनी चतुरंग की सेना सजाकर नंगे पांव वन में ऋषि की कुटिया में उनका कुशलक्षेम जानने एवं उनसे आदेश एवं उपदेश प्राप्त करने के लिए पहुंचता है।

वैदिक भाषा में ऐसा एक भी शब्द नहीं मिलता जिससे यह प्रमाणित हो कि जंगल में रहने वाले असभ्य और बर्बर थे। जंगली शब्द निन्दावाचक है और यह अंग्रेजी के Savage का संस्कार ग्रहण कर हिन्दी में आया है। अंग्रेजी में यह शब्द Wild, uncivilised, cruel, nude, fierce आदि के लिए आता है। हमारी संस्कृति में 'वनवासी' शब्द अत्यन्त गौरवपूर्ण अर्थ धारण करता है। आर्य सभ्यता का जन्म, लालन-पालन, विकास और संरक्षण वनवासी ऋषियों, विचारकों, आचार्यों से होता रहा। प्रणव का प्रथम घोष किसी निविड़ वन के अंतराल में ही हुआ और त्रिपथगा ज्ञानगंगा की शाश्वत धारायें भी ऐसे शान्त मनोरम वनों से प्रकट होकर सर्वत्र फैली। वन की स्निग्ध छाया में ज्ञानयज्ञ के लिए ज्योति प्रकट की गई और वहां के ऋषि त्यागी-तपस्वी द्रष्टा आचार्यों ने ब्रह्मचारियों को ज्ञान से ओत-प्रोत करके कर्म-भूमि में भेजा। यह परम्परा किसी न किसी रूप में आज तक जीवित है। कहने का तात्पर्य यह है कि आर्यों के विश्वविद्यालय नगरों के कोलाहल से दूर, शान्त निविड़ वनों में थे। वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम का आश्रय स्थल अरण्य ही था।

भारतीय संस्कृति और ब्राह्मण

भारतीय संस्कृति देव संस्कृति, सतोगुणी संस्कृति होने से ब्राह्मण संस्कृति है। भारतीय संस्कृति के धारक, वाहक, प्रसारक मुख्यतः ब्राह्मण, संत समाज,

संन्यासिवृंद हैं। इनका जीवन सदाचारमय, त्यागमय, तपोमय, ज्ञानमय, सेवामय रहा है। इसलिए ब्राह्मण को भूदेव, संतों को चलते-फिरते तीर्थ की संज्ञा दी गयी है। इसी दृष्टि से उन्हें सर्वोच्च सम्मान दिया गया है। ये समाज के जीवंत गुरु के स्थान पर हैं, आदर्श के स्थान पर हैं। प्रेरणा और प्रकाश के अक्षयस्रोत के रूप में हैं। इस अर्थ में भारतीय संस्कृति को ब्राह्मण संस्कृति कहा जा सकता है। चेतना के ऊर्ध्वमुखी विकास के कारण, सद्गुणों व चरित्र के विकास के कारण यह देवी संस्कृति है, सतोगुणी संस्कृति है, ब्राह्मण संस्कृति है।

भारतीय संस्कृति और गोमाता

भारतीय संस्कृति जिन देवों की उपासना पर अधिष्ठित है वे समस्त देवता गोमाता के विग्रह में विराजमान है, एवं गोमाता स्वयं पृथ्वी का अधिदैविक रूप है। इस संस्कृति का सर्वोच्च आदर्श यज्ञ—गोमाता के गोमय गोरस एवं गोघृत पर अवलम्बित है।

भारत के मनुष्यों की ऋषि प्रज्ञा गोमाता के दुग्धामृत का वरदान है। भारतीय बल पौरुष एवं जनगण का जीवन गोमाता की सुधाधारा एवं वृषभों के तपःपूर्ण परिश्रम का वरदान है। स्पष्ट है हमारा धर्म तंत्र, ऋषि तंत्र, कृषि तंत्र, अर्थ तंत्र, गो-वंश पर आधारित है।

भारत का पारम्परिक राजनैतिक आदर्श है—'गोब्राह्मण परिपालन' और हमारा सर्वोच्च सांस्कृतिक आदर्श है 'अहिंसा परमोधर्मः' जो सार्वभौम महाव्रत है—हर देशकाल में पालनीय है। केवल अत्यन्त अपवाद स्थितियों में ही हिंसा की अनुमति है।

भारतीय संस्कृति और विचार स्वातंत्र्य

संसार में दो प्रकार की विचार परम्पराएं देखने को मिलती हैं—एक मुक्त विचारों की परम्परा और दूसरी बद्ध-विचारों की परम्परा। भारत में मुक्त विचारों की परम्परा पाते हैं। भारत ने सत्य को किसी परिभाषा में आबद्ध नहीं किया। ऋषियों ने कहा—'**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।**' इसलिए वेद ने सत्य की व्याख्या नेति-नेति कहकर की। गुरु नानकदेव कहते हैं—'सत्य को करोड़ों मुखों से करोड़ों युगों तक कहा जाए तो भी उसकी व्याख्या नहीं हो सकती।' रामकृष्ण परमहंस कहते हैं—'सबको झूठा किया जा सका है पर ब्रह्म को आज तक कोई झूठा नहीं कर सका।' गांधीजी कहते हैं—'हिन्दुत्व सत्य की सतत साधना है।' डॉ. राधाकृष्णन् कहते हैं—'हिन्दुत्व अध्यात्म क्षेत्र की खुली प्रयोगशाला है। 'हिन्दुत्व केवल अध्यात्म की ही नहीं वरन् सभी क्षेत्रों की खुली प्रयोगशाला

रहा है। सत्य के अनेक या अनन्त पक्ष होते हैं, उसे कोई एक साथ जान नहीं सकता।' इसलिए अनेकान्तवाद या स्याद्वाद के नाम पर एक दार्शनिक धारा ही चल पड़ी। वेद में कहा है—'सत्य तो एक है पर विद्वान् लोग उसकी नाना नाम-रूपों में व्याख्या करते हैं।' इसलिए षड्दर्शन की धारा साथ-साथ चली। यहां न किसी को सुकरात की तरह विष का प्याला पीना पड़ा, न अरस्तू की तरह किसी को निर्वासित जीवन जीना पड़ा। न ईसा की तरह किसी को सूली पर चढ़ना पड़ा, न गैलीलियो की तरह जेल में सड़ना पड़ा और न जीनो की तरह घर समेत जलना पड़ा। न किन्हीं पुस्तकालयों, देवालयों को आग दिखानी पड़ी। भारत ने कभी अपने विचारों को थोपा नहीं। पर पश्चिम की चेष्टा आज तक यही है। सभी क्षेत्रों में अपने विचारों को थोपने का प्रयास किया। आकर्षक सिद्धान्तों के नाम पर यथा वैश्वीकरण, उदारीकरण आदि। चाहे वह आर्थिक जगत् के सम्बन्ध में विचार हों, चाहे इतिहास के सम्बन्ध में विचार हों, चाहे भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में विचार हों, चाहे धर्म, संस्कृति, दर्शन, भाषा आदि के सम्बन्ध में विचार हों।

पश्चिम में बद्ध-विचारों की परम्परा पाते हैं। पश्चिम की दृष्टि यह रही कि हमने जितना जाना उतना ही सत्य है और बाकी सब असत्य है, कुफ्र है, नष्ट होने के योग्य है। सत्य को उन्होंने एक सीमा में आबद्ध कर दिया। उसके बाहर जो कुछ भी है वह सब असत्य है। यही कारण है कि जब सुकरात ने ग्रीक परम्परा से भिन्न विचार व्यक्त किया तो उसे जहर का प्याला पीना पड़ा। अरस्तू को अपने देश से निष्कासित होकर एक निर्जन टापू में अपना अन्तिम जीवन बिताना पड़ा। ईसा को यहूदी विचार परम्परा से भिन्न विचार व्यक्त करने के कारण सूली पर लटकना पड़ा। ईसाइयों ने यहूदियों को ईसा का हत्यारा घोषितकर उन पर हर प्रकार के अत्याचार किए। गैलीलियो को ईसाई परम्परा से भिन्न विचार व्यक्त करने के कारण जेल में सड़ना पड़ा और अपनी स्थापना को वापस लेना पड़ा। कोपरनिकस ने पादरियों के भय से अपने विचारों को अपने जीवनकाल में प्रकाशित नहीं किया। दार्शनिक जीनो को घर समेत जलना पड़ा, पुस्तकालयों को जलना पड़ा और देवालयों, तीर्थालयों को ध्वस्त होना पड़ा। यही बात इसलाम के साथ भी है—या तो कुरान स्वीकारें या मौत। स्वयं पैगम्बर साहब ने अपनी बातें तलवार के द्वारा ही मनवायी। उन्हें एक भी दार्शनिक प्रवचन करते नहीं पायेंगे। और इसलाम में तलवार का वही महत्त्व आज तक कायम है। हिन्दू विविधता में एकता को, एकात्मता को ढूंढ़ता है। विरोधों में सत्य को ढूंढ़ता है। बुराई में भी अच्छाई खोजता है। उसको न केवल सहने (Tolerance) वरन् स्वीकृत करने (Acceptance) की सत्य मानने की परम्परा, सबके साथ

सामंजस्य स्थापित करना इसलिए चार्वाक भी हमारे यहां ऋषि हैं, इसी भाव के आधार पर 50 A.D. केरल में हम ईसाइयों का स्वागत कर पाये। वहीं 700 ई. में मुसलमानों का स्वागत कर पाये और आज भी अक्षम्य राष्ट्रीय अपराधों के बाद भी हृदय से लगाये हुए हैं। पर पश्चिम की परम्परा अच्छाई में बुराई ढूंढ़ती है। सत्य को तोड़-मरोड़कर असत्य प्रमाणित करने की चेष्टा की जाती है। इस मौलिक भेद को सदा ध्यान में रखना चाहिए।

इस प्रकार पश्चिम की ओर भारत की दो अलग-अलग भाव भूमि है। यही कारण है जो पश्चिम के (ईसाई-इसलाम) के सम्पर्क में आता है वह अपने मूल रूप से समूल नष्ट होकर विदेशी बर्बर पैशाचिक भावधारा से ग्रसित आक्रान्त हो जाता है—रोम, यूनान, मिस्र, अमेरीका, न्यूज़ीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, इराक, ईरान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बांग्लादेश आदि इसके उदाहरण हैं। और जो भारत के सम्पर्क में आता है वह विकसित, श्रेष्ठ, शिक्षित, संस्कारित हो जाता है। इसका उदाहरण ईसाई व इसलाम के उदय पूर्व के विश्व के देश।

यदि मनुष्य को सचमुच में मनुष्य बनना है तो उसे हिन्दुत्व नहीं, हिन्दुत्व की धारणा स्वीकार करनी होगी। दूसरे के विचारों के प्रति सहिष्णु बनना होगा। असहिष्णुता उन्हीं लोगों द्वारा प्रकट होती है जो अपने विचार की एकमात्र श्रेष्ठता बड़े उच्च स्वर में घोषित करते हैं।

भारतीय संस्कृति में आचार की कठोरता

भारतीय संस्कृति विचार की स्वतंत्रता, उदारता और आचार में कठोरता, अनुशासन को स्वीकारती है। विचारों की विविधता को पूरा प्रश्रय दिया पर आचार में मर्यादा बनी रहे, इसके लिए समाज को आश्रम व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था द्वारा बांध दिया गया है। जिससे व्यक्तिगत जीवन एवं सामाजिक जीवन में उच्छृंखलता एवं मनमानापन निर्माण न हो। व्यक्ति और समाज अनुशासित होकर स्वयं ही क्रमशः परमलक्ष्य की ओर गति कर उसको लाभ कर सके। ऐसी ही जीवन रचना (डिजाइन) भारतीय संस्कृति द्वारा की गई है।

भारतीय संस्कृति में हिंसा-अहिंसा की अवधारणा

भारतीय संस्कृति कर्तव्यप्रधान है। कर्तव्यप्रधान होने से त्यागप्रधान है, त्यागप्रधान होने से प्रेम अहिंसा व शान्तिप्रधान है। पश्चिमी संस्कृति अधिकारप्रधान है। अधिकारप्रधान होने से भोगप्रधान है, भोगप्रधान होने से स्वार्थ प्रधान, स्वार्थ प्रधान होने से संघर्ष और हिंसाप्रधान है। जो अपने राजनैतिक वैभव काल में अपने साम्राज्य विस्तार और धर्म विस्तार के नाम पर विश्व पर युद्धों को

थोपते रहे हैं, अन्यों की सभ्यता, संस्कृति व धर्म को कुचलते रहे हैं। पर भारत ने तो सदा शान्ति का, धर्म का ही दान दिया है। अहिंसा व प्रेम का ही संदेश दिया है सारे विश्व को।

भारतीय संस्कृति अहिंसा को परम धर्म के रूप में स्वीकारती है। संन्यासी के लिए जो लोक संग्रह से सुदूर और केवल ईश्वर भजन में निमग्न है। पर संन्यासी भी लोक संग्रह के भाव से दुष्ट शक्तियों को दण्डित स्वयं तो नहीं करता पर राज शक्ति का सहारा लेकर करवा सकते हैं। जैसा विश्वामित्र राज शक्ति का सहारा ले दुष्ट दलन करवाते हैं। गृहस्थों का धर्म अहिंसा परमो धर्म नहीं है शठये शाठये समाचरेत है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—कोई तुम्हें अकारण एक तमाचा लगाता है तो तुम दस लगाओ। कर्तव्य निर्णय एकांगी नहीं होता दूसरे के व्यवहार पर निर्भर करता है। जिस समाज में अहिंसा, प्रेम, करुणा कायम रखने के लिए ऐसी हिंसा का प्रयोग होता है वह अहिंसा ही है। समाज में, देश में अहिंसा, धर्म, न्याय, अभय, स्वतंत्रता, व्यवस्था सदा कायम रह सके, हमारी शान्ति को कोई भंग न कर सके, इसके लिए दण्ड को, युद्ध को, हिंसा को आवश्यक बुराई के रूप में वेद, रामायण, महाभारत, गीता में स्वीकारा गया है। जब शान्ति का और कोई उपाय शेष न रहे तब अन्तिम-आवश्यक बुराई के रूप में हिंसा को, युद्ध को भारतीय संस्कृति स्वीकारती है। कहा जाता है 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिंता प्रवर्तते।' शस्त्र से रक्षित राष्ट्र में शास्त्रचिंतन एवं समाज में शान्ति, सौख्य, अभय, स्वतंत्रता की व्यवस्था कायम रहती है। भारत राष्ट्र का अनुभवसिद्ध उद्घोष है—

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतस् सशरं-धनुः।
इदं क्षात्रं इदं ब्राह्मं शास्त्रादपि शरादपि।।

अर्थात् मेरे आगे चारों वेद है, उनके पीछे शरयुक्त धनुष है। मेरे पास ब्रह्मतेज है और क्षात्रतेज भी है। आसुरी शक्तियों को कभी शास्त्र द्वारा तथा कभी शस्त्र द्वारा निरस्त करते हुए मैं (राष्ट्र) प्रगति पथ पर प्रयाण करता हूं।

स्पष्ट है कि देश में सत्य, न्याय, धर्म, अहिंसा, न्याय, सद्भाव, प्रेम, सौख्य की प्रतिष्ठा बनी रहे इसलिए हिंसा, युद्ध, दण्डनीति को आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार किया गया भारतीय वैदिक परम्परा में।

सत्याग्रह और अनशन वहीं कारगर होते हैं जहां आत्मीयता का क्षेत्र हो और आत्मीयता शेष हो। सत्याग्रह और अनशन का कोई प्रभाव न मुसलमानों पर पड़ा और न अंग्रेजों पर। नहीं तो देश विभाजित नहीं होता। अंग्रेज देश को जितना तोड़ सकते थे, बांट सकते थे, बिखेर सकते थे, उलझा सकते थे, सब करके लाचार होकर गये। कोई प्रेम, अहिंसा से प्रभावित होकर नहीं। गांधीजी

के विषय में जो यह कहा जाता है—साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल, 'बिना खड्ग और ढाल के, बिना लड़ाई और वीरता के, चमत्कृत होकर सत्ता का हस्तांतरण करा दिया' यह पूर्णतया गलत पाठ पढ़ाया जा रहा है। दस लाख लोगों की बलि चढ़ गयी और एक लाख हिन्दू स्त्रियों का अपहरण और बलात्कार हुआ देश के विभाजन पर और पढ़ाया जा रहा है देश को आजादी अहिंसा से मिली। इससे बड़ा झूठ क्या हो सकता है। और देश विभाजन से यह भी स्पष्ट हो गया कि पाकिस्तान में गैर मुस्लिमों (हिन्दुओं) के लिए कोई स्थान नहीं है। लॉर्ड माउण्टबेटन स्वाधीनता के बाद भी पंडित नेहरू की कृपा से डेढ़ साल तक भारत का गवर्नर जनरल बना रहा। भारत का मित्र बनकर देश को सम्हालने के नाम पर वह जितने समय रहा देश की नींव खोदता रहा और देश को एक गड्ढ़े से दूसरे गड्ढ़े में डालता रहा। और फिर इंग्लैंड में बैठे-बैठे ही पंडित नेहरू को प्रभावित करता रहा। और यही कार्य वर्तमान में सत्ता में बैठी विदेशी मूल की महिला द्वारा हो रहा है। जितना राष्ट्रीय हिन्दू समाज को कुचला जा सकता है, दबाया जा सकता है, अपमानित किया जा सकता है कर रही हैं और अराष्ट्रीय मुस्लिम और ईसाई समाजों को जितना संरक्षण, सुविधा दे सकती है, दे रही हैं। इनके काल में गठित चाहे सच्चर कमेटी हो या चाहे जस्टिस रंगनाथ मिश्र की रिपोर्ट हो या सांप्रदायिक और लक्षित हिंसा निरोधक विधेयक 2011 हो, सबमें हिन्दू समाज को कठघरे में खड़ा किया गया है। सर्वत्र चोर कोतवाल को डांटे वाली स्थिति है। देश के पशुधन को समाप्तप्राय किया जा रहा है। गोपालक देश के दूध, दही, मक्खन, घी, मिठाई निर्यात के स्थान पर गोमांस निर्यातक देश, जूत्ता निर्यातक देश बनता जा रहा है। जितने भी प्रकार से देश को हानि की जा सकती है, घोटाले हो सकते हैं करवा रही हैं, कश्मीर वार्ता के नाम पर कश्मीर सौंपने की तैयारी, चीन के निरन्तर अतिक्रमण की अनदेखी आदि-आदि। देश कल नष्ट होता हो तो आज नष्ट हो जाए, अभी नष्ट हो जाए। इस नीति से चल रही है। सारा हिन्दू समाज ईसाइयत-इसलाम-चीन की झोली में चला जाए इस नीति से चल रही है। स्पष्ट है सत्याग्रह अनशन आदि वहीं सफल होते हैं जहां आत्मीयता का क्षेत्र है और आत्मीयता शेष है।

स्पष्ट है हमने धर्म, न्याय, सत्य की प्रतिष्ठा, स्वराज्य व अस्मिता की रक्षा की कीमत पर युद्ध को अस्वीकारा नहीं। नहीं तो धर्म, न्याय, नैतिकता पर से समाज की आस्था ही उठ जायेगी और सबकी अधर्माचरण की प्रवृत्ति हो जायेगी, सर्वत्र अव्यवस्था फैल जायेगी, और असमय में सृष्टि विनाश को प्राप्त हो जायेगी। इसलिए धर्म, न्याय, नैतिकता की प्रतिष्ठा बनी रहे इसके लिए युद्ध को एक आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकारा। इसी दृष्टि से भारतीय परम्परा

यथा गीता-रामायण आदि धर्मयुद्ध का आह्वान करती है। पर सेमिटिक परम्परा में विशेषकर ईसाइयत एवं इसलाम में जो जिहाद (धर्मयुद्ध) का आह्वान किया गया है वह अन्यों के—स्वराज्य का, धर्म का, संस्कृति एवं सभ्यता का, ज्ञान-विज्ञान का अपहरण करके उन पर विदेशी, बर्बर सभ्यता, संस्कृति एवं पंथ को थोपकर सदा के लिए अपना उपनिवेश स्थापित करने के लिए, बाजार स्थापित करने के लिए है। अब तक का इतिहास इस बात का साक्षी है। इस प्रकार हिन्दू धर्म के धर्मयुद्ध और ईसाई एवं इसलाम पंथ के जिहाद, क्रूसेड में मूलभूत अन्तर है। हिन्दू धर्म स्वराज्य, स्वधर्म, न्याय की प्रतिष्ठा के लिए धर्मयुद्ध की आज्ञा देता है। ईसाई व इसलाम जिहाद (क्रूसेड) के तहत अन्यों पर आतंक थोपकर उनके स्वराज्य, स्वधर्म एवं संस्कृति का अपहरण करके उनको विदेशी परतंत्रता में जकड़ करके उन पर अपना विदेशी बर्बर पैशाचिक पंथ एवं संस्कृति को थोपने के लिए है। स्पष्ट है गीता का धर्मयुद्ध सत्त्व की रक्षा के लिए है, बाइबिल व कुरान का धर्मयुद्ध सत्त्व के अपहरण के लिए है। अतः दोनों की दृष्टि में 'आकाश-पाताल' का अन्तर है।

भगवान् स्वयं अपने अवतरण का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। 4/7, गीता

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।। 4/8, गीता

हे भरतवंशी! जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं स्वयं का सृजन करता हूं (अर्थात् शरीर धारण करके प्रकट होता हूं)।

साधुओं की रक्षा करने के लिए, पापकर्म करने वालों का नाश करने के लिए और धर्म की भली-भांति स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट होता हूं।

इसमें शक्ति और शील का समन्वय है। शील द्वारा साधुओं की रक्षा और शक्ति द्वारा दुष्टों का नाश। सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए दोनों बातें आवश्यक है। इसमें से एक के अभाव में समाज लड़खड़ा जाता है और समाज टिक नहीं सकता। अगर सिर्फ शील द्वारा साधुओं की रक्षा कर दी जाए और दुष्टों को छोड़ दिया जाए तो वे पुनः समय पाकर आतंक मचाने लगेंगे। इतिहास इसका साक्षी है। हमने देश विभाजन भी स्वीकार कर लिया और मुसलमानों को भी रख लिया। फलतः पुनः अपना संख्याबल बढ़ाकर पुनः देश विभाजन जैसी स्थिति निर्माण कर दी है। अतः समाज को संतुलित रखने के लिए शील और शक्ति, दोनों आवश्यक हैं।

सामान्य व्यक्ति आदर्शवाद से दूर रहता है। हमारे ऋषि केवल आदर्शवादी नहीं व्यवहार जीवी भी थे। वे व्यवहार की यथार्थ भूमि में जीते थे। आत्मरक्षार्थ वीर रस का संचार भी आवश्यक है। दुष्टों के दमन के लिए ही भगवान् ने क्रोध आदि भाव व्यक्ति को दिये हैं। इसलिए वेद में जहां सैकड़ों मंत्र शान्ति के लिए गुंजायमान हैं वहीं आत्मरक्षार्थ वीर रस के संचार के लिए, शत्रु संहार के लिए युद्ध के मंत्र भी गुंजित हैं।

वाल्मीकीय रामायण में राम के लिए लिखा—जहां भगवान् भक्तों को अभय देते हैं, भक्त वत्सल है, वहीं रावण के साथ युद्ध में उनकी आंखों से अंगारे बरसते थे। इसलिए वेद में मन्यु के उपासना के भी मंत्र हैं।

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण के विराट रूप को देखकर डर जाते हैं। वे भगवान् से पूछते हैं आपने विभूतियोग में अपना प्रथम परिचय आत्मा के रूप में दिया। इस विराट दर्शन में आपका यह भयानक रूप देखकर मैं कांप गया हूं। आप कौन हैं मैं आश्चर्यचकित होकर पूछता हूं?

उत्तर—अर्जुन! मेरे दो रूप हैं। अन्तःप्रकृति में आत्म रूप और बाह्य प्रकृति में काल रूप। मैं आत्म रूप में अन्तः पर शासन करता हूं और काल रूप से बाह्य जगत् पर। भक्तों को मैं आत्म रूप से दर्शन देकर मोक्ष प्रदान करता हूं किन्तु अभक्तों को काल रूप से वश में रखता हूं, मृत्यु के चक्कर में घुमाता रहता हूं। अतः नैतिक स्तर विकसित नहीं है उन्हें दण्ड के द्वारा ही वश में किया जा सकता है। सब पर विवेक और प्रेम का शासन कारगर नहीं होता जिनका हृदय शुष्क, मस्तिष्क विकृत हो गया ऐसे आसुरी प्रकृति के लोग प्रेम, अहिंसा, कोमलता की बात को हमारी कायरता, दुर्बलता समझ कर वे अपने अत्याचारों को बढ़ाते जाते हैं। सुरसा के मुंह फैलाने के समान रावण ने ऋषियों के साथ, मुसलमानों-ईसाइयों ने हिन्दुओं व अनेक देशों के साथ किया।

इस दृष्टि से विश्व के सन्दर्भ में मुसलमानों का इतिहास एवं मुस्लिम लीग का इतिहास देखें। जैसे-जैसे कांग्रेस उनकी मांग मानती गयी वैसे-वैसे उनकी मांग बढ़ती गयी और शेष में देश विभाजन स्वीकारना पड़ा। जहां ये अल्पसंख्यक होते वहां उत्पाती और बहुसंख्यक वहां असहिष्णु एवं अल्पसंख्यक के रूप में तो कभी परिचय नहीं दिया सदैव बहुसंख्यकों को त्रस्त करने वाले रहे हैं। अहिंसा, सत्य आदि वहीं कारगर होते हैं जहां आत्मीयता शेष हो और आत्मीयता अशेष हो वहां-वहां ये असफल। दुर्योधन तो आत्मीय है पर वहां आत्मीयता शेष नहीं है। अतः वहां सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह कारगर नहीं है। वैसे ही पंडित नेहरू सत्य-अहिंसा का ढोल पीटने वाले, सत्य अहिंसा के मद में विप्लवी बंधुओं के

स्वाधीनता आन्दोलन में अवदान को अस्वीकार करने वालों ने गांधी हत्या आड़ में देशभर में आर.एस.एस. को कुचलने का प्रयास किया। इन्दिरा गांधी ने गो-रक्षक, अहिंसक 800 साधुओं को गोलियों से भुनवा डाला।

युद्ध का समर्थन न हो इसके लिए रामायण-महाभारत की ऐतिहासिकता अस्वीकार कर देने से असुरों का स्वभाव नहीं बदल जाता। और न ही उसके दुष्परिणामों से ही बचा जा सकता है। गांधीजी ने भी मुसलमानों के विरुद्ध पाकिस्तान एवं जिन्ना के विरुद्ध कभी अनशन नहीं किया। जब भी किया तो हिन्दुओं को मनवाने के लिए किया। मुसलमानों के पक्ष में ही अनशन किया उनके विरुद्ध कभी नहीं। हां, जब तक सशस्त्र संघर्ष नहीं कर सकते हैं हम दुर्बल हैं तब तक के लिए युद्ध नीति के तौर पर अहिंसा, सत्याग्रह का अवलम्बन ले सकते हैं। अहिंसा को साधन रूप से स्वीकारा जा सकता है साध्य रूप से नहीं। अहिंसा को नीति के रूप में स्वीकारा जा सकता है, सिद्धान्त रूप से नहीं। अहिंसा तो सिद्धान्त रूप में केवल लोक-संग्रह से सुदूर संन्यासी का ही धर्म हो सकता है और किसी का नहीं। गांधीजी ने भी स्वीकारा है जहां श्रद्धा हो, श्रद्धा के क्षेत्र के अन्तर्गत अहिंसा, सत्याग्रह कारगर होते हैं।

भारत सेवा संघ के प्रतिष्ठाता आचार्य प्रणवानन्दजी का कथन है— आन्तरिक शत्रुओं से संघर्ष के लिए धूप, दीप, तुलसी, जप ध्यान एवं बहिर्जगत् के शत्रु के दमन के लिए अस्त्र-शस्त्र। हमारे सभी देवी-देवता भी शस्त्रधारी हैं। दुर्बल होना ही, युद्ध की उपेक्षा करना ही युद्ध को निमंत्रण देना है। अहिंसा शब्द पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। शठे शाठये समाचरेत उपनिषद् का वचन है, इसे संन्यासी का धर्म बताया गया है। अशोक और अर्जुन में अन्तर है। दोनों दो भिन्न मोर्चों पर खड़े हैं। अर्जुन को तो धर्म की स्थापना, दुष्टों का दमन के लिए युद्ध आवश्यक है। यह स्थिति अशोक के साथ नहीं है वह तो व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा के लिए एक के बाद एक राज्य में रक्तपात कर रहा है। उससे तो वैराग्य होना ही उचित है, वैध है। व्यक्तिगत रूप से वह भिक्षु बने, संन्यासी बने, अहिंसक बने, संन्यास धर्म का पालन करे इसमें आपत्ति कहां है? हां, सम्राट की दृष्टि से संन्यासी धर्म ठीक नहीं है। वह अपने देश के प्रशासन में, सेना पर संन्यास धर्म थोपे, अहिंसा थोपे यह ठीक नहीं। वह जब भिक्षु बन गया तो सम्राट पद छोड़ देना चाहिए। राज्य पर किसी योग्य अधिकारी को बैठाना चाहिए था। पर सेना में अहिंसा का प्रचार कर रक्षा-व्यवस्था को दुर्बल कर विदेशी शत्रुओं का देश पर आक्रमण करने का मार्ग प्रशस्त कर देता है। देश, देशी-विदेशी षड्यंत्रों का अड्डा बनता है। देश गुलाम बनता है आदि दुष्परिणाम देश को भोगने पड़ते हैं। ऐसे गांधीजी का अहिंसा का प्रयोग व्यक्तिगत दृष्टि से प्रशस्त हो सकता है पर

हिन्दू राष्ट्र पर लादना गलत था। इससे हिन्दू समाज निस्तेज हुआ, न देश विभाजन रुका, न हिन्दुओं की हिंसा से रक्षा हो सकी। और विभाजन के बाद भी और-और देश विभाजन के रास्ते खुल गये।

यदि हमारी इच्छा न होते हुए भी युद्ध की बला सिर पर आ ही पड़े तो अन्याय-अनीति के सामने घुटने टेक देना एक बहुत बड़ा अनैतिक कर्म होगा क्योंकि इससे अत्याचार को बढ़ावा ही मिलेगा। अन्याय करना पाप है तो अन्याय सहना महापाप है। इसलिए अन्य सब उपाय व्यर्थ हो जाने पर अन्याय का प्रतिकार करना आततायी को दण्ड देना, धर्म है।

इसलिए जब अर्जुन प्रेम, दया और वैराग्य की बात करता है तो भगवान् उसे नपुंसक, कायर, अनार्य की उपाधि दे देते हैं। दया-वैराग्य की बात अपनी जगह ठीक है, पर अर्जुन के लिए इस विषम स्थल पर वह उचित नहीं, जैसे-विवाह के अवसर पर राम-नाम सत्य कहेंगे तो डण्डे पड़ेंगे, यद्यपि यह सत्य है। यह भगवान् का मन्तव्य है। यह ठीक है कि मनुष्य का अपने शरीर के अंगों के प्रति ममत्व होता है, पर यदि किसी अंग में गैंग्रिन हो जाये, अस्वस्थ हो जाये तब तो उसे काटकर ही अलग करना श्रेयस्कर है। यदि व्यक्ति यह कहकर रोता रहे कि अरे मेरा प्यारा अंग कट जायेगा, तो उस रुदन को कोई बुद्धिमानी नहीं कहेगा। बुद्धिमानी इसमें है कि उस अंग को तुरन्त काटकर अलग कर दें ताकि बाकी शरीर स्वस्थ रहे। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध के द्वारा अधर्म की बेल को काटने का उपदेश देते हैं। ताकि बाकी समाज धर्म पर चलता रहे, स्वस्थ रहे।

बड़े मजे की बात है हमारे युद्ध न करने से युद्ध बन्द नहीं होता। हमने तो कभी किसी पर आक्रमण नहीं किया वरन् विश्व को धर्म व संस्कृति का, ज्ञान-विज्ञान का निःस्वार्थ भाव से दान दिया। हमारे युद्ध न करने से कोई और हम पर युद्ध जारी रखता है, हम लड़ने न जायें इससे लड़ाई बन्द नहीं होती, सिर्फ हम गुलाम बने हैं और फिर हम भी लड़ाइयों में घसीटे जाते रहे। यह बड़े मजे की बात है। हम नहीं लड़े। कोई हम पर हावी हो गया, हमें गुलाम बना लिया और फिर हम उसकी फौज में लड़ते ही रहे। लड़ाई तो कुछ बन्द नहीं हुई। हम कभी मुगल की फौज में लड़े, कभी तुर्क की फौज में लड़े, कभी हम हूण की फौज में लड़े। फिर हम अंग्रेजों की फौज में लड़े। लड़ाई तो बन्द नहीं हुई। इतना ही होता हम अपनी स्वतन्त्रता के लिए लड़ते, अपने जीवन के लिए लड़ते, पर इसके स्थान पर हम अपनी परतन्त्रता के लिए लड़े ताकि हमारी परतन्त्रता सदा बनी रहे! इसके लिए भी हमारे युवक मरते रहे। महमूद गजनवी को जयचन्द ने, अकबर को मानसिंह ने, औरंगजेब को जयसिंह ने विजय दिलायी, साम्राज्य दिलाया एवं कायम रखा।

नरसंहार से बचने के लिए महात्मा गांधी, पं. नेहरू, पटेल आदि बड़े-बड़े नेतृत्व वर्ग ने द्विराष्ट्रवादी जिन्ना के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। इससे देश का विभाजन भी हुआ और नरसंहार से भी नहीं बच सका।

हमने रक्त तो दिया पर कायरता का रक्त दिया, पांच लाख हिन्दू पाकिस्तान में मारे गये, 5 हजार हिन्दू ललनाओं के नग्न जुलूस निकाले गये और नारे लगे हंसकर लिया पाकिस्तान, लड़कर लेंगे हिन्दुस्तान। आर.सी. मजूमदार ने लिखा है हम इस आक्रमण का वीरतापूर्वक प्रतिरोध करते तो पांच लाख हिन्दुओं को प्राण नहीं गंवाने पड़ते। माता-बहनों के नग्न जुलूस नहीं निकलते वरन् स्वाभिमानपूर्वक आज जीवित रहते, देश का विभाजन भी रुक जाता। पर अतिरेक अहिंसा पर बल देने के कारण न देश बचा और न हम हिंसा से बचे। कहां तो भगवान् ने कहा धर्म की स्थापना के लिए स्वजनों के रक्षण के लिए दुष्टों का विनाश हो पर हमने उलटा कर दिया और आज भी यही स्थिति बनी हुई है श्रीकृष्ण जैसे नेता के अभाव में—देश की स्वाधीनता के बाद भी। इस देश का जो मूल पुत्र रूप राष्ट्रीय हिन्दू समाज है उन्हीं का संहार, उन्हीं को मति भ्रमित किया जा रहा है, उन्हीं के संगठन को तोड़ा जा रहा है, उन्हीं को समझाया जा रहा है, उन्हीं में भेद डाला जा रहा है, उन्हीं को दण्डित किया जा रहा है यानी जो व्यवहार शत्रु के लिए अपेक्षित है वह हम पर किया जा रहा है, जो हम पर अपेक्षित है वह राष्ट्र, धर्म एवं संस्कृति के शत्रु के साथ किया जा रहा है, उन्हें सब प्रकार से पोषण और सुरक्षा प्रदान की जा रही है। शत्रु को ठीक करने के चार उपाय साम, दाम, दण्ड और भेद यह उन पर प्रयुक्त न होकर हिन्दू समाज के साथ स्वाधीनता के पूर्व भी और स्वाधीनता के बाद तो खुलकर किया जा रहा है। उदाहरण के लिए रामजन्मभूमि के लिए हिन्दुओं को ही समझाया जा रहा है, उनकी मति भ्रमित की जा रही है, उन्हीं में भेद डाला जा रहा है, फूट पैदा की जा रही है, उन्हें ही डराया जा रहा है, उन्हें ही फंसाकर दण्डित किया जा रहा है—चाहे आडवानीजी या विनय कटियार या तोगड़ियाजी हो।

तो इसका अर्थ क्या हम हिंसा के समर्थक हैं नित्से आदि की तरह। नित्से ने युद्ध को एक आवश्यक अच्छाई के रूप में स्वीकारा है जिससे व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र का द्रुत गति से विकास होता है। पर नित्से से हमारी दृष्टि में एक मौलिक अन्तर है। हमने युद्ध को एक आवश्यक बुराई के रूप में, लाचारी के रूप में, अन्तिम हथियार के रूप में स्वीकारा है। चाहे आप रामायण को पढ़ लेवें, चाहे महाभारत, चाहे पुराण कथाओं को पढ़ लेवें सबमें युद्ध को अन्तिम अप्रिय साधन के रूप में अपनाया है, जब युद्ध के अलावा सारे मार्ग अवरुद्ध हो गये हैं। क्योंकि जिनके मस्तिष्क विकृत हो गये हैं, हृदय शुष्क ऐसे आसुरी प्रकृति के लोग विवेक

एवं प्रेम की भाषा नहीं समझते, विवेक एवं प्रेम का शासन उन पर कारगर नहीं होता, वे क्षमा, उदारता को दुर्बलता समझते हैं। जिनको यह लगता है संसार तो उनकी सेवा के लिए है, उनके आनन्द के लिए है, मौज-मस्ती के लिए। सारे संसार का दायित्व है कि उन्हें कष्ट यहां तक मृत्यु भी स्वीकार कर उन्हें आनन्दित करें। कोई भी सुन्दर स्त्री, सुन्दर वस्तु प्रथम उनके उपभोग के लिए है, ऐसा उनका मानस होता है। ऐसे लोगों के दमन के लिए, समाज की सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए ताकि धर्म, नैतिकता सुरक्षित रहे, युद्ध या दण्ड ही एकमात्र उपाय अवशिष्ट रहता है।

युद्ध को आवश्यक बुराई मानने के कारण हम युद्ध मात्र को प्रशस्त नहीं मानते। जो युद्ध द्वेष की भावना से प्रेरित हो, अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए हो, ईर्ष्या से प्रेरित हो वह धर्मयुद्ध नहीं अधर्म युद्ध है। इन युद्धों में लोभ की वृत्ति, लूट की वृत्ति, अहम् की वृत्ति काम करती है। अतः अधर्म युद्ध है। ऐसा युद्ध दूसरों पर थोपा जाता है। जिस युद्ध के पीछे लोभ, लूट, स्वयं व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षा प्रबल प्रेरणा के रूप में है वह अधर्म है। इसलाम में युद्ध की प्रेरणा दी गयी है। अन्यों के सत्त्व, स्वराज्य का अपहरण कर बलात् अपना मत थोपने की प्रेरणा दी है। इसको धर्मयुद्ध कहा गया है। इसके लिए मनुष्य की निम्न वृत्तियों—लोभ, लूट और काम भोग को उत्तेजित किया है। लूट का धन और स्त्रियां सैनिक, सेनापतियों को बांट दी जाती है और युद्ध में मरने पर शहीद का दर्जा, तुरन्त जन्नत कयामत तक प्रतीक्षा नहीं, और 72 हूरें मिलेंगी। इस प्रकार मनुष्य की निम्न वृत्तियों को प्रोत्साहित कर युद्ध में प्रवृत्त किया जाता है। मरने पर उनके शरीर से दुर्गन्ध नहीं सुगन्ध निकलेगी, उनका शरीर विकृत नहीं होगा आदि-आदि।

अथ चेत्त्व-मिमं धर्म्यं, सङ्ग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च, हित्वा पाप-मवाप्स्यसि।। 2/33

और यदि तू इस धर्ममय युद्ध को नहीं करेगा तो अपने धर्म और कीर्ति को त्यागकर पाप को प्राप्त होगा।

अर्जुन प्रथम अध्याय के 36वें श्लोक में कहते हैं युद्ध करना पाप होगा। भगवान् इस बात का उत्तर देते हुए कहते हैं युद्ध करने से पाप नहीं होगा, युद्ध न करने से ही पाप होगा।

अर्जुन के कह देने मात्र से तो युद्ध पाप नहीं हो सकता। इस धर्मयुद्ध को नहीं करेगा तो वह पाप का, अधर्म का भागी होगा। टाल्सटाय ने अपनी पुस्तक 'धर्म और सदाचार' में बड़ी अच्छी बात लिखी है जो धर्म को नहीं स्वीकारते हैं, वे धर्म

को छोड़ देते हैं। धर्म का विरोध करते हैं वे धीरे-धीरे असुरत्व अधर्म की शरण में चले जाते हैं। यहां अर्जुन धर्म युद्ध को छोड़ देगा तो वह धर्म से च्युत हो जायेगा। धर्म से च्युत होना भी अधर्म है। फिर वह अपने पोषणार्थ परधर्म को स्वीकारेगा यह दूसरा अधर्म होगा। फिर वह जब धर्मयुद्ध को छोड़ देगा तो दुष्ट कौरवों को और बल मिल जायेगा। उनका सफल प्रतिरोध नहीं होने से और अधिक शक्ति प्राप्त हो जायेगी और उनकी दुष्टता बढ़ती जायेगी। स्वयं भी गर्त में जायेंगे, पूरे राष्ट्र को भी गर्त में ले जायेंगे। इसलिए श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने कहा है कि अन्याय का प्रथम में प्रतिकार, प्रतिवाद करना चाहिये, उससे काम न चले प्रतिरोध करें यानी उसके विरुद्ध डटकर खड़ा होना चाहिये, उससे भी काम न चले तो प्रतिशोध लेना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण का भी यही कहना है कर्तव्य का निर्णय एकांगी नहीं होता है। दुर्योधन आदि अत्याचार करते रहें और हम सज्जनता से सहते रहें। वे देश, धर्म को व्यक्तिगत जागीर की तरह उपभोग करते रहें और हम चुपचाप देखते ही रहें, पिसते रहें। अतः कर्तव्य का निर्णय एकांगी नहीं होता। सामने वाले की मनःस्थिति और गतिविधियों को देखते हुए कर्तव्य पर पुनर्विचार करने के लिए व्यक्ति बाध्य होता है। उदाहरणार्थ भरत जैसे शीलनिधि मातृभक्त को भी माता कैकेयी की करतूत से खिन्न होकर कटु वचन कहने के लिए बाध्य होना पड़ा। विभीषण को अपने भ्राता का, प्रह्लाद को अपने पिता का, बलि को अपने गुरु का विरोध करना पड़ा, अवज्ञा करनी पड़ी। घर का भेदिया घर ढावे का लांछन विभीषण पर लगाना सरासर नासमझी है, गलत है। फिर तो कोई सत्य न्याय का पक्षधर हो नहीं सकता। मीरा बाई के कष्ट निवारण के लिए तुलसीदासजी ने उत्तर दिया—

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही।।

स्वजन स्नेह के पक्षधर अर्जुन को भी दुर्योधन की मनःस्थिति और गतिविधि को देखते हुए स्वजन संघार के लिए बाध्य होना पड़ेगा।

गृहस्थ का धर्म अलग है, संन्यासी का धर्म अलग है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं गृहस्थ को कोई एक थप्पड़ लगावे तो वह प्रतिवाद में उसे दस थप्पड़ लगावे। गांधीजी ने भी थक-हार कर भारत विभाजन के समय कहा था कोई मुसलमान एक हिन्दू को मारे तो हिन्दू भी बदले में एक मुसलमान को मारे उससे अधिक नहीं।

हां, जो घर गृहस्थी से उपराम मोक्षपरायण लोक संग्रह से सुदूर तितिक्षु संन्यासी हो तो केवल उसी का दायित्व होता है कि वे दूसरों के व्यवहार की ओर

ध्यान न देकर अपने व्रत का पालन करें। अभिप्राय यह है कि गाली के बदले गाली न दे, अपमान के बदले अपमान न करे, पिटाई के बदले पिटाई न करे। पर वे भी विश्वामित्र की तरह उपद्रवी तत्त्वों का राज्य शक्ति के सहयोग से संहार करा सकते हैं। अपनी तप शक्ति का क्षय न हो इसलिए वे स्वयं क्रोध नहीं करते पर राज्य शक्ति का आश्रय लेकर उसे दूर कर सकते हैं।

यहां तो अर्जुन सद्गृहस्थ है फिर देश-धर्म की रक्षा का दायित्व उस पर है। उसकी उदारता ही उसे जला रही है। वैराग्य से, उदारता से तो चित्त प्रसन्न-प्रफुल्लित होता है। जब हम एक बन्धन से, आसक्ति से मुक्त होते हैं तो चित्त बहुत हलका एवं आनन्द से मग्न हो जाता है। जब सर्व बन्धन से मुक्त होते हैं तो उसकी प्रसन्नता, चित्त की प्रफुल्लता का क्या कहना। चित्त एकदम हलका हो जाता। कबीरदास को याद करें—न लेना, न देना, मगन रहना।

अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण जैसा गुरु मिला अन्यथा अर्जुन भी अशोक की तरह भिक्षु बनकर देश को आततायियों के हाथों सुपुर्द कर देता। ऐसा ही जाने-अनजाने में गांधीजी एवं हमारे नेताओं के द्वारा हुआ है। उनकी अहिंसा का प्रभाव केवल हिन्दुओं पर ही है। हिन्दू ही अहिंसा के नाम पर मतिभ्रम के केवल शिकार हैं।

अतः अर्जुन यदि धर्म से पलायन करेगा तो अधर्म को बल प्राप्त होगा और उनको सारे देश को अपना चरागाह बनाने का अवसर मिलेगा। इससे अधर्म को तो बढ़ावा मिलेगा ही और अर्जुन की आज तक जो कीर्ति बनी थी वह भी खोकर पाप का भागी बनेगा। बड़ा वीर बनता था, समय आया तो भाग खड़ा हुआ, ऐसी अपकीर्ति होगी। अतः युद्ध करना ही धर्म है।

भारतीय संस्कृति और पर्यावरण

भारतीय दर्शन के अनुसार सारी सृष्टि में एक तत्त्व का ही पसारा है। एक ही चेतन तत्त्व ने ब्रह्म तत्त्व ने अपने-आपको जीव-जगत और ईश्वर के रूप में अभिव्यक्त किया है। अतः सारी सृष्टि एक, अभिन्न, परस्पर सम्बन्धित, परस्पर अवलम्बित और परस्पर पूरक है। सारी सृष्टि में असंख्य यज्ञचक्र हैं जो एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, एक-दूसरे पर निर्भर हैं। स्वयं में कोई निरपेक्ष रूप से सत्तावान नहीं है। हमारे शरीर से लेकर पूरे ब्रह्माण्ड में असंख्य यज्ञचक्र हैं जो परस्पर में जुड़े हुए हैं। किसी की स्वतंत्र सत्ता नहीं है। सब परस्पर निर्भर हैं। अतः एक को disturb करते ही, बाधा देते ही अन्य सभी यज्ञचक्रों में बाधा उपस्थित हो जाती है। जैसे शरीर में पाचन तंत्र है, किडनी तंत्र है, हृदय तंत्र आदि अनेक तंत्र हैं जिनमें

किसी की स्वतंत्र सत्ता नहीं, सब एक दूसरे पर निर्भर हैं, एक में बाधा आते ही अन्य सबमें बाधा उपस्थित हो जाती है। वैसा ही सारी सृष्टि के साथ है। जैसे सारी जीवसृष्टि ऑक्सीजन लेती है, कार्बन डायाक्साइड छोड़ती है। वनस्पति, उद्भिज्ज जगत् ऑक्सीजन छोड़ते हैं, कार्बन डायाक्साइड लेते हैं। अतः जीव द्वारा छोड़ी गई विषैली गैस को उद्भिज्ज जगत् पी जाता है और ऑक्सीजन को छोड़कर सारे वातावरण को शुद्ध कर देता है। इसको न समझते हुए जब कामना के वशीभूत होकर लीबिया ने जंगलों को अनावश्यक समझकर साफ कर दिया तो शुद्ध ऑक्सीजन की कमी हो गई। वृक्ष वर्षा को, मेघ को आकर्षित करते हैं। इसके अभाव में वर्षा की कमी हो जाती है तो पर्यावरण को क्षति पहुंचाने से वह अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प के रूप में दण्डित करता है। प्रकृति बेचारी नहीं है, वह एक महान् शक्ति है। अतः लीबिया को पुनः कृत्रिम जंगल खड़े करने पड़े। ऐसे ही विषैले जीव हैं जो वायुमण्डल की विषैली गैस पीकर वायुमण्डल को शुद्ध कर देते हैं। जैसे सांप, बिच्छू आदि। अतः सृष्टि में सबका उपयोग है। चीनी कबूतर को अनावश्यक जानकर खा गये तो देखा फसल कीड़ाग्रस्त हो गयी है, कीड़ा कबूतर का भोजन है। गिद्ध मरे पशुओं को खाकर जंगलों को शुद्ध कर देते हैं। इस प्रकार सृष्टि परस्पर संतुलित है।

गीता और भारतीय दर्शन परम्परा स्पष्ट कहती है कि प्रकृति भगवान् की पत्नी अर्थात् हमारी माता है। मां को हम भोग नहीं सकते। मां से पोषण पाने के अधिकारी हैं। और प्रकृति माता में सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता है। हम भी परिवार में उतने बच्चों को जन्म देते हैं जिनको कि पोषण हम दे सकें। अतः प्रकृति माता में क्षमता है हम सबको पोषण दे सके। पर एक की भी इच्छापूर्ति का सामर्थ्य नहीं है क्योंकि आवश्यकता सीमित होती है पर इच्छाएं अनन्त होती हैं। प्रकृति से पोषण पाने के क्रम में जो क्षति होती है उसकी पूर्ति के लिए पंच महायज्ञ का विधान है। लेन-देन के आधार पर प्रकृति का उससे संतुलन बना रहता है।

पर ईसाइयत से ग्रसित पश्चिम ने प्रकृति को मां न मानकर दासी के रूप में, भोग्या के रूप में स्वीकारा है। वह भोग्या ही नहीं, आसुरी है जो अपनी सम्पदा को छिपाकर रखती है। वह उससे लड़कर, छीन करके, उसकी बांह मरोड़कर पाना पड़ता है। प्रकृति का मुख, दांत, नख-रक्तरंजित है, हिंसक है। वहां मां और पुत्र का भाव नहीं है।

उनके अनुसार भगवान् ने प्रथम 6 दिनों में सृष्टि की रचना की। अन्त में मनुष्य को रचा। वह सृष्टि का Crown है, मुकुट है, राजा है। राजा होने से वह

सृष्टि का मालिक है। वह जैसा चाहे अपने हित में, सुख के लिए उसका उपभोग कर सकता है। वह चाहे तो उसे मार भी सकता है। अतः पश्चिम की सारी चेष्टा प्रकृति पर विजय पाने की है। वहां की कहानी में भी आदमी निकला है प्रकृति पर विजय पाने के लिए। उसने एवरैस्ट पर विजय पा ली। यह पश्चिम की भाषा है। भारत की भाषा है ऐवरैस्ट ने, सागरमाथा ने कृपाकर मुझे चढ़ने दिया। विजय की भाषा भारत की नहीं है। मां पर कोई विजय प्राप्त नहीं कर सकता। विजय अभियान यह Western system की देन है। पश्चिम की मान्यता है कि प्रकृति ने अपने गर्भ में रत्न छिपा रखे हैं, उससे छीनना पड़ता है। उनकी मान्यता है प्रकृति पर विजय प्राप्त करके मैं सुखी हो जाऊंगा। प्रकृति पर विजय प्राप्त करना उनके खून में है, उनकी संस्कृति में है। पर मां के दूध को तो पी सकते हैं खून को नहीं। अतः पश्चिम की उपभोग की बुद्धि ने, प्रकृति से केवल लेने ही लेने की परम्परा ने, शोषण ही शोषण की दृष्टि ने पर्यावरण की समस्या को जन्म दिया।

हमारी सभ्यता जो लाखों वर्ष पुरानी है, वेद काल से लेकर अंग्रेजों के काल तक हमने आर्थिक विकास का जो मॉडल स्वीकार किया वह प्रकृति के संतुलन और अहिंसा पर आधारित रहा। वैभव की दृष्टि से हम सोने की चिड़िया कहलाए। धन और वैभव के लोभ से आकृष्ट होकर विदेशी आक्रान्ता (सिकन्दर से लेकर अंग्रेज तक) आए। हमने जो आर्थिक विकास का मॉडल स्वीकार किया उससे न कभी प्रकृति का संतुलन बिगड़ा, न ही पर्यावरण प्रदूषित हुआ। न धरती बंजर हुई, बेहोश हुई, न अन्न जहरीला हुआ, न जल, वायु आकाश ही। किसान को कभी आत्महत्या करने की नौबत नहीं आयी और हमारे ग्राम सदैव स्वावलम्बी बने रहे अंग्रेजों के शासन के पूर्व तक।

पर यूरोप ने मात्र 300 वर्षों की विकास यात्रा में गलत दृष्टि को अपनाने के कारण पूरी प्रकृति को ध्वस्तप्राय कर दिया। पर्यावरण के संतुलन को बिगाड़ दिया। भूमि, अन्न, जल, वायु, आकाश जो कि जीवन की मूलभूत आवश्यकता है, सबको दूषित कर दिया। जहरीला कर स्वयं अपने अस्तित्व के लिए संकट पैदा कर लिया और जो विकास सारी दुनिया को श्मशान बनाकर किया और कर रहा है, उस पर भी उनकी अर्थव्यवस्था चरमरा रही है, ढहने के कगार पर खड़ी है। इससे बचने का उपाय एकमात्र भारतीय दृष्टि अपनाकर ही सम्भव है।

इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टि

भारत का प्राचीनकाल से आधुनिक युग के पूर्व तक का विधिवत् इतिहास नहीं मिलता। इसके दो अर्थ निकलते हैं भारतीयों का इतिहास लिखना ज्ञात नहीं

था या फिर भारतीयों का जीवन के प्रति ऐसा दृष्टिकोण था जिसने उन्हें इतिहास लिखने को प्रेरित नहीं किया।

पहले दृष्टिकोण पर विचार करने से स्पष्ट होता है भारत में इतने श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान की पुस्तकें, धर्मग्रंथ नीतिग्रंथ स्मृतियां व पुराण लिखे गये। अतः इतिहास लिखना नहीं आता यह बात जचंती नहीं। दूसरे दृष्टिकोण पर विचार करने पर स्पष्ट पता लगता है हमारा जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही ऐसा था जिसने इतिहास एवं जीवन चरित्र लिखने को प्रेरित नहीं किया। उसने व्यक्तित्व को महत्त्व न देकर कर्तृत्व को महत्त्व दिया। इसलिये कृतियाँ (वेद उपनिषद, धर्मग्रंथ स्मृतियां) आदि मिलते हैं। पर जिन्होंने इन कृतियों की रचना की, उन्होंने स्वयं अपने व्यक्तिगत जीवन-चरित्र के विषय में एवं जिस ऐतिहासिक युग में, जिनके राज्य काल में कृतियों का निर्माण हुआ, उन ऐतिहासिक युग एवं राज्य के विषय में ग्रंथों में चित्रण नहीं किया। वे कर्तृत्व को अमर समझते थे व्यक्तित्व को नश्वर। इसलिये व्यक्तित्व का इतिहास लिखने की प्रेरणा उनमें नहीं थी।

एक बार घनश्यामदास बिड़ला ने महामना पंडित मदन मोहन मालवीयजी से निवेदन किया कि आप अपना जीवन चरित्र लिखिये। इस पर उन्होंने कहा, 'जीवन चरित्र पढ़ना हो तो श्रीमद्भागवद् पढ़ें। मेरे जीवन में क्या रखा है?' इससे भारत की इतिहास के प्रति दृष्टि प्राप्त होती है। व्यासजी ने वेदों का सम्पादन किया। महाभारत, भागवत, अनेक महापुरुषों के जीवन चरित्र एवं वेदान्त सूत्र की रचना की पर स्वयं के विषय में कोई विवरण नहीं दिया। इसी परम्परा का निर्वहन हम बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, रामानुज, मध्वाचार्य, तुलसी, कबीर, मीरा आदि में पाते हैं। यही परम्परा हम शिल्पियों में पाते हैं, अजन्ता एलोरा में एक पहाड़ को भोम की तरह चीरकर विश्व प्रसिद्ध मूर्तियां उकेर दी पर किसी ने अपना नाम अंकित नहीं किया। पर यह परिपाटी 100-150 साल में बदल गयी है।

अतः पश्चिमी देशों का कहना है भारत के लोग को इतिहास का बोध नहीं। उन्हें इतिहास लिखना नहीं आता था। वस्तुतः ये भारतीय दृष्टि से परिचित नहीं हैं। पश्चिम के इतिहास में किसी शासक की कितनी शादियां हुई, किन-किन के साथ अवैध सम्बन्ध थे! किस देश को अपनी ताकत के बल पर हथियाया आदि वर्णन मिलता है। ऐसे इतिहास का संग्रहालय हमने कभी नहीं बनाया।

फिर हमारा इतिहास लाखों-करोड़ों वर्ष का है। सौ वर्षों के इतिहास पर एक पृष्ठ भी लिखा जाय तो कल्पना करें कितने पृष्ठ हो जायेंगे। हमारा इतिहास पश्चिम की तरह मात्र 6 हजार वर्षों का नहीं है। आज रामसेतु की आयु 17

लाख से 23 लाख वर्ष आंक रहे हैं। हमारा इतिहास राम से कितना प्राचीन जाता है। इतने वर्षों का पूर्ण इतिहास तिथिक्रम से लिखने का कोई प्रयोजन नहीं माना गया। केवल युग-प्रवर्तक घटनाओं एवं संस्कारक्षम समाजोपयोगी इतिहास का ही संकलन-सम्पादन एवं संग्रह किया गया।

इतिहास की परिभाषा रामायण में इस प्रकार दी गयी है—

धर्मार्थ काममोक्षाणाम् उपदेशसमन्वितम।
पूर्ववत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।।

इतिहास केवल पूर्वघटनाओं की सूचीबद्ध तालिका मात्र नहीं है। इसमें केवल उन्हीं घटनाओं (पूर्ववृत्तों) को सम्मिलित किया जाता है, जो समाज के लोगों को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की ओर ले जाने में समर्थ हो।

इतिहास को केवल विद्वानों का विषय न रखकर जन-साधारण के उपयोग की वस्तु बनाने के लिये महाकाव्यों एवं पुराणों का रूप दिया गया। इस दृष्टि से रामायण, महाभारत, पुराण आर्य प्रणीत हमारे इतिहास ग्रंथ है।

क्या अद्‌भुत देश है यह! इस पुण्य भूमि पर चाहे जो खड़ा हो—वह इस भूमि का पुत्र हो अथवा विदेशी—यदि उसकी आत्मा दुर्दान्त पशुओं के स्तर तक नहीं गिर चुकी है—तो वह स्वयं को पृथ्वी के इन श्रेष्ठतम एवं शुद्धतम पुत्रों के तेजोमय विचारों से घिरा हुआ अनुभव करेगा, जो शताब्दियों तक पशु को देवत्व के शिखर तक उठाने के लिये कार्य करते रहे हैं और जिनका आरम्भ खोजने में इतिहास भी असफल रहा है। यहाँ का वायुमण्डल ही आध्यात्मिकता की तरंगों से ओत-प्रोत है।

—स्वामी विवेकानन्द

महर्षि वाल्मीकि का दिव्य ज्ञान

प्रसिद्ध फ्रांसीसी इतिहासकार मिचलेट ने वाल्मीकीय रामायण के मूल्यांकन में लिखा है, 'जिस किसी ने भी महान् कार्य किया है या महान् आकांक्षाएं संजोयी हैं, उसे रामायणरूपी अमृत की प्याली से जीवन और यौवन का एक लम्बा घूंट पीने दो। पश्चिम में सभी कुछ संकीर्ण है, यूनान छोटा और तंग है तथा वहाँ मेरा दम घुटता है। जुडिया शुष्क है तथा मैं वहाँ हांफ जाता हूँ। मुझे महान् एशिया और गहन प्राची की ओर देखने दो। वहाँ मिलता है मेरे मन का महाकाव्य रामायण— हिन्द महासागर जैसा विस्तृत, सूर्य से ज्योतित एवं धन्य एक दिव्य संगीत का ग्रन्थ, जिसमें कहीं लय भंग नहीं। वहाँ एक अपार शान्ति का राज्य है, कर्तव्यों के संघर्ष के बीच भी अपार माधुर्य है, अनन्त सौहार्द्र है जो सब जीवों पर प्रेम, दया, क्षमा का अपार और अथाह सागर लहरा देता है।'

संस्कृत पद्य के प्रथम सूत्रधार महर्षि वाल्मीकि ने इस अद्‌भुत ग्रन्थ की रचना की, जिसकी सात्त्विक सुन्दरता और आध्यात्मिक ऊँचाइयों ने कालान्तर में अनेक विद्वानों और कवियों का मार्गदर्शन किया। विश्वभर के साहित्य में रामायण जैसा मनमोहक और कोई ग्रन्थ नहीं है। कोई ऐसा आदर्श नहीं जो महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में न दिखाया हो।

वाल्मीकि का जन्म

इनका जीवन-वृत्तान्त कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। कुछ पुराणों के अनुसार, यह माना जाता है कि वे पहले रत्नाकर नाम के एक डाकू थे, जो अकसर अनजान राहगीरों को लूट लेता था और उनको मार भी देता था। देवर्षि नारद से भेंट के बाद वाल्मीकि के अन्दर का सोया हुआ सन्त अचानक जाग गया। जब रत्नाकर नारदजी को मारने के लिए उद्यत हुआ तो नारदजी ने उससे पूछा कि आप यह पाप क्यों कर रहे हैं? इस पर रत्नाकर ने उत्तर दिया कि यह लूट-मार और हत्याएं वह केवल अपने परिवार को पालने के लिए कर रहा है। नारद ने कहा कि एक बार वह अपने परिवार के सदस्यों से पूछ आए कि क्या वे उसके पाप के भागीदार होंगे? जब रत्नाकर की पत्नी और बच्चों ने उसके पाप का भार लेने से इनकार कर दिया

तो रत्नाकर नारद के पांवों में गिर पड़े और उनसे ज्ञान देने की याचना की। नारद ने उन्हें ज्ञान दिया और उनका नाम बदलकर 'राम' रख दिया। यहीं से रत्नाकर के जीवन में अद्‌भुत परिवर्तन शुरू हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि महापुरुषों के जीवन में एक घटना से परिवर्तन आता है और फिर वे प्रगति के मार्ग पर बढ़ते जाते हैं। इस छोटी घटना ने क्रूर डाकू रत्नाकर को महर्षि वाल्मीकि बना दिया। इस प्रकार छोटी-छोटी घटनाओं से अचानक भोग-विलास में डूबे, राजकुमार सिद्धार्थ गौतम बुद्ध बन गये, एक अनपढ़-फूहड़ आदमी महाकवि कालिदास बना, बंगाल का नास्तिक बाबू नरेन्द्र स्वामी विवेकानन्द बना, एक सरल-सादा लड़का मूलशंकर स्वामी दयानन्द सरस्वती बना और बचपन के बिगड़े हुए मोहनदास, महात्मा गांधी बन गये। इसी प्रकार तुलसीदास के जीवन में भी एक छोटी-सी घटना ने उन्हें महान् सन्त गोस्वामी तुलसीदास बना दिया। कुछ पूरा ज्ञात नहीं है कि रत्नाकर का जन्म कहाँ हुआ था, किन्तु यह पक्का है कि उनके भीतर का कवि उनकी नारद से भेंट के बाद ही प्रस्फुटित हुआ था। हर सन्त का कुछ भूतकाल होता है और हर पापी दुष्ट का भविष्य होता है। उसमें भी अचानक सुधार आ सकता है। यह कहना कठिन है कि कब किस रत्नाकर के भीतर से महर्षि वाल्मीकि प्रकट हो जाएं।

पद्य का जन्म

हर कवि धरती पर प्रभु का सन्देशवाहक होता है। कवि अपनी आत्मा और हृदय को पूर्णतया अपने गीतों में उड़ेल देता है, इसलिए किसी कवि का अवतरण मानवता के लिए एक वरदान होता है। इससे भी अधिक धन्य है काव्य, जो उस कवि को अजर-अमर बना देता है। ऋषि वाल्मीकि महाकाव्य रामायण के कारण ही इतने प्रसिद्ध हुए हैं। श्री अरविन्द घोष के अनुसार—यह बड़ा अद्‌भुत संयोग है कि रामायण का प्रादुर्भाव बहुत ही वेदना और मर्मस्पर्शी करुणा की स्थिति में हुआ। एक बार वन में वाल्मीकि ने एक शिकारी द्वारा तीर मारने से घायल दो क्रौंच-पक्षियों में से एक को तड़प-तड़पकर मरते देखा तो उनके मन की करुणा और दुःख इन शब्दों में काव्य के रूप में फूट पड़े—

मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वती समः।
यत्क्रौंञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

ऐसा मानते हैं कि इन पंक्तियों के आधार पर ही वाल्मीकि ने पूरी रामायण की रचना की। प्रसिद्ध साहित्यकार मोनियर विलियम्स लिखते हैं—'रामायण महाकाव्य की सरलता जो संस्कृत पद्य की ऊँचाइयों को छूती है, इसमें वीर रस के दृश्य बहुत सुन्दर ढंग से संजोए हुए हैं, मानव की आन्तरिक भावनाएं स्पष्ट

दृष्टिगोचर होती हैं और बहुत सुन्दर प्रस्तुत किया गया है।' इस प्रकार यह एक सर्वोत्तम काव्यरचना है। यह फ्रांसीसी इतिहासकार लिखते हैं, 'रामायण एक विशाल और लहलहाते हुए उद्यान की तरह हैं जिसमें कई प्रकार के फल और फूल हैं। जहाँ शुद्ध जलधारा बहती है और जहाँ आनन्दपूर्ण भ्रमण की पूरी सुविधा है।' आध्यात्मिक विचारक महर्षि वाल्मीकि आध्यात्मिक ज्ञान के प्रकाशपुंज हैं। उन्हें अकसर योगवासिष्ठ का रचयिता भी माना जाता है। स्वामी रामतीर्थ के अनुसार 'योगवासिष्ठ वेदान्त पर सर्वोत्तम ग्रन्थ है।' यह प्राचीन भारत की भारतीय दर्शन के विषय में बहुत उत्तम कृति है।

नैतिक ज्ञान

रामायण में एक उन्नत सभ्य समाज का चित्रण मिलता है जिसमें भौतिक प्रगति के साथ मानसिक उन्नति भी देखने को मिलती है। किन्तु ये दोनों शक्तियाँ अध्यात्म और वैचारिक शुद्धता की सीमा में अपना प्रभाव दिखाती हैं। प्रो. ग्रिफिथ ने लिखा है—'रामायण पूरे विश्व में अनूठा काव्य है जिसमें आदर्श और उच्च चरित्र के पात्र भगवान् राम और सीताजी के रूप में हैं। इस ग्रन्थ में काव्य और नैतिकता बहुत सुन्दर ढंग से गुंथे हुए हैं और एक-दूसरे को उन्नत करने का प्रयास करते हैं।'

महर्षि वाल्मीकि एक महान् सन्त थे जिन्होंने समाज को नैतिक जागरण का संदेश दिया। उन्होंने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में अनैतिक और पापी लोगों को चुनौती दी।

राजनीतिक दर्शन

वाल्मीकि ने रामायण महाकाव्य के माध्यम से हमें एक सुन्दर सुयोजित रामराज्य की कल्पना दी, जो भारत की प्रमुख विचारधाराओं का सार रहा है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी रामराज्य का आह्वान किया था। वाल्मीकि अराजकता और राष्ट्रीय नियमों के उल्लंघन का घोर विरोध करते थे। रामायण के अयोध्याकाण्ड में वाल्मीकि अराजक जनपद के विषय में लिखते हैं—'किसी भी अनियोजित राज्य में युवा अपने माता-पिता का सत्कार नहीं करते, विद्वान् लोगों की जनहित सभाएं नहीं होतीं, नगर उदास और कान्तिहीन से लगते हैं और उद्यानों में फल-फूल पैदा नहीं होते हैं, ऐसे राज्य में व्यापारी अपना व्यापार ठीक से नहीं कर पाते, साधु-संन्यासी अपना जप-तप नहीं करते और धार्मिक-सामाजिक पर्व ढंग से नहीं मनाए जाते।' महर्षि वाल्मीकि के अनुसार, एक आदर्श राज्य को एक कुशल नैतिक राजा, सारी जनता और अपने मंत्रियों के सहयोग से कुशलतापूर्वक चला सकता है।

महर्षि व्यास का राष्ट्रदर्शन

'भगवान् वेदव्यास भारतीय ज्ञान गंगा के भगीरथ हैं। जिस प्रकार इस देवनिर्मित देश को किसी पुरा-युग में भगीरथ ने अपने उग्र तप से गंगावतरण के द्वारा पवित्र किया था, उसी प्रकार पुराण-मुनि वेदव्यासजी ने भारतीय लोक साहित्य के आदि-युग में हिमालय के बदरिकाश्रम में अखण्ड समाधि लगाकर अध्यात्म, धर्मनीति और पुराण की त्रिपथगा गंगा का पहले अपनी आत्मा में साक्षात्कार किया और फिर साहित्यिक साधना के द्वारा देश के आर्य-वाङ्मय को उससे पवित्र बनाया। ज्ञानरूपी हिमवान् के उच्च शिखरों पर बहने वाले दिव्य जलों को मानो वेदव्यास भूतल पर ले आए। उनके द्वारा पूर्वजों के ज्ञान और चरित्रों से गुम्फित सरस्वती लोक के कंठ में आ विराजी।' ज्ञानमार्तण्ड भगवान् वेदव्यास के पावन चरणों पर श्री वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा चढ़ाई हुई यह हृदयहारी भाव-प्रसूनांजलि कितनी अनूठी है।

जहाँ भगवान् वेदव्यास ने वेदों का विभाजन किया; महाभारत जैसे अगाध ज्ञान-भण्डार की रचना की; श्रीमद्भागवत महापुराण जैसे भक्ति के सुधा-सिंधु से मानवता के हृदय की क्यारियों को हरा-भरा कर दिया; वेदान्त दर्शन की रचना द्वारा विश्व मनीषा के मस्तक पर भारतीय तत्त्वज्ञान की विजय पताका फहरायी; व्यास स्मृति, पुराण संहिता एवं अध्यात्म रामायण की सर्जना द्वारा विश्व के धर्म-वाङ्मय को समृद्ध किया; वहाँ उन महामुनि व्यास ने भारतीय राष्ट्र की ऐसी अद्भुत वंदनाएं गायी हैं कि उनके श्रवणमात्र से आज भी भारतीयों के हृदय में मातृभूमि के अनन्त प्रेम का अगाध अमृतोदधि हिलोरे लेने लगता है।

सौ-सौ स्वर्गों से श्रेष्ठ भरतखण्ड

विष्णु महापुराण में महर्षि व्यास का कथन है—

गायन्ति देवाः किल गीतिकानि, धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्ग भूते, भवन्ति भूयः पुरुषा सुरत्वात।।

अर्थात् 'स्वर्ग के ३३ कोटि देवता भी यही गीत गाते हैं कि भारत भूमि पर जन्म पाने वाले लोग धन्य हैं। वे कितने सौभाग्यशाली हैं कि वे उस भारत में जन्मे हैं जो स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) का स्वाभाविक सरल मार्ग है। अतः भारतखण्ड

के मनुष्य निश्चय ही हम देवताओं से भी ऊँचे हैं।' अभी तक तो मनुष्य देवताओं की स्तुतियाँ गाते थे पर धन्य हैं पूज्य ऋषि वेदव्यास, जिनके वाङ्मय में हम स्वर्ग के देवताओं को भारतभूमि की स्तुतियाँ गाते हुए पाते हैं। इससे ऊँची राष्ट्रभक्ति क्या हो सकती है जब स्वयं देवता भी राष्ट्र की झुक-झुककर वन्दनाएँ करते हों!

भारत दर्शन ही भगवान् दर्शन

महर्षि वेदव्यास ने देशभक्ति तथा देवभक्ति का अद्‌भुत समन्वय किया है। भारत स्वयं भगवान् का देश है, प्रभु का दिव्य लीलाधाम है। यहाँ के मानवों की प्रशस्ति में, भारत में जन्म के लिए तरसते हुए देवता गाते हैं—

अहो अमीषां किमकारि शोभनं, प्रसन्न एषां रिचदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे, मुकुन्द से वौपयिक स्पृहा हि नः।

(श्रीमद्‌भागवत पुराण)

अर्थात् 'अहो! यह भारतवासी कितने भाग्यशाली हैं कि उन्हें स्वयं भगवान् के देश में जन्म मिला है। धन्य हैं ये कि इन्हें स्वयं अपने हाथों से भगवान् मुकुन्द की सेवा का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिसके लिए हम देवता तक भी तरसते रहते हैं।'

पृथोस्तु राजवैन्यस्य तथेक्ष्वा कोर्महात्मनः।
ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुन हुषस्य च।।

तथैव मुचुकुंदस्य शिवेरौशनीरस्य च
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा,

कुशिकस्य च दुर्धर्ष गाधेश्चैव महात्मनः।
रोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव च।।

अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणा बलीयणाम्।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारतभारतम्।।

अर्थात् 'आओ हे भारत! अब मैं तुम्हें भारत देश का कीर्तिगान सुनाता हूँ— वह भारत इन्द्र, मनु वैवस्वत, पृथुवैन्य, मांधाता, नहुष, मुचुकुन्द और औशीनर शिवि को ऋषभ, ऐल, नृग, कुशिक, गाधि, सोमक, दिलीप और अनेकानेक बलवान क्षत्रिय वीरों का प्यारा है।'

जीवित राष्ट्र

भगवान् व्यास का कथन है **मृतं राष्ट्रमराजकम्**—अर्थात् अराजक (बिना राजा के) राष्ट्र मरे हुए के समान है। शान्तिपर्व में व्यासदेव का एक गीत है— 'यदि राजा न पालयेत।'

धर्म की जड़ राजा की सुव्यवस्था पर टिकी हुई है। राजा के बिना अराजकता फैल जाए तथा लोग एक-दूसरे को खा जाएं।

राजमूलो महाप्राज्ञ धर्मो लोकस्य लक्ष्यते।
प्रजा राजमयादेव न खादात्त परस्परम्।

अर्थात्, हे राजन्! धर्म ही लोक में राज का मूल है और राजा के भय से ही प्रजाएं एक-दूसरे को खा नहीं जाती हैं।

राजधर्म

व्यासदेव का अर्थगम्भीर वचन है—'जब राजा भली प्रकार दण्ड नीति का पालन करता है तभी सत्ययुग आ जाता है। राजा का आसन राष्ट्र का ककुद है। राजा की उस आदर्श आसन्दी की रक्षा में रहकर प्रजा जिस धर्म का पालन करती है उसका एक चतुर्थांश राजा को प्राप्त होता है।

सर्वे त्यागा राज धर्मेषु दृष्टा, सर्वाः दीक्षा राज धर्मेषु युक्ताः।
सर्वा विद्या राजधर्मेषु चोक्ताः, सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्ठाः।।

प्रजा ही राजा है

भगवान् व्यास ने राजतन्त्र के भीतर ही प्रजातन्त्र के महान् सिद्धान्त का समन्वय कर दिया—'राजा का शरीर प्रजाएं हैं। अपने आपको बचाने के लिए राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। प्रजा का भी सर्वोत्तम शरीर राजा ही है। राजा को पुष्ट करके वे अपने-आपको ही बढ़ाती हैं।'

राजा कालस्य कारणम्

व्यासजी की लोकविश्रुत सूक्ति है—

कालों वा कारणं राज्ञो राजा व कालस्य कारणम्।
इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम्।।

अर्थात् 'क्या राजा का कारण काल है या काल का कारण राजा, इस विषय में संशय मत करो। राजा ही काल का कारण है।' सच है कि कोई महान् प्रतापी राजा अपने आदर्श राज द्वारा काल के चक्के को जैसा चाहे घुमाकर सत्ययुग को ला सकता है।

वीरभोग्या वसुन्धरा

इस धरती को वीर पुरुष ही भोग सकते हैं, कायर नहीं। व्यासजी की नीति है—

चराणां अन्नं अचराः द्रष्ट्रिणां अपि अदंष्ट्रिणः।
बुधानां अबुधाश्चापि शराणां चैव भीरवः।।

अर्थात्, चर प्राणी अचरा भोजन करते हैं, दांतोंवाले बिना दांतों वालों को खा जाते हैं, समझदार लोगों के लिए मूर्ख ही भोजन है, शूरवीरों के लिए कायर ही भोजन है।

अतः राष्ट्रीय जीवन में कायरता एक लानत है, दुर्बल राष्ट्र को अन्य राष्ट्र खा जाएंगे।

जाग्रत् युवक

महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास का संदेश है कि जहाँ जवान जागते हैं वही राष्ट्र जागते हैं—

युवक यत्र जागर्ति, युवको यत्र पश्चति।
तत्र राष्ट्र भवेन्मूनं सर्वदा सुख संयुतम्।।

अर्थात्, जहाँ जवान जाग्रत् है, जहाँ जवान आंख खोलकर देखते हैं वही राष्ट्र निश्चय ही सदा सुखी रहता है।

भाग्य और भगवान् निछावर

भगवान् व्यास ने हमारे सामने हरिश्चन्द्र और शिवि, मान्धाता एवं पृथु जैसे आदर्श नृपतियों के गौरवशाली चरित्र रखे जो अपनी प्रजाओं की किंवा प्राणीमात्र की सेवा के लिए भाग्य और भगवान् को भी निछावर करने को उद्यत हैं—

न त्वहं कामये न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्।।

अर्थात् 'हे प्रभो! मैं न तो राज्य की कामना करता हूँ, न स्वर्ग की तथा न ही मोक्ष की। मेरी तो एकमात्र यही कामना है कि मैं दुःख से तप्त प्राणियों के दुःख का नाश कर सकूँ।

भारत राष्ट्र का अनन्त यश गाने वाले राष्ट्रद्रष्टा महर्षि वेदव्यास का अपना यश भी अनन्त है। जब तक धरती सूर्य की प्रदक्षिणा करती है तब तक उनका यश रहेगा। वे भारत के गौरव सर्वस्व हैं। हमारा समस्त राष्ट्रीय गौरव ही उनके ज्ञान-चक्षुओं में समा गया है।

जैसे सागर में खड़ा हुआ मनुष्य सागर से ही जल का लोटा भरकर सागर को अर्घ्य चढ़ा देता है वैसे ही महामुनि वेदव्यास की पावन स्मृति में हम उन्हीं के ज्ञानोद्यान के दो-एक पुष्प सजल नयनों से उन्हीं के चरणों में सादर चढ़ाकर ही अपने वन्दना-व्याकुल हृदय की भावांजलि समर्पित करते हैं।

२१ जुलाई, १९५९ को
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

योगेश्वर श्रीकृष्ण का राजनीतिक तत्त्व दर्शन

जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की, विश्व के करोड़ों व्यक्ति आदर्श पुरुष, पूर्ण पुरुष तथा परम पुरुष के रूप में अर्चना करते हैं उन विश्वगुरु श्रीकृष्ण का राष्ट्रपुरुष के रूप में चिन्तन सम्भवतः कुछ संकुचित भाव दिखायी देगा। किन्तु प्रस्तुत लेख का ऐसा कोई आशय नहीं है। जिस प्रकार से सहस्ररश्मि-सूर्य की किसी एक रश्मि का अध्ययन भी सूर्य को समझने में सहायक होता है उसी प्रकार इन पूर्ण पुरुष श्रीकृष्ण के जीवन की राष्ट्रीय रश्मि का अध्ययन भी कम महत्त्व का नहीं। वरन् अभी तक उन योगेश्वर कृष्ण की इसी जीवन रश्मि का कम से कम अध्ययन किया गया है।

भगवान् श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व इतना अनन्तमुखी है कि यह कहना कठिन है कि वे क्या नहीं थे। योग-योगेश्वर, ज्ञानदाता, सिद्ध साधक, मित्र, सारथि, सेवक, रक्षक, राष्ट्रनिर्माता, आदर्श कर्मयोगी, आदर्श प्रेमी, आदर्श शासक, सफल राजनीतिज्ञ, शूरशिरोमणि, मानवता के गौरव, लोकनायक, लोकशिक्षक—वे सभी कुछ थे। पिछले 5,000 वर्षों की गम्भीर गवेषणा के पश्चात् भी अभी तक उनके बहुरंगी जीवन की अनेकानेक अज्ञात दिशायें खोजनी शेष हैं।

एक पारसी विद्वान् प्रो. फीरीज कावसजी दावर भगवान् कृष्ण की महात्मा ईसा से तुलना करते हुए लिखते हैं—'...महात्मा ईसा इतिहास के उन बहुमूल्य रत्नों में से हैं जिनके लिए हम लोगों की सदा आदरसूचक विशेषणों का प्रयोग करने की इच्छा होती है, परन्तु क्या वे रणभूमि में जाकर युद्ध कर सकते थे या राजदूत का कार्य कर सकते थे? हमारी यह धारणा है कि समस्त संसार के इतिहास में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ, जिसका कार्यक्षेत्र इतना अधिक व्यापक रहा हो, जितना श्रीकृष्ण का था। उन्होंने अपने कीर्तिमय जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जो-जो लोकोत्तर कार्य किए, वे गत पांच सहस्र वर्षों से अटक से लेकर कटक तक और काश्मीर से कन्याकुमारी तक ही नहीं, प्रत्युत सारे जगत् के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में गाए जाते हैं।

वे विद्वान् पारसी प्रोफेसर आगे लिखते हैं—बालक, विद्यार्थी, मित्र, प्रेमी, योद्धा, शासक, राजपूत, तत्त्वदर्शी, योगेश्वर, सिद्धपुरुष तथा ईश्वर के पूर्णावतार

आदि सारे ही रूपों में उनके जीवन की अद्वितीय महानता दृष्टिगोचर होती है। किसी कवि का कथन है कि कीर्तिमय जीवन की एक कार्यसंकुल घड़ी भी कीर्ति रहित जीवन के एक युग से भी श्रेष्ठ है, फिर श्रीकृष्ण ने तो एक सौ पचीस वर्ष की लम्बी एवं पूर्ण आयु प्राप्त की और उसके प्रत्येक घंटे में उन्होंने ऐसे-ऐसे कार्य किए जिनसे उनका नाम तथा यश, सदा के लिए अमर हो गया।

गीता तत्त्व

गीता तत्त्व ही भगवान् कृष्ण का जीवन तत्त्व है। भगवान् स्वयं कहते हैं, 'गीता मे हृदयम् पार्थ' अर्थात् गीता ही मेरा हृदय है। गीता उपनिषदों का सार है पर सार मात्र ही नहीं है उससे अधिक भी कुछ है। उपनिषदों का ब्रह्मज्ञान जगत् के कोलाहल से दूर अरण्यों या वनों में गाया गया। परमशान्ति में बैठे हुए गुरु और शिष्य वार्तालाप कर रहे हैं। पर समस्या है धर्म के उस परम तत्त्व को जीवन में कैसे साकार किया जाए? प्रायः लोग कह देते हैं कि परमार्थ की बातें परमार्थ के लिए है उनका यथार्थ जीवन में, व्यवहार में कोई स्थान नहीं। यह ऐसा ही, जैसा पश्चिम के बड़े-बड़े विज्ञानवेत्ता गिरजाघर में जाकर प्रभु ईसा का सन्देश गाते हैं—'सभी जीवों से वैसे ही प्रेम करो जैसे अपने आप से करते हो।' और गिरजे से बाहर अपनी प्रयोगशाला में जाकर मानवता के नाश के लिए अणुबम तथा उद्जन बम तैयार करते हैं। पूछने पर वे तर्क देते हैं कि धर्म और राजनीति का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है, विज्ञान का क्षेत्र और धर्म का क्षेत्र भिन्न-भिन्न है। ऊपर से ठीक प्रतीत होते हुए भी इस कथन में कितना धोखा छिपा हुआ है यह हिरोशिमा और नागासाकी के उजड़े हुए भू-प्रदेश से पूछियेगा, कथनी और करनी के इसी अन्तर ने मानवता का नाश कर रखा है। आदर्श और यथार्थ के बीच की इसी खाई में मानवता गिर रही है। गीता ने ऊँचे से ऊँचे ब्रह्मज्ञान को जीवन की भीषण से भीषण परिस्थिति पर लागू करके दिखाया है जब 18 अक्षौहिणी सेनाएं मरने-मारने को उद्यत है और रक्त की नदियाँ बहाना चाहती है वहाँ भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को ब्रह्मज्ञान का महान् उपदेश दिया पर शान्ति-लाभ के लिए वन में भागने भी नहीं दिया।

प्रवृत्ति और निवृत्ति

क्रान्ति के तुमुल नाद के भीतर भी भगवान् ने अर्जुन को शांति का उपदेश दिया। और भीतर की शांति को बिना खोये ही बाहर में भीषणतम युद्ध तक कर सकना ही जीवन की वह अद्भुत कला है जो, गीता ने सिखायी है।

इसमें प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का संयोग है, बाहर से प्रवृत्त रहते हुए भी अन्तर से सर्वथा निर्लिप्त रहना ही गीता का मर्म है। श्रीकृष्ण का जीवन संदेश है—आदर्श को व्यवहार में उतारो, परमार्थ को यथार्थ में साकार करो, संन्यास को कर्म में

विकसित होने दो। जीवन एक इकाई है तथा धर्म राजनीति के दो अलग-अलग क्षेत्र नहीं हैं। दोनों क्षेत्र एक हैं।

भगवान् का आदेश है—'मामनुस्मर युध्य च।' मुझे याद भी करता रह और युद्ध भी करता जा।

स्वदेश और स्वधर्म

देश और धर्म को भिन्न-भिन्न मानने से देश की सेवा धर्मपूर्वक नहीं हो सकेगी और धर्म हमें इहलोक में उत्थान न दे सकेगा। यदि धर्म से राजनीतिक बेहोशी फैले तो उसका क्या लाभ है और यदि धर्म साधना से देश लुट जाए तो वह साधना किस काम की? शास्त्र का मत है—'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस्सिद्धि स धर्मः।' जिससे इहलोक और परलोक दोनों सुधरें वही धर्म है अतः भारत में राजनीति धर्म का एक अंग है इसे राजधर्म कहा है। बिना धर्म के राजनीति वेश्या के समान हो जाएगी। अतः भगवान् कृष्ण जहाँ धर्मरक्षक हैं वहाँ राष्ट्र निर्माता भी हैं।

धर्म युद्ध

भगवान् कृष्ण ने गीता शास्त्र में धर्म युद्ध की कल्पना बड़ी सुन्दर दी है। राग-द्वेष से हीन होकर, सुख-दुःख को समान जानकर मित्र-शत्रु में भेद न करते हुए, अपने मन की शांति को स्थिर रखते हुए, भगवान् को निरन्तर स्मरण करते हुए निष्काम कर्म भाव से धर्म रक्षा के लिए यदि युद्ध किया जाय तो वह धर्म युद्ध है। सच्चा क्षत्रिय युद्ध धर्म के लिए ही लड़ता है, किसी स्वार्थ सिद्धि के लिए या प्रतिकार भावना से नहीं। शांति निश्चय ही उत्तम है किन्तु यदि अन्तर की शांति कायम रख कर असंग भाव से युद्ध किया जाय तो वह भी महान् है। जो धर्म की पुकार पर युद्ध से भागे, वह कायर है।

क्षत्रिय कसाई या बूचड़ नहीं। वह धर्म की रक्षा के लिए शस्त्र धारण करता है। यदि युद्ध के साथ योग का संयोग न हो, यदि शक्ति के साथ शील का समन्वय न हो तो बल का दुरुपयोग प्रारम्भ हो जायेगा।

श्रीकृष्ण के 'मामनुस्मर युद्ध च' में ध्वनि है कि मनुष्य निरन्तर भगवान् को भी स्मरण रखे तथा जीवन के संघर्ष में भी लगा रहे। इसी भाव को गुरु गोविंदसिंह ने प्रकट किया है—

धन्य जिओ तिंह को जग में, मुख ते हरि चित्त में युद्ध विचारे।

यज्ञमय जीवन

भगवान् का अपना जीवन भी यज्ञमय था, वे स्वयं कहते हैं—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र, लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

अर्थात् यज्ञ के सिवा शेष सभी कर्म बन्धन में डालने वाले हैं। श्रीकृष्ण का कोई भी स्वार्थ शेष नहीं था, कोई कामना नहीं थी। फिर भी वे इतने कर्मशील थे। उनका समस्त जीवन 'इदं न मम्' की यज्ञ भावना से ओत-प्रोत था। राष्ट्र के प्रत्येक बच्चे को इसी भावना से कार्य करना चाहिए, स्वार्थ एवं अहंकार राष्ट्रोत्थान के लिए घातक है।

राज्य के उद्देश्य

श्रीकृष्ण की घोषणा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

यह एक राजकीय घोषणा भी है। सज्जनों की रक्षा करें, दुष्टों को दण्ड देवें।

समता

समता का आश्वासन देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनिचैवं श्वपाके च पण्डिताः सम दर्शिनः।।

अच्छा शासक सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करे।

वह पशुओं तथा छोटे जीवों का भी संरक्षण करे। किसी प्रकार का पक्षपात न करे।

अनन्य राष्ट्रभक्ति

भगवान् की प्रतिज्ञा है—

अनन्यश्चिन्तयतो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्।।

जो लोग अनन्य भाव से मुझ राष्ट्र पुरुष का चिन्तन करते हैं मैं उनके योगक्षेम का वहन करता हूँ। अनन्य भाव से राष्ट्र चिन्तन करने का अर्थ है राष्ट्र को अपने से अन्य, अपने से भिन्न न माने। अर्थात् अपना हित और राष्ट्र हित को भिन्न न समझे। मैं राष्ट्र का अंग हूँ तथा राष्ट्र के हित में ही मेरा हित है, ऐसा मानकर राष्ट्र सेवा करने से ही राष्ट्र का उद्धार हो सकता है। यदि देश के मुसलमान तथा ईसाई, भारत के हित में ही अपना हित मानें तथा राष्ट्र को पराया न समझें तो क्या वे राष्ट्र के साथ कभी द्रोह कर सकते हैं?

विराट् रूप दर्शन

श्रीकृष्ण राष्ट्र पुरुष हैं। विराट् रूप में उन्होंने अर्जुन को संगठित राष्ट्र की

विराट् शक्ति का रूप दिखाया है। विराट् रूप के सामने एक व्यक्ति अति लघु है। व्यक्ति समझता है मैं सब कुछ कर रहा हूँ, किन्तु विराट् राष्ट्र के दर्शन करने पर वह लज्जित हो जाता है। भगवान् उसे कहते हैं—राष्ट्र के इस विराट् रूप के मुख में सारे पापी पहले ही भस्म होने के लिए जा रहे हैं, 'निमित्त मात्रं भव सव्य साचिन्', हे अर्जुन, तू निमित्त मात्र बन जा।

राष्ट्र शरणागति

राष्ट्र की शरण में आने वालों को आश्वासन देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—

चाहे बड़े से बड़ा दुराचारी भी मुझ राष्ट्रपुरुष की शरण में आ जावे, उसकी रक्षा होगी।

'न मे भक्तः प्रणश्यति'

अर्थात् राष्ट्रभक्त का कभी नाश नहीं होगा।

वे आह्वान करते हुए मानव से कहते हैं—

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

इसमें ध्वनि है राष्ट्रैकं शरणं व्रज—हे मानव, तू सर्व धर्मों को त्याग कर एक मुझ राष्ट्रपुरुष की शरण में आ जा। मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूंगा।

बल तथा बुद्धि

बल तथा बुद्धि के संयोग से ही राष्ट्र का कल्याण है—

यत्र योगेश्वरो कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री विजयोर्भूति ध्रुवा नीति र्मतिर्मम।।

जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं तथा जहाँ धनुर्धारी अर्जुन है, जहाँ शस्त्र और शास्त्र का, युद्ध और यज्ञ का, बल एवं बुद्धि का समन्वय है, वहीं विजय है, वैभव है तथा यश है। राष्ट्रोत्थान के लिए जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराज का यह मुक्ति मन्त्र क्या हम सुनेंगे।

गीता सिर्फ व्यक्तियों या राष्ट्र विशेष का नहीं बल्कि समग्र विश्व के संकट निवारण हेतु अपरिहार्य ग्रंथ है।

—इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण

जगद्गुरु आद्य श्री शंकराचार्यजी

शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः।।

जातियों के उत्थान-पतन, उनके जीवन दर्शन की श्रेष्ठता अथवा तुच्छता पर निर्भर है। श्रेष्ठ जीवन दर्शन को प्राप्त करके भी जो जाति उसे जीवन में साकार नहीं करती वह उन्नत नहीं हो सकती। अतः एक महान् दर्शन को जीवन्त रूप प्रदान करने के लिये किसी दृष्टिवान महापुरुष, किसी दार्शनिक ऋषि अथवा द्रष्टा का अवतरण अतीव महत्त्व का है। इस दृष्टि से भारत में जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्य का अवतरण भारत के विगत दो सहस्राब्दियों के इतिहास की महानतम घटना है।

अद्वितीय लोकनायक

इस महादेश की कोटि-कोटि सन्तानों को जागरण मंत्र सुनाकर अपने वर्चस्व के प्रभाव से पुनः खड़ा कर देने वाले महापुरुषों में भगवान् शंकराचार्य भगवान् कृष्ण के पश्चात् आने वाले महानतम लोकनायक कहे जा सकते हैं। केवल 12 वर्ष की अल्पायु में ही धर्मरक्षा एवं राष्ट्र जागरण का संकल्प लेकर घर से निकल सारे भारत की उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम, तीन बार प्रदक्षिणा कर तथा धर्मविजय का शंख फूंक समूचे भारत को पुनः आर्य हिन्दू धर्म में प्रतिष्ठित करना इतिहास का वह अद्वितीय कार्य है जिसके कारण वे इतिहास के यशो-मन्दिर में चिरन्तन काल तक पूजित होते रहेंगे।

वेद ज्ञान के रक्षक

वेद, विश्व का आदि ज्ञानकोश तथा भारतीयों की प्रतिष्ठा का मापदण्ड है। विकृत बौद्ध धर्म के कुप्रभाव के कारण वेदों की निन्दा की जा रही थी। त्रयो वेदस्य कर्तारः, भाण्ड, धूर्त, निशाचराः। अर्थात् तीनों वेदों के कर्ता भाण्ड, धूर्त तथा निशाचर हैं। शंकराचार्य के समकालीन महान् पंडित कुमारिल भट्ट एक बार जा रहे थे कि ऊपर से एक मकान के झरोखे से एक भारतीय नारी का गर्म-गर्म अश्रु बिन्दु गिरकर उनके गात्र पर पड़ा। उन्होंने नेत्र उठाकर देखा, वह राजा सुधन्वा की रानी रोकर कह रही थी—हाय! क्या करूं, कहाँ जाऊं, कौन वेदों

का उद्धार करेगा? कुमारिल भट्ट ने शेष जीवन वेदों के उद्धार के लिए लगाया। उस एक नारी के विलाप में स्वयं भारतमाता का विलाप था। श्रुति माता के उद्धार के लिये भगवान् शंकर ने जो कार्य किया वह विश्व इतिहास में बेजोड़ है। जाति की लुप्त श्रद्धा को पुनः प्रतिष्ठित करने वाले इन विलक्षण धर्मदूत के विषय में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—शंकराचार्य ने राष्ट्र के ज्ञान-संगीत-वेद की निगूढ़ अन्तर्ध्वनि को पा लिया था। मैं सदा ऐसा समझता हूँ कि उन्हें अल्पायु में ही एक दृष्टि प्राप्त हो गई थी तथा उसी ज्ञान दृष्टि के सहारे उन्होंने प्राचीन अध्यात्म-संगीत को पुनः प्राप्त कर लिया था। संक्षेप में, उनका समूचा जीवन कार्य वेदों तथा उपनिषदों के सौन्दर्य का ही सजीव स्पन्दन है।

अखण्ड भारत के अमर द्रष्टा

भारत भर में पैदल घूमकर इस अनोखे परिव्राजक शंकराचार्य ने विकृत बौद्ध धर्म के नास्तिकवाद को पराजित किया तथा इस महान् सुविशाल देश के चारों कोनों पर बदरिकाश्रम, रामेश्वरम्, जगन्नाथपुरी तथा द्वारिका में 4 मठ स्थापित कर दिये जो भावी तीर्थयात्रियों के लिए पावनधाम बन गये। इन धामों ने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सारे भारत की सांस्कृतिक एकता कायम करने में योगदान दिया वह इतिहास की वाचाल वाणी भी वर्णित नहीं कर सकती। शंकर ने भारत की अनेकानेक भिन्न-भिन्न विचार-सरणियों का अद्भुत समन्वय करके भारत को वह धर्म दिया जो विश्व के असंख्यात झंझावातों तथा तूफानों के बीच भी विनष्ट न हो सके।

राष्ट्र में अद्वैत भावना के संचारक

भगवान् शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त ने उन्हें विश्व मनीषा का मणिमुकुट सिद्ध कर दिया। उसी अद्वैत दर्शन के द्वारा उन्होंने समाज में एकता का मंत्र फूंका। जब तक धनी तथा निर्धन का अभेद, ब्राह्मण तथा शूद्र का अभेद, स्त्री तथा पुरुष का अभेद नहीं होता तब तक आत्मा तथा परमात्मा का अद्वैत सिद्ध हो ही नहीं सकता। प्रत्येक नागरिक यदि राष्ट्र के प्रति अद्वैत भावना रखे अर्थात् राष्ट्र को द्वैत (दूसरा, पराया) न समझे तो राष्ट्र का कभी पराभव नहीं हो सकता। काशी में स्वयं भगवान् ने एक चाण्डाल को गले लगाकर अद्वैत दर्शन का क्रियात्मक रूप दिखाया था।

समाज में सहिष्णुता के प्रचारक

भगवान् शंकराचार्य चरम सीमा के सहिष्णु थे। वे राष्ट्र हित एवं सत्य साधना के लिये शास्त्रार्थ करते थे, केवल कुतर्क के लिये नहीं। मण्डन मिश्र द्वारा प्रारम्भ में कटुवचन प्रयोग करने पर भी शंकराचार्य मंद-मंद मुसकराते रहे। उन्होंने बौद्धों से शास्त्रार्थ किये किन्तु महात्मा बुद्ध की वन्दना की। वे बलप्रयोग के द्वारा किसी का मत परिवर्तन नहीं करते थे। वे हाथ में वेद तथा भगवा पताका धारण करने

वाले एकाकी संत एक ओर थे तथा अनेक राजाओं के समर्थन एवं सहायता से फैला हुआ विकृत-राष्ट्रद्रेषी बौद्ध धर्म दूसरी ओर था। किन्तु शंकराचार्य की ज्ञानदृष्टि, उदारता एवं सहिष्णुता ने सभी को जीत लिया। हिन्दू धर्म के भी अनेक मत-मतान्तरों को उन्होंने पंथ देवोपासन में सम्मिलित किया। विष्णु, सूर्य, शंकर, शक्ति तथा गणेश में से जो जिसका इष्टदेव है, वह उसी को पूजे तथा शेष देवों के प्रति सहिष्णुता, उदारता एवं आदर का भाव रखे। पंच मन्दिर बनाने की प्रथा भी शंकराचार्य से प्रारम्भ हुई। शिवभक्त 'शिवपंचायत' बनाते जिसमें चारों कोनों में चार देवों के मन्दिर तथा केन्द्र में शिव मंदिर बनाते। इसी प्रकार विष्णु भक्त, विष्णु पंचायतन, सूर्य भक्त सूर्य पंचायतन आदि बनाते।

मातृभक्ति एवं मातृ भूमि—भक्ति के संदेशवाहक

भगवान् शंकराचार्य की मातृभक्ति विलक्षण थी। अपनी महान् माता की आज्ञा एवं आशीर्वाद से वे मातृभूमि भारत का भाग्य निर्माण करने के लिये निकले थे। अपने आध्यात्मिक गौरव में वे भारतमाता की पूजा के साथ-साथ जगन्माता की पूजा में प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार ये जन्ममाता, भारतमाता एवं जगन्माता के पुजारी बने।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पोषक

एक बौद्ध भिक्षु से शास्त्रार्थ करते हुए भगवान् शंकराचार्य बताते हैं कि किस प्रकार बौद्धों ने भारत के बाहर के तथाकथित विदेशियों को भारत पर आक्रमण करने के लिये उकसाया। वे कहते हैं, 'शक और हूण बौद्ध धर्म में इसलिये दीक्षित नहीं हुए कि उन्हें बौद्ध धर्म प्रिय था अथवा उन्हें भगवान् बुद्ध से प्रेम था या वे अपने जीवन को आलोकित करना चाहते थे, किन्तु उन्होंने बौद्ध धर्म को अपनी राजनीति के चंगुल में फंसाया....इसी अपनेपन के कारण तो तुम उनके अत्याचारों में सहयोग देते रहे। कनिष्क ने बौद्ध धर्म का पुनः-संस्कार भी किया और साथ ही भारत की स्वाधीनता का भी गला घोंटता रहा....।'

वे जानते हैं कि यदि भारतवर्ष की प्राचीन परम्परा बनी रही, उसकी सामाजिक व्यवस्था बनी रही तो यह सदैव के लिये हमारे चंगुल में नहीं रह सकेगा। इसके विपरीत स्वतंत्रता की चाह को समाप्त करने का सबसे सरल मार्ग है—राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता का विनाश। इन शब्दों में जगद्गुरु शंकराचार्य की महान् राष्ट्रीय दृष्टि के दर्शन होते हैं।

तत्कालीन चीनी आक्रमण के सफल निरोधक

उस काल में भी चीनी राजा के द्वारा हिमालय की सीमा का अतिक्रमण हुआ था, बदरिका (गंगा का उद्गम स्थल) क्षेत्र के लोग त्रस्त थे, भगवान् शंकराचार्य

ने बदरीनाथ के नारदकुण्ड में डुबकी लगाकर भगवान् विष्णु की मूर्ति निकाली, उसकी वहाँ के मन्दिर में प्रतिष्ठा की, वहीं पर एक महान् मठ स्थापित कर दिया तथा बदरीनाथ को तीर्थयात्रा का महान् धाम बना दिया जिससे वर्ष भर में लोग यहाँ श्रद्धा के साथ जाते रहें तथा पुनः किसी आक्रामक को भारत की सीमा पर अतिक्रमण करने का साहस न हो। आज पुनः चीन ने भारत की सीमा का अतिक्रमण किया है। क्या शंकराचार्य के देशवासी चीनी अतिक्रमण को उखाड़ फेंकने का पुनः शिव संकल्प करेंगे?

भारत-राष्ट्र का अनुभवसिद्ध उद्घोष है—

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतस् सशरं-धनुः।
इदं क्षात्रं इदं ब्रह्मं शास्त्रादपि शरादपि॥

अर्थात् मेरे आगे चारों वेद है, उनके पीछे शरयुक्त धनुष है, मेरे पास ब्रह्म-तेज है और क्षात्र-तेज भी है। आसुरी शक्तियों को कभी शास्त्र द्वारा तो कभी शस्त्र द्वारा निरस्त करते हुए मैं (राष्ट्र) प्रगति पथ पर प्रयाण करता हूँ।

× × ×

भारत की मृत्युंजयी संस्कृति ही विश्वशांति का एकमात्र साधन है।

—प्रो. ओबराय

जगद्गुरु शंकराचार्य जयन्ती

डॉ. राधाकृष्णन् ने टी.एन.बी. कॉलेज भागलपुर के प्रांगण में कहा था–

दुनिया में इक्कीस तरह की सभ्यतायें आयी और चली गई। आज उनकी कब्रों पर सियार भौंक रहे हैं। केवल भारतीय संस्कृति पूर्व में थी, आज भी है और आने वाले युगों में भी रहेगी क्योंकि यह सनातन पर आधारित है।

वस्तुतः हिन्दू धर्म पूर्ण धर्म है तभी हर युग के अनुकूल अपने को अभिव्यक्त करने में समर्थ है। देश, काल, पात्र, परिस्थिति की मांग के अनुसार अपनी व्याख्या करने में समर्थ है। जितनी विपरीत परिस्थिति आती है उसमें उतनी पूर्णतम अभिव्यक्ति करने में समर्थ है।

प्रत्येक युग का अपना एक स्वरूप होता है, उस युग की अपनी चुनौतियां होती है। उस युग व उसकी चुनौतियों को समझकर जो उसका उत्तर देने में समर्थ होती है वही संस्कृति चिरंजीवी होती है। वही समाज चिरंजीवी होता है।

भारतीय संस्कृति में ऐसी क्षमता है कि अपने देश में हर युग में ऐसे युग पुरुष, अवतारी पुरुष, महापुरुषों का पदार्पण होता आया है, निर्माण होता आया है जिन्होंने युग की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए इस देश का नेतृत्व किया है। भारतीय जातीय जीवन के प्रत्येक युग में ऐसे-ऐसे आध्यात्मिक दिग्गज हुए जिन्होंने न केवल देश को वरन् विश्व को प्रभावित किया है।

शंकराचार्यजी को समझने के लिए उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में जाना होगा। काल का प्रवाह सदा एक-सा नहीं रहता। वह सीधी रेखा में नहीं, चक्राकार घूमता रहता है। उसमें उत्थान-पतन के दौर आते हैं जिसमें हम वस्तुओं, श्रेष्ठ विचार व परम्पराओं के रहते हुए भी किंकर्तव्यविमूढ़ता किंवा जड़ता में चले जाते हैं। वेद हमारे आधार हैं जिन पर हमारी संस्कृति टिकी हुई है, उसको लेकर जड़ता में चले गये। उससे उबारने के लिए भगवान बुद्ध आते हैं।

भगवान बुद्ध ने हिन्दू परम्परा से थोड़े भिन्न विचार रखे पर उसको चार आर्य सत्य कहा। हमारे यहां परम्परा को श्रेय दिया जाता है। स्वयं श्रेय लेने की परम्परा नहीं है। हमसे जो कुछ भी अच्छा होता है उसका श्रेय गुरुजनों को, पूज्यजनों को,

माता-पिता को देते हैं। हमसे त्रुटि हो जाती है तो उसके लिए स्वयं को उत्तरदायी मानते हैं। अतः भारत में स्वयं को श्रेय देने की परम्परा नहीं है जबकि पश्चिम में स्वयं को श्रेय देने की परम्परा है। भारत में परम्परा पर जोर है, पश्चिम में नवीनता पर जोर है। भगवान कृष्ण ने जो ज्ञान अर्जुन को दिया उसका श्रेय स्वयं पर नहीं लिया और न ही नवीनता का ही दावा किया। अभी अमेरीका ने नीम, हल्दी, तुलसी आदि पर पेटेन्ट करवा लिया कि इसकी खोज हमने की है जबकि बहुत पहले से हमारे ही आयुर्वेद के ग्रन्थ इस पर भरे पड़े हैं।

भगवान बुद्ध ने हिन्दू परम्परा से किंचित् भिन्न विचार रखे पर श्रेय स्वयं को नहीं दिया। वरन् अत्यन्त विनय से कहा—मैंने प्राचीन ऋषियों के सनातन मार्ग को खोज निकाला है और उसे चार आर्य सत्य कहा।

दुःख है, दुःख के कारण हैं, दुःख के कारण का निवारण कर दुःख से मुक्त हो सकते हैं एवं दुःख से मुक्ति के लिए पतंजलि से किंचित् भिन्न अष्टांग योग की विधि दी। समाज को व्यर्थ के दार्शनिक वाद-विवादों से हटाकर नैतिक जागरण का आन्दोलन चलाते हैं। समाज व्यर्थ के दार्शनिक वाद-विवादों में उलझा हुआ था पर सदाचरण से दूर था। इसलिए भगवान बुद्ध दार्शनिक वाद-विवादों पर मौन हो गए। सदाचरण के द्वारा स्वतः ही सत् की उपलब्धि हो जायेगी इसलिए Be good, Do good का आन्दोलन चलाया।

भगवान बुद्ध वेद विरोधी नहीं थे। उनका वेद के उतने अंश से विरोध था जितने अंश में यज्ञ में पशु हिंसा का विधान था।

उन्होंने अपने बौद्ध संघ में ब्राह्मण धर्म को ही स्वीकारा, बौद्धों के लिए पृथक् से कोई सम्पूर्ण जीवन का विधान नहीं दिया, न ही किसी नये धर्म का आह्वान ही किया था। उन्होंने अपने पुत्र राहुल को आश्रम एवं वर्ण व्यवस्था का उल्लंघन करके ब्रह्मचर्य से सीधे भिक्षुक (संन्यासी) की दीक्षा दे दी। अपने पिता को भी दीक्षा दे दी। तब उनकी पत्नी और माता ने भी उनसे दीक्षा मांगी क्योंकि उनके तीन आधार थे। पति-पिता और पुत्र सब भिक्षुक बन गए। अतः अब हमें भी दीक्षा दे दो। यह बुद्ध ने अस्वीकार कर दिया। पर जब आम्रपाली दीक्षा के लिए आयी और उसको भी मना करने पर आनन्द ने विरोध किया। आप स्त्री-पुरुष में भेद कर रहे हैं। आप स्त्री को क्या मोक्ष की अधिकारी नहीं मानते हैं। तब बड़े दुःखी मन से कई प्रतिबन्धों और कड़े नियमों के साथ स्त्रियों को भी दीक्षा दी और उन्हें संघ में शामिल कर लिया। और दुःख के साथ कहा था अब यह आन्दोलन 500 साल में भ्रष्ट होकर समाप्त हो जाएगा नहीं तो शुद्धता से 1500 वर्ष चलता।

वर्ण व आश्रम की मर्यादा का उल्लंघन करके उन्होंने सबको संन्यास का अधिकार दे दिया। और उन्होंने अपने अन्तिम समय में 'आत्मदीपो भव' की बात

कही, तुम अपना प्रकाश स्वयं बनो। यह बात तो उच्च साधकों (आनन्द आदि जैसों के लिए है) पर सबको चिन्तन के लिए खुली छूट दे दी, उस पर श्रुति, स्मृति एवं अनुभूति का नियंत्रण रखा नहीं। और प्रकरण ग्रंथों के अभाव में दुष्परिणाम आए। उनके मौन का मनमाना, गलत अर्थ लगाकर चार-चार नास्तिक मतवाद चल पड़े। जिन दार्शनिक सिद्धान्तों से बचना चाहते थे, उनके नाम पर चार-चार दार्शनिक सिद्धान्त चल पड़े। जिस मूर्तिपूजा से बचना चाहते थे उन्हीं की मूर्तियां बनाकर भगवान् के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया और देश-विदेश में इतनी मूर्तियां बनायी जिससे अरबी भाषा में बुत शब्द बन गया। और जिस कर्मकाण्ड से बचना चाहते थे उन कर्मकाण्डों का विस्तार हो गया। मूर्ति स्थापित होते ही कर्मकाण्डों का विस्तार हो गया। क्योंकि कोई भी धार्मिक आन्दोलन बिना दार्शनिक आधार भूमि के बिना ईश्वर के नहीं चल सकता। इन्द्रियां मन द्वारा नियंत्रित होती है, मन बुद्धि के द्वारा, बुद्धि नैतिकता के द्वारा और नैतिकता आत्मा या ईश्वर यानी अध्यात्म के द्वारा। अध्यात्म या आत्मा या ईश्वर की जंजीर पकड़े बिना नैतिकता में स्थिर नहीं रह सकते। पर भगवान बुद्ध के मौन, आत्मदीपो भव के भाव एवं प्रकरण ग्रन्थ के अभाव से, मौन और आत्मदीपो भव का मनमाना अर्थ निकाल कर चार-चार नास्तिक मतवाद चल पड़े। जबकि भगवान बुद्ध का चरित्र ऐसे आस्तिक का चरित्र है जो भी उनके सम्पर्क में आया उसकी नास्तिकता सदा के लिए घुल गई। ईश्वर के विषय में आपके मौन का तात्पर्य केवल यह है कि अनादि अनंत ब्रह्म का वाणी से वर्णन नहीं हो सकता। वैदिक ऋषियों ने भी उस निरुपाधिक-ब्रह्म के वर्णन में अपनी हार मानकर 'नेति-नेति' कहा। बिना ईश्वर के कोई पंथ चल नहीं सकता। भगवान के अभाव की पूर्ति उन्होंने भगवान बुद्ध की मूर्ति बनाकर की। प्रथम-प्रथम में भगवान बुद्ध का खाली आसन दिखाया गया। पर इससे भी काम नहीं चला तब बुद्ध की मूर्ति स्थापित होने लगी।

भगवान बुद्ध स्वयं क्षत्रिय राजपुत्र होने से राजा आकृष्ट हुए और बौद्ध धर्म को राज्याश्रय मिल गया। इससे बौद्ध भिक्षुओं का सम्मान बहुत बढ़ गया, भोग सामग्री का ढेर आश्रमों में लग गया।

सहज के प्रति सबका आकर्षण होता है क्योंकि आश्रमों में स्वादिष्ट भोजन से सबकी पेट पूजा और पैर पूजा की सहज पूर्ति होने से तब युवक-युवतियों के दल के दल, झुण्ड के झुण्ड बौद्ध संघों में शामिल होने लगे और उनके मठ आमने-सामने बन गए। दीर्घकाल तक वे संयम का पालन नहीं कर सके, गृहस्थाश्रम जैसी बीच की कड़ी और स्वयं बुद्ध के न होने से वामाचार की ओर झुके जिसमें पंचमकार का सेवन सहज मान्य था, फलतः बौद्ध संघ व्यभिचार के अड्डे बन गए।

वामाचार की प्रवृत्ति से सिद्धि और कापालिकों के संघ बन गए और राजा लोग सैन्य शक्ति की उपेक्षा करके सिद्धों-कापालिकों पर भरोसा करने लगे, उनकी सेना पालने लगे। और विदेशी आघात के समय वे रक्षा नहीं कर पाये।

राज्याश्रम पाकर बौद्ध धर्म विश्व के अनेक देशों में फैल गया। इससे बौद्ध धर्म अपने को बड़ा, वैदिक धर्म को छोटा मानने लगे, उनसे ईर्ष्या करने लगे, वेदों की अनावश्यक रूप से आलोचना करने लगे, उनसे घृणा करने लगे। वैदिकों का उच्छेद हो जाए यह भाव पालने लगे। इस दुर्बलता को विदेशी देशों ने ताड़ लिया। और वे स्वयं को बौद्ध घोषित कर देते थे। और बौद्ध लोग वैदिक शासकों को पराजित करने में उन विदेशियों का साथ देकर देश-द्रोह का आश्रय लेने लगे।

इस प्रकार बौद्ध धर्म ने कल्याणकारी रूप को छोड़कर विकृत रूप धारण कर लिया और अपने मातृधर्म का ही शत्रु बन गया जिससे अब तक पोषण मिलता आया था। दोनों साथ-साथ देश-विदेश में बढ़ रहे थे। अब अपने मातृधर्म से द्वेष कर के स्वयं अपने और देश के पतन का, पराजय मार्ग खोल दिया। तो इस चुनौती को स्वीकारते हुए कुमारिल भट्ट को पाते हैं। काशी में एक बार वे सड़क पर जा रहे थे तो उनके गाल पर गरम-गरम आंसू पड़े। सुधन्वा रानी बौद्धों के उत्पात एवं वेदों की उपेक्षा और दुर्दशा देखकर रो रही थी। चिन्ता कर रही थी कि वेदों की कौन रक्षा करेगा। तब रानी को आश्वस्त कर कुमारिल भट्ट ने प्रतिज्ञा की कि वेदों की रक्षा मैं करूंगा। तब उन्होंने बौद्ध धर्म का अध्ययन करने के लिए शिखा-सूत्र का त्याग कर बौद्ध बनकर बौद्ध आचार्यों की सेवा में उपस्थित हुए। रानी ने उन्हें 'बौद्ध संघ' में प्रवेश दिला दिया। बौद्ध धर्म के अध्ययन के पश्चात् उन्होंने बौद्धों को शास्त्रार्थ में ललकारा और पुनः वेद व वैदिक धर्म की पताका फहरनी प्रारम्भ हुई। कुमारिल भट्ट कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड विद्वान् थे और उनके शिष्य मदन मिश्र भी। वेद के दो विभाग है—कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। कर्मकाण्ड पूर्वांग है, इसकी स्थापना तो हुई, पर वेद का उत्तरार्ध ज्ञानकाण्ड अभी भी उपेक्षित था। दोनों मिलकर वेद पूर्ण होता है। उसी समय भगवान शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ इस कार्य को पूर्णता प्रदान करने के लिए।

भगवान् शंकराचार्यजी ने भगवान् बुद्ध को तो भगवान् विष्णु का करुणावतार के रूप में स्वीकारा पर बौद्धों को नहीं स्वीकारा। क्योंकि हमारे यहां देव भक्ति और राष्ट्रभक्ति को कभी पृथक् नहीं किया गया है। हमारे यहां वेदकाल से आज तक देवभक्ति और देशभक्ति की अखण्ड अविचल परम्परा रही है। देवभक्ति के नाम पर देशद्रोह को कभी भी स्वीकार नहीं किया है। शंकराचार्यजी ने बौद्धों से कहा कि शक, हूणों, कुशाणों ने बौद्ध धर्म इसलिए नहीं स्वीकारा कि वे भगवान बुद्ध के द्वारा अपनी आत्मा को, अपने जीवन और चेतना को प्रकाशित करना चाहते थे वरन् वे तो इस देश में गुलामी थोपने के लिए आपका सहयोग चाहते थे। इसलिए आपको राजनीतिक कूटनीति का शिकार बनाया। अधिकांश बौद्धों को पुनः व्यापक वैदिक धर्म की, मातृधर्म के अंक में समा लिया है और कुछ जो कट्टर थे विदेश पलायन कर गए। इस प्रकार बौद्धों के रूप में दण्डित कर पुनः वैदिक,

सनातन मातृधर्म में समा लिया। विश्व के विद्वानों को आश्चर्य होता है, अहिंसा के लिए बौद्ध दर्शन के लिए सबसे उपयुक्त भूमि भारत में ही बौद्ध नाम शेष हो गए और विश्व में बढ़ते रहे। कालान्तर में भारत में रहे-सहे बौद्ध मठ इसलाम के आक्रमण से नष्ट हो गए। मुसलमानों ने समान रूप से बौद्ध और हिन्दू मठों पर आक्रमण करके नष्ट किया। पर हिन्दुत्व में आस्था रहने से हिन्दू मठ-मन्दिर पुनः उठ खड़े होते थे। लेकिन बौद्धों पर आस्था शेष नहीं रहने से वे पुनः उठ नहीं पाये और वे सदा के लिए नष्ट हो गए।

इस प्रकार अपने देश में मातृधर्म से द्रोह को, धर्म पंथ या मजहब के नाम पर देशद्रोह को कभी सहा नहीं, संरक्षण नहीं दिया वरन् समुचित रूप से दण्डित किया। चाहे परदेशी रावण हो, चाहे स्वदेशी दुर्योधन हो, चाहे इन्द्र पुत्र जयन्त हो, चाहे बौद्ध धर्मावलम्बी हो। यह स्थिति प्राचीन और मध्यभारत में पाते हैं। स्पष्ट है धर्म के नाम पर राष्ट्र द्रोह अक्षम्य अपराध था। आज के सेकुलर भारत की बात मैं नहीं कर रहा हूं। आज के सेकुलर भारत में स्थायी रूप से शत्रुभावापन्न इसलाम और ईसाइयत को हम समझना ही नहीं चाहते। इनके राष्ट्रद्रोह को अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ फूट डालो और शासन की नीति के तहत सहा और वे स्वयं ईसाई होने से ईसाइयत के अपराध तो उनके लिए अपराध नहीं वरन् उनके शासन के लिए आवश्यक थे, इन कारणों से वे बढ़ावा देते रहे। गांधीजी भारत के मुसलमानों के राष्ट्रद्रोह को भारतीय राष्ट्रीय धारा में लाने के भाव से सहते रहे। और नेहरू स्वयं इसलाम, ईसाइयत एवं समाजवादी भावापन्न थे और इन्हें तो इस देश की मूल चेतना हिन्दुत्व से ही चिढ़ थी, घृणा थी। इसलिए इन तीनों के राष्ट्रद्रोह को सहते रहे और संविधान में उलटी गंगा बहायी गई। नेहरू तो कम से कम Accidently हिन्दू तो थे पर सोनियाजी का तो हिन्दुत्व से कहीं दूर का भी रिश्ता नहीं है। सोनियाजी स्वयं ईसाई और मुसलमानों एवं कम्यूनिस्टों से गठजोड़ कर रखा है। अतः इन तीनों द्वारा जो अपराध होते हैं वह अपराध की श्रेणी में आते ही नहीं, वे हर स्थिति में पुरस्कार की श्रेणी में आते हैं। इसलिए इसलामी आतंकवादी विदेशों में उनकी सरकार द्वारा पकड़े जाकर दण्डित होते हैं तो हमारे पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह को नींद नहीं आती। मुसलमान अपराध पर अपराध करते रहे उसके बाद भी भारत के सभी प्राकृतिक संसाधनों पर पहला हक मुसलमानों का है ऐसा पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह का मानना है। और ये सब धर्म निरपेक्षता के नाम पर, अल्पसंख्यकों के नाम पर चल रहा है, हिन्दू धर्म और देश एक मजाक की वस्तु बनकर रह गया है। पर प्राचीन भारत में धर्म या पंथ के नाम पर राष्ट्रद्रोह स्वीकार नहीं था।

गत 1,000 वर्षों से हम स्वयं धर्माभास के शिकार होकर जिनमें धर्म और अध्यात्म की गंध भी नहीं उनके राष्ट्रद्रोह को सहते रहे हैं, और अंग्रेजों के काल

में इसको बढ़ावा अंग्रेजों से मिला—गांधीजी का प्रयत्न भारत की राष्ट्रीय धारा में लाने का रहा बिना उनकी मानसिकता और मनोविज्ञान को समझे और नेहरू तो स्वयं उनके रंग में रंगे थे। और यही परम्परा अब तक चली आ रही है, एकाध पार्टी छोड़कर सत्ता और वोट के अलावा और कोई दृष्टि ही नहीं है। शंकराचार्य को पुनः आदर्श मानकर ही इससे उबर सकते हैं।

सारे देश में भ्रमण कर पुनः वैदिक शासन की प्रतिष्ठा की, सांस्कृतिक ऐक्य संवर्धन के लिए लुप्त तीर्थ परम्पराओं को जो बौद्धों के प्रभाव से निष्प्राण हो गई थी उन्हें पुनः पुनरुज्जीवित किया। मन्दिरों का जीर्णोद्धार कर सारे देश को सांस्कृतिक ऐक्य में बांधने के लिए देश की चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किए—बदरिकाश्रम, शृंगेरी, पुरी एवं द्वारका में। ऐसा क्यों किया?

क्योंकि भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है, यूरोप में राष्ट्र एक राजनीतिक इकाई होने से 20 राष्ट्र बने हुए हैं, और नये राष्ट्र बनने की सम्भावना सदा बनी रहती है जबकि उनका मजहब और संस्कृति एक है।

अंग्रेजों ने यह दुष्प्रचार किया कि भारत कभी एक राष्ट्र नहीं था, क्योंकि इसमें राजनीतिक एकता नहीं थी। अब अंग्रेजों की कृपा से हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई का एक मिला-जुला राष्ट्र बन रहा है। इस दुष्प्रचार में कम्युनिष्ट भी शामिल थे और आज भी है।

पर बाद में केरल के कम्युनिष्ट मुख्यमंत्री अच्युत मेनन अपनी भूल सुधारते हुए सन् 1985 में मलयाली पत्रिका कॅरिअर में लेख लिखते हैं जिसमें कहते हैं—जिस समय कम्युनिष्ट पार्टी की स्थापना हुई उस समय हमने कहा था भारत एक राष्ट्र कभी नहीं रहा क्योंकि यहां राजनीतिक एकता नहीं थी। यह हिन्दुस्तान एक बहुराष्ट्रीय राज्य है। लेकिन अब ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा कहना गलत था। अब हमें यह अनुभव होने लगा है कि भारत एक राष्ट्र ही है। यहां राजनीतिक एकता भले ही न रही हो, किन्तु सांस्कृतिक एकता थी। यहां अलग भाषायें थी, इसलिए अलग-अलग राष्ट्र थे ऐसा भी हमने सोचा। लेकिन अब हमारे खयाल में यह भी आ रहा है कि अलग-अलग भाषायें रहते हुए भी भाव एक था और सांस्कृतिक एकता यहां रही है और अगर वह सांस्कृतिक एकता न होती तो क्या केरल से निकल कर आदि शंकराचार्य सारे भारत में भ्रमण कर पाते और हिन्दुस्तान के चार कोनों में चार मठों की स्थापना कर पाते! यदि सांस्कृतिक एकता न होती तो चार मठों की स्थापना न की गई होती। और अब हमारे खयाल में यह भी आ रहा है जिसको हम तीर्थ कहते हैं वह वास्तव में राष्ट्रीय एकात्मता के केन्द्र हैं। सांस्कृतिक एकता पर आधारित यहां के राष्ट्रीयत्व का आधार यदि कोई हो सकता है तो यह है कि हिन्दू धर्म (फेथ) ही हो सकता है। हिन्दू धर्म की अपनी कल्पना

को स्पष्ट करते हुए कहा कि मैं हिन्दू मजहब की बात नहीं कर रहा हूं। मेरे हिन्दू धर्म में केवल वैदिक लोग ही नहीं जैन-बौद्ध आदि बाकी के लोग भी आते हैं। यानी भारत में उत्पन्न सभी मतों-पथों का समावेश इसमें है।

शंकराचार्य के काल के पूर्व तक संन्यास संगठित नहीं था। संन्यासियों के मठ नहीं होते थे। वे परिव्राजक होते थे। तीन दिन से अधिक कहीं ठहरते नहीं थे। पर शंकराचार्यजी के समय वैदिक सनातन हिन्दू धर्म पर बौद्धों द्वारा निरन्तर आघात हो रहा था। बौद्धों ने अपनी प्रायः सारी सामग्री वेदों से ग्रहण की और फिर वेदों को ही नकारने लगे। पहले परम्परागत रूप से वैदिक सनातन धर्म की रक्षा होती आयी थी। कालान्तर में गृहस्थ लोग ज्यादा प्रवृत्ति में सांसारिकता में डूब गए तो हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए बौद्धों और जैनियों की तरह दुर्गों की आवश्यकता थी, जहां हिन्दू धर्म वैदिक धर्म के रक्षक निर्माण होंवे और वे समाज में प्रकाश स्तम्भ के समान स्थिर रह कर समाज को प्रेरणा देते रहें। इसके लिए युवा संन्यासियों की आवश्यकता थी—वृद्ध, जर्जर संन्यासियों से यह काम सम्भव नहीं था। इसलिए ब्रह्मचर्याश्रम से सीधे संन्यास की परम्परा स्थापित की। संन्यास को संगठित किया। शस्त्रधारण की आवश्यकता थी इसलिए नागा संन्यासियों की दशनामी अखाड़ों की परम्परा स्थापित की ताकि हिन्दू धर्म की रक्षा कर सके।

भारत में उद्‌बुद्ध मत-पंथों के आपसी वैर-विरोध का शमन कर, उनमें समन्वय स्थापित करने के लिए पंचायतन यानी पंचदेवों की पूजा प्रचलित की।

फिर हम सीधे अद्वैत के सर्वोच्च शिखर पर नहीं चढ़ सकते। इसलिए भी पंचदेव उपासना पद्धति प्रचलित की। अनेक स्तोत्र की रचना की। छोटे-बड़े अनेक प्रकरण ग्रन्थों की रचना की ताकि भ्रान्ति का कोई अवसर न रहे।

अद्वैत दर्शन के सर्वोच्च सिद्धान्त और इसकी दार्शनिक मान्यताओं का निचोड़ एक पंक्ति में रख दिया—'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः—ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है, जीव ब्रह्म ही है, जीव ब्रह्म से कदापि भिन्न नहीं है। ये चार सूत्र श्री शंकर के अद्वैत दर्शन के आधार स्तम्भ हैं।

जीव ही ब्रह्म है। ब्रह्म या ईश्वर सातवें आसमान में नहीं जैसा कि ईसाइयत और इसलाम मानती है। वह तो हमारे अन्दर ही समाया हुआ है और उसको पाना ही सच्चा स्वराज्य है, स्वतंत्रता है, मुक्ति है, स्वास्थ्य है अन्य किसी की गुलामी या अधीनता स्वीकारना गुलामी है।

और मात्र चार छोटे-छोटे सूत्र के आधार पर पूरे बौद्ध दर्शन को परास्त कर दिया। वे सूत्र हैं—

कोई भी कल्पना (या सर्जना) निराधिष्ठान नहीं होती है।

बाध असाक्षिक नहीं होता।

उत्पत्ति असन्नमूलक नहीं होती।

नाश निरवयव नहीं होता।

इन चारों सूत्रों के आधार पर बौद्ध धर्म के सर्वक्षणिकम् का खंडन किया। क्षणिकम् अर्थात् सबकुछ क्षणिक एवं परिवर्तनशील है। इससे बौद्धों ने अनात्मवाद का सिद्धान्त बनाया कि अमर आत्मा कुछ है ही नहीं। यह केवल चेतन की धारा है जो स्मृति की शृंखला से जुड़ी हुई है। प्रत्येक घटना स्वतंत्र बिन्दु के समान है जो अगले बिन्दु से, स्मृति की शृंखला से जुड़ जाता है और इस प्रकार की घटनाओं की शृंखला स्मृति की बंधी हुई धारा को मैं कहा जाता है। वास्तव में मैं या आत्मा की कोई सत्ता नहीं है।

और आज का आधुनिक विज्ञान भी अद्वैत वेदान्त के निकट आकर खड़ा हो गया है।

समग्र सनातन धर्म की, समग्र वेद मन्त्रों की व्याख्या एवं भारतीय संस्कृति की समग्र अभिव्यक्ति किसी विचार से हो सकती है तो वह अद्वैत विचार ही है।

चिन्तन के क्षेत्र में इससे ऊंचा विचार न आज तक हुआ और न आगे होने की सम्भावना है। वैदिक सनातन धर्म प्रवृत्ति और निवृत्ति के सामरस्य को लेकर चलता है। अतः शंकराचार्यजी ने कर्मकाण्ड, निष्काम कर्मयोग एवं उपासना को यथोचित महत्त्व देते हुए ज्ञानकाण्ड की स्थापना की। प्रवृत्ति को महत्त्व देने के लिए पंचदेवों की उपासना प्रारम्भ करवायी। अनेक देवी-देवताओं के स्तोत्र की रचना की।

भगवान कृष्ण के पश्चात् ऐसा व्यक्तित्व वाला दूसरा महापुरुष आदि शंकराचार्यजी हुए हैं जो एक साथ ज्ञानी, समाज संगठक, समाज संस्कारक, दूर दृष्टि सम्पन्न, लोक संग्रह की आदर्श मूर्ति थे।

आज विज्ञान की चुनौती के समक्ष कोई खड़ा है तो वैदिक सनातन धर्म ही जिसका समग्र प्रतिनिधित्व अद्वैत मत ही करता है अन्य आंशिक ही कर पाते हैं।

वैदिक सनातन धर्म प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के सामरस्य को लेकर चलता है। पर पुनः मध्यकाल में प्रवृत्ति की उपेक्षा होने लगी निवृत्ति की प्रधानता हो गयी। इसी आधार पर मध्ययुग के संतों ने देश-समाज की उपेक्षा की। विदेशी आक्रान्ता इसलाम के प्रति वे मूक रहे और अपनी व्यक्तिगत साधना को ही, संसार त्याग को ही प्रमुखता दी।

इस निवृत्ति के बादल से निकालने का कार्य आधुनिक समय में लोकमान्य तिलक और स्वामी विवेकानन्दजी, स्वामी रामतीर्थ, डॉ. राधाकृष्णन्, स्वामी शिवानन्द आदि ने किया।

आचार्य चाणक्य, यूनान का राजदूत मैगस्थनीज एवं चीनी यात्री ह्वेनत्सांग

मैगस्थनीज, यूनान का राजदूत बनकर जब भारत आया तब चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानमंत्री चाणक्य की प्रशंसा सुनकर उनसे मिलने की इच्छा, जिज्ञासा की कि उनका भवन कहां है। लोगों ने बताया—गंगा के तट पर उनका निवास है। वह गंगा के तट पर पहुंचा, वहां अनेक झोंपड़ियां दिखीं। कोई भवन नहीं दीखा तो उसे लगा लोगों ने गलत बता दिया। वहां लोगों से पुनः जिज्ञासा की, तो लोगों ने बताया आप उनके घर के पास ही खड़े हैं। उसे आश्चर्य हुआ कि भारत का प्रधानमंत्री इतनी सामान्य-सी झोंपड़ी में रहता है! वह झोंपड़ी के अन्दर गया तो प्रौढ़ व्यक्ति सामान्य सी चटाई पर बैठे हुए दीपक की रोशनी में कुछ कार्य कर रहे हैं। मैगस्थनीज ने उसे चाणक्य का नौकर समझकर उनसे निवेदन किया—आप प्रधानमंत्री को अन्दर जाकर सूचना दें, मैं उनसे मिलने आया हूं। उन्होंने पूछा—आप किस काम से आये हैं, मुझे बताइये। मैगस्थनीज ने कहा—मैं उन्हें ही बताऊंगा। कृपया आप उन्हें सूचना देवें। कई बार कहने पर उस व्यक्ति ने कहा—आप बताइये क्या काम है मैं ही प्रधानमंत्री हूं। आश्चर्य हुआ सामान्य-सी चटाई, सामान्य-सी पोशाक! पर तब चाणक्य ने बताया, राजभवन जाता हूं तो पोशाक में थोड़ा परिवर्तन हो जाता है, मैं ऐसे ही रहता हूं। आप बताइये किस काम से आये हैं? तो उन्होंने बताया मैं यूनान से राजदूत के रूप में आया हूं। चाणक्य ने बताया—हां, मेरे को पता है। आपको कैसे पता है—आपने जब से हमारी सीमा में प्रवेश किया है तब से अब तक की सारी सूचना मेरे को है। मेरे आदमी सादा वेश में आप से जिज्ञासा-पूछताछ करते रहे हैं, वे सब प्रशासन के ही व्यक्ति हैं। मैगस्थनीज को आश्चर्य हुआ, गुप्तचरी तंत्र इतना चुस्त और सक्रिय है। तब मैगस्थनीज ने बताया—मैं प्रशासन तंत्र के बारे में बाद में जानना चाहूंगा पहले मैं आपके व्यक्तिगत जीवन के विषय में जानना चाहता हूं। चाणक्य के पास दो दीपक रखे हुए थे। एक जल रहा था। उससे दूसरा दीपक जलाकर पहले वाला दीपक बुझा दिया। मैगस्थनीज को यह बात समझ नहीं आयी। जलते हुए दीपक को तो बुझा दिया और दूसरा जलाया। उसने इस विषय में जिज्ञासा की। तब चाणक्य ने बताया—मैं अभी राजकार्य कर रहा था, तो वह दीपक राजकीय पैसे के तेल से जल रहा था। और यह दीपक व्यक्तिगत

कार्य के लिये है। इसके तेल की व्यवस्था मैं अपने व्यक्तिगत खर्च से करता हूं। व्यक्तिगत कार्य के समय में राजकीय दीपक का उपयोग नहीं करता। आपने कहा मुझे आपके व्यक्तिगत जीवन के विषय में जिज्ञासा है। अतः राजकीय दीपक को बुझाकर व्यक्तिगत दीपक को जला लिया।

इससे मैगस्थनीज आश्चर्य में पड़ गया। उनके जीवन की सादगी, सरलता, प्रशासन की सुविधा से निर्लेपता! और इतनी चुस्त-सक्रिय गुप्तचरी व्यवस्था जो कुशल प्रशासन के लिये आवश्यक है। भारत के प्रधानमंत्री पद पर होकर भी उसका कोई अहंकार नहीं, जिस देश में ऐसा प्रधानमंत्री होगा उसको कौन पराजित कर सकता है। उसे भारत की एवं चाणक्य की सफलता का रहस्य समझ में आ गया।

चाणक्य के प्रधानमंत्रित्व काल में प्रसिद्ध चीनी यात्री युआन-च्वांग (ह्वेनत्सांग) आया था। वे अपने संस्मरण में लिखते हैं—उस समय भारत की प्रजा सम्पन्न और सुखी थी। लोग सत्यवादी थे। सदाचार में निरत रहते थे, कोई दुराचारी नहीं था, अपराध नहीं होते थे। सभी एक-दूसरे पर विश्वास करते थे। न्यायालयों में आपराधिक-अभियोग निर्णयाधीन नहीं थे। कारागृह में भी कोई अपराधी नहीं था। लोग घरों में ताले नहीं लगाते थे; क्योंकि चोर-डाकू नहीं थे।

ह्वेनत्सांग ने अपने संस्मरण में यह भी लिखा है कि चाणक्य के कुटिर में एक गाय बंधी थी। आवश्यक हवन सामग्री भी थी। दो उत्तरीय वस्त्र (ऊपर पहना जाने वाला वस्त्र), दो अधो-वस्त्र (नीचे पहना जाने वाला वस्त्र), दो कौपीन (लंगोटी) भी थे। अति सीमित, आवश्यक एवं अपेक्षित खाद्य सामग्री भी थी। इस पर मैंने उनसे चकित होकर पूछा कि क्या आपके पास इतनी ही सामग्री एवं सम्पत्ति हैं? चाणक्य ने बड़े इतमीनान (संतोष) के साथ कहा कि बस, इतनी सामग्री मेरे लिये पर्याप्त है, इससे अधिक सामग्री के उपयोग का मैं अभ्यस्त नहीं हूं। शीत-उष्ण, आंधी-तूफान, वर्षादि से बचने के लिये कुटिर पर्याप्त है। गाय से वांछित मात्रा में दूध, दही, घृतादि मिल जाते हैं। उत्तरीय-वस्त्र, अधो वस्त्र तथा कौपीन दो-दो इसलिये रखते हैं कि स्नानोपरान्त भीगे वस्त्र को धोकर सुखा देते हैं, दूसरा सूखा हुआ वस्त्र पहन लेते हैं। हवन-सामग्री की देवताओं के निमित्त से अग्नि में आहुति देते हैं, जिससे देवताओं के प्रसन्न होने से आधिदैविक तापों, जो कि ये हैं—अति गर्मी-सर्दी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अतिवायु-अन्धड़, तूफान से जन्य दुःख आधिदैविक है, क्योंकि देवता निमित्त से ये दुःख होते हैं, की निवृत्ति हो जाती है। साथ ही हवन के धुएं से वायुमण्डल भी स्वच्छ हो जाता है। भोजन सामग्री जिससे क्षुधा निवृत्ति हो जाती है उतनी मात्रा में रखनी पर्याप्त है, अधिक संग्रह करने से उसकी सुरक्षा की चिन्ता करनी पड़ती है। ह्वेनत्सांग ने लिखा है कि चाणक्य जैसा आचरण करने से ही राजा तथा प्रजा का सर्वतोभद्र होता है।

विक्रम संवत् के प्रणेता महाराज विक्रम

जिस समय हमारा विक्रम संवत् शुरू होता था और विक्रम संवत् से पहले सृष्टि संवत् भी इसी से शुरू होता था। ज्योतिष के हिमाद्रि ग्रंथ के अनुसार—

चैत्रे मासे जगद ब्रह्मा संसर्ज प्रथमेऽहवि,
शुक्लपक्षे समग्रन्तु, तदा सूर्योदये सति।

अर्थात् चैत्र मास, शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय के समय ब्रह्माजी ने जगत् की रचना की।

सृष्टि इसी से शुरू हुई। इसलिये कोई तमाशा नहीं है जब चाहे कोई वर्ष शुरू कर दे। अरे, यह सृष्टि के प्रारम्भ का दिन है। ब्रह्मा ने सृष्टि प्रारम्भ की और हमारा सृष्टि संवत् चल रहा है। लगभग दो अरब वर्ष से सृष्टि संवत् है। एक अरब 97 करोड़ और 987 ऐसा करके सृष्टि संवत् हमारा है। तो ये सृष्टि संवत्। सतयुग संवत् इसी से। त्रेता संवत् इसी से। द्वापर संवत् इसी से। कलि संवत् इसी से। युधिष्ठिर संवत् इसी से। कलियुग में पुनः सम्राट् नरवीर विक्रमादित्य ने 2,035 वर्ष पहले, बर्बर-शकों को परास्त करके पुनः उसी प्राचीन दिवस को यश देते हुए उन्होंने विक्रम संवत् प्रारम्भ किया। ये शक लोग कौन थे? चीन के उत्तर में एक तारीम नदी है। उस तारीम नदी के काठे (किनारे) में बहुत ही बर्बर जाति के लोग बसते थे जिनको शक कहते थे। बहुत बर्बर। वे बस्तियों को घेर लेते। चारों ओर आग लगा देते और स्त्रियों और बच्चों को मारते। लूट-पाट करना, आग लगाना, नाश करना, यही उनका काम-धंधा था। चीन भी इनसे तंग था। चीन उनसे इतना तंग था कि शकों के आक्रमणों से बचने के लिये दुनिया की सबसे बड़ी दीवार दीवारे-चीन, जो दुनिया का अजूबा माना जाता है, को उसने इसीलिये बनाया कि उन शकों से बचा जा सके। फिर भी शक उनको तंग करते थे। वे शक लोग वहाँ से बढ़ते-बढ़ते सिक्यांग की तरफ आये। जिसे आज चीनी तुर्किस्तान कहते हैं। वहाँ उन्होंने बहुत लूट-खसोट मचायी। उसके बाद वे ईरान की तरफ आये। ईरान के राजा को उन्होंने एक पत्र लिखा। यदि अपनी प्रजा की भलाई चाहते हो, और अपनी राजधानी को लूट-पाट से, खून-खराबे से, आगजनी से बचाना चाहते हो

तो अपने सिर को काटकर एक थाल में परोसकर हमारे पास भेज दो। अब सोचिये, ऐसा प्रस्ताव कोई किसी राजा को कर सकता है? उन्होंने ऐसा भयानक प्रस्ताव उसको किया और चेतावनी दी—अगर तू ऐसा नहीं करेगा, तो हम तुझे मारकर तेरी खोपड़ी को काटकर, और तेरी खोपड़ी का गूदा निकाल करके उस खोपड़ी का प्याला बनाकर तेरा ही खून पीयेंगे। यह इतिहास की बहुत ही दुःखदायी सचाई है कि उन शक लोगों ने उस ईरान के राजा को मारा। राजधानी को लूटा-खसोटा, स्त्री-पुरुषों का नाश किया, कुएं भर गये लोथों से और उस राजा को मारकर उसकी खोपड़ी में उसी का खून डालकर पीया। ऐसे बर्बर लोग भारत पर आक्रमण करने आये। एक शक राजा जब कश्मीर की ओर से नीचे उतर रहा था तो जम्मू से कश्मीर जाते हुए रास्ते में पीर पंजाल की पहाड़ियाँ हैं। वहाँ वैष्णवदेवी से पहाड़ियाँ दिखती हैं। फिर पन्हिल दर्रा है, पास है। फिर टर्मिनल बनायी गई है। उस टर्मिनल से बस जाती है। उन पहाड़ियों से जब मिहिरकुल नाम का शक राजा उतर रहा था तो उसने जिंदगी में पहली बार एक हाथी को देखा। हाथी होता ही नहीं उनके देश में। हाथी को देखा तो हाथी का पांव अचानक पहाड़ी से फिसल गया। पांव फिसल जाने से हाथी नीचे गिरा। हाथी ऐसे गिरा कि दो तिरछी पहाड़ियों के ढलान के भीतर गिरा और नीचे जाकर पहाड़ियाँ इतनी संकरी हो गयी थी कि जिनके भीतर वह पीठ के बल गिरा। हजार प्रयास करने के बाद भी वह अपने शरीर को सीधा नहीं कर सका। सीधा हुए बिना वह खड़ा नहीं हो सकता। पीठ के बल गिरा और नीचे बहुत संकरी जगह थी जिससे वह उठ नहीं सकता था। उस अवस्था में वह—सूंड मार रहा था। पूंछ मार रहा था। चारों पांव छटपटा रहा था। उठने की कोशिश कर रहा था, चिंघाड़ रहा था। मिहिरकुल को यह देखकर बड़ा आनंद आया। वाह! ऐसा मृत्यु संगीत मैंने जीवन में कहीं नहीं सुना। कई दिन तक वह हाथी रोता रहा, चिंघाड़ता रहा और अंत में हाथी की बड़ी दुःखदायी मृत्यु हो गई। उस शक राजा मिहिरकुल को यह दृश्य बड़ा रोचक लगा। उसने बाद में वहाँ से उतर कर आगे विजय करते हुए....विजय करते हुए क्या? बस्तियों को घेर लेना, चारों ओर आग लगा देना। भागने वालों को बरछों से, भालों से मारना। स्त्री-पुरुषों की बड़ी दुर्गति करना, और बहुत भयंकर प्रकार के पापाचार करना। यही उसका तरीका था। तो जब वह नीचे उतर रहा था तो बस्तियों को लूटता-खसोटता मथुरा तक आकर उसने नाश किया और बहुत उजाड़ दिया सारे देश को। तब उसने एक सौ हाथी अपने विजय किये हुए क्षेत्र में से ले जाकर उस पहाड़ी की उसी जगह पर जाकर बारी-बारी से उनको गिराया और एक-एक हाथी को गिराने और 5-5, 6-6 दिन तक उनका मृत्यु संगीत सुनने में उसको वर्ष लग गया। वह वहाँ बैठा हुआ उनका मृत्यु संगीत सुनता रहा। उनकी मृत्यु की चिंघाड़ सुनकर आनंदित होने वाले, दूसरों को दुःख देकर, दूसरों को सताकर आनंद मनाने

वाले ऐसे नर-पिशाच! शरीर तो मनुष्य का है पर प्रकृति पिशाच की है। दूसरों को सताना, दूसरों को तड़पाना और उसमें सुख मानना। ऐसे शक लोग बढ़ते-बढ़ते पहुँच गये उज्जैनी नगर के पास। अवन्तिका के पास। वहाँ पर एक मालव गणराज्य था। आज से हम 2,035 साल पहले की बात कर रहे हैं। उससे दो सौ साल पहले जब सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया था तो वह मालव गणराज्य पंजाब में था। आप जयशंकर प्रसाद का नाटक पढ़ें—चन्द्रगुप्त। उसमें आपको संकेत मिलेगा। इतिहास के ग्रंथ देखें उनमें आपको संकेत मिलेगा मालव गणराज्य का। अभी पंजाब के दो भाग हैं—माझा और मालवा। मालव वहाँ थे। उन्होंने सिकंदर की सेनाओं की खूब दुर्गति की थी, ऐसी मार दी थी कि सिकंदर परेशान हो गया था। भाग गया था। इसलिये वे मालव लोग, वह सारा का सारा जो पेप्सु का इलाका है वह मालवा का इलाका है। अमृतसर से उधर माझा, अमृतसर से इधर मालवा और ये मालवे के वीर बड़े बहादुर थे। इनके नाम पर पंजाब में कई नगर अभी भी हैं। एक है मालेर-कोटला। मालेर कोटला का नाम था मालवेर-कोटला। मालव लोगों का किला। एक है मनोद, उसका नाम था मानवोदय। इस तरह से मालवों का यश यहाँ भी था। उसके बाद किसी ऐतिहासिक उथल-पुथल से बढ़ते-बढ़ते चले गये मध्यप्रदेश की तरफ और जाकर उज्जैन के आस-पास बस गये थे। आज से 2,035 वर्ष पहले जब शकों का हमला हुआ तब मालव गणराज्य वहाँ था। वहाँ उज्जैन के पास वह गणराज्य था। गणराज्य यानी गणतंत्र और उस गणतंत्र का अध्यक्ष था वीर विक्रमादित्य मालव गणाधिपति। मालवगण का अधिपति। लोगों ने सम्मान से उसको राजा विक्रमादित्य लिखना शुरू किया। लेकिन वो वास्तव में मालव गणाधिपति था। जैसे भगवान कृष्ण ने कभी राज्य नहीं किया। पर सब लोग आदर से कृष्ण महाराज, कृष्ण महाराज कहते ही हैं। उन्होंने राज्य ही नहीं किया तो महाराज का प्रश्न ही क्या? वह क्या थे? वृष्णि गणराज्य था द्वारिका में। भगवान श्री कृष्ण उस वृष्णि गणराज्य के अध्यक्ष थे। इसलिये गणराज्य था। इस तरह से बुद्ध के पिता को राजा शुद्धोधन, शुद्धोधन राजा नहीं था। वहाँ पर एक गणराज्य था। उस गणराज्य का अध्यक्ष था। इसलिये भारत के प्राचीनकाल में गणराज्य थे और मालव गणराज्य का अध्यक्ष था विक्रमादित्य, वीर पुरुष। वह गया महाकाल के मंदिर में। उस नर केसरी विक्रमादित्य ने महाकाल के मंदिर में जाकर और अपनी खड्ग निकाल करके अपनी भुजा का रक्त शंकर भगवान् को चढ़ा करके प्रतिज्ञा की—शंकर भगवान्! लोग आपका जलाभिषेक करते हैं मैं आपका रक्ताभिषेक कर रहा हूँ इस प्रतिज्ञा के साथ कि अपने शरीर की अंतिम रक्त बूंद भी इस राष्ट्र पर आयी हुई विपदा को निरस्त करने में लगा दूंगा और जब तक इन शकों को इस देश से खदेड़कर बाहर नहीं फेंक दूंगा तब तक मेरी अपराजित खड्ग पुनः म्यान में नहीं जायेगी। यह प्रतिज्ञा करके वह नरवीर

निकला। देश के लिये प्राणोत्सर्ग करने के लिये वीरों की टोलियाँ जमायी और इन बर्बर शकों को, नर-पिशाचों को खदेड़ना शुरू किया और इनको खदेड़ते-खदेड़ते इसने हिन्दूकुश के पार फेंक दिया। जिसको हम लोग सिंधुद्वार कहते थे उसको मुसलमानों ने अपने आक्रमण के बाद दर्रा खैबर कहना शुरू किया। दर्रा खैबर नाम का एक नगर अरब में है। आपको लज्जा आनी चाहिये अरब के नगर के नाम पर उसको दर्रा खैबर नाम दे दिया। उसका नाम सिंधुद्वार था। उसके पार खदेड़ दिया और अफगानिस्तान में, काबुल में अंगूर की बेलों के निकुंजों में जाकर उसकी सेनाओं ने विश्राम किया। उसने कहा, हमने पश्चिमोत्तर की सीमा को विजित कर लिया है। अब पूर्व की ओर हम लोग बढ़ेंगे। पूर्व की ओर आराकान, म्यांमार तक जाकर उसने विजय अभियान किया।

सच्चे अर्थ में देश स्वाधीन तब होगा जब देश का बच्चा-बच्चा ऋणमुक्त हो जाय। चाहे मेरी प्रजा में से किसी को किसी का ऋण देना हो, एक पैसा भी जिसको चुकता करना हो। जो जिसका ऋणी होता है उसकी आंखें सदा साहूकार के सामने झुक जाती है। वह गुलाम रहता है। चाहे किसी विदेशी का राज्य न हो, लेकिन उसके ऊपर किसी का, उसके ऊपर धन का राज्य बना हुआ है इसलिये वह उसका गुलाम है, उसके सामने झुकता है। विक्रमादित्य ने कहा, मेरी प्रजा में कोई भी किसी का ऋणी नहीं रहेगा। जिसको जितना ऋण देना हो आकर के हमारे दरबार में बताओ, हमारे कार्यालयों में बताओ, राजकोष से सबका ऋण चुकता कर दिया जायगा। सम्राट् विक्रमादित्य ने राज्यकोष से बच्चे-बच्चे का, व्यक्ति-व्यक्ति का ऋण चुका दिया। उसने कहा, अब सच्चे अर्थ में मेरी प्रजा भयमुक्त है, ऋणमुक्त है, आपदामुक्त है। अब मैं इस परम पवित्र नववर्ष प्रतिपदा के दिन संवत् संस्थापित करता हूँ। लोगों ने कहा, इसका नाम विक्रम संवत् रखो। उसने कहा, नहीं!

विक्रम संवत् मत रखो! मैं कौन हूँ? मैं तो एक गणराज्य का अध्यक्ष हूँ। इस संवत् का नाम कृतसंवत् है। विक्रमादित्य ने अपने समय में इसका नाम विक्रम संवत् नहीं रखा। उसने कृतसंवत् नाम रखा। कृत माने सत्ययुग का समय। इस देश में पुनः सत्ययुग आ गया है। सत्ययुग कैसे आता है? तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा—कलि शयानो भवति। सोये हुए व्यक्ति के लिये कलियुग आया है, जो जम्हाई ले रहा है उसके लिये द्वापर और उत्तिष्ठत् त्रेता भवति जब खड़ा हो जाता है उसके लिये त्रेतायुग आ जाता है। जब आदमी चलने लगता है। तो उसका नाम सत्ययुग हो जाता है। जो राष्ट्र सोया हुआ है वह कलियुग में है। जो राष्ट्र जम्हाई ले रहा है वह द्वापर में है। जो राष्ट्र उठ करके खड़ा हो गया है वह त्रेता में है। जो राष्ट्र वेग से चलने लगा है गतिमान हो गया है वह राष्ट्र सत्ययुग में है। इसलिये उसने कहा, इन पापी-नराधम शकों को निरस्त करने के लिये पूरा राज्य खड़ा होकर वेग से

बढ़ा है। शत्रु को खदेड़ करके बाहर फेंक दिया है इसलिये यह सत्ययुग है। इसलिये कृतसंवत् नाम रखा। कृतसंवत् नाम चला। कुछ अवधि पश्चात् लोगों ने उसको परिचय करने के लिये लगभग तीसरी-चौथी शताब्दी में इसका नाम रख दिया गया मालव गण संवत्। क्योंकि मालव गणराज्य का संवत् था। इसलिये मालव गण संवत्। और 8-9वीं शताब्दी में यशोधर्मा ने जब पुनः हूणों को परास्त किया। उसने प्राचीन संवत् को लोगों को परिचय देने के लिये कहा—विक्रम संवत्। इसको सम्राट् विक्रमादित्य ने संस्थापित किया, इसलिये विक्रम संवत् और विक्रमादित्य ने अपने समय में यह नाम नहीं रखा। बाद के लोगों ने श्रद्धा से उसको नाम दिया विक्रम संवत्। क्योंकि विक्रमादित्य ने अत्यंत विनम्रता से कहा कि यह मेरा पुरुषार्थ नहीं है पूरे राष्ट्र का पुरुषार्थ है। मैं राष्ट्र का प्रतिनिधि हूँ। मैं इस गणतंत्र का एक प्रतिनिधि-मात्र हूँ।

आज के दिन विक्रमादित्य ने नव-संवत्सर स्थापित किया। सच्चे अर्थ में वैभव का युग कैसा होना चाहिए? इसकी कल्पना मिलती है इस विक्रमादित्य के संवत्सर से। वह इतने से संतुष्ट नहीं हो गया था।

वह रात को वेश बदल करके निकलता था और गुप्त रूप में जाकर देखता था कि मेरे राज्य में कोई दुःखी तो नहीं है। किसी की कुटिया से रोने की आवाज तो नहीं आती। किसी के घर में बच्चे बिना दूध पीये सो तो नहीं गये हैं। बच्चे बिलखते तो नहीं हैं अन्न के बिना। वह घूमता था। एक कुटिया से एक बुढ़िया के रोने की आवाज आ रही थी। विक्रमादित्य ने पूछा, माँ! क्या बात है? तू क्यों रो रही है रात्रि के अंधेरे में। बुढ़िया ने कहा, मेरा एक नौजवान बेटा विक्रमादित्य की सेना में भरती हुआ था। वह लड़ने के लिये पश्चिमोत्तर की तरफ गया था। दस वर्ष हो गये। मेरा नौजवान बेटा लौटा नहीं है। उसी के वियोग में रो रही हूँ। मेरी आंखों पर मोतिया छा गया है। मैं देख नहीं सकती हूँ ठीक से। पर उस बच्चे के सिवा मेरा कोई सहारा नहीं था। इसलिये उसके वियोग में रोती हूँ। विक्रमादित्य ने उसके चरणों को पकड़ करके माथा उसके चरणों में रख दिया। कहा, माँ! तू भूल गयी। तू पहचानती नहीं है। मैं ही तो तेरा बेटा हूँ। मैं लड़ने के लिये गया था विक्रमादित्य की सेना में। हम विजयी होकर लौट करके आये हैं माँ! बताओ, मेरे लायक क्या सेवा है? माँ ने टटोल करके देखा। माँ ने कहा, नहीं बेटा! तू मेरा बेटा नहीं है। मेरा बेटा थोड़े हलके शरीर का था। तेरा डील-डौल कुछ बड़ा है। माँ! दस वर्ष हो गये। दस वर्ष में क्या डील-डौल बड़ा नहीं होता है। हम लोग खूब बहादुरी से लड़े। हम विजयी हुए। मैं तेरा बेटा हूँ और न मानते हुए भी रातभर माँ की सेवा करता रहा। उसने सुबह उठकर कहा—माँ! मेरे को राज दरबार में कुछ काम है। शाम को मैं फिर आ जाऊंगा। चला गया। शाम को फिर आ गया।

उसकी सेवा करता रहा। पाँच-सात रोज के बाद उस बुढ़िया को संकेत मिल गया। यह जो मेरी सेवा करने आता है यह तो मालव गणाधिपति, सम्राट् विक्रमादित्य है। तब तो रात को विक्रमादित्य के आने पर अपने हृदय से विक्रमादित्य को खूब आशीर्वाद दिया। दोनों आंखों में गंगा-जमुना की धार बहाती हुई उस माँ ने कहा कि, ऐ विक्रम! तेरे जैसा पुरुषार्थी, तेरे जैसा वीर, तेरे जैसा प्रतापी राजा, सारे भारत का स्वामी होकर भी मेरे जैसी एक निर्धन बुढ़िया की सेवा करने के लिये मेरे पास आता है। ऐ बेटा! तू मेरा बेटा बन करके आया है, मैं आशीर्वाद देती हूँ, जब तक चन्द्र-सूर्य-तारागण रहेंगे तेरा यश संसार में अमर रहेगा। बच्चा-बच्चा तेरे यश का तराना गायेगा। ऐ बेटा! तेरे यश को कोई मिटा नहीं सकेगा। उस बुढ़िया के आशीर्वाद में मानो साक्षात् भारतमाता का आशीर्वाद था और आज सचमुच पानी भरने वाली पनहारिनें, भैंसें, भेड़-बकरी चराने वाले चरवाहे, खेतों में काम करने वाले किसान, घरों में रहने वाले, नगरों में, वनों में रहने वाले सब लोगों की जिह्वा पर विक्रमादित्य का नाम है। बच्चा माँ से कहता है, दादी से कहता है मुझे विक्रमादित्य की कहानी सुनाओ। विक्रमादित्य का सिंहासन देश के करोड़ों-करोड़ों लोगों के हृदयों में पिछले 2,035 वर्षों से स्थापित हो चुका है। उस सिंहासन को कोई लूट नहीं सकता।

वह विक्रमादित्य एक बार रात्रि को घोड़े पर जा रहा था प्रजा का हाल जानने। एक खेत के भीतर से गया। खेत की रखवाली के लिये दो-चार लोग बैठे थे। उन्होंने कहा, ऐ! किधर जाता है? क्यों, क्या बात है? अंधा है दिखता नहीं है। हल चलाया हुआ खेत है। बीज बोया हुआ है उसके भीतर से घोड़ा दौड़ाकर ले जा रहा है? उसने कहा, भूल हुई। भूल क्या हुई! गाँव का नियम है जो जोते हुए खेत के भीतर से चलेगा, घोड़ा दौड़ायेगा उसको पचास कोड़ा दण्ड मिलेगा। विक्रमादित्य घोड़े से उतरा और अपनी पीठ नंगी कर दी। पचास कोड़े खा लिये। यह था न्यायप्रिय विक्रमादित्य। जो सदा न्याय को नमस्कार करता है। मेरी प्रजा ने कुछ नियम बनाये हैं। मेरे सम्राट् होने का मतलब यह नहीं है कि मैं जो मरजी धांधली करता रहूँ, मैं जो मरजी अपराध करता रहूँ और कोई बोले तो उसको उठाकर मीसा में बंद कर दूं। डी. आई. आर. में बंद कर दूं, सीखचों में डाल दूं और देश के ऊपर इमरजेंसी लागू कर दूं। न्याय का सम्मान करने वाला वह विक्रमादित्य था, उसकी हजारों ऐसी गाथाएं आप सब जानते हैं।

आपने उसके न्याय की वह कथा अवश्य सुनी होगी। उसके दरबार में स्त्रियाँ एक बच्चे पर झगड़ा करती हुई आयीं। एक ने कहा, बच्चा मेरा है, दूसरी ने कहा—बच्चा मेरा है। बच्चा एक स्त्री का था। दूसरी कुलटा जो थी उसने क्या किया? उसका अपना बच्चा था नहीं। उसने इसका बच्चा छीन लिया था ताकि

वह निपूती हो जाय और खुद इस बच्चे के साथ मनमानी करे। तो विक्रमादित्य के दरबार में यह मामला आया। दोनों अपना-अपना पक्ष कहने लगीं—बच्चा मेरा है, मेरा है। विक्रमादित्य का अनोखा न्याय था। विक्रमादित्य ने कहा, दोनों ही बच्चे को अपना कहती हैं। तो विक्रमादित्य ने मंत्री को कहा, उठो, दोनों को तलवार से आधा-आधा काट करके बांट दो। तलवार उठाकर दो टुकड़े कर दो और दोनों को बांट दो। दोनों ही तो अपना कहती हैं! ज्योंही तलवार उठाना हुआ कि जो सच में माँ थी वह हाहाकार कर उठी, ईश्वर के वास्ते ऐसा मत करो। मेरी आंखों के सामने मेरे कलेजे के टुकड़े को मत काटो। बेशक किसी दूसरे को दे दो लेकिन काटो मत। दूसरी जो कुलटा थी वह मन ही मन बड़ी प्रसन्न हो रही थी। विक्रमादित्य तुरंत समझ गये। यह तो उनकी परीक्षा थी। न्याय का ढंग था उनका। उन्होंने बच्चे को असली माँ को दिया और दूसरी को खूब दण्डित किया।

विक्रमादित्य के सिंहासन की कथा आपने सुनी होगी। प. पू. डॉ. जी का शरीर शांत होने के बाद प. पू. गुरुजी ने सरसंघचालक का पद का दायित्व लिया। उन्होंने उसी विक्रमादित्य की कथा को सुनाया। प्रथम भाषण में ही। विक्रमादित्य का सिंहासन एक टीले में दबा हुआ था। उस गाँव में लोगों को कुछ भी न्याय करवाना होता था तो न्याय ठीक से नहीं होता था। एक चरवाहे का लड़का लोग उसको कहते थे। वह उस टीले पर बैठकर जो न्याय करता था वह सबको स्वीकार होता था। बिल्कुल शुद्ध न्याय करता था टीले पर बैठ करके। तो उस टीले पर बैठकर न्याय करने से उसका न्याय ठीक होता था। वैसे कुछ न्याय करता तो न्याय गलत होता। बाद में खुदाई में देखा गया उस टीले के नीचे विक्रमादित्य का सिंहासन दबा हुआ था। हजारों वर्षों के बाद जो सिंहासन दब गया था, उस पर टीला बन गया था उस टीले पर बैठने वाला गडरिये का बच्चा भी न्याय ही करता था। प. पू. गुरुजी ने सरसंघचालक का पद संभालते समय कहा कि गडरिये का बच्चा भी विक्रमादित्य के सिंहासन पर बैठकर, उस टीले पर बैठकर न्याय ही करता है। उन्होंने कहा—मैं तो संघ के सरसंघचालक पद के योग्य नहीं हूँ लेकिन जैसे गडरिये का बच्चा भी विक्रमादित्य के सिंहासन पर बैठकर न्याय ही करता है तो विक्रमादित्य के इस पावन, इस विक्रम संवत् के दिन जिनका जन्म हुआ उन प. पू. डॉ. साहब के द्वारा संस्थापित संघ के इस पद को, जो मुझे सौंपा गया है उनके द्वारा प्रतिष्ठित इस पद पर बैठकर शायद मुझ गडरिये के बच्चे से न्याय ही होगा। ऐसा प. पू. गुरुजी ने अपने बारे में कहा है। ऐसा सम्राट् विक्रमादित्य का अलौकिक यश था और वह यश अमर यश है। अरब में, अरबी भाषा में विक्रमादित्य की स्तुति मिलेगी।

एक पुस्तक है, इराक सरकार ने छपवायी है 'सेअरूल ओकुल'। कविता के बाग की सैर। लोगों ने चुनौती दी, अरब को, इराक को, अरब-अरबी भाषावाले

देशों को कि आप जितनी कविता, साहित्य अरबी का बताते हैं वह इसलाम के बाद का बताते हैं। क्या इसलाम के पहले अरब देश नहीं था। या अरबी कविता नहीं थी। यदि थी तो उसके नमूने कहाँ हैं? इराक सरकार ने सारे संसार से अपील की, जिसके पास पुरानी अरबी कविता के जो नमूने हों, वह हमें देवें। हम उसको बड़े से बड़ा पुरस्कार देवेंगे। अरबी कविता के बहुत से नमूने, जो इसलाम से पूर्व के थे, नष्ट कर दिये गये इसलाम के आने के बाद। लेकिन कुछ नमूने इस तरह से बचे थे कि जो वहाँ का काबा शरीफ, मक्का में जो बड़ा मंदिर, काले रंग के पत्थर के देवता, जिसको मक्केश्वर महादेव कहते हैं, वह वास्तव में विशाल शिवलिंग था। अभी भी वह शिवलिंग ही है। उसको काबा कहकर पूजा जाता है। उसके इर्द-गिर्द 360 और मंदिर थे। बीच में बड़ा देवता था और उसमें शिवरात्रि के अवसर पर बहुत बड़ा कवि-सम्मेलन होता था। उस कवि-सम्मेलन में जो सर्वश्रेष्ठ कवितायें होती थी उन कविताओं को लेदर के स्क्रोल पर, चमड़े की पट्टियों पर, सोने के अक्षरों से खुदाई करके उस मंदिर में टांगा जाता था। वह लेदर स्क्रोल जो है वह बड़ी कीमती वस्तु हो गई। जैसे तिब्बत के थंका, तिब्बत के मंदिरों में टांगने वाले चित्र, बड़ी दुर्लभ चीज हो गई। हजारों रुपयों में एक थंका बिकता है। इस तरह से अरबी के स्क्रोल जो मंदिर में टांगे जाते थे, जिसमें सर्वश्रेष्ठ कविता लिखी जाती थी, सोने के अक्षरों में वह हजारों रुपयों में, कभी-कभी लाखों रुपयों तक में एक-एक बिकता था और वे कुछ लोगों के प्राइवेट कलेक्शन में थे। कुछ लाइब्रेरियों में भी थे। कुछ अध जले आधे नष्ट किए हुए भी थे। उन सबको इकट्ठा करके और इराक सरकार ने एक ग्रंथ का संपादन शुरू किया। उस ग्रंथ के संपादन के समय जब ग्रंथ का संपादन हो रहा था सन् 1963 में मैं यूरोप के प्रवास से लौटते समय इराक में बगदाद गया। उस ग्रंथ का मैंने अवलोकन किया। अबुल हिक्म ने एक कविता में कमाल कर दिया। वह कहते हैं—अल्लाओं के अल्लाह महादेव! जीवन में आदमी ने कितना भी गुनाह किया हो, एक बार सच्चे हृदय से आपकी चरण-शरण में आ जाय तब आप उसके सब गुनाह माफ कर देते हैं। वह कहता है—हे अल्लाओं के अल्लाह महादेव! मैं आपकी चरण-शरण में आता हूँ। मेरे गुनाह माफ करें। फिर कहते हैं—अल्लाओं के अल्लाह महादेव! अगर जीवनभर में मैंने कोई पुण्य कमाया हो, सबाब कमाया हो, तो उससे मेरी एक मनोकामना पूरी कर दो। वह मनोकामना क्या है? वह कहते हैं—हे महादेव! आपने मेरे को धन-जन-परिवार दिया, बड़ी अच्छी नेक संतानें दी, बड़ी लम्बी उम्र दी और बड़ी अच्छी कवित्व शक्ति दी। हे महादेव! मेरा सबकुछ छीन लो, मेरा धन, जन-भवन-परिवार छीन लो, मेरी नेक, आज्ञाकारी संतानें छीन लो, मेरी कवित्व शक्ति छीन लो और मेरी सारी लंबी उम्र छीन लो और मेरा सब कुछ छीनकर इसके बदले मुझे दे दो

सिर्फ एक दिन के लिये भारत का वासा। मैं एक दिन भारत में जी सकूं। यह मेरी मांग है। यही मेरी मुराद है। मैं अपनी आंखों से वेद और गीता जैसे दर्शन के देश का दर्शन कर सकूं, राम और कृष्ण के देश का दर्शन कर सकूं, गंगा-यमुना की धूलि को उठाकर अपनी आंखों पर चढ़ा सकूं, मैं जिंदगी निहाल कर पाऊं। इसके सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिये। यह कविता मैं नोट करके लाया और मैंने दिल्ली में, बाबू युगलकिशोर बिड़ला, जो बिड़ला बंधुओं में सबसे बड़े थे, उन्होंने एक बार पूछा, कुछ रोचक प्रसंग सुनाइये, तो मैंने उनको यह बताया कि इराक से यह एक चीज मैं लाया हूँ। तो वह सुनते ही उछल पड़े। उनकी आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। कहते हैं इसलाम के पैगम्बर के चाचा भारत में एक दिन जीने के लिये तरसते थे। भारत की इतनी स्तुति करते थे।

उन्होंने कहा, तुरंत इसको एक बड़े संगमरमर की पट्टी पर खुदवा करके दिल्ली के बिड़ला मंदिर में लगवा दिया जाय। तब से वह बिड़ला मंदिर में लगी हुई है। ऊपर मूल अरबी में कविता, नीचे नागरी लिपि में कविता और उसके नीचे हिन्दी में अर्थ, नीचे पुस्तक का नाम और पृष्ठ संख्या 8 एक कालम में दी हुई है।

इसी तरह से विक्रमादित्य के बारे में स्तुतियाँ, विक्रमादित्य की स्तुति में कहा—हे विक्रमादित्य! जब हम लोग जाहिल थे, हम लोग अज्ञानी थे। जब हमें कोई अक्ल नहीं थी। मवेशियों की तरह, पशुओं की तरह रहते थे। हमें धर्म-कर्म का ज्ञान नहीं था। जब हमें साहित्य का कोई ज्ञान नहीं था। तब, हे विक्रमादित्य! तू सूर्य की तरह चमकता था हिंद में। तुमने हमारी भलाई के लिये बड़े-बड़े विद्वान् हमारे देश में भेजे थे जिन्होंने हमें गणित सिखाया, ज्योतिष सिखाया। जिन्होंने हमें अदब सिखाया अर्थात् कविता सिखायी। जिन्होंने हमें औषध विज्ञान, दवा-दारू की हिकमत का काम सिखाया। ये सब चीजें हमने हिन्दुस्तान से सीखी हैं। यह आपकी बरकत है आप इतने उदार थे। आपने हम जाहिलों को, हम बिल्कुल गिरे हुए, पशुतुल्य जीवन जीने वालों को आपने इस तरह से उठाकर हमें योग्य बनाया। ये श्रद्धा के फूल अरबी कविता में विक्रमादित्य के प्रति अभी भी मिलते हैं।

इसी तरीके से तिब्बत में विक्रमादित्य की स्तुतियाँ, चीन में विक्रमादित्य की स्तुतियाँ। ईरान में एक पुस्तक है 'अराजीबोजी'। अराजीबोजी क्या है? अराजीबोजी है 'अराज' राजा भोज की कथाएं। उसमें राजा भोज की और विक्रमादित्य की कथाएं हैं। वह पुस्तक इतनी प्रचलित है जो भी हिन्दुस्तान से व्यक्ति जाता है उससे कहते हैं विक्रमादित्य की कथा बताओ। विक्रमादित्य की कहानियाँ बताओ। विक्रमादित्य की कहानी की किताब दो। इतना विक्रमादित्य का यश पूरे एशिया में फैला हुआ। उस विक्रमादित्य का स्मरण आज के पुनीत दिन पर हम करते हैं।

अलबेरूनी और भारत

महमूद गजनवी भारत में अपने साथ बुखारा के राजकुमार अलबेरूनी को कैद करके लाया था। अलबेरूनी का यहां के हिन्दू विद्वानों से गहरा लगाव था। उसने महमूद गजनवी की कैद में रह कर ही युद्धकाल में बड़ी कठिनाई से संस्कृत, ज्योतिष, गणित आदि पढ़े। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारत' (जो तात्कालिक हिन्दुस्तान का चित्र है।) में उसने भगवद्गीता के कई श्लोक उद्धृत किए हैं। उसने गीता को आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ी उच्चकोटि की पवित्र पुस्तक बताया।

जहां महमूद गजनवी जो सिर्फ इस देश को तबाह-बरबाद करने और लूटने में ही इसलाम की सेवा समझता था, वहीं अलबेरूनी एक खोजी लेखक था जो महमूद गजनवी के साथ ही आया था। पर उसने यहां के एक बच्चे तक को न सताया वरन् जो कुछ वह अपने जीवन में सीख सकता था, उसकी शिक्षा ली और भारतवर्ष पर पुस्तक लिख डाली।

यह भली-भांति स्पष्ट है कि एक अध्याय जिसकी शुरुआत पाश्चात्य थी, यदि उसका अंत मानव जाति के आत्मसंहार में नहीं होना है तो समापन भारतीय होगा। मानव इतिहास के इस सबसे अधिक खतरनाक क्षण में मानव जाति की मुक्ति का यदि कोई रास्ता है, तो वह भारतीय है। चक्रवर्ती अशोक और महात्मा गांधी का अहिंसा का सिद्धान्त और श्रीरामकृष्ण परमहंस के धार्मिक सहिष्णुता के उपदेश ही मानव जाति को बचा सकते हैं। यहां हमारे पास एक ऐसी मनोवृत्ति व भावना है जो मानव जाति को एक परिवार के रूप में विकसित होने में सहायक हो सकती है। आज अणु युग में विनाश का यही विकल्प है।

—ब्रिटिश इतिहासकार आर्नोल्ड टायनबी

जब नानक ने भारत की दुर्दशा पर आंसू बहाए

प्रायः मुगल काल को मुसलमानी राज्य का स्वर्ण काल माना जाता है। किन्तु भारत के निर्लिप्त सन्तों ने उसका जो चित्र प्रस्तुत किया है, उसका दर्शन कर हृदय दहल उठता है। उन सन्तों को किसी से ईर्ष्या-द्वेष नहीं था। अतः उन ब्रह्मज्ञानी सन्तों-महात्माओं की साक्षी सभी अन्य तथाकथित इतिहासों के प्रमाण से भी अधिक प्रामाणिक है। वास्तव में देखने की आंख उन्हें ही मिली है जो तथ्यों को देख कर उनका निर्भीकता से वर्णन कर सकते हैं। वे सच्चे साक्षी (आंख वाले) माने जा सकते हैं।

मध्यकाल में जाति को संकट सागर से उबारने के लिए जिन महान् विभूतियों का आविर्भाव हुआ उनमें पुण्यश्लोक गुरु नानकदेवजी का नाम सर्वाधिक पूज्य नामावली में अर्चना करने योग्य है। पंजाब वेदों, उपनिषदों एवं गीता की धरती है। उत्थान एवं पतन के भीषण भाग्यचक्र के पश्चात् पुनः वेद एवं गीता की उस धरती पर वेद के शाश्वत संदेश को लोकभाषा में गाने हेतु वेदी कुल में ही एक महान् संत का आविर्भाव हुआ। वह धरती उन पुण्यश्लोक संत गुरुनानक के चरणों को चूम कर पुनः धन्य हो उठी।

वेदी कुल

पंजाब का वेदी वंश भगवान् रामचन्द्रजी महाराज की परम्परा में आने वाले सूर्यवंशी क्षत्रियों का ही एक कुल था। गुरु नानकदेवजी के सुपुत्र बाबा श्रीचन्दजी जब अकबर के विरुद्ध 25 वर्षों तक संघर्ष करने वाले वनवासी राणाप्रताप से मिलने मेवाड़ में गए तो महाराणा प्रताप का नैतिक बल बढ़ाते हुए उन्होंने प्रताप का प्रेम से आलिंगन किया तथा बताया कि हम दोनों रघुकुल गौरव रामचन्द्र महाराज की संतति होने के कारण भाई-भाई हैं। उन्होंने वंश का संक्षिप्त इतिहास भी बताया। जब लव और कुश की सन्तानों को किसी राजनीतिक उथल-पुथल में लाहौर (लवपुर) त्यागना पड़ा तो एक शाखा नेपाल चली गई जो आज तक वहाँ राज करती है। दूसरी शाखा राजस्थान में चली आई और राज करने लगी। उन्हीं सूर्यवंशियों की परम्परा में बप्पा रावल, राणा सांगा, राणा प्रताप इत्यादि हुए थे।

इन्हीं सूर्यवंशी क्षत्रियों की एक तीसरी शाखा काशी की ओर चली गई तथा वहाँ वेद शास्त्र इत्यादि का ज्ञान प्राप्त कर वेदी कहलायी। उसी वेदी कुल में ही गुरु नानकदेवजी का जन्म हुआ था।

कार्तिक शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक काम, क्रोधादि पांच शत्रुओं के नाश के लिए व्रत धारण किया जाता है। इन्हीं दिनों भीष्म पितामह ने शरशय्या से धर्मोपदेश किया था। भगवान् शंकर ने त्रिपुरासुर का वध किया था और इसी दिन पृथ्वी के नेत्र पुष्करराज में महान् मेला लगता है—इत्यादि अनेक विशेषताओं के साथ इसका सम्बन्ध है।

उक्त घटनाओं से इस आश्रम का सम्बन्ध होने से आश्रम की तथा इसकी महत्ता और भी विकसित होकर भारतीय जनता को त्याग, तपस्या, सेवा धर्म, अहिंसा तथा योगविद्या का संदेश दे रही है।

देश का राजनीतिक चित्र

गुरु नानक एक महान् संत थे। उनका प्रत्यक्ष की राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था। उनके अपने दो शिष्यों—बाला एवं मरदाना में से एक मुसलमान था। उनकी अपनी ही प्रसिद्ध उक्ति है।

प्रथमहिं अल्ला नूर उपाया, कुदरत दे सब बन्दे।
एक नूर ते सब जग उपजया, कौन भले कौन मन्दे।

इसलिए ऐसे महान् सन्त का किसी से कोई द्वेष नहीं हो सकता। पर उस युग में कुछ ऐसी भीषण राजनीतिक आपदाएं आईं जिन को ब्रह्मज्ञानी गुरु नानक भी आंख से ओझल नहीं कर सके। वे स्वयं कहते हैं—

कलि काती राजे कसाई, धरम पंख कर उडरिया।
कूड अमावस सच्च चन्द्रमा, दीसे नांहि के चढ़िया।।

अर्थात् कलियुग का यह काल छुरे के समान तीक्ष्ण है, राजा कसाई बन गए हैं, धर्म पंख लगा कर उड़ गया है अर्थात् सब ओर अधर्म का ही बोल-बाला है। झूठ की काली अमावस्या की रात है। जिसमें सचाई का चन्द्रमा कहीं भी उदित दिखायी नहीं देता।

हऊ भालि बिकनी होई, अन्धेरे राह न कोई।
बिच हउमैं दुःख रोई, कहू नानक किस विध गति होई।।

गुरु नानक कहते हैं, मैंने बहुत ढूंढ़ा, खोजा किन्तु सब तरफ पाप का अन्धेरा छाया हुआ है, उसमें कोई धर्म की राह दिखायी नहीं देती। अहंकार में सारा जग दुःख पा रहा है। हाय, इस संकट से मुक्ति कैसे होगी?

यह बाबर के आक्रमण काल का चित्र है—

पाप की जंझ ले काबलो धाया, जोरी मंगै दान वे लालो।
सरम धरम दोए छप्प खलोए, कूड फिरै परधान वे लालो।।

वह क्रूर आक्रमणकारी बाबर अपने साथ पाप की सेना लेकर काबुल से भारत पर चढ़ आया। वह बलात्कार से धन-सम्पत्ति मांगता है। शर्म (लोक-लज्जा) और धर्म, दोनों भाग कर छिप गए हैं। अर्थात् उस अत्याचारी के सामने शर्म और धर्म को भी लज्जा आती है। सब तरफ झूठ एवं पाप ही प्रधान है।

गुरु नानक के थोड़े काल बाद गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा था—'नृप पाप परायण धर्म नहीं, करि दण्ड विडम्ब प्रजा नितहिं।' गुरु नानक ने मुगल राजाओं को कसाई कहा तो तुलसी ने उन्हें चोर कहा—

वेद धर्म दूरि गये। भूमि भूप चोर भये।

गुरु नानक ने जनता की दुरवस्था का चित्र बड़ा मार्मिक खींचा है—

राजे शींह, मुकद्दम कुत्ते। जाए जगाइन बैठे सुत्ते।

सोयी हुई या निश्चिंत बैठी हुई निरीह, निरपराध जनता पर मुगल राजे भूखे शेर के समान टूट पड़ते थे और उनके मुकद्दम शिकारी कुत्तों के समान शिकार में उनकी मदद करते थे।

नारी की बड़ी दुर्दशा की गई—

जिन सिर सोहन पट्टियां, मांगी पाए सिन्धूर,
से सिर काती मुन्नियन, गल विच आवे धूड़।

जिन भारतीय महिलाओं (हमारी माँ-बहिनों) के सिर में सुन्दर बालों की पट्टियाँ शोभा पाती थीं और उनकी मांग में सौभाग्य सूचक सिन्दूर शोभित होता था, उन्हीं देवियों के शीशों को कृपाण की धार से मूंड डाला गया है तथा उनके गले में धूल झोंक दी गई है।

यह रक्त के आंसू लाने वाला चित्र और भी कितना भयंकर है—

दूतां नूं फरमाया, लै चलै पत गंवाए,
बाबर वाणी फिर गई, कोयर न रोटी खाए।

भारत में मुगलों के अत्याचारी शासन के मूल संस्थापक नर-पिशाच बाबर ने अपने दूतों को कहा कि इन नारियों की पत छीन कर इनका सौभाग्य लूट कर ले जाओ। उस बाबर ने ऐसी घोषणा कर दी। तब किसी कुंवर (राजकुमार) को रोटी नसीब नहीं होती थी।

मुक्ति की आशा

देश का यह चित्र देख कर गुरु नानक रो उठे। पर वे निराश नहीं हुए। उन्हें अपनी महान् आत्मा तथा देश की आत्मा का बड़ा विश्वास था। उसी अदम्य आत्म-विश्वास के भरोसे वे निहत्थे संत ही ललकार उठे—

कीड़ा थाम देवे पातशाही।

लश्कर करे स्वाह।

एक तुच्छ से तुच्छ बालक भी एक पूरी बादशाही को थाम सकता है और सारे लश्कर को स्वाह कर सकता है! इससे दुर्बल से दुर्बल व्यक्ति का भी छिपा हुआ आत्मबल जाग सकता है। जातियाँ इसी आत्म-विश्वास के सहारे जीवित रहती हैं। दशम गुरु गोविन्दसिंह ने भी इसी आत्म-विश्वास के सहारे गर्जना की थी—

चिड़ियों से मैं बाज मराऊं,
सवा लाख से एक लड़ाऊं,
तब गुरु गोविन्दसिंह कहाऊं।

गुरु नानक द्वारा प्रदान किए गए नैतिक बल एवं गुरु गोविन्दसिंह द्वारा जाति को धर्म युद्ध के लिए प्रदान की गई चमचमाती खड्ग के संयुक्त सामर्थ्य से ही भीषण अत्याचार का हृदय विदारक चित्र बदला जा सकता है।

15 नवम्बर 1959
'मिलाप' में प्रकाशित

हिन्दू कौन?

केवल तभी तुम वास्तव में हिन्दू कहलाने योग्य होगे जब 'हिन्दू' शब्द को सुनते ही तुम्हारे अन्दर बिजली दौड़ने लग जायेगी। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू कहलाओगे, जब तुम किसी भी प्रान्त के कोई भी भाषा बोलने वाले प्रत्येक हिन्दू-संज्ञक व्यक्ति को एकदम अपना सगा और स्नेही समझने लगोगे। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू माने जाओगे जब किसी भी हिन्दू कहलाने वाले का दुःख तुम्हारे हृदय में तीर की तरह आकर चुभेगा मानो तुम्हारा अपना ही लड़का विपत्ति में पड़ गया हो, केवल तभी तुम यथार्थतः 'हिन्दू' नाम के योग्य होगे, जब तुम उनके लिये समस्त अत्याचार और उत्पीड़न सहने के लिये तैयार रहोगे।

—स्वामी विवेकानन्द

राणा प्रताप को नैतिक बल प्रदान करने वाले सन्त श्रीचन्द्र

सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक देव के ज्येष्ठ पुत्र, उदासीन सम्प्रदाय के महान् सन्त पुण्यश्लोक श्री श्रीचन्द्राचार्यजी का जन्म भाद्रपद मास की शुक्ला नवमी के दिन संवत् 1561 में हुआ था। इन चमत्कारी सन्त ने पेशावर, काबुल, कंधार, सिंध और पंजाब में स्मार्त वैदिक धर्म का प्रचार किया। जनता को शासन के अत्याचार से बचाया। कहा जाता है कि जब गुरु नानकदेवजी ने गुरु गृह की गद्दी गुरु अंगद देव को दे दी तो श्रीचन्द्रजी ने उपहास में कहा कि 'हुआ क्या यदि गद्दी किसी कोढ़ी कराइ को दे दी हो।' इस बात से ही कहा जाता है कि दूसरी बादशाही से लेकर 5वें गुरु तक सभी गुरुओं की अंगुलियों में कोढ़ के चिह्न पाए जाते थे। गुरु अर्जुन ने श्रीचन्द्रजी से मिलकर यह कोढ़ क्षमा करवाया था। अमृतसर का सरोवर बनाने के पीछे भी बाबा श्रीचन्द्रजी की ही प्रेरणा थी। गुरु अर्जुन देव ने जब तरनतारन का सरोवर बनवाया तो बार-बार उसका पानी बह जाता था। कहा जाता है कि बाबा श्रीचन्द्रजी ने उसे एक बावली से मटका भरकर वहाँ ले जाने को कहा तब कहीं सरोवर का पानी ठहरा। श्रीचन्द्रजी के जीवन की एक घटना जो प्रायः इतिहास के प्रकाश में अभी तक नहीं आयी, वह है—उनकी महाराणा प्रताप से भेंट। उन दिनों मेवाड़ केसरी वन-वन घूम रहे थे। श्रीचन्द्रजी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिया। प्रातःकाल महाराणा प्रताप उनसे मिलने के लिए गए। श्रीचन्द्रजी ने प्रताप को नैतिक बल दिया तथा कहा कि जीत या हार तो सदा प्रभु के हाथ में है किन्तु धर्म के लिए युद्ध करने वाले पर ईश्वरीय आशीर्वादों की वृष्टि होती है। उन्होंने प्रताप को यह भी बताया कि प्रताप और वे (श्रीचन्द्रजी)—दोनों रघुकुल-गौरव रामचन्द्र महाराज की सन्तान हैं। लव और कुश की सन्तान ने जब लाहौर से प्रस्थान किया तो कुछ सन्तानें नेपाल में जा बसीं, कुछ राजपूताने में और कुछ काशी में जाकर वेद पढ़ने से वेदी कहलायीं। श्रीचन्द्रजी ने प्रताप को बताया कि आप राजस्थान के सूर्यवंशी राजा हैं और हम वेदाध्ययन के कारण वेदी कहलाने वाले सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। दोनों भगवान् राम की सन्तानें हैं और भाई-भाई हैं। इससे प्रताप का नैतिक बल बढ़ा और वह श्रीचन्द्रजी के प्रेम से गद्गद हो गये। कहा जाता है कि भामाशाह को प्रताप की सहायता के लिए सर्वस्व अर्पण करने की प्रेरणा देने वाले भी महान् सन्त बाबा श्रीचन्द्र ही थे।

भारत माता के अमर सपूत स्वातंत्र्य-गौरव महाराणा प्रताप

सूरमाओं के देश राजस्थान का स्मरण होते ही आँखों के सामने जलती बालू वाले महामरुस्थल का चित्र आ जाता है। लगभग डेढ़ लाख वर्गमील में फैली हुई तप्त रेत और नाचती मरीचिका में पौरुष भरी लच्छेदार मूँछों वाले, बहादुरी में शेरों को शरमाने वाले वीर शिरोमणि पैदा हुए। राजपूत साक्षात् फौलाद, पिघला तो पानी, जमा तो वज्र।

चप्पे-चप्पे में पानीपत, कण-कण में बलिदान तथा जर्रे-जर्रे में जौहर की गूंज लिए, राजस्थान अपने शौर्य का आप ही स्मारक बना हुआ है। उसके मध्य में चित्तौड़, विंध्याचल की भुजा, पारियात्र की शक्ति का प्रतीक अरावली माथे के तिलक के समान अपने हृदय में स्वातंत्र्य सदाबहार स्मृतियों को संजोये हुए खड़ा है। स्वातंत्र्य के इस मन्दिर को वीरों ने अपने हृदय रक्त से सींचा है और वीरांगनाओं ने अपने सुहाग सिन्दूर से संवारा है।

धन्य है राजस्थान, सौ बार धन्य है मेवाड़, हजार बार धन्य है अरियों के चित्त को तोड़ देने वाला चित्तौड़ दुर्ग, लाख बार धन्य है वहाँ का सिसोदिया वंश जिस का यश बाप्पा रावल, रावल खमान, समर सिंह, रानी पद्मिनी, राणा सांगा इत्यादि के पावन चरित्रों में आज तक गूंजता है, पर कोटिशः धन्य है बाप्पा रावल के कुल की अक्षुण्ण कीर्ति की उज्ज्वल पताका, रजपूती आन एवं शौर्य का पुण्य प्रतीक, महाराणा सांगा का पावन पौत्र, स्वातंत्र्य की ज्वाला पर सर्वस्व समर्पण करने वाला मेवाड़ का सिंह महाराणा प्रताप, जिन का ज्योतिर्मय बलिदान युगों तक मानवता को मुक्ति का उज्ज्वल पथ दिखाता रहेगा। कविवर जयशंकर प्रसाद ने उस वीरवर के यश में गाया है—

कहो कौन है? आर्यजाति के तेज सा,
देश भक्त जननी का सच्चा पुत्र है।
भारतवासी! नाम बताना पड़ेगा।

मसि मुख में ले अहो!
लेखनी क्या लिखे!
उस पवित्र प्रातः
स्मरणीय सुनाम को।
नहीं, नहीं, होगी
पवित्र यह लेखनी,
लिख कर स्वर्णाक्षर
में नाम 'प्रताप' का।
तुम अपने प्रताप को
विस्मृत हो गए।
अरे कृतघ्न बनो मत
उस को भूल के।
यह महत्त्व मय नाम
स्मरण करते रहो।

यह तो आधुनिक काल के कवि की श्रद्धांजलि हुई। स्वयं प्रताप के युग में अकबर के नवरत्नों में सर्वमान्य, अकबर के संरक्षक बैरमखान के पुत्र, स्वयं अकबर की सेनाओं के सेनापति खानखाना अब्दुर्रहीम, जो अरबी, फारसी, हिन्दी और संस्कृत भाषा के अच्छे ज्ञाता थे, उन्होंने स्वयं अकबर का सेनापति होते हुए स्वातंत्र्य गौरव महाराणा प्रताप के यश में लिखा—

धर्म रहसि रहसि धरा, खिस जासी खुरसाण,
अमर विसंभर ऊपरे रखियो निहचो राण।

अर्थात्, हे राणा, धर्म सदा धरती पर रहेगा और धर्म के कारण धरती भी टिकी रहेगी लेकिन खुरसाण (मुगल) वंश का राज्य सदा रहने वाला नहीं है, यह नष्ट हो जायेगा। इसलिए हे महाराणा! अमर विश्वंभर महादेव पर अपना निश्चय दृढ़ रख कर धर्म के लिए युद्ध करते जाओ।

इस श्रद्धांजलि से प्रताप का सच्चा गौरव प्रकट होता है, जब शत्रु का सेनापति उसका यश गाता है। स्वयं अकबर के दरबार में बैठा हुआ कवि पृथ्वीराज भी इस वीर व्रती महापुरुष का यश गाता रहता था।

अकबर को हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतीक मान कर उसे महान् कहने वाले तो इतना तक कह छोड़ते हैं कि 16वीं शती में अकबर ने वही काम किया जो महात्मा गांधी ने 20वीं शती में किया। इन भोले बन्धुओं को यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि नौरोज के मेले में पाप कानन के पुजारी अकबर को धड़ाम से नीचे

गिराकर उसकी छाती पर कटार तानने वाली वीर रजपूतिन किरणमयी का हृदय अकबर का रोना सुनकर द्रवित न हो गया होता तो भारतवर्ष का इतिहास ही कुछ और होता। अकबर की कूटनीति तो इतिहासकार बदायूनी आसफ खां के निम्न शब्दों से प्रकट हो जाती है—

'किसी की ओर के सैनिक क्यों न मरे, थे वे हिन्दू ही और प्रत्येक स्थिति में विजय इसलाम की ही थी।'

उस धूर्त धर्म-शत्रु के विरुद्ध गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक धर्म क्रान्ति जगायी तथा महाराणा प्रताप ने एक राष्ट्रीय संघर्ष प्रारम्भ किया। 25 वर्ष तक वन-वन की खाक छानते फिरना, पत्थर की शिलाओं पर सोना, घास-पात की रोटियाँ और शीत, घाम, वर्षा, सूखा सभी कुछ सहते हुए भी भारत माँ की अर्चना में कोई अन्तर न आना—किस महापुरुष ने इतना बड़ा बलिदान किया है? राजस्थान के लोक गीतों में आज तक वहाँ की भोली-भाली रमणियाँ गाती हैं—

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राणा प्रताप,
अकबर सूतो ओधकै, जाण सिराणै सांप।

'हे माँ! तू ऐसा पुत्र पैदा कर जैसा महाराणा प्रताप, जिसके पराक्रम से भयभीत हुआ वह पापी अकबर भी रात्रि के समय घबरा कर उठ खड़ा होता है, जैसे उसके तकिए के नीचे कोई सांप हो।'

मेवाड़ के कण-कण में जिस का यश अंकित है और कोटि-कोटि भारतवासियों के हृदय मन्दिर में जिसकी भव्य स्वातन्त्र्य मूर्ति प्रस्थापित हो चुकी है उस कोटिशः वंदित वीर-कुल भाल तिलक महाराणा प्रताप को हमारी कोटि-कोटि हृदयांजलियाँ सादर समर्पित हैं।

1 अगस्त, 1958
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

बढ़ती प्रांतीय प्रवृत्ति पर

हे सिंधु पुत्र हिन्दू, बिन्दु के समान जीना छोड़ सिन्धु के समान जी। बूँद-बूँद के सम्मिलन से ही धारा बनती है। किन्तु स्वार्थवश हर बूँद अपना अलग अस्तित्व रखना चाहे तो बूँद का नाश तो होना है, धारा भी सूख जायेगी। इसके विपरीत बिन्दु अपने को सिंधु में ही विलीन रखे तो धारा भी प्रवाहित रहती है और धारा रूप से उसका अस्तित्व भी बना रहता है। सिन्धु संस्कृति की धारा में हम भी अलग-अलग वर्ण, भाषा, सम्प्रदाय रूप से बिन्दु सदृश ही हैं।

—डॉ. ओबराय

देश गौरव महाराणा प्रताप और कविवर रहीम

प्रातः स्मरणीय हिन्दूपति, वीर शिरोमणि, महाराणा प्रताप का नाम भारत के इतिहास में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं गौरवास्पद है। वे स्वदेशाभिमानी, कुशल राजनीतिज्ञ, रण कुशल, स्वार्थ त्यागी, दृढ़ प्रतिज्ञ तथा सच्चे क्षत्रिय थे। स्वदेश प्रेम, स्वतन्त्रता एवं स्वाभिमान उनमें कूट-कूट कर भरे थे। वे झुकना नहीं जानते थे। वे अकेले राजपूत थे जिन्होंने अकबर का दासत्व स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अकेले ही मुगलपति अकबर की प्रलोभन देकर राजपूत राजाओं को सेवक बनाने वाली कूटनीति का मुँह-तोड़ उत्तर दिया। शहँशाह अकबर ने इस वीर को अनेकों प्रलोभन दिए पर रजपूती आन का पक्का वह सम्राट्, हिन्दुत्व का वह गौरवमय सूर्य सदा अडिग रहा।

अद्‌भुत शौर्य एवं स्वाभिमान का वर्णन सुनकर अकबर का सेनापति मानसिंह प्रताप से मिलने आया। एक झील के किनारे भोजनशाला बनायी। राजकुंवर अमरसिंह आयोजन के लिए नियुक्त हुआ। भोजन आरम्भ हुआ। महाराणा की अनुपस्थिति पर मानसिंह ने कारण पूछा तो कुंवर अमरसिंह का उत्तर था—'पिताजी को शिरवेदना है अतः वे आने में असमर्थ हैं।' मानसिंह को बात समझते देर न लगी। बोला—'अब इस सिरदर्द की दवा लेकर ही लौटूंगा।' इतने में राजस्थान केशरी बाहर निकले और मूँछों पर ताव देते हुए बोले—मैं उस व्यक्ति के साथ बैठकर कैसे भोजन कर सकता हूँ जो राजपूती शान से गिर कर यवनों का समधी बन गया है। अपनी बहिन-बेटियों की डोली भेजकर, बप्पा रावल के वंशज के साथ भोजन करना चाहता है।

सचमुच मानसिंह दवा लेकर हल्दीघाटी में आ पहुँचा। पर उस प्रताप पुंज के सम्मुख अधिक टिक न सका। हल्दीघाटी में घमासान युद्ध हुआ। एक ओर एक लाख यवन और वे भी असीमित गोला-बारूद सहित और दूसरी ओर केवल 22,000 हिन्दू योद्धा जिनके हाथों में बरछी, भाले, बाण सुशोभित थे।

अनेकों वीर हँसते-हँसते मातृवेदी पर बलिदान हो गए। नित्य प्रति एक से बढ़कर एक वीर नायक के नेतृत्व में मुगल सेना नई युद्ध सामग्री लेकर आयी पर

देशधर्म पर मरने वाले राजपूत वीरों ने धन के लिए लड़ने वाले कायर यवनों के छक्के छुड़ा दिये।

प्रताप के पास अब केवल 8,000 वीर बचे थे। शेष सभी की स्वातन्त्र्य यज्ञ में आहुति हो गई थी। दिन का तीसरा प्रहर था। प्रताप कई घन्टों से निरन्तर अरिदल का शिरछेदन कर अपने खड्ग की पिपासा शान्त कर रहे थे। वे कुछ थक गए थे। अब भी उनकी अर्धचन्द्रिका पलभर का भी विश्राम न करती थी। प्रताप वार पर वार किए जा रहे थे। सहसा यवनों की एक बड़ी टुकड़ी ने हिन्दूकुलपति महाराणा को घेर लिया। स्वामी को विपत्ति में लख महाराणा प्रताप के एक अभिन्न सरदार झालापति ने कहा, 'स्वामी! आप प्राण रक्षा कीजिए। आपके मेवाड़ में न रहने से हिन्दू जाति का दीपक सदा के लिए बुझ जाएगा। आप शीघ्रता कीजिए और इस संकट से अपने को मुक्त कीजिए।' प्रताप बोले, 'मैं कायर की मौत नहीं मरना चाहता, मातृ भूमि की रक्षा के लिए मैं प्राण-पण लगा दूंगा।' अब झालापति ने एक और युक्ति लगायी। बोले—महाराणा! आप कृपया मुझे अपना ताज पहनने का सौभाग्य प्रदान कीजिए। प्रताप बोले, 'क्यों नहीं, जब मातृभूमि के लिए सारा राज्य न्योछावर कर दिया है तो मुकुट की क्या बात है।' वह स्वर्णरत्न जड़ित किरीट अब झालापति के सिर पर सुशोभित था। उन्होंने झट अपनी तलवार से चेतक की पूँछ काट दी। महाराणा प्रताप का प्यारा चेतक व्यथा से पीड़ित हो युद्धक्षेत्र से बाहर भागा।

इधर झाला के सिर पर प्रताप का ताज देख मुगल सैनिक उसे ही प्रताप समझ कर उस पर टूट पड़े। कुछ काल तक शत्रुओं का सामना करने के पश्चात् भारत माँ के इस सपूत ने स्वामी और देश की रक्षा के लिए वह अनोखा बलिदान दिया जिसे इतिहास सदा स्मरण रखेगा।

स्वामीभक्तों एवं दानवीरों की नामावली में दूसरा नाम महाराणा के प्रिय मित्र एवं परम उदार मंत्री भामाशाह का है, जिसने ऐसे संकट में, जबकि हिन्दू गौरव दीप प्रायः बुझा जा रहा था, महाराणा प्रताप की, अपने अनेकों पूर्वजों द्वारा संग्रहित अपार धनराशि से सहायता की। हिन्दूकुलपति महाराणा प्रताप के पास सम्पूर्ण धन-दौलत एवं सैनिक सामग्री समाप्त हो चुकी थी। उन्होंने अपनी प्यारी मातृभूमि चित्तौड़ को छोड़कर अन्यत्र जीवन यापन करने का निश्चय कर लिया था। वे अपने सभी साथियों एवं सरदारों सहित अपनी जननी, जन्मभूमि छोड़कर जा रहे थे। वे एक बार रुके, अश्रु विगलित नेत्रों से मेवाड़ को देखा, मन ही मन में प्रणाम किया और फिर बढ़ चले। तभी उन्हें पीछे से आवाज सुनायीं दी। भामाशाह पुकार कर कह रहा था 'ओ मेवाड़पति, हिन्दू नाम के आश्रयदाता, तनिक ठहरो, इस दास की एक विनती सुनते जाओ।' पास आने पर वह महाराणा के चरणों पर

गिर पड़ा और बोला, 'धर्मावतार, मेरी एक प्रार्थना स्वीकार हो। एक बार फिर मेवाड़ की ओर घोड़े की बाग मोड़ी जाए। इस दास के पास जो पचीसों लाख रुपये की सम्पत्ति दरबार की दी हुई पड़ी है, उसी से एक बार फिर सेना एकत्र की जाए और मेवाड़ के उद्धार का उद्योग किया जाय।'

भामाशाह का कथन सुनकर प्रताप गद्‌गद हो गए और भामाशाह को गले लगा लिया, बोले—'तुम धन्य हो। तुम्हारा त्याग अविस्मरणीय है।'

प्रताप अपने मंत्री के आग्रह से एक बार फिर मेवाड़ लौट पड़े और उस पुण्य राशि से मेवाड़ का पुनरुद्धार किया।

देश एवं जाति पर तन-मन एवं धन अर्पण करने वाले इन वीरों के उज्ज्वल नाम इतिहास पटल पर सदा स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेंगे।

एक बार बादशाह अकबर ने रहीम की परीक्षा लेने के लिए उसको राणा प्रताप के विरुद्ध युद्ध करने भेज दिया। जिस प्रकार भीष्म पितामह पाण्डवों की विजय कामना करते किन्तु, कौरवों के सेनापति होकर वीरता के साथ युद्ध भी करते थे। उसी प्रकार रहीम भी मन से प्रताप की विजय चाहता था। पर बहादुर की तरह मुगल सेनापति होकर राजपूत सैन्य को गाजर-मूली की तरह काटता था।

भीलों ने प्रताप के पक्ष में युद्ध किया था। वे लोग मुगलों की कुछ बेगमों को उठा लाए राणा प्रताप के पास। उन्होंने कहा, मुगल लोग हमारी मां-बहनों, बेटियों को उठाकर ले जाते हैं इसलिए हम भी उनकी मां-बहनों को उठाकर ले आये हैं। प्रताप ने कहा, अरे! जंगली मूर्ख दल। तुम लोगों ने यह क्या सर्वनाश किया। रणक्षेत्र में तो हम जीते किन्तु चरित्र के क्षेत्र में तो हम हार गए! तुम लोग महिलाओं को क्यों उठा लाए? मर्द तो मर्द के साथ युद्ध करते हैं, स्त्रियों को स्पर्श करने की क्या आवश्यकता थी। इसके पश्चात् प्रताप ने जाकर बेगमों को प्रणाम करते हुए कहा, जो मस्तक कभी अकबर और मुगलों के सामने नहीं झुका वह आज क्षमायाचना के साथ झुक रहा है। फिर उन सबको पुरस्कृत एवं अलंकृत किया और सम्मान के साथ उनको उनके पतियों के पास भेज दिया।

उन बेगमों ने कहा—हम लोगों ने सुना है कोई पैगम्बर, मसीहा या खुदा का प्रेरित दूत संसार में आता है। किन्तु हम लोगों ने उसको देखा नहीं था। हां, आज के प्रतापजी को हमने प्रत्यक्ष देखा है। आप सचमुच के देवदूत हैं। आज हम समझ सके कि मनुष्य किस प्रकार से फरिश्ता (देवदूत) होकर रहता है।

बेगमों के ससम्मान वापस जाने पर रहीम ने राणा प्रताप को लिखकर भेजा—

धर्म रहसि रहसि धरा, खिस जासी खुरसाण,
अमर विश्वम्भर ऊपरे, रखियो निहचो राण।

हे राणा प्रताप! धर्म रहेगा तो धरा भी रहेगी, यह खुरसाण (मुगल) तो नष्ट हो जाने वाला है। इसलिए अमर विश्वम्भर भगवान् महादेव पर अपना दृढ़ निश्चय रखकर संघर्ष करते जाओ।

आज प्रश्न उठता है कि भारत के मुसलमानों की समस्या का क्या हल है? क्या रहीम ने मार्गदर्शन नहीं किया? यदि भारत के मुसलमान मुसलमान रहते हुए भी रहीम तथा रसखान के समान भारत एवं भारतीयता के भक्त रहते तो क्या भारत माता खण्डित हो पाती?

यदि हम पुनः रहीम-रसखान के जीवन से आलोक लेकर कर्तव्यपथ का निर्धारण कर सकें तो खण्डित देश के पुनः अखण्ड होने की उज्ज्वल आशा भारत के भाग्यक्षितिज पर मुसकराने लगे।

राम-कृष्ण की भक्ति से हम कभी विचलित नहीं होने देंगे क्योंकि इस देश के राष्ट्रीय महापुरुष यही हैं। इस देश के निर्माता राम-कृष्ण हैं। इसलिए मैं कहता हूं राम-कृष्ण के प्रति भक्ति राष्ट्रीयता की प्रथम कसौटी है। जो यहां का नागरिक है उसे राम-कृष्ण के प्रति राष्ट्रीय स्तर पर भक्ति रखनी चाहिए। व्यक्तिगत भक्ति, व्यक्तिगत मुक्ति के लिए कुरान पढ़ें, नमाज पढ़ें, हमें कोई आपत्ति नहीं। राष्ट्र के हित से कोई वैर नहीं होना चाहिए। अगर यह होगा तो वह भारत में नागरिक नहीं हो सकता। इसकी चर्चा मैंने इसलिए की कि रहीम एक आदर्श व्यक्ति था। मुसलमान होते हुए भी भारतीय संस्कृति का भक्त था।

9 जून 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

पठान एवं मुस्लिम बन्धु! पाणिनि और यास्क का वंशज है, पर चूंकि वह मुसलमान है, इसलिये वह हिन्दू नहीं है। इनके पूर्वजों ने वैदिक साहित्य के अनमोल अंशों का सम्पादन किया था, परन्तु चूंकि वह मुसलमान है इसलिये उसके लिये वह साहित्य कुफ्र है।

—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

गोस्वामी तुलसीदास का राजनीतिक दर्शन

कोटिशः वन्दित, जनगण पूजित श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी की आध्यात्मिक, साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक देन के विषय में तो विश्वभर के हिन्दी विद्वान् एकमत हैं। साहित्य एवं संस्कृति के सूर्य गोस्वामी तुलसीदास की कुछ राजनीतिक क्षेत्र में भी महान् देन है। इस विषय में अभी बड़े-बड़े इतिहासकार भी संशयग्रस्त हैं।

श्री इन्द्र विद्या वाचस्पति जैसे प्रख्यात लेखक भी समय-असमय लिख बैठते हैं कि तुलसीदास को राजनीति के विषय का कुछ ज्ञान न था। उनके लिए तो 'कोउ नृप होऊ हमहि का हानी।' तुलसी की राजनीतिक बेहोशी का यह चित्र बड़ा अन्यायपूर्ण है।

श्री रामधारी सिंह दिनकर जैसे सुलझे हुए विद्वान् भी इसी भ्रान्ति के शिकार हैं। 'संस्कृति के चार अध्याय' में वे लिखते हैं—

इस काल (भक्ति-काल) में सन्तों और कवियों को यह जानने की तनिक भी उत्सुकता नहीं थी कि देश में राज्य किसका चल रहा है? वे हरि भजन में मस्त हैं और जनता में भक्ति भावना का प्रचार कर रहे हैं। उनमें भक्ति के लिए उत्साह तो है किन्तु विदेशियों को भगाने की तनिक भी चिन्ता नहीं। तुलसीदास और राणा प्रताप कुछ समय के लिए समकालीन थे किन्तु तुलसीदास ने राणा प्रताप का नाम भी सुना था या नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।'

गोस्वामी तुलसीदासजी चाहे प्रत्यक्षतया राजनीति के क्षेत्र में नहीं आए तथा न ही राजनीति उनकी जीवन दिशा थी फिर भी भारतीय जनगण के उस काल में एकमात्र प्राणरक्षक होने के कारण वे राजनीतिक गतिविधियों से पूर्णतया अछूते नहीं रह सकते थे।

भारत का सच्चा इतिहास केवल राजाओं, रानियों, युद्धों और अत्याचारों का किस्सा मात्र नहीं है। जो इतिहास आजकल हमारे बच्चों को इतिहास के नाम पर पढ़ाया जाता है उसमें कुछ विलासी अथवा अत्याचारी राजाओं-रानियों के ही किस्से हैं। इस भारत के इतिहास में हमें भारत के दर्शन बिल्कुल नहीं होते। समाज

की क्या अवस्था थी, यह किंचित् मात्र भी ज्ञात नहीं होता। साहित्य ही समाज का सच्चा दर्पण है। यदि साहित्य सम्राट् तुलसीदास का साहित्य सच्चा साहित्य है तो उसमें भारतीय समाज का चित्र प्रतिबिम्बित है। केवल पहचान की आंख चाहिए। भारत के सांस्कृतिक इतिहास में वह काल एक भीषण संकट बनकर आया था। वैसे तो भारत में पहले ही कई आक्रमणकारी आ चुके थे, किन्तु वे भारतीय समाज में घुल-मिल गए थे। मुस्लिम आक्रमण के साथ भारत की सीमाओं के भीतर पहली बार ऐसे लोग आकर बसने लगे थे, जो आचार, विचार, धार्मिक आस्था तथा सांस्कृतिक आदर्श—सभी में भारतीय समाज से भिन्न थे तथा जो न अपनी भिन्नता को त्यागने के लिए राजी थे और न ही भारतीयों को स्वयं अपनी भिन्नता को रखते हुए अपने आचार धर्म पर चलने की छूट तक देने के लिए तैयार थे, वरन् वे तो इस धरती का खाते-पीते, किसी अन्य देश तथा धर्म में आस्था रखते हुए इस धरती के बेटों को भी तलवार की नोक से अपने धर्म और संस्कृति का गुलाम बनाने के लिए कटिबद्ध थे। गोस्वामी तुलसीदास ने दूरदर्शिता से देख लिया कि हिन्दुत्व का नाश होने से भारतीयता का नाश हो जाएगा और भारत का नाश होने से विश्व मानवता का विनाश हो जाएगा।

रक्त की वर्षा

गुरु नानकदेवजी गोस्वामी तुलसीदास के पूर्वगामी थे तथा कुछ वर्षों के लिए उनके समकालीन भी माने जाते हैं, उन्होंने अपनी वाणी में उस युग के भयानक चित्र का संकेत दिया है—

कलि काली, राजे कसाई, धर्म पंख धरि उड़ि रह्या।
कूड़ अमावस सच चन्द्रमा, दीसे नहीं कहीं चढ़्या।।

अर्थात्, जहाँ युग छुरे की धार है, राजे कसाई हैं, धर्म उड़ गया है और झूठ की काली अमावस में सत्य का चन्द्रमा कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता, वहाँ जनसाधारण की कितनी दुर्गति होती होगी? गुरु नानक लिखते हैं कि 'हत्या के गीत गाए जाते हैं। केसर के स्थान पर रक्त की वर्षा होती है। साक्षात् मौत ने ही बाबर के रूप में भारत पर आक्रमण किया। यह घोर कलियुग है, सत्य बोलने वालों को सताया जाता है और भगवान् का नाम लेने वालों को समाप्त कर दिया जाता है।'

प्रसिद्ध यूरोपीय इतिहासकार डॉ. फर्कुहर ने लिखा है कि 16वीं सदी में हजारों सशस्त्र मुस्लिम फकीर घूमा-फिरा करते थे। वे युद्धों में भी भाग लेते थे। जब युद्ध नहीं होते तो वे अपने धार्मिक जोश में हिन्दू संन्यासियों के मठों पर हल्ला बोल देते थे और उन्हें कत्ल कर देते थे। काशी के प्रसिद्ध धर्मगुरु स्वामी मधुसूदन सरस्वती ने इस बारे में अकबर से शिकायत भी की थी।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने लगभग सवा सदी के लम्बे जीवनकाल में आगरा तथा दिल्ली के सिंहासन पर लगभग छः शासकों का शासन देख लिया था।

बचपन में उन्होंने वीर राणा सांगा की मृत्यु देखी। बाबर और हिमाँयु का राज्यकाल अपनी युवावस्था में देखा। बाद में उन्होंने शेरशाह और अकबर का शासन देखा और वृद्धावस्था में जहाँगीर और शाहजहाँ का राज्यकाल भी देखा और उनके अत्याचारों को भी देखा। और विशेषकर अकबर की कूटनीति को भी देखा। वह साम, दाम, दण्ड, भेद के द्वारा राजपूत समाज को अपना वशवर्ती बना रहा था। वे दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो कहने में ही अपना आत्महित तथा अपनी विद्या-बुद्धि की सार्थकता समझने लगे थे। ऐसी भयावह स्थिति में गोस्वामी तुलसीदास एक आशा की किरण के रूप में उभरे। और रामराज्य का आदर्श समाज के सामने रखा।

आर्थिक दुर्दशा

गोस्वामीजी ने 'कवितावली' में उस काल की आर्थिक दशा का हृदय विदारक चित्र खींचा है—

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भली,
वनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविकाविहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों, कहाँ जाई का करी?
दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबंधु!
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी।

अर्थात् किसान को खेती नहीं थी, नौकर को नौकरी नहीं मिलती थी, भिखारी को भीख नहीं मिलती और व्यापारी को व्यापार नहीं था। बेकार हुए लोग दुःखी मन होकर एक-दूसरे से पूछते थे—कहाँ जायें, क्या करें? गरीबी का राक्षस रावण सबको काल का ग्रास बनाकर खा जाना चाहता है। ऐसी पाप की भीषण ज्वाला को देखकर तुलसीदास प्रभु से कृपा के लिये प्रार्थना करता है।

नैतिक पतन

उँचे-नीचे करम, धरम, अधरम करि,
पेट ही को पचत, बेचत बेटा बेटकी।

अर्थात् लोग पेट भरने के लिये सब ऊँचे-नीचे कर्म, धर्म-अधर्म करते अपने बच्चों को भी बेच देते हैं। यह समाज के नैतिक पतन और निराशा का चित्र है।

पारिवारिक आदर्शों के लुप्त हो जाने से—

सुत मानहिं मातु पिता तब लौं, अबलानन दीख नहीं जब लौं।
ससुरारि पियारि लगी जब तें, रिपुरूप कुटुम्ब भये तब तें।

अर्थात् पुत्र माता-पिता का तभी तक आदर सत्कार करते हैं जब तक उसे अपनी पत्नी का चेहरा नहीं दिखता। फिर बाद में उसे ससुराल प्यारा लगता है। अपने माता-पिता, भाई-बहिन शत्रु तुल्य लगते हैं।

भीख की प्रथा

तुलसी के शब्दों में—

मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं।
उदर भरै सोई धर्म सिखावहिं।

निर्धनता एवं अकर्मण्यता के कारण समाज में भिक्षा मांगना शुरू हो गया था। माता-पिता बच्चों को बुलाकर पेट भरने के लिये उन्हें भिक्षा मांगने की कला सिखाते हैं।

स्वेच्छाचारी राजे

उस काल के शासन का चित्र भी आंखें खोलने वाला है—

नृप पाप परायण धर्म नहीं। करि दण्ड बिडंब प्रजा नित ही।।

अधिकांश राजे एवं नवाब अधर्मी, पापाचारी एवं अनैतिक हो गये थे। अनैतिक राजा धर्म को भूलकर प्रजा को दण्ड और बल से सताते हैं।

वे पुनः लिखते हैं—

कालु कराल, नृपाल कृपाल न। राज समाजु बड़ोई छली है।।

एक अन्य प्रसंग में तुलसीदास जी कहते हैं—यह बड़ा कराल समय है, जब राजा क्रूर हो जाते हैं। न्यायालय, मंत्री, कर्मचारी सब भ्रष्ट हो गये हैं।

गोस्वामीजी दारुण दुःख से कहते हैं—

वेद-धर्म दूरि गये, भूमि चोर भूप भये।
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप पीन की।।

अर्थात् वैदिक धर्म समाप्त हो गया। चोर, डकैत राजा बन गये हैं। सज्जन दुःखी है। पाप पनप रहा है।

डाके और कत्ल

उस काल के डाके और हत्याओं का स्मरण कर दिल दहल जाता है—

मारग मारि, महीसुर मारि कुमारग कोटिक कै धन लीयो।
संकर कोप सों पाप को दाम परीच्छित जाहिगो जारिके हीयो।

जो राहगीरों की हत्या करते हैं, साधुओं को मारते हैं या अनुचित ढंग से पैसा बटोरते हैं।

गोस्वामीजी की ऐसे डाकुओं को चेतावनी है कि याद रखो शंकर के कोप से पाप का पैसा तुम्हारे हृदय को जलाकर बाहर निकालेगा। यह पक्का परीक्षित नियम है।

राष्ट्रीय चरित्र का अभाव

राजनीतिक अचेतनता तथा राष्ट्रीय चरित्र के अभाव के कारण लोग अवसरवादी बन गये थे। मंथरा के निम्न वचनों में कर्तव्यशून्य अवसरवादियों की प्रसिद्ध युक्ति है—

कोउ नृप होऊ हमहि का हानी।
चेरी छांड़ि अब होब की रानी।। मानस, 2/15/6

कुबड़ी मंथरा की इसी उक्ति के अनुरूप अनेक राजपूत सैनिक यही युक्ति देते थे कि हमें केवल सेवा करनी है। चाकरी चाहे प्रताप की हो या अकबर की—हमें तो लड़ना ही है। हमें कोई राज तो करना नहीं।

गुलामी को लानत

गुलामी की रोटियों पर पलने वाले लोगों को गुलामी से ही प्यार हो चला था। गोसाईंजी ने हृदयस्पर्शी चित्र खींचा है—

हम पंखपाई पींजरनि तरसत अधिक अभाग हमारी।

मुक्ति की स्वतंत्र उड़ान के लिये समर्थ पंख होते हुए भी हम (पंछी) पिंजरे के घृणित सुखों के लिये तरस रहे हैं, यह हमारा कितना बड़ा दुर्भाग्य है।

स्वातंत्र्य मंत्र

गोसाईंजी ने भारत को मुक्ति मंत्र दिया—

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।

पराधीन होकर रहना एक पाप है। ऐसा व्यक्ति स्वप्न में भी सुख नहीं पा सकता।

वे पुनः चेतावनी देते हैं—

अरि बस दैउ जिआवत जाही।
मरनु नीक तेहि जीवन चाही।। मानस, 2/20/2

अर्थात् दैव जिसको शत्रु के वश में रख कर जिलाता है, उसके लिए तो जीने की अपेक्षा मरना ही अच्छा है।

वीर व्रत

वीर व्रत की महिमा राष्ट्र रक्षा के लिए है—

निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।

आदर्श राजा

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवस नरक अधिकारी।

तुलसी के रघुपति राघव राजा राम के गायन ने हमें राम जैसे आदर्श राजा का स्मरण दिलाया जो सब प्रकार से दैत्यों का नाश करने वाले हैं—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा।।

प्रजातंत्र

राम जैसे आदर्श राजा भी प्रजा से कहते हैं—

जो अनीति कछु भाषौ भाई, तो मोही बरजहु भय बिसराई।।

एक चक्रवर्ती सम्राट् द्वारा सामान्य प्रजाजनों को खुलेआम यह अधिकार देना कि यदि वह भूल से कभी अनीति का शब्द बोल दे अथवा अनीतिपूर्ण कर्म करने लगे तो प्रजाजन निर्भय होकर सम्राट को भी वर्जित कर दें—एक बहुत बड़ा लोकतान्त्रिक आदर्श है।

सत्याग्रह

जब रावण सीता को बहुत डराता है तो सीता सत्याग्रह की वाणी में कहती है—

स्याम सरोज दाम सम सुन्दर।
प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।
सो भुज कंठ कि तव असिघोरा।
सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा। मानस 5/9/3

सीताजी ने कहा—हे दशग्रीव! प्रभु की भुजा जो श्याम कमल की माला के समान सुन्दर और हाथी की सूँड के समान पुष्ट तथा विशाल है, या तो वह भुजा ही मेरे कण्ठ में पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ही। रे शठ! सुन, यही मेरा सच्चा प्रण है।

भारत माँ के बेटे : सगे भाई

हल्दीघाटी के युद्ध में राणा प्रताप ने देखा कि मुगल सेनापति होकर मानसिंह आया है। उसे देखते ही प्रताप ने क्रुद्ध होकर कहा—'पापी! अपनी माँ-बहिन को यवनों को देने वाले, देशद्रोही, जातिद्रोही, आज तुम्हारा मान मर्दन करके ही

छोड़ूंगा।' चेतक को देखते ही मानसिंह पलायन कर गया। शाहजहाँ सलीम किसी प्रकार घोड़े पर से किए प्रताप के भाले के वार से बच गया। मानसिंह और सलीम तो बच गये, किन्तु महावत मारा गया और हाथी युद्धक्षेत्र छोड़कर भाग गया। बड़ा अपमान हुआ मानसिंह का। मानसिंह ने प्रतिज्ञा की कि अब एक विशाल सेना लेकर राणा प्रताप का सर्वनाश करके छोड़ूंगा।

उस समय राजधानी आगरा में थी और आगरा की एक धर्मशाला में तुलसीदासजी की रामायण कथा चल रही थी। उन्हें जब यह जानकारी मिली कि मानसिंह ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा की है, तब उन्होंने अपना व्यक्ति भेजकर मानसिंह को बुलाया। पर मानसिंह के पास समय कहाँ? तथापि मानसिंह एक दिन कथा सुनने आया। तुलसीदासजी रामायण का प्रसंग कहते-कहते एक अन्य प्रसंग कहने लगे। भगवान् राम ने लंका विजय के पश्चात् हनुमान, सुग्रीव, विभीषण को साथ लेकर अयोध्या में प्रत्यावर्तन किया। तब भगवान् राम ने भरत के समक्ष सुग्रीव एवं विभीषण की प्रशंसा की। सुग्रीव के संबंध में कहा, 'मैंने अग्नि को साक्षी करके इसके साथ मित्रता की है। यदि यह मित्रता न होती तब हनुमान भी नहीं मिलते, वानर सेना भी हमारे पक्ष में नहीं आती, लंका विजय भी नहीं होती, सीता वापस नहीं आती। अतः सुग्रीव मेरा बहुत प्रिय मित्र है। यह विभीषण तो लंकापति दशानन का भाई है। यदि विभीषण यह भेद नहीं बताता कि रावण के पेट में अमृत कुंभ है, तब रावण तो मरता नहीं। इन दोनों ने ही मेरी सहायता की है। इनके सहयोग से ही हम लोग सकुशल वापस लौटकर आ सके हैं।

राम सराहे भरत उठी मिले राम सम जानि।
तदपि विभीषण कीसपति तुलसी मरत ग्लानि।।

राम ने तो सुग्रीव तथा विभीषण को मित्र बताया और भरत उन्हें राम के समान पूज्य समझकर ही उनको प्रणाम करने के लिए आगे बढ़े, किन्तु विभीषण और सुग्रीव दोनों ग्लानि से मर रहे थे कि कहाँ भरत जैसे पूज्य भाई जिन्होंने निष्कटंक राज्य हाथ में पाकर भी राजधानी से दूर नन्दीग्राम में योगी-मुनि की तरह जटामण्डित होकर, भूमिशयन कर, सिंहासन पर पादुका स्थापित कर राज्य का संचालन किया और कहाँ हम अपने ही सगे भाइयों को मरवाने वाले बने। इसलिये भरत जब उन्हें प्रणाम करने जा रहे हैं, तब वे ग्लानि एवं अपराधबोध से दबे जा रहे हैं। ठीक वैसे ही तुलसीदासजी के पाठ में बैठे हुए मानसिंह के मन का चोर पकड़ा गया। तुलसीदासजी ने कहा—आज भी देश की यही अवस्था चल रही है। भाई कह रहा है भाई का सर्वनाश करके ही दम लूंगा नहीं तो मैं राजपूत का बच्चा ही नहीं। यह राजपूत एक दिन देश की ढाल था, देश का रक्षक था। आज वही राजपूत देशद्रोही बनकर म्लेच्छों की पदसेवा में लग गया है। सभा में बैठा मानसिंह आंखें भरकर

रोने लगा। पाठ समाप्ति के पश्चात् गोस्वामीजी के निकट आकर चरण पकड़कर मानसिंह बोलने लगा, 'मैंने भयंकर अपराध किया है। आज में पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा हूँ।' तुलसीदासजी ने कहा, 'चिन्ता नहीं। इस ग्लानि से बचने का अभी भी उपाय है।' मानसिंह ने पूछा, 'वह उपाय कौन-सा है? मैंने सारा जीवन प्रताप का विरोध किया है। अब उसकी शरण में जाना मेरे लिए सम्भव नहीं है। इसके अलावा और कोई उपाय है तो बताएं?'

तुलसीदासजी ने कहा, 'अकबर की राजनीति से तुम अब अवकाश ग्रहण करो। उसके पश्चात् समस्त भारतवर्ष की तीर्थयात्रा करो ताकि तुम्हारा देशद्रोहिता, जातिद्रोहिता और भ्रातृद्रोहिता का पाप सदा के लिये धुल जाए। तुम अपनी अन्तिम समाधि हरिद्वार की हरकी पैड़ी में बनवाना ताकि सुरेश्वरी गंगा के पावन जल से अनन्तकालपर्यंत निरवधि (निरन्तर) तुम्हारे देशद्रोह, भ्रातृद्रोह एवं जातिद्रोह के पाप का परिक्षालन होता रहेगा।'

आप सब हरकी पैड़ी पर जाने से मानसिंह की छतरी देखेंगे। अनेक लोग भी कहते हैं—'इस विश्वासघाती की छतरी यहाँ क्यों? इसका कारण हुआ तुलसीदासजी की आज्ञा। मानसिंह के भ्रातृद्रोह के प्रायश्चित्त के लिए ताकि उसके पाप गंगा से धुलते रहें। और भी एक कारण है, मानसिंह चाहते थे कि लोग उसे उसके अधम कार्य के लिये चिरकाल तक धिक्कारते रहें। तुलसीदासजी ने यह चमत्कार करके दिखा दिया। जो यह संदेश देती है कि विचार और साहित्य की शक्ति एक राष्ट्र का इतिहास बदल सकती है। उन मुक्तिदाता तुलसीदासजी की जय।

रामचरितमानस विश्व के सबसे बड़े कंगाल का महानतम दान है जिसके बिना साहित्य रंक रहता और समाज अकिंचन्।

× × ×

जिन मुगल सम्राटों को इतिहास में महान् मुगल कहकर सम्बोधित किया जाता है उन्हें गुरु नानक, तुलसीदासजी, गुरु गोविन्दसिंह एवं संत कवियों ने चोर, लुटेरे, पापी और हत्यारे के रूप में चित्रित किया है। अतः हमें राग-द्वेष से मुक्त इन सन्तों की वाणी के आधार पर मध्यकालीन इतिहास का पुनर्मूल्यांकन करना चाहिये।

—प्रो. ओबराय

परकीय शासन में सच्चे धर्म रक्षक थे : तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास के समय में देश की जैसी कुछ स्थिति थी, उस वर्णन को पढ़कर ऐसा लगता है कि जैसे गोस्वामीजी वर्तमान भारत की ही सामाजिक-आर्थिक स्थिति का शब्द चित्रण कर रहे हैं, उन्होंने अपनी काव्य कृति कवितावली के उत्तरकाण्ड के अंतर्गत छन्द संख्या 96 में लिखा है कि—

'किसबी किसान कुल, बनिक, भिखारी, भाट
चाकर, चपल, नट, चोर, चार, चेटकी।
पेट को पढ़त गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-गन अट्टन अखेट की।।
ऊंचे नीचे करम, धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनश्याम ही ते,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की।।

अर्थात् श्रमिक, किसान, व्यापारी, भिखारी, भाट, नौकर-चाकर, चंचल नट, चोर, दूत और बाजीगर आदि सभी अपने पेट के लिए पढ़ते, कई तरह के यत्न करते, पहाड़ों पर चढ़ते और शिकार की खोज में घने वनों में विचरते हैं। सभी लोग पेट पालने के ही लिए ऊंचे नीचे काम और धर्म अधर्म करते हैं, यही नहीं कोई तो अपने पेट के ही लिए अपने बेटा-बेटी तक बेच देते हैं। इसलिए तुलसीदास का कहना है कि यह पेट की आग जो बड़वाग्नि से भी बड़ी है, इसे सिर्फ एक श्रीराम रूपी श्याम घन (मेघ) से ही बुझाया जा सकता है।

यह छन्द इस कारण सामयिक प्रतीत होता है कि आज भी शिक्षा प्राप्ति का एक मात्र उद्देश्य जीविका अर्जित करना ही रह गया है। निःश्रेयस या लोक सेवा अथवा लोक जागरण की भावना लोक चक्षु से विलुप्तप्राय ही रहती है। और पढ़े-लिखे बेकारों की भी बाढ़ देश में सर्वत्र दृष्टिगत है। अपने युग की खस्ता हाल स्थिति के विषय में तुलसीदासजी भी इन शब्दों में हमें अवगत कराते हैं कि—

'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख,
बलि, बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों, कहां जाई, का करी।।'
बेदहू पुरान कही, लोकहूं विलोकिअत,
सांकरे सवै पे, राम! रावरें कृपाकरी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी दीन बंधु!
दुरित दहन देखि तुलसी 'हहा' करी।।'

('कवितावली', उत्तरकाण्ड, छन्द सं. 97)

तुलसीदासजी देश की बेकारी-बेरोजगारी पर अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि आज देश का किसान कृषिविहीन है, भिखारी को भीख दुर्लभ है, व्यापारी व्यापार विहीन है, चाकरी करने वाले को चाकरी नहीं मिलती। हे राम! यह तुलसीदास आप पर बलि जाता है। आज रोजी रोटी के लिए तरसते हुए लोग आजीविका विहीन होने से अत्यन्त दुःख कातर और शोक संतप्त होकर परस्पर यह कहते सुनायी पड़ते हैं कि 'हम कहां जायें? क्या करें? उन्हें इस दुःखद स्थिति में उबरने का कोई मार्ग नजर नहीं आता।

'वेद पुराण साक्षी हैं और इस संसार में भी देखा जाता है कि संकट काल में तो सदैव आप ही द्रवीभूत होकर सभी पर कृपा करते हैं, अतः हे दीनबन्धु! आज जब दारिद्र्य रूपी रावण ने दुनिया को इस तरह दबा रखा है कि उस पाप ज्वाला को देखकर यह तुलसीदास हाय! हाय! कर रहा है।'

यह कितनी बड़ी बात है और कैसा था तुलसीदास का साहस कि उन्होंने अपने युग की शासन व्यवस्था तथा तत्कालीन शासक का स्तुति-गान नहीं किया वरन् उसकी परवा न करते हुए उन्होंने उस ज़माने की जर्जर अर्थव्यवस्था तथा सामान्यजन के दुःख कष्टों को ही वाणी दी। जबकि उस समय ऐसे लोगों की भी शासकों के दरबार तथा देश के समाज में कमी नहीं थी जो सर्वदा शासक की ही 'जय' बोलने तथा 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' कहने में ही आत्म-हित तथा अपनी विद्या-बुद्धि की सार्थकता समझते थे। उधर एक तुलसीदास थे, जिन्हें मुगल शासक ने बन्दी बनाकर कारागार तक में डाल दिया था। परन्तु फिर नगर भर में वानर दलों ने जो बवंडर मचाया, उससे बाध्य होकर शासक (संभवतः जहांगीर) को तुलसीदास को बन्दी गृह से मुक्त करना पड़ा। यही नहीं, उसने तुलसीदास का एक चित्र भी अपने चित्रकार (मुसब्बिर) से बनवाया। उस चित्र में तुलसीदास के दाढ़ी है और वह बाद में अंग्रेज इंग्लैण्ड उठा ले गए। उसे लन्दन के ब्रिटिश म्यूजियम में रखवाया। बिना दाढ़ी वाला चित्र तो तुलसीदास का काशी

के रायकृष्णदास की देन है। उन्होंने स्वेच्छा से तुलसी के दाढ़ी वाले चित्र से दाढ़ी हटवा दी। तब से तुलसी का वही चित्र प्रचारित हो गया। जहां तक तुलसीदास के कारागार वास की बात है, महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी अपनी कृति, 'तुलसीदास' में मुगलकालीन शासन का तुलसीदास की ही तरह उल्लेख करते हुए लिखा है कि—

नर थे भीतर, बाहर किन्नरगण गाते
शासन करते थे मुसलमान....

'कि उस जमाने के मुसलिम शासन में जो भी मर्द कहे जाने वाले दबंग या निर्भीक पुरुष थे, वे सब कारागार में पहुंचा दिए गए और फिर जो कारागार के बाहर शेष रह गए थे, वे उन किन्नरों (हिजड़ों) की तरह थे जो शासक के गुणगायक होते हैं।'

स्पष्ट है कि तुलसीदास की अमर कृति 'रामचरितमानस' ने देश बचा लिया, हिन्दुत्व की रक्षा की क्योंकि तुलसी ने डंके की चोट पर उस जालिम जमाने में जब हिन्दू जनता का उत्पीड़न-धर्मान्तरण हो रहा था—हिन्दू राजा अपनी बेटियां मुगल शासकों को दे रहे थे, घोषित किया कि जिसको राम से प्रेम नहीं, उसको करोड़ों दुश्मनों की तरह समझ कर त्याग दो, फिर वह चाहे जितना तुम्हारा स्नेही प्रेमास्पद क्यों न हो।' तुलसी के शब्दों में—

'जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरीसम
जद्यपि परम सनेही।'

ऐसे मन-मानस और जीवन व्रत वाले तुलसीदास भला फिर कैसे अकबर या जहांगीर का गुणगान कर सकते थे। अलबत्ता उन्होंने उस युग में राम नाम की क्या ही चमत्कारी महिमा बखानी है कि—

एक अंधा अधम मूर्ख और बूढ़ा मुसलमान रास्ते से गुजर रहा था कि उसे सूअर के एक बच्चे ने धक्का देकर ढकेल दिया तो गिर जाने पर वह अंधा मुसलमान भयभीत होकर कह उठा कि अरे! हराम ने मार डाला! हराम ने मार डाला!' और इसी तरह हाय! हाय! करते वह मर गया लेकिन राम राम' शब्दोच्चारण करने से वह अंधा मुसलमान, जो पापी था, त्रिलोकी श्रीराम के धाम में चला गया—यह विश्व प्रसिद्ध प्रसंग है, ऐसी महिमा है राम नाम की।' तुलसी का वह छंद यह है कि—

'आंधरो अधम जड़ जाजरो जरां जवनु,
सूकर के सावक ढकां ढकेल्यो मग में।

गिरो दिये' हहरि 'हराम हो, हराम हन्यो',
'हाय! हाय!' करत परीयो काल फंद में।।
'तुलसी बिसोक ह्वै त्रिलोकपति लोक गयो,
नाम को प्रताप, बात विदित है जग में।
सोई राम नामु जो सनेह सो जपत जनु,
ताकी महिमा क्यों कही है जाति अग में।।

(वही, उत्तरकाण्ड छन्द सं. 76)

उस मुगल शासन में भी तुलसी यह घोषणा किये बिना नहीं रहे कि किस तरह एक अंधा अधम मुसलमान 'हराम! हराम!' शब्द का उच्चारण करने पर भी श्रीराम के ही लोक को बैकुण्ठ धाम में पहुंच गया और धक्का भी किसका उसे लगा, एक सूअर के शावक (बच्चे) का! जबकि मुसलमान सूअर के नाम मात्र से भी घोर घृणा करते हैं। तुलसी की यह अभिव्यक्ति क्या ज्वलन्त राष्ट्रवाद, प्रखर हिन्दुत्व के ही गौरव गान का पर्याय नहीं? और फिर यही तुलसीदास थे कि एक दिन जलालुदीन अकबर के दरबारी कवि अब्दुर्रहीम खानखाना से पूछते हैं कि—

'रहीम साहब! आप यह बताइये कि हाथी हमेशा अपने सिर पर जमीन से धूल ही उठाकर क्यों डालता उंडेलता रहता है?'

'धूरि धरत नित सीस पर
कह रहीम केहि काज?

तो रहीम का भी क्या उत्तर था कि—

'जिस धूल के स्पर्श मात्र से चट्टान बनी पड़ी ऋषि पत्नी अहल्या का उद्धार हो गया, उसी धूल को हाथी भी खोजता रहता है ताकि उसका भी उद्धार हो जाए!' रहीम के शब्द थे—

'जेहि रज ऋषि पत्नी तरी,
सो ढूंढत गजराज....'

इसलाम मतानुयायी रहते भी कैसा मन-मानस और हिन्दू संस्कृति के प्रति कैसी गहरी प्रीति, आस्था और विश्वास की भावना रही थी रहीम की। ऐसा भी नहीं था कि तुलसी बड़ी सुविधाओं में जी रहे थे। लिखा था—

'ठाउं न समाउं कहां, सकल निरपने'

'मेरे लिए कहीं ठौर ठिकाना नहीं जहां रहूं। यहां सभी बेगाने हैं—गैर'।

बताते हैं अपनी स्थिति कि—

भाई को भरोसो न....
बलु अपनो न, हितू जननी न जन को।

'यह कि इस तुलसीदास को न अपने भाई का भरोसा है, न अपने बल का। यहां तक कि माता-पिता भी मेरे हितैषी नहीं। हां, यह तुलसीदास अपने पेट के लिए राम-नाम जरूर लेता है—'

'पेट-प्रिय पूत हित रामुनामु लेतु है'

'यह पेट ही तुलसीदास का प्रिय पुत्र है।' और मैंने किया भी किया?

'कियो न कछू, करिबन कछू,
कहिबो न कछू, मरिबोइ रहो है।।'

'आज तक मैंने न तो कुछ किया, न कुछ करना है और न मुझे कुछ कहना ही है—बस, अब तो केवल एक मरना ही शेष रहा है। और अब तक पेट की आग से विवश होकर जाने कहां-कहां से टुकड़े (भिक्षा) मांग कर खाये हैं, यह बात सब दुनिया जानती है।'

'जाति के, सुजाति के, कुजाति के पेटागि बस,
खाए टूक सबके, विदित बात दुनीं सो।'

'मैं (तुलसीदास) मांग कर खाता हूं और रात में मस्जिद में सो जाता हूं।'—

'मांगि के खाइबो, मसीत को सोइबो....'

ऐसा कठिन अभाव ग्रस्त जीवन रहा था तुलसीदास का। पर वे अनेक कृतियों के सृजन में संलग्न रहे, निरहंकारिता ऐसी कि लिखते हैं—

'राम को कहाहू, नामु बेचि-बेचि खाइ....'

'रामजी का कहलाकर यह तुलसीदास नाम को ही बेच-बेचकर खाता है....' पर एक बात जरूर है कि—

'जानत जहानु, मन मेरे हूं गुमानु बड़ों,
मान्यो मैं न दूसरों, न मानत, न मानिहौं।'

—'यह तुलसीदास अपने मन में इस बात का बड़ा अभिमान रखता है और संसार भी जानता है कि मैंने कभी राम के सिवा दूसरे किसी को नहीं माना, न मानता हूं और न कभी मानूंगा।'

'रोटी द्वै हौं पावों राम!
रावरी ही कानि हौं....'

'हे रामजी! आपके ही प्रताप से मुझे दो रोटियां मिल जाती हैं।'

लोग क्या कहते हैं, मेरे (तुलसी के) बारे में कि—

'पातक-पीन, कुदारिद दीन,
मलीन धरै कथरी करवा है।'

कि 'यह (तुलसीदास) तो बड़ा ही पापी और कुत्सित दरिद्रता वश अतिदीन (निर्धन) है तथा एक मलिन कंथा और करवा लिए घूमता है।' और जिसे स्वयं उसके माता-पिता (हुलसी और आत्माराम दुबे) ने जन्मते ही त्याग दिया और विधाता ने जिसके भाग्य में कुछ भी नहीं लिखा—'

'मातु पिता जग जाइ तज्यो,
बिधिहूं न लिखी कछु भालभलाई।'

क्योंकि मैं तो बाल्यावस्था से ही द्वार-द्वार रोटी के टुकड़ों के लिए ललचाता और बिलबिलाता फिरा—'

'बारे तें ललात बिल्लात द्वार-द्वार दीन'

और यह जमाना कैसा है कि लोग इतने नीच हो गये हैं कि वे (मुसलमान-मुल्ले आदि) सत्य हरिश्चन्द्र और दधीचि ऋषि तक को गालियां देने से बाज नहीं आते।

'गारी देत नीच हरिचंद हू दधीचिहू को....'

आज के युग में भी भारत में ऐसे सेकुलरवादियों की कमी नहीं जो देश के मान बिन्दुओं, श्रद्धा केन्द्रों के साथ-साथ प्राचीन ऋषि-महर्षियों को भी कोसते नहीं थकते। वह युग भी ऐसा था कि लोग झूठी-सच्ची करोड़ों तरह की बातों (अफवाहों) की लहरें उठाया करते थे। तुलसी ने लिखा है कि—

'बानी झूंठी सांची कोटि उठत हबूब है'

'कोई मेरे (तुलसीदास के) बारे में कहता है कि 'यह तुलसीदास बड़ा छली-कपटी है। तो कोई कहता है यह बड़ा ही दगाबाज है'।

'को कहै, करत कुसाज, दगाबाज बड़ो,
जाको रूचे सो कहे कछु ओऊ'
जिसको जो रुचे, भले वह मुझे कहे....
'धूत कहो, अबधूत कहो, रजपूत कहो,
जुलहा कहो कोऊ....'

'भले मुझे कोई धूर्त या अवधूत कहे, राजपूत कहे या जुलाहा कहे, मुझे परवा नहीं।'

अहिन्दुओं ने प्रश्न उठाया कि 'हिन्दू लोग पत्थर की मूर्तियां क्यों पूजते हैं?' तो तुलसीदास का जवाब था कि हिरण्यकशिपु ने जब अपने विष्णु भक्त पुत्र प्रह्लाद को तलवार से मारने के लिए उद्यत होकर पूछा, 'बता, तेरा वह भगवान कहां है जो तुझे बचाये क्योंकि मैं तुझे अभी समाप्त करता हूं। तो प्रह्लाद ने कहा

कि 'वह तो सब जगह है।' पिता ने पूछा, 'क्या इस पत्थर के खंभे में भी?' तो उसने कहा, 'हां, इस प्रस्तर स्तंभ में भी वह है'। और फिर जब वह प्रह्लाद को मारने चला तो वही खंभा फाड़कर विष्णु भगवान नृसिंह रूप में प्रकट हो गए और हिरण्यकशिपु को पेट फाड़कर मार डाला बचा लिया प्रह्लाद को—तभी से लोग विश्वास जमाकर पत्थरों को पूजने लगे।' तुलसी लिखते हैं—

'प्रीति प्रतीती बढ़ी तुलसी,
तबतें सब पाहन पूजन लागे।'

और मजारों-कब्रों की पूजा पर टिप्पणी भी की तुलसी ने। खासकर बहराइच स्थित उस मसूद गाजी की मजार की जियारत पर, जो बहराइच पर हमला करते समय वीरवर नरेश सुहेल देव द्वारा मारा गया—उसकी कब्र उसके मारे जाने के 300 वर्ष बाद फीरोज तुगलक ने वहां के प्राचीन सूर्य मन्दिर और सूर्य कुण्ड को नष्ट कर—उसे पाटकर उसके ऊपर बनवायी। जहां मेला लगाने लगे ढफाली और धन के लोभी कठमुल्ले। तुलसीदास ने इस पर लिखा था कि—

'लही आंखि कब आंधरो, बांझ पूत कब जाय।
कब कोढ़ी काया लही, जग बहराइच जाय।।

कि 'जैसा कि झूठा प्रचार किया गया, बहराइच में उस कब्र को पूज कर कब किसी अंधे को आंखें (देखने की शक्ति) मिलीं और कब किसी बांझ को वह कब्र पूजने से संतान प्राप्त हो सकी? कब कोई कोढ़ी वहां जाकर अच्छा हो सका।' वास्तव में उसी बरवै रामायण के बरवै छंद में तुलसीदास का आत्म-परिचय भी क्या खूब है, लिखा—

'केहि गिनती मह गिनती जस बन घास।
राम जपत भए तुलसी तुलसीदास।।'

'मेरी क्या गिनती! मैं तो पहले जंगली घास की तरह था, लेकिन राम-राम जपने से यही नगण्य तुलसीदास विष्णु-प्रिया अति पवित्र तुलसी (पौधे) तुल्य हो गया।' ऐसी है राम नाम महिमा और उसकी शक्ति।

और फिर बरवै रामायण के ही बरवै छन्द 65 में वे आत्मबोध कराते हैं कि—

'मरत कहत सब कहैं 'सुमिरहु राम।
तुलसी अब नहिं जपत, समुझि परिनाम।।

'मरते समय तो सभी लोग कहेंगे कि राम! राम! कहो, और मरने के बाद अर्थी के साथ कहते चलेंगे कि रामनाम सत्य है! किन्तु अभी जब जीवित हैं तब राम को भूले बैठे हैं। यद्यपि परिणाम जानते हैं कि मृत्यु तो होगी ही।'

अपनी एक अन्य कृति दोहावली में भी तुलसीदासजी मुगलों (यवनों) के कुशासन तथा कब्र पूजा की आलोचना करना नहीं भूलते, दोहावली के 65वें दोहे में वे लिखते हैं कि—

'तुलसी परि हरि हरि हरहि पांवर पूजहिं भूत।
अंत फजीहत होंहिगे, गनिका के से पूत।'

—'तुलसीदास को यह देखकर मन में विक्षोभ उपजता है कि लोग श्री हरि (भगवान विष्णु) और हर (शंकरजी) को भूलकर पामर (दुष्ट), भूतों (मृतकों व उनकी कब्रों मजारों) को पूजते हैं, उनकी वही दुर्गति होगी, फजीहत जैसे वेश्या के बेटों की होती है कि जिनके पिताओं का ही पता नहीं चलता बिन बाप के बेटे।'

इसी प्रकार आगे इसी क्रम में 66वें दोहे में भी वे सजग करते हैं कि—

'सेय सीताराम नहिं भजे न शंकर गौरि,
जनमं गवायो बादिहीं परम पराई पौरि।'

—'सीताराम और शिव पार्वती की उपासना न करके जो लोग गैरों के द्वार पर माथा रगड़ते हैं—अन्य मत-मजहबों के फेर में पड़ते हैं उन्होंने तो अपना जीवन व्यर्थ ही गंवाया।' और अब राज्य किनका है, लिखते हैं गोस्वामीजी कि—

मोंड़ गंवार नृपाल महि जवन महा महिपाल।
साम न, दाम न, भेद कलि केवल दंड कराल।।

'अब राज्य कर रहे हैं नितान्त असभ्य निरंकुश यवनादि (मुगल) शासक, जिनकी शासन व्यवस्था में साम-दाम, भेद का नाम नहीं, बस क्रूरतम (हत्या-सूली) दण्ड दिए जाने का ही क्रम जारी है, इसलाम न स्वीकार करने वाले हिन्दू कत्ल किये जाते हैं।' और इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास वृन्दावन में जब श्रीकृष्ण भगवान की प्रतिमा के सम्मुख प्रणाम करने की मुद्रा में खड़े हुए तो देखा कि श्रीकृष्णजी के हाथ में तो सुदर्शन चक्र नहीं वरन् है केवल वंशी, तो अपने युग धर्म किंवा राष्ट्र धर्म का स्मरण कर कह उठे कि—

का छवि बरनौ आज की भले बने हौ नाथ!
तुलसी मस्तक तब नवे, जब धनुष बाण लो हाथ।।

अर्थात् 'यह क्या छवि आपने बना रखी है जबकि भारत आज मुगलों के अत्याचार से रक्तारक्त और उत्पीड़ित हो रहा है। तुलसीदास तो आपको तब प्रणाम करेगा जब आप इस वंशी के बजाय धनुष बाण—धारण करेंगे।' और कहते हैं कि तत्काल, तुलसीदास की भावना आत्मसात् कर उस प्रतिमा ने वंशी लुप्त करके धनुष-बाण धारण कर लिया। तब तुलसीदास ने उनके चरणों में दंडवत्

प्रणाम किया। यह प्रसंग सामान्य नहीं, आज भी भारत को धनुषधारी श्रीराम की, लक्ष-लक्ष वीरव्रत धारी जुझारू युवकों की जरूरत है जो आई.एस.आई. के राक्षसों का संहार कर सकें।

मैंने तो आज से कोई 60 वर्ष पूर्व अपने इसी प्रदेश के ग्रामों-नगरों में उन तिलकधारी कांवर लटकाए गोसाइयों को देखा है जो अपने संप्रदाय के अनुसार 'धनुषधारी राम' का उद्घोष करते हुए द्वार-द्वार भिक्षा मांगते थे। अवश्य कभी ये गोसांई स्वयं सशस्त्र हो संग्रामरत रहे होंगे। और इसीलिए अब स्थिति यह बन गई कि—

'सकल धरम विपरीत कलि कल्पित कोटिकु पथ।
पुन्य पराय पहार वन, दुरे पुरान सुग्रन्थ।।

('दोहावली' छन्द सं. 556)

अर्थात् 'आज देश में सभी कुछ धर्म विरुद्ध होने लगा है। अनेक नए-नए मत-मजहब, जो आदमी को गलत रास्ते पर ले जाने वाले हैं, आविष्कृत हो गए हैं, जबकि वास्तव में वे कल्पना जन्य मत हैं, सच्चे धर्म नहीं। और इसी कारण आज पुण्य पहाड़ों में जा छिपा और पुराणादि प्राचीन धर्मग्रन्थ वन में जाकर लुप्त हो गए। जहां केवल कुछ संत-महात्मा ही उनका पारायण करते हैं।'

इस समय कोकिल तो मौन है—मेढकों की बन आयी है। वर्षाकाल जैसी उनकी 'टर्र-टर्र' जारी है। लिखते हैं, तुलसीदासजी कि—

'तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलि हैं, हमें पूछिहै कौन?

मुगलों का वह शासन काल ऐसा ही था। इसी से तुलसीदास के स्नेह संबंध उस रहीम खानखाना से जरूर जुड़ सके, जिसने लिखा था कि—

'रामनाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा बेवाद।
कहं रहीम, तिन्ह आपने, जनम गंवायो बाद।

रहीम के मत से, 'जिसने भी राम नाम से नाता नहीं जोड़ा, केवल सदा विवाद (तर्क-वितर्क) ही करता रहा, उसने अपनी जिन्दगी बेकार ही गंवायी।' उनकी राम नाम से हिन्दू संस्कृति के प्रति कैसी आस्था रही है।

तुलसी तो उस घोर अत्याचारों से आतंकित पीड़ित युग में यह सत्य उजागर कर सके परन्तु आज बहराइच जिले के सरकारी अधिकारी राजनेता तक इसके नितान्त विपरीत हमलावर, मन्दिर विध्वंसक मसूद का गुण-गान तथा विजेता सुहेल देव से परहेज करते नहीं अघाते।

कैसी विडम्बना! तुलसी ने भारत को राम-नाम महिमा, श्रीराम चरित्र के आदर्शों से जागृत किया—धर्म भ्रष्ट होने से बचाया इसीलिए संत विनोबा ने लिखा था कि यह कहना गलत है कि अकबर के काल में तुलसीदास हुए वरन् लिखा जाना चाहिए कि तुलसीदास के काल में अकबर हुआ। 'क्या कभी एतदर्थ विनोबा भावे को किसी ने 'रूढ़िवादी' कहा? तुलसी के शब्दों ने उस युग में हिन्दू जाति को श्रीराम नाम का महामंत्र प्रदान कर संजीवनी शक्ति प्रदान की, यहां तक लिखा कि—

तुलसी जाके बदन ते, धोखेंहुं निकसत राम।
ताके पग की पगतरी, मेरे तन को चाम।

(वैराग्य संदीपनी)

—'जिस किसी के मुंह से धोखे से भी राम नाम का उच्चारण हुआ, उसके पांवों के जूते अगर मेरे शरीर की चमड़ी से बनाए जाएं तो मैं धन्य होऊंगा।'

इसी क्रम में वे 38वें दोहे में कहते हैं कि—

'तुलसी भगत सुपच भलौ, भजे रैन दिन राम।
ऊंचो कुल केहि काम को, जहां न हरि को नाम।।'

(वैराग्य संदीपनी 38)

—'तुलसी के मत से, वह राम भक्त चाण्डाल भला (श्रेष्ठ) है जो रात-दिन राम का भजन करता है लेकिन उच्च कुल का वह कुलीन किस काम का, जहां हरि नाम का जिक्र तक नहीं।'

कुलीन अकुलीन के परिप्रेक्ष्य में 'वैराग्य संदीपनी' में ही तुलसीदासजी आगे लिखते हैं कि—

'जदपि साधु सब ही विधि हीना, तदपि समता के न कुलीना।
यह दिन रैन नाम उच्चरै, वह नित मान-अगिनि महं जरै।।'

—'तुलसीदास उस व्यक्ति को साधु-संत और श्रेष्ठ मानते हैं जो भले कुलीन नहीं हो—नीच जाति का हो, परन्तु रात-दिन भगवान का नाम लेता रहता है। उसका मुकाबला वह आदमी नहीं कर सकता जो है तो कुलीन लेकिन सदा अपने अहं की आग में जला करता है।'

वास्तव में तुलसी का यह मत आज भी उतना ही सामयिक महत्त्व रखता है जितना कभी मुगलों के शासन-काल में, जब ऊंच-नीच, छूत-अछूत के भेद-भाव से हिन्दू समाज छीज रहा था।

तुलसीदासजी पर्दा प्रथा के समर्थक नहीं रहे, वे अपनी 'बरवै रामायण' के अयोध्याकाण्ड (17) में लिखते हैं कि—

'का घूंघट मुख मूंदहु नवला नारि।
चांद सरग पर सोहत यहि अनुहार।।'

कि 'हे नवेली (नव परिणीता वधू) नारी! तुम घूंघट से अपना मुंह क्यों छिपा रही हो? देखो ऊपर आकाश में तुम्हारे ही मुख जैसा सुन्दर चन्द्रमा शोभायमान है, वह तो किसी से पर्दा नहीं कर रहा, सभी उसे देखते हैं।'

वाह! क्या ही अप्रतिम उपाय खोजा तुलसी ने पर्दा निवारण का।

लेखक : वचनेश त्रिपाठी, साभार—जाह्नवी (मासिक पत्र) अक्टूबर 2002

हे पुण्य आर्यभूमि! तेरा अधःपतन कभी नहीं हुआ। राजदण्ड भग्न हुए और दूर फेंके गये, शक्ति की गेंद इस हाथ से उस हाथ पर गई, पर भारत में राजदरबार में और राज सिंहासन का प्रभाव इने-गिनों पर ही पड़ा; असंख्य जन समुदाय उच्चतम से लेकर निम्नतम तक—सभी को उसी अपरिहार्य मार्ग का—उस जातीय जीवन-धारा का अनुगमन करना पड़ा जो कभी धीमी और अर्धचेतन तो कभी प्रखर और जागरित हो बहती रही।

—स्वामी विवेकानन्द

× × ×

मुझे गर्व है कि मैं ऐसे धर्म में पैदा हुआ हूं जिसने शताब्दियों से संसार का पथ प्रदर्शन किया।

—स्वामी विवेकानन्द

गोस्वामी तुलसीदास और कविवर रहीम

उत्तर भारत की प्रसिद्ध उक्ति है—

जननी जने तो भक्त जन, या दाता या शूर।
नहीं तो जननी बांझ रह, काहे गंवावे नूर।।

उक्त पद्य में यह भावना दी गई है कि एक सच्ची माता को या तो एक भक्त पुत्र उत्पन्न करना चाहिए या एक दानवीर बालक या एक शूरवीर सन्तान। अन्यथा माँ का बांझ रहना ही अच्छा, व्यर्थ ही अपना नूर गंवाने से क्या लाभ है?

यह एक अद्‌भुत संयोग का विषय है कि कविवर रहीम भक्त, दाता और शूरवीर एक साथ तीनों ही थे। ऐसे विलक्षण महापुरुष संसार में विरले ही मिलते हैं।

महान् भक्त—दिल्ली से भगवान् कृष्ण की जन्म भूमि मथुरा की ओर जाते हुए नई दिल्ली से निकलते ही मथुरा रोड पर ही इस महान् कृष्ण भक्त की समाधि बनी हुई है। श्रीकृष्ण के चरणों में प्राण प्रसून चढ़ाने के लिए जाने वाले भक्तों को मार्ग में इस महान् कृष्ण भक्त की समाधि पर भी दो-एक भाव पुष्प चढ़ाना योग्य है। इस महान् भक्त का जन्म तो लाहौर में अकबर के संरक्षक बैरमखां के गृह में हुआ किन्तु बैरमखां की मृत्यु के पश्चात् अकबर के सेनापति तथा उसकी राजसभा के नवरत्न मण्डल के उज्ज्वल रत्न बनने पर आप आगरे में रहे जहाँ पुण्यश्लोक गोस्वामी तुलसीदासजी से आपकी स्नेह-मैत्री बढ़ी। किन्तु गोस्वामी तुलसीदासजी के साकेतवास के दो वर्ष पश्चात् ही दिल्ली में रहीम ने भी इस असार संसार को त्याग दिया। तभी से उनकी समाधि दिल्ली की भूमि को पवित्र कर रही है।

एक और बहुत बड़े कवि, फारसी के कवि, अरबी के कवि, संस्कृत के कवि खानखाना अब्दुल रहीम, अकबर के नवरत्नों में एक थे। तुलसीदास के मित्र थे।

एक दिन तुलसीदासजी के पास एक ब्राह्मण आकर बोला उसकी लड़की के विवाह के लिए कुछ सहायता करें। तुलसीदासजी ने कहा मेरे पास राम नाम और यह लोटा छोड़कर कुछ नहीं है भाई। पर मेरा एक धनी मित्र है। मैं उसको एक पत्र लिख देता हूं, इसको लेकर जाओ तुम्हारा काम हो जाएगा। यह कहकर पत्र में एक पंक्ति लिखकर दे दी। कहा कि इससे वह समझ जाएगा कि क्या लिखा है।

सुरतिय नरतिय नागतिय यह चाहत सब कोय।

अर्थात् देवता, मनुष्य, नाग सकल जाति की माताएं यही चाहती हैं कि मेरी लड़की किसी अच्छे घर में अच्छे वर के साथ विवाह करके सुखी होवे।

पत्र लेकर ब्राह्मण देव रहीम के पास पहुंचा। रहीम समझ गए। अब्दुल रहीम खानखाना बेराम खान का पुत्र था। बेराम खान काबुल से बाबर के साथ आया था। उनका जन्म भारत में हुआ था। उन्होंने पत्र की दूसरी पंक्ति इस प्रकार पूरी कर दी—

गोद लिये हुलसी फिरे तुलसी सो सुत होय।।

अर्थात् सकल माताएं यही चाहती हैं कि तुलसी जैसा सुत होवे। साथ में पर्याप्त धन दिया।

रहीम एक आदर्श व्यक्ति था। मुसलमान होते हुए भी भारतीय संस्कृति का भक्त था। अकबर के समय रहीम चलता रहा। हिन्दू का यश गाता रहा। पर जहांगीर के समय जहांगीर ने रहीम की सब सम्पत्ति छीन ली। कहा, यह हिन्दू का यश गाता रहता है और सब सम्पत्ति छीन ली। रहीम कहता है—

तब ही लौं जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जगमें रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम।।

तब तक ही उसका जीना सफल है जब तक कि देने में कमी न आयी हो। देने में धीमा नहीं है। संसार में कंजूस की गति से मुझे जीना अच्छा नहीं लगता। चित्रकूट पहुंच गया। तुलसीदासजी ने पूछा चित्रकूट कैसे आ गए? रहीम ने कहा—

चित्रकूट में रमि रहे, रहीमन अवध नरेश।
जा पर विपदा परत है, सो आवत यहि देश।।

कहा कि भगवान् श्री राघवेन्द्र (मर्यादा पुरुषोत्तम) उनको राजतिलक के दिन, राजतिलक से वंचित करके धकेलकर दण्डकवन में निकाल दिया गया तो वे भी चित्रकूट आए। उन पर विपत्ति आयी तो वे भी चित्रकूट आए। गोस्वामी तुलसीदासजी, आप पत्नी के काम में अंधे हुए। आधी रात को यमुना पार करने के लिए तैरती हुई लाश को आपने नौका समझ लिया और लटकते हुए अजगर सांप को रस्सा समझकर ऊपर चढ़ गए। पत्नी ने आपको फटकार मारी, अस्थि चर्म में आपकी ममता ऐसी, अगर यही प्रीति राम संग होती तो आप भवसागर तर जाते। धिक्कार है ऐसे प्रेम को। आपको धिक्कार किया तो आप पर विपत्ति पड़ी, घर से निकाल दिया तो आप भी चित्रकूट आए। मेरा सारा राज्य, मेरी सारी जागीर, मेरी सारी सम्पत्ति जहांगीर ने छीन ली है। इतनी विपत्ति आयी है। जा

पर विपदा पड़त है सो आवत यहि देश। राष्ट्रीय मुसलमान होने से विपत्ति आने पर चित्रकूट आया। जो विपत्ति पड़ने पर गायेगा कि मेरे मौला बुला ले मदीना में मुझे, वह अराष्ट्रीय है।

चित्रकूट की याद किसको आएगी? जो भारत का है। जिसने कभी मक्का-मदीना देखा नहीं उसका गीत गा रहा है तो देशद्रोही बनेगा। देशद्रोह बुरी चीज है। कुरान पढ़ने में, नमाज पढ़ने में कोई बुराई नहीं है। पर राम-कृष्ण के प्रति भक्ति रखनी होगी। इस देश के प्रति भक्ति रखनी होगी। वहां मन्दाकिनी नदी है। मन्दाकिनी नदी में एक हाथी स्नान कर रहा है। बड़ी सुन्दर जलक्रीड़ा कर रहा है। सूंड में जल भरकर फव्वारे की तरह जल को फेंक रहा है। जलक्रीड़ा करके वहां से निकला है। और निकला साफ सुथरा होकर। और फिर कामद पर्वत की परिक्रमा करने लगा। कामद पर्वत है जो सारी मनोकामनाएं पूरी करता है। तो वहां धूल भरकर अपनी सूंड से धूल के फव्वारे मारने लगा। और सारे शरीर में धूल भर ली। किसी ने रहीम से पूछा क्या बात है? तब रहीम ने कहा—

धूर धरत निज सीस पर, कहु रहीम केहि काज,
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूंढ़त गजराज।

गजराज ने अपने सिर पर धूल क्यों डाली? बात क्या है?

गौतम ऋषि पत्नी तरी
ते रज ढूंढ़त गजराज।

तो भगवान् रामचन्द्र के चरणों की पावन धूलि जिसके स्पर्श से अहल्या का उद्धार हो गया था, उस धूलि को गजराज खोज रहा है। भगवान् के चरणों की धूलि मेरे मस्तक पर भी लग जाए, मेरा भी उद्धार हो जाए।

गोस्वामीजी ने कहा—अच्छा, रहीम चलो गंगाजी चलेंगे। काशी चले गए। काशी में गंगा स्नान के पश्चात् गोस्वामीजी ने कहा—रहीम! मां भगवती गंगा से लोग भक्ति, मुक्ति मांगते हैं। तुम भी कुछ वरदान मांग लो। तब रहीम बोला—

अच्युत चरण तरंगिणी, शिव सिर मालती माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इन्दव भाल।।

कहा कि अच्युत के चरणों से तरंगित होने वाली, विष्णु भगवान् के चरणों से प्रवाहित होने वाली गंगा, शिव के मस्तक पर मारुति माला के समान शोभायमान होने वाली है। गंगा तुमसे लोग मुक्ति मांगते हैं, मुक्ति तो मैं भी मांगता हूं, मुक्त करके तू मुझे हरि न बनाना, विष्णु मत बना। यदि विष्णु बना दोगी तो विष्णु के तो चरणों में गंगा रहती है, मां मैं नहीं चाहता कि तू मेरे चरणों में रहे। तो मां गंगे हरि मत बनाना। तो मुझे क्या बनाना? जिसके मस्तक पर चन्द्रमा, जिसके सिर

पर गंगा मां लहराती है, वह शंकर भगवान् बना देना। मुक्त करके बनाना तो शिव बनाना। ताकि हे गंगा मैया, मैं तुझे अपने शीश पर सदा धारण करूं। पांव पर नहीं। यह गंगा के प्रति उनकी इतनी अपार भक्ति थी।

रहीम ने तुलसीदासजी से एक प्रश्न किया। क्या प्रश्न किया? प्रश्न बड़े मार्के का है। उत्तर भी बड़ा मार्के का है।

काज करे संसार के, मिलन चाहत करतार।

भई, लोग कार्य तो करते हैं संसार का, बही-खाता लिखता है, माल तौलता है, कपड़े मापता है, लेन-देन करता है। यह करता है, वह करता है। दुनिया के धंधों में लगा है।

काज करत संसार के, मिलन चाहत करतार। तो समस्या क्या है? तब रहीम कहते हैं—

कहो रहीम कैसे निभे, दो रथ एक सवार।

रथ दो हैं। एक करतार का रथ और एक संसार का रथ। सवार एक है जो संसार के कामों में लगा है और करतार से मिलना चाहता है। दो रथों के बीच में आदमी धड़ाम से नीचे जा गिरेगा। उसको दोनों में से कुछ नहीं मिलेगा। तुलसीदासजी से मार्गदर्शन मांगते हुए कहते हैं—

काज करे संसार के, मिलन चाहत करतार,
कह रहीम कैसे निभे, दो रथ एक सवार।

तुलसीदास ने उत्तर दिया। बड़ा मार्मिक प्रश्न है। उत्तर सुनकर आप चकरा जाएंगे।

काज करे संसार के

संसार के सब कर्तव्य करो। परिवार का पालन करो, बच्चों का पालन पोषण करो, दुकानदारी करो, व्यवसाय करो, पैसा कमाओ। संसार के सब कर्तव्य करो—'काज करे संसार के, प्रभु पर राखे टेक'—भगवान् पर विश्वास रखे कि मैं भगवान् का काम कर रहा हूं। सब संसार के काम करो। बच्चों को प्यार कर रहा है तो बाल मुकुन्द को प्यार कर रहा है। मेरा कृष्ण, मेरा कन्हैया बार-बार यह भाव रखे। ग्राहक मेरा देवता है। रविदास जी जूता गांठते थे। जूते के एक-एक टांके के साथ ओम-ओम, राम-राम, हरि-हरि गाते थे और कोई भक्त बदरीनारायण जा रहा है तो जूता दे देते थे। हर कर्म में प्रभु मेरे आश्रय हैं, प्रभु मेरी प्रेरणा हैं, प्रभु के लिए कर रहा हूं और जगत् के जितने सम्बन्धी रूप हैं सब प्रभु के रूप हैं। सब नारायण रूप हैं। इस बच्चे से व्यवहार करते समय यह नारायण रूप है। यह नाराज

न हो जाए। इस ग्राहक को ठगूं तो भगवान् नाराज हो जाएगा। किसी की जेब नहीं काटूं, किसी का गला नहीं काटूं। किससे नाराज हो रहे हो? अतः किसी के प्रति बुरा भाव न लाऊं—

काज करे संसार के, प्रभु पर राखे टेक।
तुलसी यों निभ जायेंगे, दो घोड़े रथ एक।।
और कर से करो कर्म विधि नाना, मन राखो प्रभु कृपा निधाना।

रथ एक है, घोड़े दो हैं। एक संसार का घोड़ा और एक भगवान् का घोड़ा। दोनों लगा दो। और वेग से दौड़ेगा। चिन्ता मत करो। यह है जीवन का क्रियात्मक रूप, क्रियात्मक पक्ष, जिससे संसार का व्यवहार सुन्दर रीति से चले और भगवान् की वंदना भी चले। भगवान् पर अटल श्रद्धा भी रखें। इससे संसार धर्म भी बढ़िया ढंग से चले। भगवान् पर अटल श्रद्धा रखते हुए, ईमानदारी से चलो। भगवान् ने गीता में कहा—

'**तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।** 8/7, गीता

हे अर्जुन! तू सब कालों में मेरा स्मरण करता हुआ युद्ध कर।

रहीम ने अपने प्राण प्यारे मनमोहन की स्तुति में संस्कृत के सुन्दर सुस्वर गीत गाए हैं—

रत्नाकरस्तव गृहं, गृहिणी च पद्मा, किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
आभीर वामनयनाहृत मानसाय, दत्तं मनो, यदुपते कृपया गृहाण।।

अर्थात्, हे जगदीश्वर! आप क्षीरसागर रूपी रत्नों के भण्डार (रत्नाकर) में रहते हैं, सारे संसार की सुख-समृद्धि, धन धान्य की अधिष्ठात्री देवी, लक्ष्मी आपकी गृहिणी हैं। हे सृष्टि के स्वामी! मैं आपको क्या भेंट करूं? हाँ, आपके पास सबकुछ है किन्तु आपका मन व्रज की भोली-भाली पवित्रमना गोप-बालाओं ने चुरा लिया है। अतः हे भगवान्! मैं आप को अपना मन ही भेंट करता हूँ। हे यदुपते! कृपया इसे स्वीकार कीजिएगा, ठुकराइएगा मत। इसमें गीता के 12वें अध्याय के आठवें श्लोक की प्रतिध्वनि है। जिसमें भगवान् कृष्ण अर्जुन को मन-बुद्धि रूपी दो फूल समर्पित करने को कहते हैं।

एक अन्य पद्य में भक्त रहीम की मुक्ति के लिए प्रस्तुत की गई युक्ति, सारे भक्ति साहित्य में बेजोड़ है—

आनीता नटवन्मया तब पुरः, श्रीकृष्ण या भूमिका,
व्योमाकाशखखाम्बराब्धिवसवर, तब प्रीतये अद्यावधि।
प्रीतो यद्यसिः ताः कर्मक्ष्य भगवान्, तद वांछित देहि में,
नो चेद ब्रूहि कदापि मानय, पुनर्मामीहशीं भूमिकाम्।

अर्थात्, हे श्रीकृष्ण!, हे नटनागर! मैंने आजतक आप की प्रीति के लिए आप के दरबार में बहुरुपिया बनकर 84 लाख योनियों में 84 लाख रूप बना कर नाच किये हैं। यदि आप उनमें से एक को भी देख कर प्रसन्न हुए हैं तो मेरी मन-वांछित मुक्ति मुझे दे ही दो और यदि आपको एक भी नाच पसन्द नहीं आया तो स्वयं अपने मुंह से कह दीजिएगा कि 'आगे से मेरे दरबार में ऐसे रूप बना कर कभी मत आया करो' ताकि मैं तब भी आवागमन के चक्र से छूट जाऊँ। इसमें गीता का चरम तात्पर्य मुक्ति निहित है।

रहीमजी की अध्यात्म दृष्टि भी बहुत ऊँची थी। भौतिक संसार के भौतिक विषयों की वह उलटी (वमन) से उपमा देते हैं जिसे कूकर सूकर आनन्द से खाते हैं—

जो विषया सन्तन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात।।

संगति के प्रभाव को भी वे बड़ा महत्त्वपूर्ण समझते थे—

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसो ही फल दीन।।

इस संसार रूपी पंकिल पारावार में रहते हुए भी मानव को पंकज के समान निर्लिप्त रहना चाहिए—

जो रहीम मन हाथ है, तो तन कहहुं जाई।
जल में जो छाया परे, काया भीजत नाहीं।।

अनोखा दानवीर—सन्त कवि रहीम दान में दूसरे कर्ण के तुल्य माने जाते थे। उनकी घोषणा है—

तब ही लौं जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जगमें रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम।।

कहा जाता है कि गंग कवि को उनके एक कवित्त पर रहीमजी ने 36 लाख मुहरें दान में दे दीं, पर दान देते हुए उनकी आंखें नीची ही थीं। गंग कवि ने प्रश्न किया—

सीखे कहां जनाब जू, ऐसी देनी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊंचो उठे, त्यों त्यों नीचे नैन।।

रहीमजी का उत्तर स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है—

देनहार कोई और है, भेजत है दिन रैन।
लोग भरम हम पे करैं, तातें नीचे नैन।।

औरंगजेब का बड़ा भ्राता दाराशिकोह और उपनिषद्

दाराशिकोह एक बार शिकार के चक्कर में मार्ग भूलकर एक साधु के आश्रम में जा पहुंचा था। उसे आशा थी कि साधु उठकर उसका स्वागत करेगा। उसे सम्मान देगा। क्योंकि शाहजहां का सबसे बड़ा प्रिय पुत्र होने के कारण वह अपने को भारत का भावी सम्राट् समझता था। किन्तु साधु एक पुस्तक पढ़ता रहा और मुसकराता रहा। दारा को बहुत क्रोध आया और उसने साधु से प्रश्न किया, 'तुमने हमसे यह तक भी नहीं पूछा कि हम कौन हैं? कहां से और क्यों आए हैं?

साधु ने उत्तर दिया, यही प्रश्न तो नचिकेता यम से पूछ रहा है कि संसार के इतने प्राणी कहां से आते हैं फिर कहां चले जाते हैं? क्यों आते हैं? क्यों चले जाते हैं? इसी प्रश्न का उत्तर यम देने वाले थे कि आप आ गए। पधारिये।

तब तक एक शिष्य पानी लेकर आ गया था। दारा ने पानी पीया। क्रोध कुछ शान्त हुआ। फिर प्रश्न किया, यह कौन-सी पुस्तक है?

यह उपनिषद् है राजकुमार।

क्या यह हिन्दुओं की कोई धार्मिक पुस्तक है? दारा ने प्रश्न किया।

पुस्तक हिन्दू-मुसलमान की नहीं होती। पुस्तक सत्य का ज्ञान कराने का साधन मात्र है। यदि आप समझते हैं कि इसमें जो कुछ लिखा है, उससे आपका ज्ञान बढ़ा है तो पुस्तक अच्छी है। नहीं तो कुछ भी नहीं है। बकवास मात्र है।

क्या यह इन प्रश्नों का सही उत्तर दे सकती है।

'पहले आप बताइये, क्या आप इन प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं?

कुरान में लिखा है कि खुदा हर चीज को पैदा करता है। इनसान को भी। और इनसान का शरीर और उसकी रूह तब तक कब्र में दफन होती रहेगी जब तक कयामत नहीं आती और खुदा सबका फैसला नहीं सुना देता।

'मगर हिन्दू तो अपने मुर्दों को जला देते हैं। उनके शरीर तो राख बनकर गंगा में, यमुना में अथवा नदियों में बह जाते हैं। वे कयामत के दिन कहां से उठकर खड़े होंगे?'

यह तो मुझे नहीं मालूम। कुरान में तो यह भी लिखा है कि जब तक पाक और सच्चे मुसलमान पृथ्वी पर जीवित रहेंगे, तब तक कयामत नहीं आ सकती—साधु ने कहा। हां, दारा ने हामी भरी। तो आपका विचार है कि संसारभर के मुसलमानों में कोई पवित्र और सच्चा मुसलमान नहीं रहेगा। ये कैसे हो सकता है? तो फिर न तो कयामत आएगी और न ही किसी मुसलमान का फैसला होगा। क्यों?

क्या तुम्हारी किताब इस विषय में कुछ बताती है?

न बताती होती तो फिर मैं पढ़ता ही क्यों?

दारा सोच-विचार में पड़ गया। वह उपनिषद् अवश्य पढ़ेगा उसने निश्चय किया और इतिहास बताता है कि दाराशिकोह ने केवल उपनिषद् पढ़े ही नहीं वरन् उनका फारसी में अनुवाद भी किया। वह तो वेदान्त में इतना डूब गया था कि उसे बादशाह बनने में भी कोई विशेष रुचि नहीं रही थी। उसके ज्ञान अर्जन को यह कहकर औरंगजेब (आलमगीर) ने बदनाम किया कि वह काफिर बन गया है। और संस्कृत पढ़ता है। सुन्नी मुसलमान उसके विरोधी हो गए और जो उसके साथ घटित हुआ वह इतिहास हम सबको ज्ञात है।

वेदान्त की बात से दाराशिकोह बहुत प्रभावित हुआ और बहुत आश्चर्यजनक बात लगी वह यह थी कि इन प्रवचनों में कहीं भी किसी धर्म विशेष का वर्णन नहीं था। जो आदेश थे वे सभी मानवों के लिए थे। न कहीं किसी पर कटाक्ष था न किसी के प्रति घृणा। उसने अपने पिता एवं अन्यों को कई बार हिन्दुओं को गाली बकते सुना था। किन्तु, कैसे हैं ये लोग जो कहते हैं केवल सत्य को जानो। किसी भी पुस्तक, प्रवचन, साधु-महात्मा के कहे पर आँख बंद करके विश्वास न कर लो। उस पर मनन करो और यदि हृदय स्वीकार करे तभी उसे मानो।

इस प्रकार आधुनिक समय में उपनिषदों पर दृष्टि सर्वप्रथम मुगल सम्राट शाहजहाँ के उदारचेता ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह की जाती है।

और उससे प्रभावित होकर दाराशिकोह ने (सन् 1640) काशी आदि से पण्डितों को बुलाकर छह माह तक उपनिषदों की व्याख्या को उनसे सुना। फिर स्वयं संस्कृत सीखी और सन् 1657 में बावन उपनिषदों का फारसी भाषा में अनुवाद पंडितों की देखरेख में प्रारम्भ किया । सन् 1657 से 1674 तक सत्तरह वर्ष वह अनुवाद का कार्य करता रहा।

औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा भी दाराशिकोह से प्रभावित हुई। जब औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा ने अपने ताऊ को इस नयी मस्ती और प्रसन्नता में देखा तो एक दिन बोली—अब्बा! यह आपके भीतर जो मस्ती और शांति आ गई है यह कैसे आ गई है। दाराशिकोह ने कहा, मेरे द्वारा उपनिषदों, गीता, रामायण का अध्ययन करने

से। तब जेबुन्निसा कई दिन तक अपने विद्वान् ताऊ से इस अमृत भरे ज्ञान को प्राप्त करती रही।

कालान्तर में एक सौ वर्ष के बाद सन् 1757 में बंगाल के नवाब शुजाउद्दोला के दरबार में मिस्टर जटियल नाम का एक फ्रांसीसी राजदूत था। उसने किसी से फारसी के उन उपनिषदों को सुना और मस्त हो गया। वह फारसी के उपनिषद् फ्रांस ले गया। वहां एक सज्जन बर्नियर को दिए। बर्नियर पर भी जादू हुआ। उसने ये उपनिषद् इनका कुछ भाग पेरिस के बड़े पादरी डुपारन को सुनाया। वह प्रभावित हुआ। उसने निश्चय किया कि इन उपनिषदों को संस्कृत भाषा में पढ़ूँगा। पेरिस से भारत पहुंचा। 14 वर्ष तक संस्कृत पढ़ता रहा। फिर संस्कृत में उपनिषदों को पढ़ा। सन् 1801 में इसका लैटिन में अनुवाद किया जो जटिल एवं दुरूह था। उसकी एक प्रति जर्मनी के प्रख्यात विद्वान् एवं दार्शनिक शोपनहावर, जो रुग्ण होकर मृत्युशय्या पर पड़ा था, को भेंट की। उसको पढ़कर वह उछल पड़ा। इतना प्रमुदित एवं प्रसन्न हुआ कि वह स्वस्थ हो गया। वह कहता है—यद्यपि हमारे लिए संस्कृत को समझना कठिन है और हमारे पास वे साधन नहीं जिनसे ठीक रूप से हम संस्कृत के रहस्यों को समझ सकें। तो भी जहां तक हमने खोज की है....संसार में किसी भी पुस्तक का स्वाध्याय इतना लाभ देने वाला और आत्मा को ऊपर उठाने वाला नहीं जितना कि उपनिषदों का है। मेरी आत्मा को उपनिषदों से ही शान्ति मिली और मरने के पश्चात् भी इन्हीं से शान्ति मिलेगी।

मैक्समूलर कहता है—यदि शोपनहावर की बात को समर्थन करने की, प्रमाणित करने की आवश्यकता है तो इसका समर्थन मैं करता हूं। यद्यपि शोपनहावर किसी भी बात की जल्दी से प्रशंसा करने वाला नहीं था। 'India—what can it teach us' में वे लिखते हैं—जीवनभर मैंने उपनिषदों का अध्ययन किया है। स्वाध्याय किया है। उसके बल पर मैं कह सकता हूं कि शोपनहावर ने जो कहा है उस कथन की पुष्टि करता हूं।

पाल ड्यूसन कहता है—उपनिषद् मनुष्य की मेधा बुद्धि का अनमोल फल हैं। जीवन और मृत्यु के समय दुःख और कष्ट के समय नहीं अपितु हर समय प्रतिक्षण उनसे ऐसी शांति मिलती है जैसी और कहीं भी नहीं मिलती। भारत के लोगों के पास आत्मज्ञान और आत्म शांति का ऐसा कोष है जो संसार में और किसी के भी पास नहीं। मैं जब भारत की यात्रा के लिए गया तो बहुत सी लाभप्रद बातें मुझे मिली। परन्तु सबसे लाभदायक और सबसे महत्त्वपूर्ण है पवित्र भाषा में ऋषियों का ज्ञान देने वाले उपनिषद्।'

उसने यह भी कहा, 'अपने पड़ोसी को अपनी भांति प्रेम करो, यह ठीक है। किन्तु मैं ऐसा क्यों करूं? क्योंकि मैं अपने सुख-दुःख को स्वयं में अनुभव करता

हूं, पड़ोसी में नहीं। इसका उत्तर बाइबिल में नहीं है। वेद में केवल तीन शब्दों में है—'तत्त्वमसि'। फ्रेंच दार्शनिक विक्टर कजिन्स ने कहा कि प्राच्य दार्शनिक ज्ञान की तुलना में यूरोपीय बुद्धि घुटने टेक देती है। जर्मनी के प्रख्यात विद्वान् फ्रेडरिक श्लेगल ने कहा है कि प्राच्य आदर्शवाद के सामने उच्चतम यूरोपीय दर्शन फीका पड़ जाता है।

सर डब्ल्यू हंटर ने लिखा—जिन समस्याओं को रोमन और ग्रीक नहीं सुलझा सके। जिन प्रश्नों ने मध्यकाल के विद्वानों तथा आधुनिक वैज्ञानिकों को उद्विग्न किया। उन सबका उत्तम और उचित उत्तर भारतीय दर्शनों में उपलब्ध है।

ह्यूम (Hume) ने Dogmas of Budhism में लिखा—मैंने अरस्तू, सुकरात, अफलातून और कितने ही अन्य विद्वानों के ग्रंथ बहुत ध्यान से पढ़े हैं। परन्तु जैसी विद्या इन उपनिषदों में मैंने देखी और जितनी शांति इनसे पायी, वैसी तो और किसी भी स्थान पर मुझे नहीं मिली।

आश्चर्य तो यह है कि उपनिषदों के प्रशंसकों में यूरोप के मर्डक प्रभृति पादरियों और प्रशासकों का बाहुल्य है। ब्रिटिश आयरिश महिला डॉ. एनी बीसेन्ट ने उपनिषदों को मानव मन की सर्वोच्च उपज कहा। इस प्रकार कितने यूरोपीय विद्वानों के विचार बताए जाएं।

उपनिषदों के ज्ञान ने पूरे यूरोप में एक वैचारिक तहलका मचा दिया और इसे ही भविष्य के विश्वधर्म के रूप में मान्यता मिलने लगी।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि।
आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेद् ँ सर्वं विदितम्।।

आत्मा ही देखने योग्य है, श्रवण करने योग्य है, मनन करने योग्य है और ध्यान करने योग्य है। आत्मा के ही दर्शन, श्रवण, मनन और वास्तविक ज्ञान से इस विश्व का सारा रहस्य ज्ञात हो जाता है।

दशमेश गुरु का अलौकिक भक्ति काव्य

इस धर्मभूमि भारत में धर्मरक्षार्थ सर्वस्व न्योछावर करने वाले बलिदानी-वीरों में दशमेश गुरु श्री गोविन्दसिंहजी का नाम सदा-सर्वदा के लिए अत्यन्त आदर एवं गौरव के साथ लिया जावेगा। आधुनिक पंजाब के विकृत वातावरण में गुरु गोविन्दसिंह जी का पावन चरित्र पंजाब की धरती के किंवा सारे भारत के लालों को कर्तव्य का आलोक पथ दिखाने के लिए ज्योति स्तम्भ के समान है। विश्व विजेता स्वामी विवेकानन्द ने अपनी 'कोलम्बो से अल्मोड़ा' भाषणमाला में कहा कि सच्चा हिन्दुत्व का मूर्तिमन्त अवतार है तो गुरु गोविन्दसिंह, सच्ची भारतीयता का कोई इतिहास सुलभ आदर्श है तो गुरु गोविन्दसिंह। पंजाब, जहाँ एक ओर सन्तों-महात्माओं की धरती है, वेदों-उपनिषदों तथा गीता की धरती है। वहाँ वह दूसरी ओर विश्वविख्यात वीरों की धरती भी है। उसकी नदियाँ अभी तक भीम, अर्जुन, द्रोण, कृप, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, बन्दा वैरागी, रणजीतसिंह, हरिसिंह नलवा का यश गाती हैं। पंजाब ने सन्त एवं सेनानी का इतिहास दुर्लभ समन्वय कर के गुरु द्रोणाचार्य से गुरु गोविन्दसिंह तक महान् कर्मयोगियों तथा अध्यात्म शूरों की एक लम्बी परम्परा का निर्माण किया है। पंजाब की ही धरती पर कुरुक्षेत्र की रणस्थली में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा था—'**मामनुस्मर युध्य च**' अर्थात् हे अर्जुन! तू निरन्तर मुझे स्मरण भी करता रह और संग्राम भी करता जा। बिल्कुल इसी भाव को दर्शाते हुए गुरु गोविन्दसिंह ने गाया—

धन्य जिओ तिंह को जग में,
मुख ते हरि चित्त में युद्ध विचारे।

खालसा का उद्देश्य

त्याग, यज्ञ और बलिदान ही भारतीय संस्कृति का सार-सर्वस्व है। उसी बलिदान के निकष पर परख कर खूनी तलवार की भयावनी चुनौती के नीचे गुरु ने पाँच प्यारे चुने। वे मरजीवे अपने आप को धर्म की बलिवेदी पर चढ़ा चुके थे। गुरुवाणी में कहा है—

जै तैनूं पीव मिलन दी चाह,
सिर धर तली गली मेरी आ।

वे पाँच प्यारे अपनी तली पर अपना शीश रखकर ही आए थे। गुरु ने उन्हें अमृत छकाया तथा स्वयं भी उनके हाथ से अमृत छका। आनन्दपुर साहब में खालसा पन्थ का निर्माण करते हुए गुरु गोविन्दसिंह ने घोषणा की—

सकल जगत में खालसा पन्थ गाजे,
जगे धर्म हिन्दुन, सकल धुन्ध भाजै।

स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए, इसी देश के अनादि धर्म की जागृति के लिए ही गुरु महाराज ने सशस्त्र सेनानियों का प्रबल दल 'खालसा' सजाया तथा इसी हेतु उन्होंने अपने पूज्यपिता व अपने चारों लाडलों तथा स्वयं अपना भी बलिदान दिया।

आज पंजाब के दूषित वातावरण में कुछ पथ भ्रष्ट धर्म नेताओं ने गुरु गोविन्दसिंह की असली वाणी 'दशम ग्रन्थ' के पठन-पाठन को गुरुद्वारों में बन्द कर रखा है। इसी कारण आज का सामान्य सिख अपने सम्प्रदाय का वास्तविक हेतु ही नहीं जानता।

गुरुजी हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए इतने आतुर थे कि उन्होंने भगवती दुर्गा की उपासना करके एक महान् यज्ञ रचाया और वहीं पर खालिस आर्य वीरों का एक सम्प्रदाय निर्माण किया। उनका आह्वान है—

जे आरज तू खालस होवे।
हंसहंस सीस धर्महित खोवे।

स्वयं अपने पिता गुरु तेगबहादुर के बलिदान के विषय में गुरु गोविन्दसिंह लिखते हैं—

तिलक जंजू राखा प्रभु ताका।
कीन्हा बड़ा कलू में साका।
साधन हेतु इति जिन करी।
सीस दिया पर सी न उचरी।

गुरुजी के विवाह के समय उन्होंने स्वयं यज्ञोपवीत पहना हुआ था।

पीत मुनीत उपरना धोती जोती रवि नव छाजे।
पीत अनेऊ मनोबदन ससि पे बिजुरी भ्रांजे।

धर्म रक्षा के लिए गुरुजी शिवा भवानी से प्रार्थना करते हैं—

देहु शिवा वर मोहि इहै, शुभ कर्मन ते कबहूँ न टरूं।
न डरुं अरिसे जब जाय लरुं, निश्चय कर अपनी जीत करुं॥

गुरु गोविन्दसिंह की काली माता पर अपार श्रद्धा थी। वह प्रायः गाते थे—

काल तुही, काली तुही, तुही तेग अरुतीर,
तुही निशानी जीतकी, तुही आज जगवीर।

गो-ब्राह्मण रक्षा

गुरु महाराज का गो-रक्षा का व्रत उनकी ही अपनी वाणी में सुनिए—

यही देह आज्ञा, तुर्क खपाऊं,
गऊ घात का दोख, जग सों मिटाऊं,
यही आस पूरण करौ तुम हमारी,
मिटै कष्ट गौअन, छूटै खेद भारी।

अवतारवाद

हिन्दू धर्म-शास्त्रों के समान गुरु गोविन्दसिंह भी अवतारवाद के पोषक थे। अपने निम्न पद में तो उन्होंने गीता के 'यदा यदा हि धर्मस्य' श्लोक का भावानुवाद ही प्रस्तुत कर दिया है—

जब जब होत, अरिष्ट अपारा,
तब तब देह धरत करतारा।
आपन रूप अनन्तन धरहीं,
आपन मध्यलीन पुनि करहीं।

राम महिमा

इस राम और कृष्ण के देश में गुरु गोविन्द जैसे महान् देशभक्त एक संस्कृति रक्षक राम का विरुद गाए बिना कैसे रह सकते थे। अपने दशम ग्रंथ में उन्होंने रामायण को अपनी सुन्दर मधुर काव्यमयी भाषा में गाया है। रामायण कथा के अंत में गुरु गाते हैं—

राम कथा जुग जुग अटल,
सब कोउ भाखत नेत।
स्वर्गवास रघुवर किया,
सगली पुरी समेत।।
जो यह कथा सुने अरु गावे,
दुखपाप तट निकट न आवै।
विष्णुभक्त को यह फल होई,
आधि-व्याधि छू सके न कोई।।

कृष्ण स्तुति

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की विरुदावली गाने में तो गुरु गोविन्दसिंह कहीं-कहीं सूर, मीरा, रसखान के लोलित पदों के समान लोलित भावों को गाते हैं—

जो उपमा ब्रजनाथ की गाइ हैं,
और कवित्त न बीच घरैंगे,
पापन के तेउ पावन में,
कवि शाम भनै, कबहू न जरैंगे।
चिन्त सभैं मिटहै जु रही,
छिन में तिनके अघवृन्द टरैंगे।।
जो नर श्यामजुके परसे पग,
ते नर फेर न देह धरैंगे।।

भगवान् कृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन करते हुए गुरुजी लिखते हैं—

मुख जाहि निशापति के सम है,
वन में तिन गीत रिझयो अरु गायो।
ता सुर की धुनि निज स्रउवन में,
ब्रजहूं की त्रिया सब ही सुनि पायो।
धाई चली हरि के मिलिबे कहुं,
प्रिय श्याम सबहिं मन में जब भायो।
श्री कान्ह मनो मृगना जुबती,
धोकवे कहुं घंटक हेर बनायो।

गुरुजी ने रास लीला का कला रुचिर वर्णन कितने सुन्दर शब्दों में किया है—

जब आई है कातक की रुत सीतल,
कान्ह तबै अति ही रसिया।
संग गोपन खेल विचार करयो,
जो हुतो भगवान् महा जसिया।
अपवित्रन लोगन के जिह के पग,
लागत पाप सबै नसिया।
तिह को सुनि तिरियन के संग खेल,
निबारहु काम रहै बसिया।

उस लीला पुरुषोत्तम की लीला के दर्शन मात्र से सब काम का निवारण हो जाता है।

दशम ग्रन्थ में गुरु गोविन्दसिंहजी कृत मुरली महिमा से प्रकृति भी आनन्द रस से आप्लावित हो रही है—

रुखन ते रस चूवन लाग,
झरै झरना गिरिते सुखदाई।
घास चुगैन मृगा बन के,
खग रीझ रहे, धुन जासुन पाई
देव गंधार विलावल सारंग की
रिझ कै जिह तान बजाई।
देव सभै मिल देखता कौतक,
ज्यौं मुरली नन्दलाल बजाई।।

दशम गुरु भगवती दुर्गा की स्तुति करते हुए लिखते हैं—

नमो उग्रदन्ती अवंती सवैया,
नमो जोग जोगेश्वरी जोग मैया।
नमो केहरी वाहिनी शत्रुहंती,
नमो शारदा ब्रह्म विद्या पढ़ंती।
नमो ऋद्धिदा, सिद्धिदा बुद्धिदेनी,
नमो काल के काल की कालछैनी।
नमो ज्योति ज्वाला तुम्हें वेद गावें,
सुरासुर ऋषीश्वर नहीं भेद पायें।।

भारतीय संस्कृति के अमर गायक भक्त शिरोमणि गुरु गोविन्दसिंह के जन्म दिवस पर क्या हमारी हृदय वीणा के तारों पर उनका मधुर भक्ति-संगीत ध्वनित होकर हमारे देश तथा प्रदेश में भक्ति एवं प्रेम की मधुर स्रोतस्विनी बहा सकेगा!

16 जनवरी, 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

माता जीजा बाई

महाराष्ट्र के एक गांव में एक छोटी-सी बच्ची खेल रही थी। अकस्मात् कुछ यवन सैनिक एक मन्दिर को तोड़ने के लिए पहुंचे। उस नन्ही बच्ची ने प्रतिरोध किया। सैनिकों ने बच्ची का उपहास कर उसे एक तरफ हटा दिया और मन्दिर गिराने के लिए हथौड़ा चलाने लगे। बच्ची पुनः डटकर खड़ी हो गई। उसने कहा, पहले मेरे सिर पर हथौड़ा चलेगा फिर देवता के मन्दिर को छू सकोगे। मैं जीते-जी मन्दिर को गिराने नहीं दूंगी। देवता ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो मन्दिर को गिराने का दुष्ट प्रयास कर रहे हो? उन दिनों मन्दिर प्रतिदिन गिरते थे। रोज-रोज ऐसे दृश्यों को देखकर लोगों की संवेदना के तंतु प्रायः मर चुके थे। उन्हें अनुभव ही नहीं होता था कि कोई विशेष घटना घटित हो रही है। किन्तु बच्ची वह सब सहन न कर सकी। कुछ देर पश्चात् उसके माता-पिता को सूचना मिली और वे उसे खींचकर घर ले गए और उसकी इच्छा के विरुद्ध सैनिकों से संघर्ष को रोकने हेतु उसको एक कमरे में बंद कर दिया। बच्ची कमरे की खिड़की से देवालय गिरने का वह असह्य दृश्य देख रही थी तथा वहीं से दांत पीसकर आंसू बहाती हुई सैनिकों को चेतावनी दे रही थी कि तुम्हें इस पाप का दण्ड देकर रहूंगी। सैनिक बच्ची की मजबूरी पर हंसते थे। यह नन्ही बच्ची हमारा क्या बिगाड़ लेगी! किन्तु उस नन्ही बच्ची ने बचपन में जो संकल्प किया और उसी संकल्प की पूर्ति हेतु विवाह होने पर अपनी माता शिवा भवानी से प्रार्थना की कि मेरे अरमानों को पूरा करने वाला एक धर्मरक्षक पुत्र प्रदान करो। उस बच्ची जीजाबाई के पवित्र और दृढ़ संकल्प से ही सदा विजयी छत्रपति शिवाजी जैसा महान् इतिहास निर्माता वीर प्रकट हुआ।

जब शाहजी का स्वर्गवास हुआ। जीजाबाई शाहजी की धर्मपत्नी, सती होने लगी। शिवाजी रोने लगे। मां! तूमने मुझे जन्म दिया। तुमने लोरियां गा-गा कर मुझे संस्कारित किया। तुमने कहा कि हिन्दू पदपादशाही की स्थापना करनी है। मां! जिस पौधे को तूने लगाया, सींचा है, पाला-पोसा है। उस पौधे को फलवान तो होने दो। तुम्हारे संरक्षण में पौधा फल जाए, मैं अपने लक्ष्य तक पहुंच जाऊं, इतना तो करो।

मां को हाथ जोड़े। मां मान गई। मां अपना कर्तव्य पालन करती रही। और छत्रपति शिवाजी का राजतिलक हुआ। पांच-पांच बादशाहों को पछाड़ कर—बीजापुर, गोलकुण्डा, औरंगजेब, कुछ देशी शक्तियां, कुछ विदेशी शक्तियां—उन्होंने स्वतंत्र हिन्दू राज्य स्थापित किया। राजतिलक हुआ। शहनाइयां बजी, सब ओर गाजे-बाजे हुए। राष्ट्रीय नाच हुए—भाट आए। सब राजाओं ने मस्तक झुकाया। मां ने कहा—बेटा! मेरा कार्य पूरा हो गया है। जिस कार्य के लिए जी रही थी, वह कार्य पूरा हो गया है। अगली एकादशी पर मैं प्रयाण करूंगी। उसके 5-6 दिन बाद एकादशी आयी और जीजाबाई ने शरीर छोड़ दिया। गंगाजल, तुलसीदल लिया और शरीर छोड़ दिया। यह है धन्य माता। यह है निर्मोही माता, कर्तव्यपरायण माता, निर्माता माता। यह है परित्राता माता।

सुभद्रा

सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु ने गर्भ में ही चक्रव्यूह भेदन का रहस्य जान लिया। माता-पिता के संतानोत्पत्ति के संकल्प में मनोवैज्ञानिक शक्ति है जिसका प्रमाण इतिहास में बार-बार मिलता है। इसलिए पवित्र गृहस्थाश्रम में दम्पती के पवित्र संकल्प से उत्पन्न संतान तथा नाइट क्लबों, व्यभिचार भवनों या कामवासना पूर्ति के भोग विलास के क्षणों से उत्पन्न संतान में देव और दानव का अन्तर अनिवार्य है।

× × ×

जीवन में सपने देखने चाहिए। सपने वे होते हैं जो आपको सोने न दें, चैन से बैठने न दें।

—राष्ट्रपति अब्दुल कलाम

× × ×

हम सूर्य की तरह चमकना चाहते हैं तो सूर्य की तरह जलना होगा, तपना होगा।

—राष्ट्रपति अब्दुल कलाम

रानी अहल्या बाई

वह रानी थी अहल्या बाई। उस अहल्या बाई ने बहुत यज्ञ-याग आदि करके एक पुत्र प्राप्त किया। पुत्र नन्हा था। उसका पति पानीपत की तीसरी लड़ाई में बलिदान हो गया। पति के साथ सती होना चाहती थी। सब लोगों ने कहा—आपने इतने यज्ञ-याग आदि करके एक पुत्र प्राप्त किया है। इस पुत्र की रक्षा के लिए आप शरीर को मत त्यागो। उसने स्वीकार कर लिया। पुत्र की संरक्षिका बन गई। बड़ी धर्मपरायण थी। नीतिपरायण थी। उसी के अनुसार राज्य चलाती थी। पुत्र जवान हो गया। राजतिलक के योग्य हो गया। तब अचानक एक विचित्र घटना घटी। रानी के दरबार में शिकायत पहुंची। हे धर्मात्मा रानी! आपका जवान बेटा कुछ ऐसा पाप कर चुका है जिस पाप के लिए प्रजाजन में कोई वैसा पाप करे, चरित्रहीनता का पाप, यौनाचार का पाप, यौन की उच्छृंखलता का पाप, आप उसको प्राणदण्ड देती। रानी ने कहा—अच्छा! रानी ने जांच-पड़ताल की। देखा, ठीक है। रानी ने आदेश दिया—जाओ, मेरे इकलौते जवान बेटे को, जिसका राजतिलक कुछ दिन में होने वाला था, कहा कि इसको हाथी के पांव के नीचे कुचलवा दो। सारी प्रजा रो उठी, मंत्रिगण रो उठे। रानी ने कहा, नहीं! न्याय में अपना-पराया कोई नहीं है। सारी प्रजायें मेरी संतान हैं। सब प्रजाजन मेरे पुत्र हैं। जो न्याय इनके लिए है वही न्याय इसके लिए भी है। सब प्रजाजनों के रोते हुए भी उसने अपने बेटे को हाथी के पांव के नीचे कुचलवा दिया। एक आंसू नहीं बहाया। प्रजा रो रही है। और, जब उसका प्राण शांत हो गया। शरीर शांत हो गया। तब रानी ने कहा—अच्छा प्रजाजनो! जो मेरा रानी के नाते कर्तव्य था वह मैंने किया है। अब मुझे मां का कर्तव्य पूरा करना है। रानी का लिबास उतारा। और सफेद साड़ी पहनकर रानी ने जो विलाप किया उससे दसों दिशायें रो उठी। बड़ा कारुणिक दृश्य हुआ। उसने कहा, मुझे रानी का कर्तव्य भी निभाना है, मां का कर्तव्य भी निभाना है। अपने हाथों जाकर उसका अग्नि संस्कार किया। उसकी छोटी-सी समाधि, नर्मदा नदी के किनारे मध्यप्रदेश के महेश्वर स्थान पर आज भी है। रानी! यह थी अहल्या बाई जिसने गीता के सिद्धान्त के अनुसार अपने-पराये में कोई भेद नहीं किया। न्याय में सब समान हैं।

रसखान

रसखान श्रीकृष्ण की भक्ति में डूब कर श्रीकृष्ण के गुणगान में खो गए। रसखान ने लिखा—

मानुष हों तो वही रसखान,
बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हों तो कहा बस मेरो,
चरौं नित नंद की धेनु मंझारन।
पाहन हों तो वही गिरि को,
जु धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हों तो बसेरौ करों नित
कालिन्दी कूल कदंब की डारन।

इस प्रकार रसखान भी कृष्ण भक्ति के रंग में रँगे। गोकुल गांव उनका आराध्य बन गया। भारत के पशु-पक्षी, लता, गुल्म उनके प्राण बन गये। कालिन्दी के साथ उनका मन बहने लगा।

सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी।
दस्त तेरे बिकानी बदनामी भी सहूंगी मैं।।
देव पूजा ठानी तजि कलमा कुरानी।
नमाजहू भुलानी तेरे गुन न तजौंगी मैं।।
सांवला सलोना सिरताज सिर कुल्लेदार।
तेरे नेह दाघ में निदाघ हवै दहूंगी मैं।।
नंद के कुमार कुरबान तेरी सूरत पर।
हों तो मुगलानी हिन्दुआनी हवै रहूंगी मैं।।
—ताज बेगम

हरिदास

एक यवन भक्त गाता था, 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण...'

एक अत्यन्त सुन्दरी वरांगना ने देखा। वह चार दिन निरंतर उसके पास जाती रही और एकान्त में उससे प्रेम की भीख माँगती रही। किन्तु वह प्रतिदिन 3 लाख जाप करने का अभ्यासी उस वेश्या के हाव-भाव से कैसे विचलित हो सकता था। अंत में वह वेश्या स्वयं उस भक्त के चरणों में गिर गई तथा अपने अपराधों के लिए क्षमायाचना करने लगी। श्री चैतन्य चरणों के प्रताप से यह यवन भक्त हरिदास इतनी महान् एवं अविचल आस्था वाला महापुरुष बन गया था। हरिदास के कृष्ण प्रेम को देखकर मुसलमान शासक जलते-कुढ़ते। उन्होंने हरिदास को कई भय तथा कई प्रलोभन दिखाए किन्तु उसका कहना था, 'आप मेरी देह के टुकड़े-टुकड़े करवा दें, तो भी जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं, तब तक मैं हरिनाम नहीं छोड़ सकता। काजियों के हुक्म से हरिदास को बाजारों में होकर घुमाया गया और निरन्तर बेंतों से मार देकर हरिदास के शरीर की खाल उधेड़ी गई, किन्तु हरिदास के मुख से निरन्तर यही ध्वनि निकलती थी 'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे...' उनके शरीर से खून की धाराएं बह रही थी किन्तु उनके मुख से आह तक न निकली। वे निरन्तर हरि ध्वनि कर रहे थे। इससे भी बढ़कर वे अपने को दण्ड देने वालों के कल्याण के लिए भी प्रभु से प्रार्थना कर रहे थे। अंत में जब मुल्कपति (मुसलमान शासक) ने हरिदास जी से इतना घोर दण्ड देने के लिए क्षमा मांगी तो इस महान् भक्त ने कहा—'इसमें आपका क्या दोष है? मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार ही दुःख-सुख भोगता है।'

जफर आदमी उसको न जानिएगा,
चाहे कितना हो इल्मो फहमे बका।
जिसे ऐश में यादे खुदा न रही,
जिसे तैश में खौफे खुदा न रहा।

अर्थात् कोई व्यक्ति कितना ही पढ़ा-लिखा विद्वान् क्यों न हो वह मनुष्य कहलाने योग्य भी नहीं है जिसे ऐश में (ऐश्वर्य में) ईश्वर की याद न रहे, जिसे तैश में (क्रोधावेश में) ईश्वर के दण्ड विधान का भय भी न रहे। ऐश्वर्य में भी अंधा होकर ईश्वर के प्रेम को भूल जाता है और क्रोधावेश में भी अंधा होकर ईश्वर के न्यायविधान को भूल जाता है।

—अन्तिम मुगल बादशाह जफर

स्वातंत्र्य की बलिवेदी पर

विश्व के अनादि एवं अविनश्वर साहित्य, वेद में, मातृभूमि के प्रेम में आप्लावित हो कर हृदय से निकलने वाली निश्छल भावधारा का श्रुतिमधुर गेय पदावली में गायन किया गया है—

उपस्यास्ते अनमीवा अयक्ष्मा
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवी प्रसूताः।
दीर्घ न आयुः प्रतिबुध्यमाना
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥

अर्थात् हे मातृभूमि! तेरी गोद हमारे लिए हर प्रकार की बीमारी से मुक्त हो। इस में हम खूब खेल सकें। तू हमें दीर्घ आयु प्रदान करती रहे और हम तेरी वेदी पर बलियाँ चढ़ाते रहें।

'हे माँ! हम तेरी वेदी पर हँस-हँस कर बलियाँ चढ़ाते रहें, तेरे सौभाग्य की रक्षा के लिए हम अपने प्राण न्योछावर कर दें, अपना सर्वस्व लुटा देवें'—यह उदात्त राष्ट्रीय भावना विश्व में सभ्यता के प्रथम प्रकाश की वेला में भी भारतीय हृदय में ध्रुव संकल्प बन कर साकार हो चुकी थी। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में, भारत का ऋषि मातृभूमि के स्वर्णिम प्रभात को देख कर गीत के माध्यम से नृत्य कर उठता है—

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

'यह धरती मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।' और माँ-पुत्र का सम्बन्ध एक महान् ऋण का, एक महान् उत्तरदायित्व का सम्बन्ध है। भौतिकवाद की चकाचौंध से जिनकी आँखें अंधी हो रही हैं वे मातृभूमि को भले ही एक भूमिखण्ड मात्र मानें किन्तु जिनकी प्रज्ञा की आँख अभी बन्द नहीं हुई है तथा जिनके हृदय की श्रद्धा की क्यारियाँ अभी पूर्णतया सूख नहीं गई हैं, वे सहज अनुभव कर सकते हैं कि जिस भूमि ने उन्हें अपने अन्न-जल से पाला-पोसा, अपने अंक में रहने को स्थान दिया, जहाँ उनके अनेकानेक महान् पूर्वजों के चरित अंकित हैं, जहाँ के आचार, विचार, सभ्यता, संस्कृति ने उनके जीवन को सच्चे अर्थों में जीने

योग्य बनाया, उस मातृभूमि के प्रति हमारा अनन्त ऋण है, एक महान् कर्तव्य है, जिसको न निभाने से हम घोर कृतघ्नता के दोष से लांछित होंगे। याज्ञवल्क्य मुनि का कथन है—

'कृतघ्नेर्नास्ति निष्कृतिः।'

अर्थात् कृतघ्नता के घोर पाप से कोई छुटकारा नहीं।

एक जवान पुत्र की नसों में जवानी का गर्म रक्त बहते यदि उसकी जन्मदात्री माता पराधीन रहे तो उस की भरी जवानी पर सौ-सौ लानत है। इस ज्वलंत देशभक्ति की भावना से प्रेरित हो कर पराधीनता के कलंक को धो डालने के लिए अनेक बार माता के वीर लाल समरांगण में कूदे। उन की एक ही आकांक्षा रही—'तेरा वैभव अमर रहे माँ, हम दिन चार रहें न रहें।' सन् 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर उसी पवित्र प्रेरणा का ज्वलंत रूप था। क्रान्ति के अनेक कारण गिनाए जाते हैं। देशी राजाओं द्वारा बच्चों को गोद लेना और ब्रिटिशराज का उन्हें मान्यता न देना, अवध की बेगमों से दुर्व्यवहार, नन्द कुमार की फांसी, भारत का आर्थिक शोषण, कारतूसों में गाय या सूअर की चर्बी का प्रयोग, इत्यादि। पर इतना तो निश्चित है कि इन सब कारणों में बड़ा कारण था गुलामी के अपमानजनक तोहफा को उखाड़ फेंकने के लिए बेचैनी। बस स्वातंत्र्य प्रेम से प्रेरित भारतीय जनगण जाग उठा तथा विश्व के इतिहास ने एक बार सिद्ध कर दिखाया कि हम कोई पतित जाति के लोग नहीं हैं जो गुलामी का जीवन बसर कर मालिक के दिए हुए टुकड़ों पर ही जीते रहें। हम स्वातंत्र्य के सब से प्रमुख एवं सब से प्रबल ग्राहक हैं तथा उसके लिए बड़े से बड़ा मूल्य दे सकते हैं।

103 वर्ष पूर्व के भारत का चित्र बड़ा रोमांचकारी है।

मेरठ जहाँ क्रान्ति ज्वाला की चिनगारी सुलगी वहाँ 85 सैनिकों का चर्बी वाले कारतूसों के विषय में विरोध, शेष सैनिकों की उदासीनता। गांव लौटने पर गांव की स्त्रियों द्वारा उन जवानों के स्वाभिमान पर तीक्ष्ण व्यंग्य, मंगल पाण्डे का स्वाभिमानपूर्ण प्रतिकार, बेगम पुल पर अंग्रेज अफसरों की हत्या, मंगल पाण्डे को फांसी देने के लिए किसी भारतीय सैनिक का तैयार न होना। ये सब कुछ अत्यन्त रोमांचकारी घटनाएँ हैं जो भारतीय जनगण के हृदय में स्वाभिमान का एक ज्वार उभारने वाली हैं। मेरठ के वे प्राचीन वृक्ष, जहाँ सैकड़ों माताओं के पुत्रों को फांसियाँ दी गईं, आज भी एक मर्मस्पर्शी स्मृति लिए खड़े हैं।

मेरठ के वीर सिपाही 'मारो फिरंगी मारो फिरंगी' उच्चारते हुए दिल्ली पहुँचे। उन्होंने रात्रि को यमुना पार की। यमुना के पवित्र जल में स्नान कर उन्होंने मानो पारतंत्र्य के कलंक को धो डाला। लाल किले में बैठे बहादुरशाह को अपने साथ

मिलाया। फिर दिल्ली के गली-कूचों में 126 दिन तक जो घमासान युद्ध हुआ, उस सबका शब्दों में वर्णन ही सम्भव नहीं। दिल्ली की धरती ने अपनी ही छाती पर वह सबकुछ सहा। अपने ही पुत्रों के रक्त से नहा कर धरती कांप उठी। यमुना मैया का पानी लाल हो गया। दिल्ली के इर्द-गिर्द बनी साढ़े 5 मील लम्बी दीवार में लगे हुए तोपों के गोलों के घाव आज तक हरे हैं। 103 वर्ष पश्चात् भी वे एक मूक सन्देश दे रहे हैं।

यह खूनी दरवाजा, दिल्ली गेट के पास जहाँ बहादुरशाह के जवान बेटों को फांसी दी गई। यह चांदनीचौक, सड़क के बीचोंबीच चलने वाली नहर में अनेकों सिसकते प्राण और तड़पती आत्माएँ आज तक पड़ी हैं। फव्वारा, जहाँ मुगलों का फांसीघर था। मातृभूमि के प्रेम पर जीवन को न्योछावर करने वाले अनेक वीरों ने यहाँ हँस-हँस कर फाँसी की डोरी को चूमा।

हुमायूँ के मकबरे में बहादुरशाह को कैद किया गया। अंग्रेज कर्नल हेडीसन ने बहादुरशाह के बच्चों की हत्या करने के पश्चात् उनके शीश थाली में डाल कर बहादुरशाह को भेंट किए। उस बूढ़े पिता के कलेजे पर जैसे छुरियाँ चल गईं। फिर कर्नल हेडीसन ने जले पर नमक छिड़कते हुए बहादुरशाह को व्यंग्य से कहा—

दमदमे में दम नहीं, अब खैर मांगो जान की।
शाह, हमने देखली, तलवार हिन्दोस्तान की।

तुरंत बहादुर के भीतर से भारत का स्वाभिमान गरज कर बोल उठा—

गाजियों में बू रहेगी, जब तलक ईमान की।
तख्ते लन्दन तक चलेगी, तेग हिन्दोस्तान की।

फिर इस बूढ़े शाह के साथ क्या कुछ हुआ वह आँसू भरी कहानी है। अपने प्यारे स्वदेश से दूर रंगून में जलावतन किया गया। यह देशभक्त शाह वहीं तड़प-तड़प कर मर गया।

कानपुर और कालपी का चित्र भी बड़ा रोमांचकारी और बड़ा भयानक है। नानाजी का वह शौर्य, उनकी देशव्यापी योजना, लाल कमल और चपाती के चिह्न द्वारा देश में क्रान्ति का सन्देश प्रसारित करना, वह युद्ध नीति और वह रण चातुर्य, क्रान्ति के प्रचारकों—सन्तों-फकीरों को भारत के कोने-कोने में भेजना, विदेशों में प्रचार के लिए मन्त्री अजीमुल्ला खां को विलायत भेजना। सबकुछ एक चित्रपट की नाईं आंखों के सम्मुख दौड़ा चला आता है।

जहाँ जवानों के जौहर चमके वहाँ वृद्धों की वीरता भी पीछे नहीं रही। देशव्यापी महाक्रान्ति में बिहार प्रांत ने भी अपना गौरवपूर्ण योग दिया। जगदीशपुर के 80 वर्ष के वृद्ध राणा कुंअरसिंह की नसों में एक अभिनव जवानी जाग उठी

थी। उस बूढ़े किन्तु पक्के शिकारी ने चुन-चुन कर ब्रिटिश सेनाओं का शिकार किया। उस बूढ़े रणबांकुरे ने आरा, कालपी, बांदा, रीवां और आजमगढ़ में अपने रण कौशल से अंग्रेज को खूब छकाया। अंग्रेज उसकी व्यूह रचना देखकर दंग रह गये। विजयी कुंअरसिंह जगदीशपुर लौटते हुए जब गाजीपुर के पास गंगा पार कर रहे थे तो एक अंग्रेज की गोली से उन की भुजा आहत हो गयी। यह विचार कर कि इस कारतूस में जिस अपवित्र चर्बी का प्रयोग किया गया है, उसके शरीर में रहने से मेरा धर्म नष्ट होता है, वीर कुंअरसिंह ने अपनी ही तलवार से बायीं भुजा काट कर गंगा की धारा में समर्पित कर दी। इस प्रकार गंगा मैया को अपना हस्तकमल भेंट करने वाले वीर शिरोमणि कुंअरसिंह का यश आज तक बिहार के गांव-गांव में वहाँ की नारियों के मुख से सहज निसृत होने वाले लोकगीतों में गूंजता है—

बाबू कुंअरसिंह तुम्हरे राज बिन
नेता कुंअरसिंह तुम्हरे राज बिन
राणा कुंअरसिंह तुम्हरे राज बिन
अब न रंगैहू केसरिया
अब न रंगैहू केसरिया।

बिहार की ललनाओं के सुहाग की रक्षा करने वाले राणा कुंअरसिंह के राज बिना अब वहाँ की युवतियाँ सुहागसूचक केसरी परिधान रंगा कर क्या करें?

जहाँ गंगा और यमुना के तटों पर खून की होली खेली गयी, वहीं पंजाब की नदियाँ भी लाल हुए बिना न रहीं। 26 नंबर पलटन के कुछ थके हुए सिपाही अजनाले से 6 मील दूर रावी नदी के तट पर पड़े हुए थे। इन निहत्थे सिपाहियों पर गोलियों की वर्षा प्रारम्भ कर दी गयी। कुछ जल में डूब मरे, कुछ गोलियों से मरे, जो तैर कर एक छोटे से टापू में पहुँचे उन 282 सैनिकों को संगीनों के साये में अजनाला लाया गया। वहाँ बकरीद के दिन उन्हें बकरों के समान उड़ा दिया गया। 45 सैनिकों को एक गुम्मद में से घसीट-घसीट कर एक कुएँ में फिंकवा कर कुएँ को भरवा दिया गया और उस पर एक टीला बनवा दिया गया।

फिर कानपुर से प्रयागराज तक, जी. टी. रोड के दोनों और वृक्षों से लटकती हुई भारतीयों की लाशों का दृश्य कितना हृदयविदारक था। अत्याचार की दारुण कहानी का ज्ञान ब्रिटिश सैनिकों के उन पत्रों से प्राप्त होता है जो उन्होंने उन्हीं दिनों अपने सम्बन्धियों को लिखे। एक अंग्रेज सैनिक लिखता है, 'हमने एक बड़े गांव में आग लगा दी। जनपूर्ण इस गांव को हमने घेर लिया। आग की लपटों से लोग गांव से निकल कर भागने लगे। तब हमने उन्हें गोलियों से उड़ाना आरम्भ कर दिया।' यह पत्र Charles Balls Indian Mutiny Vol. I के पृष्ठ 243, 244

पर मुद्रित है। एक अन्य अंग्रेज का वर्णन है—'सड़कों के चारों रास्तों पर और बाजारों में जो लाशें टंगी हुई थीं उनको उतारने में सूर्योदय से सूर्यास्त तक मुर्दे ढोने वाली 8 गाड़ियाँ लगातार 3 महीनों तक काम करती रहीं। इस प्रकार एक स्थान पर 6,000 मनुष्यों को देखते ही देखते खत्म कर के सुला दिया गया।'

बिजली और आंधी का साकार पुतला तांत्या टोपे। उसका स्मरण ही कितना रोमांचकारी है। देश पर संकट के बादल देखकर, एक छोटे से आश्रम में बैठा हुआ बच्चों को संस्कृत पढ़ाने वाला उपाध्याय तांत्या एकदम सेनापति तांत्या बनकर जाग उठा। देश में जहाँ से भी सहायता की पुकार आयी; वह वहाँ पहुँचा और ब्रिटिश सेनापतियों के छक्के छुड़ा दिये। स्वयं ब्रिटिश इतिहासकारों की स्वीकारोक्ति है कि 'यदि तांत्या जैसे 6 सेनापति और हो जाते तो भारत में ब्रिटिश राज्य सदा के लिये समाप्त हो जाता।' कई इतिहासकारों का मत है कि जब ब्रिटिश सेना ने तांत्या टोपे को सोते हुए ही आकर घेर लिया तो उनके एक परममित्र नारायण राव ने तांत्या के वस्त्र पहन कर स्वयं को समर्पित किया तथा अपने वीर मित्र के मूल्यवान प्राण बचाने के हेतु वह स्वयं फांसी पर चढ़ गया।

झांसी का दृश्य कितना गौरवपूर्ण था। 22, 23 वर्ष की विधवा लक्ष्मीबाई ने बड़े-बड़े ब्रिटिश सेनापतियों के साथ एक रोमांचकारी युद्ध किया। वह मर्दानी वीरांगना लक्ष्मीबाई सचमुच दुर्गा के समान हाथों में दो नंगी तलवारें लिए, पीठ पर अपने नन्हे से बच्चे को बांधे हुए समरांगण में बिजली के समान अरिदल का संहार कर रही है। एक बार 9 दिन-रात लगातार युद्ध में बीते, बच्चा भूख-प्यास से व्याकुल हो छटपटाने लगा। युद्धस्थल से तनिक दूर हट कर रानी ने अपने भूखे पुत्र को नदी का जल पिलाया, कुछ चने खिलाये, अचानक लेफ्टीनेंट बौकर आ धमका। उसने अपना खड्गधारी हाथ बढ़ाकर उस बच्चे को दुलार देती हुई माता के ऊपर मारा।

लक्ष्मीबाई दुर्गा के समान घोड़े की एक रकाब पर पैर रखे खड़ी थी साक्षात् चंचला के समान नीचे से खड्ग का एक अद्भुत वार मारकर बौकर का वह खड्गधारी हाथ खड्ग समेत काट कर परे फेंका। बौकर चिल्लाता रहा पर रानी हवा हो गई। ऐसी वीरता की साक्षात् प्रतिमा उस मस्तानी, मरदानी रानी लक्ष्मीबाई का स्मरण हृदय को कितना उद्वेलित करने वाला है। उसके दर्शन से हृदय की सुप्त वीरता एकदम जाग उठती है। राष्ट्र के हृदय में सोयी हुई स्वातंत्र्य स्वाभिमान की भावना जीवित जागृत होकर खड़ी हो जाती है।

इन सब वीरों की वंदना, क्रान्ति के प्रचारक सन्तों-फकीरों की वन्दना, रोटी और लाल कमल की वन्दना, देश के शहीदों की अनवरत वन्दना, अनन्त वन्दना।

सन् 1857 की स्मृतियों को हृदय में संजोए हुए देश के खण्डहरों की वन्दना, खून भरी नदियों की वन्दना, युद्ध के मैदानों की वन्दना, समरस्नात दुर्गों की वन्दना, फांसी वाले वृक्षों की वन्दना, शहीदों के रक्त की वन्दना, तड़पती आत्माओं की वन्दना, सिसकते प्राणों की वन्दना, स्वातंत्र्य ज्वाला की वन्दना, भरतभूमि की, भारतमाता की वन्दना, कोटि-कोटि वन्दना, असंख्य कोटि वंदना।

अब आर्थिक गुलामी

राजनीतिक गुलामी दुनिया से उठ गई इस सदी में आकर क्योंकि राजनीतिक गुलामी महंगी पड़ने लगी। राजनीतिक की जगह आर्थिक गुलामी (इकोनॉमिक स्लेवरि) नई ईजाद हो गई। राजनीतिक गुलामी का मतलब है, एक मुल्क पर पूरा कब्जा रखो। आखिर कब्जे का फायदा यह है कि उसका शोषण करो। यह पुराना ढंग था। अब नया ढंग यह है कि कब्जा रखने में बड़ी मुश्किल होती है, तो मुल्क इनकार करता है शोषण से। झगड़ा करता है, विरोध करता है। दिन-रात गोली चलाओ, पुलिस बिठाओ, मिलिटरी बिठाओ फिर भी झंझट जारी रहती है। तब एक दूसरी नई तरकीब ईजाद हो गई, वह है इकोनॉमिक स्लेवरि—आर्थिक गुलामी, राजनीतिक नहीं। राजनीतिक रूप से मुक्त कर दो और आर्थिक रूप से भीतर बाजार में हाथ डालकर शोषण जारी रखो।

इसलिये दुनिया में सब मुल्क आजाद हो गये और सब मुल्कों को, जो उनके मालिक थे उनको आजाद कर दिया है, सिर्फ उनके बाजारों पर कब्जा कर लिया है। उनके बाजारों का शोषण जारी है। हम समझते हैं स्वतंत्र हो गये, लेकिन बाजार में जाकर देखें तो आलपीन से लेकर हवाई जहाज तक सब कहीं और से बनकर चला आ रहा है, वहाँ से आर्थिक शोषण जारी है। सारी दुनिया में यह समझ आ गई कि अब राजनीतिक गुलामी महंगी पड़ती है, अब आर्थिक गुलामी ही उचित है। बाजार पर कब्जा रखो। इसलिये सारी दुनिया स्वतंत्र हो गई है।

—आचार्य रजनीश

युग-गुरु राजा राममोहनराय

26 सितम्बर, 1833 के दिन इंग्लैण्ड के ब्रिस्टल नगर में भारतमाता के अत्यन्त गौरवशाली पुत्र का स्वर्गवास हो गया। तब से अब तक हमारी धरती अपने जन्मदाता भगवान अंशुमाली के गिर्द 125 चक्कर लगा चुकी है और उसके साथ ही भारत का भाग्य-चक्र भी कई बार ऊपर और नीचे घूम चुका है, किन्तु उस महापुरुष का यश आज तक अक्षुण्ण बना हुआ है। वे महामानव भारत के आधुनिक युग के निर्माता, युग-गुरु राजा राममोहनराय हैं। ब्रिस्टल नगर की अनन्त शान्ति में उनकी एकान्त समाधि है। वहाँ भारतमाता का लाडला इंग्लैण्ड की गोद में चिरनिद्रा में सोया हुआ है। अपने जीवन द्वारा उसने पूर्व तथा पश्चिम को निकट लाने का प्रयास तो किया ही था, अपनी मृत्यु द्वारा भी उसने प्राच्य एवं पाश्चात्य को सदा के लिये एक पवित्र सम्बन्ध से जोड़ दिया है। राजा राममोहनराय की समाधि पर एक अंग्रेज पहरेदार सदा पहरा देता है। उसके पास एक पुस्तक है जिसका दर्शन करना बड़ा आनन्ददायक है—समाधि पर आने वाले दुनिया के भिन्न-भिन्न देशों तथा भिन्न-भिन्न धर्मों के हजारों महापुरुषों द्वारा राजा राममोहनराय को समर्पित की गई श्रद्धाञ्जलियाँ उसमें अंकित हैं। पूरी सवा शताब्दी पश्चात् उस महान् भारतीय की विदेश-स्थित समाधि को अपने मानस पटल पर चित्रित कर आज भारत के कोटि-कोटि नर-नारी उस युगद्रष्टा को अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ा रहे हैं।

संस्कृतियों के संगमस्थल पर महापुरुषों का आविर्भाव होता है। प्रभु रामचन्द्र द्वारा निर्मित सागरसेतु की अपेक्षा उन द्वारा आर्य-अनार्य संस्कृतियों के मध्य निर्मित सांस्कृतिक सेतु-बंध अधिक महत्त्व का है। भारत के धर्म का पश्चिम के विज्ञान से सम्बन्ध आने पर, केवल एक धर्मगुरु की नहीं वरन् महागुरु की आवश्यकता थी। आचार्य क्षितिमोहन सेन के शब्दों में, युग की प्रबलतम मांग के उत्तर में आने वाले राजा राममोहनराय तथागत कहे जा सकते हैं—यथा अपेक्षितः तथा आगतः। उस महान् सांस्कृतिक वीर का जन्म 22 मई, 1774 के दिन बंगाल के जिला हुगली के राधानगर गांव में एक उच्च ब्राह्मण परिवार में हुआ।

तत्कालीन भारत की दशा बड़ी दयनीय थी, प्राचीन गौरव नष्ट हो चुका था। शासक भारतीय जनमत पर अपना धर्म लादने के लिये प्रयत्नशील थे। पश्चिम

के बुद्धिवाद ने भी धर्म पर तीक्ष्ण प्रहार शुरू कर दिये थे। धर्म रूढ़ियों के दलदल में फंसा हुआ था। धर्म के नेता केवल अनपढ़ पण्डा लोग थे। समाज में अनेक कुरीतियाँ घुस चुकी थीं। इस सबको बदलकर आलोक का मार्ग दिखाने वाले वीर का नाम ही राममोहनराय है। धर्म, राजनीति, समाजसुधार, शिक्षा, विश्वप्रेम, सभी क्षेत्रों में मार्गदर्शक का कार्य राजा राममोहनराय ने किया। युगद्रष्टा ने भावी भारत का एक भव्य चित्र आंखों के सामने रखकर सम्पूर्ण जीवन उसी चित्र को साकार करने के लिये अर्पित कर दिया। उस महान् द्रष्टा के विचारों के अंकुर आज तक फूट रहे हैं तथा नये-नये फूलों तथा फलों द्वारा नवीन भारत की फुलवारी को सुवासित कर रहे हैं। श्रीयुत एन.सी.ई. जकारिया के शब्दों में, 'हिन्दू नवोदय की धारा के युग में छोटे-बड़े अनेक व्यक्तित्व उत्पन्न हुए हैं। यह धारा अब भी प्रवाह में है और आज भी ऐसे व्यक्तित्वों का आविर्भाव अवरुद्ध नहीं हुआ है। किन्तु इन सारे व्यक्तित्वों के आध्यात्मिक पिता राममोहनराय हैं।'

राजा राममोहनराय की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। बड़ी अल्पायु में ही उन्होंने फारसी, अरबी, संस्कृत, अंग्रेजी, लातीनी, हिब्रू तथा ग्रीक भाषाओं में उच्च योग्यता प्राप्त की तथा अन्य धर्मग्रंथों के अतिरिक्त यहूदी और ईसाई बाइबिल का अध्ययन उनकी मूल भाषाओं में किया।

भारत के शिक्षा-शास्त्रियों में राजा राममोहनराय का स्थान इसलिये महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने ही सबसे पहले वर्तमान शिक्षा प्रणाली के लिये मांग की थी, राजा राममोहनराय बड़े दूरदर्शी थे, वे स्पष्ट देख सके थे कि भारत का भविष्य विज्ञान, शिल्प, इतिहास, राजनीति और अन्य पाश्चात्य शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने में है और यह ज्ञान भारत में अंग्रेजी द्वारा ही फैलाया जा सकता है। भारत को विश्व ज्ञान से भर देने के लिये वे अंग्रेजी को एक अच्छा साधन समझते थे, किन्तु अंग्रेजी के साथ वे अंग्रेजीयत के समर्थक कभी नहीं थे। राममोहनराय इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि भारत के प्राचीन सत्यों का यूरोप के नवीन सिद्धान्तों के साथ सामंजस्य बिठाये बिना भारत का कल्याण नहीं है। वेदान्त और वैज्ञानिकता के मणि-कांचन संयोग का संदेश जो बाद में विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ की वाणी से गुंजारित हुआ, सबसे पहले राममोहनराय की ही मेधा का फल था। उन्होंने लार्ड एम्एर्स्ट को पत्र लिखकर भारत के लिये आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा की प्रबल मांग की थी तथा अपने दो मित्रों की सहायता से सन् 1816 में हिन्दू महाविद्यालय की स्थापना की जो आगे चलकर प्रेसिडेन्सी कॉलेज के नाम से सुस्थापित हुआ। आधुनिक युग में नारी शिक्षा के लिये सबसे पहले आवाज उठाने वाले राजा राममोहन ही थे। देशवासियों को मोह-निद्रा से जगाते हुए उस क्रान्तदर्शी राजा ने कहा कि भारत की नारियों को वैसी ही विद्या-विदुषी बनना चाहिए जैसी प्राचीन काल में मैत्रेयी, गार्गी, लीलावती और विद्योत्तमा थी।

भारत के कोटि-कोटि जनगण के हृदयों पर राज करने वाले इस सर्वस्वदानी राजा ने सबसे पहले हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में घोषित किया। तब तक स्वामी दयानन्द सरस्वती या भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म तक न हुआ था तथा हिन्दी का आधुनिक काल भी प्रारम्भ न हुआ था। राजा राममोहन ने ब्रह्मसूत्रों पर अपना भाष्य बांग्ला में प्रकाशित करने से पहले हिन्दी में प्रकाशित किया था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के मत में, राममोहनराय आधुनिक हिन्दी गद्य के प्रारम्भिक लेखकों में से एक हैं। बांग्ला भाषा में भी ब्रह्म संगीत के आदि रचयिता राजा राममोहनराय ही हैं। उसी रहस्यवादी गीत-शैली का चरमोत्कर्ष कवीन्द्र रवीन्द्र की गीताञ्जलि में हुआ जिसका विश्वभर में गान हुआ। राजा राममोहन हिन्दू धर्मसुधार के पिता माने जाते हैं। ईसाई धर्म के विषय में जो बात जॉन विकलिफ के लिये कही जाती है, वही हिन्दू धर्म के विषय में राममोहनराय के लिये कही जा सकती है। राय के उदय से पूर्व की स्थिति बड़ी गम्भीर थी। बाहर से आने वालों ने हिन्दू धर्म के जर्जरित वृक्ष को देखा और परामर्श दिया कि इस प्राचीन, सूखे, फलरहित अनावश्यक झाड़-झंखाड़ को रखने से क्या लाभ? श्री रामधारीसिंह दिनकर के शब्दों में—'ईसाई पादरी हिन्दुत्व पर निन्दा की वृष्टि कर रहे थे। हिन्दू धर्म पर चारों ओर से आलोचना के बाण बरस रहे थे। किन्तु उनका उत्तर देने वाला कोई नहीं था। हिन्दू धर्म का नेता पंडा और पुरोहित वर्ग था जिसकी सबसे बड़ी पूंजी रूढ़ियाँ और अंधविश्वास था। भला यह वर्ग क्या कहकर निन्दकों को जवाब देता?' पढ़े-लिखे तथा अनपढ़ हिन्दू धड़ा-धड़ ईसाई बन रहे थे। प्रायः धर्म-परिवर्तन का उद्देश्य सामाजिक सुविधा होता था। स्वयं माइकल मधुसूदन दत्त जैसे विद्वान् ने भी स्वीकार किया है, 'मैंने पेट भरने के लिये ही ईसाई धर्म स्वीकार किया।' राजा राममोहन को तिहरा कार्य करना था। ईसाई आक्रमण से हिन्दू धर्म की रक्षा करना, निरर्थक रूढ़ियों की चट्टानों को तोड़कर हिन्दुत्व को शुद्ध धर्म के आलोक से भरना तथा सभी धर्मों के श्रेष्ठ तत्त्वों के समन्वय से विश्वधर्म का स्वरूप निर्माण करना। इतिहास साक्षी है कि राजा राममोहन इन तीनों कार्यों में यशस्वी हुए। जैसे कृषिकार धान्य बोने से पहले घास-फूस आदि को उखाड़ता है, अध्यात्मिक कृषिकार को रूढ़ियों के झाड़-झंखाड़ को उखाड़ना पड़ता है, राममोहन ने बताया कि मूर्तिपूजा केवल सीमित सामर्थ्य एवं मंद बुद्धिवाले लोगों के लिये मार्ग है जबकि आनन्द प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग है—शुद्ध अध्यात्मिक-चिंतन। चाहे वे स्वयं मूर्तिपूजा के समर्थक नहीं थे किन्तु वे किसी का हृदय दुःखाना भी नहीं चाहते थे। ब्रह्म समाज के नियमों में उन्होंने स्पष्ट लिखा था कि 'पूजा में किसी भी ऐसी सजीव या निर्जीव वस्तु की निन्दा नहीं की जायेगी जिसकी थोड़े से लोग भी पूजा या आराधना करते हों। ब्रह्म समाज हिन्दू धर्म की वह पहली अंगड़ाई थी जो विदेशियों के प्रहारों से हिन्दुत्व की नींद टूटने पर सबसे पहले प्रकट हुई थी। भारतवर्ष यूरोप के साथ जो

समन्वय खोज रहा था, उसकी झलक हमें ब्रह्म समाज के रूप में दिखायी दी। राजा राममोहन हिन्दुत्व, इसलाम तथा ईसाई धर्म, तीनों पर समान अधिकार रखते थे। हिन्दुत्व में उन्होंने वेदान्त का आश्रय लिया। उनकी साधना में गायत्री मंत्र का जाप तथा उपनिषदों का पाठ सम्मिलित था। गम्भीर अध्ययन एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण वे विश्ववादी बन गये थे। दिनकर के शब्दों में, 'भारत का कायाकल्प हुआ, निरर्थक रूढ़ियाँ धूलवत् झड़ गईं, मनुष्य की उदारता में वृद्धि हुई और हिन्दूधर्म इस रूप में खड़ा हुआ जिसे हम विश्व धर्म की भूमिका कह सकते हैं।'

राजा राममोहन धार्मिक सुधारक से भी बढ़कर समाज सुधारक अधिक थे। सती-प्रथा के उन्मूलन का श्रेय उन्हीं को मिलता है। वैसे इस प्रथा को समाप्त करने का एक असफल प्रयास पहले सम्राट् अकबर भी कर चुका था। राजा राममोहन के बड़े भाई का देहांत होने पर उन्होंने अपनी भावज को बहुत समझाया कि वह सती न होवे, परन्तु वह उस समय तो न मानी। बाद में वह चिता पर रखी गई तो उसने चीख-चिल्लाहट शुरू की और उठकर भागने का यत्न किया पर सम्बन्धियों ने बांसों से उठने न दिया और ढोल बजाकर उसके रुदन को भी दबा दिया। राममोहन के कोमल हृदय पर इस करुण दृश्य से बड़ा आघात लगा। उन्होंने मनुस्मृति तथा अन्य धर्मशास्त्रों के आधार पर यह प्रमाणित किया कि बलपूर्वक किसी नारी को जला डालना घोर पाप है। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप उनके देहान्त से 4 वर्ष पूर्व ही सन् 1829 में लार्ड विलियम बेंरिङ्क ने सती-प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। भारत में आज पहली बार बहु विवाह प्रथा अवैध घोषित हुई है, किन्तु राजा राममोहनराय ने डेढ़ शती पूर्व ही इसे हिन्दू धर्मशास्त्रों के विरुद्ध घोषित किया था। स्त्रियों के अधिकारों तथा सम्पत्ति-उत्तराधिकार पर भी उन्होंने ऐसे मत स्थापित किये थे जो आज मान्य हो रहे हैं।

सन् 1857 के महान् भारतीय संग्राम से आधी शती पूर्व ही राजा राममोहन में हमें भारतीय स्वातंत्र्य की एक ज्वलन्त भावना के दर्शन होते हैं। इंग्लैण्ड के सम्राट् को उन्होंने लिखा कि यदि भारत के साथ उदारता का व्यवहार हुआ तो भारत ब्रिटेन का मित्र बन सकता है अन्यथा वह एक पक्के शत्रु के समान स्थायी संकट भी बन सकता है। उनकी आत्मा की सबसे बड़ी आकांक्षा स्वतंत्रता ही थी। भारत की गुलामी की शृंखलाओं को तोड़ने के लिये प्रयत्नशील उस स्वातंत्र्यवीर के विषय में उनके समकालीन एक अंग्रेज लेखक ने लिखा—'वह या तो स्वतंत्र होकर रहेगा या रहेगा ही नहीं।' उन्होंने भारत में स्वतंत्र प्रेस के लिये प्रयत्न किया तथा प्रेस रेग्यूलेशन ऐक्ट का घोर विरोध किया।

विश्व प्रेम तथा अन्तरराष्ट्रीयता के क्षेत्र में भी राममोहनराय युग के पथ-प्रदर्शक थे। स्पेन में वैधानिक शासन हो जाने का समाचार सुनकर वे प्रफुलित

हो गये तथा उन्होंने कोलकाता के टाउन हॉल में एक महान् भोज दिया। उन्होंने आयरलैंड के साथ उसकी राजनीतिक स्वाधीनता के संघर्ष में भी सहानुभूति प्रकट की। इंग्लैण्ड जाते हुए वे मार्ग में वे-कैप पर रुके तथा चाहे वे तनिक लंगड़ाते हुए ही फ्रांस के स्वाधीनता के झण्डे तक चलकर गये तथा फ्रांस के झण्डे को स्पर्श कर फ्रांस की राज्य-क्रान्ति की भावना का अभिवादन किया। जब नेपल्स में स्वाधीनता आन्दोलन असफल हो गया तो उन्होंने अपने मित्रों से मिलना बंद कर दिया। लीग ऑफ नेशन के निर्माण से एक शताब्दी पूर्व राजा राममोहनराय के ऐसे उदार अन्तरराष्ट्रीय विचार थे। राममोहनराय के अपने विचार में, 'सारी मनुष्य-जाति एक परिवार है तथा जो अनेक जातियाँ और राष्ट्र हैं वे उसी एक परिवार की शाखायें हैं।' आज भारत की वैदेशिक नीति भी इसी भावना से अनुप्राणित है, जिसका मूल्यांकन करते हुए भी दिनकर ने लिखा है—'यूरोप की विश्व मानवता संकीर्ण थी, क्योंकि उसमें पूर्वी जगत् के लिये स्थान नहीं था, दुर्बल जातियों की गणना नहीं थी।.... किन्तु राममोहनराय की विश्व मानवता का वृत्त बहुत अधिक विस्तृत था जिसमें समस्त भू-मण्डल की स्वतंत्र, समृद्ध, पराधीन, दलित और निम्नोन्नत जातियों के लिये एकसमान स्थान था।'

उस युगद्रष्टा एवं युगस्रष्टा राजा राममोहनराय को उनकी 125वीं श्राद्ध तिथि पर कोटि-कोटि श्रद्धाञ्जलियाँ सादर समर्पित हो।

27-9-1958
आकाशवाणी वार्त्ता

प्रत्येक राष्ट्र के प्राण भी किसी बिन्दु विशेष में केन्द्रित होते हैं। वहीं उस राष्ट्र का राष्ट्रीयत्व बसता है और जब तक उस मर्म स्थान पर आघात नहीं होता तब तक वह राष्ट्र मर नहीं सकता....। धर्म ही हमारे तेज, बल, इतना ही नहीं हमारे राष्ट्रीय जीवन का मूलाधार है।....यदि तुमने इस मर्मस्थल को छोड़ दिया तो सावधान! तुम सर्वनाश को निमंत्रण दे दोगे।

—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी दयानन्द सरस्वती

'मनुष्य उसे कहना चाहिये जो अत्याचारी से न डरे, धर्मात्मा और निर्बल से डरता रहे। इस कार्य में चाहे उसे बड़ा भारी दुःख मिले या जान भी चली जाए किन्तु वह अपने मानव धर्म से कभी अलग न हो।' स्वामी दयानंद द्वारा दी हुई मनुष्य की यह परिभाषा स्वयं उन पर भी कितनी अच्छी तरह लागू होती है। वे मानवता के मुकुटमणि थे और मानवता के उद्यान के एक सुन्दर खुशबूदार फूल थे जिसकी सुगन्ध युग-युग तक फैली रहेगी।

'मैं लोगों को बंधनों से छुड़ाने के लिये आया हूँ, बांधने के लिए नहीं।' इन शब्दों से दया के सागर ने आज से पूरे 75 साल पूर्व अपने को विष देने वाले रसोइये को कुछ पैसे देकर भगा दिया ताकि पुलिस उसे पकड़ न ले। 30 अक्टूबर, 1883 की वह संध्या जब मिट्टी के हजारों दीये दीपावली पर जल उठे, तो वेदज्ञान का जिन्दा दीपक स्वामी दयानंद सदा के लिए बुझ गया। स्वामीजी का महानिर्वाण हो गया। उनका शरीर रूपी दीया चाहे उसी दिन टूट गया पर उनकी आत्मा का प्रकाश अभी भी संसार में जगमगा रहा है।

प्रसिद्ध इतिहासकार एच. जी. वैल्स ने अपने ग्रन्थ 'विश्व का इतिहास' में यह लिखा है कि हजरत ईसा मसीह ने सूली पर चढ़ते समय यह कहा, 'भगवान्, आप मेरा साथ क्यों छोड़ रहे हैं?' यह शब्द कोई अधिक गौरव प्रकट नहीं करते। स्वामी दयानंद के प्रयाण समय का वाक्य, 'प्रभु, आपकी इच्छा पूर्ण हो।' बहुत ऊँचा भाव प्रकट करता है।

साधु टी. एल. वासवानीजी ने कहा है, 'मैं कभी आर्य समाज का सदस्य नहीं रहा हूँ।....पर स्वामी दयानंद सदा मेरे लिये अनोखी खिंचावट वाला चुम्बक रहे हैं। मैं उनकी याद में आनन्द की हिलोरें लेता हूँ।'

योगीराज अरविन्द घोष लिखते हैं कि यदि भारत के महापुरुषों को हिमालय की चोटियाँ मान लें तो ऋषि दयानंद एक मजबूत ऊँची चोटी के समान है जो साक्षात् बल की मूर्ति है जिसके सिर पर की हरियाली वातावरण को शुद्धता प्रदान

करती है और जिसके वक्ष से फूटकर उठे जल का झरना सारी घाटी को शीतलता और जीवन प्रदान करता है।

भारत में एक नई क्रान्ति के अग्रदूत स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म गुजरात के काठियावाड़ के मौरवी राज के टंकारा नामक ग्राम में हुआ था। गिरनार पर्वत की चट्टानों जैसा बल एवं तट से टकराती लहरें और सागर जैसी गहन गम्भीरता—यह सब स्वामीजी के व्यक्तित्व में समा गए। उनका जन्म गुजराती ब्राह्मणों की औदीच्य शाखा के एक सामवेदी कुटुम्ब में हुआ था। शिवरात्रि के उत्सव में उन्हें बोध प्राप्त होने की घटना जगत प्रसिद्ध है। यह एक विचित्र प्रसंग है कि भगवान् कृष्ण का जन्म मथुरा में हुआ। पर उन्होंने अपना साम्राज्य द्वारिका नगरी में बनाया। इसके विपरीत स्वामी दयानंद का जन्म गुजरात में हुआ। पर वे अपनी शिक्षा प्राप्त करने के लिये मथुरा में आ बसे। पर स्वामीजी के उपदेश का नन्हा पौधा न तो गुजरात में पैदा हुआ और न ही मथुरा में अच्छी तरह फला। यह तो पंजाब की धरती पर खूब फूला फला। पंजाब की धरती जहाँ, सब से प्रथम वेदों का ज्ञान हुआ, वहीं पर स्वामीजी का वेदों का संदेश अपनी जड़ें जमा सका। बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि स्वामी दयानंद ने मथुरा में जिस नेत्रहीन गुरु स्वामी विरजानंद से वेदों की शिक्षा ग्रहण की और जिन्हें गुरु दक्षिणा स्वरूप गुरु के आदेशानुसार देश भर में घूम-घूम कर वेदों का उपदेश किया उन स्वामीजी (विरजानंदजी) का जन्म पंजाब के प्रसिद्ध नगर करतारपुर में हुआ था। इसलिये स्वामी दयानंद में गुजरातियों-सी दृढ़ता, मथुरावासियों-सी विद्वत्ता एवं पंजाबियों जैसा जोश—यह सबकुछ समा गया था।

श्री रामधारीसिंह दिनकर के शब्दों में—जिस प्रकार हमारी राजनीति के क्षेत्र में वीरता का तेज सबसे पहले लोकमान्य तिलक के रूप में प्रकट हुआ उसी प्रकार संस्कृति के क्षेत्र में भारत का गौरव सबसे पहले स्वामी दयानंद के रूप में प्रकट हुआ। ब्रह्म समाज एवं प्रार्थना सभाएं जैसी कुछ संस्थाएं समाज सुधार कार्य में लगी थीं किन्तु उनके अन्दर यह दुःख सताता रहता था कि वे विदेशियों की नकल कर रहे हैं। स्वामी दयानंद ने ललकार कर कहा कि हमारा सच्चा धर्म वैदिक धर्म ही है, अतः इसे अपनाकर ही हम विश्व-विजयी हो सकते हैं।

स्वामी दयानंद का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है—वेदों का उद्धार करना। हर देश का एक गौरव होता है, उसे भुलाकर वह जाति मिट जाती है। भारत का यह गौरव रहा है कि जब बाकी सारा संसार गफलत की नींद में सो रहा था, अमरीका का कुछ पता ही नहीं था और यूरोप के लोग मनुष्यों और पशुओं का कच्चा मांस खाते थे, तब सब से पहले भारत के ऋषियों ने वेदों के ज्ञान की मशाल हाथ में लेकर सारे विश्व को प्रकाश दिया। ऋग्वेद से ज्यादा पुरातन ग्रन्थ विश्व के किसी पुस्तकालय में

नहीं है। 19वीं सदी में भारत के गुलाम होने के कारण कुछ पश्चिमी विद्वानों ने वेदों को गड़रियों का गीत कह कर पुकारना शुरू किया। इस से भारत के सम्मान को बहुत क्षति पहुँची। इस समय भारत के गौरव की रक्षा हेतु स्वामी दयानंद सरस्वती आए। उन्होंने सकल भारत में घोषणा की कि वेद ही सभी विद्याओं का मूल है। स्वामीजी प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् बैचलर एवं फ्रांसीसी विद्वान् मोनियर विलियम से मिले और उन्हें वेदों का वास्तविक ज्ञान समझाया। स्वामीजी द्वारा वेदों पर भाष्य देखकर प्रो. मैक्समूलर भी जो एक बार अपने मन में वेदों के प्रति कुछ हीन विचार बना चुका था, दुबारा वेदों का भक्त बन गया। योगीराज अरविंद घोष ने लिखा है कि वेद विद्या के जो द्वार समय के बीत जाने पर बंद हो गए थे, ऋषि दयानंद ने उन्हें खोलने की चाबी ढूंढ़ ली और इस तरह कैद हुए ज्ञान के झरनों के बंधन खोल दिये।

स्वामी दयानंद का जीवन तपस्या की भट्ठी में तप कर पवित्र हो गया था। केवल 21 वर्ष की आयु में वे घर से बाहर निकल आये और लगभग 20 वर्ष तक वे वेद ज्ञान की खोज में जगह-जगह विद्वानों के पास आते-जाते रहे। वे आदित्य ब्रह्मचारी थे, अतः ब्रह्मचर्य में ही उन्होंने संन्यास ले लिया। उन्होंने पथ भ्रष्ट एवं योग भ्रष्ट समाज को समझाया कि ब्रह्मचर्य से ही हमारा राष्ट्र बलवान बन सकता है। एक बार स्वामीजी जालंधर में थे तो एक सेठ, जो अपनी बग्घी में बैठ कर स्वामीजी से मिलने आया था, स्वामीजी से बोला कि आप तो ब्रह्मचर्य की बहुत महिमा गाते हो पर आपने कोई ब्रह्मचर्य का चमत्कार नहीं दिखाया। स्वामीजी मुसकराते रहे, वापस जाते समय सेठजी ने घोड़ों को चाबुक मारी तो वे हिल भी नहीं पाए। उन्होंने मुड़कर देखा कि स्वामीजी एक हाथ से बग्घी को पकड़े हुए थे। वह सेठ बहुत लज्जित हो गए और स्वामीजी के चरणों में गिर पड़े। इसी प्रकार राजस्थान में अपने पर आक्रमण की नीयत वाले राजा की तलवार पकड़ कर दो टुकड़े कर दिए।

संन्यासी के रूप में स्वामीजी का उपदेश सारे विश्व के कल्याण के लिये था। परन्तु वे महान् देशभक्त भी थे। उन्होंने गांधी युग से बहुत पहले ही विदेशी वस्तुओं के विरोध का प्रचार किया था। स्वराज की मांग तो उन्होंने कांग्रेस के जन्म से पहले ही कर दी थी कि अच्छे से अच्छा विदेशीराज भी अपने देश के स्वराज्य की बराबरी नहीं कर सकता है। कुछ विद्वानों का मत है कि सन् 1857 की आजादी की महान् क्रान्ति में वे गुप्त रूप से क्रान्ति को सफल बनाने में सहायता कर रहे थे।

शिक्षा के क्षेत्र में उनकी देन महान् है। प्राचीन गुरुकुलों के ढंग पर निःशुल्क उच्च भारतीय शिक्षा के बारे में उन्होंने बहुत अच्छा कार्य किया। शिक्षा का प्रकाश उन्होंने सबके लिये खोल दिया, क्या स्त्री, क्या शूद्र। ज्ञान के अमृत से कोई वंचित नहीं रहना चाहिये। पंजाब में कन्या पाठशाला खोलने के विषय में सबसे पहला प्रयास स्वामीजी ने ही किया।

स्वामीजी महान् समाज सुधारक थे, उन्होंने कुरीतियों, रूढ़ियों और फिजूल रीतियों का विरोध किया। उन्होंने धर्म को बुद्धि का सहारा देकर खड़ा किया। विधवा पुनर्विवाह का उन्होंने समर्थन किया और बाल विवाह का घोर विरोध किया। जाति प्रथा के विषय में स्वामीजी का कथन है कि जाति जन्म से नहीं मिलती, बल्कि गुण, कर्म और स्वभाव से मानी जानी चाहिये। यदि ब्राह्मण होकर कोई शर्मा 'बूट फैक्टरी' खोलता है तो उसका कर्म तो शूद्र का ही है। इस प्रकार कोई शूद्र होकर भी विद्वान् और धर्मात्मा हो तो वह महर्षि वाल्मीकि जैसा पूज्य है।

भाषा के विषय में स्वामीजी ने सबसे पहले रोशनी दिखायी। स्वयं गुजराती होते हुए भी उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकारा और सत्यार्थप्रकाश हिन्दी में लिखा। स्वामीजी हिन्दी गद्य लिखने वाले लेखकों में उच्च माने जाते हैं। वे संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे और संस्कृत के प्रचार-प्रसार में बहुत योगदान दिया। इस प्रकार यह मृतप्राय भाषा फिर जीवित हो उठी। हिन्दी का पढ़ना-लिखना उन्होंने आर्य समाज के नियमों में ही मिला दिया। इस प्रकार हजारों-लाखों लोगों ने हिन्दी सीखी, पढ़ी। इस प्रकार स्वामी दयानंद भाषा की स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता, सांस्कृतिक स्वतंत्रता, राजनीतिक और विचारधारा की स्वतंत्रता के महान् अग्रदूत थे। भारत के कृतज्ञ नर-नारी उनकी सेवा को सदैव याद रखेंगे।

30-10-1958
आकाशवाणी जालंधर से प्रसारित वार्त्ता

जब मनुष्यों के मन में अपने ही प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी तब समझ लेना चाहिये कि वह विनाश की अन्तिम सीढ़ी पर आ गया है। मेरी ओर देखिये, मैं हिन्दू जाति का एक तुच्छ प्राणी हूँ, फिर भी मुझे अपनी जाति का अभिमान है अपने पूर्वजों पर गर्व है। अपने को हिन्दू कहने में मुझे गर्व का अनुभव होता है। मुझे अभिमान है कि आपके अयोग्य सेवकों में भी एक हूँ। मुझे इस बात पर घमंड है कि मैं आपका देशवासी हूँ जो ज्ञानियों के वंशज है तथा संसार में अद्वितीय महाप्रतापी ऋषियों के वंशज है। अतः अपने में विश्वास रखिये और अपने पूर्वजों पर लज्जित होने के बजाय उन पर अभिमान कीजिये।

—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द तथा उनका राष्ट्रीय स्वाभिमान

विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्द हमारे स्फूर्तिदाता, प्राणदाता, हमारे मान रक्षक, मार्गदर्शक एवं आने वाले सभी युगों के लिए हमारे गौरव एवं गरिमा के अमर देवता बन गए हैं।

इन महानतम युगपुरुष ने जहां संसारभर में भारतमाता के मुख को उजागर किया वहीं अपने सत्य के महान् संदेश से समस्त भूमण्डल को हिला कर दिखा दिया।

भारत की राष्ट्रीय एकता के तो वे मूर्तिमान अवतार ही थे। श्री रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में '**अभिनव भारत को जो कुछ कहना था, वह विवेकानन्द के मुख से उद्गीर्ण हुआ। अभिनव भारत को जिस दिशा की ओर जाना था, उसका स्पष्ट संकेत विवेकानन्द ने दिया।....विवेकानन्द वह समुद्र है जिसमें धर्म और राजनीति, राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीयता तथा उपनिषद् और विज्ञान सबके सब समाहित होते हैं।**' श्री दिनकर पुनः कहते हैं, 'जिस स्वप्न के द्रष्टा कवि विवेकानन्द थे, गांधी और जवाहरलाल उसके इंजीनियर हुए।'

स्वयं जवाहरलाल जी की साक्षी है, 'विवेकानन्द आधुनिक भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के महान् संस्थापकों में से एक थे। तथा बाद में इस आन्दोलन में जिन भी लोगों ने भाग लिया उनमें से अधिकांश ने अपनी स्फूर्ति विवेकानन्द से ही प्राप्त की।'

नेताजी सुभाष—बलिदानी वीरों के मणिमुकुट नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के शब्दों में, '**स्वामी विवेकानन्द का धर्म राष्ट्रीयता को उत्तेजना देने वाला धर्म था। नयी पीढ़ी के लोगों में उन्होंने भारत के प्रति भक्ति जगायी। उनमें अतीत के प्रति गौरव और भविष्यत् के प्रति आस्था उत्पन्न की। उनके उद्गारों से लोगों में आत्मनिर्भरता एवं स्वाभिमान के भाव जगे हैं।**'

विश्व विजेता विवेकानन्द—लगभग 1,000 वर्षों तक भारत के शीश पर इसलाम की तलवार तनी रही। किन्तु, वह भारत की आत्मा को पराभूत न कर सकी। शताब्दियों तक भारत में शासन करने के पश्चात् भी इसलाम भारत की आत्मा पर शासन न कर सका। अंग्रेजों ने कूटनीति से भारत के मन एवं मस्तिष्क

को बंदी बनाने का प्रयत्न किया। ऐसे समय में जब भारत अंग्रेजों की मानसिक गुलामी का शिकार हो रहा था उस समय जगत् विजेता स्वामी विवेकानन्द भारत के ज्ञानदाता एवं मुक्तिदाता बन कर आए। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता के गढ़ के भीतर घुसकर अकेले ही समस्त पश्चिमी जगत् को पराभूत कर पश्चिम के वक्षस्थल पर भारत की श्रेष्ठता की छाप लगा दी।

मानसिक गुलामी की निंदा—पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण की भर्त्सना करते हुए वे कहते हैं—'क्या दूसरों की हां में हां मिलाकर, दूसरों की ही नकल कर, दूसरों का ही मुंह ताक कर, इस दासों की-सी दुर्बलता, इस घृणित निष्ठुरता से ही तुम बड़े-बड़े अधिकार प्राप्त करोगे? क्या इसी लज्जास्पद कापुरुषता से तुम वीरभोग्या स्वाधीनता प्राप्त करोगे? ऐ भारत! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती है। भूलना नहीं कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ हैं शंकर हैं। मत भूलना कि तुम्हारे विवाह, धन और जीवन, व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं है। अपितु माता के लिए बलि स्वरूप रखे गए हैं।'

स्वामीजी का भारत-भक्ति से आप्लावित हृदय पुकार उठा—'प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। भारत की मिट्टी ही मेरा स्वर्ग है। भारत के कल्याण में ही मेरा कल्याण है।'

राष्ट्रीय एकता का आधार—स्वामी विवेकानन्द के मत में राष्ट्रीय एकता के लिए धर्म एवं आध्यात्मिकता का आधार आवश्यक है। वे कहते हैं—'शताब्दियों से होते आने वाले आघातों को झेलकर भी हम टिके रह सके, इसका एकमेव कारण यह है कि हम सदैव स्वधर्म के प्रति सजग रहे और उसके लिए निरन्तर अपने सर्वस्व की बलि चढ़ाते रहे। हमारे पूर्वजों ने दृढ़ता से समस्त आपत्तियों को झेला। सहर्ष मृत्यु का भी वरण किया। पर अपने स्वधर्म की रक्षा की। विदेशी विजेताओं ने एक-एक करके हमारे मंदिरों को भूलुण्ठित किया। किन्तु, जैसे ही वह झंझा का झोंका गया, उन मंदिरों के शिखर पुनः आकाश को छूने लगे। आज भी गुजरात के सोमनाथ सरीखे और दक्षिण भारत के प्राचीन मंदिर हमें अपने जातीय इतिहास के आन्तरिक स्वरूप का वह भव्य दर्शन कराते हैं, जो हमें लाख ज्ञान की पुस्तकों में भी न मिल सकेगा। हम देखें उन मंदिरों की ओर। उन पर परकीयों के सहस्रों आक्रमणों और हमारे सहस्रों पुनरुत्थानों की कहानियां अंकित हैं। आक्रमण पर आक्रमण होने पर भी हर बार आक्रमणकारियों से ध्वस्त मंदिर अपनी पूर्व विभा और शक्ति के साथ खण्डहरों में से जाग उठे। यही है हमारा राष्ट्रीय दृष्टिकोण। यही है हमारी राष्ट्रीय जीवनधारा। हम इसका अनुसरण करेंगे तो इसी से हमारे वैभव का पथ प्रशस्त होगा। भावी भारत के निर्माण के लिए समय की चट्टानों के बीच से हमें जो प्रथम पग चलना होगा, वह है एकीकरण का। हममें से प्रत्येक को यह

संदेश सुनाया जाए कि हम हिन्दू हैं। अब समय आ गया है कि हम अपने अस्तित्व की रक्षणार्थ क्षुद्र-भेदों और आपसी कलह को भूल जाएं। बिखरी हुई आध्यात्मिक शक्तियों का संकलन ही भारत की सच्ची राष्ट्रीय एकता होगी। भारतीय राष्ट्र का अधिष्ठान आध्यात्मिक स्वरों से झंकृत होने वाले हृदयों की एकता पर ही होगा।'

स्वदेश-भक्ति की कसौटी—स्वामी विवेकानन्द की स्वदेश भक्ति की कसौटी भी बड़ी अनूठी रही है। भारत के गौरवसर्वस्व वे महापुरुष कहते हैं—'मैं स्वदेश भक्ति में विश्वास करता हूं। पर स्वदेश भक्ति के सम्बन्ध में मेरा एक आदर्श है। बड़ा काम करने के लिए तीन चीजों की आवश्यकता होती है। बुद्धि और विचार शक्ति हम लोगों की थोड़ी सहायता कर सकती है। वह हमको थोड़ी दूर अग्रसर कर देती है और फिर वहीं ठहर जाती है। किन्तु, हृदय के द्वारा ही महाशक्ति की प्रेरणा होती है। प्रेम असम्भव को सम्भव कर देता है। जगत् के सब रहस्यों का द्वार प्रेम ही है। अतः मेरे भावी संस्कारको! मेरे भावी देश-भक्तो! तुम हृदयवान बनो। क्या तुम समझते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों सन्तान पशु तुल्य हो गई हैं? क्या तुम हृदय में अनुभव करते हो कि करोड़ों आदमी आज भूखे मर रहे हैं और वे कई शताब्दियों से इस भांति भूखों मरते आ रहे हैं? क्या तुम समझते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को आच्छन्न कर लिया है? क्या तुम यह सब समझ कर कभी अस्थिर हुए हो? क्या तुम इससे अनिद्रित हुए हो? क्या कभी यह भावना रक्त में मिलकर तुम्हारी धमनियों में बही है? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से कभी मिलीं हैं? क्या उसने तुम्हें कभी पागल बनाया है? क्या कभी तुम्हें दरिद्रता और नाश का ध्यान आया है? क्या तुम अपने नाम-यश, सम्पत्ति, यहां तक कि अपने शरीर को भी भूल गये हो? क्या तुम ऐसे हो गए हो? तब जानो कि तुमने स्वदेश भक्ति की प्रथम सीढ़ी पर पैर रखा है।'

'यहीं तो हमारी जाति के अन्तिम तथा सर्वाधिक तेजस्वी वीरों में से एक, गुरु गोविन्द सिंह उदय हुए। वे महान् गुरु, धर्म के हेतु, दलितों के उद्धार हेतु अपना तथा अपने निकटतम स्वजनों का रक्त बहाने के पश्चात्, जब उन्हीं लोगों द्वारा उत्पीड़ित तथा परित्यक्त हुए जिनके हेतु यह रक्त बहाया गया था, तब वे विरक्त होकर, बिना अपने देश तथा समाज के विरुद्ध एक भी शब्द बोले, बिना असन्तोष का एक भी वचन कहे, दक्षिण में चले गये।

भारत के पुनर्गौरवीकरण के लिए आप में से प्रत्येक को गुरु गोविन्दसिंह बनना होगा, उनका सच्चा अनुयायी बनना होगा।'

जगद्गुरु भारत पाश्चात्य देशों में प्रचारक भेजे

'....अरे वह नास्तिक कैसे!!' ज्यों ही वे विशाल भवन से निकले, एक व्यक्ति ने अचम्भे से कहा, 'और हम लोग उनके देश में प्रचारक भेजते हैं। इससे अधिक उपयुक्त तो यही होगा कि वे ही हमारे देश में प्रचारक भेजें।

—डॉ. एनी बीसेण्ट

(शिकागो धर्म-सम्मेलन में, स्वामी विवेकानन्द की झांकी, 1893)

भारत में पादरी भेजना मूर्खतापूर्ण

'वे (स्वामी विवेकानन्द) निस्सन्देह शिकागो धर्म सम्मेलन में महानतम विभूति हैं। उन्हें सुनने के पश्चात् हम अनुभव करते हैं कि इस ज्ञानवान राष्ट्र में ईसाई पादरी (मिशनरी) भेजना कितना मूर्खतापूर्ण है।'

—दि न्यूयार्क हेरल्ड

ईसाई पादरियों को स्पष्ट चेतावनी

'आप (पादरी) लोगों को शिक्षित और प्रशिक्षित करते हैं, उन्हें वस्त्र-विभूषित करते हैं तथा उन्हें वेतन देते हैं—यह सब किसलिए? क्या मेरे देश में आकर मेरे पूर्वजों को, मेरे धर्म को तथा मेरे देश की प्रत्येक वस्तु को गाली एवं अभिशाप देने के लिए? वे मन्दिर के निकट से गुजरते हुए कहते हैं, 'अरे मूर्ति पूजको! तुम सभी नरक में जाओगे।' परन्तु हिन्दू विनम्र होता है, वह हँसता है और यह कहता हुआ चला जाता है, 'मूर्खों को बकने दो।'

....और जब कभी तुम्हारे पादरी हम लोगों की आलोचना करते हैं उन्हें यह याद रखना चाहिए, यदि समस्त भारत खड़ा हो जाय और हिन्द महासागर के तल का सारा कूड़ा-कचरा लेकर पश्चिमी देशों के मुख पर फेंक दे, तो भी जो अत्याचार तुम हम लोगों के प्रति करते हो, उसकी तुलना में यह कार्य अणुमात्र भी न होगा।'

—स्वामी विवेकानन्द

(डिट्रायट में ईसाई पादरियों के प्रति)

(लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ 317-318; प्रकाशक : अद्वैत आश्रम, कोलकाता)

स्वार्थ एवं तलवार द्वारा धर्मान्तरण

'तुम्हारी सारी थोथी डींग एवं दर्प-वाचालता के उपरान्त भी तुम्हारी ईसाइयत बिना तलवार के कहाँ सफल हुई है? सारे संसार में मुझे एक भी स्थान तो दिखाओ, केवल 'एक', मैं कहता हूँ ईसाई धर्म के समस्त इतिहास में केवल एक उदाहरण दिखाओ; मैं दो नहीं चाहता। मैं जानता हूँ तुम्हारे पूर्वज किस प्रकार धर्मान्तरित हुए। उन्हें या तो धर्मान्तरित होना पड़ता अथवा मृत्यु के घाट उतरना पड़ता। यही अन्तिम निर्णय था। प्रत्येक वस्तु, स्वार्थ जिसका आधार है, प्रतिस्पर्धा ही जिसका दायाँ हाथ है और विलास ही जिसका लक्ष्य है, उसका विनाश आज या कल अवश्यंभावी ही है।'

—स्वामी विवेकानन्द

(लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ 318; प्रकाशक : अद्वैत आश्रम, कोलकाता)

निष्काम कर्म गीता का ज्ञान
लोभ से धर्म पादरी की शान

× × ×

पश्चिमी देशों की सेनाओं के चार अंग है—थल सेना, जल सेना, वायु सेना और चर्च।

—श्री जे.सी. कुमारप्पा प्रख्यात गाँधीवादी ईसाई विचारक

× × ×

उपरोक्त सेना के प्रथम तीन अंग ही स्पष्ट दिखायी देते हैं किन्तु चर्च अपने स्वरूप के कारण उजागर नहीं होता। इस दृष्टि से तानाशाह स्टालिन ने चर्च को 'अदृश्य सेना' की संज्ञा दी थी। उसका अनुभव था कि 'चर्च' का सहयोग या विरोध भी विशिष्ट स्थितियों में अपना अर्थ रखता है।

× × ×

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानांच विमानना।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

(पंचतंत्र 3.192)

जहाँ अयोग्य का सम्मान हो, योग्य का तिरस्कार हो वहाँ तीन बातें—अकाल, मौत और भय है। (आज यही राष्ट्र में हो रहा है।)

महामानव : स्वामी रामतीर्थ

राष्ट्र-देवो भव

मैं अनुभव करता हूं कि मैं भारत हूं—सम्पूर्ण भारत मैं हूं। भारत भूमि मेरा अपना शरीर है। कुमारी अन्तरीप मेरे चरण हैं। हिमालय मेरा सिर है। मेरे बालों से गंगा प्रवाहित होती है। मेरे सिर से ब्रह्मपुत्र और सिन्धुनद बहते हैं। विन्ध्याचल मेरा कटिबन्ध है। कारोमंडल मेरी दायीं और मालाबार मेरी बायीं टांग है। मैं सम्पूर्ण भारत हूं। इसका पूर्व और पश्चिम मेरी बांहें हैं जिन्हें मानवता को आलिंगन करने के लिए मैंने फैला रखा है।

× × ×

'जब मैं चलता हूं, मैं अनुभव करता हूं कि भारत चल रहा है। जब मैं बोलता हूं, मैं अनुभव करता हूं कि भारत बोल रहा है। जब मैं सांस लेता हूं, मैं अनुभव करता हूं कि भारत सांस ले रहा है। मैं भारत हूं, मैं शंकर हूं मैं शिव हूं।' राष्ट्रीयता का यह सबसे ऊंचा स्वरूप है।

× × ×

जिस प्रकार अद्‌भुत स्रोत, सुन्दर सरिताएं और मानसून पवनें हिमालय की ऊंचाइयों से प्रवाहित होती हैं, उसी प्रकार वास्तविक आध्यात्मिकता भारत से प्रवाहित हुई है।

× × ×

कोई व्यक्ति तब तक सर्वरूप परमेश्वर से अपनी अभिन्नता का अनुभव नहीं कर सकता जब तक सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ अभिन्नता उसकी देह के रोम-रोम में तरंगित न होने लगे।

× × ×

राष्ट्रहित के संवर्धन का प्रयत्न करना ही देवताओं की उपासना करना है।

× × ×

कुछ लोगों के लिए भारत के कष्टों को दूर करने की समस्या भले ही राष्ट्रीय समस्या हो, राम के लिए यह अन्तरराष्ट्रीय है। कुछ लोगों के लिए चाहे यह राष्ट्रभक्ति का प्रश्न हो, राम के लिए यह मानवता का प्रश्न है।

× × ×

ऐसा अनुभव करके कि समस्त भारत प्रत्येक भारतवासी में मूर्तिमान है, भारत के हर एक सपूत को सम्पूर्ण भारत की सेवा में तत्पर रहना चाहिए।

× × ×

व्यक्ति को अपने या अपने स्थान के धर्म को किसी तरह भी राष्ट्रीय धर्म से ऊंचा स्थान नहीं देना चाहिए। इनके उचित समन्वय द्वारा ही सुख प्राप्त हो सकता है।

× × ×

यह वह आदमी है जो सारे राष्ट्र अथवा जाति से अपना अभेद स्थापित कर लेता है। इसे आप देशभक्त कह सकते हैं। उसका घेरा बहुत विशाल है। वह जिनकी सेवा कर रहा है, वे किस मत वाले हैं, इसकी वह चिन्ता नहीं करता। जात-पांत, वर्ण, नाम आदि का खयाल छोड़कर वह सम्पूर्ण देश के सभी निवासियों का पक्ष-समर्थन करता है। वह मनुष्य धन्य है, अभिनन्दन करने योग्य है।

स्वतंत्रता का मन्त्र

उनकी अमृतवाणी में मानवता के जागरण का ओजस्वी मन्त्र था। 'राम सबसे ऊँचे पर्वत की चोटी पर खड़ा होकर गर्जन के साथ कहता है कि दरिद्रता और दौर्बल्य की शिकायत करने वाले, लोगो! सचमुच तुम शक्तिमान प्रभु हो, स्वयं राम हो। अपनी ही कल्पनाओं में स्वयं मत जकड़े जाओ। उठो और जाग्रत् होवो, अपनी निद्रा और संसार रूपी स्थान को झाड़ कर परे फेंक दो। निज स्वरूप को पहचानो। इस सब दुःख-दारिद्र्य का अपने आप लोप हो जाएगा। सारे सुखों की खान और सम्पूर्ण आनन्द की अन्तरात्मा तुम्हीं हो।'

सच्ची स्वतंत्रता के मंत्रद्रष्टा उस अमृत जीवी मुक्ति दूत का मृत्युंजय मंत्र है—'स्वतंत्रता दूसरे को जीतने से नहीं मिलती है। मिलती है अपनी विजय से-अपने मन को जीतने से।'

जन्मदात्री भारतमाता के असीम प्रेम से भरकर वह मातृवत्सल ऋषि प्रेमाश्रु-पुलकित वाणी में गद्यगीत गाने लगते—

'हे अस्त होने वाले सूर्य! तू भारत में निकलने जा रहा है। क्या तू कृपा कर राम का यह संदेशा उस ज्योतिर्मय को ले जाएगा? क्या ही अच्छा हो कि यह मेरे प्रेम के अश्रु बिन्दु भारत के खेतों में पहुंच कर ओस की बूँदें बन जाएं। जैसे शैव शिव की पूजा करता है, वैष्णव विष्णु की, ईसाइ ईसा की वैसे ही मैं भारत के दृश्य को हृदय में लाकर उसकी पूजा करता हूं। भारतमाता के प्रत्येक काल को मैं मूर्तिमान भारत ही समझ कर पूजता हूं। हे भारतमाता! मैं तेरे हर एक रूप में तेरी उपासना करता हूं। तू मेरी गंगा है, तू मेरी काली है, तू मेरा इष्टदेव है, तू ही मेरा शालग्राम है।'

आधुनिक क्रान्तिकारी सुधारकों के प्रति उन ऋषि-तुल्य लोकनायक का संदेश है : 'हे नवयुवक! भावी सुधारक! तू भारतवर्ष की प्राचीन रीतियों और परमार्थ-निष्ठा की निन्दा मत कर। निरन्तर विरोध के नए-नए बीज बोते रहने से भारत में एकता लाना कठिन हो जाएगा। भारत की अवनति का कारण यहां के धर्म और अध्यात्म नहीं हैं। भारत की विकसित और फूली-फली फुलवारी इसलिए लुट गई कि उनके पास कांटों की बाड़ नहीं थी। कांटों और झाड़ियों की बाड़ चारों ओर लगा दो, किन्तु उन्नति और सुधार के बहाने गुलाब के पौधों और फलदार वृक्षों को न काट डालो।'

व्यावहारिक वेदान्त

प्रजातंत्र की भावना को अपने व्यावहारिक वेदान्त का अंग बताते हुए वह आदेश देते हैं—

'प्रत्येक मनुष्य को अपना स्थान स्वयं निर्धारित करने के लिए एकसमान स्वतंत्रता दो। हमारा सिर चाहे जितना ऊँचा रहे, परन्तु पांव सदा सबके साथ पृथ्वी पर ही जमे रहें। वह कभी किसी अन्य मनुष्य के कंधे अथवा गर्दन पर न पड़ें, चाहे वह निर्बल हो अथवा इसके लिए स्वयं राजी ही क्यों न हो।'

आध्यात्मिक साम्यवाद के समर्थक उन वेदान्त केसरी का सिंहनाद आज भी गूँज रहा है—'स्त्रियों, बालकों और श्रमजीवी-जातियों की शिक्षा पर ध्यान न देना उन्हीं शाखों को काट गिराना है, जिनके आश्रय पर हम खड़े हुए हैं। नहीं, यह तो राष्ट्रीयता के वृक्ष की जड़ पर ही घातक कुठाराघात करना है।'

देश के लकीर के फकीर प्राणियों के प्रति उन क्रांतदर्शी महात्मा का मधुसिक्त व्यंग्य है—यदि आप नई रोशनी को आत्मसात् करने को सहर्ष तैयार नहीं हैं, उस नए प्रकाश को जो आपके ही देश की प्राचीन रोशनी है, तो आओ, इस धरती को छोड़कर अपने पितरों के साथ जाकर निवास करो। यहां क्यों ठहरे हो? प्रणाम!

विश्व को वेदान्त का पावन मंत्र देते हुए मानवीय गौरव से भर कर वह पुकार उठते—

'हे मनुष्य! तू ईश्वर है, केवल शरीर के केन्द्र में रहना भर छोड़ दे। जब शरीर-चेतना, चर्म-दृष्टि छूट जाती है तब ईश्वर चेतना, दिव्य दृष्टि अपने आप प्राप्त हो जाती है। संसार और उसका अंधकार ही शरीर-चेतना की छाया है। वैसे तो ईश्वर-चेतना सदा मानवी आत्मा में अपने प्रकाश से स्वयं चमकती रहती है।'

भारतवासी मरना सीखें

वैसे मरने को तो सभी मरते हैं। कालवश सबको मरना पड़ता है। परन्तु हम भारतवासी और प्रकार से मरना भूल गए हैं। मरना जानते हैं जापान वाले, इंग्लैंड

वाले तथा अमरीका वाले। हमें यदि उन लोगों से कुछ सीखना ही है, तो मरना सीखें।

जब से हमारा यह देश स्वार्थपरता के कुचक्र में, भंवर में जा उलझा है, इसका पलड़ा उलट गया है। यदि इस देश के निवासी फिर से संभलना चाहते हैं तो स्वार्थपरता की भावना से इस देश को सर्वथा मुक्त करने का प्रत्येक व्यक्ति बीड़ा उठा ले।

ईश्वर तुम्हारे भीतर काम करने लगे, बस फिर कोई कर्तव्य न रह जाएगा। ईश्वर को अपने भीतर से प्रकाशित होने दो। ईश्वर तुम्हारे स्वरूप में प्रकट हो। ईश्वर में रहो-सहो, खाते-पीते ईश्वर को प्रस्तुत देखो। प्रत्येक साँस में ईश्वर का अस्तित्व हो और सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव करो। अन्य वस्तुएं सब अपने आप ठीक हो जाएंगी।

स्वर्गीय राज्य में रहो, वह तुम्हारे भीतर है, तुम्हारा ही स्वरूप है।

राम का अन्तिम संदेश

प्यारे भारतवासियो!

आपको सँभल जाना चाहिए। आपके सौभाग्य का सवेरा अब हुआ ही चाहता है। पहले-पहल विश्वास-रूपी सूर्य का प्रकाश यहीं हुआ था। बाद में यहां से फारस, अरब, मिस्र, रोम, यूनान होता हुआ यूरोप में पहुँचा। यूरोप में इंग्लैंड और वहां से अमरीका पहुंचा। अब वह अमरीका से जापान पहुँच चुका है और जापान से उसकी किरणें भारत के आकाश पर चमकने लगी हैं।

यह हमारे सौभाग्य का प्रभात है, अब हम सचेत हो जाएं। कहीं ऐसा न हो कि यह सूर्य पश्चिम को ढल जाय और आप सोते के सोते रह जाएँ।

प्यारे देशवासियो! उठो और दूसरों को उठाने का प्रयत्न करो। सब अपने-अपने कर्तव्य पर लग जाओ और अपने देशवासियों को उनके कर्तव्य सुझाओ। सूर्य उदय हो, उससे पूर्व ही अपने देशोन्नति रूपी कर्तव्यों को स्थिर कर लो। एक क्षण, एक पल भी व्यर्थ न खोओ। यदि सोच-विचार में ही पड़े रहोगे तो सूर्य पश्चिम को चला जाएगा, फिर आपसे कुछ करते-धरते न बनेगा। ॐ! ॐ! ॐ!!!

उत्तिष्ठत, जाग्रत्
प्राप्य वरान्निबोधत

स्वामी रामतीर्थ के रूप में विश्वमंच पर भारत का साकार सत्य ही बोलता था। उनकी वाणी में भारतीय संस्कृति की वह अमर अभिव्यक्ति मिली जिसके कारण समूचा विश्व पुनः इस देश को पूज्य भाव से देखने लगा।

'वन्दे मातरम्' के अमरगायक : ऋषि बंकिमचंद्र

'अनेक लोग, भारत के गत वैभव का स्मरण कर शोक से कहते हैं कि प्राचीनकाल के ऋषि हमारे अतीत के ही चमत्कार थे, जो इस युग के पतित मानवों द्वारा पुनः प्रदर्शित नहीं किए जा सकते। यह एक भूल है, महान् भूल है, अक्षम्य भूल है। हमारा देश शाश्वत है, राष्ट्र शाश्वत है तथा धर्म शाश्वत है, जिसकी शक्ति, महत्ता और पवित्रता कुछ समय के लिए मेघाच्छादित भले ही हो जाए किन्तु पूर्णतया नष्ट कभी नहीं हो सकती। वीर, ऋषि और संत भारत की धरती के स्वाभाविक वरदान हैं और कोई भी ऐसा युग नहीं आया जब वे पैदा न हुए हों। हमने अन्त में ऐसा समझ लिया है कि उत्तरकाल के ऋषियों में हमें उस महामानव का नाम अवश्य परिगणित करना चाहिए, जिसने हमारे राष्ट्र को पुनरुज्जीवित करने वाला ऐसा मन्त्र दिया, जो अभिनव भारत का निर्माण कर रहा है—वह संजीवन मन्त्र है—'वन्दे मातरम्'। वेदवाणी वंदित योगीराज अरविन्द घोष की यह हृदयहारी भावांजलि जिस महान् विभूति के चरणों पर चढ़ायी गई है, वे बांग्ला साहित्य के सूर्य तथा 'वन्दे मातरम्' के अमर गायक बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय सचमुच भारत के पुण्यश्लोक ऋषियों की परम्पराओं में आने वाले एक महान् ऋषि ही थे, जिनका कार्य लड़खड़ाती हुई दुर्बल मानवता के भटके हुए कदमों को पुनः अभ्युदय एवं निःश्रेयस के आलोक पथ पर लाना है।

आज से पूरे एक सौ इक्कीस वर्ष पूर्व 29 जून, 1838 के दिन बंग-साहित्य के मणिमुकुट बंकिम बाबू का जन्म उस बंगदेश में हुआ जिसने पिछली एक शताब्दी में अनेकानेक महापुरुषों को जन्म देकर समूचे देश के सांस्कृतिक व राजनीतिक नेतृत्व का गौरव प्राप्त कर लिया था। जागृति के अग्रदूत बंगाल की प्रशस्ति में महाराष्ट्र भूषण श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने इतना तक कह दिया, 'जिस बात पर बंगाल आज विचार करता है वह शेष भारत के मस्तिष्क में कल आती है।'

देशभक्ति : बंकिम बाबू जो जीवन के पूर्वकाल में एकमात्र कवि, साहित्यिक और शैलीस्रष्टा थे, जीवन के उत्तर काल में वे एक ऋषि और राष्ट्र निर्माता थे। बंकिम बाबू ने युग की मांग को समझ लिया और अपनी विलक्षण दृष्टि से उस अलौकिक द्रष्टा ने राष्ट्र के भविष्य के दर्शन कर लिए थे। बंकिम ने

अपनी प्रज्ञा के ज्वलन्त स्पर्श से ही देश के दुःख, दैन्य, दास्य को समूल भस्म करने का ध्रुव संकल्प किया। अपने जगत् प्रसिद्ध उपन्यास 'आनन्द मठ' के कथानक के ताने-बाने द्वारा इस महान् ऋषि ने भारतमाता की कोटि-कोटि सन्तानों के सम्मुख मुक्ति का आलोक-पथ प्रशस्त किया। गुलामी के घोर अत्याचार का मुकाबला दुर्धर्ष नैतिक बल द्वारा ही किया जा सकता है। उसके लिए तीन तत्त्वों की आवश्यकता है। प्रथम तत्त्व है—त्याग, यज्ञ और बलिदान। बंकिम बाबू ने हमें दृष्टि दी कि मातृभूमि की रक्षा के लिए, सर्वस्व समर्पण के लिए सिद्ध रहना चाहिए। भवानन्द के चरित्र में उन्होंने हमें एक राजनैतिक वैरागी की बड़ी भावप्रेरक दृष्टि दी। नैतिक शक्ति के लिए दूसरा तत्त्व है—आत्मानुशासन तथा संगठन। अपने उपन्यास 'देवी चौधरानी' में उन्होंने हमारे सम्मुख बंगाल की एक ऐसी महान् वीरांगना का रोमांचकारी चरित्र दिया है जिसने पहले अंग्रेज गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्ज के काल में बंगाल को मुक्त करने के लिए कुछ डाकुओं के दल को संगठित कर के अंग्रेजों को धूल चटा दी। आनन्दमठ में भी संयम एवं संगठन पर बल दिया गया है। शक्ति का तीसरा तत्त्व है देशभक्ति के कार्य में धर्म भावना का समावेश। बंकिम बाबू ने हमें राष्ट्र सेवा के धर्म की कल्पना दी तथा श्री अरविंद ने हमें स्वातंत्र्य के अवतार की सुन्दर दृष्टि प्रदान की।

वन्दे मातरम्—बंगाल शक्ति का पुजारी है। ऋषि बंकिम ने मातृ पूजा की इसी स्वभाव सुलभ भावना का परिष्कार एवं राष्ट्रीय संस्कार करके भारत के कोटि-कोटि नर-नारी को वह दृष्टि प्रदान की, जिसके द्वारा वे अपनी सच्ची माँ (भारतमाता) को पहचान सकें। आनन्द-मठ में आनन्द-मग्न संन्यासी भवानन्द के मधुर-कण्ठ से जो स्वर लहरी 'सुजलां सुफलां मलयजशीतलां' भारतमाता का अभिनन्दन करती हुई निःसृत हो उठी, उस ने पिछली एक शती में इस पुण्य-भूमि भारत के धरती और आकाश को गुंजारित किया है। बंकिम बाबू की हृदय-वीणा में झंकृत यह मातृ-स्तवन भारतमाता की कोटि-कोटि सन्तानों के हृदयों को तरंगित करता हुआ हमारा मुक्तिमन्त्र, हमारा जयगान तथा हमारा ओजस्वी राष्ट्रगीत बन गया है—

वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्य श्यामलां मातरम्।।
शुभ्र ज्योत्स्नां पुलकित यामिनीम्
फुल्ल कुसुमित-द्रुमदल शोभनीम्,
सुखदां, वरदां मातरम्।।
।।वन्दे मातरम्।।

ऋषि बंकिम ने माँ को अपना सर्वस्व मान कर भाव-विह्वल हृदय से माँ को पुकार कर कहा—

तुमी विद्या, तुमी धर्म
तुमी हरि तुमी मर्म,
त्वं ही प्राणाः शरीरे।
बाहु ते तुमी मां शक्ति,
हृदये तुमी मां भक्ति
तोमारई प्रतिमा गढ़ि मंदिरे-मंदिरे

जिस माँ की पावन प्रतिमा कोटि-कोटि पुत्रों के हृदय-मन्दिर में मढ़ी हुई है, वहीं माँ तो सच्ची दुर्गामाता है।

उसी माँ के स्तवन में बंकिम का हृदय गीत के माध्यम से नृत्य कर उठा—

त्वं हि दुर्गा दशप्रहर धारिणीम्,
कमला कमल दल विहारिणी
वाणी विद्या दायिनीं नमामि त्वां,
नमामि कमलां अमलां अतुलाम्,
सुजलां सुफलां मातरम्। वन्दे मातरम्।।

अपने एक लेख 'मेरा दुर्गोत्सव' में क्रान्तदर्शी कवि बंकिम लिखते हैं—मैंने फिर मग्न होकर उस काल के स्रोत में दशभुजा, अनेक शस्त्र धारिणी, शत्रु मर्दिनी, वीरेन्द्र पृष्ठ विहारिणी, भगवती भारतमाता की सुवर्णमयीं मूर्ति देखी। उस विश्व मोहिनी मूर्ति को देखकर माँ का दुलारा बंकिम पुकार उठा—आओ मैया, नवीन रंग से रंगी हुई, नवीन बल धारण किए हुए नवीन दर्प से भरी हुई नवीन स्वप्न देखती मैया। आओ, घर में आओ, हम तुम्हारी 32 करोड़ सन्तान एक स्थान में एक साथ 64 करोड़ हाथ जोड़कर तुम्हारे श्रीचरणों की आराधना करेंगे। 32 करोड़ कंठ से आकाश मंडल को कम्पाते हुए कहेंगे—मैया जननी अम्बिके। धात्रि धारित्रि धनधान्य धारिणी नगाङ्क शोभिनी! नगेन्द्र बालिके! शरत्सुन्दरि चारुपूर्ण चन्द्रभालिके।' हम इन 32 करोड़ सिरों को इन चरणों के ऊपर गिरावेंगे, सब मिलकर 32 करोड़ कंठों से तुम्हारा नाम लेकर हुँकार करेंगे, 32 करोड़ शरीर तुमको अर्पण कर देंगे। न हो सकेगा तो 64 करोड़ आंखों से तुम्हारे लिए रोएंगे। आओ मैया घर में आओ जिस के 32 करोड़ बच्चे हैं उसे चिंता काहे की?

समाज दर्शन—बंकिम बाबू की रत्न-प्रसू लेखनी में समाज के संस्कार हैं। नारी-धर्म पालनार्थ मक्खी उड़ानी ही है। हाय! कौन पापिष्ठ नराधम इस परम

रमणीय धर्म का लोप करने जा रहे हैं, हे आकाश! उनके सिर पर गिराने के लिए क्या तुम्हारे पास वज्र नहीं है?'

हास्य-व्यंग्य—महामनीषी बंकिम के लेख विद्वत्ता के अतिरिक्त हास्य और व्यंग्य का मधुतिक्त दंश भी लिए हुए हैं। एक भंवरा भारतवासी को व्यंग्य से कहता है—मैं एक साधारण कीड़ा हूँ। मैं भी केवल भनभन नहीं करता। हम लोग मधु संग्रह करते हैं, और जत्था बांधते हैं। तुम लोग न मधु संग्रह करना जानते हो और न जत्था बांधना जानते हो, जानते हो केवल भनभन करना। तुमको कोई काम करने का सलीका नहीं। मधु संग्रह करना सीखो, मधुकर की तरह एका करके जत्था जोड़ना सीखो, तुम्हारी जीभ और कलम से तो हमारा डंक ही अच्छा है। तुम्हारे वाक्यों से या कलम से कोई नहीं डरता, परन्तु देखो, हमारे डंक से सब लोग घबराते हैं!

धर्म रक्षा—बंकिम बाबू अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'राजसिंह' के उपसंहार में लिखते हैं—अन्यान्य गुणों के साथ जिसमें धर्म है—वही श्रेष्ठ है। अन्यान्य गुणों के होते हुए भी जिसमें धर्म नहीं, हिन्दू हो चाहे मुसलमान—वही निकृष्ट है। औरंगजेब धर्मशून्य था, इसलिए उसके समय में मुगल साम्राज्य का अधःपतन आरम्भ हुआ। राजसिंह धार्मिक थे, इसीलिए ये छोटे राज्य के स्वामी होकर भी मुगल बादशाह को अपमानित तथा परास्त कर सके।

बंग साहित्य-सम्राट, राष्ट्रोद्धारक, धर्मरक्षक, समाज संस्कारक, देशभक्त, साहित्यसेवी, वन्दे मातरम् जैसे शाश्वत राष्ट्रगीत के शाश्वत गायक, ऋषि बंकिम चन्द्र के चरणों में उनके जन्म जयन्ती पर्व पर हमारी कोटि-कोटि श्रद्धा प्रसूनांजलियाँ सादर समर्पित हैं।

7 जून, 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

वंदे मातरम् गीत में हम भगवद्गीता के कर्मयोग का मधुर संगीतमय चित्रण पाते हैं। इस गान से हमें एक सुन्दर संकल्पना एवं संदेश मिलता है कि भारत माता का भाल कभी विदेशी क्रूर शक्ति के सम्मुख नहीं झुकेगा और भारत एक समृद्ध व शक्तिशाली राष्ट्र बनेगा।

—प्रो. ओबराय

रवीन्द्र साहित्य में पंचनद प्रदेश का जयगान

असीम को ससीम कर देना उतना ही अवांछनीय है जितना अनन्त ब्रह्म का सान्त जीव बन जाना, किन्तु ससीम के भीतर असीम को देख लेना उतना ही आनन्ददायक है जितना सान्त जीव में अनन्त ब्रह्म के दर्शन कर लेना। कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर ससीम में असीम के द्रष्टा थे, सान्त में अनन्त के दर्शन करके वे स्वयं अनादि-अनन्त बन गए थे। श्रुति भगवती कहती है, **ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति**—ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही बन जाता है।

उन क्रान्तदर्शी कवि के शब्दों में—

सीमार माझे असीम तुमि,
बाजाओ आपन सूर।
आमार मध्ये तोमार प्रकाश,
ताइ एतो मधूर।।

—मुझ ससीम के भीतर बैठे
तुम असीम हो वंशी बजाते,
मेरे भीतर तव प्रकाश है,
तब ही इतना मीठा है।

जिस रवीन्द्रनाथ के अन्तर का नारायण जाग उठा था, जिसके चलने-फिरने, उठने-बैठने में एक ईश्वरीय तेज था, जिसके हृदय का भगवान् ही स्वयं बोलने लगा था, जो विश्वकवि के परमोच्च सिंहासन पर आसीन हुआ, जिसकी प्रतिभा के पराग से निखिल विश्व की वाटिका सुवासित हो उठी—उस कवि सम्राट के साहित्य में केवल पंजाब प्रदेश का वर्णन ढूंढ़ना सूर्य के तापमान को तुच्छ डॉक्टरों के ताप-मापक यन्त्र से मापने के बराबर है।

कवीन्द्र रवीन्द्र केवल बंगाल अथवा भारत के ही कवि नहीं विश्वभर के महानतम कवि हैं। सरोजिनी नायडू ने हंगरी की राजधानी बूडापेस्ट में एक अस्पताल

में देखा कि बहुत से ऑपरेशन किए हुए मरीज अपने बिस्तरों पर लेटे हुए अपने तकिए के नीचे रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक पुस्तक रखे हुए हैं जिसका हंगरी भाषा में नया-नया अनुवाद हुआ था। श्रीमती नायडू को देखने पर वे सब पुस्तक निकाल कर 'टैगोर-टैगोर' चिल्लाने लगे। सरोजिनी ने नार्वे के किसानों के पास भी टैगोर की रचनाएं देखी तथा पूर्वी अफ्रीका के जंगली लोगों से भी सुना कि धरती पर मनुष्य के रूप में एक भगवान् रहता है जिस का नाम 'टैगोर' है। जब सन् 1914 का महायुद्ध घोषित हुआ तो फ्रांस के प्रधानमंत्री ने अपने हृदय के संक्षोभ को शान्त करने के लिए गीतांजलि को सीने से लगा लिया तथा वहाँ की एक प्रसिद्ध कवयित्री से गीतांजलि के गीतों का पाठ सुनकर उन्हें शांतिलाभ हुआ। इस प्रकार विश्व मानवता के हृदय पर जिनकी दिव्य प्रतिभा का एकछत्र साम्राज्य है, उनके साहित्य भण्डार में पंचनद प्रदेश की प्रशस्ति को प्रकाश में लाना कुछ संकुचित भाव है।

पंजाब विश्वकवि को भूल न जाए

प्रस्तुत लेख लिखने के लिये मैं इस कारण प्रेरित हुआ हूँ कि जिस रवीन्द्रनाथ की सारा विश्व आरतियाँ उतारता है और जिस रवीन्द्रनाथ ने स्वयं पंजाब की पुण्यभूमि का जयगान गाया है उसी रवीन्द्रनाथ के विषय में आज पंजाब के पढ़े-लिखे लोगों को भी बहुत कम ज्ञान है। पंजाब को कृतघ्नता के पाप से बचाने के लिए ही यह लेख है।

वेदमन्त्रों से गूंजता हुआ पंचनद प्रदेश

मनु स्मृति के अनुसार आर्यावर्त्त की सीमा उत्तर में हिमवान तथा दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत तक थी। इसके पूर्व तथा पश्चिम दोनों ओर समुद्र था। आर्य लोग इसी भूमि के निवासी थे। इसे ही सप्तसिंधु प्रदेश कहा गया। इसकी महिमा में सारा वैदिक वाङ्मय गूंज रहा है। इसके पूर्व तथा पश्चिम में समुद्र होने का अर्थ है कि पूर्व में प्रयाग से परे का उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम में राजस्थान उस समय जलमग्न थे। विन्ध्याचल से नीचे भी समुद्र था तथा दक्षिणी भारत का पठार आर्यावर्त्त से बिल्कुल पृथक् था। कई विद्वानों का मत है कि दक्षिणावर्त तो उस समय अफ्रीकी भूखण्ड के साथ जुड़ा हुआ था। बाद में कई भौगोलिक उथल-पुथलों में दक्षिणी पठार अफ्रीका से पृथक् होकर आर्यावर्त्त से जुड़ गया। इसी कारण दक्षिण में आर्य संस्कृति बाद में पहुँची तथा सारा देश भारतवर्ष बन गया। मनु काल के आर्यावर्त्त में सरस्वती और दृशद्वती के बीच का प्रदेश (आजकल का पंजाब प्रदेश) ब्रह्मावर्त कहलाता था। यही वेदों की भूमि है। सप्तसिंधु प्रदेश में भी आज के पंजाब की पांच प्रसिद्ध नदियाँ, पश्चिमोत्तर में सिन्धु नदी तथा दक्षिण में सरस्वती नदी मानी जाती है। इस प्रकार सप्तसिन्धु प्रदेश ब्रह्मावर्त से

कुछ बड़ा है। पंजाब को तथा उसी के कारण सारे भारत को यह गौरव प्राप्त है कि जब अधिकांश संसार अन्धकार के गर्त में निमग्न था, अमरीका का पता नहीं था तथा यूरोप के मनुष्य पशुओं का कच्चा मांस खाने वाले लोगों ने अपनी बन्दर की पूंछ काट कर अभी इन्सान बनना नहीं सीखा, तब पंजाब में आर्य ऋषि हाथों में वेदज्ञान की मशाल लेकर सारे विश्व को प्रकाश दे रहे थे।

रवीन्द्रनाथ की पंजाब को श्रद्धांजलि

वेदमन्त्राभिगुंजारित पंजाब की धरती के प्रति अपनी श्रद्धा चढ़ाते हुए वे ऋषि-तुल्य लोकनायक रवीन्द्रनाथ गा उठे—'पंजाब भारत का वह प्रदेश, जिसके आकाश में प्रथम प्रभात का उदय हुआ, जिसके तपोवनों में सामवेद का संगीत पहले-पहल गुंजारित हुआ, जिसके वनों एवं उपवनों में मानव के प्रथम पदचाप सुने गए।'

पंजाब तथा बंगाल

पंजाब ने विश्व को ज्ञान का प्रथम आलोक वेद के रूप में दिया। सारे ऋषि आर्यावर्त्त में हुए। किन्तु जब आर्यावर्त्त पर संकट आया तो पूर्व मध्यकाल में उत्तर भारत का उपकार चुकाने के लिए दक्षिण भारत ने आचार्य पैदा किए—शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, विष्णु स्वामी सभी आचार्य दक्षिण भारत ने दिए।

मध्यकाल में संस्कृति पर जब पुनः संकट आया तो मध्य भारत, महाराष्ट्र, युक्तप्रांत इत्यादि के क्षेत्र ने सन्त-महात्मा पैदा किए—ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ, समर्थ गुरु रामदास, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा इत्यादि। आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति पर भीषणतम प्रहार पश्चिम से हुआ। अतः इस बार भारत का पूर्वांचल संस्कृति रक्षण के पुनीत कर्तव्य के लिए आगे बढ़ा। आधुनिक नवोत्थान का अग्रदूत बंगाल बना।

पुराणों में बंगदेश वास को हीन माना है। वहाँ के वासियों को धर्म दृष्टि से कुछ घटिया स्थान दिया था। वहाँ के मांस भक्षण तथा कर्मकाण्ड की उपेक्षा के कारण भी उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था। उन सारे कलंकों को एकबारगी धोते हुए बंगाल ने आनन्दावतार चैतन्य महाप्रभु पैदा किए। धर्म के जीते-जागते स्वरूप रामकृष्ण परमहंस तथा विश्वविजेता विवेकानन्द पैदा किए, वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द पैदा किए, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, बंकिमचन्द्र, राजा राममोहनराय तथा अलौकिक तत्त्वद्रष्टा-विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर पैदा किए। प्रायः यही माना जाता था कि ऋषि केवल पंजाब ने ही पैदा किए हैं! किन्तु बंगाल ने भी ऋषि पैदा कर दिखाए। आचार्य क्षितिमोहन सेन का

कथन है कि चाहे कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने वेदों का कोई गम्भीर अध्ययन नहीं किया था फिर भी उनके अनेक गीत वेद की ऋचाओं के समान पवित्र एवं हृदयस्पर्शी हैं। गायत्री मन्त्र के द्रष्टा ऋषि विश्वामित्र के समान एक बार कविगुरु भी उदय होते हुए सूर्य को देख कर गीत के माध्यम से नाच उठे—

आलोकेर एइ झरना धाराए, धुइए दाओ
आमार प्रानेर मलिनता, धुइए दाओ।।

हे आलोक के झरने सूर्य! अपनी प्रकाश की धाराओं से सारे विश्व को नहला दो। हे सूर्य! हमारे हृदय की सारी मलिनता को अपनी पावन आलोकधारा से धो डालो।

इन पंक्तियों का प्रभाव गायत्री मन्त्र से कम नहीं है।

पंजाब वीर प्रदेश माना जाता है किन्तु बंगाल ने भी आधुनिक काल में रासबिहारी, खुदीराम, सुभाषचन्द्र जैसे महान् वीरों एवं क्रांतिकारियों को पैदा करके न केवल पंजाब के समकक्ष स्थान बना लिया है बल्कि सांस्कृतिक जागरण में बंगाल पंजाब से भी बाजी मार कर ले जा रहा है।

गीता-गान का देश है पंजाब

वेदों के पश्चात् उपनिषद् तथा उपनिषदों के दुग्धामृत गीता का स्थान है, यह भी पंजाब की सारे विश्व को देन है। कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने स्वयं लिखा है कि उपनिषद् उन के लिए प्रेरणा के महान् स्रोत रहे हैं। सारी गीतांजलि के गीत उपनिषदों के तत्त्व दर्शन से गूंज रहे हैं।

गीता सन्देश के विषय में कविगुरु लिखते हैं—'गीता में हमें निष्काम-कर्मयोग का उपदेश किया गया है। जो व्यक्ति अपने स्वार्थ पर दृष्टि रखता है वह शेष सभी को अपने से तुच्छ मान लेता है। अतः अन्य सभी लोगों की सत्ता एवं अधिकारों का विचार रखते हुए मनुष्य को अपने आप के व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्त करना होगा। व्यापक जीवन प्राप्त करने के प्रत्येक प्रयत्न की यह मांग है कि मनुष्य दान को ही लाभ माने तथा स्वार्थी न रहे।'

गुरु गोविन्दसिंह तथा बन्दा वैरागी को पुष्पांजलि

कवि-सम्राट ने पंजाब की वीरता में अनेक प्रशस्तियाँ गायी हैं। 'कथा ओ कहानी' में गुरु गोविन्द पर उनकी कविता अपने ही प्रकार की अनूठी कलाकृति है। बन्दा वैरागी का बलिदान तो अत्यन्त रोमांचकारी है—

पंचनदीर तीरे,
वेणी पाकाइया शीर

देखिते देखिते गुरुर मन्त्रे
जागिया उठेछे सिख
निर्मम निर्भीक
हजार कंठे गुरुजीर जय
ध्वनिय तुले छे दिक्
पंचनद के तीर पर
वेणी बांदे सिर पर
देखते ही देखते गुरुमंत्र से
जाग उठे हैं सिख
निर्मम निर्भीक
सहस्रों कंठों से 'गुरुजी की जय'
ध्वनि से गूंज उठी हैं दिशाएं।

वे पुनः लिखते हैं—

पंजाब आजि गरजि उठिल 'अलख निरंजन'
अर्थात् **पंजाब आज गरज उठा है**
'अलख निरंजन'।

बलिदानी वीरों का दृश्य कितना मार्मिक है—

पंचनद के तीर पर
भक्तों के देह की रक्त लहरी
मुक्त हुई क्या, रे?
लाखों वक्ष चीर
झांकता प्राण, पक्षी समान
छूटा जैसे नीड़।
ललाट पर रक्ततिलक लगाया
मां के वीर पुत्रों ने
पंचनद के तीर पर।

बन्दा बैरागी के बन्दी होने का दृश्य कितना रक्त-खौलाने वाला है—

सिंह समान जकड़े बन्धन में
बन्दा हुआ समर में बन्दी

गढ़ गुरदासपुर में
वीर सिखों के कटे मुण्ड
लटकाए भालों की नोकों पर
सम्मुख चलती मुगल सेना
उड़ाती धूलि पथ पर।
सात सौ सिख चलते पीछे
बजती लौह शृंखलाएं।

बन्दा के बलिदान की घड़ी रक्तस्नात है—

बन्दा की देह लगे नोचने घातक
कर संडासियां दग्ध
स्थिरता से वीर मेरा,
बिना किए एक भी कातर शब्द।
दर्शक गण ने मून्दे नयन,
सभा हुई निस्तब्ध।।

वेणी के बदले शीश कटाया

एक सिख वीर तरुसिंह के बलिदान का वर्णन कविगुरु के शब्दों में देखिए—नवाब ने बन्दी सिख तरुसिंह को सम्बोधित करते हुए कहा—'मैं तुझ को क्षमा करना चाहता हूँ। तुम महान् वीर हो अतः यदि तुम अपनी वेणी काटकर मुझे दे दो तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूंगा।' तरुसिंह ने उत्तर दिया—तुम जो चाहते हो मैं तो उससे भी अधिक देने को प्रस्तुत हूँ।' तुम तो केवल वेणी चाहते हो, मैं अपना सिर भी दे रहा हूँ।'

महापुरुषों का मान

कवीन्द्र-रवीन्द्र लाल बाल पाल की त्रिपुटी में से विपिनचन्द्र पाल के निकट संपर्क में आए थे। इसी कारण पंजाब केसरी लाला लाजपत के प्रति भी उनका सहज प्रेम का भाव था। स्वामी विवेकानन्द के तो वे प्रशंसक थे ही। विवेकानन्द से स्फूर्ति प्राप्त करने वाले (पंजाब के विवेकानन्द) स्वामी रामतीर्थ से भी कविगुरु का मिलन हुआ था। भगतसिंह के बलिदान पर भी गुरुदेव को भारी ठेस लगी।

जलियांवाला बाग कांड पर कविगुरु का आक्रोश

सन् 1919 में वैशाखी के पर्व पर जब अमृतसर नगर में जलियांवाला बाग कांड हुआ तब पंजाब के रक्तपात से कवीन्द्र-रवीन्द्र उद्विग्न हो उठे और उन्होंने

वॉयसराय को पत्र लिखकर अपनी सर की उपाधि को वापस फेंक दिया। इससे कविगुरु का पंजाब के प्रति सहज प्रेम प्रकट होता है।

जन-गण-मन-अधिनायक, जय हे!

अपने राष्ट्र गीत में कविगुरु ने देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों की नामावली गिनाते हुए 'पंजाब, सिन्ध, गुजरात, मराठा, द्राविड़, उत्कल बंग', गाया है। इसमें भी उन्होंने देश की परिक्रमा करते हुए सबसे प्रथम माला के सुमेरु के स्थान पर पंजाब का नाम ही लिया तथा अतिशय विनय से अन्त में बंगप्रदेश का नाम लिया।

क्या विश्वकवि के पावन जन्मोत्सव पर हम पंजाब निवासी कविगुरु के प्रति अपनी कृतज्ञता का प्रकाश करेंगे?

10 मई, 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

शेक्सपियर या रवीन्द्र...???

भारत के प्रथम ब्रिटिश गवर्नर जनरल वॉरैन हेस्टिंग ने एक बार कहा था कि 'यदि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को तराजू के एक पलड़े में रखा जाए और दूसरे में शेक्सपियर के साहित्य को रखा जाए और मुझसे पूछा जाए कि मैं किसे अधिक मूल्यवान समझता हूँ तो मैं भारत—जैसे विशाल देश में ब्रिटिश साम्राज्य को ठुकरा दूंगा, किंतु मैं अपने महाकवि शेक्सपियर को कभी नहीं त्यागूंगा।'

आज भारत जैसे स्वतंत्र राष्ट्र के कोटि-कोटि जनगण को इंग्लैण्ड ही नहीं, वरन् सारे विश्व को बता देना चाहिए कि यदि इंग्लैण्ड का ही नहीं, वरन् सारे संसार का साम्राज्य भी किसी तुला पर अवस्थित कर तौल दे, तो भी हम अपने महाकवि रवीन्द्र की तुलना में विश्व साम्राज्य को ठुकरा देंगे। किंतु अपने विश्वकवि रवीन्द्र को नहीं त्यागेंगे।

—प्रो. हरवंशलाल ओबराय

भारत-भाग्य विधाता कविगुरु रवीन्द्रनाथ

संसार ने गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर को जगती के महानतम कवियों तथा साहित्यिक विभूतियों में से एक माना है। वे हमारे मार्गदर्शक, तत्त्वद्रष्टा और गुरु थे। प्लेटो तथा सुकरात का प्राचीन पाश्चात्य जगत् के लिए जितना महत्त्व था, वर्तमान भारत के लिए रवीन्द्रनाथ का वही महत्त्व है। वे सभी दिशाओं में हमारे राष्ट्र के आचार्य अथवा महापुरोहित हैं, क्या हमारे राष्ट्रीय साहित्य तथा कला में, क्या सामाजिक तथा राजनैतिक दर्शन में अथवा जनगण के कल्याण तथा सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए विधायक अर्थ नीति के प्रणयन में। वे सचमुच सच्चे अर्थों में राष्ट्र के गुरुदेव हैं।

टैगोर वे कवि तथा गायक थे जिन्होंने जाति को जगाने के लिए भावात्मक प्रेरणा प्रदान की।' इन शब्दों में स्वर्गीय डा. सत्यपाल (भूतपूर्व अध्यक्ष पंजाब विधानसभा) ने कविगुरु को श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

पाश्चात्य तत्त्वद्रष्टा हरमेन केसलिंग का कथन है, 'रवीन्द्रनाथ एक राष्ट्र के जन्मदाता ही नहीं उसके निर्माता भी हैं।'

भारत की मुक्ति मानव की मुक्ति

कविगुरु प्रायः कहा करते थे—'भारत मुक्ति निखिल मानवता की मुक्ति का द्वार है। अतः वे राष्ट्रवाद के माध्यम से अन्तरराष्ट्रवाद के प्रचारक थे। अपनी मातृभूमि की उपेक्षा कर उन्होंने विश्वमानवता का राग नहीं गाया।

जन गण मन अधिनायक जय हे

रवीन्द्र भारत के ओजस्वी राष्ट्रगीत के अमर गायक हैं। वे विद्यावादी कवि निखिल विश्व के जन गण के मनों के अधिनायक (परमेश्वर) की जय गाते हैं जो भारत के भाग्य का विधाता है। यहीं कवि का उदार राष्ट्रवाद प्रकट होता है।

स्वातन्त्र्य मंत्रद्रष्टा

राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्रशस्ति में कवि गाते हैं—

जहां मन है निर्भय, शीर्ष गौरव से उन्नत
जहां ज्ञान है मुक्त, विश्व है नहीं विभाजित

छोटी तंग घरेलू स्वार्थी दीवारों से
जहां वाणी उठती है सत्य के अन्तस्तल से
जहां भुजाएं श्रम की पूर्णोन्मुख सदैव हैं
जहां बुद्धि की शुभ्रधार है नहीं खो गई
जड़ स्वभाव की सूखी मरुतल में।
जहां मनुज मन स्वयं तुम्हीं से प्रेरित होता
नित्य विकासोन्मुखी ज्ञान में तथा कर्म में
उसी मुक्ति के महास्वर्ग में हे जगदीश्वर!
जागे मेरा देश मुक्ति-महिमा से मंडित।।

अपना इतिहास अपनी संस्कृति

कविगुरु रवीन्द्रनाथ की स्पष्ट चेतावनी है—'हमें यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि हम किसी दूसरे देश का इतिहास उधार लेकर गौरव से एक राष्ट्र के रूप में नहीं जी सकते! उधार ली हुई वस्तुएं हमारी शोभा नहीं बढ़ाती बल्कि वे हमारे जीवन का ह्रास ही करती हैं।'

भारत तीर्थ

कविगुरु रवीन्द्रनाथ की दृष्टि में भारत एक पुण्य तीर्थ है। वे अपने एक प्रेरणाप्रद गीत में गाते हैं—

हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थे जागो रे धीरे,
एई भारतेर महामानवेर सागर-तीरे।।

अर्थात्—

हे मेरे मन! इस पुण्य तीर्थ में
धीरे-धीरे जाग!
इस भारत के महा-मानव-
सागर के तट पर तू जाग!
यहां खड़ा हो दोनों हाथ जोड़,
मैं मानव-देवता को नमस्कार करता हूं।
अपने गीतों से अत्यन्त हर्षपूर्वक
राष्ट्र देवता का अभिनन्दन करता हूं।

इसमें एकता की अग्नि के यज्ञ में अनेकता की आहुति देकर भेद-भाव त्याग, एक विराट हृदय को जागृत किया है, आज उसी की साधना एवं आराधना के

यज्ञ-भवन का द्वार खुला है। यहाँ भारत के महा-मानव-सागर तट पर एक भाव से सब का मस्तक नत हो गया है।

अपमान भार को हलका कर ले।
माता का अभिषेक करने शीघ्र आ, आ,
सबके स्पर्श से पवित्र हुए तीर्थ से आज
भारत के महा-मानव-सागर-तीर का
मंगल घट भर गया है।
उस से माता का अभिषेक करने शीघ्र आ।।

हिन्दू-नवोत्थान के अमर कवि

श्री रामधारीसिंह दिनकर ने संस्कृति के चौथे अध्याय में लिखा हैं—'रवीन्द्र और इकबाल, दोनों भारतीय नवोत्थान के कवि हैं, एक हिन्दू नवोत्थान के और दूसरे मुस्लिम नवोत्थान के। शुद्ध भारतीय नवोत्थान जैसा कोई आन्दोलन भारत में नहीं उठा। जिस से अनुमान होता है कि हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ मिल कर कभी बिल्कुल एक नहीं हुईं। राजनीति के मुख से झूठ बोला जा सकता है, तर्क और दर्शन भी सच को झूठ और झूठ को सच सिद्ध कर सकते हैं। यहाँ तक कि इतिहास की मिथ्या व्याख्याओं से भी असत्य की पुष्टि की जा सकती है!' यह बात तो सच है कि रवि बाबू की मूल प्रेरणा हिन्दू धर्म से ही थी किन्तु हिन्दुत्व निष्ठा के कारण उन की रचनाओं को भारतीय संस्कृति का व्याख्यान न मानना उनके साथ तथा स्वयं महान् हिन्दू संस्कृति के साथ भी अन्याय करना है!' आगे चल कर श्री दिनकर जो लिखते हैं वह अनायास ही रवीन्द्र एवं हिन्दुत्व, दोनों के प्रति श्रद्धांजलि बन जाता है। वे लिखते हैं—'हिन्दुत्व का कवि होने के कारण रवीन्द्रनाथ कोमल, अहिंसक, तथा परलोक के प्रेमी हैं और इसलाम का कवि होने के कारण इकबाल दर्पशाली तथा आवेशयुक्त हैं एवं वे इहलौकिकता को बढ़ावा देते हैं।'

भारत प्रेम का मर्म

कविगुरु लिखते हैं—'मैं भारत से प्रेम इसलिए नहीं करता कि मैं किसी भौगोलिक भूखण्ड की अन्ध भक्ति को मानने वाला हूँ, न ही केवल इसलिए कि मुझे भारत में जन्म पाने का अवसर मिल गया, अपितु इसलिए कि पिछले अनेक उथल-पुथल वाले युगों में से होते हुए भी भारत ने उस जीवन्त वाणी को सुरक्षित रखा है जो उसके महान् पुत्रों के मुख से निःसृत हुई' : 'सत्यं, ज्ञानं, अनन्तं ब्रह्म।'

मृत्युंजयी संस्कृति

ऋषि-प्रज्ञा के स्वामी रवीन्द्रनाथ भारत की मृत्युंजयी संस्कृति को अपनी तपःपूत लेखनी का अर्घ्य चढ़ाते हुए लिखते हैं—मैं विश्वास करता हूँ कि

हमारे लिए यह गौरव का विषय है। कि बहुत बड़ी क्रांतियों एवं संकटों से पूर्ण शताब्दियों के एक लम्बे क्रम में से गुजर कर भी....भारत विरोधों की तूफानी क्रोधाग्नि एवं मिट्टी की सब को धूल में मिलाने वाली प्रकृति के बावजूद भी अभी तक जीवित है।

बंग भंग पर कवि का सिंहनाद

1905 में जब लार्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन का निश्चय किया तो कविगुरु की क्रांति वाणी सुनायी दी—

कवि तबे उठे एशो जदि थाके प्राण,
तबे ताइ लहो साथे, ताई करो आजि दान।
बड़ो दुःख बड़ी व्यथा-सम्मुखे ते कष्टरे संसार,
बड़ोई दरिद्र बड़ो क्षुद्र बध्द अंधकार।।

अर्थात्—हे कवि! यदि तुम में जीवन है, प्राण-शक्ति है तो उठो, मेरे पास आओ और मुझे अपने प्राण दान कर दो। देश में बड़ा दुःख है, व्यथा-कष्टों से भरा संसार है, बड़ा दारिद्र्य है, बड़ा क्षुद्र बद्ध अंधकार है।

रक्षाबन्धन पर ऐक्य का संदेश सुनाते हुए राष्ट्रकवि रवीन्द्र गाते फिरते—

बंगलार माटी बंगलार जल
पुन्न होक, पुन्न होक हे भगवान।

जलियांवाला बाग हत्याकांड पर कवि की हुँकार

13 अप्रैल, 1919 के दिन पंजाब के फौजी शासन के रौरव अत्याचारों से कविगुरु की शांत आत्मा भी तड़प उठी तथा वॉयसराय को उन्होंने पत्र में लिखा— 'पंजाब में कुछ स्थानीय हलचल को शांत करने के लिए सरकार द्वारा जितना भयंकर पग उठाया गया है उस ने एक भयंकर धक्के के साथ हम पर प्रकट कर दिया है कि भारत में अंग्रेजी राज्य की पूजा के रूप में हम कितने अधिक लाचार हैं।' उन्होंने लिखा कि ऐसे अवसर पर हमारे लिए सब प्रकार की उपाधियाँ हमारी लज्जा को और भी लज्जाजनक बना देती हैं तथा उन्होंने अपनी सर की उपाधि को उतार कर वापस फेंका।

भारत छोड़ो का उद्‌घोष

अपने स्वर्गवास से कुछ समय पहले उन महान् लोकनायक ने ब्रिटिश सरकार को साहस के साथ ललकारा—'अपनी कीमत ले लो, यहाँ से बाहर हो जाओ और हमें अकेला छोड़ दो।'

भारत में पुनर्जन्म की आकांक्षा—कविगुरु के मार्मिक उद्‌गार हैं, 'मैं भारत में ही पुनः-पुनः जन्म लूंगा। समस्त दारिद्र्य, दुःख एवं दैन्य के बावजूद भी मैं भारत से ही सर्वाधिक प्यार करता हूँ।'

भारत की ज्योति मेरे नेत्र पुटों को चूम ले

मातृभूमि की अर्चना में अपना हृदय तक चढ़ाते हुए कविगुरु लिखते हैं—'मेरे हृदय की सुगंधि का श्रेष्ठतम उपहार भारतमाता के अपने फूलों से प्राप्त हुआ है तथा मैं नहीं जानता कि संसार भर में कहाँ अन्यत्र चन्द्रमा इतने माधुर्य के साथ चमकता है जो मेरे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को इतने मीठे सौंदर्य से आप्लावित कर सके....मेरे नेत्रों को प्रथम प्रकाश इसी देश के अंतरिक्ष से प्राप्त हुआ तथा मेरी यह आकांक्षा है कि इन नेत्रों के चिरनिद्रा में मुंद जाने से पूर्व भी इसी धरती का दिव्य प्रकाश इनका चुम्बन कर ले।'

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण से अब तक रवीन्द्रनाथ कविता साहित्य में संसार के सर्वश्रेष्ठ महाकवि हैं। इनके छन्दों के अनगिनत आवर्तों और स्वर हिलोरों की मधुर अगणित थपकियों से पूर्व और पश्चिम की पथरीली चट्टानें ढहकर नष्ट होकर विषमता के स्थान पर समता की सृष्टि हुई। प्रतिभा के प्रसाद में संसार ने रवीन्द्रनाथ को सर्वोच्च स्थान दिया। देखा गया कि एक रवीन्द्रनाथ में बड़े-बड़े कितने ही महाकवियों के गुण एक साथ मौजूद थे।

—महाकवि निराला

× × ×

राष्ट्र के नायकों को यह समझना चाहिये कि कर्तव्य का निर्णय एकाङ्गी नहीं होता। विपक्ष की गतिविधियों को देखते हुए राष्ट्र रक्षा का उपाय ढूंढ़ना और उसे क्रियान्वित करना चाहिये।

—श्री मज्जगद्‌गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

योगीराज अरविन्द का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद

अरविन्द घोष का धरती पर अवतरण सचमुच धरती माता के लिए तथा भारतमाता के लिए एक विशेष महत्त्व की घटना बन गया।

15 अगस्त, 1872 के दिन कोलकाता के भारतीय समुद्र के तटों से दूर एक जहाज में जन्म पाने वाला, पूर्णतः इंग्लैण्ड में शिक्षित होने वाला, विदेशी भाषाओं में सर्वोत्तम दक्षता प्राप्त करने वाला तथा अपनी मातृभाषा में बातचीत तक भी न कर सकने वाला यह विलक्षण बालक कभी हमारे ज्वलन्त राष्ट्रवाद एवं हमारी मृत्युंजय संस्कृति का दिव्य देवदूत बनकर विश्व भुवन में पूजित होगा, यह कौन कल्पना कर सकता था?

14 वर्ष तक इंग्लैण्ड में उच्च शिक्षा प्राप्त करके श्री अरविन्द ने आई.सी.एस. परीक्षा सम्मानपूर्वक पास की। केवल अंतिम घुड़सवारी की परीक्षा रहती थी। उनके भीतर देशभक्ति की ज्योति सहसा इतनी तीव्रता से जल उठी कि उन्होंने घुड़सवारी की परीक्षा ही छोड़ दी तथा इस प्रकार आई.सी.एस. के पद को लात मारकर भारत के लिए रवाना हुए। कोलकाता बन्दरगाह पर अपने सुपुत्र की प्रतीक्षा में खड़े अरविन्द के पिता को किसी ने गलत सूचना दे दी कि जिस जहाज में अरविन्द आ रहे थे वह तो डूब गया है। यह सुनते ही पिता का प्राणान्त हो गया। श्री अरविन्द ने पिता की लाश को देखकर तथा सम्बन्धियों के बहुत समझाने पर भी अपना देशसेवा के व्रत का निश्चय नहीं बदला।

बंग-भंग आन्दोलन में जब श्री अरविन्द को दोबारा बंदी बनाया गया तो उनकी वकालत करते हुए श्री चितरंजनदासजी ने कहा—

'न्यायालय के सामने जो व्यक्ति खड़ा है वह साधारण व्यक्ति नहीं है। उसकी मृत्यु के बहुत समय बाद उसे देशभक्ति का कवि, राष्ट्रवाद का अवतार और मानवता का पुजारी समझा जाएगा.... उसके शब्द न केवल भारत में बल्कि दूरवर्ती समुद्रों और देशों के पार ध्वनित-प्रतिध्वनित होंगे....यह व्यक्ति इस न्यायालय के सामने ही नहीं खड़ा है बल्कि इतिहास के न्यायालय के सामने खड़ा है।' उसी अलीपुर जेल में श्री अरविन्द को सब कहीं श्रीकृष्ण के दर्शन हुए।

भारतीय आत्मा के पुनर्जागरण के पुनीत कार्य में प्रवृत्त होने पर श्री अरविन्द कर्मयोग के मूर्तिमान अवतार बन गए। बड़ौदा राज्य में प्राध्यापक का कार्य करते

हुए ही उनके मन में मातृभूमि की नीरव सेवा की दृष्टि प्रज्वलित थी। वे तन मन से पूर्णतया स्वदेशी बन गए। सात्त्विक स्वदेशी वेश में वे भारती की सेवा में जुट गए।

आध्यात्मिक राष्ट्रवाद—राजनीति तथा स्वतंत्रता संग्राम को आध्यात्मिकता की भित्ति पर प्रतिष्ठित करना ही योगीराज अरविन्द की महानतम देन है। उनके विचार में स्वदेश और स्वधर्म में कोई अन्तर नहीं। उन्होंने देश भक्ति को आत्म शक्ति के साथ संश्लिष्ट करने का इतिहास-दुर्लभ उपक्रम किया। वे कहते हैं—'राष्ट्र की स्वतंत्रता मात्र राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है। यह एक धर्म है जो ईश्वर-प्रदत्त है। यह एक ऐसा धर्म है जो तुम्हें जीवन में साकार करना होगा।'

अपने आत्मबल से देश के हृदय में प्राण संचार करते हुए वे कहते हैं—'तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि तुम भगवान् के हाथ में यंत्र हो.... राष्ट्रवाद कभी नहीं मरेगा। यह ईश्वरीय शक्ति से ही जीवित रहता है तथा किसी भी भीषण शस्त्र के प्रहार से कुचला नहीं जा सकता।'

वे पुनः तत्कालीन राजनीतिज्ञों को चुनौती देकर पूछते हैं—'क्या तुम में सच्चा ईश्वरीय विश्वास है या केवल राजनीतिक आकांक्षा मात्र है? या क्या तुम केवल स्वतंत्र होकर दूसरों को भी वैसे ही सताना चाहते हो जैसे कि तुम सताये जा रहे हो? क्या तुमने अपने राजनीतिक पथ को किसी बड़े सूत्र से धारण किया हुआ है? क्या तुममें ईश्वर का प्राकट्य हुआ है? क्या तुमने यह जान लिया है कि ईश्वर के केवल यंत्र मात्र हो तथा तुम्हारा शरीर तुम्हारा अपना नहीं है?

....यदि तुमने यह जान लिया है तब तुम सच्चे राष्ट्रभक्त हो। तभी तुम इस महान् राष्ट्र का पुनरुत्थान कर सकते हो। तभी तुम्हारे कार्य के ऊपर एक ईश्वरीय आशीर्वाद बरसेगा तथा यह महान् राष्ट्र एक बार फिर वैसा ही उन्नत होगा जैसा अपने आध्यात्मिक गौरव के दिनों में था।'

भारत का उत्थान—ईश्वरीय कार्य—योगीराज ने सत्य के साक्षात्कार से पूर्त हुए नेत्रों से देख लिया था कि 'इस जाति को उठाने का कार्य भगवान् का अपना कार्य (मिशन) है....जो कुछ हम कर रहे हैं उसका उद्देश्य राजनीति नहीं है, बल्कि भगवान् का एक कार्य करना है जिसके लिए हमारा आह्वान हुआ है।'

बंग-भंग आन्दोलन में वे नरकेशरी गरज उठे—ईश्वर तुम्हें स्वतंत्र होने का आदेश देता है तथा तुम्हें अवश्य स्वतंत्र होना पड़ेगा....दुर्बलता को मत आमंत्रित करो और बहादुरी से सीना तानकर खड़े हो जाओ।

स्वदेश माता महाशक्ति दुर्गा का रूप—स्वदेश माता भगवती दैवी शक्ति का ही एक रूप है। इस सत्यानुभूति की प्रेरणा से श्री अरविन्द के लिए वन्देमातरम् का गीत जीवन का महामंत्र था। श्री अरविन्द के ओजस्वी शब्द हैं—ऐ युवको!

तुम लोगों के पूर्व पुरुषों की शिक्षा का अनुकरण करने के लिए जिस शक्ति को प्राप्त किया जाता है वह शक्ति असंभवनीय घटना को भी करने में कुशल है। वह शक्ति तुम्हारे शरीर में अवतरण करने के लिए उद्यत हो रही है। वह शक्ति ही मां है....मातृभूमि तुम्हारे हृदय में प्रतिष्ठित हो गई है....अब अन्तर्निहित माता को आत्म समर्पण करो। कार्यसिद्धि का कोई दूसरा पंथ नहीं।' वे दुर्गा स्तोत्र नामक पुस्तिका में लिखते हैं—'माता दुर्गे! हमारे शरीर में योगबल द्वारा प्रवेश कर। हम होंगे तेरे यंत्र, तेरी अशुभ विनाशी तलवार-राशि, तेरे अज्ञान-विनाशी प्रदीप। हे माता! भारत के युवकों की इस आशा को पूर्ण कर। यंत्री बन कर यंत्र चला, अशुभ हंत्री होकर तलवार घुमा, ज्ञान दीप्त प्रकाशिनी होकर हाथ में प्रदीप ले प्रकाशमान हो। वे पुनः महाशक्ति को पुकारते हैं, वीर मार्ग प्रदर्शिनी आ! अब हम तेरा विसर्जन नहीं करेंगे। हमारा सारा जीवन ही अविच्छिन्न दुर्गा पूजा हो, हमारे समस्त कार्य अविरत-पवित्र, प्रेममय, शक्तिमय, मातृ सेवाव्रत से युक्त हों। यही प्रार्थना है। हे माता! तू भारत में आविर्भूत हो, प्रकाशमान हो।

श्री अरविन्द राष्ट्रसेवा के लिए तप और त्याग को अनिवार्य समझते थे। इसलिए उन्होंने स्वयं भी अपने आप को इसी महायज्ञ में झोंक दिया तथा असंख्यों को राष्ट्र के लिए सर्वस्व समर्पित करने की अमर प्रेरणा दी। श्री अरविन्द की अमर वाणी है—'हमारा उद्देश्य, हमारा दावा यह है कि हम एक राष्ट्र के रूप में विनष्ट नहीं होंगे, बल्कि जीवित रहेंगे और इसके लिए लोगों को हर प्रकार के कष्ट सहने के लिए तैयार रहना चाहिए। कारण, कष्ट सहन के बिना कोई प्रगति नहीं हो सकती।'

क्रान्ति का शंखनाद—श्री अरविन्द उन दिनों की कांग्रेस की ढुलमुल नीति तथा भिक्षा मांगने की वृत्ति के कट्टर विरोधी थे। वे स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए देश में एक महाविप्लव का सूत्रपात करना चाहते थे। उनकी नसों में गीता का ओजस्वी धर्मयुद्ध का संदेश गूंज रहा था। उन्होंने एक निर्भीक लेखमाला लिखकर कांग्रेस की नीति की अच्छी खबर ली। वे गर्मदल के नेता बन गए तथा विपिनचन्द्र पाल, बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, चितरंजनदास, अश्विनी कुमार दत्त तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर प्रभृति राष्ट्र नेताओं के लिए भी प्राण-प्रेरक बन गए।

अखण्ड भारत के तत्त्वद्रष्टा—योगीराज अरविन्द घोष अखण्ड भारत के दिव्य तत्त्वद्रष्टा के रूप में सदा सर्वदा पूजित होते रहेंगे। 15 अगस्त, 1947 के दिन भारत विभाजन की दुर्भाग्यपूर्ण वेला में उन्होंने देशभर को आशा एवं उत्साह का मार्ग दिखाते हुए कहा था—देश निश्चय ही पुनः अखण्ड होकर रहेगा। विश्व की कोई शक्ति इसको सदा के लिए ऐसे कटा-बंटा हुआ नहीं रख सकती। इसमें ईश्वरीय आदेश एवं ईश्वरीय उद्देश्य निहित है।

स्वामी विवेकानन्द की मानस पुत्री : वीर बाला भगिनी निवेदिता

आयरलैण्ड के स्वातंत्र्य प्रेमी परिवार में क्रान्तिकारियों की जन्म भूमि अलस्टर नगर में 28 अक्टूबर, 1867 के दिन एक तेजस्वी बालिका का जन्म हुआ। बच्ची के पिता एक गिरजाघर के पादरी थे तथा उसकी धर्मात्मा माता ने जन्म से पूर्व ही उसे ईश्वर के निमित्त अर्पण कर दिया था। उस महान् बाला का नाम मारग्रेट नोबेल था जो भारत में भगिनी निवेदिता के नाम से पूजित हुई।

शिकागो धर्म सम्मेलन में विश्व विजय करने के पश्चात् जब भारतगौरव स्वामी विवेकानन्द सन् 1895 में लन्दन गए तो वहाँ स्वामीजी के प्रथम भाषण से ही प्रभावित होकर मारग्रेट नोबेल भारत दर्शन के लिए लालायित हो उठी। मारग्रेट की यह महान् लालसा सन् 1898 में पूरी हुई जब उसने अपने पृथु नेत्रों से भारत देश के दर्शन किए। स्वामीजी ने उसे दीक्षा देकर उसे निवेदिता नाम दिया। स्वामीजी ने जो उसे आशीर्वाद दिया वह बड़ा हृदयस्पर्शी है—'एक माता का हृदय, एक योद्धा की संकल्प शक्ति, पवन की मिठास तथा अग्नि ज्वाला में अंकित बलिदान भाव सभी कुछ तुझे प्राप्त हों। तुम भारत की पुत्री, सेविका एवं मित्र—सभी कुछ बन जाओ।' स्वामीजी ने भगिनी निवेदिता को भारतीय धर्म एवं दर्शन की अत्युत्तम शिक्षा दी तथा उन्हें कुछ समय के लिये परमहंस देव की पत्नी पूज्य शारदा माता के सहवास में भी रखा।

निवेदिता ने अपने आप को भारत की सेवा के लिए पूर्ण रूप से निवेदित किया हुआ था। उस महान् शिष्या ने अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द से पूछा, 'मैं भारत की सर्वोत्तम सेवा कैसे कर सकती हूँ?' मेधावी गुरु ने तुरंत उत्तर दिया—'भारत के साथ आत्मसात् होकर।'

सन् 1898 में जब कोलकाता में प्लेग की महामारी फैली तो निवेदिता ने जिस प्रकार से सेवा की उसका वर्णन प्रसिद्ध इतिहासकार श्री यदुनाथ सरकार करते हैं, 'मैला साफ करने के लिए भंगी नहीं मिलते थे उस समय बाग बाजार की उपेक्षित गली में, जहाँ वे रहती थी; निवेदिता को हाथ में फावड़ा लिए, गन्दगी

साफ करते हुए देख असीम श्रद्धा उत्पन्न हो उठी। उसके उदाहरण ने गली के नवयुवकों को लज्जित कर दिया और वे भी कार्य में जुट पड़े।'

भारत का कण-कण पूजनीय

भगिनी निवेदिता कहा करती थी, 'भारत का कण-कण मेरे लिए पूजनीय है। यहाँ की वायु का एक-एक झोंका पवित्र है।' निवेदिता संपूर्ण भारत के तीर्थों के दर्शन के लिए गई तथा गया, सारनाथ, काशी इत्यादि तीर्थों की धूलि को मस्तक पर लगा कर आनन्द विह्वल हो गई।

भारतीय नारी की गरिमा

भगिनी के ओजस्वी शब्द हैं—'लड़कियों को शिक्षा देते समय आज की प्रथम आवश्यकता है कि हमारे सामने एक सुस्पष्ट लक्ष्य हो, जिसकी सिद्धि हमें प्राप्त करनी है। इस दिशा में भारत से अधिक सौभाग्यशाली देश संसार में कोई अन्य न होगा। यह महान् नारियों का देश है।....क्या स्त्री को शक्तिशाली, साधनसम्पन्न, स्वयंस्फूर्त तथा आपत्तिकाल के लिए जागरूक होना चाहिए? क्या हम चित्तौड़ की पद्मिनी, झांसी की लक्ष्मीबाई पर गर्व नहीं कर सकते? क्या स्त्री को सौम्य, भक्त तथा दार्शनिक होना चाहिए? क्या मीरा वह आदर्श प्रस्तुत नहीं करती? यदि नारी की गरिमा उसकी शासन क्षमता में निहित हो तो क्या अहिल्याबाई, रानी भवानी तथा मैमनसिंह जिले की जाह्नवी हमारी प्रेरणास्रोत नहीं बन सकती? क्या नारी की सम्पूर्ण तेजस्विता पत्नीत्व में प्रकट होती है? सती सावित्री एवं भारतीय गगनांचल के उज्ज्वलतम नक्षत्र के रूप में जनकनंदिनी सीता हमारी मूर्तिमत् आदर्श हैं। कौमार्यावस्था में ही जीवन की श्रेष्ठता को इंगित करने वाली उमा हमें दिव्यता की ओर प्रेरित करती हैं और स्त्रीरत्न के रूप में माता गान्धारी के समान महान् स्त्रियाँ हमें संसार के किसी कोने में भी प्राप्त न हो सकेंगी।'

सच्ची शक्ति पूजा

एक बार नागपुर के मारिस कॉलेज में विजयादशमी के अवसर पर क्रिकेट के खेल के उपरान्त पारितोषिक वितरण के लिए निवेदिता को बुलाया गया। निवेदिता ने ओजस्वी शब्दों में कहा—'आज तो शस्त्रपूजा का दिन है। दुर्गा भवानी की पूजा होती है। माता भवानी, उसकी खड्ग और उसका शक्तिदायिनी संदेश आप कैसे भूल गए? मैं भोंसलों की राजधानी में आशा करती थी कि बीते समय के पराक्रम का दर्शन करने को मिलेगा परन्तु यहाँ तो बन्दरों का नाच (क्रिकेट का खेल) देखने को मिला जिसमें विदेशी अंग्रेज हमारे तरुणों को नचा रहा है। देश को सबल देशभक्तों की आवश्यकता है।' भगिनी बाबू अरविन्द घोष से बड़ौदा में मिली और कहा,

'आप तो शक्ति के उपासक हैं। बंगाल को आपकी बहुत आवश्यकता है।' आपका कार्यक्षेत्र वहाँ है। उन्हीं की प्रेरणा से अरविन्द उग्र क्रान्ति के मार्ग पर अग्रसर हुए।

भारत की स्वाधीनता के लिए तड़प

भगिनी ने भारत के स्वाधीनता संघर्ष में पर्याप्त भाग लिया। इसलिए वे रामकृष्ण मिशन से भी पृथक् कर दी गईं। पर वे घबरायी नहीं। उनका कहना है—'स्वामी विवेकानन्द हमारे राष्ट्रीय सेनानी थे। उनके हृदय में राष्ट्रीयता का ज्वार था।'

सरकार को भी चुनौती देती हुई वह वीर नारी गर्जना करती, 'मुझे मृत्यु स्वीकार है परन्तु भारत के स्वाधीनता संघर्ष से पृथक्ता स्वीकार्य नहीं।'

भगिनी निवेदिता ने कुमारी मैकॉलियाड को एक पत्र में लिखा, 'भारत एक दिन अपने ध्यान में मग्न था। एक दिन लुटेरों के एक गिरोह ने आकर धावा बोल दिया, उसकी भूमि को पदाक्रांत कर डाला। साधना भंग हो गई। क्या डाकू उसे सिखला सकेंगे? नहीं। उनको निकाल कर बाहर खदेड़ना पड़ेगा। जब तक सरकार विदेशी मुझे सरकार एवं ईसाइयों से कोई सम्बन्ध नहीं है। जो भारत के लिये भारतीय है वह कितना ही मूर्ख और निरुपयोगी क्यों न हो, मैं उसकी चरण वंदना करने को तैयार हूँ।

भगिनी ने अरविन्द घोष के संग में मिलकर गुप्त क्रान्तिकारी परिषद् बनायी। तिलक के साथ भी वे निकट सम्पर्क में आयीं। विपिन चन्द्र पाल को भी उन्होंने बड़ी प्रेरणा दी।

डॉ. जगदीश चन्द्र बोस के घर में तो वे प्रायः आया-जाया करती थी। डॉ. बोस की पत्नी की गोद में ही वे चिर निद्रा में सो गई थीं।

वे भारत की पालित पुत्री, भारत की आत्मा के साथ तदाकार हो चुकी थीं। वे स्वामी विवेकानन्द के पश्चिम के प्रचार कार्य का सर्वोत्तम पुष्प थीं। उस महान् आत्मा को हमारी कोटि-कोटि वन्दनाएँ समर्पित हैं।

3 नवम्बर, 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

पश्चिमी जगत् में विवेकानन्द को जो सफलता मिली, वह इस बात का प्रमाण है कि भारत विश्व विजय करके रहेगा।

—योगी अरविन्द

लोकमान्य तिलक को प्रज्ञा का अमोघ वरदान

भारत की राष्ट्रीय जागृति के जनक, आधुनिक महाराष्ट्र के पंच प्राण, राष्ट्रीय यज्ञ के अध्वर्यु, स्वराज्य मन्त्र के मन्त्रद्रष्टा ऋषि, दैन्य-दास्य एवं अन्याय के मूल में प्रहार करने वाले पुणे के परशुराम, महाराष्ट्र केसरी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक सात्त्विक ऋषि, ओजस्वी वक्ता, दुर्धर्ष वीर एवं आदर्श कर्मयोगी होने के साथ-साथ एक ऐसी तत्त्व विवेचिनी सूक्ष्म बुद्धि के स्वामी थे जो विश्व के अन्तराल में छिपे हुए सत्य का उद्‌घाटन करने में समर्थ होती है।

लोकमान्य तिलक का जन्म 23 जुलाई, 1856 को (आज से 125 वर्ष पूर्व एवं 1857 के स्वातंत्र्य समर के एक वर्ष पूर्व) तथा निर्वाण 31 जुलाई, 1920 को (आज से 61 वर्ष पूर्व एवं प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के 9 वर्ष पश्चात्) हुआ था। एक भारतीय युद्ध एवं एक विश्वयुद्ध के बीच विश्व रंगमच पर उभरने वाला यह अलौकिक योद्धा विश्व के साम्राज्यवादी देशों को भारत की ओर से मुँह तोड़ उत्तर देने वाला इतिहासपुरुष सिद्ध हुआ।

भारत का मनोबल तोड़ कर इसे हताश-निराश करने के उद्देश्य से ब्रिटिश शासन एवं उसके संकेत पर कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने कुछ विषैले असत्य इतिहास के नाम पर बच्चों को जन्मघूंटी के समान पिलाना प्रारंभ किया।

1. भारत सदा से पराधीन रहा है अतः इसे स्वतंत्रता का कोई अधिकार नहीं। यह गोरी जातियों का दायित्व है कि अश्वेत जातियों को सभ्यता सिखावें।

2. आर्य लोग मध्य एशिया के मैदानों से भटकते हुए भारत में आ गये थे। इसका परिणाम बड़ा गम्भीर होता है। यदि भारतीय अंग्रेजों को कहते कि 'भारत छोड़ो' तो अंग्रेज कहते, 'तुम प्रथम आक्रमणकारी बन कर आये, बाद में यूनानी, फिर हूण, शक, फिर मुसलमान और अन्त में हम ब्रिटिश लोग आये। प्रथम आक्रान्ता को पहले निकलना चाहिये, अन्तिम को अन्त में।

3. वेद गड़रियों के गीत हैं। आर्य ऋषि गड़रिये थे जो अपनी भेड़ों के अजागण को चराते हुए नई हरी घास की खोज में भारत में आ पहुँचे। भेड़ों को पुकारने में जो वे अनर्गल उच्चारण करते थे वे ही वेदमन्त्र बन गये।

4. वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ नहीं है। यह ओल्ड टेस्टामेन्ट (यहूदियों की धर्म पुस्तक) के बाद में लिखे गये हैं।

5. भगवद्गीता मूलतः महाभारत का अंश न होकर न्यू टेस्टामेन्ट (ईसाइयों की बाइबिल) के सर्मन ऑन दी माउन्ट (ईसा का पर्वतीय उपदेश) से उधार ली गई है।

लोकमान्य तिलक ही भारतमाता के ऐसे महान् सपूत थे जिन्होंने इन पांचों आक्रमणों का अकेले ही बड़ा प्रबल प्रतिकार कर भारत एवं भारतीयता की लाज बचायी।

स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार

एक महान् केशरी के समान गर्जना करते हुए लोकमान्य तिलक ने विश्वभर के कान खोलते हुए घोषणा की—'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे प्राप्त करके ही रहेंगे', यह शब्द केवल शब्द मात्र ही नहीं हैं। यह स्वतंत्रता का एक महान् ओजस्वी मन्त्र है जो अपने भीतर एक महान् दर्शन को गुम्फित किये हुए है। इस स्वातंत्र्य दर्शन के द्रष्टा, लोकमान्य सचमुच एक सच्चे ऋषि थे। हमने स्वतन्त्र ही जन्म प्राप्त किया है तथा स्वतन्त्र ही मरेंगे। ईश्वर और प्रकृति ने हमें स्वतन्त्र पैदा किया है। इसका अर्थ है कि प्रकृति का विधान हमें स्वतन्त्र ही देखना चाहता है। इसलिए हमारा स्वतन्त्र रहने का अधिकार हमारे जन्म से ही स्वतःसिद्ध है, इसके लिए किसी अन्य प्रमाण की अब आवश्यकता नहीं। इस स्वराज्य मन्त्र को पाकर भारतीय जनगण स्वातंत्र्य के दृढ़ संकल्प के साथ ऐसी वीर गर्जना करते हुए खड़ा हो गया जिससे ब्रिटिश साम्राज्य का दिल दहल गया।

आर्यों का आदिदेश

विदेशियों ने भारत में आकर यह प्रचार प्रारम्भ किया कि आर्य लोग भी भारत में बाहर से आये हैं। संभवतः ये मध्य एशिया से ही खानाबदोश कबीलों की तरह अपनी भेड़-बकरियों को चराते हुए भारत की ओर आ गये। पश्चिम के कई सत्यहंता इतिहासकारों ने वेदों को 'गड़रियों का गीत' बतलाया। इस कुप्रचार के पीछे षड्यन्त्र यह था कि आर्यों को अपनी मातृभूमि से प्रेम न रहे तथा वे यह समझने लगें कि वे भी वैसे ही डाकू बन कर आये थे जैसे बाद में मुसलमान और अंग्रेज आये। लोकमान्य तिलक ने इस कुप्रचार को अपनी प्रज्ञा के लिए चुनौती समझा तथा निष्पक्ष भाव से वे इस तथ्य की खोज में लग गये। इस विषय में उनकी खोज दो स्तरों में प्रकट हुई।

पहली खोज के आधार पर उन्होंने यह स्थापित किया कि आर्य लोग सम्भवतः उत्तरी ध्रुव के निवासी थे। इस मत को उन्होंने 100 पृष्ठों की महान्

The Arctic home in the Vedas में प्रकट किया जिसे उन्होंने तीन मास से भी कम समय में अपने हाथों से लिख डाला था। उन्होंने ज्योतिष के आधार पर इस मत की स्थापना की। वेद में वर्णित देवताओं के छः मास के दिन तथा छः मास की रात्रि का स्पष्ट अर्थ उन्होंने उत्तरी ध्रुव पर होने वाले छः मास के दिन एवं छः मास की रात्रि में लगाया। इसी अर्थ में उत्तरायण देवताओं का दिन है तथा दक्षिणायन रात्रि। वहाँ सदा बर्फ जमी रहने के कारण ही सम्भवतः आर्य लोग अग्नि को देवता मानकर उसमें हवि डालते तथा यज्ञ करते थे। उष्णता देने वाले सूर्य को भी इसीलिए भगवान् कहा गया। उसी सविता देव की प्रशस्ति में गायत्री का गायन हुआ। भूगर्भ-शास्त्रियों का मत है कि पृथ्वी पर ऋतुओं का तारतम्य बदलता रहता है सम्भवतः ध्रुव प्रदेश में भी कभी एक प्रकार का चिर वसंत था। तिलक का मत है कि बहुत पहले उत्तरी ध्रुव बर्फ से ढका था, बीच में वहाँ से बर्फ हट गई और नीचे के प्रदेश की ओर बढ़ गई। तब वहाँ मधुर ऋतु हो गई। पुनः लगभग 20,000 वर्ष हुए उत्तरी ध्रुव पुनः हिमाच्छन्न हो गया। तब आर्यों को वहाँ से अपना घर छोड़कर सप्तसिन्धव की ओर आना पड़ा।

लोकमान्य तिलक ने अपनी बाद की खोजों द्वारा अपने उपरोक्त मत का स्वयं ही परिष्कार कर लिया था। वे स्वयं भी स्वीकार करने लगे कि आर्य लोग सप्तसिन्धव के मूल निवासी थे। ऐसा उनके कुछ लेखों तथा डायरी में लिखे कुछ संकेतों से भी प्रमाणित होता है जो यथोचित प्रकाश में नहीं आ सके। बाबू सम्पूर्णानन्द ने अपनी महान् रचना 'आर्यों के आदिदेश' में यही मत स्थापित किया है कि आर्य लोग मूलतः सप्तसिंधु (उत्तर भारत) के ही निवासी थे। डा. अमरनाथ झा ने प्रमाणित किया है कि उत्तरी ध्रुव भी धीरे-धीरे बदलता रहता है और आज से 20,000 वर्ष पूर्व यह सम्भवतः भारत में ही था। पर दोनों विद्वानों ने अपनी खोजों के लिए लोकमान्य के अन्वेषण का आभार स्वीकार किया है। डा. सम्पूर्णानन्दजी ने यह माना है कि वेद के अन्तर्साक्ष्य द्वारा आर्यों के आदिदेश की खोज करने की दिशा में सबसे पहले मार्गदर्शक लोकमान्य ही थे। उन्हीं की दर्शायी हुई खोज की दिशा में आगे चलने से हमें अपने राष्ट्र की जन्मभूमि के दर्शन प्राप्त हुए हैं। अतः इस दिशा में किये गए सभी अन्वेषणों का मूल श्रेय तेजस्वी तिलक की तेजस्वी बुद्धि को है। अपने खोये हुए गौरव को पुनः प्राप्त करके हमारा राष्ट्र महाकवि प्रसाद की वाणी में गाने लगा—

किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यही।
हमारी जन्मभूमि थी यहाँ, कहीं से हम थे आये नहीं॥
जिएं तो सदा इसी के लिए, यही अभियान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें यह सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष॥

वेदों की प्राचीनता की खोज

भारत का सदा से गौरव रहा है कि संसार जब अंधकार के गर्त में खोया हुआ था, जब अमरीका का दुनिया के मानचित्र पर पता ही नहीं था, जब यूरोप के कच्चा मांस खाने वाले अर्द्ध-बर्बर लोगों ने अपनी बन्दर की पूंछ काट कर अभी इन्सान बनना ही नहीं सीखा था तब भारत के ऋषि हाथ में वेदज्ञान की मशाल लेकर दुनिया को आलोक का पथ दिखा रहे थे। भारत को पूर्णतया दास बनाने के लिए अंग्रेजों ने यह कुप्रचार करना आरंभ किया कि वह (वेद) विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय नहीं है। उन्होंने यह कहना शुरू किया कि वेद अधिक से अधिक ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व लिखे गये होंगे। इस कथन के पीछे यह एक भयंकर षड्यंत्र था कि भारतीयों के मन में यह बिठा दिया जाय कि वेद ओल्ड टेस्टामेंट (यहूदियों की धर्म पुस्तक) के बाद लिखे गये हैं। गीता न्यू टेस्टामेंट (ईसाइयों की धर्मपुस्तक) के बाद लिखी गई है। यह भारतीयों के स्वाभिमान को खुली चुनौती थी। लोकमान्य ने इस चुनौती का एक प्रबल उत्तर अपने लोक विश्रुत ग्रन्थ 'औरायण' (Orion) में दिया। औरायण यूनानी भाषा में एक नक्षत्र का नाम है जिसे वैदिक वाङ्मय में अग्रायण और मृगशिरस कहा जाता है। तेजस्वी तिलक ने अपनी सूक्ष्म तत्त्व विवेचिनी मेधा द्वारा इस महान् तथ्य का उद्घाटन किया है कि आर्यों की तीन मुख्य शाखायें जो ईरान, यूनान और भारत में फैली हुई हैं, प्रारम्भ में एक ही परिवार के रूप में रहती थीं।

उस काल की कुछ ऋचाएँ ऋग्वेद में हैं। जो वैसी की वैसी ही ईरानी और यूनानी परम्पराओं में भी सुरक्षित हैं। ऋग्वेद की कुछ ऋचाएँ अन्तर्साक्ष्य के रूप में यह गवाही देती हैं कि जिस समय वेदों की ऋचाएँ लिखी गईं उस समय बसंत ऋतु से वर्ष प्रारम्भ होता था और वर्ष का प्रथम दिवस ओरायन में पड़ता था।

लोकमान्य ने वैदिक वाङ्मय के काल को कई भागों में विभक्त किया है—

1. अदितिकाल या पूर्व ओरायन काल (लगभग 6000 ई. पूर्व से 4000 ई. पूर्व)—इस काल में आधे गद्य और आधे पद्य के मन्त्र पढ़े जाते हैं। ईरानी तथा यूनानी आर्यों ने उस काल की परम्परा को भुला दिया है क्योंकि उन्होंने उसी संवत्सर को याद रखा जो भारत में उस समय प्रचलित था जब वे भारत छोड़ कर गये। भारतीयों ने उक्त परम्परा को वेदों में जीवित रखा।

2. ओरायन काल (लगभग 4000 ई. पूर्व से 2530 ई. पूर्व तक)—जब वसन्तारम्भ आर्द्रा नक्षत्र में होता था तब से लेकर उस काल तक जब वह कृतिका में होने लगा। ऋग्वेद में उस काल के बहुत से सूक्त हैं। ईरानी तथा यूनानी आर्यों ने इसी काल के प्रायः अन्त में ही भारत छोड़ा था तथा उक्त परम्परा को याद रखा।

3. कृतिका काल (लगभग 2500 ई. पूर्व से 1900 ई. पूर्व तक)—यह तैत्तिरीय संहिता और कई ब्राह्मण ग्रन्थों का काल है। इस काल में ही संहिताओं का संग्रह हुआ। इसी काल में चीनियों ने भारत से हिन्दू नक्षत्र पद्धति सीखी।

4. कल्पसूत्रों का काल (2400 ई. पूर्व से 500 ई. पूर्व (बुद्ध काल) तक)—इससे स्पष्ट है कि वेद के अन्तर्साक्ष्य से प्रमाणित होता है कि वैदिक संवत्सर परिगणना का काल 6000 ई. पूर्व के लगभग है, वैदिक पंचाग (कैलण्डर) निर्माण से पूर्व भी आर्य सभ्यता अवश्य रही होगी। अतः वेदकाल अतिप्राचीन तथा कम से कम 7-8 हजार वर्ष प्राचीन अवश्य है।

लोकमान्य की इस अद्‌भुत खोज के सम्मुख मैक्समूलर सहित बड़े-बड़े पश्चिमी विद्वान् झुक गये तथा भारतवासियों को अपना खोया हुआ गौरव पुनः प्राप्त हो गया।

भारत तथा चैल्डिया (प्राचीन बैबिलोनिया)—लोकमान्य अपनी नानाविध खोजों में भारत तथा चैल्डिया के प्राचीन वाङ्मय में अद्‌भुत समानता को प्रकाश में लाये। वैदिक संस्कृत का 'अप' शब्द जिसका अर्थ जल है, चैल्डिया में अपसु हो गया और अरबी में आब हो गया। अप्सु वृत्रासुर का भी नाम है। वृत्र पर विजय के कारण इन्द्र को ऋग्वेद में अप्सुजित कहा है। वैदिक 'ऋतु' ही चैल्डिन भाषा का 'इतु' हो गया है। जिसका अर्थ मौसम या मास है। भारत के समान चैल्डिया के प्राचीन धर्म में सात आकाशों तथा पातालों का वर्णन है। चैल्डिन वेद भी भारतीय वेदों के प्रकारान्तर हैं।

गीता का सन्देश—माण्डले जेल में कोयले से जेल की दीवार पर लोकमान्य ने जो एक महान् ग्रन्थ लिखना शुरू किया वह उनकी प्रतिभा एवं विद्वत्ता का मेरुदण्ड बन गया।

योग को भोग में निहित रखो। सच्चा योग भोग के भीतर भी अक्षुण्ण रहता है। वह गीता का जीवन दर्शन है।

इस दिशा में सबसे बड़ा काम तिलक का जिनका गीता विषयक ग्रन्थ कर्मयोग शास्त्र अभिनव हिंदुत्व का सर्वश्रेष्ठ आचार ग्रन्थ माना जाता है। वास्तव में राममोहन से लेकर विवेकानंद तक भारतीय दर्शन में जो विपुल मंथन हुआ था, कर्मयोग शास्त्र में हम उसका तर्कसम्मत दार्शनिक रूप देखते हैं। यह ग्रन्थ हिन्दुत्व की उस अवस्था का परिचायक है जबकि यूरोपीय संस्कृति की टकराहट से उत्पन्न कम्पन समाप्त हो जाता है एवं हिन्दुत्व नवीन जन्म ग्रहण करके अपने अनुयायियों को नई परिस्थितियों से लोहा लेने का उपदेश देता है। तिलकजी प्रधानतया समाज एवं राजनीति के पुरुष थे तथा विश्ववाद से उन्हें अधिक प्रेम नहीं था। वे हिन्दुओं

की पतनशीलता से दुःखी थे। वे पराधीनता से क्षुब्ध थे। वे हिन्दू जाति की निवृत्ति भावना से आकुल और उसकी कर्तव्यविमुखता से अधीर थे। अतएव गीता की व्याख्या के बहाने उन्होंने समस्त हिन्दू दर्शन को मथ कर उसे नवीन कर दिया तथा हिंदू जाति में वह प्रेरणा भर दी जिससे मनुष्य प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय पाता है, जिससे कर्तव्य-अकर्तव्य के निश्चय में दार्शनिक सूक्ष्मताएँ उसके मार्ग का अवरोध नहीं कर पातीं तथा जिससे वह परिस्थितियों के अनुसार धर्माधर्म का ठीक-ठाक समाधान कर पाता है।

लोकमान्य का अपना जीवन ही गीता के कर्मयोग पर एक जीवित-जागृत भाष्य था।

यत्करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ 9/27

गीता के इस महावाक्य के अनुसार ही लोकमान्य ने जो कुछ खाया-पीया, जो कुछ हवन किया, जो कुछ दिया और जो कुछ तप किया—सभी कुछ भगवान् को समर्पित कर दिया। शैशव की तोतली वाणी से उन्होंने गीता गाना प्रारम्भ किया जब एक-एक श्लोक याद करने पर उन्हें उनके दादा एक पाई इनाम में देते थे। जीवन की अंतिम घड़ी में भी वे भगवद्गीता का गायन कर रहे थे—

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ 4/7

उन कर्मवीर कुल-भालकुंकुम लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की अनन्त अलौकिक प्रज्ञा को हमारा कोटि-कोटि प्रणाम।

30 जुलाई, 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश महामहिम बेग साहब ने गीता का अध्ययन कर अपने विचार तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को एक विशेष नोट लिख, प्रेषित कर राय दी थी कि यह एक ऐसी अनमोल पुस्तक है जो सभी मजहब तो क्या मनुष्य मात्र के पढ़ने की जरूरी किताब है। इसका अध्ययन शिक्षण संस्थाओं में प्रारम्भ से लेकर कॉलेज तक अनिवार्य होना चाहिए। हकीकत तो यह है कि श्रीमद्भगवद्गीता भारत की सही पहचान है।

पंचनद-पंचानन का राजनैतिक दर्शन

स्वतन्त्र भारत में श्वास लेने वाले हम भारतीयों का प्रत्येक श्वास उन महान् बलिदानी वीरों का कृतज्ञ है जिन्होंने अपने जीवन-रुधिर से स्वतंत्रता के कोमल बिरवे को सींचा। आज से 30 वर्ष पूर्व 17 नवम्बर 1928 के दिन ब्रिटिश साम्राज्य के कुत्तों ने भारत के एक ऐसे महान् शेर को मार डाला जो 63 वर्ष तक ब्रिटिश साम्राज्य के इस्पाती पिंजरे में रहता हुआ भी अपनी दहाड़ों से पिंजरे की जड़ें हिलाता रहा। उसकी जो गर्जना इंग्लिस्तान के फिरंगियों के भी कलेजे कंपा देती थी आज भी सुप्त भारतीयों के हृदय की दुर्बलता को झाड़ कर उन्हें नवप्राण से भरकर खड़ा कर सकती है।

लाला लाजपतराय का राजनैतिक दर्शन हमें आज के राजनैतिक भ्रष्टाचार के युग में सही मार्गदर्शन देने वाला दर्शन है।

स्वदेश तथा स्वधर्म

लालाजी स्वदेश तथा स्वधर्म को एक ही तत्त्व के दो रूप मानते थे। उन्होंने देश-पूजा तथा देव-पूजा को एक साथ निभाया। उनके अपने शब्द हैं—'हम केवल एक ही धर्म को जानते हैं—मातृभूमि का प्यार। हम उसकी सेवा का एक ही मार्ग जानते हैं—उसके स्वातंत्र्य के लिए संगठित एवं अनवरत परिश्रम। वह ही हमारी अर्चना की पात्र है। उसी जन्मभूमि की पूजा द्वारा ही हम ईश्वर-प्राप्ति कर लेंगे।'

स्वतंत्रता की तड़प

लालाजी स्वाधीनता के जीवित-जागृत अवतार थे। पराधीनता के विचार से ही उन जैसे स्वातन्त्र्य प्रेमियों का दम घुटने लगता था। उनकी स्वाधीनता की तड़प इन शब्दों में प्रकट हुई—'तुम धीरे-धीरे गुलाम बनाए जा सकते हो पर धीरे-धीरे स्वाधीन नहीं किए जा सकते।' स्पष्ट ही लालाजी गांधीजी के धीमे-धीमे चलने वाले लंबी अवधि के कार्यक्रम से सहमत नहीं थे। वे तो एक ही हल्ले में देश को स्वाधीन देखना चाहते थे। इस कार्य में वे विलम्ब को घोर पाप समझते थे।

वीर भोग्या वसुन्धरा

लालाजी सचमुच शेर थे। उन जैसे वीर पुरुष ही वसुन्धरा को भोग सकते हैं। वे मूर्तिमान वीर थे। जगराओं के वैश्य कुल में सच्चे क्षत्रियत्व के अवतार बन कर वे प्रकट हुए। राष्ट्रीय क्षेत्र में लालाजी कायरता को घृणा की दृष्टि से देखते थे। अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं—'छोटी अवस्था में गुलिस्ताँ के जिस शेर ने मेरी स्मरण शक्ति को पकड़ा और मेरी कल्पना पर अधिकार जमाया, वह था—

आं न मन बाशम्
कि रोज़े जंग बीनी पुश्तमन्।
ईमनम् कां दरमियाने
खाके खूं बीनी सरे॥

अर्थात्, मैं वह नहीं हूँ कि लड़ाई के दिन तू मेरी पीठ देखे। मैं वह हूँ कि मिट्टी और खून के बीच मेरा सिर देखे।' सचमुच उस वीर ने अपने बचपन में गाए हुए शेर को अपने जीवन पर चरितार्थ कर दिखाया।

गरम दल-नरम दल

कांग्रेस के दो दलों—नरम दल और गरम दल में से लाला लाजपत राय गरम दल के अग्रणी थे। उन्हें नरम दल की ढुल-मुल नीति कभी पसन्द नहीं थी। उनका मत था कि आजादी भीख मांगने से नहीं मिल सकती, वह वीर पुरुषों को अपने बाहुबल से विजय करनी पड़ती है। इस विषय में वे गांधीजी के अहिंसा मार्ग को केवल कापुरुषता का नैतिक ढोंग मानते थे। लाल-बाल-पाल की जो त्रिपुटी गरम दल की सर्वेसर्वा थी उसमें लालाजी का नाम सबसे प्रथम आता है।

शांति मार्ग-क्रांति मार्ग

पंजाबकेशरी एक महान् क्रांतिकारी नेता थे। गांधीजी के शांति के मार्ग में वे विश्वास खो चुके थे। उनकी हुँकार है, 'आखिरकार क्रांति कोई बहुत भयानक वस्तु नहीं है। यह एक प्रकृति का प्यारा विधान है जिसके बिना न प्राकृतिक और न मानवीय कार्य-व्यवहार में प्रगति सम्भव है। क्रान्ति सत्ताधारियों के लिए सदा एक भय रही है फिर भी यह उनकी सारी दमन योजनाओं का तिरस्कार कर समय-समय प्रकट होती रही है।

स्वाधीनता का मूल्य—खून

पंजाबकेशरी की महान् ललकार है—'एक शहीद का खून ही वह खुराक है जिस पर स्वतंत्रता का कोमल बिरवा फलता-फूलता है।' जहाँ भगतसिंह जैसे बलिदानी वीरों के कार्यों को गांधीजी हिंसा-हिंसा कहकर कोसते रहते थे वहीं लालाजी की त्याग, यज्ञ और बलिदान की भावना कितनी स्तुत्य है!

मानो भगतसिंह तथा सुभाष बाबू की महान् क्रान्तियों के विषय में भविष्यवाणी करते हुए उन्होंने कहा था—'यदि सरकार इसी प्रकार व्यवहार करती रही तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा कि जवान हमारे हाथों से निकल जाएँ और देश की आजादी के लिए जो चाहें, करें। मैं नहीं जानता कि मैं वह दिन देखने के लिए जीवित रहूँगा या नहीं। लेकिन यदि वह क्रान्ति का दिन आ गया तो मेरी आत्मा उस संघर्ष में पीछे से तुम्हें आशीर्वाद देगी।'

हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान

यह तथ्य भी सर्वविदित है कि लाला लाजपत राय कांग्रेस की मुस्लिम पोषक नीति के कारण उसमें श्रद्धा खो बैठे थे तथा पंडित मदनमोहन मालवीय के संग मिलकर उन्होंने हिन्दू राष्ट्रवाद का नाद बजाया।

राष्ट्रभाषा हिन्दी

वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—'हिन्दी-उर्दू के झगड़े ने मुझे हिन्दू राष्ट्रीयता का पहला पाठ पढ़ाया और मेरी तबीयत ने उस समय जो पलटा खाया उसमें फिर कमी नहीं हुई। प्रारंभिक संस्कार और पिता की शिक्षा से तो मेरी सहानुभूति उर्दू के साथ होनी चाहिए थी, निजी लाभ भी मेरा इसी में था क्योंकि मैं हिन्दी अक्षर तक न जानता था। फारसी के पढ़ने में मैंने कई साल लगाए थे और उर्दू साहित्य की मुझे अच्छी जानकारी थी। हिन्दी की विजय में स्पष्ट ही मेरी निजी हानि थी। किन्तु ज्योंही मुझे निश्चय हो गया कि राष्ट्रीय मेल और राजनैतिक एकता के लिए सारे देश में हिन्दी और नागरी का प्रचार आवश्यक है, मैंने अपने लाभ और हानि के विचारों को एक ओर रख दिया और हिन्दी का प्रचार करना आरम्भ कर दिया।'

सच्चा हिन्दू

लालाजी की आत्मकथा स्वयं एक अन्य कहानी सुनाती है—'मैं इन दिनों कॉलेज में भी फारसी और अरबी पढ़ा करता था। मौलवी मुहम्मद हमारे उस्ताद थे। एक दिन दर्जे में वे हिन्दी के पक्षपातियों की खिल्ली उड़ाने लगे और बंगालियों की हंसी करने लगे।....वे सदा ईरान की प्रशंसा किया करते थे कि मेरा वतन तो ईरान है, मेरा जी चाहता है कि वहाँ जा रहूँ। जब उन्होंने बंगालियों पर हमला किया तब तुरंत मेरे मुँह से निकला—मौलवी साहब! बंगाली यद्यपि पंजाब के रहने वाले नहीं, फिर भी हिन्दू तो हैं। किन्तु आप तो मुसलमान हैं और ईरानी होने का दावा करते हैं। यदि बंगाली सज्जनों को पंजाब के मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं तो बतलाइए आपको यह अधिकार कहाँ से प्राप्त हुआ....मैंने फारसी और अरबी पढ़ना बन्द कर दिया।....पण्डित गुरुदत्त मुझे संस्कृत के पंडित

के पास ले गए और बोले, 'पण्डितजी! यह लो, नया शिष्य लाया हूँ। अब तक मुसलमान था अब हिन्दू हुआ है।' पण्डितजी हंस पड़े। मेरे जीवन की यह पहली घटना थी जिसने मुझे पक्का हिन्दू बनाया और मुझे अन्त तक इस घटना की ओर खेद से दृष्टि डालने का कोई अवसर नहीं हुआ।'

संस्कृति रक्षण

लालाजी भारतीय संस्कृति के महान् रक्षक थे। गो-माता की रक्षा तथा गोवध बन्द कराने के लिए उन्होंने जीवन भर परिश्रम किया। उन्होंने शिवाजी तथा प्रताप की जीवनियाँ लिख कर देश के नौजवानों को सांस्कृतिक महापुरुषों का परिचय कराया। ये स्वयं स्वामी दयानन्द को अपना गुरु मानते थे और विश्व में आर्य संस्कृति के प्रसार के लिए कृत-संकल्प थे।

संस्कृति निर्माता

लालाजी भारत के भाग्यनिर्माता थे। वे कहते—'हमने अपना आज कुर्बान कर दिया है ताकि आपका आने वाला कल अधिक उज्ज्वल हो सके। तथा आगे आने वाली अनन्त पीढ़ियाँ सुखपूर्वक सम्मान का जीवन व्यतीत कर सकें।'

आज का पंजाब

आज पंजाबकेशरी का प्यारा पंजाब क्षत-विक्षत पड़ा है। लालाजी की सिंह-गर्जना थी—

मगर यह बात कहने में
न चूके हैं न चूकेंगे,
लहू देंगे मगर इस देश की
मिट्टी नहीं देंगे॥

आज पंजाब तो बंट गया है किन्तु पंजाबियों के हृदय भी बंटे हुए हैं। लाला लाजपत राय के पश्चात् पंजाब की लाज लुट गई है या नष्ट हो गई है और बात में कोई बल नहीं रहा। क्या पंचनद-पंचानन की ठण्डी चिता से आज 30 वर्ष पश्चात् भी कोई ज्योति ज्वाला उठकर देश का मार्गदर्शन करेगी?

17 नवम्बर, 1958
दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

डॉ. एनी बीसेंट

डॉ. एनी बीसेंट ने लिखा है—'India & Hinduism are one'. (भारत और हिन्दुत्व—दोनों एक और अभिन्न हैं।)।

'....और यदि हिन्दू ही हिन्दुत्व का संरक्षण नहीं करेंगे तो कौन इसे बचाएगा? यदि भारतमाता की अपनी सन्तानें ही अपने धर्म के प्रति निष्ठावान् नहीं रहती तो कौन इसकी रक्षा करेगा? विदेशी कलेवर में कोई भी वह नहीं कर सकता जो अपने स्वदेश में कर सकता है। मेरा भारत के लिए कितना भी प्रेम, कितनी भी सेवा की पूर्णता, कितनी भी भक्ति की अनन्यता, इस विदेशी शरीर में वह नहीं कर सकती जो आप भारत के लाल कर सकते हैं। अतः हम भी, जिनके हृदय हिन्दू हैं, और जिनके पूर्वजन्म हिन्दू रहे हैं, हम केवल आपकी सहायता कर सकते हैं, मुख्य कार्य आपको स्वयं ही करना होगा।

'भूलो मत! हिन्दुत्व के बिना हिन्दुस्तान का कोई भविष्य नहीं है। हिन्दुत्व ही वह जनन-भूमि है जिसमें भारत की जड़ें स्थापित हैं, और उससे उखाड़ देने पर वह अनिवार्य रूप से मुरझाकर मर जाएगा, जैसे एक वृक्ष को उसके मूलस्थान से उजाड़ देने पर होता है। बहुत से धर्म हैं और बहुत-सी जातियाँ हैं जो भारत में फल-फूल रही हैं, किन्तु उनमें से कोई भी उसके अतीत के अति दूर प्रथम सूर्योदय तक नहीं पहुँच पाती, तथा न ही वे उसके राष्ट्र के रूप में जीवित रहने के लिए आवश्यक है। उनमें से प्रत्येक जैसे आया था भले ही चला जाए, और भारत फिर भी बना रहेगा। किन्तु तनिक हिन्दुत्व को लुप्त होने दो, तो भारत क्या बचेगा? भूतकाल का एक भौगोलिक आभास मात्र, विनष्ट वैभव की धुँधली स्मृति मात्र! उसके इतिहास, उसके साहित्य, उसकी कला, उसके स्मारकों—सभी पर हिन्दुत्व ही अंकित है।

जरथ्रुस्त्र का पारसी धर्म भारत में शरण के लिए आया और उसके पुत्रों को भारत में शरण एवं स्वागत मिला; किन्तु पारसी धर्म भले ही चला जाए, तब भी भारत भारत ही रहेगा। बौद्धधर्म यहीं पर स्थापित हुआ, किन्तु बौद्ध धर्म लुप्त हो गया और भारत भारत ही है। इसलाम एक आक्रमण की लहर बन कर आया,

और मुसलमान भारतीय राष्ट्र के अंग बने हुए हैं, तथा इसके भविष्य के निर्माण में योगदान करेंगे; फिर भी इसलाम भले ही चला जाए, भारत भारत ही रहेगा। ईसाइयत आयी है, और ईसाई भारत में शासन करते हैं तथा इसके विभिन्न पक्षों को प्रभावित करते हैं; फिर भी ईसाइयत भले ही चली जाए और भारत भारत ही रहेगा। भारत उनके आगमन से पहले भी जीवित था; और भारत उनके चले जाने के बाद भी जीवित रह सकता है। किन्तु तनिक हिन्दुत्व को जाने दो, हिन्दुत्व जो भारत का शैशव का झूला रहा है, और उसके लोप में ही भारत की मृत्यु हो जाएगी। तब भारत, भारत के धर्म के साथ, केवल स्मृति शेष बचेगा, जैसे मिस्र एवं मिस्र के धर्म आजकल हो गए हैं। तब भारत बचेगा मात्र प्राचीन इतिहास का एक विषय, पुरातत्त्व की वस्तु, चीर-फाड़ के लिए शवमात्र, किन्तु वह देशभक्ति की वस्तु नहीं बचेगा, वह राष्ट्र नहीं रहेगा।' (डॉ. एनी बीसेंट का हिन्दू आदर्शों पर व्याख्यान, सेंट्रल हिन्दू कॉलेज, बनारस; हिंदूइज्म थ्रू दि एजेज, जी. एल. शर्मा पृष्ठ 118-119)

अमरीकी इतिहासकार विल डयूरंट ने दस खण्डों में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'स्टोरी आव सिविलाइजेशन' के प्रथम खण्ड 'अवर ओरियंटल हेरिटेज' में इस बात का उल्लेख किया है कि आधुनिक विश्व भारत से क्या आशा कर सकता है। उन्होंने कहा है (पृष्ठ सं. 633)

'यह सत्य है कि हिमालय की सीमाओं के पार भी भारत ने हमें व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शन, कथाओं, सम्मोहन और शतरंज तथा इन सबसे बढ़कर हमारे अंक और दशमलव प्रणाली की महान् भेंट दी है परन्तु ये सब उसकी आत्मा का सार नहीं है। भविष्य में हम उससे जो सीख सकते हैं उसके मुकाबले में ये सब तुच्छ हैं। जैसे-जैसे नए आविष्कार, उद्योग तथा व्यापार महाद्वीपों को एकता में बाँधेंगे या एशिया के साथ हमको संघर्ष में डालेंगे, हम उनकी सभ्यताओं का अधिक निकटता से अध्ययन करेंगे तथा शत्रुता में भी उनके कुछ आचार-विचार को अपना लेंगे। संभवतः विजय, उद्दंडता और लूटमार के बदले में भारत हमें परिपक्व बुद्धि की सहनशीलता और शालीनता, असंग्रहशील आत्मा का शान्त-संतोष, समझदार व्यक्तित्व की शान्ति और सभी जीवित प्राणियों के प्रति एकता और प्रेम की शिक्षा देगा।'

महामना मालवीयजी का उद्‌बोधक सन्देश

ग्रामे ग्रामे सभा कार्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभा।
पाठशाला, मल्लशाला प्रति पर्व महोत्सवः॥

(मालवीयजी द्वारा स्वरचित)

1. राष्ट्र जागरण के लिये ग्राम-ग्राम में सभा होनी चाहिये (जिससे गांव की उन्नति का सामूहिक विचार होता रहे,)।
2. ग्राम-ग्राम में सामाजिक एकता का निर्माण करने हेतु सामूहिक रूप में पवित्र भगवद्‌कथा होनी चाहिये।
3. प्रत्येक ग्राम में पाठशाला हो (जिससे विद्या का प्रसार हो, सामाजिक चेतना जागे, अपराध कम हों, लोग रामायण, महाभारत आदि पढ़कर भारत की प्राचीन महिमा जानें,)।
4. प्रत्येक ग्राम में मल्लशाला हो (जिससे बालक और तरुण प्रतिदिन कुश्ती, कबड्‌डी, भारतीय खेल खेलें, तेल मालिश करें, बजरंग बली की जय बोलें तथा वज्र जैसे अंगों वाले बन जावें,)।
5. प्रत्येक ग्राम में प्रत्येक सांस्कृतिक पर्व (मकर संक्रांति, वसन्त, वर्ष-प्रतिपदा, होली, श्रावणी, गुरुपूर्णिमा, तुलसी जयन्ती, श्री कृष्णजन्माष्टमी, दशहरा, दीपावली, गीता जयन्ती आदि,) पर एक विराट सामूहिक महोत्सव होना चाहिए जिससे समाज के सभी घटकों में यह भावना जागे कि वे एक ही पावन संस्कृति भागीरथी में अवगाहन कर रहे हैं।

सनातनीयाः समाजाः सिक्खाः जैनाश्च सोगताः।
स्वे स्वे कर्मण्यभिरताः भावयेयुः परस्परम्॥

(मालवीयजी द्वारा स्वरचित)

सभी भारतधर्मी भरत सन्तानों—सनातन धर्मी, आर्य समाजी, ब्रह्म समाजी, देव समाजी, प्रार्थना समाजी, सिख समाजी, जैन समाजी, बौद्ध समाजी, शैव, शाक्त, वैष्णव, लिंगायत, निर्गुण मार्गी, सगुण मार्गी, कबीर पंथी, दादूपंथी, राधा स्वामी, स्वामीनाथ धर्मी इत्यादि-इत्यादि, सभी को चाहिये कि वे अपने-अपने

विशेष व्यक्तिगत धर्म (उपासना पद्धति) का पालन करते हुए एवं अपने समाज धर्म की रक्षा हेतु एक-दूसरे से परस्पर प्रेम एवं आदर का व्यवहार करें।

बहुकृत्ये निरुद्योगी जागर्तव्ये प्रसुप्तकः।
विश्वस्तत्वं भयस्थाने हा पुत्रक! विहन्यसे॥

(महाभारत से मालवीयजी द्वारा उद्धृत)

'हे पुत्र! तुम्हें बहुत काम करना है, किन्तु तुम कुछ उद्योग नहीं कर रहे हो। यह जागने का समय है, किन्तु तुम सो रहे हो, तुम्हारे सामने भय का स्थान उपस्थित है, किन्तु तुम विश्वास किये निश्चिन्त पड़े हो। हे प्यारे पुत्र! तुम इस तरह से तो मारे जाओगे। जागो! जागो!'



मैंने सदा ही सनातनी हिन्दू होने का दावा किया है। क्योंकि—

मैं वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा अन्य हिन्दू शास्त्रों में और इसलिये अवतारों व पुनर्जन्म में विश्वास करता हूँ।

वर्णाश्रम धर्म का सिद्धान्त मुझे स्वीकार्य है, किन्तु आज के विकृत और भोंडे रूप में नहीं, अपितु मूल वैदिक रूप में।

गो रक्षा के प्रति मेरा सामान्य से अधिक आग्रह है।

मूर्ति पूजा में मुझे अविश्वास नहीं है।

और मैं कट्टर हिन्दू हूँ इसलिये मैं समस्त सृष्टि से प्रेम कर सकता हूँ।

—महात्मा गांधी

× × ×

भारत भूमि पवित्र भूमि है। भारत मेरा तीर्थ है। भारत मेरा सर्वस्व है। भारत की पुण्य भूमि का अतीत गौरवमय है। यही वह भारतवर्ष है जहां मानव प्रकृति और अन्तर्जगत् के रहस्यों की जिज्ञासाओं के अंकुर पनपे थे।

—स्वामी विवेकानन्द



सुभाष बाबू का बलिदान दर्शन

'जब आप अपने देश को वापस जावें तो मेरे देशवासी भाइयों को बताना कि मैं आखिरी दम तक देश की आजादी के लिए लड़ता रहा हूँ, वे जंगे-आजादी को जारी रखें। हिन्दुस्तान जरूर आजाद होगा, उसको कोई गुलाम नहीं रख सकता।' 18 अगस्त, 1945 के क्रूर एवं रहस्य गर्भित दिवस पर जापान के तेटोको नामक स्थान पर जलते हुए हवाई जहाज में से निकलकर भागते हुए, फौजी वरदी तथा जलते हुए बालों वाले जिस पुरुषसिंह ने अपने अन्य देशवासियों के हाथ प्यारे स्वदेश को यह सन्देश भेजा उन वीरों के मणिमुकुट नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का तत्पश्चात् का जीवन अभी तक इतिहास की त्रिकालदर्शिणी आँखों के लिए भी एक रहस्यपूर्ण प्रश्नचिह्न बना हुआ है!!

श्री गोपालदास व्यास के शब्दों में—

है समय नदी की बाढ़,
कि जिसमें सब बह जाया करते हैं।
है समय बड़ा तूफान
प्रलय पर्वत ढह जाया करते हैं॥
अक्सर दुनिया के लोग,
समय में चक्कर खाया करते हैं।
लेकिन कुछ ऐसे होते हैं
इतिहास बनाया करते हैं॥
यह उसी वीर इतिहास पुरुष की,
अनुपम अमर कहानी है।
जो रक्त कणों से लिखी गई
जिसकी जयहिन्द निशानी है॥

सचमुच विश्व के वक्षस्थल पर मानव के लाल बलिदानी रुधिर से अंकित की हुई यह इतिहास दुर्लभ गाथा बड़ी ही रोमांचकारी है। इस गाथा में वीर अभिमन्यु का शौर्य, श्रीकृष्ण का यज्ञमय जीवन, चन्द्रगुप्त का रणकौशल, चाणक्य

की नीति, शिवाजी का लोकविश्रुत साहस तथा दधीचि का महान् बलिदान— सभी कुछ छिपा हुआ है।

इस महान् बलिदानी वीर सुभाष का जन्म आज से 113 वर्ष पूर्व 23 जनवरी, 1897 को कटक के स्थान पर प्रसिद्ध वकील श्री जानकीनाथ बोस के शुभ गृह में हुआ। अत्यन्त धर्मपरायण माता के संस्कारों से भी बालक के जीवन की दिशा निश्चित होने में बड़ी सहायता मिली। इस तेजस्वी बालक के नेत्रों में बड़ा तेज था तथा मुखमण्डल से ओज टपकता था।

5 वर्ष की अवस्था में वह तेजस्वी बालक मिशनरी स्कूल में भरती हुआ तथा सदा कक्षा में प्रथम स्थान पाने लगा। रेवनशा कॉलिजिएट स्कूल में वे बांग्ला भाषा में सदा प्रथम आते। स्कूल के मुख्याध्यापक बाबू बेनीमाधव दास के सात्विक एवं राष्ट्र प्रेमी जीवन का उस बालक के जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

युवक सुभाष के अन्तस्तल में एक संन्यासी का त्यागपूर्ण आदर्श सुप्त पड़ा था जो 15 वर्ष की अवस्था में एकाएक जाग उठा। भगवान् रामकृष्ण परमहंस के पट्ट शिष्य, विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द अमरीका में विजय वैजयन्ती की पताका फहरा चुके थे। चाहे सुभाष बाबू की केवल 3-4 वर्ष की अवस्था में ही स्वामी विवेकानन्द अपना नश्वर चोला छोड़ चुके थे फिर भी वह उनके सन्देश का युग था। सुभाष के तरुण मन पर रामकृष्ण व विवेकानन्द साहित्य का बड़ा प्रभाव पड़ा। वे योगाभ्यास की ओर झुके। घण्टों ही वे मध्याह्न के सूर्य की ओर देखते रहते। वे एक बार हिमालय में एकान्तवास के लिए निकल पड़े एवं संन्यास लेने की इच्छा से रामकृष्ण आश्रम में पहुँचे। वहाँ के स्वामीजी ने कहा कि तुम भगवा धारण किये बिना ही संन्यासी हो, तुम संसार में रहकर भारतमाता की अर्चना करने के लिए पैदा हुए हो।

यज्ञमय जीवन

सुभाष बाबू का जीवन यज्ञमय हो गया। यज्ञ करते हुए हम 62 बार दुहराते हैं—

'इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम्।'

अर्थात्, यह जनम-मरण के साक्षी जातवेदस, अग्नि देवता के लिए अर्पित है, वह मेरा नहीं है। इसी यज्ञ-भावना को जीवन में साकार करते हुए सुभाष बाबू ने निरभिमान भाव से सर्वस्व राष्ट्रदेवता के लिए अर्पित कर दिया था।

'इदं राष्ट्रीय, राष्ट्रदेवाय, इदं न मम्।'

अर्थात्, यह सबकुछ राष्ट्रदेवता के लिए समर्पित है, इसमें मेरा कुछ भी नहीं है।

इसी भाव से सब जनगण के हृदय में छिपे हुए नारायण की सेवा के लिए वे ग्राम-ग्राम घूमे तथा उन्होंने महान् समाजसेवा की। निष्काम सेवा का यज्ञमय जीवन ही सुभाष बाबू थे।

दुर्दमनीय आदर्शवाद

सुभाष बाबू एक ऐसे आदर्शवादी थे जो कभी समझौता करना नहीं जानते थे। आदर्श विरोधी किसी तत्त्व के साथ समझौता करना उनके लिए असम्भव ही था। वे टूट भले ही जावें पर न वे आदर्श को झुकने देते, न स्वयं झुकते। कॉलेज में एक अंग्रेज प्रोफेसर ने जब बार-बार समझाने के उपरान्त भी भारतीयों की निन्दा की तो सुभाष बाबू यह सहन न कर सके तथा उस अंग्रेज प्रोफेसर को उचित दण्ड दिया। चाहे, इस कारण उन्हें कॉलेज से बाहर निकलना पड़ा।

अपने राजनैतिक जीवन में भी वे कहा करते—यदि कोई मेरे संग चले तो उसके साथ, यदि कोई न चले तो अकेला और यदि कोई विरोध करे तो इसके बावजूद भी मैं निरन्तर बढ़ता जाऊंगा।

उस युग की राष्ट्रीयता में कुछ लोग अंग्रेजों से अनेक प्रकार के समझौते करने के पक्ष में थे। सुभाष बाबू पाप या अत्याचार के साथ कोई समझौता नहीं कर सकते थे।

सर्वस्व अर्पण

सुभाष सर्वस्व दान को ही सच्चा कार्य समझते थे। बलिदान पूरा होना चाहिए। सन् 1920 में उन्होंने आई.सी.एस. में सारे ब्रिटिश जगत् में चतुर्थ स्थान प्राप्त किया था। किन्तु राष्ट्र के लिए उन्होंने उसे भी ठोकर मार दी। वे कहा करते—'तुम मुझे रक्त दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।' स्वतंत्रता का मूल्य प्राण है। उनकी उक्ति है—

'ऐसे कार्य करो कि जाति उठे। स्वयं दुःख उठाओ कि जाति सुखी हो।'

कण्टकाकीर्ण मार्ग

नेताजी का सन्देश है—'क्या तुम पूर्ण विकसित फूल की सुगन्धि चाहते हो? यदि हां, तो तुम्हें उसके कण्टकों को स्वीकार करना होगा। यदि तुम उषा की सुनहली मुसकान के इच्छुक हो तो तुम्हें रात्रि के अन्धकारमय क्षण व्यतीत करने होंगे; यदि तुम्हारी अभिलाषा स्वतंत्रता की सुखद शीतल छाया में बैठने की है तो तुम्हें आत्मोत्सर्ग एवं बलिदान के रूप में उसका मूल्य देना होगा।'

मातृभूमि का लाडला माता के लिए व्याकुल

कदम कदम बढ़ाए जा,
खुशी के गीत गाए जा
जिन्दगी है कौम की,
तू कौम पर लुटाए जा॥

4 जनवरी, 1944 के दिन हृदय को तरंगित करने वाले इन स्फूर्तिदायी गीतों को गाते हुए लक्ष-लक्ष वीर सैनिकों को सम्बोधन कर वह मातृभूमि का लाडला अपनी जन्मदात्री भारतमाता के द्वारे पर खड़ा हुआ कह रहा था—'क्षितिज के उस पार—इस बल खाती हुई नदी के दूसरी ओर, लहराते हुए जंगलों के पार उन धूमिल पहाड़ियों की ओट में, हमारी जन्मभूमि है। हमारी नस-नस में उसी जन्मभूमि का प्यार गुंथा हुआ है। हमें एक बार अपनी मातृभूमि में वापस जाना है अब हम न रुकेंगे। खून ने खून को पुकारा है हमारे शस्त्र अब म्यान में न रहेंगे—आगे बढ़ो! शत्रुओं की पंक्ति को चीर कर आपको अपने देश में पहुँचना है। आजादी या मौत हमें याद रखना है।' कोहिमा और मणिपुर की पहाड़ियों में नेताजी के ये शब्द आज तक गूंज रहे हैं तथा सूने क्षितिज से बार-बार टकरा कर अपने उस अलौकिक वक्ता को खोज रहे हैं जिनके मुख से निःसृत हुए।

आज उसी महान् नेता को हम देशवासी उस खोए हुए नेता की स्मृति में हृदय की हरी-भरी क्यारियों के सारे के सारे भाव-पुष्प शून्याकाश में ही चढ़ाते हुए कामना करते हैं कि हमारे पूज्य नेताजी जहाँ भी हों उन्हें हमारी भावमुखर श्रद्धा सादर पहुँचे।

हिन्दुओं में जीने की इच्छा दृढ़ नहीं है–

हिन्दू लोग प्रायः जीवन की ओर उपेक्षा का भाव रखते हैं। वे लोग असंदिग्ध रूप से इहलोक की अपेक्षा परलोक में अधिक विश्वास करते हैं। उनमें जीवन की इच्छा का अभाव है और इसी कारण उसमें साहस की भावना भी नहीं है। फ्रांस की क्रान्ति के रूप में डाल्टन का नारा था, 'साहस करो' अब भी साहस करो, सदा ही साहस करो।

यदि हिन्दू भारत में जीवित रहना चाहता है तो इसे यह शूरता और आक्रामकता का संदेश ग्रहण करना पड़ेगा। वीरतापूर्ण जीवन का यह तो पुरातन वैदिक संदेश ही नये आवरण में है। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' केवल वीर और साहसी ही पृथ्वी का उपभोग करते हैं। आक्रमणशीलता जीवन है, इसका अभाव मृत्यु है।

हिन्दुओं का दृष्टिकोण प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में 'जाने दो भाई' वृत्ति का है, मानो इस जीवन का उनके लिये कोई अर्थ नहीं है।

—सुमित्रानन्दन पंत

डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार

इस आधुनिक काल में, जिस काल में हम जी रहे हैं, उसी विक्रम की परम्परा को, भारत के विक्रम को, भारत के पराक्रम को पुनः जगाने के लिये एक महापुरुष का अवतार इसी विक्रम संवत् को हुआ। वे थे—डॉ. हेडगेवारजी। आद्य सरसंघचालक जिनको प्रणाम हमने किया। आप हैरान होंगे कि जिस बालक को अतिशय निर्धनता ने जकड़ रखा था। जिस बालक के नन्ही-अवस्था में (मात्र 6-7 वर्ष की उम्र में) माता-पिता दोनों प्लेग के शिकार होकर एक ही दिन काल-कवलित हो गये। जिस बालक को पालने-पोसने वाला कोई बचा नहीं। जिस बालक को अपने भोजन तक के लिये समस्या थी कि किस तरह अपने जीवन को चलाने के लिये भोजन प्राप्त करे। उस बालक ने अध्यवसाय से, परिश्रम से, उच्च शिक्षा प्राप्त की। डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त करके भी अत्यंत अभाव में रहा। उस बालक ने डॉक्टर बनने के बाद एक पैसा भी अपने लिये नहीं कमाया। उसने सारी योग्यता, सारा जीवन, सारा पुरुषार्थ, सारा कर्तृत्व भारतमाता के चरणों में समर्पित कर दिया।

उस बालक के मन में प्रारंभ से एक बात खटकती थी। ये दुष्ट अंग्रेज सात समुद्र पार से भारत में आये व्यापार करने के लिये और यहाँ शासक बन गये। वे प्रायः कहते थे The British reign in India is the greatest Historical Mockery. इतिहास का सबसे बड़ा मजाक है भारत में ब्रिटिश साम्राज्य। वह कहते थे कैसे? यदि मैं मान लूं हिन्दुस्तान की कोई Firm, रांची की Firm, कोई बोकारो की Firm अमेरीका में व्यापार करने के लिये जाय और वहाँ जाकर साइनबोर्ड लगा ले Indian Trading Co. और कोई कोयले का व्यापार करे, कोई चाय का व्यापार करे, कोई चीनी का व्यापार करे और व्यापार करने वाली कंपनी धीरे-धीरे पूरे अमेरीका पर राज्य करने लग जाय। वे कहते थे, क्या कल्पना की जा सकती है? इतना बड़ा मजाक हो गया है कि ब्रिटिश लोग व्यापार करने के लिये आये और यहाँ शासक बन बैठे। इसलिये उनके मन में बड़ी चुभन होती थी कि ये विदेशी शासन भारत से निरस्त होना चाहिये। उससे पहले के भारत के हजार वर्ष की पराधीनता का काल, ये भी उनके मन को बड़ा कचोटता था। हम सब इतिहास पढ़ते हैं। कल मेरे पास एक इतिहास में एम. ए. पास किया हुआ

विद्यार्थी बैठा था। एक दूसरा था Research करने वाला। उससे दो-चार क्षण की बातचीत हुई तो मुझे लगा केवल पुस्तक-ज्ञान है। कुछ तथ्य घोट लिये, कुछ तथ्य रट लिये और परीक्षा भवन में रटी हुई चीजों को कै करके निकाल दिया। परीक्षा भवन में जाकर लिख दिया, मुहर लग गयी बस एम. ए. पास कर लिया। इतिहास से कुछ सीखा नहीं। इतिहास का बच्चा कहता है मैंने इतिहास का पाठ पढ़ लिया। अरे! क्या इतिहास का पाठ पढ़ लिया? What is the Lesson of History? इतिहास का पाठ क्या है? डॉ. हेडगेवार के मन में यही प्रश्न कचोटता रहता था। इतिहास हमें क्या सिखाता है? क्या केवल किताब में पढ़ लेना, उसको उत्तर पुस्तिका में लिख देना, मास्टर पूछे तो रट करके सुना देना, यह क्या इतिहास का पाठ हुआ। इतिहास से हमने कुछ नहीं सीखा। इतिहास कुछ चेतावनियों से भरा हुआ है। इतिहास हमारी भूलों का, इतिहास हमारे किये हुए राष्ट्रीय अपराधों का लेखा-जोखा है। इतिहास हमारी विजय और पराजय की कहानी है। उत्थान-पतन की कहानी है। कब हम ठीक रास्ते थे तो हम विजयी हुए? कब हम गलत रास्ते थे तो हम पराजित हुए? हमें उससे कुछ सीखना, इसलिये उससे कुछ सीखने के पीछे लगे रहते थे। इतिहास हमें क्या सिखाता है? इतिहास ने हमें सिखाया हमारे देश में राष्ट्रीय चरित्र का अभाव था। इसलिये कोई भी व्यक्ति दर्रा खैबर में खड़ा होकर देखता भारत की ओर—यहाँ मौज-मंगल है। जिसको मरजी, लूट लो। हिन्दुस्तान सोया हुआ है, सोये हुए हिन्दुस्तान को लताड़ करके कोई भी निकल जाय।

अत्यंत अफसोस की बात है कि मुहम्मद बिन बख्तियार, जो खुद पहले गुलाम था, बाद में उसकी विजेता बनने की साध हुई, उसने 17 घोड़े लिये, 17 घुड़सवार लिये, 17 तलवारें ली, उनको लेकर चला। नैमिषारण्य का तीर्थ जो गोमती नदी के किनारे पर है वहाँ पर मार-काट मचायी। गोमती नदी का पानी लाल कर दिया। उस तीर्थ का नाम रख दिया यवनपुर जिसको आजकल आप जौनपुर कहते हैं। उसके बाद आगे बढ़ा तो बनारस में मार काट मचायी, गंगा का पानी लाल कर दिया। वहाँ से आया नालन्दा। नालन्दा विश्वविद्यालय में दस हजार स्नातकोत्तर शिक्षा पाने वाले नौजवान पढ़ते थे। एक हजार आचार्य पढ़ाते थे। क्या दस हजार नौजवान 17 को खत्म करने के लिये काफी नहीं थे? पर दुर्भाग्य देश का। हम करोड़ों थे, पर बिखरे थे। अरे हिन्दू! तुमने बिन्दु का जीवन जीया, तुमने सिन्धु का जीवन नहीं जीया। बिन्दु-बिन्दु करके तू बिखरा रहा, तू मार खा गया। ये दर्द कचोटता था डॉ. हेडगेवार के दिल में। तू बिन्दु रहा। तू सिन्धु नहीं बना। नहीं तो कोई कारण नहीं था कि 17 सैनिक आकर 10 हजार स्नातकोत्तर शिक्षा पाने वालों को मार दें। स्नातकोत्तर का मतलब पोस्ट ग्रेजुएट माने बी.ए. के बाद की उपाधि पाने वाला। उच्च विश्वविद्यालय था। वहाँ साधारण शिक्षा नहीं होती थी। स्नातकोत्तर की शिक्षा

होती थी। तो दस हजार स्नातकोत्तर शिक्षा पाने वाले नौजवान, जो सब 20 वर्ष से ऊपर की अवस्था के थे, ऐसे नौजवान वहाँ पढ़ते थे। और एक हजार आचार्य थे पर 17 सैनिकों की तलवारें एक साथ पड़ती थी। 17 एक साथ टूट पड़ते थे और हमारे हजारों लोग अलग-अलग बिखर जाते थे। हरेक अपना प्राण लेकर भागता था। विश्वविद्यालय को आग लगा दी। 4-5 महीने तक आग नहीं बुझी। दुनिया का सबसे भरपूर खजाना ज्ञान का, धूलि-धूसरित हो गया। विद्यार्थियों को मारकर बोरों में बंद करके नदी-तालाबों में फेंक दिया गया। आचार्यों की दुर्गति हुई। यह कोई देश का इतिहास है? चुल्लू भर पानी में डूब मरने वाला इतिहास है। ये इतिहास की चेतावनियाँ हैं। हम इतिहास के पृष्ठों पर इसको पढ़ते हैं तो हमारे दिल में कोई जलजला नहीं उठता। हमारे दिल में बेचैनी नहीं उठती। कोई व्यथा नहीं जागती। अरे! तुम्हें लानत, तुम भारत के पुत्र नहीं हो। भारत की यह दुर्गति हो गई! तुम्हें हजारों वर्षों के बाद भी यह दर्द दिल को छूता नहीं है? डॉ. हेडगेवार के दिल को यह दर्द छूता था। हाय, यह क्यों हुआ? क्यों हुआ ऐसा? हम केवल पढ़ लेते हैं। आज से 2,300 साल पहले मेकडोनिया का सिकंदर भारत पर हमला करने आया। सिकंदर का हमला हुआ, हूणों का हमला हुआ, शकों का हमला हुआ। परसियन का हमला हुआ, तुर्क, तातार, मुगल, पठान का हमला हुआ। ईरान, यूनान, फ्रेंच, डच, अंग्रेज का हमला हुआ। ईरान, इराक, चीन, पाकिस्तान का हमला हुआ। सब हमने पढ़े। हम क्या कर रहे हैं? इतिहास के असहाय मूकदर्शक। जैसे हमारा कोई रोल नहीं है। हमें कुछ नहीं करना है। हम केवल कहानी पढ़ने वाले आदमी हैं। भारतमाता की छाती में लगते छुरे के घाव गिनने वाले। हम कपूत हैं सिकंदर का हमला भारतमाता की छाती में एक घाव। मुहम्मद बिन बख्तियार का हमला घाव। मुहम्मद बिन कासिम का हमला घाव। मुहम्मद गोरी का हमला एक घाव। महमूद गजनवी का हमला एक घाव। हम घाव गिनने वाले हैं। हमें कुछ करना नहीं है कि यह हमारी माँ है। इसके ऊपर कोई आक्रमण करे तो हमें कुछ करना है, ये कर्तव्यबोध हमारा नष्ट हो गया था। डॉ. साहब ने एक अच्छे डॉक्टर की तरह यह डाइग्नोसिस किया कि क्या कारण था कि भारत, इतना विशाल भारत, इतना महान् भारत, इतनी अधिक जनसंख्या वाला भारत, मुट्ठी भर लोगों के सामने लुट गया? दुनिया के हर कमीने देश ने भारतमाता की छाती पर लात मारी, भारत पर लात मारी, हम देखते रहे। कारण क्या था? उन्होंने देखा, राष्ट्रीय चरित्र का अभाव हो गया था। हम लोग व्यक्तिगत जीवन जीने वाले बन गये थे। हमारा बिन्दु का जीवन हो गया था। सिन्धु का जीवन नहीं था। संगठन नहीं था। राष्ट्र की वृत्ति हमारी नष्ट हो गयी थी। हम भी राष्ट्र के हैं, राष्ट्र के पुत्र हैं, राष्ट्र के प्रति हमारा कर्तव्य है—ये चेतना ही लुप्त हो गयी थी। वे इस दिशा में बचपन से ही सोचने लगे थे।

इतिहास उनके लिये केवल एक पुस्तक नहीं था। इतिहास उनके लिये कागज के पन्ने पर काली स्याही से लिखे हुए अक्षरों की माला नहीं था। इतिहास उनके लिये चेतावनियों से भरी हुई एक बहुत बड़ी, एक क्रान्ति की ज्वाला थी जिससे उन्होंने मन ही मन निश्चय करना शुरू किया कि मैं क्या करूँ? उनके घर से कुछ दूरी पर एक किला था। सीतामढ़ी का किला। उस पर यूनियन जैक फहराता था। अंग्रेज का राज्य था। उनके मन में निश्चय हुआ किसी तरह यूनियन जैक को हटाना चाहिये। नन्हा सा बच्चा यूनियन जैक कैसे हटाये? उनका एक दोस्त था। दोस्त के घर में पढ़ने के बहाने गये और कमरा बंद करके अंदर ही अंदर सुरंग खोदना शुरू किया। सोचा, नीचे ही नीचे सुरंग खोदकर किले तक जायेंगे और झण्डे को हटा देंगे। काम बड़ा असाध्य लगता है कि नन्हे बच्चे अपने छोटे हाथों से कहाँ तक सुरंग खोदेंगे। दूसरी-तीसरी कक्षा में पढ़ने वाला बच्चा और वह सुरंग खोदने जा रहा है। जब एक-आध दिन पूरा अंदर खट-खट होती रही, जमीन खोदी जाती रही, पूरे दिन कमरे से नहीं निकले तो घर के लोगों ने किवाड़ तोड़कर के देखा—अरे! ये सुरंग खोद रहे हैं? कान मरोड़कर बच्चों को हटाया, यह क्या करते हो? लेकिन उसके मन में साध यही थी ये क्यों हुआ? जिसके मन में पीड़ा नहीं होती है माँ के दुःख को देखकर उस लानती व्यक्ति को भारत का पुत्र कहलाने का अधिकार नहीं है। पाँच वर्ष का नन्हा बच्चा स्कूल में पढ़ने गया और रानी विक्टोरिया का षष्टिपूर्ति महोत्सव हो रहा था। साठ वर्ष राज्य करते हुए हो गया। लड्डू बांटे सब बच्चों को। नन्हे से बच्चे ने लड्डू को कूड़े पर फेंक दिया। भाई ने पूछा, क्या आपको लड्डू नहीं मिले? फेंक दिया। क्यों फेंक दिया? कहा कि विदेशी रानी के भारतवर्ष पर राज्य करने के साठ वर्ष पूरे होने की खुशी हम भारत के पुत्र मनायेंगे? हम भारतमाता के पुत्र होकर विदेशी शासन के शासक की खुशी मनायेंगे? यह नहीं हो सकता। रानी विक्टोरिया के मरने के बाद एडवर्ड के शासन की स्थापना हुई। वह जो गंजा बिना ताज वाला राजा बैठा और उसके राज्यारोहण की खुशी में बड़ी आतिशबाजी हुई। बहुत बच्चों ने कहा, केशव चलो देखने के लिये। केशव ने कहा—नहीं। उन्होंने कहा, बहुत लज्जा की बात है। एक विदेशी राजा सिंहासन पर बैठता है और भारत पर शासन कर रहा है। भारतमाता को गुलाम बनाया हुआ है और इसकी खुशी भारत के बेटे मनायेंगे? हमारी माँ को गुलाम बनाने वाले गुण्डे हैं ये और राज्य पर बैठने की खुशी हम मनायेंगे? ये नहीं हो सकता। इस तरह की एक राष्ट्रीय वृत्ति उनमें थी। इसलिये वे बिल्कुल निर्भीक भाव से चल रहे थे। उन्होंने वंदेमातरम् आंदोलन में भाग लिया। लोकमान्य तिलक ने वंदेमातरम् आंदोलन शुरू किया। वंदेमातरम् आंदोलन क्या था? उसके पहले कांग्रेस के अधिवेशनों में इंग्लैण्ड का राष्ट्रगीत गाया जाता था। इंग्लैण्ड का राष्ट्रीय गीत क्या था? हे परमात्मा! राजा

की रक्षा करो। हमारे परम दयालु राजा की रक्षा करो। यह इंग्लैण्ड का राष्ट्रगीत है। कांग्रेस के अधिवेशनों में इसका गान होता था। क्योंकि लार्ड ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना की थी जो खुद अंग्रेज थे। इसलिये इंग्लैण्ड का राष्ट्रगीत गाया जाता था। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, अरविन्द घोष, विपिनचन्द्र पाल गरम दल के नेता थे। उन्होंने कहा, लानत है तुम्हें। चुल्लू भर पानी में डूब मरो। भारत पर शासन करने वाले विदेशी राजा की उम्र लंबी करने के लिये प्रार्थना तुम कर रहे हो? भारत के पुत्र होकर प्रार्थना करते हो, विदेशी राजा की उम्र लंबी हो? नहीं, ये नहीं होगा। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने उन्हीं दिनों आनंदमठ लिखा था? योगीराज अरविन्द कहते हैं—संसार के इतिहास में किसी उपन्यास, किसी पुस्तक में ऐसा कोई गीत नहीं है, जिस गीत की पंक्तियाँ, पुस्तक के पन्ने पर काले अक्षर से लिखी हुई पंक्तियाँ, पुस्तक के पन्ने से उछलकर करोड़ों लोगों के हृदयों पर लिखी गई हों और लोगों ने उसको अपना राष्ट्रीय गीत बना लिया हो। बंकिमचन्द्र के गीत में वह शक्ति थी। उस पुस्तक के पन्ने से वे पंक्तियाँ उछल पड़ी करोड़ों की जिह्वा पर, करोड़ों के हृदय पर लिखी गयी और उसके लिये लोगों ने बलिदान दिये। प्राण तक दिये। वंदेमातरम् आंदोलन शुरू हो गया। अरविंद घोष ने आह्वान किया। उस समय डॉ. साहब हाई स्कूल की कक्षा में पढ़ते थे। तब उन्होंने अपने स्कूल में इसी आंदोलन का नेतृत्व किया। ब्रिटिश शासन ने कह दिया था—जहाँ वंदेमातरम् बोला जायेगा, वहाँ गोली चलेगी। वंदेमातरम् बोलना अपराध है। भारतवासियों ने कहा—हम भारतमाता की जय बोलेंगे ही बोलेंगे। हमें अपनी माँ की जय बोलने से कोई रोक नहीं सकता है। इसलिये जिधर वंदेमातरम् की टोलियाँ बोलती वंदेमातरम् उधर तड़-तड़-तड़ करके गोलियाँ चलती थी और लोगों की लाशें गिरती। कोई जख्मी होता तो उधर से दूसरी टोली आती और बोलती—वंदेमातरम्।

स्कूल के प्यारे बच्चो! वह युग था जब स्कूली बच्चों ने वंदेमातरम् के आन्दोलन को जगा दिया था और वंदेमातरम् से सारा आकाश गुंजायमान हो गया था। निर्भीक बच्चे भारत के और आज की आजादी उन्हीं की देन है। **वंदेमातरम् गाकर बलिदान होने वाला खुदीराम बोस, गीता को छाती पर रखकर वंदेमातरम् गाते-गाते प्राण दे रहा है।** यह उन लोगों की देन है। आज स्कूलों में जाकर पूछते हैं बच्चों को वंदेमातरम् याद है? नहीं जी, ये तो कराया नहीं जाता। उनकी पहली पीढ़ी के बच्चों ने वंदेमातरम् के लिये प्राण दिये और आज का विद्यार्थी वंदेमातरम् बोलने का कष्ट नहीं कर सकता। वंदेमातरम् की चार पंक्तियाँ याद करने की उसके पास फुरसत नहीं है। इसलिये हमें संभलने की जरूरत है। उस वंदेमातरम् आंदोलन में डॉ. हेडगेवार ने ऐसी योजना की। एक मुसलमान स्कूल इंस्पेक्टर था। स्कूल में आने वाला था। स्कूल में एक बहुत बड़ा परिपत्र आया हुआ था। किसी

भी विद्यालय में वंदेमातरम् गाने की अनुमति नहीं है। गाने वालों को कठोर दण्ड मिलेगा। जिस विद्यालय में गाया जायेगा वहाँ के हेडमास्टर, प्राचार्य आदि को दण्ड मिलेगा। तो केशव बलिराम हेडगेवार ने निश्चय किया कि जिस भी कक्षा में वह जायेगा सब लोग वंदेमातरम् गायेंगे। तो सब कक्षाओं में बोर्ड पर लिखा हुआ था वंदेमातरम्। और वह कक्षा में गया, सब लोग खड़े हो गये और कहा, वंदेमातरम्। वह बड़ा हैरान। हमने कल ही तो एक सर्कुलर भेजा है कि यह गाना अपराध है। गाने वालों को दण्ड मिलेगा। वह झुंझलाकर दूसरी कक्षा में गया। वहाँ भी सब खड़े होकर बोले, वंदेमातरम्। तीसरी कक्षा में, जहाँ जाये सुनायी दे—वंदेमातरम्। वह बड़ा परेशान हुआ। उसने तुरंत रिपोर्ट की। इस स्कूल में बहुत भयानक काम हो रहा है। वंदेमातरम् हो रहा है। विद्रोही लोग यहाँ भरे हुए हैं। स्कूल के हेडमास्टर पर बहुत नाराज हुआ। हेडमास्टर विद्यार्थियों पर नाराज हुआ। विद्यालय बंद कर दिया गया। कोई नाम न बतावे केशव का, अंत में बहुत मुश्किल से उनका नाम पता लगा तो बाद में उनको स्कूल से निकाल दिया गया। निकल गये, कोई चिंता नहीं की। यवतमाल में जो पहले बिहार के गवर्नर रह चुके थे उनका यवतमाल में एक राष्ट्रीय विद्यालय था। वहाँ भर्ती किये गये। तो वहाँ गये। वे चाचा के साथ सुबह-सुबह सैर करने को जा रहे थे। डिप्टी कमिश्नर सामने से आ रहा था। डिप्टी कमिश्नर आराम से टहलते-टहलते आ रहा था। वहाँ नियम यह था कि अंग्रेज अफसर कोई सामने से आये तो उसके लिये रास्ता छोड़ देते थे। रोड उसके लिये छोड़ देते। रोड के एक किनारे खड़े होकर उसको प्रणाम करते थे। चाचा ने देखा, अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर आ रहा है तो सड़क से हट जाना चाहिये। पर क्यों? भारत की सड़क है, भारत के हम पुत्र हैं। अंग्रेज तो विदेशी है इसको हम प्रणाम करें? ये तो भारत का अन्न-जल खा रहा है, ये हमको प्रणाम करे। हम क्यों इसको प्रणाम करें? चाचा बड़े हैरान हुए। वही स्थिति हुई जब अंग्रेज अफसर सामने आ गया, तो केशव खूब अच्छी तरह से अकड़कर उसके सामने से जाने लगा। उसको लगा, बड़ा गुस्ताख लड़का है। उसने अपने एक कर्मचारी को कहा, इस बच्चे को बुलाओ। बुलाया। ये कौन साहब हैं? केशव ने कहा, मुझे जानने की जरूरत क्या है? यहाँ के डिप्टी कमिश्नर साहब हैं। होते होंगे। यहाँ की मर्यादा यह है कि लोग सड़क छोड़कर हट जाते हैं, प्रणाम करते हैं। उन्होंने कहा, नहीं! ये कोई मर्यादा नहीं है। ये देश मेरा है। मैं अपने देश में चल रहा हूँ। मैं एक विदेशी को प्रणाम क्यों करूं? चाचा ने कहा, दूसरे लोगों ने कहा, ऐसा नहीं कहते। नहीं, केशव ने कहा—'केशव किसी को भीति नमस्कार नहीं करता। भय से नमस्कार नहीं किया जायेगा। कुछ लोग भय से नमस्कार करते हैं, डर से नमस्कार करते हैं। भय का नमस्कार, नमस्कार नहीं है। कई लोग रीति नमस्कार करते हैं। रीति बनी हुई है। किसी ने कहा, राम-रामजी। राम-राम। ये वास्तव में नमस्कार नहीं है। कोई छोटा-बड़ा आदमी आ रहा है उसको कहा, प्रणाम। प्रणाम।

यह रीति नमस्कार है। रीति निभाने के लिये नमस्कार करते हैं। कोई करते हैं नीति नमस्कार। अच्छा देखो। काम निकालना है न? तुम यहाँ ठहरो। मैं जाता हूँ। और, अफसर के पास गया और कसकर सैल्यूट मारा। ओ साहब! क्या कहें? आपके दर्शन नहीं होते हैं। हम तो आपके लिये तरसते रहते हैं। आप कभी-कभी दर्शन दिया करें। खूब प्रशंसा की, उसकी प्रशंसा के पुल-बांधे। उसको प्रणाम आदि किया, आवश्यकता हुई तो उसके पांव छू लिये। काम निकालने के बाद, उनके दस्तखत चाहिये उनके दस्तखत करा लिये और बाहर आकर कहा—देखा, हमने कैसे इसको गधा बनाया। जिसको प्रणाम किया उसको गधा बनाया। यह नीति का, कूटनीति का नमस्कार हुआ। यह नीति नमस्कार है। वास्तविक नमस्कार है—प्रीति नमस्कार। जिससे हमारा प्रेम है उसको नमस्कार करेंगे। भय से नमस्कार नहीं करेंगे। केवल रीति निभाने के लिये नमस्कार नहीं करेंगे, केवल नीति नमस्कार नहीं करेंगे। हम केवल प्रीति-नमस्कार करेंगे, और प्रीति नमस्कार होगा हमारा मातृभूमि के प्रति। नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमि, हे सदावत्सला मातृभूमि, तुम्हें नमस्कार। मातृभूमि को नमस्कार। ऐसे अलौकिक महापुरुष की जीवन गाथा गाते-गाते रात्रि से प्रभात हो जायेगी। इसलिये मैं कहाँ तक गाऊँ? जब कोलकाता गये, वहाँ क्रान्तिकारियों का संग हुआ। और क्रान्तिकारियों के साथ रहकर अरविन्दजी के संपर्क में आये। भारतमाता की उपासना का व्रत उन्होंने लिया। अनुशीलन समिति में रहे। वहाँ से लौटकर फिर नागपुर आये तो फिर क्रान्तिकारियों का एक Golden Triangle था दिल्ली-कोलकाता-मुंबई। इस Golden Triangle में क्रान्तिकारियों को बम सप्लाई करने में, हथियार सप्लाई करने में भी भाग लेते रहे। पंजाब में भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव इत्यादि इनके संपर्क में आते थे। राजगुरु तो खुद नागपुर के स्वयंसेवक थे। वहाँ बम फेंकने के बाद जब लौटकर आये राजगुरु, तो डॉ. साहब ने भैयाजी दाणी की Firm में रखवाया, डॉ. साहब ने उनसे कहा—देखो, पूना मत जाना। पूना जाओगे तो संकट आ जायेगा। एक बार गलती से राजगुरु पूना चले गये, वह वहाँ पकड़े गये और उनको बाद में फांसी हुई। भगतसिंह भी इनके संपर्क में आते थे। डॉ. साहब क्रान्तिकारियों को बम सप्लाई का काम करते थे। इसके लिये परीक्षण किया। लोगों को जंगल में ले जाते थे और अनेक प्रकार से टेस्ट लेते थे। परीक्षा लेते थे। ऐसे लोग उन्होंने खोजे जो नौजवान औरत का रूप धारण कर सके, औरत के वस्त्र पहन सके। जिसकी मूंछ-दाढ़ी नहीं आयी हो। आयी हो तो उसकी सफाई करके और वह कंचुकी पहनकर के अपनी छाती में दो बम रखकर यानी स्तनों की जगह बम रखकर के ऊपर कंचुकी पहनकर, ऊपर साड़ी पहनकर Travel करे और वह क्रान्तिकारियों को बम सप्लाई करे। ऐसे नौजवान खोजे जो कोलकाता से लेकर नागपुर तक, नागपुर से मुंबई तक, मुंबई से पंजाब तक, पंजाब से पूना, नागपुर तक इस Triangle में घूमते थे। ये अद्‌भुत कार्य करते रहे। एक

बार तो नागपुर के अंदर पूरी ट्रेन के ऊपर डाका डालने की एक योजना बनायी गयी थी। प्रातःकाल पुलिस की वरदियाँ बनाई गई। चपरासी की वरदियाँ बनायी गई, कुलियों की वरदियाँ बनायी गई। कई-कई संघ के अधिकारियों को कुली बनाया गया। वे कुली बने। वे स्पेशल कुली बन गये, स्पेशल पुलिस अफसर बन गये, तांगा लेकर गये। देखो, हमारी गाड़ी आ रही है। अरे ओ कुली! देखो, यह बक्सा उठाओ। सब पुलिस अफसर बने हुए, फीते आदि लगाये हुए, बक्से को उठाकर तांगे पर चढ़ा दिया, तांगे से ले भी गये और सरकार खोजती रह गयी। डॉ. साहब की एक भी योजना सरकार कभी नहीं पकड़ सकी। ऐसे कुशल कार्यकर्ता थे। इतने बड़े क्रान्तिकारी! उनकी एक योजना को भी सरकार विफल नहीं कर सकी। यह उनकी महानता थी।

ये सारे अनुभव लेने के बाद वे कांग्रेस में गये। मालवीयजी के साथ रहे। गाँधीजी को निकट से देखा। अरविन्दजी के साथ रहे। तिलक के भक्त रहे। सावरकरजी को कई बार शाखाओं में बुलाया। बहुत ही अद्‌भुत कार्य करने के बाद उन्होंने सन् 1925 के बाद सारे अनुभवों के बाद निश्चय किया—देखिये, ये सारे बाकी सब काम जो हैं, ये केवल वृक्षों के पत्तों को सींचने वाले काम हैं। राष्ट्र का वास्तविक निर्माण तब होगा जब राष्ट्र को शुद्ध राष्ट्रीय चरित्र की शिक्षा देंगे। उस राष्ट्रीय चरित्र की शिक्षा के लिये नवयुवकों का, किशोरों का, तरुणों का और प्रौढ़ों का दैनिक शाखा में आकर कार्यक्रमों में भाग लेना और प्रतिदिन हृदय पर हाथ रखकर मातृभूमि की वंदना करना। पतत्वेष कायो नमस्ते-नमस्ते हे मातृभूमि! तेरे लिये मेरा शरीर बलिदान हो जाय। मैं हृदय पर हाथ रखकर प्रतिज्ञा करता हूँ। ये संस्कार जब प्रतिदिन मिलेगा, तब राष्ट्र जाग सकेगा। इस प्रकार म्रियमाण राष्ट्र को, सोये हुए राष्ट्र को, 1,300 वर्ष की मार खाये हुए राष्ट्र को, पुनः जीवमान करने, जीवन्त करने, प्राणवंत करने, उसको अपने पांव पर खड़ा करने, उसको संगठन का मंत्र देने और भविष्यत् की उज्ज्वल आशा देने का महान् कार्य इस दधीचि ने किया जिसने अपनी अस्थियों को राष्ट्र के लिये बलिदान कर दिया। अपना सर्वस्व होम कर दिया, राष्ट्र के लिये। मैं मरूं पर मेरा राष्ट्र जी जाय। इसलिये संघ उनका सबसे बड़ा स्मारक है। संघ उनकी सबसे बड़ी देन है। संघ के द्वारा जो राष्ट्रीय चरित्र संपन्न नवयुवक हैं वही देश की और भविष्यत् की सबसे बड़ी आशा है। तो आज इस पुनीत पर्व पर मालव गणाधिपति वीर विक्रमादित्य का पावन स्मरण करते हैं, उसके प्रति श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं तो आधुनिक काल में पुनः भारत के विगत वैभव को, पुनः भारत के विगत पराक्रम को, विगत पुरुषार्थ को पुनः जगाने का अभिनव कृत्य करने वाले नये विक्रमादित्य, विक्रम संवत् पर आने वाले डॉ. हेडगेवार को भी अनंत नमन समर्पित करते हैं। आज का यह पुनीत दिन, जिसको दक्षिण भारत के लोग युगादि कहते हैं,

युग का आदि है। जिस दिन अनेक महत्त्वपूर्ण घटनायें घटी हैं और अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का जो प्रारम्भिक दिवस है, ऐसे इस वर्ष के प्रथम प्रभात पर और इस सृष्टि के प्रथम प्रभात पर और इस विजय के पर्व पर और महान् ऐतिहासिक उद्वेलन के ऐतिहासिक जागरण के इस पर्व पर हम यह संकल्प करें कि हम केवल बिन्दु का जीवन नहीं जीयेंगे, हम सिन्धु का जीवन जीयेंगे। जो गंगोत्तरी से गंगाजल चलता है वह एक बिन्दु है। वह बिन्दु जानता है कि पचास मील की गति से चलते हुए चालीस घण्टे के बाद मैं दो हजार मील की यात्रा करके गंगासागर में मिल जाऊंगा। गंगोत्तरी से चलने वाला जलबिन्दु चालीस घण्टे के बाद गंगासागर में, विराट् में मिल जाने वाला है। तो दो दिन की जिंदगी लेकर आता है बिन्दु, उसके बाद उसको विराट् में मिल जाना है। यदि वह बिन्दु कहे कि मैं तो दो दिन के लिये जीऊंगा। मैं धारा में क्यों बहूँ? अलग हो जाऊं। अरे! अलग होकर देख लो। बिन्दु तू सूख जायेगा, बिन्दु तू मर जायेगा। बिन्दु तेरा अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। अरे बिन्दु! तू धारा में मिल जा, दो दिन जिंदगी है तो क्या है? हर हिन्दू जो आया है उसको एक दिन मरना है पर हिन्दू समाज को मरना नहीं है। इसलिये हिन्दू तू बिन्दु का जीवन छोड़कर के सिन्धु का जीवन जी, धारा को अमर बना जा। अमर गंगा सदा के लिये बहती रहेगी। बिन्दु रहे न रहे कौन-सा अंतर पड़ता है, लेकिन बिन्दु को यह समाधान होगा कि मैंने धारा में जीवन दिया है। इसलिये धारा को अमर बना दिया है। मैं अपने आपको धारा में समर्पित करके अपने जीवन को धन्य करने जा रहा हूँ। इस विश्वास के साथ हम जीयें कि हमारा जीवन धारा के लिये ही होगा, धारा को अमर बनाने के लिये होगा। अलग से सूख जाने वाले बिन्दु का हमारा जीवन नहीं होगा। यही परम पूज्य डॉ. साहब का, हमारे लिये आज के परिप्रेक्ष्य में सबसे बड़ा संदेश है।

'और कैसा है यह देश! जिस किसी के भी पैर इस पावन धरती पर पड़ते हैं वही, चाहे वह विदेशी हो, चाहे इसी धरती का पुत्र, यदि उसकी आत्मा जड़ पशुत्व की कोटि तक पतित नहीं हो गई तो, अपने आप को पृथ्वी के उन सर्वोत्कृष्ट और पावनतम पुत्रों के जीवन्त विचारों से घिरा हुआ अनुभव करता है, जो शताब्दियों से पशुत्व को देवत्व तक पहुँचाने के लिये श्रम करते रहे हैं और जिनके प्रादुर्भाव की खोज करने में इतिहास असमर्थ है।'

—स्वामी विवेकानन्द

श्री माँ का राष्ट्र को आह्वान

मातृभूमि की वन्दना—'हे हमारी माँ! हे भारत की आत्म-शक्ति! हे जननी! तूने कभी अत्यन्त अंधकारपूर्ण अवसाद के दिनों में भी...यहां तक कि जब तेरे बच्चों ने तेरी वाणी अनसुनी कर दी तथा अन्य प्रभुओं की सेवा की और तुझे अस्वीकार कर दिया, तब भी...तूने साथ नहीं छोड़ा।

'हे माँ! आज इस महान् घड़ी में जबकि वे जाग पड़े हैं और तेरी स्वतंत्रता के इस उषाकाल में तेरे मुख मण्डल पर ज्योति पड़ रही है, हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं। हमें पथ दिखला, जिससे स्वतंत्रता का जो विशाल क्षितिज हमारे सामने उन्मुक्त हुआ है, वह तेरी सच्ची महानता का तथा विश्व के राष्ट्र-समाज के अन्दर तेरे सच्चे जीवन का भी क्षितिज बने। हमें पथ दिखला, जिसमें हम सर्वदा महान् आदर्शों के पक्ष में ही खड़े हों। और अध्यात्म-मार्ग के नेता के रूप में तथा सभी जातियों के मित्र व सहायक के रूप में तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्य जाति को दिखला सकें।

हे भारत! ज्योति और आध्यात्मिक ज्ञान के देश! संसार में अपने सच्चे जीवन के लक्ष्य के लिए जागो। एकता और सामञ्जस्य का मार्ग दिखाओ'।

भारत वह देश है जहां आध्यात्मिकता का राज्य हो सकता है और होना चाहिए। और यहां उसका समय आ गया है। उस देश की मुक्ति का यह एकमात्र संभव साधन है जिसकी चेतना दुर्भाग्यवश विदेशी राज्य और प्रभाव के कारण मिथ्या हो गई है। लेकिन फिर भी उसके पास एक अद्‌भुत आध्यात्मिक परम्परा है।

भारत इस जमीन, यहां की नदियों और यहां के पहाड़ों का नाम नहीं है। इस देश के वासियों का सामूहिक नाम भी भारत नहीं है। भारत एक जीवित सत्ता है। यह सत्ता उतनी ही जीवित-जाग्रत् है, जितने शिव आदि देवतागण।

सभी देशों की अपनी आत्मा होती है। इसलिए अगर तुम देश में परिवर्तन करना चाहो तो यह अवास्तविक होगा।

विश्वगुरु भारत—समस्त सृष्टि में पृथ्वी का एक विशेष स्थान है। क्योंकि दूसरे ग्रहों से भिन्न यह विकसनशील है और अपने केन्द्र में एक चैत्य पुरुष को लिए हुए है। उसमें भारत विशेष रूप से भगवान् का चुना हुआ देश है।

भारत को अपने भगवद्निर्दिष्ट कार्य की ऊंचाई तक ऊपर उठना चाहिए और विश्व के सामने सत्य की घोषणा करनी चाहिए।

एकमात्र भारत ही विश्व में सत्य को ला सकता है तथा भागवत संकल्प और शक्ति को अभिव्यक्त करके विश्व के सामने संदेश प्रचारित कर सकता है। पर यह कार्य पश्चिम के जड़वाद का अनुकरण करने से नहीं होगा। भागवत इच्छा का अनुसरण करने पर भारत आध्यात्मिक पर्वत के शिखर पर जगमगा उठेगा। सत्य का मार्ग दिखलाएगा और विश्व ऐक्य का संगठन करेगा।

सचमुच, सारे संसार में भारत ही एक ऐसा देश है जो अब भी इस बात के प्रति सचेत है कि सृष्टि में भौतिक पदार्थ के अतिरिक्त कोई और चीज भी है। बाकी देश इसे भूल चुके हैं। फिर वे चाहे यूरोप के देश, अमरीका या दूसरा कोई भी देश क्यों न हो....। इसी कारण भारत के पास अभी तक एक ऐसा संदेश है जिसकी उसे रक्षा करनी है, जिसे उसे जगत् को देना है। लेकिन इस समय भारत अव्यवस्था में छितरा हुआ छटपटा रहा है।

विश्व की भलाई के लिए भारत की रक्षा करनी होगी। क्योंकि एकमात्र भारत ही विश्व को शान्ति और नवीन व्यवस्था प्राप्त करा सकता है।

'भारत का भविष्य बहुत स्पष्ट है। भारत जगत् का गुरु है। विश्व की भावी रचना भारत पर निर्भर है। भारत जीवन्त आत्मा है। भारत विश्व में अध्यात्म ज्ञान को अवतरित कर रहा है। भारत सरकार को इस क्षेत्र में भारत की महत्ता को पहचान कर उसके अनुसार अपनी राष्ट्रीय योजनाएँ नियोजित करनी चाहिए।'

भारत अपने खजाने का रहस्य केवल उन्हीं लोगों को प्रकट करता है, जो मन की अभिरुचियों पर और जाति तथा शिक्षा के पूर्वाग्रहों पर विजय पा सकते हैं। बाकी के सब लोग वांछित चीज न पाने के कारण हताश होकर चले जाते हैं। क्योंकि उन्होंने उसकी खोज गलत तरीके से की थी और दिव्य खोज का मूल्य चुकाने को तैयार नहीं थे।

आध्यात्मिक भारत—आध्यात्मिक दृष्टि से भारत जगत् में सबसे आगे है। उसकी भूमिका है—आध्यात्मिकता का उदाहरण स्थापित करना।

विश्व मनीषा के मणिमुकुट डॉ. राधाकृष्णन्

धरती को भगवान् का महानतम वरदान एक क्रांतदर्शी महापुरुष के रूप में प्राप्त होता है जो अपने प्रज्ञान एवं कर्तृत्व द्वारा धरती की ही काया पलट करके उसे स्वर्णिम बना देता है।

5 सितम्बर, 1888 के दिन दक्षिण भारत की एक छोटी सी तीर्थस्थली, तिरुपति में एक धर्मभीरु ब्राह्मण परिवार में उस बालक का जन्म हुआ जिसके भाग्य में विश्वमनीषा का मणिमुकुट बनना लिखा था। लूथर मिशन हाई स्कूल, तिरुपति से मैट्रिक की परीक्षा देने के पश्चात् बालक को अपने सम्मुख प्रकाश की कोई स्पष्ट रेखा दिखायी न देती थी। पिता ने कह दिया था कि आगे की पढ़ाई असम्भव है क्योंकि न उसके पास बच्चे की किताबों के लिये पैसा है और न ही उसकी फीस को भरने का सामर्थ्य। बालक बड़े असमंजस में पड़ा। उसने एक पड़ोसी विद्यार्थी से, जिसने एफ.ए. की परीक्षा दी थी, पूछा कि कॉलेज में विषय क्या लेना चाहिए।

उस बालक ने बताया कि 'मैंने तो दर्शन का विषय लिया था, यदि आपको पसन्द हो तो आप मेरी दर्शन की पुस्तकें प्रयोग कर सकते हैं।' मैट्रिक परीक्षा के बाद की दो मास की छुट्टियों में बालक राधाकृष्णन ने वह सारी पुस्तकें पढ़ लीं, उसे बड़ी रुचिकर लगीं। इस प्रकार उस बालक ने केवल इसीलिए कॉलेज में दर्शन का विषय ले लिया कि उसके पास किसी अन्य विषय की पुस्तकें खरीदने के लिए पैसा ही नहीं था। और इस प्रकार आर्थिक संकट से बाध्य होकर दर्शन विषय लेने वाले बालक में से ही हमें प्राप्त हुआ युग का महानतम दार्शनिक-महामनीषी, डॉ. राधाकृष्णन।

शंका का अंकुश

जिज्ञासा की गोदी में ही दर्शन का जन्म होता है और जिज्ञासा को तीव्रतम बनाने के लिए शंका का चुभन देने वाला तीक्ष्ण अंकुश आवश्यक है। राधाकृष्णन की प्रायः समूची शिक्षा ईसाई शिक्षा संस्थाओं में हुई। क्रिश्चियन कॉलेज मद्रास से उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की। उस समय के ईसाई धर्मप्रचारक हिन्दू धर्म एवं भारतीय दर्शन पर खुल्लमखुल्ला कीचड़ उछालते रहते थे। स्कूल-कॉलेज के ईसाई प्रचारक

ने भी उनकी धार्मिक श्रद्धा को ठेस पहुँचायी। श्रद्धालु राधाकृष्णन हिन्दुत्व के विषय में शंकालु होने लगे। अपनी आत्मकथा में वे स्वयं लिखते हैं, 'ईसाई धर्म-प्रचारकों ने मुझे श्रद्धाहीन बनाकर जिज्ञासा की उस प्राथमिक अवस्था में डाल लिया जहाँ से सभी दर्शनों का जन्म होता है। वे रह-रह कर ईसाई विचार और जीवन पद्धति की भी दुहायी देते थे। किन्तु वास्तव में वे सत्य के प्रेमी या अन्वेषक नहीं थे। भारतीय विचारधारा की कड़ी आलोचनाएं करके उन्होंने मेरी श्रद्धा को विचलित कर दिया और परम्परा के सब स्तम्भों को हिला डाला, जिनका मैं सहारा लिए हुए था।'

हिन्दुत्व के गौरव सर्वस्व विवेकानन्द

ईसाईयों द्वारा हिन्दू धर्म की भर्त्सना युवक राधाकृष्णन के स्वाभिमान को चुनौती थी। उन्हीं की तरुणावस्था में भारतीयों के वक्षस्थल विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द के पावन स्मरण से फूल जाते थे। उन्हीं विवेकानन्द के सन्देश से राधाकृष्णन को जीवन की ठीक दिशा प्राप्त हुई। वे स्वयं लिखते हैं, 'मैं भी हिन्दुत्व का अभिमानी था और मेरा यह अभिमान स्वामी विवेकानन्द के कर्तृत्व और उद्‌गारों से और भी प्रदीप्त हो उठा था। मिशनरी स्कूलों और कॉलेजों में हिन्दुत्व के प्रति जो बर्ताव किया जाता था उससे मेरा यह अभिमान तिलमिला उठा। मैं यह बात मानने को तैयार नहीं था कि जिन हिन्दू ऋषियों और उपदेष्टाओं ने भारत की प्राचीन संस्कृति को हमारे लिए जुटा रखा है और जिनकी साधना का परिणाम हमारा समस्त ज्ञान है, स्वयं वे ही अधार्मिक व्यक्ति थे।'

वे पुनः लिखते हैं, 'ईसाई आलोचकों की चुनौती से ही विचलित हो कर मैं हिन्दुत्व का विधिवत् अध्ययन करके यह पता लगाने को प्रस्तुत हुआ हूँ कि हमारे धर्म का कितना अंश मृत और कितना आज भी जीवित है।'

गीता ने जीवन पलट दिया

प्रोफेसर डॉ. राधाकृष्णन ने पाश्चात्य दर्शन का अध्ययन करते हुए एक ऐसी घटना पढ़ी जिसने उनके जीवन की दिशा को एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मोड़ दे दिया। इसी शताब्दी में ही अमरीका के एक महान् सन्त इमर्सन इंग्लैण्ड के सन्त कवि कार्लायल से मिलने के लिए यूरोप में गये। यूरोप में जब इन दोनों सन्तों का मिलन हुआ तो कार्लाइल ने इमर्सन से कहा कि 'तुम समृद्धशाली डॉलर के देश से आए हो—बताओ, मेरे लिए क्या लाए हो?' इस पर इमर्सन ने रोकर कहा कि 'हम तो कंगाल हैं, हमारे पास है ही क्या, हां! मेरे पास विश्व की एक परम मूल्यवान वस्तु है। मेरे गुरु थोरो प्रतिदिन प्रातःकाल इसी भगवद्‌गीता का पाठ करते थे। उन्हीं के सात्त्विक अश्रुओं से भीगी हुई यह गीता ही मैं आपको भेंट करता हूँ।' इस पर गद्‌गद होकर कार्लाइल ने भी इमर्सन को गीता भेंट की। राधाकृष्ण ने जब यह घटना

पढ़ी कि पश्चिम के दो महान् मनीषी आपस में मिलने पर गीता ही भेंट करते हैं तो उन्होंने पाश्चात्य दर्शन की पुस्तकों को उठाकर ताक पर रख दिया और भगवद्गीता के प्रथम श्लोक से प्रारम्भ किया, **धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेताः युयुत्सवाः।**

धर्म की पुकार

इस धर्महीन भौतिकवाद एवं कोरे नास्तिकता के युग में डॉ. राधाकृष्णन धर्म की वाणी बनकर अवतरित हुए। इस युग में जब मार्क्स ने कहा था कि धर्म जनसाधारण को राजनैतिक बेहोशी दिलाने वाला अफीम है, इसी युग में राधाकृष्णन् ने विश्व भर में घूम-फिर कर धर्म को मानवता के त्राण का एकमात्र मन्त्र बताया। उन्होंने युग को आह्वान करते हुए कहा, 'भौतिक ज्ञान से धर्म की कमी पूरी नहीं हो सकती। इलेक्ट्रोन और प्रोटोन चरम सत्य के रहस्य का उद्घाटन नहीं कर सकते।' वे पुनः कहते हैं कि 'बिना धर्म के मनुष्य बेलगाम घोड़े जैसा है, मनुष्य को नरपशु से बदलकर दिव्य पुरुष बनना है।'

आत्मा का संगीत

राधाकृष्णन की आत्मा में वही दिव्य संगीत ध्वनित होता है जो तत्त्वद्रष्टा ऋषियों की आत्मा में सुनाई देता है और इस आधिभौतिक कोलाहल से भरे हुए युग में भी वे आत्मा का स्वर बन कर विश्व के समक्ष आए! मानव को सम्बोधन कर के वे कहते हैं, 'हे मनुष्य! तू केवल वस्तुओं में से एक वस्तु नहीं है, चीजों में से एक चीज नहीं है, तू अमर आत्मा है, संसार का स्वामी है, अपने आपको पहचान!' वे पुनः कहते हैं, 'यदि हम यह मान लें कि विश्व का मूल ईश्वर में नहीं है, तो यह संसार निरर्थकताओं का कारागार बन जाएगा।' आत्मा के धर्म का प्रतिपादन करते हुए वे कहते हैं, 'सच्चे धर्म का लक्ष्य यह है कि उसमें कर्ता कर्म करता हुआ भी कर्म से भिन्न होता है। उसका लक्ष्य आत्मा की शक्ति द्वारा जीवन को नियन्त्रित करना है।'

शान्ति के देवदूत

डॉ. राधाकृष्णन सकल मानवता के लिए शान्ति के दिव्य देवदूत बनकर आए। मानव को चेतावनी देते हुए वे कहते हैं—'एक अन्य युद्ध, लड़ने वालों तथा देखने वालों, दोनों के लिए आत्मघातक सिद्ध होगा।' वे पुनः कहते हैं, 'जैसे महायुद्ध अन्तरराष्ट्रीय गलतफहमियों की चरम सीमा है, शान्ति अन्तरराष्ट्रीय सद्भावना का सुफल है। हिंसा का मार्ग अपनाना धर्म से तथा झगड़ों को शान्ति से सुलझाने के पथ से, कायरतापूर्वक भाग जाना है।'

विश्वास का द्रष्टा

प्राचीन ऋषियों के समान डॉ. राधाकृष्णन ने भी उद्घोष किया है—

वसुधैव कुटुम्बकम्—सारी वसुधा ही परिवार है।

वह पुनः कहते हैं, 'मम देशो भुवनत्रयम्—तीनों भुवन में मेरा ही देश है। श्री दिनकर के शब्दों में, विश्ववाद की जो भावना गांधीजी के कर्मयोग, अरविन्द की साधना और रवीन्द्र के काव्य में प्रतिफलित हुई डॉ. राधाकृष्णन ने उसका सम्पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया है। और इस दर्शन की रचना करने में उन्हें गांधी, रवीन्द्र और अरविन्द की अनुभूतियों से सहायता भी मिली है।' इस प्रकार आज के संसार के कोलाहल में उन्होंने सांस्कृतिक समन्वय की माधुरी का संचार किया है।

मानवता के नाम उनका सन्देश है, 'सभी मनुष्यों की मनोदशाएं और रीतियाँ अब एक ही मानव चेतना के अंग हैं। मनुष्य का दर्शक मनुष्य है। क्षितिज पर एक नये मानवतावाद का उदय हो चुका है। इस बार वह भेदभाव से ऊपर उठकर समग्र मानव-जाति का आलिंगन करेगा।' शान्ति के लिए भी विश्ववाद दर्शन के इस द्रष्टा ने मार्ग दिखाया है, 'घृणा तथा हिंसा से क्षत-विक्षत हुई इस धरती पर अब यह नारा गुंजाना है—'एक धरती पर एक मानव परिवार है।'

प्रकृति और पुरुष

प्रकृति के पदार्थमय रूप की पूजा करने वाले मनुष्य ने परम पुरुष को भुला दिया है। डा. राधाकृष्णन की चेतावनी है, 'जिन्दगी ऐसे सरकस का रूप ले रही है। जिसका न कोई ढांचा दिखायी देता है न कोई लय और न कोई ताल। मनुष्य के भीतर बसने वाले ईश्वरीय रूप की उपेक्षा करने से आदमी बीमार हो गया है, उसकी आत्मा रुग्ण हो गई है।'

प्रकृति इतनी पालतू तो बनायी नहीं जा सकती कि वह पग-पग पर मनुष्य की आज्ञा में चले। जब तक पूर्णता के दर्शन नहीं होते—जब तक सनातन की झांकी नहीं मिलती है तब तक मन की शान्ति बहुत दूर की आशा रहेगी। सुरक्षा की भावना सुखों की जननी है और यह भावना मनुष्य द्वारा प्रकृति पर विजय पाने से आने वाली नहीं है। इसके लिए हमें वस्तुओं पर नहीं स्वयं अपने आप पर स्वामित्व पाना होगा।'

मानवता का मन्दिर—भारत

भौतिकवाद की चकाचौंध से अंधे हुए पश्चिम को डॉ. राधाकृष्णन ने चेताते हुए कहा, 'यह सच है कि तुम लोगों ने आकाश पर पक्षियों के समान उड़ना तथा जल में मछलियों के समान तैरना सीख लिया है, किन्तु धरती पर एक सच्चे मानव के समान चलना तुमने अभी तक नहीं सीखा है। वह तुम्हें भारत से सीखना होगा।'

5 सितम्बर, 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

वर्तमान ईसाइयत ईसा के विरुद्ध खुला विद्रोह

'ईसाइयत के राजनीतिक चर्च ईसा के सन्देश के विरुद्ध एक खुला विद्रोह हैं। ईसा की शिक्षा, जैसा पाश्चात्य देश मानते हैं, वह भी जनता द्वारा आत्मसात् नहीं की गई है।

चाहे चर्च के अधिकारी अपने धुंधले प्रकाश वाले गिरजाघरों की रंगीन शीशे वाली खिड़कियों में ईसा को सजावट की वस्तु के रूप में प्रयोग करने के लिए राजी हैं किन्तु यदि चर्च के चेलों में से कोई ईसा की शिक्षा को गम्भीरतापूर्वक मानने लग जाय तथा क्रिया में उतारने लगे तो वे घबरा उठते हैं।

इमर्सन (अमरीका के दार्शनिक) ने कहा था कि प्रत्येक Stoic (उदासीन) उदासीन ही है, किन्तु ईसाई मत में ईसाई खोजना दुष्कर है। नित्शे (जर्मनी के दार्शनिक) ने कहा कि संसार भर में केवल एक ही ईसाई था जो कि क्रूस (सूली) पर ही मर गया।'

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलिजन, पृ. 67-68

बल प्रयोग द्वारा धर्म प्रचार

यदि हम लोग यह समझते हैं कि दूसरों को क्षति पहुंचाकर भी बल प्रयोग द्वारा हमें अपने-अपने धर्म का प्रचार करने का इसलिए अधिकार है कि हमारा धर्म अन्य धर्मों से ऊँचा है, तो हम नैतिक आत्म विरोध के दोषी हैं क्योंकि अन्याय, अत्याचार और दासता तो अध्यात्मिक बुद्धिमत्ता और उच्चता के ठीक निषेध हैं। **—डॉ. राधाकृष्णन्**

× × ×

'मैं भारत में पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण—सभी जगह घूमा, लेकिन पूरे भारत में मुझे एक भी भिखारी या चोर दिखाई नहीं दिया। भारत की समृद्धि व उच्च नैतिक मूल्यों को देखते हुए मुझे नहीं लगता कि हम कभी भी भारत पर विजय प्राप्त कर सकते हैं, जब तक कि हम भारत की रीढ़ की हड्डी अध्यात्मिक व सांस्कृतिक शिक्षा व्यवस्था के स्थान पर यह स्थापित न कर लें कि विदेशी व अंग्रेजी शिक्षा-व्यवस्था भारत की शिक्षा-व्यवस्था से अधिक महान् है।

—लार्ड मैकाले

(2 जनवरी 1835 में ब्रिटिश संसद में वक्तव्य)

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के महान् पक्षधर श्री छागला

श्री मुहम्मद करीम छागला के स्वर्गवास से भारत की राष्ट्रीय शक्तियों की एक अपूरणीय क्षति हुई है। वे मुसलमान होते हुए भी मुस्लिम कट्टरपंथी साम्प्रदायिकता से मुक्त ऐसे उदार एवं आदर्श राष्ट्रवादी महापुरुष थे कि उनका जीवन भारतीय मुसलमानों के लिए एक जीवित आदर्श के रूप में प्रस्तुत किये जाने योग्य है।

राष्ट्रधर्म बनाम व्यक्तिगत धर्म

उन्होंने राष्ट्रधर्म को व्यक्तिगत आस्था से सदा ऊँचा माना तथा अपनी व्यक्तिगत निष्ठा की रंगत से राष्ट्रीयता की ज्योति को कभी भी धूमिल या रंजित नहीं होने दिया। वे रहीम, रसखान, दारा शिकोह एवं नजीर की परम्परा के राष्ट्रवादी मुस्लिम थे जो इसलामी मजहब को मानते हुए भी भारत की राष्ट्रीय संस्कृति को व्यक्तिगत मजहब से ऊँचा मानकर इसकी उचित प्रतिष्ठा करते थे।

संस्कृति राष्ट्र की आत्मा

वे बड़े साहस से यह सत्य घोषित करते थे कि संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है तथा यदि भारतीय मुसलमानों को भारतीय राष्ट्र के प्रति वफादार रहना है तो उन्हें भारत की मूल-संस्कृति के प्रति वफादार रहना होगा, न कि अरब की संस्कृति के प्रति।

हिन्दू निन्दकों को करारा तमाचा

जब पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने हिन्दुओं को घिनौनी गाली दी थी तब भी श्री छागला ने भुट्टों को करारा तमाचा लगाया था। उन्होंने भुट्टो को स्मरण कराया कि वह स्वयं हिन्दू की संतान होकर हिन्दू को गाली देने के बहाने अपने समस्त पूर्वजों को गाली दे रहा है।

99 प्रतिशत मुसलमानों में हिन्दू रक्त

उन्होंने बड़ी ऐतिहासिक घोषणा की कि हिन्दुस्तान, पाकिस्तान एवं बांग्लादेश के 99 प्रतिशत मुसलमानों की नसों में हिन्दू रक्त ही है। अतः हम सब मजहब से मुसलमान होते हुए भी जाति से हिन्दू ही हैं।

मजहब से मुसलमान—संस्कृति से हिन्दू

श्री छागला का यह दृष्टिकोण दक्षिण-पूर्व एशिया के मुसलमानों में अभी तक प्रचलित एवं प्रतिष्ठित है। एक बार पाकिस्तान के राजदूत ने इन्डोनेशिया के राजदूत से पूछा कि आप कैसे विचित्र मुसलमान हैं जो अपने देश में अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन एवं रामायण, महाभारत की लीलाएँ करते रहते हैं। इसके उत्तर में इन्डोनेशिया के राजदूत ने कहा—'यह सच है कि इतिहास की किसी उथल-पुथल में हमने अपना महजब बदल लिया है किन्तु हमने न ही अपना रक्त बदला है और न ही पूर्वज। रामायण और महाभारत इन्डोनेशिया के इतिहास एवं संस्कृति में इतने रच-पच चुके हैं कि उन्हें वहाँ की संस्कृति से विलग किया ही नहीं जा सकता।' यदि भारत के अधिकांश मुसलमान छागलाजी एवं इन्डोनेशिया के मुसलमानों के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सिद्धान्त को मानने वाले होते तो कदाचित् हमारी मातृभूमि का विभाजन ही न होता। यदि अब भी श्री छागलाजी के स्वर्गवास पर उनकी ज्वलन्त प्रेरणा को रावी एवं गंगा के आर-पार बसने वाले मुसलमान बन्धु अपना लें तो भी तीन टुकड़ों में बंटा हुआ यह महान् देश पुनः एक हो सकता है।

न्याय एवं लोकतन्त्र के पक्षधर

श्री छागला न्याय, लोकतंत्र एवं नागरिक अधिकारों के इतने महान् पक्षधर थे कि उन्होंने सिद्धान्त के लिए अनेक बड़े-बड़े पदों को ठुकरा दिया, किन्तु सिद्धान्त पर आँच नहीं आने दी। उन्होंने आपातस्थिति का भी डटकर विरोध किया था और अभी हाल ही में उन्होंने सरकार द्वारा लादे गये आन्तरिक सुरक्षा कानून का बड़े साहस एवं निर्भीकता से विरोध किया। श्री छागला विधि के एक महानतम विशेषज्ञ, न्याय के श्रेष्ठतम पक्षधर, लोकतन्त्र के सजग प्रहरी, संस्कृति के निष्ठावान पुजारी तथा राष्ट्रीयता के इतिहास दुर्लभ आदर्श थे।

संस्कृति के अधिष्ठान पर शिक्षा की पुनर्रचना

कुछ वर्ष पूर्व श्री छागला ने अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के दिल्ली राष्ट्रीय अधिवेशन में मुख्य अतिथि पद से बोलते हुए विद्यार्थी परिषद् के इस मन्तव्य का बड़ा प्रबल समर्थन किया कि भारत में शिक्षा का इस प्रकार से भारतीयकरण होना चाहिए जिससे भारतीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाने वाले नवयुवकों को अनायास ही भारत की आत्मा का दर्शन प्राप्त हो सके।

छागला-स्मारक रजत पदक

संस्कृति विहार, रांची द्वारा उनके सम्मान में एक छागला स्मारक रजत पदक प्रारम्भ किया जा रहा है जो प्रतिवर्ष श्री छागला की पुण्यतिथि पर छोटानागपुर क्षेत्र के उस मुस्लिम सज्जन को प्रदान किया जायेगा जो छागलाजी की विचार-धारा के अनुरूप भारत की मौलिक संस्कृति की महानतम सेवा करने वाला प्रमाणित होगा।

स्वातंत्र्य के अमर साधक तथा लोकतन्त्र के महान् रक्षक : राष्ट्रपति वराहगिरि वेंकटगिरि

राष्ट्रपति वी.वी. गिरि के स्वर्गवास से एक महान् देशभक्त, संविधान संरक्षक, विधिवेत्ता, श्रमिक वर्ग का सच्चा हितैषी तथा राष्ट्र का एक अद्वितीय मार्गदर्शक हमसे छिन गया है।

श्री गिरि जब आयरलैण्ड में शिक्षा प्राप्ति हेतु गये थे तब वे वहाँ के महान् देश-भक्त तथा बाद में वहाँ के राष्ट्रपति पद पर आसीन होने वाले प्रो. डी. वलेरा की स्वातंत्र्य निष्ठा एवं राष्ट्रभक्ति से बहुत प्रभावित हुए थे। यह अद्‌भुत संयोग है कि डी. वलेरा आयरलैण्ड के राष्ट्रपति बने तथा उनके शिष्य वी.वी. गिरि भारत के राष्ट्रपति बने। श्री डी. वलेरा श्री गिरि एवं अन्य शिष्यों को बार-बार यह कहते थे—'भूल में मत रहो, ये आयरलैण्ड वास्तव में आर्यलैण्ड ही है। आर्यावर्त्त से आर्य जाति के लोग ही सारे यूरोप में फैलते हुए आयरलैण्ड तक पहुँचे थे।' वे आग्रह पूर्वक कहते थे, 'आर्यावर्त्त एवं आयरलैण्ड दोनों को अंग्रेजों की दासता से मुक्त होना है।'

श्री गिरि के भारत में पहुँचने पर उन्हें महात्मा गांधी जैसे महान् राष्ट्रनिर्माता का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। डी. वलेरा ने स्वाधीनता का जो सिद्धान्त दिया, गांधीजी ने उसके लिए साधना का पथ दर्शाया और स्वाधीनता की सिद्धि के उपरान्त श्री गिरि प्रदेश एवं देश के अनेक पदों को सुशोभित करते हुए एक दिन स्वाधीन भारत के राष्ट्रपति पद पर आसीन हुए तथा स्वाधीन आयरलैण्ड के राष्ट्रपति (अपने गुरु) डा. डी. वलेरा से हाथ मिलाने गये। तब स्वाधीन आर्यावर्त्त एवं स्वाधीन आयरलैण्ड ने गद्‌गद भाव से परस्पर वन्दना-अभिवन्दना की।

श्री गिरि ने अपने स्वर्गवास से केवल तीन सप्ताह पूर्व Illustrated Weekly में एक बड़ा विचारोत्तेजक लेख दिया था Poll for one party rule (एक दल के शासन हेतु चुनाव) जिसमें उन्होंने लिखा था कि राष्ट्रपति के रूप में वे केवल कुर्सी की शोभा बढ़ाने वाले और प्रधानमंत्री की हर बात को आँख मूंद कर मानने वाले रबर स्टाम्प राष्ट्रपति नहीं थे। उन्होंने आपातकाल की घोषणा पर

इन्दिरा गांधी को जोरदार पत्र लिखा था कि यह इमरजेन्सी एक स्वाधीन लोकतन्त्र के लिए अपमानजनक है। उन्होंने लिखा कि आपातकाल के विरुद्ध सलाह देने वाले भीमसेन सच्चर जैसे अनेक प्रतिष्ठित नेताओं को मीसा में बन्दी बना दिया गया। इन्दिरा गांधी उन्हें भी बन्दी बना सकती थी जिसे वे सहर्ष स्वीकार करते। वे पुनः देश की अतिशय निर्धनता से दुःखी हो कर अश्रु प्रेरक वाणी में कहते—'इस आजाद देश के सामान्य नागरिक को भोजन, कपड़ा और आवास की उतनी सुविधाएँ भी प्राप्त नहीं हैं जितनी कि कारागार में कैद भुगतने वाले किसी चोर, डाकू या कातिल जैसे अपराधियों को भी प्राप्त होती है।' इसीलिए भुखमरी का शिकार एक गरीब सज्जन भूख से लाचार होकर अपराधी बनता है ताकि जेल में रोटी, कपड़ा और कोठरी तो मिल जाएगी।

उन्होंने अपने उक्त लेख में लिखा कि श्रीमती इन्दिरा गांधी देश में एक ही दल की तानाशाही लादने के लिए चुनाव करवा रही हैं ताकि विरोधी पक्ष को बिल्कुल कुचल दिया जाये तथा राज्यों की स्वायत्तता समाप्त कर केन्द्र के हाथ में सर्वसत्ता केन्द्रित हो जाय। उन्होंने आशंका व्यक्त की कि इमरजेन्सी का सबसे बड़ा सलाहकार प्रधानमंत्री का पुत्र संजय गांधी ही था तथा अब पुनः उसी की व्यूह रचना के अनुसार विरोधी पक्ष को कुचल कर, पुराने नेताओं को किनारे धकेल कर उग्रवादी, अधीर एवं सत्तालोलुप जवानों को आगे लाकर राज्यों की स्वायत्तता भी शून्यप्राय कर के, केन्द्र को सर्वशक्तिमान बनाकर उसी संजय गांधी को देश का सर्वोच्च शासक बनाने का राजनीतिक खेल खेला जा रहा है।

यह दैवी संयोग की बात है कि 23 जून की प्रातः श्री संजय गांधी 34 वर्ष की अल्पायु में ही एक हृदयविदारक दुर्घटना से स्वर्गवासी हुए तथा 24 जून प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में श्री गिरि 86 वर्ष की आयु में शान्तिपूर्वक परलोक सिधार गये। उन वृद्ध एवं युवा नेता, दोनों को आज सारा राष्ट्र यथायोग्य श्रद्धा के फूल चढ़ा रहा है।

मुस्लिम समाज को सम्बोधित करते हुए **स्वातंत्र्य वीर सावकर** कहते हैं—'राष्ट्र निर्माण के कार्य में यदि तुम आओ तो तुम्हारे साथ, यदि नहीं तो तुम्हारे बिना, यदि तुम विरोध करो तो उसकी अवहेलना करते हुए, मैं अपना कार्य निरंतर करता रहूंगा।'

जयप्रकाश नारायण

सम्वत् 1959 विजयादशमी का दिन

12 अक्टूबर, 1902, बिहार के गांव सितावदियारा गंगा व सरयू का संगम स्थल के एक मध्यवित्त कायस्थ परिवार में बाबू हरदयाल के घर में एक पुत्र रत्न ने जन्म लिया जो विजयादशमी की पर्व परम्परा के अनुरूप ही भ्रष्टाचार के घोर तिमिर पर पुनः प्रकाश की जय स्थापित करने वाला जयप्रकाश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बचपन में बाल सुलभ उछल-कूद व चंचलता के अभाव में बहुत ही शान्त-वृत्ति एवं बहुत कम बोलने के कारण माता ने बच्चे को 'बउल' कहना शुरू किया। यही उनका घर का नाम पड़ गया। पिता खीजकर उसे बूढ़ा बालक कहते थे। यह किसे पता था कि इतना शांत बालक महाक्रान्तिकारी देवदूत बनेगा। यह गूंगा-सा बाल अपने अग्निमुखी भाषणों से सारे देश में क्रान्ति की ज्वाला भड़का देगा और इस बूढ़े बालक को बच्चे-बूढ़े, जवान नर-नारी सभी लोकनायक मानकर अपने हृदय में पूजेंगे।

प्राइमरी शिक्षा के बाद जयप्रकाशजी को पटना में आगे की शिक्षा के लिए भेजा गया। उनकी गिनती कक्षा के 6 मेधावी लड़कों में से थी। वे सरस्वती भवन, छात्रावास में अनुग्रह बाबू और श्रीकृष्ण आदि के साथ रहते तथा देशभक्ति की भावना से राजनीतिक गतिविधियों में खूब रुचि लेते थे। जयप्रकाश गणित में 100 में से 98 अंक लाते थे, पर उनका हृदय साहित्य की ओर, मस्तिष्क विज्ञान की ओर दौड़ता था। मैट्रिक परीक्षा में जयप्रकाश स्कॉलरशिप के साथ पास हुए।

वे विद्यार्थी-जीवन में दैनिक गीतापाठ करते। गीता स्कूल में भी ले जाते और खाली समय में साथियों को गीता सुनाते और व्याख्या करते। तब से अब तक जयप्रकाशजी का गीता से प्रेम बना हुआ है। इसी गीता के निष्काम कर्मयोग ने उन्हें निःस्वार्थ राष्ट्र सेवा की प्रेरणा दी है। पदलोलुपता से दूर रहकर स्वयं अपने निज के लिए कुछ भी न चाहकर अपना सारा जीवन लोक संग्रह और बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के लिए लगा देने वाला वह अनोखा कर्मयोगी है।

जब जयप्रकाशजी युवा थे तब देश की राजनीति में दो धारायें समानान्तर बह रही थी। एक बंगाल की विप्लवी क्रान्तिकारी धारा जिसके अन्तर्गत खुदीराम बोस ने बिहार के मुजफ्फरनगर में बम फेंका था और श्री अरविन्द, कन्हाईलाल दत्त, वारीन्द्र घोष, विपिनचन्द्र पाल आदि के अग्निमुखी भाषणों तथा स्फुलिंग-वर्षी बमों से वातावरण ज्वलन्त था।

दूसरी धारा थी गांधीजी की सत्याग्रह व अहिंसा की धारा। गांधीजी ने चम्पारन में सत्याग्रह किया तब बिहार के युवक उनकी सुरक्षा, दृढ़ता और जनता से एकात्मता की ओर आकर्षित हुआ। जयप्रकाशजी पर दोनों का प्रभाव हुआ। वे खादी के कपड़े पहनते और देश की आजादी के लिए अपने जीवन की योजनाएं बनाने लगे। उन्होंने गांधीजी की गीता भक्ति भी सुनी और यह भी सुना की फांसी के तख्ते पर झूलते समय खुदीराम बोस गीता का श्लोक दोहराता रहा। वे दोनों धाराओं के बीच के मार्ग में झूलते रहे—

क्रान्ति का मार्ग या शान्ति का मार्ग।
गांधी की गीता या खुदीराम की गीता।

उन्हीं दिनों पुलिस ने क्रान्तिकारियों की खोज हेतु प्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार के घर को घेर लिया। जयप्रकाश आकर्षित हुए एक बंगाली नवयुवक से और जयप्रकाश पर क्रान्तिकारी हाथों का जादू चल गया। कभी गंगा के किनारे, कभी घाट पर, कभी खण्डहर में, कभी मैदान में सवेरे के अंधेरे में उन्हें बम, पिस्तौलों एवं गोला बारूद की रोमांचकारी योजनाओं से आकर्षित कर वह जयप्रकाश से एक गीत गवाता—

गोरन को मार-मार कर
बोरन में भरीहो।

जयप्रकाश के मन में बड़ी हलचल थी, किन्तु कोलकाता से उस युवक की खोज में सी.आई.डी. के कुछ अफसरों के पटना पहुंच जाने के कारण वह क्रान्तिकारी नवयुवक लुप्त हो गया। जयप्रकाश उनकी खोज में घाट-घाट भटकते रहे। किन्तु वह नहीं मिला। इसलिए कुछ देर के लिए क्रान्ति का जादू टल गया और जयप्रकाशजी गांधी के मार्ग की ओर आकर्षित हुए।

जयप्रकाशजी की साहित्य में बड़ी रुचि थी। वे मैथिलीशरण गुप्त, भारतेन्दु, माखनलाल चतुर्वेदी से बहुत प्रभावित हुए। भारतेन्दु का नाटक 'भारत दुर्दशा' पढ़कर रो उठे। गुप्तजी की भारत-भारती पढ़कर करुणा में डूब गए और रामचरितमानस पढ़कर मन शान्त हुआ।

जयप्रकाशजी का विवाह प्रसिद्ध जनसेवी बाबू ब्रजकिशोर की सुपुत्री

प्रभावती देवी से हुआ। यह सम्बन्ध कराते हुए राजेन्द्र प्रसाद उपस्थित थे। राष्ट्रसेवा कार्य में प्रभावती का योगदान बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा।

सन् 1919 के जलियांवाला काण्ड के भीषण नरसंहार पर रवीन्द्रनाथ टैगोर का अपनी सर की उपाधि का त्याग आदि की घटनाओं से जयप्रकाश का मन मचल उठा। जयप्रकाशजी अपने 5 साथियों के साथ कॉलेज छोड़कर असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े।

स्कूल-कॉलेजों के बहिष्कार के कारण विद्यालय त्यागने वाले विद्यार्थियों के लिए राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित किए गए। पटना में बिहार विद्यापीठ की स्थापना हुई। जिसके प्रधान आचार्य हुए डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और वहीं जयप्रकाश नारायण पढ़ने लगे।

फिर जयप्रकाश के मन में अमरीका में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा जागी। 20 वर्ष के जयप्रकाश अमरीका गए और उनकी पत्नी साबरमती आश्रम में गांधीजी के पास चली गई। अमरीका में जाकर जयप्रकाशजी ने प्रारम्भ में अंगूर के खेत में मजदूरी की तथा कुछ पैसे जमाकर कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से आई.ए. प्रथम श्रेणी में पास की। इसके बाद आगे का खर्च चलाने के लिए पुनः अंगूर के खेत में काम करने लगे। शिकागो के एक होटल में एक मेहत्तर का भी काम किया। जब अर्थ संकट से परेशान हुए तो हिमालय की बूटियां नाम से सेन्ट, क्रीम, हेयर लोशन बनाकर हब्सी महल्लों में बेचने लगे। इसी व्यवसाय में एक स्त्री ने उनसे बहुत-सा सामान लेकर उन्हें ठग लिया। पैसा नहीं दिया। जयप्रकाश आठ माह बीमार रहे। उन्होंने ओहिया विश्वविद्यालय से बी.ए. पास किया। पुनः वहीं से एम.ए. किया। पुनः पीएच.डी. कर रहे थे। तभी घर से माताजी की बीमारी का समाचार आया। इसलिए जयप्रकाश अमरीका में सात साल बिता कर घर वापस लौटे। अमरीका में ही जयप्रकाशजी कम्यूनिस्ट पार्टी के सम्पर्क में आये और प्रभावित हुए और बहुत समय तक वे खुलेआम अपने आपको कम्यूनिस्ट घोषित करते रहे।

लाहौर कांग्रेस में गांधी ने जे.पी. की भेंट जवाहरलाल से करवायी। दोनों की मित्रता बढ़ती गई। जे.पी. कांग्रेस के स्थायी मंत्री बन गए।

सन् 1930 के नमक सत्याग्रह में जे.पी. भाग लेने के लिए तैयार थे। तभी जे.पी. की माताजी का स्वर्गवास हो गया।

जब नेहरूजी बंदी बना लिए गए तब जे.पी. ने पारसी का भेष बनाकर मुम्बई में श्री सरोजिनी नायडू को कागजात हवाले कर दिए। कुछ दिनों बाद जे.पी. ने बनारस में गुप्त बैठक रखी जिसमें मालवीयजी और राजेन्द्र प्रसाद भी आए।

जे.पी. गुप्त रूप से मद्रास चले गए। वहां पर वे स्टेशन पर पकड़े गए और नासिक जेल में बन्द कर दिए गए। नासिक जेल में जे.पी. ने संकल्प किया—किसान और मजदूरों का राज्य लाने के लिए समाजवाद लाना होगा।

भारत में कम्यूनिस्ट पार्टी कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार करती थी। सत्याग्रहियों पर हमला करती थी। तिरंगे झण्डों को छीन लेती और अंग्रेजों का साथ देती थी। नेहरूजी रूस घूम आए और वे भी समाजवाद से प्रभावित थे।

सन् 1932 में बिहार सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। इसका सदस्य बनने के पहले कांग्रेस का सदस्य होना अनिवार्य था। सन् 1934 में बिहार में भयंकर भूकंप आया। जिसमें जे.पी. ने सहायता केन्द्र में मंत्री के रूप में कार्य किया।

समाजवादी आंदोलन—जे.पी. बिहार सोशलिस्ट पार्टी में शामिल होकर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की रचना में लग गए। सन् 1938 का लाहौर अधिवेशन जे.पी. की अध्यक्षता में हुआ। उनके साथी थे लोहिया, आचार्य नरेन्द्रदेव, अशोक मेहता, अच्युत पटवर्धन आदि। सन् 1937 में जब कांग्रेस के मंत्री बनने लगे तो जे.पी. ने विरोध किया और गिरफ्तार हुए।

द्वितीय विश्वयुद्ध में जब गांधीजी ब्रिटेन को नैतिक समर्थन देने के पक्ष में थे तब जे.पी. ने उसका विरोध किया। वे अवसर का लाभ उठा कर देश को आजाद कराना चाहते थे। कांग्रेस कार्यसमिति ने ब्रिटेन से कहा कि वह हिन्दुस्तान के संबंध में अपना उद्देश्य घोषित करे। ब्रिटेन ने कांग्रेस कार्यसमिति के अनुरोध को ठुकरा दिया। फलस्वरूप कांग्रेस मंत्रिमण्डल ने इस्तीफा दे दिया। उधर, कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाष बोस चुने गए जिसे गांधीजी ने व्यक्तिगत हार कहा। जे.पी. ने दोनों पक्षों में समझौते के विफल प्रयास किए। जे.पी. को 1940 में जमशेदपुर के एक भाषण के आधार पर गिरफ्तार कर लिया गया। वे नौ मास के बाद हजारीबाग की कारा से छूट गए। किन्तु, इसके बाद शीघ्र ही मुम्बई में पुनः गिरफ्तार कर लिए गए। जेल में प्रभावती मिलने आयी तो जे.पी. ने एक गुप्त पुलिंदा प्रभावती के माध्यम से बाहर भेजना चाहा पर वह पकड़ा गया। 18 अक्टूबर, 1941 को देश भर के अखबारों में छपा—जयप्रकाश हिन्दुस्तान के षड्यंत्री नम्बर वन हैं। ये लोग डकैतियां डालेंगे और विदेशों से सम्पर्क करके सशस्त्र विद्रोह करेंगे आदि-आदि। इस समाचार से बड़ा हंगामा मचा।

अगस्त, 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। गांधीजी तथा सभी प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिए गए। जनता घिसती-पिटती जा रही थी। जे.पी. ने दृढ़ निश्चय किया कि जान पर खेलकर भी बाहर जाना होगा। वे छह लोगों के साथ जेल से बाहर हो गए। उन्हें पुनः पकड़ने के लिए पहली

बार दस हजार रुपये, दूसरी बार 21 हजार रुपये का इनाम घोषित किया गया। जेल से बाहर आकर जे.पी. ने बनारस में गुप्त रूप से कुछ खुली चिट्ठी लिखी। (1) आजादी के सैनिकों के नाम, (2) अमरीका के फौजी अफसरों के नाम, (3) सैनिकों के नाम, (4) विद्यार्थियों के नाम। जे.पी. के प्रयत्न से क्रान्ति की ज्वाला फिर से भड़कने लगी। अतः जे.पी. पुनः पकड़ लिए गए और उन्हें लौहार किले में रखा गया। उन्हें बर्फ की चट्टान पर बैठाया जाता था। सोने नहीं दिया जाता था और उनकी ओर से वकालत करने वाले वकील को भी पकड़ लिया गया।

6 मई 1944 में गांधी की रिहाई के पश्चात् कैबिनेट मिशन भारत आया तो गांधीजी ने जे.पी. और लोहिया को छोड़ने की शर्त रखी। तब जे.पी. और लोहिया को मुक्त किया गया।

रामधारी सिंह दिनकर ने जे.पी. के यश में लिखा है—

जयप्रकाश है नाम समय की
करवट का, अंगड़ाई का
भूचाल बवण्डर के ख्वाबों से
भरी हुई तरुनाई का
है जयप्रकाश वह नाम जिसे
इतिहास समादर देता है
बढ़ कर जिसके पदचिह्नों को
उर पर अंकित कर लेता है।

जे.पी. ने जब देखा कि कांग्रेस के नेतागण सरकार में शामिल होने को बेचैन हो उठे हैं तो उन्होंने कांग्रेस वर्किंग कमेटी से इस्तीफा दे दिया और सन् 1947 के प्रारम्भ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का ऐतिहासिक अधिवेशन डॉ. लोहिया की अध्यक्षता में हुआ। इसमें कांग्रेस का नाम काट कर शुद्ध सोशलिस्ट पार्टी बनायी गई। तभी गांधीजी ने जे.पी. को मनाकर कहा कि वे कांग्रेस अध्यक्ष बन जाएं। पर नेहरूजी ने इसे पसंद नहीं किया।

1947 में देश के विभाजन से क्षुब्ध होकर जे.पी. ने गांधीजी से कहा कि मैं कांग्रेस से अलग होना चाहता हूं। गांधीजी ने कहा बहुत कष्ट सहना पड़ेगा। आजादी के बाद बिहार के दंगाग्रस्त क्षेत्रों में नेहरू ने हवाई सर्वेक्षण किया और रोष में भर कर कहा कि मैं बम गिराऊंगा और इन बिहारियों को शांत करूंगा। पटना में एक सभा में विद्यार्थियों ने नेहरूजी को घेरकर उनके कपड़े फाड़ दिए। तब जयप्रकाश ने नेहरू की रक्षा की और छात्रों से माफी मंगवायी।

जनवरी, 1948 के प्रथम सप्ताह में जब गांधीजी दिल्ली गए तो जयप्रकाशजी साथ थे। कोई कांग्रेसी गांधीजी की अगवानी करने नहीं आया। जयप्रकाशजी कांग्रेस तथा सरकार, दोनों द्वारा गांधीजी के प्रति इस अवज्ञा से बहुत दुःखी हुए। 30 जनवरी, 48 को गांधीजी की हत्या के बाद कांग्रेसी नेताओं ने विलाप का खूब नाटक किया। जयप्रकाशजी मुम्बई से तुरन्त दिल्ली पहुँचे। जयप्रकाश गांधीजी के बिना आश्रयविहीन हो गए। उन्होंने दुःखी होकर कहा, 'एक गलती गांधी ने की, पाकिस्तान बनने का विरोध न करके, दूसरी गलती मैंने की गांधी की बात मानकर।' जयप्रकाश आजादी को अधूरी मानते थे तथा उन्होंने संविधान सभा की सदस्यता अस्वीकार कर दी थी। 1948 के नासिक सम्मेलन में सोशलिस्टों ने कांग्रेस से पूरी तरह अलग हो जाने का निर्णय किया। जयप्रकाशजी को अपने खून-पसीने से निर्माण की हुई संस्था (कांग्रेस) को छोड़ना पड़ा। सन् 1948-51 तक जे.पी. प्रभावती के साथ सोशलिस्ट पार्टी के संगठन के लिए देशभर का दौरा करते रहे। 1950 के सोशलिस्ट पार्टी के अधिवेशन में जे.पी. और लोहिया के मतभेद खुलकर सामने आए। लोहिया ने सम्मेलन में भाग नहीं लिया। सन् 1952 के चुनाव में सोशलिस्ट पार्टी की करारी हार हुई। कुछ नेता सारी जिम्मेदारी जे.पी. पर डालते थे। कुछ ने कहा, जे.पी. जवाहर का दोस्त है। इन्होंने गुप्त रूप से कांग्रेस की मदद की। जे.पी. का दिल टूट गया। उन्होंने कहा, दोस्तो! मैं बिहार छोड़ रहा हूं। उनकी आँखों में आंसू आ गए। पुनः कृपलानी से मिलकर मजदूर पार्टी बनाते हैं।

राजनीति से निराश होने पर उन्हें राजनीति से वैराग्य हो गया। वे विनोबा के सर्वोदय संदेश की शरण में आए। 1954 में बोधगया सर्वोदय सम्मेलन में जे.पी. ने अपना जीवनदान घोषित किया। जे.पी. ने अहिंसक क्रान्ति के लिए जीवन समर्पित किया। जे.पी. ने नवादा के पास के एक गांव सेखोदेवरा में सर्वोदय आश्रम की स्थापना की। धीरे-धीरे वही उनका मुखयालय बन गया।

1962 में देश पर चीनी आक्रमण के समय जे.पी. ने तिब्बत की स्वायत्तता और देश की रक्षा के लिए आह्वान किया। जे.पी. का विश्वास था कि इसका उत्तर सर्वोदय ही हो सकता है। पुनः जे.पी. ने अनेकों अन्तरराष्ट्रीय शांति मिशनों की अध्यक्षता की। 1971 में चम्बल घाटी के डाकुओं का हृदय परिवर्तन कर उन्हें आत्मसमर्पण के लिए राजी किया।

1971 में जे.पी. ने भ्रष्टाचार निवारण तथा लोकतंत्र संरक्षण के लिए नया अभियान प्रारम्भ किया।

गुजरात के मुख्यमंत्री श्री चिमनभाई पटेल ने तेल व्यापारियों, मिल मालिकों से लाखों रुपया रिश्वत लेकर उन्हें मनमानी तौर पर दाम बढ़ाने की छूट दे दी। इसके

विरोध में छात्र एवं युवा वर्ग ने आन्दोलन छेड़ा। जे.पी. ने आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। श्री मोरारजी देसाई ने अनशन किया। गुजरात सरकार का पतन हुआ।

बिहार में वैसा ही भ्रष्टाचार का दौर दौरा होने के कारण जनता में असंतोष था। युवा वर्ग के लोग जे.पी. के पास मार्गदर्शन के लिए पहुँचे। जे.पी. ने स्वीकार कर लिया और बिहार आंदोलन का आह्वान किया। जे.पी. ने बिहार में मंत्रिमण्डल के भ्रष्ट होने के कारण उनसे त्यागपत्र की मांग की। साथ ही एम.एल.ए. से भी। पर यह स्वीकार नहीं हुआ सरकार को। तब इसके विरुद्ध प्रदर्शन हुए। तब अंध बर्बर सरकार ने छात्रों की उचित मांगों को स्वीकार करने के बजाय गया में, पटना में निर्मम लाठीप्रहार एवं गोलियां चलायी। कितने ही आहत हुए और कितने ही मृत्यु को प्राप्त हुए। फिर जे.पी. ने बिहार बंद का आह्वान किया। पटना में छात्रों ने सरकार के विरुद्ध विशाल प्रदर्शन किया। तब निर्मम लाठीप्रहार हुए। जे.पी. की तो नानाजी देशमुख ने अपना बाजू तुड़ा कर प्राण रक्षा की। फिर जे.पी. ने भ्रष्टता उन्मूलन के लिए पूरे बिहार का दौरा किया। तब बहुत से लोगों के सम्पर्क में आए। सभी ने यह सुझाव दिया कि भ्रष्टाचार तो पूरा भारत व्यापी है। अतः इसे देशव्यापी रूप दे देना चाहिए। तब जे.पी. ने देशव्यापी सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए आह्वान किया और आन्दोलन सम्पूर्ण देशव्यापी हो गया। गुजरात में कांग्रेस की पराजय, इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा सर्वोच्च सत्ता इन्दिराजी की भ्रष्टता का सिद्ध होना और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थगन आदेश नहीं मिलने पर इन्दिराजी द्वारा गद्दी की सुरक्षा के लिए आपातस्थिति की घोषणा हुई।

सम्पूर्ण क्रान्ति—समाज के प्रत्येक वर्ग में क्रान्ति की आवश्यकता और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्ति की आवश्यकता है।

(क) शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन—वर्तमान शिक्षा पद्धति क्लर्क ढालने की मशीन है। कोई भी विदेशी शक्ति किसी देश में स्थापित होती है तो उसका प्रथम कार्य स्व पर प्रहार करना होता है। स्व विहीन करना होता है। अतः अंग्रेजों ने भी इसी मार्ग का अवलम्बन लिया। उन्हें अपना प्रशासन चलाने के लिए क्लर्कों की आवश्यकता थी। अतः स्व विहीन परावलम्बी बनाने वाली शिक्षा पद्धति को अपनाया। उस समय की शिक्षा पद्धति और वर्तमान शिक्षा पद्धति में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। आज भी शिक्षा पद्धति क्लर्क ढालने की मशीन है। अतः इसमें आमूल परिवर्तन आवश्यक है। वर्तमान शिक्षा पद्धति का व्यावहारिकता से सम्बन्ध नहीं है। विद्यार्थी-जीवन तक तो छात्र पुस्तक चाटते रहते हैं। छात्र जीवन की समाप्ति होते ही उन पुस्तकों को बांध कर ताक पर रख देता है और मरने तक जीवन के संघर्षों से जूझता रहता है। शिक्षा के पश्चात् इसका व्यावहारिक उपयोग ही नहीं रह जाता।

(ख) प्रशासन में क्रान्ति

(ग) चुनाव पद्धति में परिवर्तन

राजनीतिक क्रान्ति में लोकजीवन पद्धति में आस्था।

विरोधी दल का साझा मंच बनना।

प्रेस की स्वतंत्रता।

सामाजिक क्रान्ति।

धार्मिक क्रान्ति।

आर्थिक क्रान्ति।

राजनीति कीचड़ से भरी है। कीचड़ को साफ करना है तो कीचड़ के अन्दर जाना ही पड़ेगा, मगर ऐसा करते समय हमेशा ध्यान में रखना चाहिये कि वह कीचड़ के अन्दर उस कीचड़ को साफ करने आया है।

—दीनदयाल उपाध्याय

न वै राज्यं व राजासीन्न न च दण्डो न दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्।।

श्रीमहाभारत शान्तिपर्व, 59/14

पहले न कोई राज्य था, न राजा था, न दण्ड था और न दण्ड देने वाला था। समस्त प्रजा धर्म द्वारा ही एक-दूसरे की रक्षा करती थी।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

छा. उ., 5/11/5

राजा अश्वपति कहते हैं—मेरे जनपद में न कोई चोर है, न कोई कृपण है, न मद्य पीने वाला ही है, न कोई अग्निहोत्ररहित है, न कोई अनपढ़ है, न कोई व्यभिचारी है, फिर व्यभिचारिणी का तो कहना ही क्या?

संघ—भारत एवं भारतीयता का अभेद्य कवच

भारत जो प्राचीनकाल में विश्वगुरु के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था, विगत 12 शताब्दियों में अनेक बर्बर एवं क्रूर जातियों से पदाक्रान्त एवं पराभूत इसलिये हुआ था कि हम में वैभव के भोग से विलास आ गया। विलास के स्वार्थ से समाज में संगठन के स्थान पर फूट छा गई तथा व्यक्तिगत अहंकार या राज्यगत स्वार्थों के संघर्ष में देश के नागरिकों एवं राजाओं का राष्ट्रीय चरित्र लुप्त हो गया।

डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार ने सन् 1925 में राष्ट्र के इस महारोग का निदान कर, भोग के स्थान पर त्याग के आधार पर राष्ट्रीय चारित्र्य सम्पन्न तेजस्वी, तपस्वी तरुणों का देशव्यापी संगठन प्रारम्भ किया। आज 54 वर्षों की तपस्या के फलस्वरूप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भारत एवं भारतीयता का अभेद्य कवच बन गया।

प्रो. ओबराय ने कहा—जब मुस्लिम लीग के गुण्डों ने गाँधीजी पर आक्रमण की धमकी दी थी तो हरिजन कॉलोनी दिल्ली में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनेक स्वयंसेवक दिन-रात गाँधीजी की रक्षा हेतु पहरा देते थे। काश्मीर की रक्षा में अनेक संघबंधु बलिदान हुए। चीनी आक्रमण के समय स्वयं पंडित नेहरू ने स्वयंसेवकों की देशभक्ति की सराहना की। पाकिस्तान के आक्रमण के समय शास्त्रीजी ने संघ से यथेष्ठ सहायता ली, नेपाल-भारत सम्बन्ध सुधारने में गुरुजी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। 15 अगस्त, 1947 को मुस्लिम लीग द्वारा सभी मंत्रियों के सामूहिक वध का षड्यंत्र संघ के स्वयंसेवकों ने निरस्त किया। जयप्रकाशजी संघ के परम प्रशंसक बन गये।

दीर्घ रजनी अब समाप्त होती हुई जान पड़ती है। महादुःख का प्रायः अन्त ही प्रतीत होता है। महानिद्रा में निद्रित शव मानो जागृत हो रहा है...

यह देखो भारत माता धीरे-धीरे आँखें खोल रही है। यह कुछ ही देर सोयी थी। उठो, उसे जगाओ और पहले की अपेक्षा और भी गौरवमण्डित करके भक्ति भाव से उसे उसके चिरन्तन सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दो। **—स्वामी विवेकानन्द**

भारतीय राष्ट्र की अजेयता का रहस्य

समय के अनुसार परिवर्तन की क्षमता

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि वह देश-काल के अनुसार अपनी मूल चेतना में परिवर्तन किए बिना ढलने की क्षमता रखती है। इसलिए भी भारतीय संस्कृति चिरंजीवी बनी हुई है।

भारत में परिवर्तन का आधार आध्यात्मिक पुरुष और अहिंसा

भारत में परिवर्तन का आधार राजनेता न होकर आध्यात्मिक-सांस्कृतिक पुरुष रहे हैं और परिवर्तन का माध्यम हिंसक क्रान्ति न होकर अहिंसा रही है, शास्त्र चर्चा रही है। शास्त्रार्थ रहा है। जो स्वयं राग-द्वेष से मुक्त है जिनका चित्त शांत है, तृप्त है, जिन्होंने अपने जीवन का निर्माण कर लिया है, जीवन का लक्ष्य पा लिया है वही तो समाज को दिशा निर्देश दे सकते हैं, व्यवस्था दे सकते हैं। सुख-शांति दे सकते हैं। अतः हमारे सारे शास्त्रों की रचना करने वाले, स्मृतियों की रचना करने वाले आध्यात्मिक पुरुष रहे हैं। काल के प्रवाह से जब भी विकृति आयी है तब उसमें संशोधन करने वाले पुनः सही दिशा देने के लिए सांस्कृतिक-आध्यात्मिक पुरुष ही आगे आये हैं। वेद हमारी संस्कृति का, जीवन का मूल है। वेदों में जो कर्मकाण्ड है वह मनुष्य मात्र के सभी कर्मों को नियंत्रित करने, उसमें उदात्त भाव भरने के लिए हैं। पर काल के प्रवाह से इसमें यांत्रिकता, जटिलता का समावेश हो गया और वेद के कर्मकाण्ड में ही उलझकर उसमें सीमित होने लगे, ज्ञानकाण्ड की उपेक्षा होने लगी तब इसके शमन के लिए स्वयं उपनिषद् मुखर हुए।

प्लवा ह्येते अदृढ़ा यज्ञरूपा
अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा
जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति।।

(मुण्डकोपनिषद् 1/2/7)

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।।

(कठोपनिषद् 1/2/5)

(अर्थात्, यह आदर्शहीन यज्ञादि कर्मकाण्ड अदृढ़ नौका के समान है। अविवेकी लोग इसको ही जीवन का लक्ष्य बनाकर, अपनी अन्ध वासनाओं के भँवर में ही पड़े रहते हैं और आध्यात्मिक उन्नति के पद को नहीं प्राप्त कर सकते। मूढ़ लोग, अपने को पण्डित और बुद्धिमान् समझते हुए, पर वास्तव में अज्ञानवश आदर्शहीन क्रियाकलाप में फँसे हुए, आत्मिक उन्नति के सरल-सीधे मार्ग में अग्रसर नहीं हो पाते, वे मान, दम्भ, मोह के टेढ़े मार्ग में ही फँसकर अपने जीवन को नष्ट करते हैं। उनकी दशा वास्तव में अन्धे के पीछे चलने वाले अन्धे के ही समान होती है।

ऐसे ही आदर्शहीन क्रियाकलाप को लक्ष्य करके गीता के उपर्युक्त भाव प्रकट किये गये हैं।

पुनः भगवान् बुद्ध के काल में कर्मकाण्ड के नाम पर पशु हिंसा होने लगी, और सदाचार को भूलकर देश व्यर्थ के दार्शनिक वाद-विवाद में उलझने लगा तब भगवान बुद्ध आते है नैतिक जागरण का आन्दोलन चलाते हैं। पर जब बौद्ध धर्म अपने आदर्शों से च्युत होकर विकृति में, देशद्रोही गतिविधियों में लिप्त हो जाता है, तब कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य को पाते हैं। शंकराचार्य के बाद आचार्यों की परम्परा को पाते हैं। जब-जब भी देश-धर्म में संकट आया तब-तब राजपुरुषों को नेतृत्व देने वाले आध्यात्मिक सांस्कृतिक महापुरुषों को पाते हैं। प्रभु राम के समय भी उनको नेतृत्व देने वाले विश्वामित्र, महर्षि अगस्त्य व ऋषि-मुनियों की परम्परा को, चन्द्रगुप्त के समय चाणक्य को, पुष्यमित्र के समय ऋषि पतंजलि को, हरिहर बुक्का के पीछे स्वामी विद्यारण्यक को, राणा प्रताप के समय गोस्वामी तुलसीदास को, शिवाजी के पीछे समर्थ स्वामी रामदास को, छत्रसाल के पीछे प्राणनाथ स्वामी को, सिख गुरुओं की परम्परा को, चैतन्य महाप्रभु को पाते हैं। वर्तमान के नवजागरण के आन्दोलन में राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द लाल, बाल-पाल, मदनमोहन मालवीय, सुभाष और गांधी मूलतः आध्यात्मिक महापुरुष ही थे, अहिंसक ही थे। कहीं-कहीं दुष्टता के दलन के लिए ही अन्तिम हथियार के रूप में हिंसा का सहारा लेना पड़ा है। पर पश्चिम में चाहे ईसाइयत हो या इसलाम या कम्यूनिज्म हो सबके परिवर्तन के मूल में हिंसा का ताण्डव नृत्य पाते हैं और भीषण राग-द्वेष से ग्रसित पुरुषों को पाते हैं चाहे वे

ईसाईमत के अनुयायी हों, चाहे इसलाम मत के प्रवर्तक और उनके अनुयायी हों, चाहे कम्यूनिज्म के प्रवर्तक और उनकी शिष्य परम्परा हो या अनुयायी परम्परा हो। अतः भारत में परिवर्तन का आधार मूलतः राग-द्वेष से रहित आध्यात्मिक, सांस्कृतिक महापुरुष रहे हैं और अहिंसा रही है जबकि पश्चिम में भीषण राग-द्वेष से ग्रसित पुरुष और हिंसा रही है। यह भारत और पश्चिम में मूलभूत अन्तर है।

देश भक्ति ईश भक्ति की क्रमिक सीढ़ी है

जिस प्रकार ईश भक्ति की, देव भक्ति की पुकार है, वैसे ही देश भक्ति की भी पुकार है। हमारे यहाँ देव भक्ति, ईश भक्ति और देश भक्ति में कभी अन्तर नहीं किया गया है। देव भक्ति—देश भक्ति की एक अखण्ड-अविचल अविच्छिन्न परम्परा वेदकाल से आज तक पाते हैं। भारत भू को ही धर्म भूमि, मोक्ष भूमि, देव भूमि माना गया है, जहाँ जन्मने के लिये देव भी तरसते हैं। तीर्थ यात्रा परम्परा द्वारा भी देव दर्शन और देश दर्शन, दोनों साथ-साथ सिद्ध होते हैं। चारों धाम की धार्मिक तीर्थयात्रा के धार्मिक कृत्य से राष्ट्रीय एकता का जो चमत्कार हिन्दू धर्म ने कर दिखाया वह विश्व इतिहास में अद्वितीय है। गंगोत्तरी से गंगाजल की कांवर भरकर यात्री सारे देश की यात्रा करते हुए जब रामेश्वरम् में पहुँचकर उस गंगाजल से भगवान् शिव का अभिषेक करते हैं या रामेश्वरम् से सागर के जल की कांवर लेकर हिमालय में केदारधाम में भगवान् शिव का अभिषेक करते हैं उन्हें अलौकिक आध्यात्मिक सन्तुष्टि और भारत की सांस्कृतिक अखण्डता की अनुभूति होती है।

देश भक्ति ने ही प्राचीनकाल में जब भारत प्रशासनिक दृष्टि से एक नहीं होने पर भी हजारों राजा-रजवाड़ों के बाद भी वृहत्तर भारत को जन्म दिया था। देश भक्ति की पुकार हम महर्षि अगस्त्य, विश्वामित्र, वशिष्ठ, राम में पाते हैं। राम जिन्हें अयोध्या से 14 वर्ष का विछोह प्राप्त हुआ था, उससे एक दिन भी अधिक विछोह सहन नहीं है। उन्होंने ही उत्तर भारत से दक्षिण भारत को जोड़ा। हम देश-भक्ति की पुकार श्रीकृष्ण में पाते हैं, पूर्व भारत और पश्चिम भारत को जोड़ दिया।

हम देश भक्ति की पुकार कुमारिल भट्ट और आद्यशंकराचार्यजी में पाते हैं, आचार्य चाणक्य और चन्द्रगुप्त में पाते हैं, ऋषि पतंजलि और पुष्यमित्र में, स्वामी विद्यारण्यक और हरिहर बुक्का में, गोस्वामी तुलसीदास और राणा प्रताप में, समर्थ स्वामी रामदास और शिवाजी में, प्राणनाथ स्वामी एवं छत्रसाल में, सिख गुरुओं और बन्दा बैरागी में पाते हैं।

देश भक्ति की पुकार महर्षि दयानन्द में पाते हैं, जो कहते हैं, सुराज्य से स्वराज्य कोटिशः अच्छा है। स्वामी विवेकानन्द में पाते हैं, जो कहते हैं पचास

वर्षों के लिये सभी देवी-देवताओं को भूल जाओ, तुम्हारा एकमात्र अराध्यदेव भारत है। ऋषि बंकिम देश के लिये रोते हैं और उसे माँ दुर्गा में तदाकार देखते हैं। ऋषि अरविन्द घोष अपने तीन पागलपन में एक में वे कहते हैं, मैं देश को मृण्मय नहीं चिन्मय और माँ भवानी से उसे तदाकार देखता हूं। वीर सावरकर कहते हैं, हर भारतीय का हिन्दूकरण और हर हिन्दू का सैनिकीकरण हर सैनिक का आधुनिकीकरण करो। मालवीयजी देश के लिये रोते हैं। गांधीजी देश के लिये रोते हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर रोते हैं। क्या मेरी माँ दुर्बल है? जिसने सारे विश्व को सभी दृष्टियों से स्तनपान कराया है, वह कभी दुर्बल नहीं हो सकती। सुभाष बोस कहते हैं—तुम मुझे खून हो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा। खुदीराम बोस कहता है—

एक बार बिदाय दे मां फिरे आसी,
हांसी हांसी पोडबो फांसी देखबे भारतवासी।

विप्लवी बंधुओं का प्रिय गीत था—

मेरा रंग दे वसन्ती चोला,
मेरा रंग दे वसन्ती चोला।
इसी रंग में वीर शिवा ने,
मां का बन्धन खोला।। मेरा....

रामप्रसाद बिस्मिल कहते हैं—

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।।

वीर भगतसिंह अपने छोटे भाई कुलतार सिंह को अपना अन्तिम पत्र लिखते हुए कहता है—

उन्हें यह फिक्र है हरदम,
नया तेज जफा क्या है,
हमें यह शौक है देखें,
सितम की इन्तहा क्या है?
मेरी हवा में रहेगी,
खयाल की बिजली
यह मुश्ते खाक है फानी
रहे या न रहे।

जिस प्रकार ईश भक्ति से प्रेरित होकर सिख गुरुओं ने अपने बलिदान दिये वैसे ही देश के प्रति अनन्य भक्ति ने ही स्वातंत्र्य संग्राम के काल में छाती तानकर

गोलियाँ खाने का दुर्दम्य साहस प्रदान किया था भारतीय सन्तानों को। सब प्रकार के अमानुषिक कष्ट सहने, हँसते-हँसते फांसी के फंदों को चूमने के लिये प्रेरित किया था अनेकानेक नौजवानों को। सालो-साल जेल की यातनाएँ स्व खुशी से भुगतने के लिये प्रोत्साहित किया था देश के असंख्य नर-नारियों को। अच्छी से अच्छी नौकरियों पर ठोकर मारकर स्वातन्त्र्य देवता के चरणों में सर्वस्व लुटाने के लिये आगे बढ़ाया था देश के युवक-युवतियों को। उसी ने हमें विश्व व्यापी साम्राज्य की शक्ति के चुंगल से मुक्त कर स्वतन्त्र कहलाने का गौरव प्रदान किया।

इस प्रकार भावनाओं के द्वारा, त्याग और बलिदान के द्वारा देश की पूजा, देव की पूजा यही भक्तियोग है। हमारी शास्त्र परम्परा कहती है—दो ही व्यक्ति सूर्यमण्डल को भेद सकते हैं, एक तो देश के लिये समरांगण में जो प्राण विसर्जन करते हैं और दूसरे, योग के द्वारा प्राण त्यागते हैं। अतः देव भक्ति और देश भक्ति पृथक्-पृथक् तत्त्व न होकर एक ही तत्त्व है।

इसलिये किसी भी देव भक्त ने, देश व समाज की उपेक्षा नहीं की। चाहे स्वयं भगवान् राम और कृष्ण हों। चाहे आचार्यों में स्वयं आद्य शंकराचार्य हों या रामानुजाचार्य, रामानन्दजी या चैतन्यमहाप्रभु हों। वर्तमान युग में स्वतन्त्रता संग्राम के प्रायः सभी नायक आध्यात्मिक विभूति थे, चाहे आप स्वामी विवेकानन्द, भगिनी निवेदिता, महर्षि दयानन्द या अरविन्द, लोकमान्य तिलक, सुभाषचन्द्र बोस, गांधीजी को लेवें।

शस्त्र से सुरक्षित देश में ही मातृभक्ति, पितृ भक्ति, देश भक्ति, शास्त्र भक्ति, देव भक्ति, ईश भक्ति सम्भव है, अन्यथा आपके सामने ही माँ-बहन-बेटियों के साथ दुराचार होगा, उनके शील का अपहरण सामूहिक रूप से होगा। देव मूर्तियों, देवालयों को खण्ड-विखण्ड, अपमानित किया जायेगा। शास्त्रों व पुस्तकालयों की होली जलेगी। ब्रह्मज्ञानियों का शिरश्छेदन होगा।

अतः शस्त्र से सुरक्षित राष्ट्र के अभाव में न आप माँ-बहनों के शील की रक्षा कर सकते हैं, न देश की, न शास्त्रों की, न महापुरुषों की, न देवालयों की, न तीर्थ की, ना ही पुस्तकालयों की रक्षा कर सकते हैं। न अपने परम्परागत कला-कौशल की, न शिल्प की, न अपने व्यवसाय वाणिज्य-कृषि की, न वंश की, न अपने श्रद्धा बिन्दु, न मान बिन्दु, न शिक्षा, न अपनी भाषा वेश-भूषा, न संस्कृति की, न अपने परिवार की, न अपनी नौकरी की, पेट की, न सिद्धान्त निष्ठा की, न अपने आदर्श की, न अपने प्रेम की, ना ही अपने जीवन की रक्षा कर सकते हैं।

अतः देश भक्ति के अभाव में आप न अपनी न अपने देश की, देव भक्ति, ईश भक्ति, शास्त्र भक्ति, सिद्धान्त भक्ति आदि में से आप किसी को भी सुरक्षित नहीं रख सकते। अतः ईश भक्ति की सुरक्षा के लिये भी देश भक्ति अनिवार्य है।

जो-जो देश अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा नहीं कर सके वे अपनी देव भक्ति, ईश भक्ति की, अपनी सभ्यता, संस्कृति, पूजा पद्धति की रक्षा नहीं कर पाये। धीरे-धीरे उनसे ईश भक्ति, दर्शन, जीवन आदर्श, रीति-रिवाज, उत्सव छीन लिये गए और वे ईसाई-इसलाम जैसे विदेशी, विधर्मी, नृशंस, बर्बर, पैशाचिक प्रवृत्ति में रूपान्तरित होकर नरपिशाचों की श्रेणी में खड़े हो गये।

भक्ति शब्द भज धातु से बना जिसका अर्थ है—सेवा। शब्दकोश में और भी कई अर्थ दिये हैं जो इस प्रकार हैं—प्रेम, पूजा उपासना, श्रद्धा, सम्मान। जिसके प्रति प्रेम होगा, भक्ति होगी उसके प्रति सेवा का भाव भी होगा। अपने से बड़ों के प्रति पूज्य भाव से, श्रद्धा से, अपने समान के प्रति सख्य भाव से, छोटे के प्रति वात्सल्य भाव से सेवा करते हैं। पत्नी, सास-श्वसुर की सेवा पूज्य भाव से पति की सेवा पूज्य एवं सख्य भाव से व पुत्र-पुत्रियों की सेवा वात्सल्य भाव से करती है। ऐसे ही पति पत्नी की, मित्रों की सेवा सख्य भाव से, माता-पिता की सेवा पूज्य भाव से, पुत्र-पुत्रियों की सेवा वात्सल्य भाव से करता है। ऐसे ही भगवान के प्रति प्रेम है, भक्ति है तो उनकी सेवा पूज्य भाव से, श्रद्धा भाव से करते हैं। भगवान का प्रकट लीला काल है, तो उनकी प्रत्यक्ष सेवा करना जैसा कि हम हनुमानजी, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के जीवन में पाते हैं, इन्होंने प्रभु राम की भक्ति सेवा के रूप में की। यही बात हम पाण्डवों में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति पाते हैं। ये सब दुष्ट दलन में, सज्जन शक्ति की रक्षा में एवं ज्ञान की, न्याय की, धर्म की पुनः प्रतिष्ठा में सहायक बनते हैं। भगवान् ने विभूति योग में बताया जहाँ-जहाँ सज्जन शक्ति कार्य कर रही है, वहाँ-वहाँ मेरी ही विभूति कार्य कर रही है। अतः उनका सहयोगी बनना भगवान् का कार्य करना ही है। भगवान् ने ही अपने आपको जीव-जगत के रूप में प्रकट किया है। यह जीव और जगत् भगवान् का ही सगुण-साकार रूप है, भगवान् का विराट रूप है, भगवान् का वैभव है, विलास है। अतः अनासक्त भाव से जीव और जगत की निष्काम सेवा करना। इस प्रकार भगवान् का प्रत्यक्ष लीला काल है, प्रकट काल है, तब भगवान् की सेवा के साथ-साथ जीव-जगत की तथा जहाँ-जहाँ सज्जन शक्ति कार्यरत है उनकी सेवा करना उनका सहयोगी बनना। और जब प्रभु का प्रकट लीला काल नहीं है, तब अपने जीवन का विनियोग धर्म की प्रतिष्ठा, न्याय की प्रतिष्ठा और अधर्म के नाश में तथा ज्ञान, ध्यान, भक्ति से निष्काम सेवा की स्थापना करना, देश में कार्यरत सज्जन शक्तियों का सहयोगी बनना, अपने जीवन को शुद्ध-निष्कलंक रखना आदि।

किन्तु आजकल भक्ति को मात्र शाब्दिक स्तुतिगान के अर्थ में लिया जाता है जिसमें सेवा का भाव नहीं है। ऐसे मौखिक स्तुतिगान से भज (सेवा) बिल्कुल भिन्न है। यदि एक पुत्र पिता की भरपूर सेवा करे और दूसरा मात्र शाब्दिक स्तुतिगान

करता रहे तो निश्चय ही सेवा करने वाले की भक्ति सार्थक होगी और मौखिक स्तुतिगान मात्र करके पिता की उपेक्षा करने वाला व्यक्ति घृणा एवं तिरस्कार का पात्र होगा।

नाम जप की अपार महिमा है। उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। लोग विस्मय करते हैं कि रामायण काल में राम का नाम लिखने मात्र से पत्थर कैसे तैरे होंगे! पर पत्थर तैरने की बात तो दूर हमने राम-नाम के प्रताप से इंसान तरते देखे हैं। एक दस्यु का निन्दनीय जीवन बिताने वाला रत्नाकर डाकू नारद मुनि से पूछता है, महाराज! मैंने अनेकों का धन और अनेकों का प्राण हरण किया है, अनेक ब्रह्महत्या का पाप मुझे लगा है। क्या मेरे उद्धार का भी कोई मार्ग है?

नारद ने कहा—हाँ है। राम नाम सकल पापों का नाश करने वाला है। उसी राम नाम के प्रताप से ही पापपंक में लिप्त रत्नाकर डाकू महर्षि वाल्मीकि बनकर लोक में पूजित हुए। अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रेम में अन्धे हुए एक कामांध युवक को किसी ने अगर जनगण-पूजित गोस्वामी तुलसीदास बनाया तो वह पवित्र राम-नाम ही था। आधुनिक काल में एक आचार भ्रष्ट वैश्य बालक गाँधी यदि महात्मा बनकर विश्वविख्यात हुआ तो राम नाम के बल से ही। स्वयं उसी लंगोटी वाले महात्मा की स्वीकारोक्ति है, राम नाम में वह शक्ति है जो बड़ी से बड़ी सेना में नहीं है। भयंकर अस्त्र-शस्त्रों में नहीं है। इसी राम-नाम के प्रताप से उन महात्मा ने अपने मरते हुए बच्चे रामदास को मृत्यु के मुख में जाने से बचा लिया। अपने आधार पर राम-नाम का प्रभाव बयान करते हुए वे सत्यसेवी संत कहते हैं—यदि मेरे पास राम नाम का आश्रय न होता तो सम्भवतः मैं अपने जीवन में दो महिलाओं को अपनी बहन कहने योग्य न रहता।

यह सत्य है कि राम नाम ने अनेकानेक इंसान तारे हैं। जो सबसे अधिक चरित्र भ्रष्ट थे, उन्हें सर्वथा पूज्य पुरुष बनाया है। यह राम नाम का अद्भुत प्रताप है। इस महान् राम नाम के जादू ने हमें हजारों वर्षों तक जीवन एवं जागृति शक्ति एवं शील कर्म तथा धर्म का आलोक पथ दिखलाया है।

राम नाम के प्रभाव को समझने के लिये महर्षि वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास एवं महात्मा गांधी के प्रत्यक्ष जीवन की साक्षी बहुत पर्याप्त है।

अतः नाम जप का महत्त्व अवश्य है। पर नाम जप के साथ-साथ उनके गुण, कर्म, चरित्र और आदर्श भी साथ-साथ स्मरण में आने चाहिये। यह बात हम राम नाम के प्रताप से रत्नाकर डाकू से महर्षि वाल्मीकि बनने वाले में पाते हैं। राम नाम के साथ-साथ राम के गुण, कर्म, स्वभाव, चरित्र और आदर्श परिलक्षित होता है और उसके लिये शेष सारा जीवन समर्पित होता है।

तुलसीदासजी ने छह मुसलिम शासकों का शासन देखा और उनके अत्याचार भी। अकबर ने साम-दाम-दण्ड भेद से अधिकांश राजपूत वीरों को फुसला रखा था—वे अपनी बहन-बेटियों को मुगल शासकों के हरम में भेज रहे थे और दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो कहने में अपने जीवन की सार्थकता समझ रहे थे। ऐसी विषम परिस्थिति में हिन्दू समाज में जागृति लाने एवं राम राज्य का आदर्श प्रस्तुत करने के लिये न केवल रामायण की रचना की वरन् उन्होंने स्थान-स्थान पर अखाड़े स्थापित किये। जब हल्दीघाटी के युद्ध में मानसिंह ने राणा प्रताप द्वारा अपमानित होकर एक बड़ी सेना लेकर राणा प्रताप के सर्वनाश की प्रतिज्ञा की तो उसे तुलसीदास ने अपने पास बुलाकर उससे विरत किया। अकबर की राजनीति से उपराम कराकर प्रायश्चित्त स्वरूप तीर्थयात्रा करने और हरकी पैड़ी में अपनी छतरी बनाने का आदेश दिया जो आज भी वहाँ विद्यमान है।

अब देखें भक्तों में शिरोमणि हनुमानजी हैं। वे केवल राम नाम तक सीमित नहीं है। वे राम कार्य करने और करवाने दोनों में निपुण हैं। वे सुग्रीव का भय दूरकर प्रभु राम से जोड़ते हैं और उसे राम कार्य में नियुक्त करते हैं। विभीषण के महल में राम-नाम लिखा है, स्वयं उनके मुख से राम नाम का उच्चारण सुनकर वे विभीषण से परिचय करते हैं फिर विभीषण को प्रबोधित करते हैं। स्वयं राम संकट में हैं, उनका आदर्श संकट में है अतः केवल राम नाम कहने से, राम नाम की चादर ओढ़ लेने से कार्य पूरा नहीं होता। राम-नाम के साथ उनके गुण और कार्य, उनकी सेवा का भी योग होना चाहिये। तभी राम नाम लेना सार्थक होगा। विभीषण से उन्हें सीता माता का पता चलता है, विभीषण के कारण ही लंका दहन में समर्थ होते हैं। विभीषण के सहयोग से ही प्रभु राम रावण वध में समर्थ होते हैं।

रामायण में सुतीक्ष्ण का भी नाम आता है जो केवल राम-नाम में ही रत रहे, राम कार्य में अपना विनियोग नहीं किया। अतः वे आदर्श चरित्र के रूप में उभरकर नहीं आते और न रामकथा में उनकी एकाध स्थान छोड़कर कहीं कोई चर्चा ही है। समर्थ स्वामी रामदासजी राम के बड़े भक्त हुए हैं। उन्होंने अपना नाम नारायण से रामदास रख लिया। वे भी राम नाम तक सीमित नहीं हैं। समर्थ रामदासजी ने भी ग्राम-ग्राम में अखाड़े स्थापित किये। पूरे भारत में सात सौ अखाड़े स्थापित कर एक सशक्त संगठन तन्त्र खड़ा किया। 27 सन्त इस कार्य में लगे। अखाड़े के साथ-साथ रामकथा भी गाँव-गाँव पहुँची। ये अखाड़े ही शिवाजी की सैन्य शक्ति का आधार बने। इन मन्दिरों में भगवान् राम तथा हनुमानजी की मूर्तियाँ स्थापित की जाती थी तथा प्रतिदिन वहाँ नवयुवक एकत्र होकर अखाड़े में मलखम्भ, कुश्ती, व्यायाम आदि करते थे। जब शिवाजी महाराज आगरा से औरंगजेब की कैद से निकल भागे तब इन्हीं मठ-मन्दिरों के सहयोग से वे सुरक्षित अपने गृह क्षेत्र तक पहुँच सके थे।

भगवत् नाम जप के साथ-साथ भगवत् कार्य की प्रेरणा गुरु गोविन्दसिंह ने बंदा बैरागी को दी थी जब उनके चारों वीर पुत्र एवं अनेक सैनिक धर्म कार्य में संघर्ष करते-करते बलिदान हो गये। तब उन्होंने दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान किया ताकि शिवाजी से मिलकर, हिन्दू राज्य, धर्म राज्य की स्थापना कर सकें। रास्ते में बंदा बैरागी से भेंट होती है। गुरु गोविन्दसिंह दक्षिण में माला जपने वाले बंदा बैरागी को कर्तव्य बोध देते हुए कहते हैं—

धन्य जीबो तिंह को जो मुखते हरि चित्त में युद्ध विचारे।

अर्थात् जीवन उसी का धन्य है जो मुख से हरि का स्मरण करते हुए, चित्त में संसार के कर्तव्य संग्राम के लिये सदा प्रस्तुत रहे। गुरु गोविन्दसिंहजी की प्रेरणा से बंदा बैरागी ने कैसा दुर्धर्ष संघर्ष किया मुगल सल्तनत के विरुद्ध यह हम सब जानते हैं।

साक्षात् प्रेम और करुणा के अवतार चैतन्य महाप्रभु ने भी नगर संकीर्तन में बाधक काजी जगाई-माधो के विरुद्ध शक्ति प्रदर्शन किया रात्रि के समय जलती मशाल लेकर। जुलूस में मार-काजी काट काजी के नारे लगवाये और उसका घेराव किया। सुदर्शन चक्र का आह्वान किया तब जाकर काजी की बुद्धि ठिकाने पर आयी और शरणापन्न हुआ।

स्पष्ट है—रामायण, गीता और हमारे आचार्य व महापुरुष—सब ही अपने-अपने स्वधर्म का, कर्तव्य कर्म का पालन करते हुए ही भगवद् नाम स्मरण, भजन करने का उपदेश देते हैं। ऐसा ही स्वयं का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

केवल भजन, कीर्तन, गान, देवता को अक्षत चढ़ाना या करताल बजाना अथवा नाम रट लगाने मात्र को भक्ति नहीं माना जा सकता। ये सब भक्ति के सहायक साधन हैं, भक्ति के पर्याय नहीं हैं। भगवान का नाम जपते हुए हमारा भगवान् की सन्तति नर-नारायण की सेवा करना ही वास्तविक भक्ति है। जिसका यश गाया जाए उसकी सेवा करना भी स्वाभाविक है। यही बात भक्तों के जीवन में पाते हैं। शबरी की भक्ति सेवा के रूप में थी। केवट की भक्ति राम के सेवक के रूप में थी। गिद्धराज की भक्ति और हनुमान, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, विभीषण, वनवासी बंदर-भालू, जामवंत, सुग्रीव आदि सभी की भक्ति सेवा मूलक, कर्म मूलक थी।

पर पता नहीं कब से कहाँ से यह बात हमारे मन में विशेषकर मध्ययुग में बैठ गयी कि भगवान् ही सर्व समर्थ हैं, हम तो अल्पज्ञ व अल्प शक्तिमान हैं। हम भला क्या कर सकते हैं? हम तो बस भगवान् का नाम कीर्तन ही कर सकते हैं। कोई दुष्टता कर रहा है तो उसको दण्डित करने का काम भगवान् का है। उसका जब पाप

का घड़ा भरेगा तो भगवान् स्वयं अवतार लेकर उसे दण्डित करेंगे। इस प्रकार हम छोटे अपराधी को अपनी निष्क्रियता और उपेक्षा से बड़ा अपराधी, डॉन बना देते हैं, नासूर बना देते हैं। पर हम अच्छी तरह जानते हैं कि जब भगवान् राम व कृष्ण स्वयं अवतार लेकर आये तो उन्होंने समाज की सज्जन शक्ति को संगठित कर उनके सहारे ही दुष्टों का दलन किया। प्रभु राम ने वनवासी बंधु और बन्दर-भालुओं को संघबद्ध कर रावण का प्रतिकार कर उसका समूल नाश कर देश और धरती को उसके त्रास से मुक्त किया। यही कार्य भगवान् श्रीकृष्ण ने यादवों को संगठित कर दुष्टों का दलन किया, पाण्डवों को संगठित कर कौरवों का नाश कर पुनः धर्म राज्य की स्थापना की। यही बात हम देवों के साथ पाते हैं, देव शक्ति जब माँ दुर्गा के रूप में संघबद्ध होती है, तभी असुरों का संहार करने में समर्थ होती है।

यही बात हम महापुरुषों और आचार्यों में पाते हैं, उन्होंने भी समाज को संघबद्ध कर स्वधर्म पालन द्वारा देश व समाज की रक्षा की। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को आगे कर सिकन्दर एवं सेल्यूकस को निरस्त कर ग्रीक आक्रान्ताओं से देश की रक्षा की। ऋषि पतंजलि ध्यान-धारण करते ही नहीं बैठे रहे विदेशी आक्रान्ताओं को देश से निकाल बाहर करने वाले सेनापति पुष्यमित्र का सहयोग किया, मार्ग दर्शन किया। उसके राजपुरोहित बने। आद्य शंकराचार्य भगवान् का गुणगान करते हुए बैठे नहीं रहे वरन् विकृति को प्राप्त बौद्धों को निरस्त कर वैदिक शासन को पुनः स्थापित किया। विद्यारण्यक स्वामी ने हरिहर और बुक्का को आगे करके हिन्दू समाज को ऐक्यबद्ध कर विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की। समर्थ स्वामी रामदासजी ने शिवाजी को आगे कर हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की। प्राणनाथ स्वामी ने छत्रसाल को आगे कर बुन्देलखण्ड की स्थापना की। इसी तरह रामानुजाचार्य, रामानन्द, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य केवल भगवत् गुणगान करते नहीं बैठे रहे वरन् समाज को ऐक्यबद्ध कर मुसलिम आक्रान्ताओं से देश की रक्षा की।

हाँ, यह ठीक है कि हम सब सेनापति का दायित्व नहीं निभा सकते पर एक सैनिक की भूमिका तो निभा ही सकते हैं। गिलहरी से तो प्रेरणा ले ही सकते हैं जो अपने सामर्थ्य के अनुसार राम-कार्य भगवद् कार्य में सहयोग देती है और भगवान् का आशीर्वाद प्राप्त करती है।

इस प्रकार भक्ति का अर्थ नाम जप, नाम स्मरण भजन-कीर्तन ही नहीं उसके साथ सेवा का योग होना चाहिये। सतत स्मरण के साथ कर्तव्य कर्म के पालन का मेल बिठा देने से निम्नलिखित लाभ हैं—

स्मरण और सेवा साथ-साथ चलेंगे। न तो नारायण का स्मरण छूटेगा और न नारायण की सेवा।

अपनी मुक्ति और जगत् का भला, दोनों कार्य पूरे हो जायेंगे।

ब्रह्म तेज एवं क्षात्र तेज, शक्ति व शील का, बल और बुद्धि का, आदर्श और व्यवहार का, परमार्थ और यथार्थ का, कर्म एवं धर्म का, यज्ञ एवं युद्ध का, दीन-दुनिया, इहलोक-परलोक का, जगत् एवं जगतपति, दोनों का समन्वय हो जायेगा।

बिना प्रभु स्मरण के युद्ध अत्याचार बन जायेगा। बिना शील के शक्ति आततायी हो जायेगी। बिना शक्ति के शील दुर्बल हो जाता है। बिना कर्तव्य पालन के उपासना जीवन को एकांगी एवं असफल बना देती है। इसलिए इसे निरन्तर स्मरण करते हुए कर्तव्य कर्म करते रहना चाहिए।

जब प्रभु का स्मरण करते हुए कर्तव्य करेंगे तो कर्तव्य पथ से विचलित नहीं होंगे। तब हम प्रभु के दिव्य न्याय के यंत्र बन जायेंगे। प्रभु की इच्छानुसार कर्म करेंगे तब हमारे कर्म में सर्वशक्तिमान प्रभु की अलौकिक शक्ति भी आ जायेगी। जीवन कर्तव्य पालन से विश्व कल्याण में सहायक होगा और प्रभु स्मरण करते करते शरीर छूट जायेगा तो मोक्ष प्राप्त होगा। यह गीता का सबसे गूढ़ उपदेश माना जाता है। यद्यपि गीता में भगवान् ने कर्मयोग भक्तियोग और ज्ञानयोग की चर्चा की है। पर गीता में भगवान् ने दो प्रकार की निष्ठा का वर्णन किया है। सांख्य निष्ठा अर्थात् ज्ञानयोग निष्ठा और योग निष्ठा अर्थात् कर्मयोग निष्ठा। उन्होंने भक्ति की निष्ठा की चर्चा नहीं की क्योंकि भक्ति मूलतः सेवा कर्म होने के कारण कर्मयोग निष्ठा के अन्तर्गत आ जाती है। मातृ-पितृ भक्ति, गुरु भक्ति, समाज भक्ति, देश भक्ति, सिद्धान्त भक्ति आदि ईश्वर भक्ति की ही क्रमिक सीढ़ियाँ हैं।

भारतीय संस्कृति की अजेयता का रहस्य

विश्व की अन्य प्राचीन संस्कृतियां छोटे-छोटे आघातों से सदा के लिए विलुप्त हो गईं क्योंकि भौतिकता पर आधारित होने से नश्वर सिद्ध हुईं। पर भारतीय संस्कृति आत्मा की अमरता पर आधारित होने से अविनश्वर सिद्ध हुई है, छोटे-बड़े सभी आघातों को झेलकर अविचल खड़ी है।

भौतिकता में दो ही जीवनमूल्य यथा अर्थ और काम का ही समावेश होता है। इसमें महत् लक्ष्य के लिए कोई स्थान शेष नहीं। यह मनुष्य को भोगी-विलासी, आलसी रोगी विनाशी बना देती है। अपने अस्तित्व, आदर्श, अस्मिता, स्वाभिमान, स्वतंत्रता की रक्षा हेतु प्राणोत्सर्ग की प्रेरणा नहीं दे पाती है। यही कारण कि रोम, मिस्र, यूनान आदि सभ्यतायें छोटे-छोटे विदेशी आक्रमणों से सदा-सदा के लिए मिट गयी। पर भारत ने भौतिकता को अस्वीकारा नहीं और आत्मा को

प्रमुख माना। भौतिकता के आधार में परमात्मा को, आत्मा को रखा। इसलिए चार जीवनमूल्य यथा, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को स्वीकारा। भौतिकता हमारे यहां सर्वस्व, प्रमुख कभी नहीं रही। प्रमुखता आत्मा की रही जो सदा अजर अमर-अविनाशी है। इसलिए जब भी अपने अस्तित्व, आदर्श, अस्मिता, स्वतंत्रता, स्वाभिमान, स्वायत्तता पर संकट आया हम सहर्ष प्राणोत्सर्ग करते रहे हैं। फलतः हम आज तक चिरंजीवी हैं और आगे भी रहेंगे।

दूसरा कारण, विश्व के अन्य सभी देशों में राज्य सर्वोपरि एवं सर्वस्व रहे हैं। वहां जनता की जीवन से मृत्युपर्यन्त तक की सारी व्यवस्था राज्य करता था और राज्य के पराधीन होते ही विजेताओं की जीवन प्रणाली को स्वीकार कर लिया जाता था क्योंकि वहां राज्य केन्द्र में था।

पर भारत में राज्य कभी केन्द्र में नहीं था। राष्ट्र जीवन के संचालन की अनेक संस्थाओं में वह एक संस्थाविशेष थी। भारत में परिवार एक संस्था है, विवाह एक संस्था है, ग्राम पंचायत एक संस्था है, गुरुकुल एक संस्था, आर्थिक संघ एक संस्था है। वैसे ही राज्य भी एक संस्था मात्र थी। जिसका काम राज्य की आन्तरिक और बाह्य सुरक्षा, राज्य में कानून और व्यवस्था Law and Order बनाए रखना, इतना ही दायित्व राज्य का था। कम से कम शासन यह भारत का आदर्श रहा है। इस प्रकार भारत बहु-केन्द्रिक राष्ट्र है।

इसलिए हमारे राज्य जब पराधीन हुए तब भी हमारी परिवार व्यवस्था, आर्थिक संघ, गुरुकुल, आश्रम व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था, जाति व्यवस्था— अक्षुण्ण रहे। फलतः राज्य भले ही पराधीन हुआ हो, राष्ट्र जीवन अखण्ड चलता रहा। और कुछ समय पश्चात् राज्य की पराधीनता को भी उखाड़ कर फेंक दिया।

महापुरुषों की अखण्ड परम्परा

हमारी संस्कृति के चिरंजीवी होने का रहस्य—

यूनानो मिस्र रोमां सब मिट गये जहाँ से,
बाकी है अब तलक भी, नामों निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन, दौरें जमां हमारा।

—इकबाल

(जब वह राष्ट्रीयधारा में था तब का महत्त्वपूर्ण कथन है)

युग पर युग बीत गये, युग पर युग बीतते जा रहे हैं और युग पर युग बीत जायेंगे तब भी हमारी संस्कृति अजर-अमर बनकर खड़ी है, दुर्भाग्य की सबसे अधिक ठोकरें खाकर भी चिरंजीवी बनी हुई है। जबकि अन्य संस्कृतियाँ छोटे-मोटे

आघातों से सदा के लिये विलुप्त हो गयी हैं। आज उनको जानना है तो इतिहास के पृष्ठों में और अजायबघरों में जाना होगा।

तो भारतीय संस्कृति में ऐसी कौन-सी विशेषता है जिसके कारण आज भी चिरंजीवी बनी हुई है। सारे विश्व के विद्वान् इस पर आश्चर्यचकित हैं।

प्रत्येक युग का अपना एक स्वरूप होता है, उस युग की अपनी चुनौतियाँ होती हैं। उस युग व उसकी चुनौतियों को समझकर जो उसका उत्तर देने में समर्थ होती है वही संस्कृति चिरंजीवी होती है। वही समाज चिरंजीवी होता है।

अपने देश में हर युग में ऐसे युगपुरुष, अवतारी पुरुष, महापुरुषों का पदार्पण होता आया है, निर्माण होता आया है जिन्होंने युग की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए इस देश का नेतृत्व किया है। भारतीय जातीय जीवन के प्रत्येक युग में ऐसे-ऐसे आध्यात्मिक दिग्गज हुए जिन्होंने न केवल देश को वरन् सारे विश्व को प्रभावित किया है।

सारे ऋषि, अवतार उत्तर भारत ने दिये। पूर्व-मध्यकाल में भारत पर संकट आया तब उत्तर भारत का उपकार चुकाने के लिये दक्षिण भारत ने आचार्य पैदा किये—शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, विष्णु स्वामी—सभी आचार्य दक्षिण भारत ने दिये।

मध्यकाल में संस्कृति पर जब पुनः संकट आया तो मध्य भारत, महाराष्ट्र, संयुक्तप्रांत आदि क्षेत्र ने सन्त-महात्मा पैदा किए—ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, गुरु एकनाथ, समर्थ गुरु रामदास, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा।

आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति पर भीषणतम प्रहार पश्चिम से हुआ। अतः इस बार भारत का पूर्वांचल संस्कृति-रक्षण के पुनीत कर्तव्य के लिये आगे बढ़ा। आधुनिक नवोत्थान का अग्रदूत बंगाल बना।

पुराणों में बंगदेशवास को हीन माना है। वहाँ के वासियों को धर्म दृष्टि से कुछ घटिया स्थान दिया था। वहाँ के मांस भक्षण तथा कर्मकाण्ड की उपेक्षा के कारण भी उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था। उन सारे कलंकों को एकबारगी धोते हुए बंगाल ने आनन्दावतार चैतन्य महाप्रभु पैदा किया, धर्म के जीते-जागते स्वरूप रामकृष्ण परमहंस तथा विश्व विजेता स्वामी विवेकानन्द पैदा किए, वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, राजा राममोहन राय तथा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर पैदा किये। महापुरुष सारे भारत में पैदा हुए।

भक्ति आन्दोलन ने भारत देश की रक्षा की

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में मुस्लिम काल एक भीषण संकट बनकर आया था। वैसे तो भारत में पहले ही कई आक्रमणकारी आ चुके थे, किन्तु

वे भारतीय समाज में घुल-मिल गए थे। मुस्लिम आक्रमण के साथ भारत की सीमाओं के भीतर पहली बार ऐसे लोग आकर बसने लगे थे, जो आचार, विचार, धार्मिक आस्था तथा सांस्कृतिक आदर्श—सभी में भारतीय समाज से भिन्न थे तथा जो न अपनी भिन्नता को त्यागने के लिए राजी थे और न ही भारतीयों को स्वयं अपनी भिन्नता को रखते हुए अपने आचार धर्म पर चलने की छूट तक देने के लिए तैयार थे, वरन् वे तो इस धरती का खाते-पीते, किसी अन्य देश तथा धर्म में आस्था रखते हुए इस धरती के बेटों को भी तलवार की नोक से अपने धर्म और संस्कृति का गुलाम बनाने के लिए कटिबद्ध थे।

हिन्दू समाज का उच्च वर्ग स्वधर्म की रक्षा भावना के कारण संकीर्णता और सामाजिक रूढ़ियों से लगातार घिरता हुआ संकुचित और कठोर होता जा रहा था। निम्न वर्गों के हिन्दू लोग मुसलमानों द्वारा तो कष्ट पा ही रहे थे साथ ही उच्च वर्णीय हिन्दू भी उन्हें हेय दृष्टि से देखते थे। इस प्रकार कभी-कभी उन्हें लगता था कि इसलाम समता का संदेश दे रहा है। सामन्तवादी व्यवस्था के कारण भी पिछड़े वर्गों की छटपटाहट बढ़ती जा रही थी।

भारत में ऐसा विकट युग प्रारम्भ हुआ जबकि लगने लगा कि हिन्दुओं का आश्रयदाता अब कोई नहीं है। हिन्दू राजा अधिकांशतः पराजित या मुसलमानों के शरणागत हो चुके थे। हिन्दुओं की बड़ी सैन्य मुस्लिम सत्ता के विस्तार के लिये ही लगती थी। हिन्दुओं के विशाल मन्दिर भूमिसात कर दिये गये थे और हिन्दू बने रहने के लिये वे जजिया टैक्स देकर अपमानित और तिरस्कृत जीवन जीने के लिये मजबूर थे। इस विचित्र कालखण्ड में हिन्दू कहां जाएं यह यक्ष प्रश्न सभी के सामने खड़ा था। इसलाम विजेता और शरणदाता के रूप में इन सभी को अपने अन्दर मिला लेने को हाथ फैलाकर स्वागत करने को तैयार खड़ा था।

यही वह समय था, जब भारत की आध्यात्मिक मनीषा 'भक्तिभाव' के रूप में सम्पूर्ण देश में प्रकट होने लगी। पराजित और किंकर्तव्यविमूढ हिन्दू समाज के परम आश्रयदाता के रूप में स्थान-स्थान पर भक्त और संत खड़े होने लगे। इन्होंने हिन्दुओं की निराशा और हताशा को समझा और भक्ति का मंच प्रदान किया। उनके आत्मविश्वास को पुनः जगाया। उनमें आ गई विकृतियों, कुरीतियों और रूढ़ियों के विरुद्ध भी संघर्ष करने से चूके नहीं। मौका पड़ते ही विदेशी सत्ता के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष का कोई भी मौका उन्होंने नहीं छोड़ा और हिन्दू समाज को राज दरबार की भक्ति के बजाय ईश्वर भक्ति की ओर बड़ी कुशलता से मोड़ दिया। उस कठिन काल में से हिन्दू समाज को सुरक्षित निकालकर लाने का श्रेय समाज के अन्दर व्याप्त भक्तिभाव को ही जाता है।

सभी आध्यात्मिक महापुरुषों की यह धारणा पक्की और स्थायी थी कि प्रभुस्मरण ही प्रभु से मिलने का एकमात्र सरल सहज मार्ग है। जातिगत भेदभाव तथा वर्ण व्यवस्था का इसमें कोई महत्त्व नहीं रहा। पूजा-कर्मकाण्ड आदि के बाह्याडम्बर तथा मन्त्र, श्लोक आदि की जटिलताओं एवं लौकिक शिक्षा आदि की इसमें कोई आवश्यकता नहीं थी, भक्तिभाव के साथ हरिस्मरण सभी के लिये सुगमता से ग्राह्य था, संतों और भक्तों के प्रेमपूर्ण व्यवहार आदर्श जीवन तथा उत्कट भक्ति के बल पर जातिगत, वर्णगत सम्प्रदायगत और ऊंच-नीच, छूत-अछूत आदि विभेदों की दीवार को चूर-चूर कर दिया। इनकी हृदयस्पर्शी वाणी का भक्ति प्रवाह देश-काल परिस्थिति के अनुसार भक्ति के नये-नये आयामों के साथ समाज के सम्मुख रखा जिससे इनके लाखों अनुयायी सभी प्रकार के भेदभावों को भुलाकर मुस्लिम शासकों के विरोध और अत्याचारों के बावजूद निर्धारित लक्ष्य की ओर निरंतर गतिमान रहे।

इस प्रकार हम देखते हैं जब दुनिया में इसलाम की आंधी चली तो उसने स्पेन से लेकर इंडोनेशिया तक को अपने में लील लिया। वहां की पूर्व सभ्यता-संस्कृति को नष्ट कर अपने इसलाम को थोप दिया। वहां भारत में इस दृष्टि से कुछ भी सफलता उन्हें नहीं मिली।

दीने मुहम्मदी का बेबाक बेड़ा,
न जेजों में ठैरा न कुलजम में अटका।
किये जिसने तै चलके सातों समुन्दर,
वह डूबा दहाने में गंगा के आखिर।।

अर्थात् अरब देश का वह निडर बेड़ा जिसकी ध्वजा विश्वभर में फहरा चुकी थी, किसी प्रकार का भय जिसका मार्ग न रोक सका था, जो अरब और ब्लूचीस्तान के मध्य वाली खाड़ी में भी नहीं रुका था और लाल सागर में भी नहीं झिझका था, जिसने सातों समुद्र ढाल के नीचे कर लिए थे, वह गंगा के दहाने में आकर डूब गया।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि इसलाम की अखिल भारतीय सत्ता के केन्द्र यदि दिल्ली, आगरा और फतेहपुर सीकरी आदि थे, तो वहीं काशी, मथुरा, वृन्दावन, प्रयाग, पण्ढरपुर तथा कांचीपुरम आदि ने भी उसी दृढ़ता के साथ भक्ति-जागरण एवं अध्यात्म साधना के दायित्व को संभाले रखा। इस प्रकार हरिभक्ति के द्वारा देश की रक्षा हुई। और हरिभक्त सभी वर्णों, जाति और वर्गों से आये—श्री रामानुजाचार्य, श्री राघवाचार्य, संत ज्ञानेश्वर, संत एकनाथ, श्री गुरुनानक देव, मीराबाई, समर्थ रामदास आदि उच्च कुल से आये तो दक्षिण के बारह आलवार वैष्णव भक्तों में अनेक तथाकथित निम्न वर्ग के थे। महाराष्ट्र के

संतों में गोरा और संत रांका (कुम्हार), संत नामदेव (दर्जी), संत सांवता (माली) संत नरहरि (सुनार), संत जोगा (तेली), संत श्यामा (चूड़ीवाला), संत बंका और संत चौखा (महार) तथा संत कान्होपात्रा (वेश्या पुत्री) थे, कश्मीर का संत अल्ला मेहतर जाति की थी अथवा ब्राह्मण पता ही नहीं चला। संत कबीर (जुलाहा), संत सेना (नाई), संत धन्ना (जाट), संत रैदास (चर्मकार), संत सिंगाजी (ग्वाला), संत दादू (धुनिया), संत वषना (मौरासी) संत बुल्ला साहब (कुर्मी), संत दीन (दरवेश), संत रज्जब (लौहार), संत दरिया (मारवाड़वाले धुनिया), संत दरिया साहब (दर्जी), संत लालगिरि (चर्मकार), गुजरात के संत अरवा (सुनार) थे। आन्ध्र के मोल्ला (कुम्हारिन) तथा वीर ब्रह्मेन्द्र स्वामी (बढ़ई) थे, आदि। इन सबने सामाजिक विषमता के भेदभाव को भोगा, कष्ट अपमान स्वयं अपने जीवन में अनुभव किया। इन सबने डंके की चोट पर कहा था—सारी मानव जाति एक है। सब ईश्वर की संतान हैं। सामाजिक भेदभाव मनुष्यकृत और कृत्रिम है। सभी ईश्वर भक्ति और उसकी कृपा पाने के अधिकारी हैं।

इस प्रकार विकट मुस्लिम काल में संतों द्वारा प्रतिपादित ईश्वर की सहज एवं दृढ़ भक्ति ने हिन्दू समाज की रक्षा की।

भारतीय संस्कृति की सफलता का रहस्य

मानवीय चेतना के तीन पहलू हैं—Knowing, Feeling, Willing ज्ञान-शक्ति, इच्छाशक्ति और, क्रियाशक्ति। ज्ञानात्मक, रागात्मक व संकल्पात्मक। इसके सम्पादन के लिए तीन अंग या अवयव हैं—Hand, Heart, Head तीनों में यथायोग्य समन्वय होना चाहिए। बिना बल के (Muscle के) ज्ञान और भक्ति की रक्षा नहीं कर सकेंगे। आपके सामने आपकी मां-बहन की इज्जत लूट लेंगे। आपके ग्रंथों की होली जला देंगे। ब्रह्मज्ञानी गुरुओं को फांसी पर लटका देंगे। अतः हमारे आदर्श चाहे जितने महान् क्यों न हों, जब तक उसके पीछे शक्ति न खड़ी हो, संसार उसको न सुनता है और न उसे सम्मान देता है।

दो समान बलशाली आपस में नहीं टकराते हैं। वे परस्पर में गुर्राकर रह जाते हैं। पर किसी का दुर्बल पड़ना ही दूसरे को क्रोध का अवसर, आक्रमण का अवसर प्रदान करता है। यह अवसर न दिया जाए इसलिए भी बल की उपासना, शक्ति की उपासना आवश्यक है। क्योंकि आसुरी प्रकृति वाले शक्ति की ही भाषा समझते हैं।

शक्ति के साथ-साथ संघबल भी आवश्यक है। व्यक्ति रूप से कितने भी शक्तिशाली हो, संघबल आवश्यक है। **संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।** श्रुति माता की आज्ञा है हम सब एक साथ चले, एक साथ बोले एक मन

वाले होवें। 'संघे शक्ति कलियुगे' भागवत का वचन है और कलियुग का धर्म है। अतः अपने-अपने घरों में हम व्यक्तिगत उपासना करते हैं पर मन्दिरों में सामूहिक उपासना होती थी। इसलिए आप दक्षिण भारत में जायेंगे तो विशाल-विशाल मन्दिर मिलेंगे जो संघबल (संगठन) का केन्द्र था। उत्तर भारत में तो इस्लामिक आक्रमण के कारण बड़े-बड़े मन्दिर टूटे गये, तब सनातन हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए छोटे-छोटे मन्दिर बने। दक्षिण भारत इस्लामिक आक्रमण से बचा रहा, अतः वहां अभी भी विशाल मन्दिर सुरक्षित है जिन्हें राजाओं की सात-सात पीढ़ियों ने मिलकर निर्माण करवाया था। हमारा कुम्भ मेला, उत्सव आदि संघबल के आधार है। तभी तो लोकमान्य तिलकजी ने गणेश उत्सव, शिवाजी उत्सव महाराष्ट्र में प्रारम्भ किया था। अतः शक्ति के साथ-साथ संघबल भी अनिवार्य है। इसके बिना हम अपने अस्तित्व एवं आदर्श की न रक्षा कर सकते है और न ही प्रसार।

फिर सृष्टि में प्रारम्भ से ही दैवी और आसुरी दो प्रकार के प्राणियों की सृष्टि रही है, 'द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।' दैवी प्रकृति के लोगों पर ही प्रेम और विवेक का शासन कारगर होता है। आसुरी प्रकृति के लोग जिनका मस्तिष्क विकृत, हृदय शुष्क वे तो डण्डे की भाषा ही समझते है, शक्ति की भाषा ही समझते हैं। कर्तव्य का निर्णय एकांगी नहीं होता। प्रतिपक्ष के स्वभाव के अनुरूप होता है। 'शठये शाठये समाचरेत' उपनिषद वचन है। फिर क्षमा उसी भुजंग को शोभती है जिसके पास गरल हो। पर जो दन्तहीन, विषहीन हो उसे नहीं।

अतः हमारे ऋषि कोरे आदर्शवादी नहीं वरन् बड़े ही यथार्थवादी एवं व्यावहारिक थे। जहां वे शान्तिकामी मोक्षकामी थे, वहां वे मन्यु के उपासक भी थे। जहां वेद में शान्ति के सैकड़ों मंत्र गुंजायमान है, वहां (क्रोध) मन्यु के, शत्रु विनाश के, दुष्टदलन के भी सैकड़ों मंत्र हैं। तभी भारतीय देवी-देवता एक हाथ से भक्तों को अभय, शान्ति व ज्ञान दे रहे हैं तो दूसरे हाथ में शस्त्र भी धारण किए हुए हैं दुष्टों के दलन-दमन के लिए। अतः वैदिक संस्कृति में—

ब्रह्म तेज और क्षात्र तेज का समन्वय था।
शील और शक्ति का समन्वय था।
ज्ञान और कर्म का समन्वय था।
आदर्श और व्यवहार में समन्वय था।
सिद्धान्त और क्रियान्वयन में समन्वय था।
वर्ण व्यवस्था थी वर्ग भेद नहीं
जाति व्यवस्था थी जाति भेद नहीं
अर्थशक्ति और श्रमशक्ति का समुचित मान था।
संघ बल का उचित मान था।

देवभक्ति एवं देशभक्ति की एक अखण्ड-अभिन्न वस्तु है,
जो वेद से लेकर विवेकानन्द साहित्य तक में गुंजायमान है।
इस प्रकार प्राचीन भारत ज्ञान की दृष्टि से जगद्गुरु,
वैभव की दृष्टि से सोने की चिड़िया,
सामरिक दृष्टि से अजेय,
संगठन की दृष्टि से अभेद्य था।

लौकिक अभ्युदय पारमार्थिक निःश्रेयस से सम्पन्न था। समाज जीवन अनुशासित एवं लयबद्ध था। तभी अश्वपति घोषणा कर पाते हैं कि 'मेरे राज्य में सभी संस्कारी हैं और श्रेष्ठ जीवनमूल्यों का पालन करने वाले हैं। मेरे राज्य में कोई भी दुराचारी एवं चोर नहीं है।' प्राचीन भारत, वेदोक्त भारत अमर और शाश्वत भारत है। जिसे सारा विश्व सम्मान व आशा की दृष्टि से देखता है।

हजारों-लाखों वर्षों के झंझावातों के उपरान्त भी इस संस्कृति की परिपूर्णता, वैज्ञानिकता, मनोवैज्ञानिकता, सामाजिकता, नैतिकता और आध्यात्मिकता आदि को कोई भी कलम का धनी चुनौती नहीं दे सका और तलवार का धनी नष्ट नहीं कर सका। इसी मृत्युंजयी संस्कृति के कारण ही आज तक भारत अमर बना हुआ है।

हमने किसी पर आघात नहीं किया, पर किसी ने हम पर आघात किया तो उसको बख्शा भी नहीं है। चाहे वह परदेशी हो या स्वदेशी हो। जो असुर प्रकृति के हैं, उन असुरों से व्यापक लोकहित में सहयोग तो लिया पर उन्हें पोषण नहीं दिया, संरक्षण नहीं दिया, उनको सदैव अपने वश में रखा। तभी हम देखते हैं समुद्रमंथन के समय असुरों को अमृतपान से वंचित रखा। छल से राहु-केतु ने अमृत पान कर लिया तो तुरन्त उसका शिरोच्छेद कर दिया।

जब एक परदेशी रावण ने हमारी यज्ञसंस्कृति पर, हमारे नारीसम्मान पर आघात किया तो भगवान् राम ने उसे कुल-कुटुम्ब सहित जड़ से उखाड़कर फेंक दिया। '**इक लख पूत सवा लख नाती, तिस रावण को दीया न बाती।**'

जब इन्द्रपुत्र जयन्त ने असुरता दिखलायी तो भगवान् ने उसे उचित दण्ड दिया। ब्रह्मा, विष्णु, महेश किसी ने भी यहां तक कि उसके पिता इन्द्र ने भी संरक्षण नहीं दिया।

और स्वदेशी अपने ही भाई दुर्योधन ने धर्म पर, मर्यादा पर, अपनी भाभी के सम्मान पर आघात किया तो उसे भी वंश समेत नष्ट कर दिया। अपना ही भाई, अपना ही परिजन जानकर अर्जुन जब डिगने लगा तो भगवान् ने तुरत उसे उपदेश द्वारा मोह दूर कर अपने कर्तव्यपथ पर स्थित कर दिया।

यादव कुल के बल पर भगवान् कृष्ण ने 'विनाशाय च दुष्कृताम्' कार्य को सम्पन्न किया, पर जब वे ही असुर भावापन्न हुए तो भगवान् ने उन्हें भी नहीं बख्शा।

सुन्दरलालजी 'भारत में अंग्रेजी साम्राज्य' पुस्तक में कहते हैं—सिकन्दर के पूर्व भारत पर दो ही आक्रमण हुए। पहले आक्रमण में कोई भी जीवित नहीं बच सका। दूसरे आक्रमण में केवल सात सैनिक ही अपनी हार की गाथा सुनाने अपने देश लौट सके।

सिकन्दर को भारत के द्वार से ही लौटना पड़ा। सिकन्दर के आक्रमण के समय हम देखते हैं कि पूरा ब्राह्मण समाज सिकन्दर के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ और क्षत्रिय राजाओं को अपने कर्तव्यपथ पर आरूढ़ किया। इसलिए सिकन्दर का रोष ब्राह्मणों पर कहर बनकर टूटा और उनका शिरोच्छेद किया। ब्राह्मणों की एक ही सीख थी स्वाभिमान से जीओ और स्वाभिमान से साथ मृत्यु स्वीकारो। यही स्वतंत्रता की कीमत है। उनके प्रबल प्रतिरोध का सामना सिकन्दर नहीं कर पाया और उसे भारत के द्वार से लौटना पड़ा। पुनः सेल्यूकश ने भारत पर आक्रमण का दुःसाहस किया तो चन्द्रगुप्त को अपनी बेटी ब्याहने के साथ चार प्रान्त दहेज में देने पड़े। शक-हूण, कुषाणों को बहुत जल्द ही देश से निष्कासित कर दिया और जो शेष बचे वे हमारे द्वारा पचा लिये गए। उनका अलग से कोई अस्तित्व शेष नहीं बचा।

काल का प्रवाह सदा एक-सा नहीं रहता। उसमें उत्थान-पतन के दौर भी आते हैं जिसमें हम श्रेष्ठ वस्तुओं, परम्पराओं के रहते हुए भी किंकर्तव्यविमूढता, किंवा जड़ता में चले जाते हैं। वेद हमारे आधार हैं जिन पर हमारी संस्कृति टिकी हुई है, उसको लेकर भी जड़ता में चले गए। उससे उबारने के लिए भगवान् बुद्ध आते हैं। व्यर्थ के दार्शनिक वाद-विवादों से हटाकर समाज में व्यापक नैतिक जागरण का आन्दोलन चलाते हैं। और बौद्ध धर्म अपने मातृधर्म वेद से जब तक पोषण पाता रहा तब तक देश एवं विदेश में हिन्दू धर्म एवं बौद्ध धर्म साथ-साथ बढ़ते रहे। पर कालान्तर में काल के प्रवाह से बौद्धों में विकृति आ गयी। वे अपने मातृधर्म वेद से ईर्ष्या करने लगे और वैदिकों को पराजित करने के लिए राष्ट्रद्रोह का आश्रय लेने लगे।

तब उससे उबारने के लिए आद्यशंकराचार्य का आविर्भाव होता है। उन्होंने बुद्ध को तो भगवान् विष्णु का करुणावतार घोषित किया पर बौद्धों को स्वीकारा नहीं। उन्हें पुनः अपने मातृधर्म में ले लिया। विश्व के विद्वानों को आश्चर्य होता है कि अहिंसा के लिए, बौद्ध दर्शन के लिए सबसे उपयुक्त भारतभूमि में ही बौद्ध नाम-शेष हो गए और विश्व में बढ़ते रहे।

साक्षात् प्रेम और करुणा के अवतार चैतन्य महाप्रभु को काजी के फरमान 'नगर संकीर्तन निषिद्ध है', के विरुद्ध रात्रि में जलती मशाल लेकर 'मार काजी,

काट काजी' के उद्घोष के साथ उसका घेराव करना पड़ा। जगाई-मधाई के विरुद्ध सुदर्शन चक्र का आह्वान करना पड़ा। तब वे क्षमायाचना के साथ शमित हुए।

इस प्रकार अपने देश में अपने मातृधर्म से द्रोह को, राष्ट्र से द्रोह को कभी प्रश्रय, संरक्षण नहीं दिया गया। धर्म या पंथ के नाम पर राष्ट्रद्रोह को स्वीकार नहीं किया चाहे वह परदेशी रावण हो या स्वदेशी दुर्योधन हो, बौद्ध मतावलंबी हों या पौराणिक पात्र इन्द्रपुत्र जयन्त हो।

विज्ञान और भारत

भारत को व्यापक स्तर पर 'संस्कृति का घर' कहा जाता है। लेकिन निश्चयात्मक विज्ञान के क्षेत्र में भारत का योगदान अपेक्षाकृत कम माना जाता है। पश्चिम को विज्ञान का जनक माना जाता है पर ये दोनों तथ्य भ्रान्ति पर आधारित है, मिथ्या हैं। धर्मपालजी ने Indian Science and Technology in Eighteen Century में ब्रिटिश आकड़ों के आधार पर यह बताया है कि भारत 18वीं शताब्दी में विज्ञान के हर क्षेत्र में आगे था। भारत के सूत्रों को लेकर पश्चिम आगे बढ़ गया। उसके उत्थान का काल होने से और भारत का पराभव का काल होने से पिछड़ गया। स्पष्ट है विज्ञान का जनक भी भारत है और विज्ञान के क्षेत्र में भी पूरे विश्व को महत्त्वपूर्ण अवदान है। और यह तथ्य स्वतः ही खण्डित हो जाता है कि भारत में ज्ञान-विज्ञान अंग्रेजों के समय, अंग्रेजों की कृपा से आया और प्रसारित हुआ।

यूरोप का मध्य युग ज्ञान-विज्ञान और शिक्षा की दृष्टि से अंधकार युग कहा जाता है क्योंकि उस समय बाइबिल से स्वतंत्र चिंतन-मनन संभव नहीं था। शिक्षा का दायित्व चर्च के ऊपर था। चर्च ने शिक्षा से यूनानी और लैटिन भाषाओं का अध्ययन निकाल दिया था क्योंकि इस अध्ययन का चर्च की शिक्षाओं से कोई सम्बन्ध न था बल्कि चर्च की विचारधारा से विरोध ही था। इसलिए सिकन्दर द्वारा स्थापित 'ऐलिग्जेन्ड्रिया' का विशाल पुस्तकालय जिसमें सात लाख पुस्तकें थी जो ग्रीक एवं भारतीय विद्याओं के अध्ययन का यूरोप में सबसे बड़ा केन्द्र था, उस पुस्तकालय को आग दिखा दी गई। चर्च ही शिक्षक, गुरु सब था। उस समय धार्मिक अंधविश्वास से समाज इस तरह जकड़ गया था कि बाइबिल से स्वतंत्र चिंतन-मनन की प्रवृत्ति ही समाप्त हो गई थी। बाइबिल एवं पोप के आप्तवाक्य से जुदा स्वतंत्र अनुभव एवं निरीक्षण की प्रयोगात्मक विधि से भी ज्ञानार्जन हो सकता है, इससे वे मानो अनजान ही थे।

पादरियों की यह मान्यता थी कि ईसा के पहले से पहले जो कुछ भी दुनिया में ज्ञान-विज्ञान था वह ईसा के आने के बाद व्यर्थ हो गया। अब केवल ईसा के उपदेशों को पढ़ने की जरूरत है एवं चर्च के आदेशों के पालन की आवश्यकता

है। ईसाइयत के नाम पर पादरियों ने अपने समाज को, दुनिया के देशों को तथा ईसा के पूर्व के देशों को अपने-अपने ज्ञान-विज्ञान से वंचित कर दिया। इस कारण यूरोप के देशों में स्वास्थ्य चिकित्सा सम्बन्धी जो पुरानी परम्परा थी वह भी धीरे-धीरे लुप्त हो गई।

इस विषय में प्रसिद्ध दार्शनिक बेकन का दिया गया दृष्टान्त बड़ा रोचक है—

अनुभवात्मक या प्रयोगात्मक विधि का अभाव—हमारे प्रभु (ईसा) के 1432 वें वर्ष में कुछ भाइयों के बीच इस बात पर बड़े जोर से बहस छिड़ गयी कि घोड़े के मुँह में कितने दांत होते हैं। यह बहस 13 दिन तक अनवरत चलती रही। सभी प्राचीन पुस्तकें और वृत्तांत निकाले गये और अत्यन्त आश्चर्यचकित करने वाला ऐसा विद्वत्तापूर्ण तथा मननशील प्रदर्शन हुआ जैसा इस क्षेत्र में पहले कभी नहीं हुआ था। 14वें दिन के आरम्भ में एक नवयुवक कुशल पादरी ने अपने सुयोग्य वरिष्ठों से कुछ कहने की आज्ञा मांगी। वह उनके गहरे ज्ञान से खीज गया था और उसने सब शास्त्रार्थ करने वालों को महान् आश्चर्य में डालते हुए उनसे अपनी विधि बदलने को कहा तथा ऐसी बात बताई जिसके विषय में पहले न कभी सुना गया था और न देखा गया था। उसने कहा, आप लोग घोड़े का मुंह खोलकर क्यों नहीं देख लेते जिससे आपके प्रश्नों का सरलता से उत्तर मिल जाये। इससे उन सबकी प्रतिष्ठा को गहरी क्षति पहुंची। वे उस पर टूट पड़े। उसे खूब पीटा और तुरन्त भवन से बाहर फेंक दिया। उनका विचार था कि निश्चय ही शैतान ने इस साहसी नौसिखिये को फंसा लिया है जिससे वह सत्य को खोजने की अत्यन्त अपवित्र—पहले कभी न सुनी और देखी गई—तथा पवित्र पूर्वजों की शिक्षाओं के बिल्कुल विपरीत विधि बताने लगा। फिर कुछ दिन चर्चा चलाकर उस विषय को स्थगित कर दिया गया। क्योंकि इस विषय में शास्त्रों में लिखित नहीं होने से उस विषय को व्यर्थ मान लिया गया। इस प्रकार मध्ययुग के अन्त तक ईसाइयत को इस जकड़न ने ज्ञानांधकार में डुबा कर रखा।

जब यूरोप ज्ञानांधकार में खोया हुआ था तब अरब में भारत के सम्पर्क से ज्ञान का दीपक टिमटिमा करके जल रहा था। और जब अरब के माध्यम से यूरोप भारतीय एवं ग्रीक ज्ञान से परिचित हुआ तब निरीक्षण और परीक्षण की प्रयोगात्मक विधि से ज्ञानान्वेषण में प्रवृत्त हुआ। विज्ञान के नये-नये आविष्कार सामने आये। जो नक्षत्र विज्ञान एवं जीव विज्ञान से विशेष सम्बन्धित थे।

बाइबिल के अनुसार पृथ्वी चपटी है। पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केन्द्र है। सूर्य पृथ्वी के चारों तरफ चक्कर लगाता है। टॉलमी ने खगोलशास्त्र पर एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक की रचना की थी। जिसके अनुसार पृथ्वी स्थिर है और सूर्य, चन्द्र व विविध

ग्रह उसके चारों ओर घूमते हैं जिसे ईसाई धर्माचार्यों ने बाइबिल की मान्यता से समर्थित होने के कारण स्वीकार कर लिया था और इसे वे धार्मिक सिद्धान्त के समान सत्य मानने लगे थे। इस सिद्धान्त का प्रभाव 15वीं शती तक रहा। पर नक्षत्र विज्ञान और जीव विज्ञान में नयी खोज प्रारम्भ हुई जिसका बाइबिल के सिद्धान्त से मेल नहीं था। बाइबिल के अनुसार पृथ्वी चपटी है। पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केन्द्र है। और सूर्य पृथ्वी के चारों तरफ चक्कर लगाता है। सृष्टि का रचयिता प्रकृति से बाहर वास करता हुआ 'कुछ नहीं' से सब कुछ निर्माण कर देता है और स्वर्ग से अपनी आज्ञाएं प्रसारित करता रहता है। और मनुष्य के विषय में उनकी धारणा है कि ईश्वर ने मनुष्य को प्रारम्भ में ऐसा ही बनाया था जैसा वह आज है। उनकी तो मान्यता है कि मनुष्य को भगवान् ने अपनी आकृति-प्रकृति के अनुरूप बनाया। इसके विरुद्ध विज्ञान ने खोज की कि पृथ्वी गोल है। सूर्य स्थिर है। और पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ चक्कर लगाती है। इसका विरोध पादरियों ने किया। उनके अनुसार अगर पृथ्वी गोल है तो नीचे के लोग उलटे कैसे खड़े होंगे और अगर वह घूमती है तो कयामत के दिन ईसा के आसमान से उतरने पर सब उसे कैसे देख सकेंगे? विज्ञान का विरोध दोनों सम्प्रदायों ने करना प्रारम्भ कर दिया।

1473 ई. में निकोलस कोपरनिकस द्वारा आधुनिक खगोलशास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। उसने ग्रीक साहित्य के अनुशीलन विशेषकर अरिस्टाशंस के ग्रंथ का पारायण एवं सूर्यमण्डल के ग्रहों का सूक्ष्म अध्ययन किया और अनेक प्राचीन सिद्धान्तों का खण्डन कर यह मत प्रतिपादित किया कि सूर्य ब्रह्माण्ड के केन्द्र में है तथा पृथ्वी सहित सभी ग्रह उसका चक्कर लगाते हैं। यह क्रान्तिकारी सिद्धान्त बाइबिल के विरुद्ध होने से अत्याचार के भय से अपने जीवनकाल में नहीं छपाया। उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित भी हुआ तो लैटिन भाषा में जो जन साधारण की भाषा नहीं थी। मात्र विद्वानों की भाषा रह गई थी। पर जब यह रहस्य उद्घाटित हुआ तो इसका विरोध पादरियों द्वारा प्रारम्भ हुआ। पर सोलहवीं सदी में अनेक विचारक हुए जिन्होंने इस मत का समर्थन किया। इसमें केपलर (1571 ई.-1630 ई.) और गैलीलियो (1564 ई.-1642 ई.) के नाम उल्लेखनीय हैं। केपलर जर्मन नागरिक था। गैलीलियो इटालियन था।

प्रयोगात्मक विज्ञान सर्वप्रथम गैलीलियो से प्रारम्भ होता है। 1609 ई. में गैलीलियो ने नक्षत्रों के अध्ययन के लिए टेलीस्कोप का विधिवत प्रयोग किया। उसने टेलीस्कोप द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि ब्रह्माण्ड में बड़े पिण्ड केन्द्र में रहते हैं और छोटे-छोटे उपग्रह उनकी परिक्रमा करते हैं। उसने यह भी कहा कि हमारी धरती गोल है और सूर्य की परिक्रमा करती है। यह मान्यता धर्माचार्यों को मान्य न होने से उसे अपराधी घोषित करके कारागार में डाल दिया गया। तब

गैलीलियो ने राजा से प्रार्थना की कि उसे अपनी बात सिद्ध करने का एक अवसर दे। प्रथम में राजा ने धर्माचार्यों के प्रबल विरोध के कारण अनुमति नहीं दी पर बाद में दे दी।

रोम में विशाल टॉवर है। टॉवर के झुक जाने पर भी नहीं गिरने के कारण वह संसार के सात आश्चर्यों में से एक है।

गैलीलियो ने टेलीस्कोप की सहायता से टॉवर के ऊपर से ईसाई पादरियों को दिखाया कि एक ग्रह के चारों तरफ छोटे-छोटे उपग्रह बड़ी तेजी से घूम रहे हैं। इसी तरह पृथ्वी से कई गुणा बड़ा होने के कारण सूर्य ग्रह है और पृथ्वी उपग्रह है। और सूर्य के चारों तरफ परिक्रमा करने के कारण पृथ्वी गोल है।

ईसाई पादरी ने टेलीस्कोप से इस तथ्य को देखते हुए भी नहीं स्वीकारा और कहा, तुम्हारा यंत्र ही घूमता है और हमारी आंखों को धोखा देकर हमें ठगना चाहते हो। उसे पुनः कारागार में डाल दिया गया। और उसे अपनी स्थापनाएं वापस लेने तथा स्वयं की निन्दा करने को बाध्य किया गया। कोपरनिकस और गैलीलियो के समान अन्य भी अनेक विचारक इस समय यूरोप में उत्पन्न हुए। जो परीक्षणों के द्वारा सत्य की खोज कर नये-नये तथ्यों का पता करने में तत्पर थे। उस समय के ईसाई धर्माचार्य इनका न केवल उपहास करते थे, अपितु उन्हें धर्मद्रोही और काफिर समझते थे। इन्हें चर्च की ओर से भयंकर दण्ड दिये गये। ब्रूनो (Bruno) को चौराहे पर जीवित जलाया गया। जीनो (zeno) नामक दार्शनिक, वैज्ञानिक को घर समेत फूंक दिया। हियोकिया नामक रोमन महिला को ज्यामिति पढ़ाने के अपराध में नंगा करके, रोम के बाजारों में कोड़े मार-मार कर मार डाला गया। 1481 ई. में विज्ञानवादियों का दमन करने के लिए ईसाइयों ने Court of inguistion नाम की विशेष अदालत स्थापित की थी, जिसमें ईसाई मत के विरुद्ध विज्ञान के किसी सिद्धान्त का प्रचार करने वाले वैज्ञानिकों पर अभियोग लगाकर उन्हें सजा दी जाती थी। यही नहीं, नाना तरह की यंत्रणाएं देकर उनसे स्वीकार कराया जाता था कि उनका सिद्धान्त झूठा है। जो स्वीकार नहीं करते थे, उन्हें जीते जी जला दिया जाता था। उक्त अदालत की आज्ञा से प्रथम वर्ष में ही 2,000 विद्वान् जलाये गये। अदालत का अध्यक्ष 'तारकी माडा' नामक व्यक्ति 18 वर्षों तक रहा। इसके समय 10,220 और उनके भक्त जीते जी जलाये गये और 87,327 मनुष्यों को अन्य प्रकार के दण्डों से दंडित किया गया। इस प्रकार ईसाइयत के अंधविश्वास ने पश्चिम में विज्ञान का गला घोंट कर रखा। करीब अरस्तू एवं आर्किमिडिज के काल से लेकर ब्रिटिश वैज्ञानिक न्यूटन के काल तक (लगभग दो हजार वर्षों तक) पश्चिम में विज्ञान मृतप्राय हो गया था। तब भी भारत में उच्चकोटि की वैज्ञानिक प्रगति जारी थी। भारत में आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, जीवक वैद्य, वैद्यराज चरक,

सुश्रुत (शल्य चिकित्सक), शालिहोत्र, बोधायन, लगथ, मेधातिथि, ब्रह्मगुप्त, नागार्जुन, उमास्वाति जैसे महान् वैज्ञानिक विश्व को ज्ञानालोक बांट रहे थे। पृथ्वी गोल है यह गैलीलियो के पूर्व पश्चिम के लिए तो अज्ञात था वहीं भारत की वैदिक परम्परा में ही भूगोल (भूमि गोल), खगोल, ब्रह्माण्ड, अखण्डमण्डलाकार शब्द भारत को विज्ञान का जनक घोषित कर रहे हैं।

प्राचीन भारत में विज्ञान को लेकर अद्भुत विकास को देखते हैं चाहे रामायण के काल को लेवें या महाभारत काल को। हां विकास का स्वरूप आज से भिन्न था। प्राचीन भारत में अधिदेव को लेकर विज्ञान का विकास देखते हैं, मंत्र शक्ति की अद्भुत करामात देखते हैं। महाभारत काल के बाद अधिभूत को लेकर विज्ञान की प्रगति को देखते हैं। आज के संदर्भ में भी भारत 18वीं शताब्दी तक विज्ञान के हर क्षेत्र में आगे था। अमरीकन इतिहासकार विल डुरण्ट लिखते हैं कि कहीं भी मौजूद और अपनी उपादेयता या सुन्दरता के लिये मूल्यवान तथा सभ्य संसार में ज्ञात लगभग हर प्रकार के निर्माण या उत्पाद अनेक वर्षों पूर्व भारत में ही तैयार किये जाते थे। भारत यूरोप अथवा एशिया के किसी अन्य देश की तुलना में विशालतर औद्योगिक और उत्पादन करने वाला राष्ट्र था। भारत के हथकरघों पर निर्मित उत्कृष्ट सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र समूचे सभ्य संसार में प्रसिद्ध थे। वैसे ही भारत के उत्कृष्ट आभूषण, हर तरह के सुन्दर कीमती रत्न-माणिक्य और वैसे ही विविध प्रकार के रंगों, सुन्दर आकारों और गुणवत्ता युक्त भारत के मिट्टी तथा चीनी मिट्टी के बर्तन भी विश्व-विख्यात थे। अंग्रेजों ने भारत में आकर इसे ऐसा ही पाया था।

इस संदर्भ में जो आंकड़े ब्रिटिशों ने संग्रह किये थे उसी को धर्मपालजी ने खोजकर Indian Science and Technology in Eighteen Century में प्रकाशित कर दिया है। धर्मपालजी ने इस पुस्तक में स्वयं यूरोपीय जनों के साक्ष्य से विस्तार से दिखाया है—चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, गणित शास्त्र, गणित-ज्योतिष, बर्फ बनाने, गारा (भवन निर्माण के लिए), कागज बनाने, इस्पात बनाने आदि में भारत अठारहवीं शताब्दी तक अत्यन्त विकसित था। और इन जानकारियों से ब्रिटेन लाभान्वित भी हुआ। वस्त्रोद्योग, उद्यानशास्त्र या बागवानी, युद्ध सामग्री, पशु संवर्धन, पोत निर्माण आदि अनेक क्षेत्रों में भारत आगे था।

भारत की खोजों एवं वैज्ञानिक सूत्रों को लेकर यूरोप आगे बढ़ गया और स्वयं भारत देश पिछड़ गया।

इसका एक कारण भारत के तत्त्वज्ञान ने कभी भी प्रकृति एवं अन्य मानव समाजों के शोषण की अनुमति नहीं दी। उसने कभी भी दूसरे समाजों के प्रति द्वैत, घृणा, हिंसा को प्रश्रय नहीं दिया। सबके प्रति एकात्मभाव था।

मानव के सदृश ही सभी देशों का भी उत्थान व पतन, वैभव और पराभव का, विस्तार एवं संकुचन का काल आता है। वह समय भारत के राजनीतिक-सांस्कृतिक पराभव का, परतंत्रता का काल था इसलिए राष्ट्र अस्तित्व की रक्षा में संघर्षरत था, फलतः विकास सम्भव नहीं था और यूरोप के राजनैतिक उद्भव का, विकास का, विस्तार का काल था। यूरोप ने, पश्चिम ने जो ज्ञान-विज्ञान की जय यात्रा की है वह ईसाइयत से मुक्त होकर, उससे पिण्ड छुड़ाकर की है। इनकी विकास यात्रा मात्र 300 वर्ष की है उसके पूर्व अंधकार की स्थिति है। जिसे हम देख चुके हैं।

इस प्रकार ईसाइयों द्वारा विज्ञान की शोधों एवं वैज्ञानिकों पर किये गये अत्याचार के कारण विज्ञान धर्म से अलग ही नहीं हो गया वरन् धर्म का विरोधी हो गया।

हेगेल के वामपंथी विचारक डेविस, स्ट्रास, ब्रूनो, बोरे (Baure) तथा लुडविन फयूरबाख (Feurbach) ने बाइबिल का स्वतंत्र अध्ययन किया। इससे पूर्व दो विद्वानों ने बाइबिल का गंभीर अध्ययन करके यह परिणाम निकाला था कि ईसाइयत का आरम्भ एक कपोल कल्पना (Myth) से हुआ।

उस समय धर्म या Religion के नाम पर सेमिटिक परम्परा (यहूदी, ईसाई और इसलाम) और चर्च से ही परिचित था। दोनों का स्वरूप अत्याचारी था। चर्च ने मानव जीवन को नारकीय बना दिया था, पोप, बिशपों और पादरियों का जीवन बड़ा विलासी था फिर पूर्णतया अन्धविश्वास पर आधारित बाइबिल, बाइबिल से इतर ज्ञान-विज्ञान के कट्टर दुश्मन होने के कारण धर्म मात्र से, ईश्वर मात्र से अरुचि हो गयी, Allergy हो गयी। धर्म और ईश्वर से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना उन्हें नागवार, प्रगति विरोधी लगने लगा।

इस प्रकार धर्म और ईश्वर से विज्ञान और अन्य सभी क्रान्तदर्शी प्रबुद्ध मनीषी जिसमें मार्क्स, फयूरबाख, नित्शे, फ्रायड आदि सभी आते हैं अलग हो गये। धर्म और ईश्वर विरोधी हो गये। ईश्वर के मृत्यु की घोषणा की जाने लगी। धर्म और ईश्वर अनावश्यक, प्रगतिविरोधी लगने लगा। ये सब मनीषी हिन्दुओं की जो धर्म की अवधारणा है, हिन्दू धर्म में जो ईश्वर की अवधारणा है। हिन्दुओं की जो ज्ञान-विज्ञान की उदार परम्परा है उससे परिचित नहीं थे। वे तो ईश्वर की सेमिटिक परम्परा में जो Personal God की अवधारणा है, Religion की अवधारणा है उसी से परिचित थे। वह न केवल त्रुटिपूर्ण, विकृति को लिए है, वरन् पैशाचिकता को लिए हुए होने से स्वाभाविक रूप से घोर विरोधी हो गये। वे न तो हिन्दू धर्म से परिचित अतः उसका विरोध भी नहीं किया।

इन सब कारणों से एक समय ऐसा आया कि पश्चिम का विज्ञान कह रहा था यदि ईश्वर की सत्ता है तो उसे अपने अस्तित्व का प्रमाण वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में आकर उसकी परखनली में देना होगा।

लाप्लॉस नामक वैज्ञानिक ने पुस्तक लिखी कि सम्पूर्ण विश्व कैसे चलता है? उसकी एक प्रति नेपोलियन को भेंट की। नेपोलियन ने उस पुस्तक को पढ़ने के बाद कहा, 'लाप्लॉस महाशय! मैं सारी पुस्तक पढ़ गया पर कहीं भी आपने भगवान् का उल्लेख नहीं किया है।' उसने कहा, 'मुझे इसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी।' विज्ञान की विभिन्न शाखाओं द्वारा समस्त सृष्टि की, विकासवाद के द्वारा समस्त जीव सृष्टि की व्याख्या हो जाती है।

न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण एवं गति के सिद्धान्त के आधार पर विश्व की यांत्रिक व्याख्या प्रस्तुत की। उसके अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि एक नियमबद्ध यंत्र है जो कार्य-कारण नियम से चल रहा है। जिसमें किसी प्रेरक शक्ति या ईश्वरीय शक्ति का हाथ दृष्टिगोचर नहीं होता है।

न्यूटन स्वयं आस्तिक था पर उसके सिद्धाव्त से नास्तिकता को समर्थन और प्रश्रय मिला। और सृष्टि का जड़ यंत्र सिद्ध करने की होड़ चली। ऐसा इसलिए भी सम्भव हुआ क्योंकि प्राचीन काल के वैज्ञानिक पदार्थ का अध्ययन ऐसे बड़े टुकड़ों पर ही करते थे जो सीधे इन्द्रियगोचर होते थे। उसमें लाखों-करोड़ों अणु विद्यमान थे जिनका आचरण निश्चय ही यंत्र जैसा था। परन्तु उसके आधार पर निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता था कि पृथक्-पृथक् अणुओं का आचरण भी इसी प्रकार यंत्रवत् होगा। यह तो सभी जानते हैं कि किसी जन समूह के आचरण और उस पृथक्-पृथक् व्यक्तियों के आचरण में भारी अंतर होता है। पृथक्-पृथक् अणुओं, परमाणुओं, इलेक्ट्रॉन के आचरण का अध्ययन पहले-पहल उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में ही सम्भव हो सका।

और उस समय से विज्ञान की स्थिति बदलने लगी। एक प्रयोग बहुत हैरानी का है। वह प्रयोग यह है कि जैसे-जैसे हम अणु को तोड़कर और परमाणुओं को तोड़कर इलेक्ट्रान्स की दुनिया में पहुंचे हैं तो वहां जाकर एक नया अनुभव आया है जो बहुत आश्चर्य में डालने वाला है और जिसने विज्ञान की सारी स्थापनाओं को बदल दिया, उलट दिया है।

वह अनुभव यह है कि अगर इलेक्ट्रान्स को बहुत खुर्दबीन से आब्जर्व किया जाए, निरीक्षण किया जाए, तो जैसा वह अनिरीक्षित अवस्था में व्यवहार करता है, निरीक्षण करने पर उसका व्यवहार बदल जाता है, वह फिर वैसा व्यवहार नहीं करता! कोई उसे नहीं देख रहा है तो वह एक ढंग से गति करता है और खुर्दबीन से देखने पर वह डगमगा जाता है और गति बदल देता है!

अब यह बड़ी हैरानी की बात है कि पदार्थ का अंतिम अणु भी मनुष्य की आंख और आब्जर्वेशन से प्रभावित होता है। ऐसे ही जैसे आप अकेले सड़क पर चले जा रहे हैं। कोई नहीं है सड़क पर। फिर अचानक किसी खिड़की में से कोई झांकता है और आप बदल गए। आप दूसरी तरह से चलने लगे। अभी जिस शान से आप चल रहे थे, वैसे नहीं चल पा रहे हैं। अभी गुनगुना रहे थे, गुनगुनाना बंद हो गया।

अपने बाथरूम में आप स्नान कर रहे हैं। गुनगुना रहे हैं या नाच रहे हैं या आईने के सामने मुंह बना रहे हैं। और अचानक आपको पता चले कि बगल के छेद से कोई झांकता है, आप दूसरे आदमी हो गए।

लेकिन आब्जर्वेशन आदमी में फर्क ला दे, यह समझ में आता है, लेकिन अणु भी, परमाणु भी निरीक्षण से डगमगा जाएं, तो बड़ी हैरानी की बात है। और इस बात की खबर देते हैं कि हम कुछ गलती में हैं। वहां भी प्राण, वहां भी आत्मा। वहां भी देखने से भयभीत होने वाला। देखने से सचेत हो जाने वाला। देखने पर बदलने वाला मौजूद है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में दो सिद्धान्त आए—क्वांटम सिद्धान्त और सापेक्षतावाद का सिद्धान्त। इन दोनों सिद्धान्तों से मशीनी ब्रह्माण्डवाद की जड़ें हिल गई। और वह दम्भ दूर हो गया कि विज्ञान की विभिन्न शाखाओं द्वारा वह सृष्टि की व्याख्या करने में समर्थ हो सकेगा।

क्वांटम सिद्धान्त के अनुसार जब किसी पदार्थ या पिण्ड (सूर्य आदि) में अत्यधिक ताप के फलस्वरूप जो विकिरण पैदा होती है वह अटूट प्रवाह, सर्प गति से न होकर मुण्डक गति से होता है फलतः अनिश्चयवाद का समावेश हो जाता है फलतः कारण-कार्य की शृंखला खण्डित हो जाती है। इसे आइंस्टाइन द्वारा क्वांटम को और व्यापक रूप दिया जो विज्ञान में फोटो विद्युत प्रभाव के नाम से प्रसिद्ध है। पर यह तरंग सिद्धान्त से टकरा गयी। इस मौलिक प्रश्न का उत्तर अब तक नहीं मिला कि प्रकाश तरंगों से बना है कि कण से। एक मसखरे ने इसको कण तरंग की संज्ञा दी है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जेम्स जीन्स अपनी Mysterious universe नामक पुस्तक में कहते हैं—जब हम परमाणुओं और इलेक्ट्रान कणों का समूह के रूप में अध्ययन करते हैं तो निश्चयवाद का गणितीय नियम लागू हो जाता है और कुछ थोड़े परमाणुओं पर अनिश्चयवाद का।

क्वांटम सिद्धान्त के साथ 'गैआ' सिद्धान्त में यह सिद्ध कर दिया है कि सृष्टि एक नियम बद्ध यंत्र नहीं है। सारी सृष्टि के अन्दर एक चेतन शक्ति है Cosmic

mind है। एक गणितज्ञ है फलतः सारी सृष्टि में एक क्रम है, समन्वय है, सन्तुलन है, ताल है, लय है परस्पर सम्बन्धित है, परस्पर जुड़ा है, परस्पर निर्भर है। One integral whole है। वह स्वीकार रही है कि सम्पूर्ण भूमण्डल अन्योन्याश्रित है। हमारी पृथ्वी एक जीवित संस्थान है। और हम मनुष्य के रूप में इस जीवन्त संस्थान में एक जैव अवयव हैं।

सर जगदीश चन्द्र बोस के शोध और प्रयोग ने जड़-चेतन की सीमा रेखा के भेद को ही मिटा दिया।

सापेक्षतावाद—अलबर्ट आइंस्टाइन ने अपने सापेक्षता के सिद्धान्त द्वारा विज्ञान जगत् में एक अभूतपूर्व भूकम्प मचा दिया। उसके अनुसार विज्ञान ने अभी तक जो कुछ खोजा है, वह सापेक्ष ज्ञान ही है। निरपेक्ष सत्य का ज्ञान नहीं। सापेक्ष का भाव यह है कि वह तथ्य या तथ्यों पर आधारित सिद्धान्त है, किसी दूसरे तत्त्व या सिद्धान्त की अपेक्षा करता है। यदि अपेक्षित तथ्य या सिद्धान्त अशुद्ध या त्रुटिपूर्ण निकलता है तो उस पर आधारित सिद्धान्त भी त्रुटिपूर्ण होगा। विज्ञान ने आज तक जो कुछ खोजा है वह किसी न किसी तथ्य-सिद्धान्त को ठीक मानकर उस पर आधारित है। यदि आधार स्वयं अशुद्ध है तो आधेय अपने आप अशुद्ध हो जायेगा। विज्ञान में आधार-आधेय का सापेक्ष-सापेक्षित का अन्तहीन तारतम्य चल रहा है। इसलिए विज्ञान उस मूल आधार को नहीं जान सकता जो स्वयं सत्तावान है और किसी अन्य पर आधारित नहीं है। किसी अन्य की अपेक्षा नहीं रखता है। निरपेक्ष-स्वयंभू सत्य है।

सामान्य व्यवहार में पति-पत्नी, पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा सभी सापेक्ष सम्बन्ध हैं। वे अन्योन्याश्रित हैं। इसी प्रकार निरपेक्ष लम्बाई, मोटाई, ऊंचाई विज्ञान की पकड़ के बाहर है। इसलिए विज्ञान का सारा मापन सापेक्ष है। हलकापन, भारीपन भी सापेक्ष है। इसलिए विज्ञान का सारा तोलन सापेक्ष है। धरती पर व्यक्ति का भार दो-ढाई मन होगा, वह चन्द्रमा पर भार विहीन होकर आकाश में उड़ने लगता है। इसलिए विज्ञान का Law of gravitation (न्यूटन), Specific gravity (आर्किमिडिज), Atomic Weight आदि सभी सिद्धान्त सापेक्ष रह जाते हैं। इनमें से कोई-सा भी ऐसा सिद्धान्त नहीं है जो सारे विश्व में सब परिस्थितियों में, सब ग्रहों में, सब देशों में, सब कालों में सत्य सिद्ध हो सके। आइंस्टाइन ने सिद्ध किया कि गति, स्थिरता एवं न्यूटन के गति के सिद्धान्त सभी सापेक्ष हैं। आइंस्टाइन ने दिक्-काल को भी सापेक्ष सिद्ध किया। गणित का सारा ज्ञान-विज्ञान भी सीमित एवं सापेक्ष है।

आइंस्टाइन के सापेक्षतावाद के सिद्धान्त से वैज्ञानिकों के अहंभाव को एक बड़ा धक्का लगा और उनको यह अनुभव होने लगा कि उनकी अब तक की

सारी साधना परम सत्य, पूर्ण अनन्त सत्ता की खोज के लिए नितान्त व्यर्थ हुई। प्रकृति के बहिरंग के कुछ तथ्यों, सिद्धान्तों का अपूर्ण सापेक्ष अध्ययन मात्र ही हो सका है।

प्राचीन विज्ञान का दुराग्रह था कि भौतिक जड़ तत्त्व ही सृष्टि का अन्तिम सार पदार्थ है। पदार्थ की परिभाषा है जो वस्तु जगह घेरती है और वजन रखती है उसे पदार्थ कहते हैं। आधुनिक विज्ञान ने पदार्थ को Molecule में Molecule को Atom में Atom को इलेक्ट्रान, न्यूट्रॉन, प्रोटोन आदि में तोड़कर यह पाया कि अन्त में पदार्थ न बचकर केवल ऊर्जा ही बचती है। अब भौतिकवाद का महल सदा के लिए ढह गया है क्योंकि ऊर्जा में मैटर के गुण बचते ही नहीं है। अब Energy का स्वरूप क्या है जड़ या चेतन? इसमें वैज्ञानिकों में ऊहापोह चल रहा है पर चोटी के वैज्ञानिक ऊर्जा को चेतन स्वरूप वाली मानने लगे।

श्रोडिंजर कहते हैं–अब तत्त्वज्ञान से दूर न रहकर मैं इसका पूरा प्रयोग करूंगा। वे आगे कहते हैं सीधे-सादे रूप में यह घोषणा करते हुए मुझे कोई हिचक नहीं है कि वास्तविक भौतिक संसार की स्वीकृति रहस्यात्मक और तात्त्विक है।

वेदान्त दर्शन को स्वीकृत करते हुए वे कहते हैं–चेतना की अनुभूति विविध रूप में कभी नहीं होती। यह केवल अखण्ड रूप में ही होती है। चैतन्य अखण्ड ही होता है, बाहर दिखायी देने वाला वैचित्र्य उसी ब्रह्म की एक शृंखला है। उसी ब्रह्म की अनिर्वचनीय शक्ति को माया कहते हैं।

पर वैज्ञानिक इस तात्त्विक ऐक्य को किसी उपकरण द्वारा या प्रयोग द्वारा सिद्ध नहीं कर सकते और न अनुभव में ला सकते हैं, क्योंकि यह अद्वैत तत्त्व मन-वाणी-इन्द्रिय से परे है। इस ऐक्य की अनुभूति के लिए वेद के प्रमाण को स्वीकारना पड़ेगा, अद्वैत तत्त्व का वरण करना होगा। उस परमेश्वर के विधान को शाश्वत धर्म को स्वीकारना पड़ेगा।

उपनिषदों का अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादित करता है कि प्रत्यक्ष भेद माया है और मूलभूत एकता ही सत्य है। साधना का क्रम अनेक जन्मों तक चलता है और अन्ततः साधक को किसी एक जीवन में प्रज्ञा, अवकाश और शुद्ध साधना की इतनी मात्रा उपलब्ध हो जाती है जिससे वह अद्वैत सिद्धान्त को ग्रहण कर मुक्त हो सके?

इस प्रकार श्रोडिंजर ने पदार्थ से विकिरणित होने वाली ऊर्जा को भौतिक ऊर्जा ने कहकर अध्यात्मिक ऊर्जा कहा। एक नोबेल पुरस्कार विजेता, विश्वविख्यात वैज्ञानिक द्वारा पदार्थ के अन्तिम विश्लेषण पर चेतन एवं अभौतिक सत्ता की स्वीकृति यह सिद्ध करती है कि आधुनिक विज्ञान अब वेदान्त के अति निकट आ गया है।

श्रोडिंजर के समान सर जेम्स जीन्स, ओपन हाइमर, एडिंगटन एलेक्सिस कैरल और वर्तमान के फ्रिटजाफ केपरा आदि पश्चिम के चोटी के वैज्ञानिक यह घोषणा करने लगे हैं कि ऊर्जा का स्वरूप जड़ न होकर चेतन है।

इस प्रकार आधुनिक विज्ञान वेदान्त के मन्दिर की ड्योढ़ी में चरण रख रहा है। अभी तक विज्ञान मन्दिर के गर्भ गृह में नहीं पहुंचा। परम चैतन्य की झलक मिल जाने पर पूरे विज्ञान जगत् का रूपान्तर हो जाएगा। विज्ञान न रहकर पूर्व की भांति दर्शन की शाखा बन जाएगा।

इस प्रकार विज्ञान विश्व की व्याख्या करने में अपने आपको असमर्थ पा रहा है। वह स्वयं दर्शन की, अध्यात्म की, रहस्यवाद की भाषा बोलने लगा है। बहुत से वैज्ञानिक विज्ञान की सीमा जानकर दर्शनवेत्ता बन गये हैं। आज अद्वैत वेदान्त का माया सिद्धान्त और ब्रह्म के विचार को मानने लगा है। अद्वैत वेदान्त की तरह जगत् को यथार्थ न मानकर आभास या व्यावहारिक सत्य के रूप में स्वीकारने लगा है। पारमार्थिक सत्य ब्रह्म को ही चेतन तत्त्व मानने की ओर निरन्तर बढ़ रहा है।

और भी दो कारणों से विज्ञान भारतीय दर्शन की ओर झुक रहा है।

दूसरा संस्कृत भाषा से जैसे-जैसे पश्चिम का परिचय बढ़ा तब यह जाना कि उन्होंने जो खोजें की हैं वह एकदम से नई नहीं हैं। वह बहुत पहले से ही वैदिक भारतीय परम्परा में सूत्ररूप से, सूक्ष्मरूप से उपलब्ध है। शिव के नटराज रूप का चिन्तन, मनन व ध्यान कर आज के वैज्ञानिक विस्मित व आनन्दित होते हैं। अणु-परमाणु से लेकर अनन्त आकाश में नृत्य कर रही असंख्य आकाशगंगाओं में वे नृत्य-निरत नटराज का दर्शन करते हैं।

शोपेनहावर ने संस्कृत भाषा के विषय में भविष्यवाणी की थी कि 'मैं विश्वास करता हूं कि जो पन्द्रहवीं शती में ग्रीक साहित्य ने पुनर्जागरण किया था, उससे कम गहरा प्रभेदकारी प्रभाव संस्कृत साहित्य का न होगा।'

स्वामी विवेकानन्दजी और महात्मा गांधीजी ने कहा था—जैसे-जैसे विज्ञान आगे बढ़ेगा वैसे-वैसे हिन्दू धर्म की सत्यता और भी मुखर होती जाएगी जो इसके पूर्व कभी सम्भव नहीं हो पाया था। इन सब महापुरुषों की वाणी आज सत्य होती प्रतीत हो रही है।

तभी तो प्रथम अणु विस्फोट के समय ओपेनहाइमर को भगवद्गीता का श्लोक याद आता है। विख्यात भौतिकशास्त्री एवं वैज्ञानिक श्रोडिंजर एवं एडिंगटन अपनी अनेक पुस्तकों में सांख्य, वेदान्त एवं योग दर्शन का हवाला देते हैं। वर्तमान समय में केपरॉ अपनी अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों में विज्ञान के निष्कर्षों के साथ वेदान्त का साम्य दरसाते हुए योग दर्शन, वेदान्त की अनुशंसा करते हैं।

जहां विज्ञान से अन्य संस्कृतियां या विशेषकर ईसाइयत और इसलाम भयभीत है, हतप्रभ है वहां वैदिक परम्परा प्रसन्न है उत्साहित है क्योंकि वर्तमान विज्ञान के द्वारा हिन्दू धर्म दर्शन, संस्कृति, परम्परायें, रीति-रिवाज एवं भारतीय विज्ञान की मान्यताएं सत्य सिद्ध होती जा रही है। उपरोक्त तथ्य विज्ञान सम्मत, बुद्धि सम्मत, वर्तमान ज्ञान-विज्ञानों की खोजों से पुष्ट होने के कारण स्वयं अपने प्रभाव से सारे विश्व की प्रबुद्ध मनीषा को प्रभावित कर रही है। आज वे हिन्दू मान्यताओं को स्वीकारने लगे हैं, उसको जीने लगे हैं। आज एक-तिहाई अमेरीका हिन्दू विश्वासों में जीने लगा है। वह कर्म के सिद्धान्त को, पुनर्जन्म को, आत्मा की अमरता, अनेक उपासना पद्धतियों, शवदाह, आयुर्वेद, योग, हिन्दू देवी-देवता को स्वीकारने लगा है। आज पश्चिम के बहुत से वैज्ञानिक कर्म के सिद्धान्त को मानने लगे हैं। चार Force field में समन्वय स्थापित करने वाले Unified force field के रूप में कर्म के सिद्धान्त को धीमे-धीमे स्वर से स्वीकारने लगे हैं।

तीसरा कारण है विज्ञान मूल्यनिरपेक्ष अध्ययन है। वह पेनिसिलिन बना रहा है तो दूसरी ओर अणु बम को बनाकर मनुष्य के हाथ में रख रहा है। अब यह मानव के विवेक पर निर्भर करता है कि वह उसका सदुपयोग करता है या दुरुपयोग। विज्ञान अणु के स्वभाव को बदल सकता है पर मानव मन का निर्माण नहीं कर सकता। बिना मानव मन के निर्माण हुए उसका दुरुपयोग ही ज्यादा होता है जैसा कि आज हो रहा है। वह नैतिक मार्गदर्शन चाहता है जो उसे बाइबिल से उपलब्ध नहीं हो सकता। बाइबिल से पिण्ड छुड़ाकर ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की जय-यात्रा सम्भव हो सकी है। वह भारतीय दर्शन से ही मार्गदर्शन की अपेक्षा रखता है जो पूर्व में भी देता आया है और भविष्य में भी दे सकता है।

इस प्रकार भारत में विज्ञान को लेकर या ज्ञान-विज्ञान की किसी भी धारा को लेकर कभी कोई अवरोध नहीं खड़ा हुआ। और आज के वर्तमान विज्ञान की विभिन्न धाराएं भारतीय निष्कर्षों के बहुत नजदीक आ गयी है और उन्हें पुष्ट करते जा रही हैं, सत्य सिद्ध करती जा रही है। विज्ञान के मार्ग में अवरोध सेमिटिक परम्परा (ईसाइयत व इसलाम) की विकृति पूर्ण अवधारणाओं के कारण हुआ और वह आज भी वर्तमान है।

भारत में शिक्षा व्यवस्था

भारतीय मान्यता के अनुसार एक ही चेतन तत्त्व ने, आत्म तत्त्व ने ब्रह्म तत्त्व ने आपको जीव, जगत् और ईश्वर के रूप में प्रकट किया है। इसलिए हम सब ईश्वर की संतान हैं, **जीवो ब्रह्मैव नापरः** अमृत की संतान है, अनन्त पथ के यात्री हैं। हम ईश्वर की संतान होने से उनके सभी गुणधर्म अपने अन्दर निहित है यथा

अनन्त ज्ञान अनन्त शक्ति, प्रेम, सौन्दर्य, करुणा, कृपा आदि सभी गुणधर्म समाये हुए हैं। पर ये गुण धर्म सोये हुए हैं, इन्हें जगाने की आवश्यकता है। और यह जगाने की जैविक क्षमता केवल मानव योनि में है। पशु योनि, भोग योनि जिसमें पापों का क्षय करते, देव योनि भोग योनि जिसमें पुण्यों का क्षय करते हैं। मनुष्य योनि भोग योनि के साथ कर्म योनि भी है जिसमें पाप-पुण्यों का क्षय भी करते हैं और नये कर्म अर्जन करने की स्वतंत्रता भी है। मानव शरीर की अपनी अपूर्वता है। इसके अंगूठे की बनावट, यह कमर सीधी कर गर्दन ऊँची करके चलता है, इसे ही वाणी का प्रकाश प्राप्त है। इसमें अन्तःकरण का पूर्ण विकास यानी मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार का पूर्ण विकास पाते हैं। यह प्रकृति के गुणों को समझकर गुणों के पार जा सकता है, गुणातीत हो सकता है। वह अन्तः-बाह्य प्रकृति को समझ कर प्रकृति के पार जाकर आत्मा में स्थित हो सकता है। वह कर्मों को समझकर कर्मों के पार जाकर मुक्तता (मुक्ति) को प्राप्त कर सकता है, पूर्णता को प्राप्त कर सकता है। विकास के सर्वोच्च शिखर पर स्थित हो सकता है। क्योंकि उसमें पूर्णता-दिव्यता, अनन्तता पहले ही निहित है। पर वह सोयी हुई अवस्था में है और उसे शिक्षा, संस्कार व तप के द्वारा जगाना पड़ता है। नहीं तो अन्तर के नारायण सोये ही रह जाते हैं। उसे सही दिशा, सही चिन्तन, सही संस्कार, सही परिवेश मिले तो पूर्णता की ओर, सत्-चित्-आनन्द की ओर, नर से नारायण की ओर यात्रा कर सकता है, वह अपने अन्दर सद्गुणों का विकास कर, चरित्र का विकास कर मनुष्य से मनुष्यत्व, मनुष्यत्व से देवत्व, देवत्न से ब्रह्मत्व यानी विकास की, पूर्णता की यात्रा का लाभ ले सकता है।

पश्चिम में मनुष्य की व्याख्या को Mind और Matter तक सीमित रखा है। उससे आगे उनका चिन्तन नहीं जाता है। इसलिए अरस्तू जिसे Father of all Sciences कहा जाता है, कहता है Man is rational animal यह अधूरी परिभाषा है। भारत के ऋषियों ने कहा—मानव को पशु से ऊपर उठाने वाला विशेष गुण केवल rationality ही नहीं है। मानव को पशु से पशुता से ऊपर उठाने के लिए विशेष तीन गुण जो क्रमशः एक-दूसरे से ऊपर। ये तीन विशेष गुण हैं—

(1) Rationality

(2) Morality

(3) Spirituality

Animality must be controlled by mentality and mentality by rationality, rationality by morality and morality by spirituality. पशुता पर मानसिकता का अंकुश होना चाहिए। मानसिकता पर बौद्धिकता का

अंकुश, बौद्धिकता पर नैतिकता का अंकुश और नैतिकता पर आध्यात्मिकता का नियंत्रण होना चाहिए। इसी क्रम से जीवन का विकास हुआ है और इसी क्रम से ही मानव जीवन सच्चा विकास कर सकता है। अतः शारीरिक विकास के साथ मानसिक या भावात्मक विकास, भावात्मक विकास के साथ बौद्धिक विकास। फिर नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास होना चाहिए। शारीरिक विकास पर भावात्मक विकास का, भावात्मक विकास पर बौद्धिक विकास का, बौद्धिक पर नैतिकता का नियंत्रण होना चाहिए। नैतिक विकास अध्यात्मोन्मुखी होना चाहिए। इस प्रकार भारत ने शरीर और मन के साथ-साथ बुद्धि और आत्मा का भी विचार किया।

इन सब दृष्टियों को लेकर भारत में शिक्षा-व्यवस्था सांस्कृतिक-अध्यात्मिक अधिष्ठान में अधिष्ठित, चारों पुरुषार्थों (धर्म-अर्थ, काम और मोक्ष) को लेकर चलने वाली सर्वाङ्गीण शिक्षा-व्यवस्था जो एक स्वायत्त संस्थान थी। शिक्षा और गुरु को सर्वोच्च सम्मान दिया गया। गुरु को ईश्वर के समान महत्त्व दिया गया। गुरु की तुलना ब्रह्मा-विष्णु-महेश से की गयी है। बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट भी अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर जंगल में जाते और अपने स्वर्णकिरीट, मणिमुकुट के साथ चतुरंगिणी सेना के सहित जिनके चरणों में लेटकर दण्डवत् प्रणाम कर अपने को धन्य मानते थे। अंग्रेजों के पूर्व तक हमारे यहां शिक्षा कभी राजनीति या सम्राटों की दासी या अधीन नहीं रही। वह उसको पोषण और संरक्षण देना अपना परम कर्तव्य मानता था। प्राचीन भारत के गुरुकुलों में बड़ी-बड़ी ज्ञान साधनायें सम्पन्न हुईं। प्राचीन भारत में विज्ञान को लेकर अद्भुत विकास को देखते हैं चाहे रामायण के काल को लेवें या महाभारत के काल को। हाँ, विकास का स्वरूप आज के स्वरूप से भिन्न था। प्राचीन भारत में अधिदेव को लेकर विज्ञान का विकास देखते हैं, मंत्र शक्ति की अद्भुत करामात देखते हैं। आज के सन्दर्भ में भी भारत 18वीं शताब्दी तक विज्ञान के हर क्षेत्र में आगे था। इस सन्दर्भ में जो आंकड़े ब्रिटिशों ने संग्रह किये थे उसी को धर्मपालजी ने खोज करके 'Indian Science and Technology in Eighteen Century' में प्रकाशित कर दिया है। प्राचीन काल में ज्ञान की प्रामाणिकता के लिये जनक की सभा में जाना पड़ता था। जनक की सभा ज्ञान का प्रमाण थी। फिर काशी हो गयी। काशी के विद्वत् सभा की मान्यता आवश्यक थी। फिर ज्ञान का प्रमाण इंग्लैण्ड, द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् से अमेरीका ज्ञान का प्रमाण हो गया है। अब धीरे-धीरे पुनः भारत की ओर लौट रहा है।

विद्या दो प्रकार की होती है 'अपराविद्या और पराविद्या। अपराविद्या को भौतिक विद्या, अविद्या आदि नामों से जाना जाता है। पराविद्या को ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या और अध्यात्म भी कहा जाता है।

अपराविद्या के आधार में पराविद्या, ब्रह्मविद्या या अध्यात्म प्रतिष्ठित है। इसलिये ब्रह्मविद्या सर्वविद्या प्रतिष्ठा कहा गया है। भारत में अंग्रेजों के पूर्व तक सभी प्रकार के ज्ञान के आधार में अध्यात्म प्रतिष्ठित था इससे सारी विद्यायें उपासना का रूप ले लेती हैं, सेवा का आधार बन जाती थी जो हमें मुक्ति की ओर ले जाती है। हमारे यहां विद्या की परिभाषा की गयी है—'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् विद्या वही है जो मुक्त करे। जो हमें पूर्णता की ओर, आनन्द की ओर ले जाये, तुच्छता से, पशुता से, कमीनेपन से, स्वार्थ से, जड़ता से मुक्त कर परमार्थी बनावे।

ज्ञान के आधार में ब्रह्मविद्या प्रतिष्ठित न होने पर वह बंधन का आधार बन जाता है जिसे हम प्राचीन भारत में असुरों के जीवन में, विश्व की प्राचीन सभ्यताओं—रोम, यूनान, मिस्र, बेबीलोनिया आदि में, वर्तमान में आधुनिक पश्चिमी सभ्यता में और स्वातंत्र्योत्तर भारत में, आज के आधुनिक भारत में देखते हैं।

हमारे ज्ञान के मूल आधार वेद हैं। वेद तक कुछ लोगों की पकड़ होती है उसके अधिकारी थोड़े हैं। पहली श्रेणी में ऋषि-ऋषिकायें आते हैं। हमारे वेद मंत्रों के द्रष्टा ऋषि भी, ऋषिकायें भी हैं। ये प्रथम श्रेणी में आते हैं। फिर विद्वान्, विद्वानों की भी कई श्रेणियां है। सारे विषयों के विद्वान् या अनेक विषयों के विद्वान् या कुछ विषयों के विद्वान् या एक विषय के। फिर कथावाचकों का स्थान है जो वेदों के सार को, तत्त्व को, कथा के रूप में ग्राम-ग्राम, जन-जन में रखते हैं। इन्हीं के प्रयासों से भारतीय संस्कृति का सार, शास्त्रों का सार वेद, उपनिषद्, गीता का सार जन-जन तक पहुंच गया। उदाहरणार्थ—गांव की अनपढ़ बुढ़िया भी सहज रूप से कहती है, आत्मा सो परमात्मा। हमारे अन्दर ही ईश्वर आत्मा के रूप में विराजमान है। जैसा करोगे वैसा भरोगे, पुनर्जन्म की बात जानती है।

हमारे यहां लोकचेतना, लोकचित्त में शिक्षा के सभी महत्त्वपूर्ण तत्त्व कथावाचकों द्वारा पहुंचते हैं। सभी वर्ण और जाति के कथावाचक होते थे और होते हैं।

भारतीय जीवन पद्धति ऐसी रही है कि अनेक आक्रमणों के उपरान्त भी हमेशा नया रूप लेकर जीवित रही। जीवन की यह शक्ति शिक्षा पद्धति के द्वारा प्राप्त हुई। सभी प्रकार के आघातों को झेलने की क्षमता यहां की संस्कृति ने, शिक्षा ने दी।

हमारी शिक्षा सर्वव्यापी थी। सभी वर्ण और जाति के लोगों को पढ़ने का अधिकार था। अंग्रेजों के समय के जो आंकड़े अंग्रेजों ने संग्रहित किये थे उसे धर्मपालजी ने खोजकर The beautiful tree के नाम से प्रकाशित कर दिया।

भारत में मैकाले शिक्षा पद्धति लागू होने के पूर्व हाउस ऑफ कॉमन्स में 1813 में 'रिलिजियस एंड मोरल इम्प्रूवमेंट इन इंडिया' पर एक लंबी बहस हुई। उसका अंतर्निहित शीर्षक था—ईसाइयत का भारत में विस्तार किस प्रकार किया जाए? मोरल का अर्थ सिर्फ यही था कि जो ईसाई नहीं हैं, वे बर्बर और इम्मोरल हैं। जो ईसाई नहीं हैं, उनके धार्मिक रीति-रिवाज को अंधविश्वास बताया गया। इसी नीति को लागू करने के लिए बाद में मैकाले शिक्षा पद्धति को लाया गया। लेकिन किसी भी समाज में कोई भी नवीन व्यवस्था लागू करने के पूर्व वहां की पूर्व प्रचलित व्यवस्था का आकलन आवश्यक है। इसी योजना के तहत अंग्रेज सरकार ने सन् 1820 से 1830 के बीच बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के जरीये भारत के गांवों में मौजूद विस्तृत शिक्षा व्यवस्था का आंकड़ा एकत्र किया। इसी आंकड़े के आधार पर धर्मपालजी ने 100 साल से चल रहे इस झूठ का पर्दाफाश किया कि भारत में कोई शिक्षा व्यवस्था थी ही नहीं। भारत के प्रत्येक गांव में न जाने कब से पाठशाला और गुरुकुल चल रहे थे। जब मुगल आए तो मदरसे भी खुल गए।

भारत की इन पाठशालाओं-गुरुकुलों में शिक्षा की गुणवत्ता बाद में विकसित स्कूलों और ब्रिटेन के स्कूलों की गुणवत्ता से बहुत उन्नत थी। 'इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी (लंदन)' में यह रिकॉर्ड दर्ज है कि इन पाठशालाओं और गुरुकुलों में 43 विषयों की पढ़ाई होती थी। उसी में यह आंकड़ा भी है कि पाठशालाओं और गुरुकुलों में शूद्र छात्रों की संख्या ब्राह्मण छात्रों से अधिक थी। यहां यह भी बताना आवश्यक है कि जब भारत के हर गांव के गुरुकुल में हर वर्ण के लिए शिक्षा उपलब्ध थी, ब्रिटेन और यूरोप में आम लोगों से शिक्षा कोसों दूर थी। 19वीं शताब्दी के अंत में चर्च में 'संडे स्कूल्स' खोले गए, जहां फैक्टरियों में काम करने वाले श्रमिकों के बच्चों को बाइबिल के साथ अक्षरज्ञान दिया जाता था। बाइबिल से फनाटिक (कट्टर) ईसाई पैदा करने में मदद मिलती थी। उन्होंने भारत की गुरुकुल प्रणाली की नकल करके 'मद्रास एजुकेशन सिस्टम' या 'मोनीटोरिएल एजुकेशन सिस्टम' नाम से अपने यहां आमजन तक शिक्षा पहुंचायी। इसे एंड्रयू बेल एजुकेशन का नाम दिया।

एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु और भी है। 1830 ई. के एकत्रित आंकड़े बताते हैं कि उस समय भी मुसलमान शिक्षा के नाम पर मदरसों में कुरान ही पढ़ते थे। आज 200 साल बाद यही बात सच्चर समिति भी बोल रही है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह है कि सन् 1820-30 में गुरुकुलों में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों में शूद्रों की संख्या ब्राह्मणों के मुकाबले चार गुना (जनसंख्या के अनुपात में विश्लेषण किया जाए तो इसका अर्थ होगा कि समाज का हर

वर्ग लगभग समान रूप से शिक्षित था) थी तो 150 वर्षों में ऐसी कौन-सी परिस्थितियां उत्पन्न हुई कि शिक्षा तो दूर की बात हो गई, लाखों लोगों को अन्न के अभाव में प्राण त्यागने पड़े और करोड़ों लोगों का सामान्य जीवन बिताना मुश्किल हो गया? क्या उन परिस्थितियों पर चर्चा और विचार नहीं होना चाहिए? जिसे अंग्रेजों ने अस्पृश्यता के नाम से प्रसारित किया और उसके लिए शास्त्रों को जिम्मेदार ठहराया वही कार्य आज भी जारी है। क्या यह अंग्रेजों द्वारा लादी गई शिक्षा व्यवस्था का परिणाम नहीं है?

देशज शिक्षा के बारे में अंग्रेजों ने चार काल्पनिक आरोप लगाए— सार्वजनिक शिक्षा का न होना, शिक्षा केवल उच्च वर्गों या ब्राह्मणों के लिए होना, शिक्षा में केवल वैदिक ज्ञान का होना तथा कोई वैज्ञानिक शिक्षा व्यवस्था न होना इस खोज से स्वतः निरस्त हो जाते हैं।

धर्मपालजी की खोज के अनुसार भारत में पांच लाख स्कूल थे उसमें प्रत्येक गांव में एक स्कूल है जिसमें सभी वर्ण और जाति के बच्चे पढ़ते थे। जिन्हें आज निम्न जाति के कहा जाता है जिनका आज नाम लेना भी अपराध है उन सबके बच्चे पढ़ते थे। शिक्षक भी सभी वर्ण और जाति के होते थे जिसे अंग्रेजों ने नष्ट कर दिया। स्पष्ट है हमारी जाति-व्यवस्था में ऊंच-नीच का भेदभाव नहीं था। यह तो अंग्रेजों की करामात है 'फूट डालो और शासन करो' नीति के तहत परस्पर जातियों को बांटकर लड़वाया।

कुछ पढ़ाई सबकी Common थी, समान थी। तीन ग्रन्थ सब विद्यार्थियों के लिये थे—रामायण, महाभारत और भागवत, जिसमें जीवन का पूरा नक्शा दे दिया जाता था। और कुछ पढ़ाई वर्ण, जाति, व्यवसाय, पेशा के आधार पर होती थी। वणिक वर्ण के बच्चे को व्यापार, कृषि, गो-पालन की; क्षत्रिय को अस्त्र-शस्त्र संचालन, प्रशासन संचालन की शिक्षा; ब्राह्मण को कर्मकाण्ड, उपासना, ज्ञानकाण्ड की शिक्षा, त्रिकाल संध्या सबको सिखायी जाती थी। शूद्र बच्चों को शिल्प-कला की, श्रम की शिक्षा दी जाती थी। ब्रह्मचर्य आश्रम सीखने के लिये था और गृहस्थाश्रम उस पर अमल के लिये, प्रयोग के लिये था।

व्यापार करने आये अंग्रेजों के हाथ में यहां की राजनीतिक दुर्बलता के कारण शासन सूत्र उनके हाथ में आ गये। उन्होंने देखा यहां सभी प्रकार की विविधताओं में यह देश एक कैसे है? इतने आक्रान्ताओं को झेलकर भी यह जीवित कैसे है? अमर कैसे बना हुआ है? तो देखा यहां धर्म, संस्कृति और शिक्षा-व्यवस्था ने सबको जोड़ कर के रखा है। यही सभी आक्रान्ताओं को झेलने की ताकत देते हैं। इनके रहते हमारा शासन कभी स्थायी नहीं हो सकता है। इस स्थिति को समझकर

योजनाबद्ध ढंग से अंग्रेजों ने हमारी शिक्षा-व्यवस्था को तोड़कर अपने स्वार्थ, अपनी आवश्यकता के अनुसार ढाल दिया। शिक्षक को Paid servent बना दिया और शिक्षा को सरकार के अधीन कर दिया। हमें स्वावलम्बी न बनाकर सरकार मुखापेक्षी बना दिया गया। इस प्रकार शिक्षा-व्यवस्था को बदल कर हमारी रुचि, हमारे मानस को ही बदल दिया। वे हमारे दिल-दिमाग और घर में छा गये, हमारे आदर्श पुरुष बन गये। हमको अपना सब कुछ हेय, तुच्छ, त्याज्य लगने लगा। अंग्रेजों का, पश्चिम का सब कुछ श्रेष्ठ, ग्रहण योग्य, अनुकरणीय लगने लगा। अंग्रेजों का शासन भी हमें वरदान लगने लगा। हमारे भले के लिये है लगने लगा। अभी भी ऐसे लोग मिल जाएंगे, कहेंगे कि इससे तो अंग्रेजों का शासन अच्छा था। उसमें हम अधिक सुरक्षित थे।

और स्वाधीन भारत में अंग्रेजों के काल की बची-खुची भारतीयता को भी नष्ट करके और अधिक दोषपूर्ण बना दिया गया। अंग्रेजों के काल में गीता और रामायण पढ़ाई जाती थी उसे भी हटा दिया गया। 'ग' से गणेश के स्थान पर गधा कर दिया गया, बाद में गमला।

1947 में स्वतन्त्र भारत में भारत की शिक्षा को यूरोपीय पद्धति में ढाल दिया गया। नेहरूजी को भारत-भारतीयता से चिढ़ थी, घृणा थी। वे स्वयं अंग्रेजों से भी अधिक अंग्रेज थे, इसलाम, ईसाइयत, समाजवाद एवं रूस उनका आदर्श था। अतः शासन तंत्र को रूस के अनुसार ढाल दिया गया। शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम का फिर प्रो. हिमायु, कबीर, दोनों का भारत-भारतीयता से दूर का भी रिश्ता नहीं था। अतः शिक्षा पद्धति को यूरोपीय पद्धति में ढाल दिया गया। अंग्रेजों के काल में भारत-भारतीयता के जो अवशेष शेष बच गये थे उन्हें भी ढूंढ़-ढूंढ़ कर हटा दिया गया। भारत की शिक्षा-व्यवस्था को यूरोपीय पद्धति में ढालने के लिये यह तर्क दिया गया कि सब देशों ने एक समान शिक्षा-व्यवस्था के नाम पर यूरोपीय पद्धति की शिक्षा-व्यवस्था लागू कर दी है। जबकि यूरोपीय पद्धति की शिक्षा-व्यवस्था कुछ ही देशों में प्रचलित थी। सब देशों की अपनी-अपनी शिक्षा-व्यवस्था है और अपनी-अपनी ज्ञान-परम्पराओं से, अपने-अपने विद्वानों से, संस्कृति से सम्वाद करते हैं। इस प्रकार अंग्रेजों के काल में शिक्षा तंत्र को जो ग्रहण लगा था स्वाधीन भारत उससे मुक्त होने के बजाय और ज्यादा ग्रहणग्रस्त हो गया। जिस यूरोप की नकल पर यह शिक्षा-व्यवस्था लागू की उनके स्वयं के ज्ञान की परम्परा मात्र 300 वर्ष पुरानी है। इन तीन सौ वर्षों में इन्होंने खूब पुरुषार्थ किया उसका हम सम्मान करते हैं। हमने सत्य का द्वार, ज्ञान का द्वार सदा खुला रखा। भद्र विचार जहां से भी मिलें ग्रहण करें पर अपने ज्ञान की परम्परा की कीमत पर नहीं। इनके ज्ञान की परम्परा मात्र 300 वर्षों की है। इसके पूर्व ज्ञान की दृष्टि

से अंधकार का युग था। इनका इतिहास स्वयं इस बात को स्वीकार करता है। मध्य युग में यूनानी ज्ञान परम्परा से नाता तोड़ लिया था। अरस्तू-प्लेटो-सुकरात आदि का पढ़ाना अपराध था। इसके लिये मृत्युदंड का विधान था। इन्होंने स्वयं एलेक्जेंड्रिया का विशाल पुस्तकालय जिसमें सात लाख पुस्तकें थी जो यूनानी और भारतीय ज्ञान परम्परा का उस समय सबसे बड़ा केन्द्र था जिसे यह कहकर जला दिया यदि यह बाइबिल की समर्थक है तो व्यर्थ है, और उसकी विरोधी है तो कूफ़्र है, शैतान नष्ट होने ही योग्य है।

अब ये अपनी परम्परा को पुरानी दिखाने के लिए प्लेटो-अरस्तू आदि विचारकों से, यूनानी परम्परा से अपना नाता जोड़ रहे हैं और कह रहे हैं यूनान हमारे विचारों की जननी है, जबकि मध्ययुग में इनकी पढ़ाई शिक्षा से हटा दी गई थी। और इनको पढ़ना एक गम्भीर अपराध था। पढ़ाई का अधिकार केवल पादरियों को और राजकीय परिवारों को था। उनके कोई भी शिक्षक या प्रोफेसर पादरी होते थे। मिल, बेन्थम, मैक्यावली, एडमस्मिथ, डार्विन आदि पादरी थे। और पढ़ाई का विषय था—स्त्रियों में आत्मा नहीं होती। ये पुरुषों की सेवा के लिये, मन-बहलाव के लिये, मनोरंजन के लिये हैं। अगर ये ठीक से सेवा नहीं देती तो इनको कैसे-कैसे सजा देकर अमानुषिक ढंग से मारना था। कैसे कांटेदार चेयर पर बैठाना, खौलते हुए पानी या तेल में डालना आदि-आदि।

भारत में शिक्षा लाखों वर्ष पुरानी है, सर्वाङ्गीण है। चारों पुरुषार्थों से सम्बन्धित है। वाल्मीकि, व्यास, विदुर, भीष्म पितामह, प्रभु श्रीराम, श्रीकृष्ण, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य, भारद्वाज, चाणक्य, कपिल, सुश्रुत, वराहमिहिर, आर्यभट्ट आदि-आदि। तो हमारे लाखों वर्षों से ऋषि-महर्षि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, विद्वान् होते आये हैं उनसे आज कोई सम्वाद नहीं है। केवल यूरोपीयन विद्वानों से सम्वाद हो रहा है। इसमें बुरा कुछ नहीं है, पर अपनी परम्परा को अस्वीकार करने की कीमत पर नहीं। ज्ञान के द्वार खुले होने चाहिएं। सब ओर से भद्र विचार आयें। भद्र विचार को परखने की योग्यता स्वयं में स्थित होकर ही हो सकती है। तभी हम विचार कर सकेंगे कौन से पश्चिम के विचार, सम्वाद हमारे अनुकूल हैं, हमारे काम के हैं। उन्हें हम अपनी परम्परा में अपनी आवश्यकतानुसार ढाल कर स्वीकार कर पायेंगे। पर आज हम अपनी परम्परा में स्थित नहीं हैं, अपनी जड़ों से कटे हुए हैं। यही कारण है कि हम उनका कचरा स्वीकार कर रहे हैं न कि उनकी अनुकरणीय श्रेष्ठ बातों को। हम उनकी अपसंस्कृति को स्वीकार कर रहे हैं जिससे वे स्वयं परेशान हैं। वे स्वयं उससे उबरना चाहते हैं। उनमें जो श्रेष्ठता है वहां Work culture की पद्धति, ईमानदारी से परिश्रम का भाव है। अपने राष्ट्र, जाति, भाषा, वेश-भूषा पर जो गौरव का

भाव है जिसे हमें अपनाना चाहिए उससे हम वंचित हैं। यह तभी संभव होगा जब हम स्वयं में स्थित होंगे। तभी उनकी श्रेष्ठ बातों को स्वीकार कर सकेंगे और उनकी बुराइयों से बच सकेंगे, परहेज कर सकेंगे। इसके लिए हमें अपनी ज्ञान-परम्परा के साथ, हमारे ऋषियों, मुनियों, विद्वानों के साथ पुनः सम्वाद स्थापित करना होगा।

पश्चिम की ज्ञान-परम्परा तो तीन सौ वर्षों की है। अब उसे प्राचीन दिखाने के लिए यूनानी चिन्तकों से जोड़ रहे हैं। पर उन्होंने स्वयं ही यूनानी चिन्तकों को अस्वीकार कर दिया था। उनको पढ़ना अपराध था। मृत्यु दण्ड का विधान था। अब यदि यूनानी चिन्तकों को भी ले लेवें तो यूनानी चिन्तक अर्शमेदस के काल से न्यूटन के काल तक लगभग दो हजार वर्षों तक पश्चिम में ज्ञान-विज्ञान मृत हो गया था ईसाइयत के कारण। एक लम्बी कालावधि के बाद 18वीं शताब्दी से ज्ञान-विज्ञान की परम्परा प्रारम्भ होती है।

यूरोपीय शिक्षा पद्धति निरी भौतिकता पर आधारित अर्थ केन्द्रित है। इसमें केवल आजीविका को केन्द्र में रखकर के यह शिक्षा-व्यवस्था है जिसमें चरित्र को, आचरण को कोई स्थान नहीं है। इसलिये अधिकांश आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लोग सच्चे अर्थ में बुद्धिमान् न बनकर धूर्त ही बनते हैं। 'Modern western education is producing not wise man but only civilized crooks in 20th century' 20वीं शताब्दी सभ्य धूर्त पैदा कर रही है। यह शिक्षा सच को झूठ करने, झूठ को सच करने, सेवा के स्थान पर शोषण करने की प्रेरणा देती है अतः साक्षर के स्थान पर राक्षस बना रही है।

इससे उद्धार तभी सम्भव है जब हम अपनी गौरवशाली परम्परा को समझकर उसका मान करना अपना राष्ट्रीय कर्तव्य मानें। इसके लिए हमारी शिक्षा को पुनः सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक अधिष्ठान पर अधिष्ठित करना होगा जिसके अनुसार हम सब अमृत की संतान हैं, ईश्वर की संतान हैं-'जीवो ब्रह्म नापरः'। ईश्वर में जो गुण-सम्पदा निहित है, हम उनके पुत्र-पुत्री होने के नाते वे सभी गुण सम्पदा, यथा—अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति, अनन्त सौन्दर्य, अनन्त वैभव, अनन्त आनन्द, अनन्त प्रेम आदि हमारे अन्दर ही निहित हैं, हमारे अन्दर ही नारायण समाये हुए हैं, अनन्त पूर्णता, दिव्यता समायी हुई है। बस उसे साधना, शिक्षा, संस्कार, तपस्या, सत्संग, ध्यान-साधना आदि के द्वारा जगाना पड़ता है नहीं तो अन्तर के नारायण अन्तर में सोये हुए ही रह जाते हैं। अन्यथा सब कुछ हमारे अन्तर में ही समाया हुआ है।

एक फ्रेंच लड़की जो केवल अपनी मातृभाषा फ्रेंच ही जानती थी, वह बहुत खतरनाक रूप से बीमार हो गयी तथा एक सप्ताह बेहोश रही। जब उसकी बेहोशी

दूर हुई तब लोगों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह अपनी मातृभाषा फ्रेंच बिल्कुल भूल चुकी है और एक दर्जन अन्य भाषाओं को, जिनको उसने पहले कभी सुना भी नहीं था, अच्छी तरह पढ़ने, बोलने और लिखने लग गयी है। इस समाचार को सुनकर अनेक वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक उसके पास दौड़े गये और जब उन्होंने उस विषय में खोज की तो पाया कि उस समाचार में कुछ भी धोखा नहीं है। सब सत्य है। अन्त में उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा कि मस्तिष्क में सभी बातों का सम्पूर्ण ज्ञान रहता है, पर उसके प्रकाशन के दरवाजे बन्द रहते हैं जिन्हें खोलने के लिए विशेष चाबियों की आवश्यकता होती है।

कल्याण मार्च, 72, पृष्ठ 774

लेखक श्री शंकराचार्य श्री भारतीय कृष्णतीर्थ

स्पष्ट है शिक्षा तंत्र को पुनः भारतीय अध्यात्मिक अधिष्ठान पर अधिष्ठित करके ही शिक्षा की गरिमा पुनः स्थापित हो सकती है। तभी सुयोग्य राष्ट्रभक्त, आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान से परिपूर्ण नागरिक तैयार होंगे।

संस्कृत भारत की महारानी है, हिन्दी पटरानी और अंग्रेजी नौकरानी है।

—फादर कामिल बुल्के

× × ×

'सा विद्या या विमुक्तये'। अर्थात् विद्या वही है जो मुक्त करे। सच्ची शिक्षा वह है जो मानव को तुच्छता से, पशुता से, जड़ता से, स्वार्थ से और कमीनेपन से मुक्त कर सके। जो व्यक्ति आजकल की परिभाषा में शिक्षित होकर भी स्वार्थ, पशुता और कमीनेपन से मुक्त नहीं हो सकता वह सच्चे अर्थ में शिक्षित नहीं है। संस्कृति विहीन शिक्षा तो मात्र कुशिक्षा ही है।

—प्रो. हरवंशलाल ओबराय

भारतीय राष्ट्र जीवन में अवरोध

भारतीय संस्कृति में अवरोध

विगत हजार-बारह सौ वर्षों से स्थिति बदल गई—तो इस संदर्भ में यहां विचार कर लेना चाहिए कि विकास सीधी रेखा में सदैव नहीं चलता। वह चक्राकार चलता है। उत्थान-पतन के दौर के द्वारा हम विकास को प्राप्त होते हैं। चाहे वह व्यक्तिगत जीवन का या पारिवारिक जीवन का अथवा सामाजिक जीवन का या राष्ट्रीय जीवन का प्रसंग हो। पृथ्वीराज के समय से हम धर्माभास के शिकार हो गए। संघबल की, शस्त्रबल की उपेक्षा होने लगी। देवभक्ति और देशभक्ति एक, अखण्ड-अभिन्न न रहकर पृथक्-पृथक् वस्तुएं बन गईं क्योंकि देवभक्त तो हैं पर देश के प्रति गद्दारी भी कर रहे हैं—जयचंद, मानसिंह, जयसिंह आदि।

भारतीय वैदिक शास्त्र की परम्परा कहती है—यदि स्वयं का विकास करना है तो स्वयं से त्रुटि होने पर आत्मदण्ड की भावना होनी चाहिए। तभी आप पूर्णता की ओर बढ़ सकेंगे। मित्रों या अन्य रिश्तेदार आदि से त्रुटि होने पर उनके प्रति सहानुभूति, विश्वास, प्रेम व क्षमा की दृष्टि हो। उसको सुधरने का अवसर दिया जाना चाहिए। पर अपने देश, धर्म, संस्कृति के शत्रुओं के द्वारा त्रुटि होने पर उनके प्रति सावधान एवं कठोर दण्ड की दृष्टि होनी चाहिए। अन्यथा वह आपका और आपके साथ-साथ देश, धर्म, संस्कृति का सर्वनाश कर देगा।

पृथ्वीराज चौहान का 'विनाशाय च दुष्कृताम्' को भुलाकर मुहम्मद गोरी को 17-17 बार क्षमा करना सद्गुण नहीं था। वीर सावरकर के शब्दों में सद्गुणविकृति का परिचय दिया। जिसने न केवल स्वयं के लिए वरन् देश के लिए पराधीनता का द्वार खोल दिया। जो उदारता एवं सद्गुण विवेक के सांचे में, वैदिक सांचे में ढली न हो वह पशुता और पराधीनता में ले जाती है। शत्रु को आपने पशु बनने का अवसर दिया और स्वयं के लिए पराधीनता के द्वार खोल दिए तो यह उदारता, क्षमा व प्रेम, अहिंसा आदि आध्यात्मिक सद्गुण न रहकर सद्गुणविकृति बन जाते हैं। वह सद्गुण आपको ऊपर उठाने वाला न होकर नीचे गिराने वाला बन जाता हो। कुछ लोगों ने आध्यात्मिक सद्गुणों को ही हमारी पराजय का कारण

मान लिया। पर यह सोचने का गलत ढंग है। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, संतोष, शम, दम, तप, क्षमा, मानवीयता आदि हमारे आध्यात्मिक सद्गुण हैं। अपने घर को सजा-संवार कर रखना अच्छा गुण है। उसमें सुन्दर पुष्पवाटिका लगाना अच्छा गुण है। शत्रु अपनी पुष्प वाटिका को उजाड़ देगा, आक्रमण करेगा अतः पुष्पवाटिका ही न लगाएं यह मूर्खता है। हमारी मां-बहनों के सुन्दर चेहरों को गुण्डों के भय से उसके चेहरे पर तेजाब डालकर उसकी सुन्दरता को नष्ट नहीं कर देवें, सुन्दरता उसका गुण है। अध्यात्म हमारा गुण है। जैसे पुष्पवाटिका की रक्षा के लिए कंटीली झाड़ियां लगाने की आवश्यकता है जिससे पशु या नरपशु उजाड़ न सकें, उसे चर न सकें। हमने यही भूल की कि आध्यात्मिक सद्गुण का संवर्धन तो किया पर उसकी रक्षा की व्यवस्था नहीं की। कंटीली झाड़ियां नहीं लगाई। फिर स्वामी रामतीर्थ कहते हैं—यथार्थ को, व्यावहारिकता को भूल गए कि कहां क्षमा, दया आदि का प्रयोग करना चाहिए और कहां दण्ड का, क्रोध का प्रयोग करना चाहिए, कहां अतिथिधर्म का पालन करना चाहिए और कहां दण्ड का? इसे भुला दिया। महमूद गजनवी सोमनाथ मन्दिर को लूटकर वापस जाने के उपक्रम में राजस्थान की मरुभूमि में भटककर अन्न-जल के अभाव में अपना प्राण छोड़ रहा था तो ग्रामवासियों ने अपना विचित्र अतिथिधर्म निभाकर उसके अन्न जल की व्यवस्थाकर उन्हें सुरक्षित निकलने का मार्ग बता दिया। जयचन्द ने 'वयं पंचाधिकशतं' के विरुद्ध मुहम्मद गोरी का साथ देकर युधिष्ठिर महाराज के मंतव्य को भुला दिया। युधिष्ठिर महाराज कहते हैं भाइयों में आपस में लाग-डांट रहती है। इस समय कौरव एक सौ हैं और हम पांच। किन्तु किसी तीसरी शक्ति या विदेशी शत्रु को इसका लाभ नहीं लेने देंगे, तब हम 105 हैं। वे हमारे घर पर, देश पर आक्रमण करें, इसको हम नहीं सहेंगे। भीम और अर्जुन को आदेश दिया—तुरत जाओ और दुर्योधन को गंधर्वों से मुक्त कराओ। ऐसे ही सम्राट अशोक का व्यक्तिगत रूप से संन्यास या भिक्षुपद स्वीकारना श्रेयप्रद होता, पर राजा कि रूप में इसे स्वीकारना और सम्राट पद पर बने रहना गलत था। फिर सेनाओं में अहिंसा का प्रचार करना और भी गलत था। इन्हीं त्रुटियों ने विदेशी आक्रांताओं को देश पर आक्रमण के लिए प्रोत्साहित किया? और देश देशी-विदेशी शत्रुओं का चारागाह बना तथा देश में अराजक स्थिति बनी।

अतः सद्गुणविकृति में राष्ट्रीय चरित्र के दुर्बल होने से एक साथ मिलकर शत्रु का सामना नहीं किया और गद्दारी, धर्माभास से शत्रु की प्रकृति को समझने का प्रयास नहीं किया। फलतः हम अपनी प्रकृति के अनुरूप धर्म युद्ध और वे कपट युद्ध कर, सन्धियों को तोड़ते रहे। यही सब हमारी पराधीनता के कारण रहे हैं। हमने अपने भोलेपन के कारण इसलाम को धर्म के नाम पर तीर्थों में स्थान दे दिया। जिस

समय बाबर पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी को मारकर बादशाह बना, उस समय श्रीरामजन्मभूमि देवालय की प्रधान पीठ पर महात्मा श्यामानन्दजी महाराज आसीन थे। उनके मन में हिन्दू-मुसलमान का कोई भेदभाव था नहीं, उनकी सरलता का लाभ उठाकर मुगलों का एक गुप्तचर कजल अब्बास उनका शिष्य बनकर रहने लगा। अपनी पैठ जमाकर अपने दूसरे साथी को भी बुला लिया और वह भी जलालशाह सूफी फकीर के नाम से वहीं आ बैठा और षड्यंत्रों का जाल शुरू हुआ। इन दोनों ने बाबर को श्रीराम जन्मभूमि विध्वंस के लिए उकसाया और उसकी अन्तिम परिणति श्रीराम जन्मभूमि के विध्वंस के रूप में हुई बाबर द्वारा नियुक्त सेनापति मीर बाकी के द्वारा। ऐसी ही कथा सोमनाथ के साथ है। शेखसादी ने अपनी पुस्तक 'बोस्तु' में लिखा है कि सोमनाथ में जाकर वह कुछ दिन के लिए हिन्दू बनकर वहां रहा। वह लिखता है कि ऐसे कितने ही मुसलमान फकीर थे जो हिन्दू बनकर सोमनाथ मन्दिर में रह रहे थे और वहां की सूचनाओं को वे काबुल और बगदाद भेजते थे और समय आने पर सोमनाथ को लुटवाने में सहायता की। इस प्रकार हम धर्माभास के शिकार बने और यही स्थिति आज भी बनी हुई है। इसलिए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—पिछले हजार वर्षों से हमने भावुकतापूर्ण मृदु इतिहास की रचना की जिसे निचोड़ा जाए तो केवल आंसू टपकेंगे, दुःख ही होगा। हम रुई के ढेर बन गये थे और शत्रु ने तब हमें मसल दिया। महर्षि दयानन्द सरस्वती के शब्द हैं—हम केंचुआ बन गये थे कि जिसने चाहा उसने हमें मसल दिया।

पारसी समाज को भारत में प्रवेश देते समय विवेक का परिचय दिया। हम सजग थे जबकि वे हमारे ही अंशज-वंशज थे। उन्होंने यहां रहने की अनुमति चाही तो राजा ने दूध का गिलास भेजा। तो पारसी समाज ने उसमें चीनी डालकर संदेश दिया कि हम दूध के साथ घुल-मिलकर रहेंगे। तब राजा ने पांच शर्तों पर रहने की आज्ञा दी—(1) पारसी अपने शस्त्रों का उपयोग नहीं करेंगे। (2) पारसी राजनीति में भाग नहीं लेंगे। (3) पारसी महिलाएं गुजराती स्त्रियों जैसा वेश धारण करेंगी। (4) पारसियों की विवाह विधि अवस्ता भाषा में रहेगी किन्तु इसका अनुवाद संस्कृत भाषा में करना पड़ेगा। विवाह के रीति-रिवाज बिल्कुल गुजराती संस्कृति जैसे होंगे। (5) पारसी धर्मान्तरण करेंगे नहीं। यानी किसी भी हिन्दू को पारसी बनाने का अधिकार नहीं होगा।

इन शर्तों का पारसियों ने नेक नीयती से पालन किया। इस तरह उनका धीरे-धीरे भारतीयकरण होता चला गया और आज वे भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग बन गए। और आज भी पारसी समाज में विवाह के अवसर पर पिता-पुत्र से प्रतिज्ञा करवाता है—हमने वचन दिया है कि हम हिन्दू समाज के साथ घुल-मिलकर रहेंगे, दूध में चीनी की तरह। और आज तक उसका वे निर्वाह करते आये हैं और

उन्हें कभी भी अपनी पहचान का या अन्य संकट खड़ा नहीं हुआ। पर इसलाम व ईसाइयत को प्रवेश देते समय विवेक का परिचय नहीं दिया। दूसरे परिवार में बेटी देते समय, पार्टनरशिप में व्यवसाय करते समय कितने सजग रहते हैं व्यक्तिगत स्तर पर। पर राष्ट्रीय संदर्भ में इसलाम एवं ईसाइयत के संदर्भ में विचार ही नहीं किया। ये पंथ भी हैं या नहीं। इनका स्वयं के संदर्भ में और विश्वसंदर्भ में विचार क्या है, इतिहास क्या है, चरित्र क्या है? निरन्तर हजार वर्षों से आक्रमण करते चले आए पर फिर भी इनकी प्रकृति को न पहले और न आज समझने का ही प्रयास किया। और हम उनसे हमेशा धर्मयुद्ध करते रहे और ये हमसे कपट-युद्ध। वे धोखा देते रहे, सन्धियां व वचन तोड़ते रहे, हम अपनी सेना में उनको पालते रहे और वे ऐन मौके पर धोखा देते रहे। 712 ई. से भारत पर निरन्तर आक्रमण कर सन् 1947 में दुनिया का सबसे बड़ा इस्लामिक राष्ट्र पाकिस्तान बना लिया और नारे लगाए—हंस के लिया है पाकिस्तान, लड़कर लेंगे हिन्दुस्तान। और आज भारतविभाजन जैसी स्थिति पुनः निर्माण कर दी है। ऐसी ही स्थिति चर्च व पादरियों से प्रेरित ईसाइयों ने भी निर्माण कर दी है। वे भी निरन्तर भारत को घेरते जा रहे हैं। ऐसे ही चीन जो भारत को गुरु मानकर वंदना करता था, वहां कम्यूनिस्ट शासन के स्थापित होने के पश्चात् उसकी भी प्रवृत्ति बदल गयी और वह शत्रुराष्ट्र के रूप में परिणत हो गया है और अपने देश से हिन्दुत्व के चिह्नों को मिटा दिया। ये तीनों धाराएं (ईसाई-इसलाम और कम्यूनिस्ट) कृतघ्नता की धाराएं हैं जो सारे विश्व में परस्पर लड़ रही हैं पर भारत में तीनों ने समझौता कर देश को बांट रखा है और भारत को खण्ड-विखण्ड कर देना चाहती हैं।

अंग्रेजों के पूर्व के आक्रान्ता हमारे मन में, हमारे घर में प्रवेश नहीं कर पाए। वे अपनी श्रेष्ठता स्थापित नहीं कर पाए। वे हमारे लिए म्लेच्छ ही बने रहे। पर अंग्रेज अपनी कूटनीति के द्वारा हमारे मन में, हमारी बुद्धि में छा गए। अपनी श्रेष्ठता की छाप हम पर अंकित कर दी। वे हमारे आदर्श पुरुष बनकर हमारे मन में, हमारे घर में, हमारी वेश-भूषा, खान-पान आदि सबमें प्रवेश कर गए।

पर स्वाधीनता के बाद स्थिति बदलनी चाहिए थी। गांधीजी ने अंग्रेजों के मानसपुत्र पंडित नेहरू को अपना उत्तराधिकारी चुनकर स्वयं अपने तथा हमारे सांस्कृतिक पुरुषों, स्वतंत्रता सेनानियों आदि सबके कार्यों पर पानी फेर दिया। नेहरूजी कम से कम Accidental हिन्दू तो थे। अब उनकी वर्तमान वंशज सोनियाजी में दूर-दूर से भी हिन्दुत्व का कोई रिश्ता नहीं रहा है। मानो बीज नाश हो गया, ऐसा लगता है।

संविधान में भी उलटी गंगा बहायी गई। जिनके कारण देश हजार वर्ष से पददलित रहा, पराधीन रहा, देश विभाजित हुआ; उसमें से कोई देश

को इसलाम की झोली में तो कोई ईसा की झोली में डालना चाहता है। जो नागरिक बनने का अधिकारी नहीं है, दण्ड के पात्र हैं उन्हें ही विशेष सुविधा, संरक्षण दिया। किन्तु जो इस देश का पुत्र समाज है जिसके कारण आज भी देश हिन्दुस्तान है, भारत है वे (हिन्दू) अपने ही देश में 2 नं. के, 3 नं. के, 4 नं. के नागरिक बन गए हैं।

पृथ्वीराज के समय तो हम केवल धर्माभास के शिकार थे पर अपनी संस्कृति, अपनी मूल परम्परा से जुड़े हुए थे। पर आज न केवल धर्माभास के शिकार हैं वरन् अपनी मूल परम्परा से, संस्कृति से भी कट गए हैं। अतः मतिभ्रम के शिकार हैं। हम अपनी सांस्कृतिक विरासत को छोड़ रहे हैं। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में गतिरोध उत्पन्न हो गया है और आज हिन्दू बलिदान देना, मर-मिटना भूल गया है। जो जाति मरना भूल जाती है वह अपने आदर्श और अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकती। आज हिन्दू व्यक्ति और परिवार के नाते जी रहा है राष्ट्र के नाते नहीं। किन्तु जिसका राष्ट्र सुरक्षित नहीं उसका पेट और परिवार सभी कुछ छिन जाता है और वह रोम, मिस्र, बेबीलोनिया की कहानी को दोहराता है। अतः अगर हम स्वाभिमान के साथ राष्ट्र के रूप में जीवित रहना चाहते हैं तो हमें अपने प्राणों का मोह छोड़कर प्राण विसर्जन के लिए तत्पर रहना होगा। सुभाष बोस के शब्दों में, 'तुम मुझे खून दो मैं तूझे आजादी दूंगा' इस भाव को अपने जीवन में लाना होगा। 1200 वर्षों से अवरुद्ध 'विनाशाय च दुष्कृताम्' कार्य को हाथ में लेना होगा। वीरता का खून देना होगा, नहीं तो कायरता का रक्त भी देंगे और पराधीनता को भी भोगेंगे जैसा कि मुगल काल में, ब्रिटिश काल में उनकी सेना बनकर अपना रक्त देकर अपनी पराधीनता को स्थिर किया। अतः भगवान् राम, कृष्ण व आद्यशंकराचार्य की दृष्टि को पुनः अपनाना होगा। तब फिर आपकी ओर बुरी दृष्टि से नजर डालने की हिम्मत कोई कल्पना में, स्वप्न में नहीं कर सकेगा जैसा कि हम प्राचीन भारत में पाते हैं।

सुमित्रानन्दन पंत के शब्दों में हिन्दुओं में, जीने की इच्छा दृढ़ नहीं है। हिन्दू लोग जीवन के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं। वे लोग असंदिग्ध रूप से इहलोक की अपेक्षा परलोक में अधिक विश्वास करते हैं। उनमें जीवन की इच्छा का अभाव है और इसी कारण उसमें साहस की भावना भी नहीं है।' फ्रांस की क्रान्ति के रूप में डाल्टन का नारा था—'साहस करो, अब भी साहस करो, सदा ही साहस करो।'

यदि हिन्दू भारत जीवित रहना चाहता है तो इसे यह शूरता और आक्रामकता का संदेश ग्रहण करना होगा। वीरतापूर्ण जीवन का यह तो पुरातन वैदिक संदेश ही नये आवरण में है। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' केवल वीर और साहसी ही पृथ्वी का उपभोग करते हैं। आक्रमणशीलता जीवन है, इसका अभाव मृत्यु है।

हिन्दुओं का दृष्टिकोण प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में 'जाने दो भाई' की वृत्ति का है, मानो इस जीवन का उनके लिए कोई अर्थ नहीं है। इस वृत्ति का त्याग करना होगा।

डॉ. अबुल कलाम ने अपनी पुस्तक इण्डिया मिशन 2020 में हमारी पांच सभ्यतागत कमजोरी को गिनाया है—1. अत्यधिक सहनशीलता और अल्प अनुशासन। हम सहनशीलता पर गर्व करते हैं। अत्यधिक सहनशीलता कोई सद्‌गुण नहीं है इतिहास ने बार-बार हमें सिखाया है। 2. प्रतिकार प्रतिशोध के भाव का अभाव। हम प्रतिशोध ले नहीं सकते। ईसा-मसीह ने ईसाइयों को कहा कि अगर कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो तुम दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो। परन्तु ईसाई सभ्यता ने ऐसा कभी नहीं किया। हमारी पूरी सभ्यता में ऐसा किसी ने नहीं कहा, न किसी भगवान् ने, न किसी सद्‌ग्रंथ ने कि 'अगर कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो तुम दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो' परन्तु हम हमेशा ऐसा ही करते हैं, हममें प्रतिशोध लेने की भावना नहीं है यह दूसरी सभ्यतागत न्यूनता है। 3. अतिथि देवोभवः—विदेशियों, विधर्मियों को स्वीकार करने में अत्यधिक लचीलापन। बाहर से कोई भी आये—चाहे दूसरा धर्म हो, चाहे दूसरा राजा अथवा कोई पूर्णतया अजनबी, उनकी ओर तुरन्त श्रद्धामय हो जाते हैं, जबकि अपने ही लोगों को स्वीकार करने में हम कम उदार होते हैं। 4. वंशवाद के प्रति मोह। 5. साहसिक कार्यों की बजाय व्यक्तिगत सुरक्षा को महत्त्व देना।

डॉ. रमेश चन्द्र यादव 'कृष्ण' कहते हैं 712 ई. में भारत के द्वार पर एक अन्य विदेशी जाति प्रकट हुई। यह जाति पूर्ववर्ती सब जातियों से भिन्न थी। अब तक यूनानी, पार्थियन, सीथियन, शक, यूची, हूण आदि जिन विदेशी जातियों ने भारत पर आक्रमण किया था, उन्होंने कुछ समय भारत में रहने के पश्चात् यहां की संस्कृति और धर्म को अपना लिया था। वे नाम, भाषा, धर्म, व्यवहार, विचार, रीति-रिवाज और वेश-भूषा सभी दृष्टियों से यहीं की बन गई थी।

परन्तु इस समय अरब तुर्क और मुगलों के रूप में जो मुसलमान भारत आये वे यहां के बनकर न रहे। उन्होंने यहां की संस्कृति को अपनाने के बजाय समानांतर रूप में अपनी पृथक् संस्कृति स्थापित की। अपने को भारतीय न कहकर विदेशी कहलाने में गौरव समझा। भारतवर्ष की समृद्धि से प्रसन्न होने के बजाय यहां की सम्पत्ति को लूट-लूट कर गजनी और काबुल के राजकोशों को भरने में आनन्द अनुभव किया। परिणाम यह हुआ कि भारत में दो पृथक् संस्कृतियां स्थापित हो गई और दोनों की खाई इतनी गहरी हो गई कि बड़े से बड़ा प्रयत्न भी उसे भेदने में असमर्थ हुआ है।

चन्द्रगुप्त वेदालंकार-बृहत्तर भारत, पृष्ठ 38-39 में कहते हैं—'सब समयों में मुसलमानों के हृदयों में एक भिन्न धारा बहती रही है। आज भी उनकी यही दशा है। प्रार्थना, प्रबन्ध, कानून, शिक्षा—सभी विषयों में उनके मुख अरब, ईरान और मिस्र की ओर मुड़े हुए हैं।'

डॉ. रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 398 में कहते है—'मुसलमान-मात्र की दृष्टि में अरब और ईरान ही इसलाम के असली देश थे। भारत के मुसलमान मन से सपना अरब और ईरान का ही देखते थे। हिन्दुस्तान उनके शरीर का घर था, आत्मा का घर अरब और ईरान था।'

मेरे मौला बुला ले मदीना मुझे।

वी.एस नायपाल ने धर्मान्तरित देशों के सर्वेक्षण भेंट के आधार पर बताया है कि मत-धर्म बदलने पर व्यक्ति समूह अपने सम्पूर्ण अतीत, पुरखे, खून परम्परा को पूर्णतः भूलकर—दफनाकर अरबों-ईरानी रंग में रंग जाता है।

पाक उपन्यासकार आतिश तासीर कहते हैं—'हमें पाकिस्तान के मूल विचार की उस केन्द्रीय अवधारणा को देखना होगा, जो हर भारतीय चीज को नकारती है, उसकी संस्कृति को, इतिहास को।

जैसे ही देश विभाजित हुआ पाकिस्तान में हिंसा शुरू हो गई और यह स्पष्ट हो गया कि पाकिस्तान में गैर-मुस्लिमों (हिन्दुओं) के लिए कोई स्थान नहीं है।

पाकिस्तान के पास कोई सच्ची राष्ट्रीय पहचान नहीं है, इसलिए खुद को भारत के विरोधी के रूप में परिभाषित करता है। आजादी से पहले मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के बीच जो साझा चीजें थी, वह उन सबसे मुंह मोड़ लेता है। पहनावे से लेकर तीज-त्योहार शादियों के रीति-रिवाज और साहित्य तक हर चीज शक के दायरे में है। पाकिस्तान इस उपमहाद्वीप से जुड़ाव की अपनी सारी निशानियां मिटाने के काम में लगा है, क्योंकि कई लोगों को लगता है कि यह जुड़ाव ही जहर है।

मोहम्मद करीम छागला ने कहा था कि वे मजहब से मुसलमान हैं और कौम से हिन्दू हैं।....इस ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सत्य को—मुस्लिम मुल्ला तथा बुद्धिजीवी सबने—छागला के कथन को ठुकरा दिया। वे काफिर करार दिए गए।

अभी-अभी गुजरात के मौलाना गुलाम मोहम्मद वस्तानवी, दारुल उलूम, देवनन्द के कुलपति नियुक्त हुए थे। उन्होंने गुजरात के विकास को स्वीकार किया। परिणाम यह हुआ कि मजलिस-ए-शूरा ने इस बयान को मुस्लिम विरोधी मानकर उन्हें पद से बर्खास्त कर दिया।

राष्ट्रपति डॉ. अबुल कलाम के विषय में कहते हैं—इनमें इसलाम का क्या है? जब तक वे जिहाद की भाषा न बोले, राष्ट्र के विरुद्ध न बोले वह मुसलमान कैसे? सुप्रसिद्ध गांधीवादी चिंतक आचार्य धर्मपाल जी कहते हैं—'इसलाम का घोषित लक्ष्य दारुलहर्ब का विध्वंस और विनाश कर सम्पूर्ण विश्व में दारुल इसलाम प्रस्थापित करना है। सम्भवतः इसी कारण महात्मा गांधी को भी यह कहना पड़ा था कि 'इसलाम की सदियों से साम्राज्य विस्तार की परम्परा रही है। आचार्य धर्मपाल ने इस विषय में भारतीय मनीषा को स्पष्ट करते हुए लिखा है—विश्व के ऐसे स्थायी शत्रुभावापन्न समूहों, समाजों, आदर्शों आदि के उदय व विस्तार के बारे में भारतीय मनीषा सदैव प्रायः अनजान बनी रही जो दूसरे समाजों का विध्वंस कर पूर्ण अधीन बनाकर उन्हें अपने अनुरूप रूपान्तरित करना अपना परम पुरुषार्थ या कर्तव्य मानते हैं। इसी में जीवन का वैभव देखते हैं।

यही कारण है कि भारत पर 712 ई. से निरन्तर आघात कर 1947 ई. में दुनिया का सबसे बड़ा इस्लामिक राष्ट्र पाकिस्तान बना लिया। बचे-खुचे भारत को भी इसलाम की झोली में डालने के लिए निरन्तर आघात जारी हैं। अपराध पर अपराध किये जा रहे हैं। उनको दण्डित, शमित करने के स्थान पर भारत के पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह कहते हैं—'भारत के सारे संसाधनों पर पहला हक मुसलमानों का है।'

यही स्थिति ईसाइयों की है। उनका भी स्पष्ट लक्ष्य है। कोई दुराव-छिपाव नहीं है—देश की राजधानी दिल्ली में आकर पोप घोषणा कर जाते हैं—जिस प्रकार प्रथम सहस्राब्दी में ईसाई मत की स्थापना यूरोप की धरती पर की गई थी, और दूसरी सहस्राब्दी में अमेरीका और अफ्रीका की धरती पर, उसी प्रकार हम प्रार्थना करते है कि तीसरी सहस्राब्दी में इस विशाल एवं महत्त्वपूर्ण एशिया महाद्वीप में हम बड़े विस्तृत स्तर पर लोगों को अपने मत में परिवर्तन कर लेंगे।

मध्य प्रदेश सरकार द्वारा नियुक्त नियोगी कमीशन की रिपोर्ट में डॉ. बी.एम. नियोगी कहते हैं—भारत में ईसाइयों द्वारा धर्मान्तरण, ईसाई पंथ के प्रभुत्व को पुनः स्थापित करने की एक-समान वैश्विक नीति का अंग है। इसका मूल प्रयोजन है कि इसके माध्यम से पश्चिम का राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया जा सके। यह किसी आध्यात्मिक लक्ष्य से प्रेरित नहीं है। प्रत्यक्षतया उनका उद्देश्य यह है कि ईसाई बहुल क्षेत्र स्थापित किये जाएं ताकि गैर-ईसाई समुदायों की एकता को भंग किया जा सके। इस दुर्भावनापूर्ण उद्देश्य से जनजातियों के एक बड़े वर्ग का सामूहिक धर्मान्तरण राज्य की सुरक्षा के लिए एक भारी संकट का सूचक है। इन्हें अपनी पड़ताल एवं साक्षियों में एक भी ऐसा धर्मान्तरित ईसाई नहीं मिला जो बिना किसी लोभ-लालच की प्रेरणा के ईसाई बना हो।

नेता तो उसे कहते हैं जो भविष्य में आने वाले षड्यंत्रों व संकटों को भांप लेंवे। पर जिनकी स्पष्ट घोषणायें हैं, खुला कार्यक्रम है और जिनकी सारी दार्शनिक अवधारणायें त्रुटिपूर्ण है, विकारों, पैशाचिकता को लिए हुए हैं अतः उनको दण्डित शमित करने के स्थान पर उसे न केवल हिन्दुओं के समानांतर रखा जा रहा है, वरन् उन्हें विशेष, मानकर जितने भी जघन्य से जघन्य अपराध करे, उनकी अनदेखी कर उन्हें ही विशेष सुविधा और संरक्षण का क्रम निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

चीन का भी स्पष्ट घोष है। माओ कहते हैं भारत हथेली है, और तिब्बत, नेपाल, म्यांमार, श्रीलंका, पाकिस्तान ये भारत के पड़ोसी देश पांच अंगुलियां हैं, जिसके द्वारा विश्व को नियंत्रित कर सकता हूं। तिब्बत को वह खा चुका है। नेपाल, पाकिस्तान को वह अपने प्रभाव में ले चुका है। अन्दर और बाहर दोनों तरफ से वह भारत को घेरता जा रहा है और निरन्तर भारत की सीमा का अतिक्रमण करता जा रहा है। हमारी अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता जा रहा है और इन सबकी अनदेखी हो रही है, वह भारत को खण्ड-खण्ड कर देना चाह रहा है, पर हम उसके प्रति सजग और सावधान नहीं हैं। और हिन्दुओं का जनमानस ऐसे विघातक तत्त्वों को न जानना चाहता है, न सुनना चाहता है, बस बिना जाने-समझे ही सभी मानव हैं, सभी समान हैं एक हैं की रट लगाये हुए है—ऐसा मानस भारतीय संस्कृति की रक्षा, विकास और प्रसार में सबसे बड़ी बाधा है। यदि इससे बचना चाहते हैं तो वीर सावरकर को याद करना होगा। वीर सावरकर कहते हैं राजनीति का हिन्दूकरण और हिन्दुओं का सैनिकीकरण अब इतना और जोड़ देवें सैनिकों का आधुनिकीकरण नहीं किया जायेगा तब तक भारत की स्वाधीनता, उसकी सभ्यता, संस्कृति कदापि सुरक्षित नहीं रह सकेगी। प्रत्येक हिन्दू को सैनिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाय।

इसलाम से हम निरन्तर आघात पर आघात पा रहे हैं फिर भी हमने उनको कभी जानने का प्रयास नहीं किया। सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द ने इसलाम को जानने का प्रयास किया और सत्यार्थ प्रकाश का एक अध्याय उसी पर है। तत्पश्चात् वीर सावरकर ने इसलाम का सम्यक् अध्ययन किया और निष्कर्ष स्वरूप कहते हैं—With you, without you Inspite of you अर्थात् यदि तुम आओ तो तुम्हारे साथ, यदि तुम नहीं तो तुम्हारे बिना, यदि तुम विरोध करो तो उसकी अवहेलना करते हुए, मैं अपना कार्य निरन्तर करता रहूंगा। यही बात प्रकारान्तर से रूस के राष्ट्रपति श्री ब्लादिमिर पुतिन ने 4 फरवरी, 2013 को रूस की संसद मतलब डयूमा में दिए भाषण में कहा कि रूस में रूसी रहते हैं, कोई अल्पसंख्यक समुदाय यदि रूस में रहना चाहता है, रूस में काम करने की इच्छा है और रूस का अन्न भक्षण करता है, तो उसे रूसियों के समान ही बोलना होगा और रूस के कानून का आदर करना होगा। उन्हें शरीयत का कानून पसंद है, तो हमारी उनसे विनती

है कि वे जहां ये कानून लागू है, उस स्थान पर जाएं। रूस को अल्पसंख्यकों की आवश्यकता नहीं। अल्पसंख्यक को रूस की आवश्यकता है। हम उन्हें कोई विशेषाधिकार नहीं देंगे, या उनकी इच्छा के अनुरूप कानून नहीं बनाएंगे, फिर वे भेदभाव के नाम से कितना ही शोर क्यों न मचायें। पुतिन के इस वक्तव्य का सभी राजनीतिक दलों के नेताओं ने तालियों के साथ स्वागत किया।

केवल वे जो इतने शक्तिशाली हैं कि न केवल अपनी रक्षा कर सकते हैं, वरन् शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न कर सकते हैं—शान्ति, अनाक्रमण और अहिंसा की बात कर सकते हैं।

इन चारों बातों को अमल में लाकर ही हम अपने अस्तित्व और आदर्शों की रक्षा करते हुए स्वाभिमान के साथ खड़े होकर विश्व में अपनी योग्य भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं।

पर दुर्भाग्य से चारों बातों की उपेक्षा हो रही है। राजनीति का हिन्दूकरण (अर्थात् राष्ट्रीयकरण) न होकर इसलामीकरण, ईसाईकरण, पश्चिमीकरण, अपराधीकरण और परिवारीकरण हो रहा है। हिन्दू तो सोचता है मैं तो अपने घर में हूं, अन्यों के प्रति उसके मन में कोई दुर्भाव है नहीं अतः अपने भोलेपन में लाठी से भी रहित है और मुसलमान अवैध हथियारों से लैस हैं। फिर हिन्दुओं में हम दो, हमारे दो और मुसलमानों में हम पांच हमारे पचीस! हिन्दू के एक ही बेटा होने से कौन उसे पुलिस में या सेना में भेजगा? स्वतः पुलिस व सेना मुसलमानों के हाथ में चली जायेगी अतः यह स्थिति अधिक दिनों तक रही तो भारत एक म्यूजियम की वस्तु, पुरातत्त्व की वस्तु, इतिहास एवं भूगोल की वस्तु बनकर रह जायेगा।

बौद्ध धर्म, जैन धर्म एवं गांधीजी की अहिंसा की अतिरेकी व्याख्या ने हिन्दू समाज को क्षात्रतेज से च्युत कर निस्तेज कर रही है। अहिंसा की विकृत व्याख्या का परिणाम है भगतसिंह जैसे स्वाधीनता सैनानियों को आतंकवादी और जो वास्तव में आतंकवादी हैं उन्हें अपने धर्म का पक्षधर कहा जा रहा है। स्वामी श्रद्धानन्दजी के हत्यारे को भाई अब्दुल रसीद कहते हैं उसके हत्या कर्म के लिए परिवेश को दोषी मानकर कहा गया कि उसने तो अपने धर्म के अनुसार कार्य किया। वास्तव में पूर्णता या सर्वाङ्गता का दर्शन वैदिक सनातन धर्म में ही होता है—इससे जो जितना निकट है चाहे वह बौद्ध धर्म है, चाहे जैन धर्म है, चाहे गांधी मत है वह उतना पूर्ण है और जो जितना दूर है उसमें उतनी अपूर्णतायें है, विकार का शिकार है।

धर्मनिरपेक्षता की विकृत व्याख्या हिन्दू समाज को धर्म से च्युत कर रही है और जो अराष्ट्रीय पंथ है उसे और उद्दण्ड बना रही है तथा गैर जिम्मेदार बना रही है।

आज हम अपने धर्म से च्युत और पश्चिम की अपसंस्कृति के शिकार हो रहे हैं, इससे निरे भौतिक जीवन मूल्यों को प्रश्रय मिल रहा है जिसमें श्रेष्ठ जीवन मूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं बचता। केवल कॅरिअर और कॅरिअर के पीछे दीवाने होते जा रहे हैं कर्तव्यवाद के स्थान अधिकारवाद का बोलबाला होता जा रहा है। भारतीय संस्कृति कर्तव्य प्रधान है। सभी अपने-अपने कर्तव्य का पालन करें तो सभी के अधिकार स्वतः सुरक्षित हो जाते हैं। पर आज कर्तव्य गौण अधिकार भाव प्रबल होता जा रहा है।

ये सब भारतीय संस्कृति के मार्ग में अवरोध हैं। जिसे सनातन हिन्दू धर्म के प्रकाश में दूर करने की आवश्यकता है।

इस प्रकार भारत के दो रूप स्पष्ट सामने आते हैं। एक अजर-अमर, शाश्वत भारत जो वेद, उपनिषद्-गीता पर आधारित है, प्राचीन भारत है, वेदोक्त भारत है जिसे सारा विश्व श्रद्धा से, सम्मान से देखता है, उसी से मार्गदर्शन की अपेक्षा रखता है। दूसरा आज का पथच्युत, रोगग्रस्त, भ्रष्ट, चरित्रहीन, धर्माभास का शिकार भारत जिसमें हम और आप आज रहते हैं। आज हम महान् संस्कृति, महान् देश के बौने पुत्र सिद्ध हो रहे हैं। यदि इससे उबरना चाहते हैं—रोम, मिस्र, बेबीलोनिया की कथा नहीं दोहराना चाहते हैं तो प्रत्येक हिन्दू को डॉ. एनी बीसेन्ट की बात को गांठ बांध लेनी चाहिए—भारत और हिन्दुत्व की रक्षा भारतवासी और हिन्दू ही कर सकते हैं। बाहरी लोग आपकी चाहे जितनी भी प्रशंसा करे, आपका उद्धार आपके ही हाथ में है। आप किसी प्रकार के भ्रम में न रहें। भारत और हिन्दुत्व एक और अभिन्न है। हिन्दुत्व के बिना भारत का कोई अस्तित्व नहीं है, कोई भविष्य नहीं है। हिन्दुत्व ही वह मिट्टी है जिसमें भारतवर्ष का मूल खजाना गड़ा हुआ है। यदि यह मिट्टी हटा ली गयी तो भारतरूपी वृक्ष सूख जाएगा। भारत में प्रश्रय पाने वाले अनेक पंथ है, जातियां हैं। जिस प्रकार पारसी समाज आया, वैसे ही चला जाए तो भारत भारत ही रहेगा। ऐसे ही यहूदी, इसलाम, ईसाई समाज यहां आया, वैसे ही चला जाए तो भारत भारत ही रहेगा। किन्तु इस देश से हिन्दुत्व विलीन हो जाए तो क्या शेष रहेगा? तब शायद, इतना याद रह जाएगा कि भारत नामक कभी कोई भौगोलिक देश था। भारत के इतिहास को देखिए। उसके साहित्य, कला और स्मारकों को देखिए। सब पर हिन्दुत्व स्पष्टरूप से अंकित, खुदा हुआ है।

डॉ. एनी बीसेन्ट को यह कहने की आवश्यकता क्यों पड़ी कि अगर हिन्दू ही हिन्दुत्व को नहीं बचायेगा, भारत के बच्चे ही उससे नहीं जुड़े रहेंगे तो उसकी रक्षा कौन करेगा? ये प्रश्न बताते हैं कि जिस हिन्दुत्व के कारण दुनिया में हमारे देश का अस्तित्व व पहचान है उसका समाज में धीरे-धीरे विस्मरण हो रहा था और यह

प्रक्रिया आज तक जारी है। इस दृष्टि से ये प्रश्न जितने उस समय प्रासंगिक थे उससे कहीं अधिक इनकी प्रासंगिकता आज के समय में भी है।

हम देखते हैं कि तथाकथित शिक्षित व्यक्ति को अपने देश की संस्कृति का कोई ज्ञान नहीं। दुनिया को हमारा कुछ अवदान था, इसकी कोई कल्पना नहीं है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि समाज मानो अपनी जड़ों से कट रहा है।

स्वराज्य के पश्चात स्वाधीन भारत में भारत की दुर्दशा क्यों?

द्वितीय विश्वयुद्ध को हिन्दू सेनाओं के शौर्य के कारण किसी तरह जीत तो गये पर उनके कारण अंग्रेजों की स्थिति जर्जर हो गई, आजाद हिन्द फौज पर केस चलने पर नौ सेना में विद्रोह, सेना उनकी विश्वस्त रही नहीं, पुलिस भी विश्वस्त नहीं रही है, स्वदेशी आन्दोलन के कारण आर्थिक व्यापार भारतीयों के हाथ में आ गया है, वे आर्थिक शोषण करने आये थे, अब भारत आर्थिक दृष्टि से उनके लिये लाभकारी रहा नहीं। अब उनको लगने लगा कि अपने स्वार्थ सुरक्षित रखते हुए भारत को स्वाधीनता देने में ही भला है अन्यथा पुनः सुभाष बोस जैसा नेतृत्व उभर गया या वीर सावरकर जैसों के हाथ में नेतृत्व आ गया तो हम सब साम्राज्यवादियों को कुत्तों की मौत मरना पड़ेगा। तब ऐसे व्यक्ति की खोज शुरू हुई, जिससे हमारे स्वार्थ सुरक्षित रहें, देश कभी उभर न सके, महाशक्ति बन न सके और देश खण्ड-विखण्डित हो जाय। ऐसा व्यक्ति उन्हें पण्डित जवाहरलाल नेहरू मिला, जो अंग्रेजों से भी ज्यादा अंग्रेज था। वह स्वयं को शिक्षा की दृष्टि से अंग्रेज, धार्मिक दृष्टि से मुसलमान, केवल मात्र एक हिन्दू माता के गर्भ से जन्म लिया इसलिये हिन्दू था। नहीं तो हिन्दू, हिन्दुत्व से उन्हें चिढ़ थी, जिनके पूर्वज मुगल दरबार की सेवा में रहे और विचारों से वे समाजवादी थे। ये तीनों धाराएं प्रारम्भ से ही देश को विदेश बनाने में लगी हुई, यहां के मुसलमान भारत को इसलाम की झोली में डालना चाहते हैं, ईसाई ईसा की झोली में डालकर भारत को यूरोप का मानसिक गुलाम और उनका उपनिवेश बनाना चाहता है, और समाजवादी भारत को मार्क्स की झोली में कोई रूस तो कोई चीन का पिछलग्गू देश बनाना चाहता है। इस प्रकार तीनों अराष्ट्रीय धाराओं के गठजोड़ नेहरू थे। अंग्रेजों ने तो उन्हें अपने स्वार्थ के लिये चुना पर गांधीजी ने क्यों चुना इस पर इतिहास मौन है। क्योंकि गांधीजी के विचार और नेहरू के विचार में कोई मिलन बिन्दु नहीं है, गांधीजी कट्टर सनातनी वैष्णव—जो कहते थे मेरे शरीर के सौ टुकड़े कर दो तो प्रत्येक टुकड़ा उठकर के कहेगा ईश्वर है। गांधी ग्राम आधारित आर्थिक संरचना—नेहरूजी इन सबके एकदम विपरीत थे। कांग्रेस कमेटी ने तो सरदार पटेल के पक्ष में मतदान किया था। पर अंग्रेजों एवं गांधीजी की कृपा से वे प्रधानमंत्री बन गये।

कांग्रेस में दो विचार परम्परा देखने को मिलती है। एक को अंग्रेजों ने प्रचलित किया कि भारत कभी एक राष्ट्र नहीं था। क्योंकि राजनैतिक एकता नहीं थी। भारत

में प्रायः सभी आक्रान्ता के रूप में आये-द्रविड़ आये-उन्होंने यहां के मूलवासियों को वनों में खदेड़ दिया। स्वयं शासक बन गये। आर्य आये तो उन्होंने द्रविड़ों को खदेड़ कर स्वयं शासक बन गये। इस क्रम में ग्रीक शक, हूण, कुषाण आये, फिर मुगल तुर्क पठान आये, फिर फ्रेंच, डच अंग्रेज आये, जो आये उन्होंने ही शासन किया। अब अंग्रेजों की कृपा से एक मिला-जुला राष्ट्र, खिचड़ी राष्ट्र, हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई मिलकर बन रहा है। कारवां आता गया हिन्दुस्तान बसता गया। यहां कारवां बसने के लिये नहीं लूटने के लिये या देश को इसलाम व ईसाइयत में रूपान्तरित करने के लिये आया और आज भी इसी दृष्टि से बने हुए हैं। यह बात इसी देश के साथ नहीं विश्व में जहां भी ये गये वहां यही किया और कर रहे हैं। तो भारत अब एक मिला-जुला राष्ट्र बन रहा है इस धारा को मानने वाले नेहरू थे।

दूसरी धारा—भारत प्राचीनकाल से एक राष्ट्र है जिसे स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द से लेकर लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपत राय, अरविन्द घोष, मदनमोहन मालवीयजी, सुभाष बोस, गांधीजी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पुरुषोत्तम दास टण्डन, आचार्य कृपलानी, सरदार पटेल, लाल बहादुर शास्त्री, मोरारजी देसाई आदि सभी थे।

पर शासन तंत्र नेहरू के हाथ में आने से भारत का भारत के संदर्भ में और विश्व के संदर्भ में जो भूमिका स्वराज्य के पहले दिन से होनी चाहिए था वह कांग्रेस पूरे कार्यकाल में कभी नहीं हो पायी इसके विपरीत स्वराज्य के प्रथम दिन से भारत में भारत की हत्या, हिन्दुस्तान में हिन्दुत्व की हत्या का दौर प्रारम्भ हुआ। नहीं तो प्रथम दिन से गो-हत्या पर पाबंदी लग सकती थी। लोकमान्य तिलक कहा करते थे, स्वराज्य मिलने पर जो प्रथम कलम चलेगी, उसमें गो-हत्या पर पाबंदी लगा दी जायेगी। गांधीजी ने गोरक्षा को स्वराज्य से भी बड़ा प्रश्न माना था। हिन्दू-मुस्लिम आधार पर देश विभाजित हो जाने और अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी देश में गोवध पर प्रतिबन्ध नहीं लग सका एकमात्र नेहरूजी के कारण।

संविधान सभा ने एक स्वर में हिन्दी को राज्य भाषा बनाने का प्रस्ताव पारित किया पर नेहरूजी को यह स्वीकार नहीं था। इस प्रस्ताव के पारित होने के पूर्व उन्होंने घोषित किया था कि वे हिन्दी को राजभाषा नहीं बनने देंगे। उनकी घोषणा के बावजूद जब संविधान सभा ने उपर्युक्त प्रस्ताव पारित किया, तो उनकी ऊर्जा इस प्रस्ताव को निष्प्रभावी बनाने में लग गई। यह निर्णय लिया गया कि हिन्दी राजभाषा के रूप में 15 वर्षों के बाद लागू की जायेगी। तब तक अंग्रेजी पहले के समान बनी रहेगी।

इस बीच सन् 1961 में गृहमंत्री गोविन्द वल्लभ पंत थे। उन्होंने सब मुख्यमंत्रियों की बैठक में एकमत से यह प्रस्ताव पारित किया कि देश की सभी

भाषाओं के लिये देवनागरी लिपि जो भारत की सबसे अधिक शुद्ध एवं वैज्ञानिक लिपि है, राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से स्वीकार कर ली गई। जैसे यूरोप की सभी भाषाएं रोमन लिपि में लिखी जाती है वैसे सारी भारतीय भाषाएं देवनागरी में लिखी जाय। उस समय बंगाल के मुख्यमंत्री पी.सी. सरकार आदि सभी ने राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिये इसे सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया। उस समय कुल 15 प्रांतीय भाषाएं थी। यह प्रस्ताव जब अंतिम स्वीकृति के लिये प्रधानमंत्री कार्यालय गया नेहरूजी के पास तो वे क्रोध से बिफर गये और गोविन्द वल्लभ को खूब डांट पिलायी। और यह प्रस्ताव निरस्त होकर फाइलों में दब गया। इस घटना से गोविन्द वल्लभ पंत को इतना सदमा पहुंचा, आघात पहुंचा कि एक माह के अन्दर ही उनका शरीर शांत हो गया।

आज देश की स्थिति यह है कि देश की 100 करोड़ जनसंख्या में से यदि 99 करोड़ 95 लाख हिन्दी को एकमात्र राजभाषा बनाना चाहें और अगर मिजोरम राज्य के मात्र 5 लाख लोग न बनाना चाहें, तो हिन्दी एकमात्र राज्यभाषा नहीं बन सकती।

स्वाधीन भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अब्दुल कलाम फिर प्रो. हिमायु कबीर जिन्हें भारत-भारतीयता से कोई लेना-देना नहीं था, बने। विभाजन के समय पाकिस्तान जा रहे मुसलमानों को रोका—आपको पाकिस्तान जाने की आवश्यकता नहीं है, यहीं बैठे-बैठे आपको पाकिस्तान मिल जायेगा।

अंग्रेजों ने भारत के सभी तंत्रों को चाहे वह शिक्षा तंत्र हो, या न्याय तंत्र हो, या अर्थ तंत्र हो सबको अपने स्वार्थ के अनुकूल ढाला था, जिन्हें स्वराज्य के पश्चात पुनः अपने देश के अनुकूल ढालने की आवश्यकता थी। पर नेहरूजी अंग्रेजों से भी अधिक अंग्रेज होने के कारण परिवर्तन तो दूर की बात—उसमें जो थोड़ी बहुत भारतीयता थी, वह भी नष्ट कर दी गई। हमारे सारे बौद्धिक संस्थानों पर मुसलमानों, ईसाइयों और कम्यूनिस्टों का कब्जा है, जिन्हें भारत-भारतीयता से कोई लेना-देना नहीं है इसलिये उसे विकृत से और अधिक विकृत किया गया।

स्वामी विवेकानन्दजी ने पश्चिम को सावधान किया था कि यदि उसने पचास वर्ष के अन्दर आध्यात्मिक आधार को न स्वीकार किया तो यह सभ्यता किसी भी समय चिथड़े-चिथड़े में बिखर सकती है। भारत के संदर्भ में कहा—इस देश का मेरुदण्ड धर्म है। पश्चिम की अंधी नकल में इसको छोड़ेंगे तो तीन पीढ़ी जाते जाते तुम सर्वनाश को प्राप्त होंगे। श्री मां ने भारत के संदर्भ में कहा है—भारत का भविष्य बहुत स्पष्ट है। जगत् का भावी ढांचा भारत पर निर्भर है। भारत एक जीवंत आत्मा है। भारत जगत् में अध्यात्म ज्ञान अवतरित कर रहा है। भारत सरकार को इसकी महत्ता

को समझकर अपनी कार्ययोजना बनानी चाहिये। गांधीजी ने 2 मई 1933 को यरवदा जेल से पण्डित नेहरू को एक पत्र लिखकर कहा था 'यदि हिन्दुत्व ने मुझे निराश किया तो मेरा जीवन बोझ बन जायेगा। हिन्दुत्व को मुझ से छीन लो तो मेरे पास कुछ नहीं रह जाता। यदि मैं इसलाम और ईसाई धर्म को प्यार करता हूं तो अपने हिन्दुत्व के कारण ही।' ऋषि अरविन्द ने कहा था—सनातन धर्म इस देश की राष्ट्रीयता है। सनातन धर्म के उत्थान एवं पतन से इस देश का उत्थान-पतन जुड़ा हुआ है। पण्डित नेहरूजी ने इस सबके विपरीत भारत से ही भारत के अध्यात्म ज्ञान को, सनातन हिन्दू धर्म को, हिन्दुत्व को तिरस्कृत कर, भौतिकता को प्रश्रय दिया जिसमें श्रेष्ठ जीवनमूल्यों के लिये कोई स्थान नहीं होता है। इसलिए आज देश में भ्रष्टाचार और चरित्र का संकट खड़ा हो गया है। इसलाम और ईसाइयत जिनमें धर्म और अध्यात्म की गंध भी नहीं है, जिन्होंने सारी दुनिया को आग-आतंक एवं पैशाचिकता के अलावा कुछ नहीं दिया—ये जहां-जहां जिस-जिस देश में गये वहां की श्रेष्ठ सभ्यता-संस्कृति का समूल नाश करके वहां बर्बर विदेशी, पैशाचिक संस्कृति को थोप दिया। इसलाम के कारण भारत हजार वर्ष तक पदाक्रान्त रहा, जिसके कारण देश का विभाजन हुआ और जिस ईसाइयत के कारण दो सौ वर्षों तक गुलाम रहा, जिन्हें देश की स्वाधीनता के साथ निकाल-बाहर करना चाहिये था। इसके विपरीत इन दोनों को विशेष-विशेष संवैधानिक सुरक्षा, संरक्षण एवं सुविधाएं तथा धर्मान्तरण का अधिकार जो ब्रिटिश काल में भी प्राप्त नहीं था। धर्मान्तरण से राष्ट्रान्तरण और अब संख्या में असन्तुलन निरन्तर पैदा होता जा रहा है। इसी कारण आज पूरा देश आग, आतंक-अलगाव, धर्मान्तरण से घिर गया है।

गांधीजी ने ईसाइयत का गहरा अध्ययन किया। ईसाइयत से सर्वाधिक व्यापक संवाद भी किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि लगभग सभी हिन्दू ईसाइयत को बिल्कुल भी नहीं समझते और न ही समझ सकते हैं। ईसाइयत जिस रूप में लगभग डेढ़ हजार वर्षों से फैली है, वह एक अत्यन्त व्यवस्थित एवं योजनाबद्ध तर्क-जाल से पोषित ईसाइयत है, जिसमें कहे गये प्रत्येक वाक्य का एक विशिष्ट ईसाई सन्दर्भ होता है। उसी के अनुरूप उसका विशेष अर्थ है। उस सन्दर्भ को न जानने वाला भारतीय उस वाक्य को हिन्दू दृष्टि से अर्थ दे बैठता है और धोखा खाता है। इसीलिए गांधीजी ने कहा कि बहुत शिक्षित हिन्दू भी ईसाइयत के तर्क-जाल से पूर्ण आशय को समझ नहीं पाते। अधिकांश हिन्दू तो ईसाई मिशनरियों की बातों का अर्थ केवल उतना ही समझ सकते हैं जितना कि कोई भारतीय गाय या बकरी उसे समझ सकती है। ऐसा गांधीजी ने स्पष्ट कहा। आशय स्पष्ट है कि हिन्दू लोग ईसाइयों के तर्क-जाल का अर्थ समझ ही नहीं पाते। जैसे—ईसाई पादरी कहेगा, 'यीशु मसीह भगवान् का बेटा था।' सभी हिन्दू कहेंगे, 'हां, भई, सभी में भगवान् का अंश है। ईसाई दुनिया

में बड़ी संख्या में हैं। उनके पन्थ का प्रवर्तक कोई बड़ी विभूति होगा। अतः उसे प्रभु-पुत्र कहना उचित ही है। बड़ी अच्छी बात कह रहा है पादरी।'

परन्तु सत्य क्या है? पादरी जो कह रहा है, उसका अर्थ है कि आज तक भगवान् ने केवल एक बार अपने इकलौते बेटे को धरती पर भेजा। वह है यीशु, मसीह। शेष कोई भी महापुरुष, अवतार आदि ईश्वर के अंश या पुत्र नहीं है। अतः राम, कृष्ण, शिव आदि फॉल्स गॉड्स हैं, झूठे और परिकल्पित देवता हैं, उनकी पूजा करना पाप है। दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियों की पूजा तो महापाप है, क्योंकि स्त्री में तो आत्मा होती ही नहीं। वह तो गॉड का 'आफ्टर थॉट' है। अतः देवी की पूजा महापाप है।

धरती को, सृष्टि को God ने बनाया। और God का इकलौता बेटा ईसा है। अतः सारी सृष्टि का, सारी धरती का मालिक यीशु है। अतः जो ईसाई है वही धरती पर रहने के अधिकारी हैं। अतः गैर ईसाई या तो ईसाइयों के अधीन गुलाम है या धरती से उच्छेद के अधिकारी हैं। वध के अधिकारी हैं। ईसाइयत के तर्क-जाल को गांधीजी समझते थे। गांधीजी का स्पष्ट मानना था, 'भारत में ईसाई मिशनरी प्रयास का उद्देश्य है हिन्दुत्व को जड़-मूल से उखाड़कर उसके स्थान पर दूसरा मत थोपना...यदि मेरे पास विधान की शक्ति होती तो मैं निश्चित ही सभी प्रकार के धर्मान्तरण पर प्रतिबंध लगा देता। मैं भोले-भाले लोगों के प्रति ईसाई पादरियों के इस प्रकार के धर्मान्तरण के नीच प्रस्तावों का प्रबल विरोध करता हूँ।'

1947 ई. में अंग्रेजों का यहां से बिस्तर गोल होते ही इन मिशनरियों ने अपने बिस्तर भी बांध लिए थे। कई चर्च बेच दिये गए थे और कई बन्द हो गए थे। परन्तु भारत-सरकार की छद्म धर्मनिरपेक्षता और नेहरूजी की राष्ट्रीय मूल्य पर अल्पसंख्यकों के लिए दरियादिली, तुष्टीकरण एवं बेतुके विश्वासों ने उनके बिस्तर-बंद फिर खुलवा दिए। जब भारत के संविधान रचना की चर्चा चली थी, उस समय ईसाइयों को मत-प्रचार का अधिकार देना चाहिए या नहीं, यह विषय सामने आया था। तब अपवाद रहित सभी सदस्यों का मत था कि, 'दुनिया के किसी भी देश के संविधान में इस प्रकार का प्रावधान नहीं है और आगे चलकर इससे खतरा खड़ा हो सकता है।' परन्तु एक प्रसिद्ध कांग्रेसी ने 'बेचारे इतनी छोटी संख्या में रहने वाले लोगों की प्रार्थना मान ली जाए', ऐसा कहा। तब लोगों ने इसको चुपचाप स्वीकार कर लिया। अब देखें ये छोटे-से बेचारे क्या गुल खिला रहे हैं।

1955 के दिसम्बर में ईसाई-पादरियों की राष्ट्र-विघातक गतिविधियों पर रोक लगाने के लिए लोकसभा में एक विधेयक प्रस्तुत किया गया तो पं. नेहरूजी ने एड़ी-चोटी से उसका विरोध करते हुए कहा—'ईसाई धर्म भारत का एक महत्त्वपूर्ण

धर्म है। लगभग गत दो हजार वर्षों से वह यहां अवस्थित है।' (Christianity is one the most important religions of India established here for nearly two thousand years.) प्रत्यक्ष भारत के प्रधानमंत्री का ऐसा स्वैर वक्तव्य करना यह वास्तव में भारत का दुर्भाग्य है। हवेली के पहरेदार द्वारा ही स्वयं द्वार खोलकर चोर को भीतर लेने जैसा यह कृत्य है।

सन् 1947 के 14 अगस्त तक जो कट्टरपन्थी मुस्लिम लीगी रक्त रंजित छुरे व तलवार लहराते, हिन्दुस्तान में पाकिस्तान जिन्दाबाद चिल्लाते-चिल्लाते हिंसक पशु बन हुए थे वे 15 अगस्त 1947 को हाथ में तस्वी (माला) पकड़े हुए लीगी टोपी उतारकर तथा गांधी टोपी पहनकर गांधीजी की जय के नारे लगाने लगे थे। मुस्लिम लीग को भंग कर दी थी—ये एक आश्चर्यजनक परिवर्तन ही तो था! लेकिन विचित्र बात यह थी कि एक ही रात में इन लीगियों का मन-मस्तिष्क व हृदय परिवर्तन कैसे सम्भव हो गया। इस परिवर्तन की सचाई को प्रत्येक हिन्दुस्तानी भली-भांति समझ रहा था।

स्वयं गांधीजी ने कहा था—तेरह सौ वर्षों के साम्राज्यवादी विस्तार ने मुसलमानों को एक वर्ग के रूप में योद्धा बना दिया है। इसलिए वे आक्रामक होते हैं। हिन्दुओं की सभ्यता बहुत प्राचीन है। हिन्दू मूलतः स्वभाव से अहिंसक होता है। इस प्रवृत्ति के कारण उनमें हथियारों का प्रयोग करने वाले कुछ ही होते हैं। उनमें आमतौर पर हथियारों के प्रयोग की प्रवृत्ति नहीं होती, जिससे वे कायरता की हद तक भीरु होते हैं। (यंग इंडिया, 30 सितम्बर 1927)

पुनः गांधीजी कहते हैं—आम मुसलमान गुंडा है और आम हिन्दू कायर है। और जब तक दुनिया में कायर रहेंगे, तो गुंडे भी रहेंगे।

किन्तु इसका व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक उपाय करने के बजाए, काल्पनिक, मनोहारी, जोड़-तोड़ वाली राजनीति से उपाय ढूंढ़ने में लगे रहे। उन्होंने शक्ति के समक्ष शक्ति की आवश्यकता पूरी करने के बदले अपनी व्यक्तिगत छवि तथा शाब्दिक चापलूसी जैसे साधनों के सहारे समस्या को हल करना चाहा जिससे कि वास्तव में समस्या और विकट होती गई।

गांधीजी कम से कम मुस्लिम प्रकृति को जानते थे और स्वीकारा भी पर पण्डित नेहरू को विदेशी बर्बर मुस्लिम शासक महान् लगे और उनकी दृष्टि में राणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह जिन्होंने बर्बर अत्याचारी विदेशी मुस्लिम शासकों को चुनौती दी वे उन्हें भ्रमित हिन्दू देश-भक्त लगे। जो मुस्लिम लीग देश के विभाजन के बाद भंग हो गई थी उसे नेहरूजी ने पुनर्जीवित करवाया। जब उसकी आलोचना हुई तो नेहरूजी ने सफाई दी—यह वह लीग नहीं है। तो दूसरे

ही दिन मुस्लिम लीग ने नेहरूजी का खंडन करते हुए यह छापा—वही मुस्लिम लीग है। खिलाफत आन्दोलन से भारत का और हिन्दुओं का कोई सम्बन्ध नहीं होने के बाद मुस्लिम भावनाओं की कद्र करते हुए उसमें उनका साथ दिया। मुस्लिमों ने प्रतिदान में हिन्दुओं को मोपला काण्ड दिया। इस पर नेहरूजी को क्रोध नहीं आया। पर जब मोपला काण्ड में दोषी मुस्लिमों पर न्यायिक प्रक्रिया चली उस पर नेहरूजी को क्रोध आया? जब देश-विभाजन के बाद पाकिस्तान से ट्रेनों में हिन्दुओं की लाशें भर-भर कर आ रही थी उस पर नेहरूजी को रोष नहीं आया। इसकी प्रतिक्रिया बिहार में हुई तो नेहरू बिफर पड़े और बिहार के दंगाग्रस्त क्षेत्रों में नेहरू ने हवाई सर्वेक्षण किया और रोष में भरकर कहा कि मैं बम गिराऊंगा और इन बिहारियों को शान्त करूंगा।

जब देश का बंटवारा स्वीकार ही कर लिया तो इसकी स्वाभाविक परिणति जनता की अदला-बदली को जिन्ना ने भी स्वीकार था—सरदार पटेल, पुरुषोत्तम दास टण्डन, आचार्य कृपलानी, डॉ. अम्बेडकर, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, वीर सावरकर आदि सभी चाहते थे। पर किसी की राय नहीं मानी। पाकिस्तान-बांग्लादेश में हिन्दुओं को समाप्तप्राय कर दिया गया और भारत में विभाजन के समय ढाई से तीन करोड़ मुसलमान थे। वे आज 20 करोड़ होने का दावा कर रहे हैं। भारत में रखना ही था तो राजनीतिक अधिकार नहीं दिये जाने चाहिए थे। और राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने का प्रयास होना चाहिए था। पर इसके विपरीत उन्हें अल्पसंख्यक के नाम पर विशेष सुविधा और संरक्षण और हिन्दुओं को जो इस देश का मूल राष्ट्रीय समाज है उसे दबाने का प्रयास नेहरू के समय से आज तक जारी है। हिन्दुओं की हर जायज मांग भी साम्प्रदायिक है, मुस्लिमों और ईसाइयों की हर नाजायज मांग भी धर्मनिरपेक्ष है। चाहे गो-वध पर प्रतिबंध की बात हो, हिन्दी को मातृभाषा का दर्जा देना हो, हिन्दुओं के अनेक मन्दिर मुस्लिम काल में कलंकित हुए उसमें केवल तीन मुख्य मन्दिर राम जन्म भूमि, कृष्ण जन्मभूमि एवं काशी विश्वनाथ मन्दिर की वापसी की मांग हो, चाहे धर्मान्तरण रोक की बात हो। स्वामी विवेकानन्द शिला निर्माण में ईसाई समुदाय ने हर सम्भव बाधा डाली। नेहरूजी के समय मुस्लिम आतंकवाद के समर्थन में एक सिद्धान्त गढ़ा गया 'अल्पसंख्यकों की साम्प्रदायिकता से बहुसंख्यकों की साम्प्रदायिकता अधिक घातक है क्योंकि बहुसंख्यक राष्ट्रवाद का मुखौटा ओढ़ लेती हैं और अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता को पृथक्तावादी घोषित कर दिया जाता है। मनमोहन सिंह के काल में मुस्लिम आतंक पर अंकुश लगाने के बजाय उनको संरक्षण देने के लिए हिन्दू आतंकवाद 'भगवा आतंकवाद' का जाल रचा गया। आज नागरिकता बिल का विरोध किया जा रहा है जिसमें प्रावधान हैं कि बांग्लादेश, पाकिस्तान, अफगानिस्तान से जो हिन्दू (जैन, बौद्ध, सिख, आदि

शामिल हैं) उत्पीड़ित हो, शरणार्थी के रूप में भारत आए हैं या भविष्य में आयेंगे उन्हें भारत की नागरिकता दी जायेगी। सारा चर्च (ईसाई समुदाय) एवं मुस्लिम समुदाय, प्रमुख विपक्षी पार्टी कांग्रेस विरोध कर रही है। पूर्व प्रधानमंत्री अटलजी की अस्थियां भारत की सभी नदियों में विसर्जित की गई पर दुआंग में नहीं की जा सकी ईसाई समुदाय के विरोध के कारण। इस प्रकार ये दोनों समुदाय भारत के हर राष्ट्रीय मान बिन्दु के विरुद्ध खड़े हैं। सर्वोच्च न्यायालय समान आचरण संहिता लागू करने का निर्देश दे चुका है, पर जब भी इस पर कार्यवाही की बात होती है ये दोनों विरोध में खड़े हो जाते हैं। कश्मीर में धारा 370 अस्थायी है, पर आज तक कायम है। इसको हटाने की बात होने पर विरोध एवं धमकियों के दौर शुरू हो जाते हैं। हिन्दू विरोधी नीतियों से आठ राज्यों (यथा लक्षद्वीप, मिजोरम, नागालैंड, मेघालय, जम्मू-कश्मीर, अरुणाचल, मणिपुर, पंजाब) में हिन्दू अल्पसंख्यक हो गया है। जहां भी हिन्दू घटता है—अलगाववादी, आतंकवादी गतिविधियां तेज हो जाती है। शेष में फिर देश से कटकर शत्रु राष्ट्र बन जाता है—पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफगानिस्तान इसके उदाहरण हैं।

सोनियाजी के काल में जितने भी आयोग बनाये, सबमें हिन्दुओं को कठघरे में खड़ा किया गया। 2011 और 2013 का सामुदायिक हिंसा विधेयक कितना घातक है हिन्दुओं के लिये आप कल्पना भी नहीं कर सकते। भारत सहित सारी दुनिया में दंगा-फसाद करने वाले मुसलमान और ईसाइयों ने इसी आधार पर सारी दुनिया में अपना विस्तार किया। अब ईसाइयों ने अपना मार्ग बदला है कि सेवा, शिक्षा और धोखाधड़ी की आड लें और जहां इससे काम नहीं बनता वहां हिंसा भी। और इसलाम तो अभी भी आग-आतंक को अपनाये हुए है। इन दोनों के आतंक पर अंकुश लगाने के बजाय संरक्षण देने के लिए हिन्दू आतंकवाद भगवा आतंकवाद सिद्धान्त रचे गये। और इसके तहत प्रज्ञा ठाकुर, असीमानन्द आदि को फंसाया गया और बहुत ही क्रूर-निर्मम ढंग से प्रताड़ित किया गया। इस विधेयक के अनुसार जो भी दंगे होंगे उसमें बहुसंख्यक हिन्दू समाज ही दोषी होगा हर स्थिति में। ऐसा दुस्साहस हिन्दुस्तान में हिन्दुओं के विरुद्ध विधेयक लाने का! यदि यह विधेयक पास हो जाता तो संघ परिवार के प्रायः सभी अधिकारी अशोक सिंघल, प्रवीण तोगड़िया एवं स्वामी रामदेव प्रभृति सभी प्रज्ञा ठाकुर की तरह जेल में अमानुषिक यंत्रणा भोगने को बाध्य होते। औरंगजेब से भी ज्यादा जुल्म हिन्दू समाज को भोगना पड़ता।

भारत की स्वतंत्रता के तुरत पश्चात् नेपाल, भूटान, बर्मा (म्यामार), मारिशस, डच गिआना आदि अपने हिन्दू उपनिवेश भारत की ओर प्रेरणा, मार्ग-दर्शन तथा नेतृत्व के लिए देखते थे। और वे भारत में मिल भी सकते थे। किन्तु जो अपने ही देश के अन्दर तुच्छ नागाओं, विद्रोहियों और पाकिस्तानी हमलावरों से

तथा चीन से अपनी रक्षा नहीं कर पाता वह हमारी रक्षा पाकिस्तान और चीन से कैसे कर पायेगा। और वे अनिच्छा से चीन की ओर झुक गए, उसके प्रभाव में आ गए। अब मोदीजी सुधार कर रहे हैं और अपने प्रभाव में लाने की चेष्टा कर रहे हैं।

गांधीजी की पांच योजनाएं थी—रामराज्य, स्वदेशी, ग्रामराज्य, गोरक्षा और खादी। गांधी के पश्चात् कांग्रेस पांचों लक्ष्य से च्युत हो गयी है। उससे नेहरूजी ने किनारा कर लिया। गांधी दर्शन का लोप कर दिया। केवल नाम चलता रहा। उनके नाम के सिक्के, राष्ट्रीय संस्थान, बड़े-बड़े भवन, दर्जनों गांधी स्टडी सेन्टर्स, महा विद्यालय उनके नाम से राष्ट्रीय छुट्टियों की घोषणा आदि की गई। पर उनका चिंतन नेताओं तथा राजनीतिज्ञों के ऐजेंडे से गायब हो गया। उनकी बुनियादी शिक्षा, संस्कृत प्रेम, हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा, संस्कृति एवं धर्म से जुड़ाव, गाय, गीता के प्रति असीम सम्मान गायब हो गया। राजीव गांधी के समय से संस्कृत वैकल्पिक भाषा भी नहीं रही। भारत विभाजन और संविधान निर्माण में भी गांधीजी की उपेक्षा हुई। नाथूराम गोडसे ने गांधीजी की शारीरिक हत्या की होगी पर वैचारिक हत्या नेहरूजी द्वारा की गई। इतिहासविद् डॉ. सतीशचन्द्र मित्तलजी कहते हैं—नेहरूजी के नेतृत्व में स्वाधीन भारत की यात्रा गांधीजी की मूल प्रेरणा और विचारधारा से भटकाव की यात्रा है। स्वाधीन भारत को इस यात्रा से बाहर निकाल कर स्वतंत्रता आन्दोलन की मूल प्रेरणा से जोड़ना और गांधीजी को वास्तविक रूप में देशवासियों के सामने रखना बहुत आवश्यक है।

भारत को भारत से सब दृष्टियों से चाहे वह आर्थिक जगत हो, चाहे शैक्षणिक जगत हो, चाहे वह इतिहास जगत हो, विज्ञान का क्षेत्र हो, चिकित्सा का क्षेत्र हो, तकनीकी का क्षेत्र हो, भाषा का क्षेत्र हो, संस्कृति का क्षेत्र हो, धर्म का, चाहे पारिवारिक क्षेत्र हो सबमें से भारतीयता का, हिन्दुत्व का लोप करके, पश्चिम की श्रेष्ठताओं की नहीं उनकी विकृतियों की नकल कापी बनाने का क्रम निरन्तर जारी है और उनका मानसिक गुलाम बनाने का सतत प्रयास जारी है। जो हानि शक, हूण, कुषाण नहीं कर पाये, मुगल, तुर्क, पठान नहीं कर पाये, फ्रेंच, डच, अंग्रेज नहीं कर पाये वह हानि नेहरू और नेहरू वंश कर रहा, भारत को नकली अमेरीका (पश्चिमी) बनाने में लगा रहा।

ब्रिटिश आयरिश महिला डॉ. एनी बीसेंट कहती है—भारत और हिन्दुत्व एक और अभिन्न है। हिन्दुत्व के बिना भारत का कोई अस्तित्व नहीं है। भारत में प्रश्रय पाने वाली अनेक जाति और धर्म हैं—पारसी, यहूदी, ईसाई और मुसलमान। ये जिस प्रकार आये वैसे ही वापस चले जायें, फिर भी 'भारत' भारत रहेगा। पर इस देश से हिन्दुत्व मिट गया तो भारत नष्ट हो जायेगा। हिन्दुत्व ही इस देश का मूल है। यही बात ऋषि अरविन्द कहते हैं—सनातन हिन्दू धर्म के उत्थान

से भारत का उत्थान और उसके पतन से भारत का पतन जुड़ा हुआ है। सनातन धर्म के उत्थान से राष्ट्रीय चरित्र प्रबल होता है, देश भक्ति की भावना दृढ़ फलतः देश का चहुंमुखी विकास हुआ है। सनातन धर्म के पतन से राष्ट्रीय चरित्र दुर्बल हुआ है, देश भक्ति की दुर्बल होने पर देश पतन और पराधीनता को प्राप्त हुआ है। यही बात वेद, रामायण, महाभारत पुराण से लेकर महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, लाल, बाल, पाल आदि सभी कहते हैं। पर स्वाधीन भारत में हिन्दू धर्म, संस्कृति का साम्प्रदायिक कूड़ा-कचरा मानकर तिरस्कृत हुआ।

जिन्हें नागरिकता की सुविधा भी नहीं मिलनी चाहिए या नहीं, उन्हें ही अल्पसंख्यक मानकर धर्म और अध्यात्म मान विशेष सुविधा और संरक्षण दे दिया गया। इनका देश के प्रति कोई कर्तव्य नहीं, केवल अधिकार ही अधिकार, राष्ट्रीय अपराध पर अपराध किये जाने पर भी निरन्तर संरक्षण और सुविधाओं में बढ़ोतरी। इस प्रकार विकृत अध्यात्म और धर्म को मान्यता देकर देश को आग-आतंक के हवाले कर दिया गया है। हिन्दुओं के श्रेष्ठ अध्यात्म को बाद देकर पूरे देश का चरित्रहनन किया गया। इसी आधार से मिलावट, घूसखोरी, भ्रष्टाचार को निरन्तर प्रश्रय मिल रहा है। जिस देश का न अपना संविधान, न अपनी मातृभाषा, न अपने महापुरुष, न अपने जीवनमूल्य, न अपना इतिहास, न अपना धर्म, न अपनी संस्कृति, न अपनी राष्ट्रीयता, न अपना अर्थतंत्र, न अपना शिक्षातंत्र—वह राष्ट्र कभी विकास कर सकता है? और कैसे देश भक्ति की भावना पनपेगी? यही कारण है कि देश बिखर रहा है स्वराज्य के पश्चात् भी। प्राचीन भारत में देश, धर्म, संस्कृति पर गर्व होने, देश भक्ति की भावना प्रबल होने से राष्ट्रीय लक्ष्य 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम् होने से सारे विश्व की सांस्कृतिक दिग्विजय कर सके, वृहत्तर भारत की स्थापना कर सके जबकि उस समय यातायात की सुविधा न होने पर भी, देश प्रशासनिक दृष्टि से एक न होने पर भी।

फिर नेहरू जी कम से कम accidently हिन्दू तो थे। पर सोनियाजी के समय से तो accidently हिन्दू भी नहीं। हिन्दुत्व से भारत देश से दूर का भी रिश्ता नहीं है। इसलिये अराष्ट्रीय मुस्लिम समाज को, ईसाई को सारे अपराधों के बाद खुल्लमखुल्ला जितना बढ़ावा दे सकती है, जितना अर्थ उन पर लुटवाया जा सकता है, सब कर रही है। और हिन्दू समाज को जितना कुचला जा सकता है, दबाया जा सकता है, दबा रही है। और भारत को सनातन राष्ट्र न मानकर भारत को एक हिन्दू, मुस्लिम ईसाइयों का मिला-जुला खिचड़ी राष्ट्र है जो निर्माण की प्रक्रिया में है। इसके विपरीत आज सारा विश्व संकट के दौर में है और भारत को ही विकल्प के रूप में देख रहा है। और भारत में ही भारत का उच्छेद किया जा रहा है कांग्रेस की सड़ी-गली नेहरूवादी धारा के द्वारा। यह धारा विदा होगी, तभी पुनः राष्ट्रवादी कांग्रेस, भारत को प्राचीन राष्ट्र,

सनातन राष्ट्र मानने वाली, भारत को माता मानने वाली लोकमान्य तिलक, अरविन्द घोष, सुभाष बोस, गांधी, पटेल, लालबहादुर की कांग्रेस को पुनर्जीवित होने का अवसर मिलेगा, तब भारत में भारत के पुनः प्रतिष्ठा का अवसर आयेगा। नेहरूवादी धारा के लिये देश भारत माता नहीं है, वह तो भूखण्ड मात्र है, सम्पत्ति मात्र है, जिसकी बन्दर लूट में वे लगे हुए हैं। अतः कांग्रेस की नेहरूवादी धारा को विदा करने पर ही भारत माता पुनः अपने उज्ज्वल स्वरूप में प्रकट हो सकेगी। और भारत के उदय से विश्व में सुख-शांति-मैत्री का साम्राज्य स्थापित हो सकेगा। प्रभु कृपा से सत्ता में परिवर्तन हुआ है। मोदी सरकार आयी है। अब लगता है भारत में भारत की सरकार आयी है। इसके पूर्व अपवादों को छोड़कर लगता नहीं था कि भारत में भारतीयों की सरकार है। अब लगता हैं भारत में भारत और भारतीयता को प्रतिष्ठा मिलेगी और भारत पुनः जगद् गुरु के पद पर प्रतिष्ठित होगा।

पाश्चात्य विचार धारा का पंचमुखी प्रहार

आधुनिक भारत के युवा मानस पर पाश्चात्य विचारधारा का पंचमुखी प्रहार हुआ है। जो ऊपर से देखने पर दिखाई नहीं देता, किन्तु गम्भीरता और सूक्ष्मता से विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है—

(क) पशुता का आक्रमण—भारत के ऋषियों ने 'अमृतस्य पुत्राः' अमृत पुत्र कहा है। किन्तु चार्ल्स डार्विन ने घोषणा की कि मनुष्य भगवान् का नहीं पशुओं—बंदर, लंगूर आदि की संतान है। इस प्रकार मानव पशु संतति होने के कारण उसकी पशुता को मानवता का पूर्वज होने का गौरव मिल गया। भारत में विज्ञान के नाम पर यही स्कूलों-कॉलेजों में पढ़ाया गया। तब युवा मानस पर यही छाप पड़ी कि हम अमृतस्य पुत्राः न होकर वानरस्य पुत्राः हैं। इससे मानव मन की पशुता जाग उठी।

(ख) नग्नता का आक्रमण—पश्चिम के साहित्यकारों D.H. Lorens, Pope, Dryden, Keats, Byron आदि ने कहा कि जब हम मूलतः पशु ही हैं तो पशु अपनी पशु लीला पर सभ्यता का कोई आवरण नहीं डालते। तो हमें भी किसी पर्दे की आवश्यकता नहीं है। जो क्रियाकलाप हैं उसका नग्न रूप से वर्णन किया जाय। इससे पश्चिमी साहित्य में नग्नतावाद का बोलबाला हो गया। Keats की Lost Sonate इतनी अश्लील है कि पढ़ने और पढ़ाने वाले दोनों लज्जा से संकुचित हो जाते हैं। D.H. Lorens के नॉवलों (उपन्यासों) की आजकल पुस्तक की दुकान पर धूम है। क्रिस्टीन किलर काण्ड तथा नंगे नॉवल खूब बिकते हैं। नग्नता का यह हमला फिल्मों में भी आया, नाचघरों में भी आ गया, कैबरे नृत्य होने लगे, चित्रों-कैलण्डरों में भी आ गया है। नग्न चित्र खूब बिकने लगे हैं। धीरे-

धीरे धार्मिक चित्रों में भी नग्नता बढ़ने लगी। फैशन में, वेश-भूषा में नग्नता आने से वस्त्र छोटे और नग्न अंगों का प्रदर्शन अधिक होने लगा। अमेरीका में टोपलेस का फैशन चला। चित्रकला मूर्तिकला में भी नग्नता आ गई। Nude क्लब का चलन बढ़ने लगा। भारत में भी रजनीश ने नग्न नर-नारियों के सम्मेलन करवाए। भारत के युवा मानस पर इस नग्नता के हमले ने इतना भीषण आघात किया है कि गुण्डों को अपनी गुण्डई में लज्जा ही नहीं रही। 50 प्रतिशत से अधिक युवा छात्र-छात्रा फिल्मी हीरो या चरित्रभ्रष्ट अभिनेत्रियों को अपना आदर्श मानने लगे हैं।

(ग) कामुकता का आक्रमण—फ्रॉयड ने कहा कि कामवासना ही एकमात्र जीवनप्रवृत्ति है। इसके विपरीत जो कुछ है वह मृत्युप्रवृत्त death instinct है। फ्रॉयड सब प्रवृत्तियों के पीछे कामप्रवृत्ति का ही दर्शन करता है। वह माता-पुत्र, पिता-पुत्री और भाई-बहन के प्रेम को भी कामवासना ही मानता है। इसका मत है कि हर बच्चे के अचेतन मन में एक प्रवृत्ति सुप्त रहती है जिसे Odipus complex कहते हैं। Odipus नाम का यूनानी योद्धा था जिसने न जानते हुए अपने पिता को मारकर उसी की रानी से विवाह किया। भेद खुलने पर Odipus ने अपनी आंखें फोड़ ली और रानी ने आत्महत्या कर ली। फ्रॉयड का मत है कि हर बच्चे के मन में माता के प्रति प्रेम के पीछे यही प्रवृत्ति सोयी पड़ी रहती है। वह पिता को निरस्त कर अपनी माता से काम तृप्ति चाहता है। इस प्रकार फ्रॉयड ने बहन-भाई और माता-पुत्र के पवित्र प्रेम को भी कामुकता के चश्मे से देखकर सारी मानवता को मां और बहन की गाली निकाल दी। किन्तु इसी फ्रॉयड को विज्ञान के नाम पर जब भारतीय युवा मानस को पढ़ाया जाता है तो छात्रों के मन पर निर्बन्ध कामुकता का आक्रमण होता है। डार्विन द्वारा आध्यात्मिकता का निराकरण हो जाने पर केवल पशुता बची। पशुता द्वारा सभ्यता का पर्दा फट जाने पर नग्नता आ जाती है। और नग्नता द्वारा नैतिकता और मर्यादा का बंधन टूट जाने पर कामुकता आ जाती है।

(घ) आर्थिकता का आक्रमण—पशुता, नग्नता और कामुकता के भोगवादी आक्रमणों को भौतिक साधनों का पूर्ण सहयोग देने के लिए कार्लमार्क्स ने मानव मन पर आर्थिकता का आक्रमण किया। काम और अर्थ मिलकर भोगवाद की लीला पूरी कर देते हैं। काम द्वारा जिन सुखों की कामना की जाती है वह सुख-साधन अर्थ द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। अर्थ के आधिक्य से ऐश्वर्य की इच्छा पैदा होती है जिससे कामुकता का खेल नग्न रूप से होने लगता है। कामुकता अर्थ की अपेक्षा रखती है और आर्थिकता कामुकता को बढ़ावा देती है। एक कंचन और कामिनी दोनों माया के छलीरूप भोगविलास के माध्यम हैं। आर्थिकता के हमले से युवा मानस के मन पर ये संस्कार पड़ा कि अर्थ ही जीवन

का सारतत्त्व है और जीवत्व अध्यात्म, नैतिकता, सभ्यता, धर्म, राजनीति सभी कुछ अर्थ के ही अधीन है। इस आर्थिकता के आक्रमण ने मानव मन के स्वार्थ को जगा दिया और मनुष्य अर्थ के लिए धर्म, नैतिकता, देशहित, स्वजन-सम्बन्धी सभी कुछ को बेचने के लिए उद्यत हो गया। अर्थ को सर्वोपरि मानने से अर्थ-प्राप्ति के सब साधन नैतिक-अनैतिक, भ्रष्ट एवं निन्दित मार्ग सभी उचित बन गए।

(ङ) ऐतिहासिकता का आक्रमण—विदेशियों ने भारत को सदा पराधीन, पददलित रखने के लिए इतिहास के नाम पर भारतीय युवा मन को यह कुसंस्कार का विष पिलाना शुरू किया कि आर्य लोग भारत के मूल निवासी नहीं थे। वे मध्य एशिया के मैदानों से आक्रान्ता बनकर भारत में आए। वेद गड़रिये के गीत हैं और वैदिक ऋषि गड़रिये हैं जो भेड़ों के झुण्ड को चराते हुए नई सबल घास की खोज में भारत में आ धमके। भारत का संस्कारक्षम युवा मानस इन बातों को इतिहास के नाम पर प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में पढ़ता रहा, परीक्षा के लिए याद करता रहा। जिससे उसके मानस पर यही विपरीत संस्कार दृढ़ीभूत हुआ और वह स्वाभिमान-शून्य आज का युवा मानस पश्चिमी विचारधारा के इस पंचमुखी आक्रमण से बहुत बुरी तरह क्षत-विक्षत हुआ पड़ा है।

विश्व को नहीं भारत को है—अपनी हिन्दू राष्ट्रीयता के विषय में भ्रान्ति!

न तो पश्चिम को 'और' न अरब राष्ट्रों को भारत की राष्ट्रीयता, धर्म, जाति, भाषा, महापुरुष, मान बिन्दुओं, श्रद्धा के केन्द्रों एवं इतिहास आदि के विषय में कोई भ्रान्ति है। विश्वप्रसिद्ध अमरीकी इतिहासज्ञ विल डूरेन्ट स्पष्ट रूप से कहता है—भारत ही हमारी जाति की जन्म स्थली था और संस्कृत ही हमारी यूरोप की सब भाषाओं की जननी है। भारत हमारे दर्शन की जननी था, हमें अरब के माध्यम से प्राप्त गणित-ज्ञान की जननी था, बुद्ध के माध्यम से ईसाई आदर्शों की जननी और ग्राम पंचायत परम्परा द्वारा आत्मानुशासन और लोकतंत्र की जननी था। भारत अनेक दृष्टियों से सारे विश्व की माता है।

इसी बात की पुष्टि में फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् क्रूजर (Creuzer) भी कहते हैं—यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा देश है, जो स्वयं को 'मानव जाति का पालना' होने की घोषणा करने का अधिकारी है अथवा प्रारम्भिक सभ्यता का द्रष्टा है, जिसकी सभ्यता की किरणों ने प्राचीन विश्व के सभी भागों को आलोकित किया है, जिसके ज्ञान के वरदान ने मनुष्य को 'द्विज' बनाया है, अथवा प्राकृत से संस्कृत किया है, तो वह देश वास्तव में भारतवर्ष है।

जामा मस्जिद के शाही इमाम सैय्यद अब्दुल्ला बुखारी जब मक्का गये तो वहां के एक निवासी ने पूछा—'आप हिन्दू हैं?' शाही इमाम ने चौंककर कहा—'नहीं-

नहीं, मैं मुसलमान हूँ।' बाद में उन्होंने प्रश्नकर्ता से पूछा—'आपने मुझे हिन्दू क्यों कहा?' तो उसका सहज उत्तर था—'इसलिये कि आप हिन्दुस्तान से आये हैं।'

(साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दि. 1.5.1977)

ब्रिटिश इतिहासकार डॉ. आर्नोल्ड टॉयनबी ने सम्पूर्ण मानव जाति की यात्राकथा का सर्वेक्षण करने के बाद लिखा है—यह बिल्कुल स्पष्ट होता जा रहा है कि उस अध्याय का अन्त भारतीय उपसंहार से ही होगा जिसका प्रारम्भ पाश्चात्य है। यदि मानव जाति का आत्मविनाश में अन्त न होना हो तो यहां (भारत में) हमारे पास वह दृष्टिकोण और भावना है जिससे मानव जाति के लिए एक परिवार के रूप में विकास की सम्भावना है। और इस आणविक युग में सर्वनाश से बचने का यह एकमात्र विकल्प है।

विल डूरेन्ट कहता है—'हे भारत! तू इससे पहले कि पश्चिम अपनी घोर नास्तिक और भोगवादी सभ्यता से निराश हो, शान्ति के लिए तरसता हुआ, अति व्याकुल तुम्हारी शरण में आवे कहीं भूल से अपनी लम्बी राजनीतिक पराधीनता के लिए अपने श्रेष्ठ अध्यात्म को ही दोषी मानकर अपने घर को मत फूंक डालना।'

स्पष्ट है कि न पश्चिम को और न अरब राष्ट्र को भारत की राष्ट्रीयता के विषय में कोई भ्रान्ति है। और पूर्व (पहले) की भांति भारत ही उनका आशा का केन्द्र है और भारत से ही भविष्य में मार्गदर्शन की अपेक्षा रखते हैं। क्योंकि आज के आधुनिक युग में पश्चिम ने चाहे जितनी प्रगति कर ली हो, जैसे—वह आकाश में पक्षियों की भांति उड़ सकता है, समुद्र में मछलियों की भांति तैर सकता है। पर मानव की भांति पृथ्वी पर रहना उसे भारत से ही सीखना होगा। आज पश्चिमी जगत् विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में श्रेष्ठता के लिए जाना जाता है। पर उसके पास वह दृष्टि, वह भावना, वह कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व नहीं जो मानव मात्र को सुख-शांति व स्थायी आनन्द दे सके। पूर्णता तक ले जा सके। मोक्ष दे सके। जीवन की सब समस्याओं का समाधान दे सके।

जब भारत के प्रति पश्चिम की दृष्टि स्पष्ट है। तब स्वयं भारत, वह भी स्वाधीनता के पश्चात् के काल में कैसे भ्रान्त और पथच्युत होकर भटक गया?

अंग्रेजों से पूर्व भारत की सम्पन्नता से आकृष्ट होकर जितने भी विदेशी आक्रान्ता आये, अपने रहन-सहन, भाषा, आचार-विचार, मजहब आदि सभी आधारों पर हम उन्हें मलेच्छ ही समझते रहे। वे कभी भी, किसी भी आधार पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित नहीं कर सके, हमारे आदर के पात्र नहीं बन सके। चाहे वह ग्रीक, शक, हूण, कुषाण हो। मुगल, तुर्क, पठान हों चाहे फ्रेंच, डच, पूर्त हों। इसलिये ये कभी भी न हमारे हृदय में प्रवेश कर सके और न हमारे घरों में। यही

कारण है कि ब्रिटिश माल से भरा हुआ जहाज को वापस लौटना पड़ा किसी ने भी एक भी वस्तु नहीं स्वीकारी। न ईसाई पादरियों को धर्मान्तरण में कोई सफलता मिली। पर अन्तिम आक्रान्ता अंग्रेज बड़ा ही धूर्त और चालाक था। उसने देखा यहां सब प्रकार की विविधता, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, पूजा पद्धति, भाषा, अनेकों दार्शनिक धाराओं के बाद भी यह राष्ट्र एक कैसे है? इनको जोड़ करके रखने वाला सूत्र कौनसा है? तब उसने पाया यहां का धर्म, दर्शन, संस्कृति सारे देश को एकसूत्र में पिरोये हुए है। इसका धारक, वाहक, प्रचारक यहां का ब्राह्मण वर्ग है। संन्यासी वर्ग है। हम से तो हिन्दू हेंडसेक (हस्तमिलाप) करता है पर हमारे ही अधीन ब्राह्मण कर्मचारी है उसके चरणों को स्पर्श कर उसकी वंदना करता है। जब तक इनके प्रति श्रद्धा विचलित नहीं करते तब तक हमें राष्ट्रीयता के आधार पर चुनौती मिलती रहेगी। फिर प्रत्येक हिन्दू को अपने देश, धर्म, जाति, इतिहास, भाषा, अपने आचार-विचार, रहन-सहन, वेश-भूषा पर गर्व है। इस देश से बढ़कर कोई देश नहीं जो सृष्टि के आरम्भ से है और अन्त तक रहने वाला है। हमारी जाति से बढ़कर कोई जाति नहीं और हमारे धर्म, भाषा, संस्कृति से बढ़कर कोई धर्म, भाषा, संस्कृति व इतिहास नहीं। इन सबके रहते हुए इन पर दीर्घकाल तक शासन नहीं किया जा सकता है और न ही ईसाईकरण किया जा सकता है। और न ही इन पर केवल तोप-तलवार के बल पर दीर्घकाल तक शासन किया जा सकता है। नहीं तो इसलाम सफल हो जाता। क्योंकि जहां भी गया वहां की मूल सभ्यता संस्कृति को नष्ट कर अपने बर्बर विदेशी मजहब को थोप दिया। पर भारत में ऐसा सम्भव नहीं हुआ। अतः इन सभी बातों का विचार कर अंग्रेजों ने अपने भारत के साम्राज्य को सुदृढ़ व स्थाई बनाने के लिए और देश के इतिहास को विकृत करने के लिए त्रिसूत्री योजना बनायी। इस योजना की विस्तृत जानकारी वैश्विक मस्तिष्क वाले हिन्दू क्रान्तिकारी लाला हरदयाल की अंग्रेजी पुस्तिका My Divine Madness में मिलती है। इसके तीन सूत्र इस प्रकार हैं—

पहला सूत्र था—De-Hindulisation of The Hindus अर्थात् हिन्दुओं का अहिन्दूकरण करना। उनको साम्प्रदायिक बनाना। दूसरा सूत्र था—De Nationlisation of The Hindu अर्थात् हिन्दुओं का अराष्ट्रीयकरण करना। तीसरा और अन्तिम सूत्र था—De-Socialisation of The Hindu अर्थात् हिन्दू समाज को विघटित करना।

भारत का नैसर्गिक राष्ट्रीयता का अराष्ट्रीयकरण

इतिहास को विकृत कर अंग्रेजी सरकार ने यह प्रतिपादित किया कि भारत हिन्दुओं का मूल देश नहीं है। इनके पूर्वज आर्य मध्य एशिया से 3,500 वर्ष पूर्व

आक्रान्ता के रूप में भारत में आए, उसके बाद मुसलमान फिर ईसाई ये दोनों भी विदेशी हैं। काल क्रम में तीनों सम्प्रदाय इस देश में बस गये। हम जब इस देश में आये तब यहां न कोई सभ्यता थी, न ही संस्कृति और न ही राष्ट्रीयता। हमने (अंग्रेजों ने) इस देश को राजनीतिक एकता प्रदान की। अब इस देश के मालिक हिन्दू-मुस्लिम और ईसाई यह तीन सम्प्रदाय हैं। ये आपस में मिलकर मिला-जुला एक राष्ट्र और मिश्रित संस्कृति का निर्माण करें और जब तक मिलकर नये राष्ट्र का निर्माण कर लेंगे तब हम भारत छोड़कर चले जायेंगे। इस प्रकार हिन्दू एक धर्म और राष्ट्र न होकर एक सम्प्रदाय मात्र है—मुसलमान और ईसाई की तरह।

हिन्दू समाज का असमाजीकरण

हिन्दू समाज की एकात्मता को नष्ट करने लिए अंग्रेजों ने इसमें ब्राह्मण-अब्राह्मण, छूत-अछूत, उत्तरवासी, दक्षिणवासी, आर्य, द्रविड़, ट्राइबल-नॉन ट्राइबल, राजपूत-जाट, सवर्ण-असवर्ण आदि अनेक भेद उत्पन्न किए जिसका हमारे इतिहास में कहीं भी उल्लेख नहीं है। इतना ही नहीं अंग्रेजों ने हमारे समाज में भेद निर्माण कर इसकी वैज्ञानिक वर्ण व्यवस्था को भंग करने के लिए वर्णों के आधार पर संस्थाएं निर्माण करने के लिए प्रोत्साहन दिया—यथा राजपूत महासभा वैश्य महासभा आदि-आदि।

हिन्दुओं का अहिन्दूकरण

हिन्दुओं की जितनी भी श्रेष्ठ बातें हैं, हिन्दुओं के जितने भी मान बिन्दु हैं, श्रद्धा बिन्दु हैं उनके प्रति अश्रद्धा निर्माण करना, हीन भावना उत्पन्न कर उसको त्याग के लिए प्रेरित करना। इसी आधार पर वेद गड़ेरियों के गीत हैं, जो old Testament से चुराई गई है, गीता New Testament से चुरायी गई है। रामायण-महाभारत Myth है। Mythology है, गो के प्रति अवज्ञा का भाव, हमारा ऋषियों के प्रति अनास्था का भाव, संस्कृत मृत भाषा है। भाषा वेश-भूषा आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन, रूढ़ि-परम्परा, धर्म-श्रद्धा, मूर्तिपूजा आदि सबके प्रति सारहीन असम्मान, घृणा और पिछड़ापन का भाव भरने और हिन्दू कहने में ग्लानि का भाव भर जाए ताकि हमारा गुलामीकरण और ईसाईकरण किया जा सके। इसके लिए अंग्रेजों ने यहां की शिक्षा व्यवस्था एवं अन्य व्यवस्थाओं में आमूलचूल परिवर्तन कर हमारे मानस को ही बदल दिया। हमारी रुचि में, बुद्धि में परिवर्तन कर दिया। जिस चोटी, तिलक, यज्ञोपवीत के लिए सिर दे देते थे पर इसलाम के आगे घुटना नहीं टेका, धर्म परिवर्तन स्वीकार नहीं किया, वे ही हिन्दू अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव में आकर स्वयं जनेऊ, चोटी, तिलक को त्याग कर, गोमांस खाकर यहां तक कि कुछ हिन्दू उसकी हड्डियों को मन्दिरों में फेंकने

लगे। जबकि इसके पूर्व चाहे हिन्दू नास्तिक हो या आस्तिक, गो के प्रति एक भी अवज्ञा का दृष्टान्त नहीं मिलता। अंग्रेजी शिक्षा का कैसा प्रभाव पड़ा, इसके दो ऐतिहासिक उदाहरण पर्याप्त सिद्ध होंगे। बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दादाजी पर अंग्रेजी शिक्षा का, सभ्यता-संस्कृति का ऐसा नशा चढ़ा कि वे कहते थे भारत को अपना विकास करना है तो अंग्रेजों की कार्बन कापी बन जाना चाहिए। यद्यपि एक घटना ने उनके जीवन को पुनः भारतीयता से जोड़ दिया। तभी रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे महापुरुष हमें मिले। ऋषि अरविन्द घोष के पिता कृष्णन् घोष भी अंग्रेजी सभ्यता में ऐसे ही रंग गये थे। उन्हें भी लगता था भारत को अपने विकास के लिए यूरोप की कार्बन कापी बन जाना चाहिए। भारत के स्वाधीनता आन्दोलन को वे कीड़ा मानते थे। इसलिए 5 वर्ष के अरविन्द को दार्जिलिंग के ईसाई स्कूल में, तत्पश्चात् इंग्लैण्ड भेज दिया और एक ईसाई परिवार को सौंप दिया। वारीन्द्र को तो जन्मते ही इंग्लैण्ड भेज दिया ताकि भारत की हवा भी न लगे।

इस प्रकार अंग्रेजों की शिक्षा पद्धति में शिक्षित व्यक्ति अंग्रेजी को वरदान मानकर स्वयं के प्रति हीनभावना से भर गया। इस तरह अंग्रेज स्वयं के प्रति श्रेष्ठता की और हिन्दुत्व के प्रति हीनता की भावना भरने में समर्थ हो गया। यही मैकाले का भाव था। 2 जनवरी, 1835 में ब्रिटिश संसद में वक्तव्य देते हुए उसने कहा था—मैं भारत में पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण सभी जगह घूमा। लेकिन पूरे भारत में मुझे एक भी भिखारी या चोर दिखायी नहीं दिया। भारत की समृद्धि व उच्च नैतिक मूल्यों को देखते हुए मुझे नहीं लगता कि हम कभी भी भारत पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। जब तक कि हम भारत की रीढ़ की हड्डी, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक शिक्षा व्यवस्था, के स्थान पर यह स्थापित न कर दें कि विदेशी व अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था भारत की शिक्षा व्यवस्था से अधिक महान् है। इसके लिए आवश्यक है इस देश का गौरव-सम्मान, सदियों पुरानी प्राचीन शिक्षा प्रणाली और सांस्कृतिक प्रथाओं को मूल से ही बदलें। परिणामतः हिन्दुस्तानी यह मानने लगें कि जो कुछ भी विदेशी है, पाश्चात्य का है, वह श्रेष्ठ और महान् है। और इस कारण से वे स्वयं की निजी सांस्कृतिक धरोहर गवाएंगे और ऐसे नागरिक बन जायेंगे जैसा हम उनको बनाना चाहते हैं। मतलब कि काले अंग्रेज पैदा होंगे जो स्वैच्छिक गुलाम बन जायेंगे। तब ही हिन्दुस्तान सही अर्थों में हमारे आधिपत्य वाला गुलाम राष्ट्र बन पायेगा। ऐसा ही विचार फ्रांस के पादरी एबी दुबोय (Abbe Dubois) ने सन् 1815 में रखा। वह इस्ट इंडिया कम्पनी की नौकरी में रहा। वहां हिन्दू समाज में समरसता से रहकर उसने जो अनुभव पाया था उसका लाभ कम्पनी को हो, इस दृष्टि से एक पुस्तक लिखी। जिसमें कम्पनी को कई सूचनाएं दी गई थी। उसमें यह महत्त्वपूर्ण सूचना थी कि हिन्दुओं

की संस्कृति अति श्रेष्ठ कोटि की होने से उन पर ख्रिस्ती धर्ममत का प्रभाव नहीं जमेगा। अतः भारत में अंग्रेजी आधिपत्य स्थिर करने के लिए भारतीयों की अपने वेद शास्त्र, दर्शन आदि से श्रद्धा विचलित करनी चाहिए। ऐसी ही अमरीका के एक पादरी ने एक पुस्तक लिखी—'The inevitable choice'। इसमें लिखा है कि हिन्दुओं का जो वेदान्त का तत्त्वज्ञान है वह बड़ा खतरनाक है। अगर इसका सामना नहीं किया गया तो एक दिन ऐसा आयेगा कि यह सारा का सारा ईसाई सम्प्रदाय हिन्दू समाज का एक सम्प्रदाय बनकर रह जाएगा। क्योंकि हिन्दू विविधता को रखते हुए भी अपनी आन्तरिक एकात्मता के द्वारा सबको अपने अन्दर समाविष्ट कर लेता है। उसने लिखा है कि हिन्दू समाज एक आक्टोपस है। आक्टोपस एक प्राणी होता है जिसके आठ पैर होते हैं और जो कोई इसके फंदे में फंस जाता है वह छूट नहीं सकता। उसने कहा कि हिन्दू समाज एक आक्टोपस है, इसके फंदे में फंस गये तो हिन्दू समाज में आत्मसात् हुए बिना नहीं रह सकते। तुम इसके सम्प्रदाय बनकर रह जाओगे। स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष थे, एक बार रेलगाड़ी से जा रहे थे। उनके डब्बे में एक पादरी भी बैठा था। उससे बातचीत होने लगी। वह पादरी कहने लगा हिन्दू धर्म में कोई दम नहीं रहा। सब लोग हिन्दू धर्म छोड़कर ईसाई बन रहे हैं और फिर गिनती गिनाने लगा। स्वामीजी बोले—आनन्द की बात है। पादरी बोला, क्या कहा—आनन्द की बात है! आपको दुःख नहीं होता। स्वामीजी बोले, नहीं होता। आपको जितनी मेहनत करनी है करो, एक दिन सुबह हम घोषणा कर देंगे कि क्रॉइस्ट कृष्ण के अवतार थे और तुम्हारे सारे ईसाई समाज को हिन्दू समाज में ले लेंगे। बात ठीक है यह हमारी पद्धति है किसी का कुछ न मिटाते हुए सबको अपने अन्दर स्वीकार लेते हैं, अपने भाईचारे में बांध लेते हैं। इसलिए इन्हें डर हिन्दू से नहीं है—हिन्दू धर्म, दर्शन, संस्कृति से है। इन्हीं सब सूचनाओं को ध्यान में रखते हुए इस्ट इंडिया कं. द्वारा भारतीय भाषा, विद्या शास्त्र, कला आदि का अध्ययन यूरोपीय पंडितों में प्रोत्साहित किया गया ताकि इन पर आघात किया जा सके और इसी दृष्टि से अनेकों यूरोपीय पंडित हिन्दू शास्त्रों के अध्ययन में प्रवृत्त हुए। और भारत एवं भारतीय इतिहास पर प्रहार प्रारम्भ हुए। इन सब आधारों पर लॉर्ड मैकाले अपने पिता को पत्र लिखता है।

लॉर्ड मैकाले का अपने पिता को लिखा पत्र दि. 12 अक्टूबर, 1836—हमारी शालाएं बहुत अच्छी तरह से उन्नति कर रही हैं। हिन्दुओं पर इस शिक्षण का प्रभाव अद्भुत हुआ है। अंग्रेजी शिक्षण जिसने प्राप्त किया है, ऐसे हिन्दुओं में से एक भी हिन्दू ऐसा नहीं है जो सच्चे हृदय से अपने धर्म का पालन करता हो। थोड़े ऐसे हैं जो नीति के विचार से स्वयं को हिन्दू कहते हैं। कुछ लोग ईसाई बन

रहे हैं। यह मेरा विश्वास है कि यदि अपनी ऐसी शिक्षण नीति चलती रही तो यहां की सम्मानित जातियों में आगामी 30 सालों में एक भी ऐसा बंगाली बचा नहीं होगा जो कि मूर्तिपूजक हो। यह उनको ईसाई बनाये बगैर ही हो जाएगा। उनके धर्म में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। अपना (अंग्रेजी का) ज्ञान एवं विचारशीलता बढ़ाने से यह काम स्वयं ही हो जायेगा। ऐसी सम्भावना पर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

इतना होने पर भी अंग्रेज व मैकाले अपने शासनकाल में उतना सफल नहीं हो पाए जितनी की सफलता स्वाधीन भारत में मिली और मिल रही है। अंग्रेजों के काल में अनेक महापुरुष उठ खड़े हुए, जिससे सांस्कृतिक नवजागरण व तत्पश्चात् राजनीतिक आन्दोलन का क्रम चल पड़ा। जिसमें महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, डॉ. हेडगेवार, स्वामी प्रणवानन्द, लाल-बाल-पाल, वीर सावरकर, गांधी-सुभाष आदि प्रमुख हैं। राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हुई। इसलिए मैकाले की अंग्रेजियत को वह सफलता नहीं मिली क्योंकि हिन्दुओं ने इसे चुनौती के रूप में स्वीकारा। पर स्वाधीनता के बाद सबको लगा अब तो अपना राज्य है, वैसी चुनौती रही नहीं। वे ऐसे दुर्बल, अकुशल और कल्पना की दुनिया में विचरने वाले अपने मानस पुत्र को राज्य-शासन देकर गये जिससे अंग्रेजों के स्वार्थ सुरक्षित रहें और हिन्दू समाज (जो इस देश का राष्ट्रीय समाज है) कभी उठ न सके। और गांधीजी ने भी उन्हें अपना उत्तराधिकारी चुनकर मानो स्वयं अपने एवं पूर्ववर्ती महापुरुषों के कार्यों पर पानी फेर दिया।

अंग्रेजों के काल में भारत में दो विचारधाराओं का दर्शन होता है। एक तो भारत की परम्परागत धारा—प्राचीन काल से भारत एक सनातन राष्ट्र है, सनातन इसकी संस्कृति है। दूसरी धारा अंग्रेजों द्वारा प्रचारित-प्रसारित, कि भारत एक नये राष्ट्र के रूप में हिन्दू-मुस्लिम-ईसाई मिलकर, जो परस्पर तीन बहनें हैं अंग्रेजों के नेतृत्व में एक नये राष्ट्र के रूप में विकसित हो रहा है। पहली धारा की समर्थक है प्राचीन से लेकर अर्वाचीन ऋषि परम्परा—जिसमें महर्षि वाल्मीकि, महर्षि अगस्त्य, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र, महर्षि वेद व्यास, राजर्षि मनु, आचार्य चाणक्य, आद्य शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, लाल-बाल-पाल, वीर सावरकर, सरदार पटेल, पुरुषोत्तम दास टण्डन, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, कन्हैयालाल मुंशी, मदन मोहन मालवीय, गांधी आदि थे। दूसरी धारा के समर्थक नेहरूजी थे।

अंग्रेजों और गांधी की कृपा से शासन सूत्र नेहरूजी के हाथ में आ जाने से और स्वयं गांधीजी और पटेल के नहीं रहने से सारे देश को अपने अनुसार चलाने का निरंकुश अवसर उन्हें मिल गया। पंडित नेहरू स्वयं अंग्रेजों के मानस

पुत्र होने से अपने को शिक्षा की दृष्टि से अंग्रेज, धर्म की दृष्टि से मुसलमान और मार्क्सवाद के अनुयायी, केवल हिन्दू माता के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण हिन्दू मानते थे अन्यथा हिन्दुत्व पर उनकी कोई श्रद्धा नहीं थी। वरन् चिढ़ थी। अपने ग्रंथ Discovery of India और आजाद व्याख्यानमाला में जो उनका व्याख्यान 'आज कल आज में' एवं अन्यत्र भी हिन्दू विरासत पर गर्व की बात कही अवश्य है पर व्यवहार उनका सदा इसके विपरीत ही रहा है। अंग्रेजों के काल में शिक्षा व्यवस्था में जो बची-खुची भारतीयता या हिन्दुत्व था वह भी उनके काल में और उनकी लीक पर चलने वाली सरकारों द्वारा समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार अंग्रेजी काल में हमारी शिक्षा व्यवस्था के साथ-साथ अन्य सभी व्यवस्थाओं को जो ग्रहण लगा था वह यथावत ही नहीं और भी विकृत हुआ। इस प्रकार आजादी के पहले दिन से ही देश अपने मार्ग से विचलित हो गया और भारत की जो भूमिका होनी चाहिए थी वह आज तक नहीं बन सकी—भारत और विश्व के संदर्भ में।

इसी का परिणाम है आज का पढ़ा-लिखा युवक राष्ट्रीयता से रहित, स्वाभिमान से शून्य, आत्मगौरव से रहित, भारतीय इतिहास से अनभिज्ञ, देश-धर्म, संस्कृति एवं पूर्वजों की गौरवगाथा से वंचित है। क्योंकि वह भारत की मूल विचार परम्परा से कटा हुआ है। उसे न अपनी दार्शनिक धाराओं की जानकारी है और न आज के आधुनिक विज्ञान के निष्कर्ष किस तरह भारतीय विचार परम्परा को, वेदान्त की धारा को सत्य प्रमाणित करते जा रहे हैं, इसकी जानकारी है। और न उसे सेमिटिक परम्परा कितनी अमानुषिक, अवैज्ञानिक, अव्यावहारिक, अप्रजातांत्रिक, अराष्ट्रीय है और वह न केवल मानव को वरन् सारे चराचर को त्रास देने वाली सिद्ध हुई है और हो रही है, इसका ज्ञान है। यही कारण है कि वह अपने ही देश, धर्म, संस्कृति, इतिहास, महापुरुषों, श्रद्धा-केन्द्रों, भाषा, वेश-भूषा, खान-पान के विरुद्ध खड़ा है। वही सेमिटिक परम्परा (ईसाई-मुसलमान) के समर्थन में खड़ा होकर उसको संरक्षण प्रदान कर रहा है। वही देश के नेतृत्व के स्थान पर स्थापित है। वही शिक्षक, प्रोफेसर, प्राचार्य, अफसर बना हुआ है। वही विधायिका में बैठकर कानून बना रहा है। कार्यपालिका में बैठकर उसे क्रियान्वित करवा रहा है। न्यायपालिका में बैठकर निर्णय दे रहा है। इस प्रकार अपने मूल राष्ट्रीय समाज से कटा हुआ, अपनी विचार परम्पराओं से, अपनी आकांक्षाओं से अनभिज्ञ होकर देश को नेतृत्व दे रहा है। समाज की मूल आकांक्षा और परम्परा के विरुद्ध वह कानून व व्यवस्थाओं को थोप रहा है। इस प्रकार नेतृत्व देने वाले वर्ग और मूल समाज में कोई मेल नहीं है। विनोबा भावे के शब्दों में परस्पर राहु-केतु के समान कटे हुए हैं। विनोबा भावे कहते हैं कि 'अंग्रेजी पढ़ाई के कारण

हमारे देश की जनता राहु और केतु के रूप में विभक्त हो गई है। आज जो हमारे शासक और विचारनिर्माता हैं उनकी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी के माध्यम से होती है, वे अंग्रेजी में ही सोचते हैं और विदेशी विचार ही उनके लिए आदर्श है। वे राहु की तरह केवल सिर ही सिर हैं, भारत के शरीर से, भारत की सामान्य जनता से उनका सम्बन्ध कट गया है। भारतीय जनता की भावना, मान्यता और मूल्यचेतना उनके लिए न सामान्य है न महत्त्वपूर्ण।' इस प्रकार आज का पढ़ा-लिखा वर्ग मूल समाज के विरुद्ध खड़ा है। यह देश की सबसे बड़ी समस्या है। फिर देश में तीन अन्तरराष्ट्रीय शक्तियां—विश्व व्यापी इस्लामिक शक्ति, ईसाई शक्ति और कम्यूनिज्म की शक्ति—इस देश को नष्ट करने में लगी हैं। उसके पोषक और समर्थक बने हुए उन्हें सब प्रकार की सुविधा और संरक्षण दे रहे हैं और यह सब नेहरूजी की नीतियों का परिणाम है। अतः जो हानि ग्रीक, शक, हूण, कुषाण, मुगल, तुर्क, पठान, फ्रेंच, डच, पूर्त और अंग्रेज नहीं कर सके उससे अधिक हानि स्वाधीन भारत की नेहरू सरकार और उस लीक पर चलने वाली सरकारों ने कर दी है, अपने देश की मूल चेतना की उपेक्षा करके।

भारतीय इतिहास का विकृतीकरण

ऐसा कहा जाता है शस्त्र या विष से तो एक-दो लोगों की हत्या की जा सकती है, पर यदि किसी देश के इतिहास को बिगाड़ दिया जाए तो लगातार कई पीढ़ियां नष्ट हो जाती है। हमारे इतिहास के साथ दुर्भाग्य से ऐसा ही हुआ। इसमें अंग्रेजों के साथ हम भारतीय भी कम दोषी नहीं हैं।

मुस्लिम आक्रमणकारियों ने हमारे इतिहास ग्रन्थों को विकृत एवं नष्ट किया। वहीं धूर्त अंग्रेजों ने इतिहास को इस प्रकार लिखा और लिखवाया, जिससे भारतीयों को लगे वे तो सदा पराजित और गुलाम ही रहे हैं। सन् 1947 के बाद भारत एवं भारतीयता के पक्षधर लोगों को लगता था कि अंग्रेजों के षड्यन्त्र को अब नष्ट कर दिया जायेगा, पर प्रधानमंत्री नेहरूजी की मानसिकता भी अंग्रेजों जैसी थी। देश की शिक्षा संस्थाओं पर कब्जा जमाये कम्युनिस्ट आज भी अंग्रेजों द्वारा लिखे हुए इतिहास को मान्यता देते हैं।

मुसलमानों ने हिन्दुओं के देवालय तोड़े थे तथा ग्रंथ जलाये थे। पाश्चात्यों ने इस मार्ग को नहीं अपनाया, अपितु उन्होंने हिन्दुत्व की जड़ पर ही आघात किये। सुल्तानों और मुगल बादशाहों के दरबारी लेखकों ने हमारे राष्ट्र पुरुषों—पृथ्वीराज चौहान, महाराणा संग्रामसिंह (राणा सांगा), महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह आदि के चरित्रों को विकृत करके प्रस्तुत किया। अंग्रेजों ने शिक्षा के पाठ्यक्रम में महापुरुषों की इस विकृत छवि को ऐतिहासिकता प्रदान की। लॉर्ड

मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से भारतीयों की मानसिकता अंग्रेजीयत में परिणत करके भयंकर कुचक्र रचा।

इसी शिक्षा से शिक्षित नेहरूजी ने राणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह को भ्रमित हिन्दू देश-भक्त कहा। और शिक्षा मंत्री मौलाना अब्दुल कलाम, बाद में ताराचन्द हिमायु जैसे धर्मान्ध मुसलमानों को शिक्षा मंत्री बनाया। जिनका भारत व भारतीयता से कोई रिश्ता नहीं था।

हमारा तेजो भंग करने और उन्हें राष्ट्रीयता के आधार पर कभी चुनौती न मिल सके इसलिए अंग्रेजों ने यह पढ़ाना प्रारम्भ किया भारत कभी एक राष्ट्र नहीं था। वह तो अब उनके नेतृत्व में एक मिला-जुला राष्ट्र बन रहा है। आर्य इस देश के मूलवासी नहीं वरन् प्रथम आक्रांता था। जो भी आक्रांता इस देश में आये चाहे वह ग्रीक, शक, हूण, कुषाण हो, चाहे वह मुगल, तुर्क, पठान हो, चाहे अन्तिम आक्रांता अंग्रेज हो, उन्होंने ही इस देश पर शासन किया है। भारतीयों के जो भी श्रेष्ठ ग्रंथ, श्रेष्ठ बातें थी वह विदेशियों से चुरायी गयी, ग्रहण की गयी थी। और उनमें जो दुर्गुण है असभ्यता है वह उनके अपने हैं। यह असभ्यों का देश है। बन्दर नचाने वाले मदारियों का और सांपों को पालने वाले सपेरों का देश है। यह तो White man burden है। असभ्यों को सभ्य बनाने का नैसर्गिक दायित्व आने से वे भारतीयों को शिक्षित, सभ्य बनाने के लिए ही उन पर शासन कर रहे हैं। वे तो वरदान स्वरूप है। वेद पुरानी बाइबिल से, गीता नयी बाइबिल से उधार ली गयी। रामायण, महाभारत, पुराण आदि ये सब Mythology (गपोड़ शास्त्र) है। संस्कृत मृत भाषा है। भारत के इतिहास को तीन भागों में बांटा गया—हिन्दू काल, मुस्लिम काल और ब्रिटिश काल। हिन्दू काल को कुछ ही पृष्ठों में समेट दिया जाता है। हिन्दू काल में बुद्ध को ऐतिहासिक पुरुष मानकर बुद्ध के पूर्व के इतिहास को नहीं स्वीकारते। काल्पनिक मानते हैं। बुद्ध के पश्चात् से लेकर मुस्लिम के पूर्व तक काल को हिन्दू काल कहा गया। इस काल खण्ड के विषय में कहा जाता है बहुत कम प्रामाणिक विवरण मिलता है अतः उसकी भी उपेक्षा कर कुछ पृष्ठों में समेट दिया जाता है। फिर मुस्लिम काल और ब्रिटिश काल के इतिहास को विस्तार से पढ़ाया जाता है। इसे पराभव का काल बताया जाता है जबकि यह सतत संघर्ष का काल है। इसलाम और ईसाइयत को किसी ने पीटा है, रोका है चुनौती दी है तो वह भारत ने ही। अन्यत्र तो ये जहां भी गए उस देश की सभ्यता-संस्कृति धर्म को समूल नष्ट कर अपनी बर्बर, पैशाचिक सभ्यता-संस्कृति व धर्म को थोप दिया। मुगल काल को ये स्वर्ण युग बताते हैं। उधर भारत के वीतरागी संत जो राग-द्वेष से मुक्त हैं—गुरुनानक, तुलसीदास, सूरदास, ज्ञानेश्वर महाराज, समर्थ स्वामी रामदास आदि ने मुगल शासकों को चोर, लुटेरे बताया है।

फिर बाबर ने मुश्किल से कोई चार वर्ष राज किया। हुमायूं को पराजित कर भगा दिया गया था। मुगल साम्राज्य की नींव अकबर ने डाली और जहांगीर, शाहजहां से होते हुए औरंगजेब की मृत्यु के साथ उखड़ गया। कुल 100 वर्ष (अकबर 1556 ई. से औरंगजेब 1658 ई. तक) के समय को 'स्थिर शासन का मुगल काल' के नाम से इतिहास में एक-दूसरे पार्ट की तरह पढ़ाया जाता है। मानो सृष्टि आरम्भ से आज के काल खण्ड का तीन भाग कर बीच में मध्यकाल तक इन्हीं का राज रहा।

अब स्थिर (?) शासन की तीन-चार पीढ़ी के लिए कई किताबें, पाठ्यक्रम, सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता परीक्षा में प्रश्न, विज्ञापनों में गीत....इतना हल्ला मचा रखा है, मानो पूरा मध्ययुग इन्हीं 100 वर्षों के इर्द-गिर्द ही है। जबकि उक्त समय में मेवाड़ इनके पास नहीं था। दक्षिण और पूर्व भी इनके लिए सपना ही था। अब जरा विचार करें....क्या भारत में अन्य तीन-चार पीढ़ी और शताधिक वर्ष पर्यन्त राज्य करने वाले वंशों को इतना महत्त्व या स्थान मिला है?

अकेला विजयनगर साम्राज्य ही 300 वर्ष तक टिका रहा। हम्पीनगर में हीरे-माणिक्य की मण्डी लगती थी। महाभारत युद्ध के बाद 1,006 वर्ष तक जरासन्ध वंश के 22 राजाओं ने, प्रद्युत वंश के राजाओं ने 138 वर्ष, 10 शिशुनागों ने 360 वर्ष तक, 9 नन्दों ने 100 वर्ष तक, 12 मौर्यों ने 316 वर्ष तक, 10 शुंगों ने 300 वर्ष तक, 4 कण्वों ने 85 वर्ष तक, 33 आंध्रों ने 506 वर्ष तक, गुप्तों ने 245 वर्षों तक राज्य किया। फिर विक्रमादित्य ने 100 वर्ष तक राज्य किया था। इतने महान् सम्राट् होने पर भी भारत के इतिहास में गुमनाम कर दिये गये! उनका वर्णन करते समय इतिहासकारों की लेखनी रुक जाती है। सामान्य ज्ञान की किताबों के पन्ने कम पड़ जाते हैं। पाठ्यक्रम के पृष्ठ सिकुड़ जाते हैं।

इस प्रकार हिन्दुओं के तेजस्वी इतिहास को बाद देकर बहुत विस्तार से मुस्लिम ब्रिटिश काल का अतिरंजित झूठा इतिहास पढ़ाने से इतिहास निर्माण की प्रेरणा नहीं मिलती वरन् मन हीन भाव से, आत्म ग्लानि से, लज्जा बोध से भर जाता है और इससे तो ऐसा ही लगता है इस देश का कोई इतिहास नहीं, चरित्र नहीं, यह तो गुलाम रहने योग्य, शासित होने योग्य, शासक बनने योग्य नहीं है? और यह हीन भावना स्वयं पंडित नेहरू में दिखती है, वे स्वयं मैकाले की शिक्षा के शिकार थे जो भारत का संविधान एक अंग्रेज से बनवाना चाहते थे, जो स्वतंत्र भारत में भी अंग्रेज सेनाध्यक्षों को रखते हैं और स्वतंत्र भारत में श्री वायसराय लॉर्ड माउंट बेटन को रखते हैं, डेढ़ साल बाद इंग्लैण्ड जाने के बाद भी उनसे फोन पर परामर्श लेते रहे और उनके परामर्श से प्रभावित होकर पंडित नेहरू जीवन भर देश को एक से दूसरे गड्ढ़े में डालते रहे। नेहरूजी को न स्वयं पर भरोसा था और न

भारतीयों पर। और इसे सिद्ध करते रहे कि हम शासक बनने योग्य नहीं शासित होने योग्य ही हैं। और कांग्रेस में यह हीन भावना अभी भी भरी हुई है तभी कांग्रेस और देश की कमान एक विदेशी ईसाई महिला सोनियाजी को सौंप रखी है जो देश को निरन्तर सब दृष्टियों से खोखला करने में लगी है। देश की मूल राष्ट्रीय शक्तियों को कुचलने और अराष्ट्रीय शक्तियों को सब प्रकार से बढ़ावा देने में, देश को लुटाने सब प्रकार से भ्रष्ट करने, बर्बाद करने, इस देश के मूल स्वरूप को ही बदल देने में, सब प्रकार के घोटालों से देश को जर्जर करने तथा देश के पशुधन को समाप्त करवाने में लगी रही अपने दस वर्षों के शासन में। उसके बाद भी उसके प्रति मोह-भंग नहीं हो रहा है। ऐसी हीन भावना से सारा देश भर गया। इसलिए उससे मुक्त होने के लिए कहीं से थोड़ी भी आवाज उठती है तो उसे दबा दिया जाता है, और आवाज उठाने वाले संत रामदेवजी हों या मोदीजी, अण्णा हजारेजी हों। उन्हें ही अपराधी सिद्ध करने की कोशिश की जाती है।

जब हम कटे-पिटे वर्तमान भारत को जानेंगे तो अखण्ड भारत की, वृहत्तर भारत की, सारी दुनिया में छाये सांस्कृतिक साम्राज्य को पुनः पाने की तड़पन, प्रेरणा कहां से होगी।

हमारा इतिहास बुद्ध से नहीं सृष्टि के प्रारम्भ से शुरू होता है। डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी का कहना है आर्य कहीं बाहर से नहीं भारत के मूलवासी है और यहां से मनु के जलप्लावन के समय सारे यूरोप एवं मध्य एशिया के देशों में फैल गए और यहां से भारतीय संस्कृति का विस्तार प्रारम्भ हो जाता है। भारत के आर्यों की ही एक शाखा ईरान में बस गयी जो पारसी कहलाये उसके द्वारा भी भारतीय संस्कृति का विशेषकर सूर्य पूजा का प्रसार विश्व के देशों में हुआ। यदि ईसाइयत उषा काल में नष्ट हो जाती तो आज सारा विश्व सूर्य-पूजक होता। ईसाइयत ने छलपूर्वक सूर्य पूजा को नष्ट कर अपना विस्तार किया। जो भारत का इतिहास बुद्ध से मानते है उनसे डॉ. ओबरायजी का प्रश्न है बुद्ध के पूर्व भारत कैसा था, उस समय कौन-सा धर्म-दर्शन प्रचलित था। भगवान् बुद्ध पर किस विचार परम्परा की छाप है, किस विचार की देन भगवान् बुद्ध है, किस विचार परम्परा में वे शिक्षित, दीक्षित एवं संस्कारित हुए। तो देखेंगे बुद्ध के पूर्व हिन्दू विचार परम्परा ही वहां प्रचलित थे। हिन्दू परम्परा से किंचित् भिन्न, संशोधित विचार रखे और उसे चार आर्य सत्य ही कहा। अधिकांश आचार-विचार हिन्दू धर्म से ही ग्रहण किए। श्रीलंका को आज बौद्ध देश माना जाता है। डॉ. ओबराय प्रश्न उठाते है बौद्ध धर्म के पूर्व वहां कौन-सा धर्म प्रचलित था। लंका के प्रायः सभी बौद्ध मन्दिरों में भगवान् बुद्ध के साथ-साथ हिन्दू देवी-देवता भी प्रतिष्ठित है। राम प्रतिष्ठित हैं। स्पष्ट है भगवान् बुद्ध के पूर्व भारत में और श्रीलंका में हिन्दू धर्म ही प्रतिष्ठित था।

डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी का कहना था विश्व के इतिहास से चार पर्दे हटा दिए जाए तो देखेंगे सारी दुनिया में हिन्दू संस्कृति ही फैली हुई थी। ईसा से पूर्व यूरोप, इसलाम से पूर्व अरब, कोलम्बस से पूर्व अमेरीका, फिलिप से पूर्व फिलिपाइन।

जैसे जैसे समय और विज्ञान आगे बढ़ रहा है भारत की सत्यता और प्राचीनता स्वतः प्रकट होती जा रही है। पहले वे भारत की प्राचीनता को स्वीकारने को तैयार नहीं थे, परन्तु मोहेनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई ने और सरस्वती नदी के अन्वेषण ने भारत की प्राचीनता और विस्तार को मानने के लिए बाध्य कर दिया।

पुराणों को Mythology के रूप में स्थापित करने का प्रयास हुआ। पर पुराणों के आधार पर नील नदी के स्रोत का पता लगने पर पुराणों की सत्यता मानने के लिए बाध्य हुए।

राम और कृष्ण की ऐतिहासिकता और प्राचीनता को मानने के लिए भी तैयार नहीं थे। राम सेतु के प्रकटन से राम की ऐतिहासिकता और प्राचीनता स्वयं सिद्ध हो गई। समुद्र के गर्भ से द्वारिका के प्रकटन से कृष्ण की ऐतिहासिकता और प्राचीनता सिद्ध हो गई। जिस भारतीय काल गणना की पहले हँसी उड़ाई जाती थी वह सत्य सिद्ध हो गई और उनकी काल गणना Mythology सिद्ध हो रही है।

पर दुर्भाग्य से अभी तक इस तथ्यपूर्ण इतिहास को पाठ्यपुस्तकों में स्थान नहीं मिल पाया है। विकृत इतिहास को तोता रटन्त की तरह पढ़ाया जा रहा है, रटाया जा रहा है।

1857 के प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम से निरन्तर लम्बे संघर्ष के पश्चात् 15 अगस्त, 1947 को भारत को आधी-अधूरी स्वतंत्रता मिली। इसमें भारत के सभी वर्गों, सम्प्रदायों जातियों ने भिन्न-भिन्न मार्ग से योगदान दिया है। इसलिए किसी एक संस्था या एक मार्ग को श्रेय देना तथ्यपूर्ण तथा तार्किक न होगा, बल्कि एक मिथ्या तथा भ्रामक निष्कर्ष होगा। पर राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास को कांग्रेस का इतिहास बताया और पढ़ाया जाने लगा—कांग्रेसी नेताओं के निर्देश पर। जो सर्वथा अनुचित, अतार्किक तथा तथ्यहीन है। यद्यपि यह सत्य है कि राष्ट्रीय आन्दोलन में कांग्रेस का महत्त्वपूर्ण योगदान है, पर वे अकेले नहीं हैं। बल्कि इसमें अनेक क्रान्तिकारियों की निर्णायक भूमिका रही है। इसमें अनेक सांस्कृतिक हिन्दू संगठनों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रांतीय तथा आंचलिक स्तरों पर भी अनेक संघर्षों के परिणाम देश व्यापी हुए। अंग्रेजी पढ़े-लिखे मध्यम वर्ग के अतिरिक्त भारत के कृषकों, दलितों, श्रमिकों तथा सामान्यजन ने इसमें महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। इसमें क्रान्तिकारियों का भी बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रायः सभी क्रान्तिकारी सुशिक्षित, सुसंस्कारित तथा उच्च भावनाओं से

प्रेरित थे। सभी को देश, समाज, धर्म तथा संस्कृति का सूक्ष्म ज्ञान था। ये क्रान्तिकारी थे पर हिंसावादी न थे और न ही आतंकवादी। इनका संघर्ष केवल बड़े-बड़े प्रस्ताव पारित करने तक सीमित न था या विशाल सभाओं में भाषणों अथवा समाचार पत्रों में मन्तव्यों तक सीमित न था, बल्कि इनका संघर्ष सड़कों की तंग गलियों तथा संकरे मार्गों पर था जिनके पीछे पुलिस तथा गुप्तचर लगे रहते थे। देश के सैकड़ों नवयुवकों ने वेदों, उपनिषदों, गीता के संदेशों को अपनी आत्माहुति देकर प्रस्तुत किया था। इनमें से किसी की इच्छा कोई सम्मान या पद प्राप्त करने की नहीं थी बल्कि बलिदान होते समय निष्काम कर्मयोग तथा भारत में पुनर्जन्म लेकर पुनः भारत माता की सेवा करने की थी। इसमें भारतीय सैनिकों विशेषकर सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज, भारत की नौ सेना तथा वायु सेना का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है। इस सर्वव्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन को कांग्रेस द्वारा राजनैतिक दृष्टि से हाइजेक करने का कुप्रयास किया गया। दुर्भाग्य से इस महान् संघर्ष को एक राजनीतिक पार्टी का संघर्ष बतलाकर पढ़ाया गया और इसमें भी कुछ गिने-चुने व्यक्तियों के प्रयासों को बढ़ा-चढ़ाकर दिया गया है। इस प्रकार इतिहासविद् डॉ. सतीशचन्द्र मित्तलजी कहते हैं—आश्चर्यजनक यह है कि भारत की स्वाधीनता के पश्चात् भी, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास को, अंग्रेजों की भाँति इसी भ्रामक तथा मनमाने ढंग से आने वाली पीढ़ियों के सम्मुख यह इतिहास परोसा गया। इससे युवा पीढ़ी को न ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी मिली, न ही स्वाधीनता के लिए किये गये महान् संघर्षों की अनुभूति हुई और न ही भविष्य में राष्ट्र को सुदृढ़ करने के लिए कोई उत्साह ही पैदा हुआ।

दूसरे, कांग्रेस के अनेक नेताओं का यह कथन कि देश की स्वतंत्रता अहिंसा मार्ग का प्रतिफल है, अपने-आपमें भ्रामक तथा छद्मवेशी चिन्तन है। वस्तुतः यह कथन इतिहास की उपेक्षा तथा सत्य से मुंह छिपाना होगा। यदि 1922 ई. से मोपला, कोहाट से 1940 ई. के दशक में कोलकाता, नोआखली, बिहार, पंजाब, दिल्ली में हजारों की संख्या में हत्याएं तथा भारत विभाजन के समय विश्व की महानतम जनसंख्या की अदला-बदली अर्थात् एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों की अदला-बदली, लगभग दस लाख लोगों का नर-संहार, एक लाख महिलाओं का अपहरण तथा बलात्कार तथा अरबों रुपयों की सम्पत्ति का विनाश, विश्व की सबसे भयंकर त्रासदी कही जा सकती है। इतने पर भी राष्ट्रीय आन्दोलन को अहिंसक कहना केवल अहंकार तथा आत्म-श्लाघा होगी।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है—वे देश भाग्यवान है जो चिरन्तन स्वदेश को देश के इतिहास में खोज लेते हैं। बाल्यकाल में इतिहास ही देश के

साथ परिचय करा देता है। किन्तु हमारे यहां बिल्कुल उलटा है। देश का इतिहास ही हमारे स्वदेश को आच्छन्न किये हुए है। अंग्रेजों के लड़के यह जानते हैं कि उनके बाप-दादों ने अनेक युद्ध जीते, अनेक देशों पर अधिकार किया। और वाणिज्य-व्यवसाय बढ़ाया। वे स्वयं भी रणगौरव, धनगौरव और वाणिज्यगौरव के अधिकारी बनना चाहते हैं। हम जानते हैं कि हमारे पूर्वजों ने देश अधिकार और वाणिज्य-व्यवसाय नहीं किया। यही जानने के लिए है भारतवर्ष का इतिहास। उन्होंने क्या किया हम नहीं जानते।

यह कैसी विडम्बना और दुर्भाग्य की स्थिति है। जबकि इसके विपरीत जितना श्रेष्ठ सात्त्विक देश उज्ज्वल इतिहास, सत्शास्त्र एवं सत्महापुरुषों की अखण्ड परम्परा हमें प्राप्त हुई वह शायद ही विश्व के अन्य देश को प्राप्त हुई हो?

भारतीय राष्ट्र जीवन प्रवाह में बाधक अहिंसा का अतिरेक एवं मुस्लिम तुष्टीकरण

इतिहास में हम देखते हैं बौद्ध एवं जैन धारा के सम्पर्क में आकर हमारा क्षात्रतेज दुर्बल हुआ। जैन धारा के भगवान् महावीर और बौद्ध धर्म के प्रवर्तक भगवान् बुद्ध, दोनों ही क्षत्रिय वंशी राजा होने से क्षत्रिय राजा और क्षत्रिय उनकी अहिंसा से प्रभावित होकर क्षत्रिय से वैश्य बन गए। इससे क्षात्रतेज दुर्बल हुआ और विदेशी आक्रान्ताओं का देश पर आक्रमण करने का साहस हुआ। कालान्तर में पुनः हम देखते हैं काल के प्रवाह से पृथ्वीराज के समय हम धर्माभास के शिकार होकर 'विनाशाय च दुष्कृताम्' को भूलकर राष्ट्र के शत्रुओं को क्षमादान करने लगे। व्यक्तिगत अपराधी को तो क्षमा किया जा सकता है, पर राष्ट्र के अपराधी को कभी नहीं और वह भी 17-17 बार....भूल की, धर्माभास की पराकाष्ठा है। जयचन्द ने 'वयं पञ्चाधिकशतम्' को भुलाकर मुहम्मद गोरी का साथ देकर स्वयं के लिए और देश के लिए पतन और पराधीनता के द्वार खोल दिए। यथार्थ व्यावहारिकता के अभाव में सद्गुण विकृति के शिकार हुए। तब से हम आज तक धर्माभास के शिकार हैं।

धर्माभास के शिकार भ्रान्त हिन्दू समाज को अंग्रेजों ने और भी दुर्बल एवं भ्रान्त किया। हमारी सारी शिक्षा व्यवस्था और अन्य सारी व्यवस्थाओं को अपने स्वार्थ के अनुकूल ढालकर हमारे मानस को, हमारी रुचि को ही बदल दिया और हमारे ब्रह्मतेज को भी नष्ट कर दिया और देशी राजाओं की सुरक्षा व्यवस्था, सैन्यबल अपने हाथ में लेकर तथा देश का निशस्त्रीकरण कर क्षात्रतेज को निस्तेज, निर्वीर्य करने का प्रयास किया। हमारे व्यापार-वाणिज्य, कला-कौशल तथा शिल्प को नष्ट-भ्रष्ट कर हमें वैश्य तथा शूद्र कर्म से भी च्युत करने का प्रयास किया।

फिर गांधीजी ने अहिंसा पर अतिरेक बल देकर इस देश के राष्ट्रीय हिन्दू समाज को जाने-अनजाने और निस्तेज किया। मुसलमानों की उद्दण्डता की अनदेखी कर उनको और अधिक हिंसा परायण होने, संगठित होने का अवसर दिया, न उनके मनोभाव को, मनोविज्ञान को, महत्त्वाकांक्षा को समझने का प्रयास किया और न देश विभाजन के मूल कारणों को जानने का प्रयास किया। और उनकी उद्दण्डता और हिंसा से डरकर देश विभाजन को स्वीकार कर लिया। एक मां के दो पुत्रों में सम्पत्ति का विभाजन होता है। स्वयं मां का नहीं। भारत भूमि किसी की सम्पत्ति नहीं है या थी। इसको देशवासियों ने हमेशा अपनी माता के रूप में पूजा है, वंदना की है। माता का विभाजन न कभी हुआ है न कभी स्वीकार्य होगा। गांधीजी ने स्वयं भी कहा था कि भारत का विभाजन मेरी लाश पर होगा। किन्तु यह समझ से परे है कि अन्ततः उन्होंने भारत विभाजन कैसे स्वीकार लिया।

हिन्दू और मुसलमान इन दो सम्प्रदायों को ही भारत भूमि का मालिक गांधीजी ने कैसे मान लिया। हिन्दू हजारों-लाखों वर्षों से इस भूमि पर रहते आये हैं। हमेशा उन्होंने 'जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी' माना है। सनातन धर्म जिसके हिन्दू अनुयायी हैं इस धरती मां की उपज हैं। अतः इस भूमि पर पुत्र होने का अधिकार केवल उन्हें ही प्राप्त है। मुसलमान इसलाम धर्म के अनुयायी हैं जिसकी न तो उत्पत्ति इस भूमि से हुई और न ही इस भूमि से उसका दूर-दूर का कोई सम्बन्ध है, तो फिर हिन्दू और मुसलमान को एक तराजू में तोलना न केवल विराट विसंगति है अपितु एक अपराध भी है। गांधीजी ने जाने-अनजाने यह अपराध किया है। जब मुसलमान इस भारत भूमि को भोग भूमि, शत्रु भूमि, नापाक भूमि मानते हैं। जिन्होंने इस देश (मातृभूमि) को कभी मां के रूप में स्वीकार ही नहीं किया और न ही मां मानकर किसी कर्तव्य को निभाया, ऐसी स्थिति में उनका देश पर कैसा अधिकार? तब फिर विभाजन कैसा? उन्हें भी अंग्रेजों की तरह निकाल बाहर किया जाना चाहिए था। जो यह दलील दी जाती थी बंटवारे के बाद दोनों भाई शान्ति से रहेंगे यह पूरी तौर पर असफल सिद्ध हुई। क्योंकि घृणा एवं द्वेष की नींव पर निर्मित राष्ट्र में कभी शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। इतिहास साक्षी है वह अपने जन्मलग्न से अशान्त है और भारत पर निरन्तर युद्ध, षड्यंत्र, आतंक थोप रहा है। अतः जिस हिंसा के भय से विभाजन स्वीकारा उस हिंसा से भी बचे नहीं। क्योंकि हमारे युद्ध एवं हिंसा को अस्वीकार कर देने से दुष्टों का, शत्रुओं का स्वभाव नहीं बदल जाता। इसलिए वीरता के स्थान पर हमने कायरता का रक्त दिया। यदि वीरता का रक्त देते तो देश का विभाजन रुक जाता। जो लाखों हिन्दू मारे गए, वे स्वाभिमान के साथ जीवित रहते, लाखों हिन्दू ललनाओं की इज्जत लूटी गई पांच हजार हिन्दू स्त्रियों को नग्न कर जुलूस निकाला गया और नारे लगे

हँस के लिया पाकिस्तान लड़कर लेंगे हिन्दुस्तान। यह संभव नहीं होता और भारत अखंड रहता। न पाकिस्तान का कश्मीर पर आक्रमण होता न कश्मीर की समस्या जन्म लेती और न चीन का साहस होता तिब्बत को हड़पने का, हम पर आक्रमण करने का। न भारत और नेपाल में माओवादियों का संकट खड़ा होता। न इसलामी आतंकवाद का संकट देश में खड़ा होता न तमिल चीतों का आतंक श्रीलंका में खड़ा होता और भारत एक अखंड शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में विश्व में अपनी प्रभावी भूमिका निभाता।

पर हमने देश विभाजन भी स्वीकार कर लिया। जिस घाव के ऑपरेशन के लिए देश का विभाजन स्वीकारा उस घाव को भी रख लिया। देश-विभाजन के पश्चात् मुसलमानों का इस देश में रहने का कौन-सा नैतिक अधिकार बचता था? पर हमने नैतिक अधिकार ही नहीं संविधान के द्वारा विशेष-विशेष सुविधा और संरक्षण प्रदान किया। प्रश्न है अल्पसंख्यक के नाम पर विशेष सुविधाएं दी जाएगी तो वह उनको छोड़कर देश के साथ क्यों एकात्म होगा। द्विराष्ट्र के आधार पर देश का विभाजन हुआ। जब देश विभाजित हो गया। अब विभाजित भारत में एक राष्ट्र ही शेष बचा। और जो मुसलमान इस देश में रह गए अब एक राष्ट्र मानकर ही रहे, भारतीयता को स्वीकार करके ही रहे। केवल देश में जन्म ले लेने से, वास करने मात्र से कोई देश का नागरिक नहीं बन जाता। जो भारत में रहे पर भारतीयता को अस्वीकारे वह भारत का नागरिक कैसे हो सकता है? उपासना पद्धति भले भिन्न हो, पर राष्ट्रीयता, संस्कृति, पूर्वज, इतिहास एक है। अतः देश विभाजन के पश्चात् अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक का विभाजन करना, और अल्पसंख्यक के नाम पर विशेष सुविधा देने का कोई अर्थ नहीं रह गया था। पर देश की विडम्बना है मुसलमानों को अल्पसंख्यक मानकर उन्हें विशेष सुविधा और संरक्षण दिया गया। इसका विरोध स्वयं गांधीजी की शिष्या रैहाना तैय्यब ने गांधीजी को पत्र लिखकर किया—बापू! आप अगर मुसलमानों को वफादार बनाना चाहते हैं तो बाकी शेष हिन्दुस्तानियों से कोई फर्क नहीं करना चाहिए। बापू, मुसलमानों पर यह अन्याय है कि उन्हें अपना दुराग्रह छोड़ने का कोई मौका नहीं देते। और उनकी अनुचित मांगों को पूरी करके उनमें एक कृत्रिम अलगाव पैदा कर देते हैं। इसका प्रमाण स्वयं मेरा अपना खानदान है। आप लोग मुसलमानों से इतने अलग रहे हैं कि आपको उनके मानस की बिल्कुल खबर नहीं है। यही कारण है कि पाकिस्तान बन गया और मुझे यकीन है कि अगर आपने नागरी के साथ उर्दू को भी राष्ट्रलिपि बना दिया तो आप हिन्दुस्तान के भीतर एक दूसरा पाकिस्तान खड़ा कर देंगे....वह कहती है। मेरी विनती है खुदा के लिए आप मुसलमानों को अपने ही मुल्क में परदेशियों की तरह रहने के लिए बाध्य

मत कीजिए। वे तो यही चाहते हैं। आप ब्रिटेन और पाकिस्तान का खेल खेलते रहे और मुसलमान हर जगह बाजियां जीतते रहे। बापू, मैं बहुत घबरायी हुई हूं क्योंकि मैं मुसलमान समाज से वाकिफ (परिचित) हूं। उनकी महत्त्वाकांक्षाओं को मैं जानती हूं भले ही आप जानने या मानने से इनकार करें।

गांधीजी की तुष्टीकरण की नीति को नेहरूजी ने और व्यापक रूप से लागू किया। जो मुस्लिम लीग देश विभाजन के पाप के कारण मुंह छिपाये हुए थी, उसको नेहरूजी ने पुनर्जीवित किया और वे अपराध पर अपराध करते रहे पर नेहरू ने सदा छाती से लगाए रखा और माफ करते रहे। चीन के आक्रमण एवं भारत भूमि पर कब्जा कर लेने पर—वहां तो घास का तिनका भी नहीं उगता, नेहरू कहते रहे। नेहरूजी की इस उक्ति के विरोध में लोकसभा सदस्य भाई महावीर का प्रत्युत्तर अत्यन्त समीचीन है—उन्होंने कहा कि आपके सर पर कोई बाल नहीं है तो क्या इस पर भी कोई जबरन दखल कर ले तो आपको कोई आपत्ति नहीं होगी? ऐसे नेता जो देश को सदा लुटाते रहे, पिटवाते रहे। हमने मृत्युपर्यन्त ऐसे नेताओं को अपनी छाती से चिपकाए रखा। इसका ही परिणाम है कि आज देश अंतः-बाह्य आतंक से घिर गया है। पुनः देश में विभाजन से बदतर स्थिति निर्मित हो गई है। मुस्लिम व ईसाई तुष्टीकरण ने पंजाब के आतंकवादियों को शह दी, और आज खालिस्तान की मांग के रूप में उपस्थित है। ऐसे ही क्रिश्चियन स्थान नागालैण्ड, मिजोरम, बोरोलैण्ड, कुकीस्थान आदि की मांग के रूप में उपस्थित है। यहां तक कि अवतारी ऋषभदेव के अनुयायी जो अपने आपको जैन कहते हैं। अल्पसंख्यक का दर्जा चाहने लगे हैं। रामकृष्ण परमहंसदेव एवं उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्दजी ने हिन्दुत्व की रक्षा के लिए जितना कार्य किया है शायद ही अन्य किसी महापुरुष ने इतना कार्य किया हो तथापि उनके मस्तिष्क में भी यह दूषित मानसिकता प्रवेश कर गयी है और सुप्रीम कोर्ट में उन्होंने खुलेआम अपने आपको हिन्दुओं से अलग एक विशेष अल्पसंख्यक सम्प्रदाय की मान्यता की मांग की थी। सौभाग्यवश सुप्रीम कोर्ट ने इस मांग को अस्वीकार कर दिया। आज भी महात्मा गांधी के तथाकथित ये अनुयायी इस विष वृक्ष को सिंचित कर रहे हैं, उसे पनपने का अवसर प्रदान कर रहे हैं, हर प्रकार से सहयोग कर रहे हैं वही दूषित मानसिकता कि भारत एक भूमि है यह न किसी का पावन तीर्थ है न किसी की माता है। उनके दिमाग में, उनके मस्तिष्क में संचारित है। भारत के महान् अद्वितीय भक्त ऋषि बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की अमर वंदना वंदेमातरम् का भी विरोध करने में उनको कोई संकोच नहीं होता।

हमारे आदर्श अप्रिय सत्य को भी उच्चारित करने की आज्ञा नहीं देते। किन्तु जब अप्रिय सत्य नहीं कहने से हमारी देवस्वरूपा भारत मां के अंगछेदन का

वातावरण बनता हो तो ऐसे अप्रिय शब्द बोलने में किसी प्रकार का संकोच करने के प्रो. ओबरायजी विरोधी थे।

एकतरफा अहिंसा के प्रचार से हिन्दू समाज निस्तेज हो गया। आज वह मरना, बलिदान देना भूल गया है। जो जाति मरना भूल जाती है वह अपने आदर्श और अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकती। आज हिन्दू व्यक्ति और परिवार के नाते जी रहा है, राजनीतिक बेहोशी में जी रहा है, राष्ट्र के नाते नहीं। किन्तु जिसका राष्ट्र सुरक्षित नहीं है उसका परिवार और पेट भी छिन जाता है और वह रोम, मिस्र, बेबीलोन की कहानी दुहराता है। इतिहास साक्षी है जहां-जहां हिन्दू घटा, वह देश नहीं रहकर विदेश बन गया। यथा—अफगानिस्तान, पाकिस्तान, बांग्लादेश बन गया। वहां न उनका पेट, परिवार, न उपासना पद्धति, न देव विग्रह, न मातायें—कोई सुरक्षित नहीं है। कश्मीर घाटी से हिन्दू निष्कासित कर दिए गए। यही स्थिति ईसाई बहुल प्रदेशों में है। आज दुर्भाग्य से साम, दाम, दंड, भेद का प्रयोग हिन्दू समाज को और अधिक तोड़ने, विघटित करने में हो रहा है जबकि इसका प्रयोग शत्रुओं पर किया जाता है। यही कारण है स्वाधीनता के बाद भी मुसलमान एवं ईसाई आक्रामक बने हुए हैं और हिन्दुओं को अपने आदर्श एवं अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने ही स्वाधीन देश में रक्षात्मक लड़ाई लड़नी पड़ रही है। हिन्दू समाज बार-बार सरकार से गुहार लगा रहे हैं वे दोहरे मानदंड नहीं अपनावे, पर सरकार निरन्तर अनसुना करती जा रही है। आज हिन्दुओं के अपने ही एकमात्र देश में हिन्दू होना मानो एक अपराध जैसा हो गया है। यह विचित्र हास्यास्पद स्थिति है सारे विश्व के सामने। अतः यदि हम स्वाभिमान के साथ राष्ट्र को जीवित रखना चाहते हैं तो प्राणों का मोह छोड़कर अपने प्राण विसर्जन के लिए तत्पर रहना होगा। सुभाष बोस के शब्दों में—तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा—इस भाव को अपने जीवन में लाना होगा। 1,200 वर्षों से अवरुद्ध 'विनाशाय च दुष्कृताम्' कार्य को हाथ में लेना होगा। भगवान् राम, कृष्ण, आद्य शंकराचार्य, आचार्य चाणक्य, पुष्यमित्र, विद्यारण्यक, राणा प्रताप, शिवाजी की दृष्टि को पुनः अपनाना होगा। तब फिर आपकी ओर बुरी दृष्टि डालने की कोई हिम्मत, स्वप्न में नहीं कर सकेगा। जैसा कि प्राचीन भारत में पाते हैं। इसके लिए वीरता का खून देना होगा। नहीं तो कायरता का खून भी देंगे और परतंत्रता को भी भोगेंगे। जैसा कि मुस्लिम काल और ब्रिटिश काल में हुआ। इनके पक्ष में अपना रक्त देकर अपने को पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ेंगे। उसे स्थिर करेंगे। खून तो देना पड़ेगा चाहे वीरता का खून देकर स्वाभिमान के साथ जीएं या कायरता का खून देकर अपने अस्तित्व को शत्रु के हवाले कर देवें। आज हमारे सत्संग, कथा-प्रवचन सब राजनीतिक बेहोशी एवं देश के कर्तव्य के प्रति उदासीनता उत्पन्न कर रहे हैं। देश लुटता रहे, पिटता रहे। प्रायः

सभी कथावाचक और श्रोता, सब मूकदर्शक बने हुए हैं। माँ दुर्गा की, माँ काली की, शक्ति की उपासना हो रही है जिसमें मुख्यतः असुरों के संहार की कथा है और देश आतंक और शत्रुओं से घिर रहा है, राम-कृष्ण की उपासना कर रहे हैं जिन्होंने जीवनपर्यन्त, पूरे अवतारकाल में संघर्ष ही संघर्ष किया। शत्रुओं का दमन किया। और हम उनके अनुयायी शत्रुओं से घिरते जा रहे हैं। परिवार के प्रति, माता-पिता के प्रति कर्तव्यबुद्धि की चर्चा है पर राष्ट्र के प्रति कर्तव्य की कोई चर्चा नहीं।

राष्ट्र के प्रति कर्तव्य निभाए बिना शास्त्र चर्चा, धर्म चर्चा, उपासना, देव-विग्रह, मां-बहनों का शील, ब्रह्मज्ञानी गुरुओं का जीवन आदि कुछ भी सुरक्षित नहीं रहता। शस्त्र से रक्षित राष्ट्र में ही शास्त्र चिंतन हो सकता है। बिना शस्त्र के शास्त्र रोते हैं। विश्व की तीन अन्तरराष्ट्रीय शक्तियां विश्व के मानचित्र से भारत के अस्तित्व को ही सदा-सदा के लिए मिटा देना चाहती हैं और हममें से बहुत से वोट डालने का भी कष्ट नहीं उठाना चाहते हैं, तो हमें नागरिक सुविधा भी नहीं लेनी चाहिए। पर हमें नागरिक सुविधा तो चाहिए। हमें देश की नागरिकता, भोजन, वस्त्र-आवास व्यवस्था, शिक्षा, चिकित्सा, यातायात की सुविधा, पर्व-त्योहार मनाने की सुविधा, सरकारी नौकरी आदि सारी सुविधाएं तो चाहिए। हमारे वोट नहीं डालने का लाभ तीनों अराष्ट्रीय शक्तियों मुसलमान, ईसाई व कम्युनिस्टों को मिलता है। और वे सरकार बनाने में निर्णायक बन जाते हैं, इस पर हम विचार नहीं करते। आज हिन्दुओं की स्थिति यह है नीचे प्रारब्ध ऊपर परमात्मा की इच्छा के नाम पर सारे अन्याय-अत्याचार सह लेंगे। न उसका विरोध, न प्रतिकार करेंगे और न उसका प्रतिशोध लेंगे। अपने परिवार को स्थापित करने में, स्वयं की, बेटे-बेटी की शिक्षा, नौकरी, विवाह आदि के लिए पूरा जोर लगाएंगे। किसी प्रमाद का परिचय नहीं देंगे, पर देश के प्रति कर्तव्य को भगवान् पर, महामाया की लीला पर छोड़ कर निश्चिंत हो जाते हैं। घर की एक गज जमीन पर गैर द्वारा कब्जे के विरुद्ध झगड़ा, मुकदमा आदि सब करेंगे पर देश की हजारों वर्ग कि.मी. चली जाने पर भी हम उदासीन रहते हैं। हम यह भूल जाते हैं 'धर्मो रक्षति रक्षितः।' हम धर्म की रक्षा करेंगे तो धर्म भी हमारी रक्षा करेगा। हम धर्म के जितने अंशों की, पक्षों की रक्षा करेंगे उतनी ही वह हमारी रक्षा करेगा। धर्म के अन्तर्गत व्यक्ति का शरीर, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व, चराचर जगत् और विश्व चेतना का समावेश है। हम शरीर धर्म का पालन करेंगे तो शरीर हमारी रक्षा करेगा। परिवार धर्म के पालन से परिवार हमारी रक्षा करेगा। वैसे ही अगर हम राष्ट्र धर्म का पालन करेंगे, राष्ट्र की सेवा, सुरक्षा व प्रतिष्ठा करेंगे तो राष्ट्र भी हमारी रक्षा करेगा। हमारा पेट, परिवार, सम्मान सबको सुरक्षित रखेगा और हम स्वाभिमान के साथ आगे बढ़ेंगे अन्यथा इसमें से कुछ भी सुरक्षित नहीं रहेगा। इतिहास बार-बार इसका साक्षी रहा है।

भारतीय संस्कृति मिश्रित या खिचड़ी संस्कृति नहीं है

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारत महादेश को 'महामानवेर महासागर' कहा है। विश्व की अनेक निराश्रित जातियों को यहां आश्रय स्थल मिला है। अतः भारत को अनेकानेक संस्कृतियों का पावन संगम स्थल माना गया। किन्तु, क्या भारतीय संस्कृति की सरिता केवल उधार लिए हुए जल से भरी हुई है? नहीं, ऐसा मानना तो सत्य का हनन करना होगा। जैसे अमर तरंगिणी सुर-सरिता अपनी हजारों मील की लम्बी यात्रा में अनेकानेक नदी-नालों को आत्मलीन करती हुई, उन्हें भी गंगा बनाती हुई निरन्तर प्रवहमान है, वैसे ही भारतीय संस्कृति की मंदाकिनी अपने भीतर आर्य एवं आर्येतर संस्कृतियों के श्रेष्ठ गुणों को आत्मसात् करती हुई निरन्तर जीवन-रस से तरंगित हो रही है।

डॉ. राधाकृष्णन् का मत है कि आज का हिन्दू धर्म आर्य एवं द्रविड़ संस्कृतियों के एकाकार हो जाने से बना है। श्री रामधारी सिंह दिनकर ने भारतीय संस्कृति में आर्य, द्रविड़, आग्नेय, आस्ट्रिक, यूनानी, मंगोल, शक, मुस्लिम तथा यूरोपीय तत्त्वों का सम्मिश्रण बताया है। पर मेरे गुरु डॉ. ओबरायजी का यह निर्भ्रांत मत है कि चाहे इस प्रकार की बीसियों जातियों का प्रभाव भारतीय संस्कृति पर पड़ा हो, पर भारत की आत्मा सदा भारतीय ही रही है तथा बाहर की संस्कृतियों का प्रभाव केवल संस्कृति के बाहरी कलेवर पर ही पड़ा है। वैदिक ऋषि हवन-यज्ञ करते थे। पूजा-अर्चना द्रविड़ों से आयी। तिलक, कुंकुम, सिन्दूर लगाना द्रविड़ों तथा आग्नेयों से आया। किन्तु इससे धर्म की आत्मा में कोई अन्तर नहीं पड़ा। केवल बाहर की प्रक्रिया बदल गई। जिस अनादि, अनन्त, सत्ता के निमित्त हवन में हवि दी जाती थी, उसी के निमित्त पत्र, पुष्प, जल चढ़ाया जाने लगा। उसी एक अविनाशी सत्ता की आरतियां उतारी जाने लगी। उसी का नामस्मरण, जप आदि किया जाने लगा। इस प्रकार धर्म के पहनावे, बाह्य कलेवर बदलते गए किन्तु धर्म की आत्मा सदा एकरस रही। फिर किसी भी देश की संस्कृति को मिली-जुली संस्कृति नहीं कहा जाता है। यद्यपि सभी संस्कृतियां अन्य संस्कृतियों के तत्त्वों को ग्रहण करती हैं पर न वह मिली-जुली संस्कृति कहलाती है न ही इसका ढोल पीटा जाता है।

अतः वर्तमान समय में भी भारत में जो संस्कृति है, वह स्वरूपतः वैदिक संस्कृति ही है। यद्यपि युगों से चली आ रही इस वैदिक संस्कृति के बाह्य कलेवर में अनेकों परिवर्तन हुए हैं तथा बाह्य स्तर में अनेकों विकृतियां भी दिखलायी देती हैं। पर इसकी आत्मा में वही विशुद्धि आज भी है जो इसके स्थापना काल में रही है। इसकी प्राणशक्ति आज भी वैदिक धर्म ही है। यह तथ्य इस संस्कृति द्वारा प्रसवित अद्वैताचार्यों, संतों, महापुरुषों के जीवन द्वारा एवं महान् कलाविदों व साहित्यकारों की श्रेष्ठ रचनाओं द्वारा प्रमाणित हो रहा है।

अतः स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति से तात्पर्य किसी भी खिचड़ी संस्कृति, मिश्रित संस्कृति या गंगा-जमुनी संस्कृति से नहीं है। स्वतंत्र भारत में मिली-जुली संस्कृति या गंगा-जमुनी संस्कृति की एक घातक राजनीति चल रही है। यदि इसलामी योगदान से यह 'मिश्रित संस्कृति' भारत में बनी, तो ऐसी कोई संस्कृति किसी और देश में क्यों नहीं बनी जहां-जहां इसलाम पहुंचा? उदाहरण के लिए मेसोपोटामिया (इराक), फारस (इरान), गंधार (अफगानिस्तान) में भी इसलामी सत्ता बनने से पहले महान् संस्कृतियां मौजूद थी। वहां मिश्रित संस्कृति क्यों नहीं बनी। इन देशों में इसलाम पूर्व सभ्यता के चिह्न तक कहां लुप्त हो गये? स्पेन से लेकर मध्य एशिया तक इसलाम का प्रसार हुआ, किसी भी देश में मिश्रित संस्कृति की बात सुनने को नहीं मिलती। इसलाम से पहले स्वयं अरब में एक विकसित सभ्यता थी। उसे मुहम्मद के बाद के सिर्फ बीस वर्षों में इसलाम ने रौंद डाला। यहां तक कि भारत से अलग हुए हिस्से पाकिस्तान और बांग्ला देश में भी मिश्रित संस्कृति के दर्शन नहीं होते। इन सब देशों में इसलाम पूर्व सभ्यता का कोई अवशेष तक नहीं रहा। और भारत में इसलाम के योगदान से मिश्रित संस्कृति की कहानी गढ़ दी गई है। बात निपट उलटी है। इसलामी प्रहार भारतीय संस्कृति को नष्ट नहीं कर सका, मात्र घायल कर सका और यह मिश्रित चिह्न उसी के घाव हैं। प्रसिद्ध चिंतक शंकर शरणजी कहते हैं 'इस गंगा-जमुनी संस्कृति के नाम पर मुस्लिम समुदाय तो वेश-भूषा, खान-पान, भाषा-संस्कृति, जीवन चर्या, कानून, इतिहास, शिक्षा साहित्य, राजनीति हर मामले में मात्र इसलामी मानदण्ड से चलने के लिए स्वतंत्र है। जबकि हिन्दू समुदाय से आशा की जाती है कि वह हर विषय में सेकुलर, हिन्दू विरोधी और आत्म-घृणा की हद तक सेकुलर रहे। यह पाखण्डी परिदृश्य केवल भारत की ही विशेषता नहीं हर उस देश में जहां इसलामी सत्ता नहीं है, इसलामी प्रतिनिधि अन्य लोगों से यही मांग करते हैं जो मांगें भारत में मिली-जुली संस्कृति या सेकुलरिज्म के नाम पर की जाती हैं। ये बातें हिन्दू बिना विचारे अपने भोलेपन में या राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि के लिए स्वीकारता रहता है। और मुसलमान षड्यंत्र पूर्वक हिन्दुत्व के सम्पूर्ण लोप करवाने के लिए ये पाखण्ड करते हैं। अतः इन सब तथ्यों से हमें सावधान रहना है। हमारी संस्कृति मिली-जुली मिश्रित संस्कृति नहीं वैदिक सनातन आर्य हिन्दू संस्कृति है। इसे ही विश्व के सुलझे मनीषी भविष्य की आशा की दृष्टि से देख रहे हैं। उन्हें खिचड़ी संस्कृति की कल्पना तक स्वीकार नहीं। उन्हें नवीन भारत नहीं जो स्वयं ही पथच्युत हैं उन्हें वेदोक्त गीतोक्त भारत ही अभीष्ट है। अतः भारतीय संस्कृति से तात्पर्य विशुद्ध वैदिक हिन्दू संस्कृति का ही बोध होता है। तभी तो इण्डियन फिलॉसफि से वेदोपनिषद्, षड्दर्शन तथा बौद्ध-जैन दर्शनों का ही निर्देश पाया जाता है। जिसे

स्वयं नेहरूजी ने Discovery of India में स्वीकारा है। इन्दिरा गांधी ने सन् 1983 के नई दिल्ली में आयोजित रामकृष्ण विवेकानन्द सम्मेलन में स्वीकार किया था, 'बहुत समय तक यूरोप में सभी धर्मों को हिन्दू में शामिल किया जाता था।' इन्दिराजी कहती हैं—मुझे याद है सन् 1935 या उसके आसपास यूरोप गई तो वहां के लोगों ने मुसलमानों का जिक्र भी हिन्दुओं के रूप में किया। आप कौन से हिन्दू हैं क्या आप इसलाम का पालन करते हैं या वेदान्त अथवा किसी दूसरे धर्म का? ऐसी ही बातें थी। क्योंकि हिन्दू का अर्थ वे भारतीय ही समझते थे।

सन् 1957 में जब नम्बूदरीपाद केरल के मुख्यमंत्री बने तो वामपंथियों के लिए यह बड़े महत्व की बात थी क्योंकि वह भारत में पहली वामपंथी सरकार थी। शपथग्रहण समारोह में चीनी नेता माओत्से तुंग आये। नम्बूदरीपाद ने उन्हें उपहार दिया। क्या था वह उपहार? आजकल की परम्परा के अनुसार जब उस उपहार को मंच पर खोला गया तो नम्बूदरीपाद ने कहा था कि यह भारत का प्रतीक है। वह नटराज की मूर्ति थी। जो नम्बूदरीपाद स्वयं को हिन्दू नहीं मानता वह भी जब भारत की पहचान बताने का प्रयास करता है तो आधार हिन्दुत्व का ही लेता है।

स्व. राजीव गांधी जब प्रधानमंत्री बने तो शेष विश्व का भारत से परिचय कराने के लिए भारत उत्सव का आयोजन मास्को में किया गया। उसका प्रारम्भ वैदिक गीत, भारतीय नृत्य से हुआ। उसमें प्रदर्शित वस्तुएं हिन्दू संस्कृति से सम्बन्धित थीं। राजीव गांधी जो कहते थे मेरी मां हिन्दू, मेरे पिता पारसी, मेरी पत्नी ईसाई पर मेरा कोई धर्म नहीं—वह कहते हैं ये सब भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि हैं।

अतः स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति खिचड़ी संस्कृति नहीं है। और बड़े मजे की बात गंगा-जमुनी संस्कृति की बात न यहां मुसलमान करते है और न ईसाई। न उन्हें यह स्वीकार्य ही है। 'ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान' गांधी जी तो नित्य प्रार्थना में गाते रहे, गवाते रहे पर मौलाना अब्बुल कलाम आजाद ने न कभी गाया और न ही स्वीकारा। और रहीम, रसखान, मो. करीम छागला आदि ने स्वीकारा तो ये अपवाद स्वरूप है जिसे स्वयं मुस्लिम समाज मान्यता नहीं देता आदर्श रूप में स्वीकारने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उन्हें मुसलमान भी नहीं मानते। उन्हें इसलाम से च्युत एवं काफिर मानते हैं। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार इसलाम एक बंद निकाय की तरह है, जो मुसलमानों और गैर मुसलमानों के बीच भेद करता है। इसलाम का भ्रातृभाव मानवता का भ्रातृत्व नहीं है, मुसलमानों का मुसलमानों से ही भ्रातृत्व है। बंधुत्व है। जो इस निकाय से बाहर है उनके लिये इसमें सिर्फ घृणा और शत्रुता ही है। दूसरे शब्दों में इसलाम एक सच्चे मुसलमान को इसकी अनुमति कभी नहीं दे सकता कि वह भारत

को अपनी मातृभूमि समझे और हिन्दू को अपना सम्बन्धी तथा आत्मीय माने। सम्भवतया इसलिए मौलाना मोहम्मद अली ने जो एक महान् भारतीय किन्तु एक सच्चे मुसलमान थे, भारत की अपेक्षा जेरूसलम में दफनाया जाना अधिक पसन्द किया। इसलिए स्वामी विवेकानन्द जी ने भी हिन्दुओं के जितने भी मत, पंथ, सम्प्रदाय, वर्ण, जाति, उपजाति, अंत्यज सभी को भाई कहा पर मुसलमानों को नहीं। क्योंकि वे उनकी मजहबी मान्यता से, उनकी अराष्ट्रीय एवं अमानवीय वृत्ति से परिचित थे। इसलिए स्वामीजी कहते हैं जब कोई हिन्दू मुसलमान या ईसाई बन जाता है तब हमारा एक भाई कम नहीं होता वरन् राष्ट्र का एक शत्रु बढ़ जाता है। खिलाफत आन्दोलन के चार वर्ष बाद लाला लाजपतराय ने बैरिस्टर चितरंजन दास को लिखा था कि पिछले छह मास मैंने मुसलमानी इतिहास और इसलामी कानून के अध्ययन में व्यतीत किये। मैं अब इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि हिन्दू-मुस्लिम एकता न तो सम्भव है और न ही व्यावहारिक। मुसलमान कुरान से परे जाने की बात सोच भी नहीं सकते। पुनः कहते हैं—मुसलमानी नेताओं पर भी विश्वास करने को तैयार हूं किन्तु कुरान, हदीस की आज्ञाओं की बाधा को हम कैसे दूर कर सकेंगे? मुसलमान नेतागण तो उन आज्ञाओं के विरोध में कभी जा नहीं सकते।

हिन्दू अपने भोलेपन में कहता है कि मुसलमान अच्छा मुसलमान बने, ईसाई अच्छा ईसाई बने। इनका सच्चा और अच्छा बनने का अर्थ ही है काफिरों व हिडेनों से कोई आत्मीय रिश्ता नहीं जोड़े। अवसर मिलते ही इनका वध करे, यह उनका मजहबी कर्तव्य है, पुण्य कर्म है, स्वर्ग देने वाला है। ईसा के माता-पिता-पूर्वज, मुहम्मद के माता-पिता, पूर्वज किसी भी तर्क से ईसाई या मुसलमान नहीं हो सकते, उन्हें भी इन्होंने नरक में स्थान दिया है। अपने-अपने देश की पूर्व सभ्यता, संस्कृति, धर्म-दर्शन, इतिहास एवं परम्परा को समूल नष्ट कर दिया तो क्या अन्य को बख्शेंगे? मुहम्मद से पूर्व अरब की स्थिति को अज्ञानांधकार में बताते हैं। इसलाम से पूर्व अरब अज्ञानांधकार में था या इसलाम को अपनाने के बाद यह तो इतिहास बतायेगा। इतिहास तो बताता है इसलाम को अपनाने से पूर्व से चली आयी ज्ञान-विज्ञान की परम्परा नष्ट हुई, स्त्रियों की स्थिति दयनीय हुई। स्वयं खदीजा व्यापार करती थी। मुहम्मद साहब के काफिले का नेतृत्व भी उसके पास था, व्यापार में सहयोगी के रूप में नियुक्त हुए, बाद में विवाह-बंधन में बंध गये। यूरोप का मध्ययुग इतिहास में अज्ञानांधकार का युग माना जाता है। ईसाइयत से पिण्ड छुड़ाकर ही पश्चिम में ज्ञान-विज्ञान की जय यात्रा सम्भव हो सकी। जहां भी इनका राज्य है अन्य धर्मों-पंथों का कोई भी चिह्न शेष नहीं रहने देते। यही कारण है कि अफगानिस्तान के बामीयान में संसार की सबसे विशाल बुद्ध की

खड़ी मूर्ति जो 175 फुट ऊंची थी, को तालिबान ने तोप लगाकर उड़वा दिया, इंडोनेशिया पर निरन्तर आघात जारी है, पाकिस्तान बांग्लादेश में बचे-खुचे हिन्दू चिह्नों को नष्ट किया जा रहा है, कश्मीर घाटी से हिन्दुओं को निकाल बाहर किया और बचे-खुचे हिन्दू चिह्नों को नष्ट किया जा रहा है। मिजोरम, मेघालय आदि में हिन्दुओं को या तो धर्मान्तरित या वध से निष्कासित कर दिया गया है। जो सहअस्तित्व को मानते ही नहीं। अरब आदि देशों में इसलाम के अतिरिक्त अन्य उपासनायें दण्डनीय अपराध है।

मुसलमान जहां अल्पसंख्यक होते हैं वहां विशेष अधिकार की, सुविधाओं की मांग करते हैं और जहां बहुसंख्यक होते हैं, वहां असहिष्णु होते हैं। सभी राजनीतिक दलों से उन्हें सुविधा प्राप्त हो इसके लिए ही उनमें शामिल होते हैं। मुसलमान जब-तब दंगा-फसाद के लिए उतर आते हैं, मनमानी करते हैं और इसका उत्तर देने के लिए कभी-कभार हिन्दू समाज तत्पर होता है तब मुसलमानों पर अत्याचार हो रहा है, अत्याचार हो रहा है उसका देशभर में ही नहीं विश्वभर में शोर मचाते हैं। भारत में इन्होंने कभी भी अल्पसंख्यक रूप का तो परिचय दिया नहीं, सदैव उत्पाती के रूप में ही अपना परिचय दिया है और दे रहे हैं। उन्होंने स्वयं को विशेषाधिकार सम्पन्न शासक कौम का माना है। क्योंकि उन्होंने भारत को तलवार के बल पर जीत कर उस पर शासन किया है। अतः भारत पर उनका अधिकार है और वे शासक कौम के हैं। इसलिये कर्बला के जुलूस के समय घोष करते चलते हैं। याद करें औरंगजेब के जमाने को....मुसलमान शासक है हिन्दू शासित हैं, वे उनके समान कैसे हो सकते हैं, और उनको समान अधिकार कैसे दिया जा सकता है? मुसलमानों का स्पष्ट मानना है भारत पर हमारा शासन था। अंग्रेजों ने भारत का शासन मुसलमानों से पाया। अतः स्वाधीनता भी मुसलमानों के हाथों में दी जानी चाहिए थी। हिन्दुओं ने षड्यंत्र कर अंग्रेजों से प्राप्त कर ली।

मुसलमानों का मानना है वे भारत के शासक थे। हिन्दू उनके अधीन गुलाम थे अतः मुसलमानों के समान अधिकार कैसे मिल सकता है? और वे पुनः भारत के शासक बनना चाहते हैं। उसके अनुकूल ही उनकी सारी गतिविधियां चल रही है क्योंकि उनका मानना है एक बार जहां भी इसलाम का शासन हो जाता है तो वह हमेशा के लिए हो जाता है। वे गजवा-ए-हिंद करके भारत को दारुल हरब से दारुल इसलाम बनाना चाहते हैं। तभी तो नारे लगते हैं हँस के लिया है पाकिस्तान लड़के लेंगे हिन्दुस्तान!

हमीद दलवाई ने अपनी पुस्तक Muslim Politics in Secular India में लिखा है—मुसलमान, जो उन पर अत्याचार हो रहा है ऐसा नारा लगाते हैं। उनमें

से बहुतों से मिला कि आप पर कौन-सा अत्याचार होता है, चूंकि हमीद दलवाई मुसलमान थे अतः स्पष्ट रूप से बताया कि हिन्दुओं का बहुसंख्यक होना ही मुसलमानों पर, इसलाम पर सबसे बड़ा अत्याचार है जिसके कारण देश का इतना बड़ा हिस्सा मुस्लिम राष्ट्र नहीं बन सका। जब तक हिन्दू समाज बहुसंख्यक रहेगा, तब तक हम इस देश को मुस्लिम राष्ट्र नहीं बना सकते। यही हम पर, इसलाम पर सबसे बड़ा अत्याचार है।

कांग्रेस में मौलाना अब्बुल कलाम आजाद जो राष्ट्रीय मुसलमान समझे जाते थे उनकी स्थिति के विषय में Muslim Politics in Secular India में हमीद दलवाई स्पष्ट करते हुए कहते हैं—जिन्ना एक हिस्से में इसलाम स्थापित कर वहां से सारे देश को धीरे-धीरे ग्रसना चाहते थे और मौलाना अब्बुल कलाम एक बार में सारे देश को इसलाम में लाना चाहते थे। यही दोनों में अन्तर था। मौलाना अब्बुल कलाम ने जो मुसलमान पाकिस्तान जाना चाहते थे उन्हें रोका, और समझाया कि यहां के मुसलमानों की स्थिति दुर्बल न करें, आपको यहां बैठे-बैठे ही इसी भारत देश में आपको पाकिस्तान मिल जाएगा। डॉ. अम्बेडकर कहते अन्य पार्टियों में जो मुसलमान हैं वे अपने हित में अधिक से अधिक सुविधा प्राप्त करने के लिए चौकियों के तुल्य हैं। कश्मीर तो एक बहाना है इन्हें पूरा हिन्दुस्तान चाहिए। उन्हें पूरा हिन्दुस्तान नहीं पूरी दुनिया चाहिए, पूरी दुनिया ही नहीं अन्य ग्रहों में मानव बस्ती बनाता है तो वह भी चाहिए। पर दुर्भाग्य से हमारे राजनेता इन तथ्यों को स्वीकारना नहीं चाहते। पर इसे अस्वीकारने से, इससे मुंह छिपा लेने से समस्या समाप्त नहीं होती वरन् और-और उलझती जाती है। यही कारण है कि मुसलमानों की सुविधाओं एवं आरक्षण की मांग और उनके उत्पात निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं और हमारे राजनेता उन्हें अपना वोट बैंक कैसे बनाये रखें इसकी होड़ में लगे हुए हैं।

गांधीजी की तुष्टीकरण की नीति को नेहरूजी ने और व्यापक रूप से लागू किया। जो मुस्लिम लीग देश विभाजन के पाप के कारण मुंह छिपाये हुए थी, उसको नेहरूजी ने पुनर्जीवित किया और वे अपराध पर अपराध करते रहे पर नेहरू ने सदा छाती से लगाए रखा और माफ करते रहे।

मुसलमानों का लोकतंत्र में विश्वास नहीं है। लोकतंत्र का विरोध करते हुए सर सैयद ने कहा था कि लोकतंत्र में जिनकी संख्या ज्यादा होगी, वे उन पर राज करेंगे जो संख्या में कम हैं। यानी हिन्दू मुसलमानों पर राज करेंगे। यह हमें गवारा नहीं है। हम संख्या नहीं, तलवार की भाषा जानते हैं। हमें तलवार दो, फिर देखो कौन किस पर राज करता है।

शंकर शरण कहते हैं मुस्लिम चाहते हैं हिन्दू इसलाम से पहले के भारत को अंधकार का युग मानें। इसके साथ वे यह भी चाहते हैं कि मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, अलाउद्दीन खिलजी, औरंगजेब और अहमद शाह अब्दाली जैसे अपराधी-गुण्डा-गिरोहों, सामूहिक हत्यारों, इन विदेशी आक्रान्ताओं और आततायियों का भी सम्मान हिन्दू करें। इनके समय को स्वर्णयुग माने। वे यह भी चाहते हैं कि मध्यकाल के हिन्दू वीरों को असन्तुष्ट विद्रोही मानकर निन्दित किया जाए जिन्होंने इसलामी साम्राज्य का विरोध किया और अन्ततः उन्हें उखाड़ फेंका। वे जिद करते हैं कि यहां इसलामी साम्राज्य को फिर से जमाने की कोशिश करने वाले शाह वहीउल्ला, अली बन्धुओं जैसे अलगाववादियों या हिन्दुओं की हत्या करने वाले वहाबियों, मोपलाओ या देश को तोड़ने वाले जिन्ना का भी स्वतंत्रता सेनानी कह कर आदर करें।

इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए 12 दिसम्बर, 2018 को मेघालय उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति सुदीप रंजन सेन ने इस्लामिक कट्टर पंथ की बाबत जो चिंता जाहिर की है, उस पर पूरी गम्भीरता और जिम्मेदारी से विचार की जरूरत है। उन्होंने पूरे विश्व में इस्लामिक कट्टर-पंथियों के बढ़ते आतंक को देखते हुए कहा था कि आजादी के बाद देश को हिन्दू राष्ट्र घोषित कर दिया जाना चाहिए था। इतना ही नहीं, न्यायमूर्ति सेन ने इसके लिए प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी से अपील की कि वे भारत को इस्लामिक राष्ट्र बनने से बचाने के लिए प्रयास करें। साथ ही, उन्होंने पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी को राष्ट्रीय नागरिक पंजिका (एनआरसी) पर सहयोग करने की नसीहत दी।

पश्चिम में जब से आत्ममंथन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तब से वे ईसाइयत को छोड़ते जा रहे हैं। पर इसलाम में तो आत्ममंथन की प्रक्रिया प्रारम्भ होते ही मौत के फतवे जारी हो जाते हैं। जिस दिन इनमें आत्ममंथन की प्रक्रिया प्रारम्भ होगी इसलाम अपने आपको बचा नहीं पायेगा।

गांधीजी ने मुसलमानों व ईसाइयों को राष्ट्र की मूलधारा में लाने के लिए खिलाफत का समर्थन किया, हिन्दुओं के परम्परागत भगवे झण्डे के स्थान पर तिरंगे को स्वीकार किया, हिन्दी भाषा के स्थान पर हिन्दुस्तानी को जिसमें फारसी, उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों को उसमें बड़ी मात्रा स्वीकारा। कवि भूषण की कविताओं से मुसलमानों को बड़ा दुःख पहुंचता है, अतः उसे साहित्य से बाहर कर दिया। आज भूषण हिन्दी साहित्य में नहीं पढ़ाये जाते। मुसलमानों को खुश करने वंदेमातरम गीत को छोड़ दिया, आज केवल दो पद गाये जाते हैं। पर इसका परिणाम देश विभाजन ही आया। स्वतन्त्रता के 64 वर्ष बाद भी फिर से हम वही सारी गलतियां दोहरा रहे हैं। मुसलमानों की सारी नाजायज मांगें

मानकर, देश विभाजन को स्वीकार करके तथा उनके लिए अपने प्राण की बलि देकर भी गांधीजी उनके अपने नहीं बन सके और पंडित नेहरू जी सारा जीवन उनका अंधसमर्थन करके भी उनके अपने नहीं बन सके फिर भी ऐसी बात हिन्दू राजनेता वोट की राजनीति से प्रेरित होकर करते हैं या फिर हिन्दू समाज अपने भोलेपन में ही करता है।

भारतीय संस्कृति से किसी खिचड़ी संस्कृति की कल्पना विदेशी विद्वान् नहीं कर सकते। पाश्चात्य विद्वानों की जो भारत पर दृष्टि है वह नवीन नहीं, प्राचीन वैदिक औपनिषदिक और गीतोक्त भारत पर है, भारतीय संस्कृति पर है। उसी से मार्गदर्शन की अपेक्षा करते हैं। उसे ही शाश्वत अमर भारत मानते हैं। आज का भारत तो स्वयं पथच्युत है, रुग्ण है, अपंग, असहाय, बेचारा, भ्रष्ट है। वह उन्हें स्वीकार्य नहीं।

यद्यपि संस्कृति भौगोलिक सीमाओं में नहीं बांधी जा सकती है फिर भी जिस भूमि पर वह निर्मित होती है उस भूमि से वह सम्बन्ध अवश्य रखती है और उस भूमि के नाम से ही विश्व में पहचानी जाती है। इसी दृष्टि से इसे वैदिक संस्कृति, आर्य संस्कृति, सनातन संस्कृति, भारतीय संस्कृति, हिन्दू संस्कृति कहा जाता है।

जब हम हिन्दुत्व के उत्थान की बात करते हैं तब कहा जाता है कि हिन्दू शब्द बहुत प्राचीन नहीं है। न यह वेद में मिलता है, न उपनिषद् में, न ब्राह्मणों में, न पुराणों में, न रामायण और न ही महाभारत में। वेदों में तो संस्कृति को 'सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा' कहा गया है। जब भी धर्म का वर्णन हुआ, 'एष मानवधर्म' के रूप में उल्लेख हुआ है। बाद में जो सेमिटिक मजहब दुनिया में आए, उनके पूर्व की संस्कृतियां एक जैसी थी। भारत में जो प्राचीन विश्वधर्म, विश्वसंस्कृति, विश्व जीवनमूल्य थे उनको सेमिटिक मजहबों के जीवनमूल्यों से भिन्न दिखाने के लिए हिन्दू शब्द भारत में रूढ़ हो गया। यह इसी प्रकार की बात है जैसे कि घी का अर्थ ही होता है गाय का घी। पर जबसे बाजार में अन्य घी (नकली घी) भी आ गए तब उनसे पृथक्ता जतलाने के लिए शुद्ध गाय का घी लिखा जाने लगा।

अखण्ड राष्ट्र जीवन में अवरोधक : धर्मनिरपेक्षता

प्रत्येक देश की एक मूल चेतना, प्राणबिन्दु, केन्द्रबिन्दु होता है। भारत की मूल चेतना, प्राणबिन्दु, केन्द्रबिन्दु धर्म है। भारत की वाणी धर्म की वाणी है। पश्चिम की वाणी राजनीति की, भोग की, कपटाचार, मिथ्याचार की वाणी है। प्रभु श्रीराम धर्म के आधार पर पितृ आज्ञा से राज्याभिषेक को स्वीकृति देते हैं,

पुनः पितृ वचन पालन के लिए राज्य को तिनके के समान त्यागकर 14 वर्ष का वनवास स्वीकारते हैं। पुनः धर्म के आधार पर ही स्वयं भरत के अनुरोध व माता कैकेयी सभी गुरुजनों की आज्ञा से 14 वर्ष के पश्चात् राज्य स्वीकारते हैं। प्रभु श्रीकृष्ण भी अपना सम्पूर्ण जीवन दुष्टों के दलन, सज्जनों की रक्षा, धर्म राज्य की स्थापना में लगा देते हैं। इन्हीं आधार पर भारत में राम-कृष्ण परम पूज्य माने गये। भारत ने राजकुमार सिद्धार्थ को कभी पूज्य नहीं माना, पर जब वे सत्य की उपलब्धि के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग करते हैं, फिर सत्य की उपलब्धि के पश्चात् बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय उस अमृत प्रसाद को बांटने के लिए अपना पूरा जीवन उत्सर्ग कर दिया उसको भारत ने महान् माना। अशोक जब व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए भारत के एक राज्य से दूसरे राज्य को रौंदता फिर रहा था उसको महान् नहीं माना वरन् उसे भारतीय इतिहास ने चण्ड अशोक यानी चाण्डाल अशोक कहा। पर जब उसका हृदय परिवर्तित हुआ कि अब लोहे की तलवार की विजय नहीं वरन् धर्म की, हृदय की विजय और उसके लिए शेष जीवन समर्पित कर देता है उस अशोक को महान् कहा।

इसके विपरीत पश्चिम में धर्म प्रचार या विस्तार करते हैं तो राजनीति का अंग, साम्राज्य विस्तार, उपनिवेश स्थापित करने, बाजार निर्माण का एक रूप होता है। इसलिए जब वे धर्म प्रचार के लिए निकलते हैं तो पहली पंक्ति में पादरी, दूसरी पंक्ति में व्यापारी, तीसरी पंक्ति में सेनाएं होती हैं। इसलिए करिअप्पा कहा करते थे कि ब्रिटिश सेना के चार अंग हैं—जल, थल, नभ सेना और चौथा पादरी सेना। ऐसा ही स्वयं पैगम्बर मुहम्मद साहब ने अपने मत का प्रसार तलवार के बल पर किया। उन्हें कहीं भी धार्मिक-दार्शनिक प्रवचन करते नहीं पाएंगे। उन्होंने सभी बातें उनके सत्त्व का, उनके स्वराज्य का अपहरण तलवार के बल पर किया अपने बर्बर विदेशी विचारों को थोपा। ईसाइयत व इसलाम में यही परम्परा आज तक कायम है।

पश्चिम में जिसने जितना दूसरों देशों, धर्मों को लूटा-पीटा, उनके साथ पापाचार, व्यभिचार, बलात्कार, मिथ्याचार, कपटाचार किया वह उतना महान् है। पश्चिम में कोलम्बस ने अमेरीका की निर्दोष जनता का जनसंहार किया। संत जेवियस ने गोवा पर कितना अमानुषिक अत्याचार किया, ऐसे ही इसलाम में महमूद गजनवी, गोरी, औरंगजेब, अकबर जिन्होंने सब प्रकार के दुष्कर्म हिन्दुओं पर किये वे महान् हैं। उनके आदर्श पुरुष हैं। पुण्य पुरुष हैं। इनके यहां जूलियस सीजर, सिकन्दर, नेपोलियन महान् हैं।

धर्माधिष्ठित राजनीति का ही हमारे देश में सम्मान था अतः भारत में राजनीति भी श्रेष्ठ नीति है। प्रजानुरंजन, लोकानुरंजन, लोकहित का व्यापक माध्यम है। प्रभु

श्रीराम ने प्रजानुरंजन सीता को निर्दोष जानते हुए भी लोकमत के परिष्कार के लिए वनवास (वाल्मीकि आश्रम) में छुड़वा देते हैं। प्राणप्रिय छोटे भ्राता लक्ष्मण को भी त्याग देते हैं। प्रभु श्रीकृष्ण भी अपने पूर्व पुरुष ययाति के वचन की रक्षा के लिए राज्य नहीं स्वीकारते और व्यापक लोकहित हेतु जीवन का प्रत्येक पल खर्च करते हैं, यही बात राजा विक्रमादित्य, चाणक्य, राजा भोज, बप्पारावल, राणाप्रताप, शिवाजी, दुर्गादास, हरिसिंह नलवा आदि में पाते हैं। इसलिए भारत में ये पूज्य, महान्, आदर्श माने गये।

भारत की मूल चेतना, प्राण बिन्दु, केन्द्र बिन्दु धर्म है जिसके आधार पर सारे व्यक्तिगत जीवन, परिवार जीवन, समाज जीवन, राष्ट्र जीवन, विश्व जीवन का ताना-बाना बुना हुआ है। गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक, जन्म से मृत्यु तक, सूर्योदय से सूर्यास्त तक, जन्म से जन्मान्तर तक, कल्प से कल्पान्तर तक कोई भी क्षण और कोई भी कण तथा कोई भी व्यवहार धर्म, अध्यात्म और ईश्वर से रहित नहीं है। हमारे जीवन के प्रत्येक व्यवहार में धर्म और अध्यात्म इस प्रकार ओत-प्रोत गुंथा हुआ है कि उसे जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। भारत में धर्म का अर्थ वर्ण और आश्रमोचित कर्तव्यपालन से या स्वभाव से है। अतः कोई भी कर्तव्यनिरपेक्ष, मूल्यनिरपेक्ष कैसे हो सकता है। भारत में चार पुरुषार्थों में प्रथम पुरुषार्थ ही धर्म है। जिसकी सभी पुरुषार्थों की सिद्धि में निर्णायक भूमिका है। अतः भारत में धर्मनिरपेक्ष का कोई अर्थ नहीं है। हमने व्यष्टि चेतना को समष्टि चेतना, ईश्वरीय चेतना से जोड़ने के लिए अनेकों उपासना पद्धति, पूजा-पद्धति को स्वीकारा रुचि भेद और स्थिति भेद के आधार पर। सभी का स्वभाव, रुचि अलग-अलग होती है। और सबकी स्थिति भी एक-सी नहीं है। क्योंकि सभी का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास का स्तर भिन्न-भिन्न है। जो विकास की जिस सीढ़ी पर स्थित है वहीं से ही तो आगे की यात्रा करेगा। जैसे हम सबको रेलवे स्टेशन पहुँचना है। पर सबके घर अलग-अलग मोहल्ले में स्थिति है, वहीं से रेलवे स्टेशन पहुँचेगा। स्पष्ट है रुचि भेद, स्वभाव भेद और स्थिति भेद के आधार पर ही अनेकों उपासना पद्धतियों को स्वयं प्रभु ने साधकों के हित के लिए, कल्याण के लिए प्रकट किया है।

भारतीय परम्परा में एक ही चेतन तत्त्व ने अपने को अनेक रूपों में प्रकट किया है। हिन्दू धर्म के इस एकात्मवादी बहुदेववाद को मैक्समूलर ने Henothiesm कहा है। एक ही देव ने सम्पूर्ण सृष्टि के सम्यक् संचालन के लिए अनेक रूपों में अपने को प्रकट किया है। सबके विभाग बंटे हुए हैं और सबको उसी एक चेतन तत्त्व से शक्ति प्राप्त है। एक ही व्यक्ति को जीवन में धन-वैभव भी चाहिए, विद्या

भी चाहिए, बल भी चाहिए। अतः एक ही समय में, या अलग-अलग समय में धन, वैभव के लिए मां लक्ष्मी की, अन्नपूर्णा की, विद्या के लिए मां सरस्वती की, बल के लिए मां दुर्गा, काली, जगधात्री को भजता है। इसलिए हमारे प्रायः सभी घरों में, मन्दिरों में, आश्रमों में एक साथ अनेक देवी-देवता प्रतिष्ठित होते हैं।

धर्म का ईश्वर के साथ अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। अतः धर्म का उपासना पद्धति के साथ कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। हमारे यहां बहुत से महापुरुष हो गये जो समष्टि चेतना या ईश्वरीय चेतना को नहीं मानते हैं। वर्तमान युग में प्रातः-स्मरणीय, वंदनीय, अर्चनीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर थे। उन्हें ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास नहीं था। अतः वे धार्मिक तो थे पर आध्यात्मिक नहीं थे। रामकृष्णदेव ने कहा था—अभी तक मैंने विद्या के पोखर, नालों, नदियों को देखा ये तो साक्षात् विद्या के सागर हैं। अगर ये थोड़ा ध्यान-भजन किये होते तो और कितनी ऊंचाई को छू सकते थे और मानवता की और अधिक सेवा कर सकते थे। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ईश्वर विश्वासी नहीं होने के बाद भी महापुरुष और समाज संस्कारक माने गये हैं। वैसे प्राचीन काल के विचारक नास्तिक शिरोमणि, चार्वाक को भी अपने यहां ऋषि माना गया।

इन सब आधारों पर साम्प्रदायिक सौहार्द की समस्या भारत में कभी नहीं रही। एक ही परिवार के सदस्यों में कोई प्रभु राम को, तो कोई कृष्ण को, तो कोई आर्यसमाजी और कोई नास्तिक पर सभी में सद्भाव एवं समन्वय है। इस आधार पर कभी कोई वैमनस्य नहीं होता। अतः धार्मिक अत्याचार क्या होता है भारत इसलाम और ईसाइयत के आगमन से पूर्व अनजान था। अतः धर्मनिरपेक्षता की कोई भी कल्पना, कोई भी आधार भारत में नहीं है। इसलिए सेकुलर शब्द की यहां कोई आवश्यकता कभी भी नहीं हुई।

क्योंकि हमारे यहां धार्मिक राज्य (रामराज्य) रहा मजहबी राज्य कभी नहीं। धार्मिक राज्य का तात्पर्य न्याय के राज्य से है, कानून के राज्य से है। Law and order में सभी को समान दृष्टि से देखा जाता है। पंथ या पूजा पद्धति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं था। सभी मतों को समान संरक्षण और आदर प्राप्त था। हमारे यहां राज्य सदैव धर्मसापेक्ष व पंथनिरपेक्ष रहा है अतः यहां सेकुलर शब्द की कभी आवश्यकता नहीं रही। सेकुलर शब्द भारत की नहीं ईसाइयत की देन है। सारे यूरोप के इतिहास में चर्च और स्टेट का, धार्मिक शासन और राज्य शासन में परस्पर स्पर्धा, संघर्ष चलता रहा। राज्य शासन की चेष्टा रही धर्म शासन उसके अधीन रहे और धर्म शासन राज्य को अपने अधीन रखकर चलना चाहता था। इसलिये चर्च और सरकार में परस्पर संघर्ष चलते रहते थे और चर्च खुलकर राजनीतिक शक्ति संतुलन, स्पर्धा संघर्ष, षड्यंत्र, हत्या, रक्तपात,

सामूहिक हत्याकांड, अग्नि होम आदि का सहारा लेता था। इन खूनी संघर्षों से उपराम होने के लिये सेकुलर शब्द अस्तित्व में आया कि राज्यसत्ता और धर्मसत्ता (चर्च) दोनों एक-दूसरे में दखलंदाजी, हस्तक्षेप नहीं करेंगे और राज्य किसी एक पंथ को नहीं सभी पंथों को समान मान्यता, सम्मान, सुरक्षा और सुविधा देगा। पंथ की भिन्नता के आधार पर राज्य उनसे कोई भेदभाव नहीं करेगा। इसी दृष्टि से सेकुलर शब्द की उत्पत्ति हुई और यही इसका भाव था। स्पष्ट है भारत में Secular शब्द की आवश्यकता नहीं थी।

पर महारात्रि के गहन अंधकार में सेकुलर शब्द को संविधान में प्रवेश करवाया गया श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा आपातकाल के समय जब सब विरोधी पक्ष के नेता जेल के सीखचों में जकड़े हुए थे। इमर्जेन्सी के समय हमारे संविधान का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा था। उसे प्रमाणित करने के लिए संविधान विशेषज्ञ विद्वान् लक्ष्मीमल सिंघवी के पास भेजा गया। उन्होंने उस पर हस्ताक्षर नहीं किया। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने उन्हें बुलाया और पूछा, उन्हें किस बात की आपत्ति है। उन्होंने कहा सेकुलर (Secular) शब्द का अनुवाद 'धर्मनिरपेक्ष' किया गया है जो सर्वथा अनुचित है। शासन-सरकार को सेकुलर Non-religious होना है, पर धर्मनिरपेक्ष नहीं। वह रिलिजन के आधार पर पक्षपात न करे यह तो उचित है, पर वह धर्म की अपेक्षा छोड़ दे, यह सर्वथा अनुचित है। इन्दिराजी ने पूछा रिलिजन और धर्म में क्या अन्तर है? उन्होंने पूछा, किसी दरिद्र प्रजा की सहायता करना आप अपना धर्म मानती हैं या नहीं? उत्तर मिला, 'हां, यह तो मेरा धर्म है।' 'परन्तु क्या यह आपका रिलिजन है?' 'नहीं, ऐसा तो नहीं है।' अर्थात् आपका धर्म और रिलिजन एक नहीं है। तब उन्होंने कहा कि शासक अपने इस धर्म को छोड़ देगा तो उसे शासन करने का कोई अधिकार नहीं होगा। शासन, रिलिजन निरपेक्ष हो, पर धर्मनिरपेक्ष नहीं। इन्दिराजी ने पूछा, फिर सेकुलर शब्द का अनुवाद क्या होना चाहिए? उन्होंने सुझाया कि इसे आप पंथनिरपेक्षता कह सकती हैं। इन्दिराजी ने तत्काल धर्मनिरपेक्षता शब्द को काटकर पंथनिरपेक्षता लिखा और उनसे हस्ताक्षर करवाए। उस विशेषज्ञ ने कहा कि संविधान के हिन्दी अनुवाद की जिस प्रामाणिक मूल लिपि को अभिलेखागार में रखा गया है, उसमें कहीं भी धर्मनिरपेक्षता शब्द नहीं है। पर अन्य प्रतियां जो छपीं उसमें धर्मनिरपेक्ष शब्द है। क्योंकि हिन्दू राजनेता हिन्दुओं के प्रति कपटाचार में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते। वास्तव में सेकुलर शब्द का अर्थ है—पंथनिरपेक्षता। राज्य किसी भी एक मत-पंथ का विशेष पक्ष न लेकर सभी पंथों को समान महत्त्व और सुविधा देगा। पर अपने देश में 'धर्म निरपेक्ष' का अर्थ हिन्दू धर्म के विरोध के रूप में किया गया। जबकि हिन्दू धर्म तर्क, विज्ञान, समाज, मनोविज्ञान से सुसंगत

है, मानव स्वभाव के अनुकूल, नारी पूजक, पर्यावरण पूजक, प्रकृति पूजक, सत्य-अहिंसा परायण, चराचर जगत् को अपने हृदय में स्थान देने वाला मानव धर्म है। देव धर्म है। विश्व धर्म है। सारे विश्व के भविष्य का आशा केन्द्र है। ऐसे मानवतावादी व्यापक उदार हिन्दू धर्म को ही धर्म निरपेक्षता की श्रेणी में रखा गया है। और विदेशी, स्थायी शत्रु भावापन्न मुसलमान-ईसाई इन्हें धर्मनिरपेक्ष के अन्तर्गत न रख करके ये धर्म (पंथ) सापेक्ष हैं। जबकि ये दोनों ही पंथ अराष्ट्रीय, अमानवीय, घोर हिंसा परायण, पर्यावरण विरोधी, प्रकृति विरोधी, नारी लोलुप, अवैज्ञानिक, अतार्किक, समाज मनोविज्ञान व मानव स्वभाव विरोधी, आसुरी पंथ हैं। यह हमारे देश-धर्म-संस्कृति के साथ घोर विडम्बना है। आत्मवंचना की स्थिति है और सारे विश्व में हास्यास्पद-सी स्थिति है जिससे पता नहीं हम कब मुक्त होंगे।

धर्मनिरपेक्षता का दुष्परिणाम यह हुआ है हिन्दू हर हालत में बहुसंख्यक है और मुसलमान और ईसाई हर हाल में अल्पसंख्यक है। अल्पसंख्यकों में बहुसंख्यकों के कल्पित अत्याचार की भावना भर के इनके थोक वोट बटोरने का जरीया बन गया है। दो-एक पार्टी बाद देकर, सभी इस कार्य में संलग्न हैं।

सम्पूर्ण भारत में षड्यंत्रपूर्वक हिन्दुओं को विभिन्न जातियों—अगड़े-पिछड़े-दलित में बांटकर उन्हें हाशिए पर ढकेला जा रहा है उन्हें असली अल्पसंख्यक बनाया जा रहा है। यह राजनीतिज्ञों तथा उनके पिछलग्गू बुद्धिजीवियों के जघन्य और घृणास्पद चरित्र का निकृष्टतम उदाहरण है।

धर्मनिरपेक्षता, बौद्धिक समुदाय और राजनीतिज्ञों का जबर्दस्त पाखंड बनकर रह गया है। हमारे बुद्धिजीवी और राजनेता बार-बार धर्म को राजनीति से अलग करने की रट लगाये रहते हैं। धर्म को राजनीति से अलग करने वाले हमारे प्रवक्ता हर मौके पर अपनी सुविधा स्वार्थ के लिए हिन्दू धर्म के हर क्षेत्र में हस्तक्षेप कर सकते हैं। वे हमारी हिन्दू धर्म परम्परा को इतना क्षीण, निस्तेज और निर्जीव कर देना चाहते हैं कि वह राजनीति पर किसी तरह का कोई नैतिक हस्तक्षेप, अंकुश न लागू कर सके।

धर्मनिरपेक्षता ने मनुष्य के प्रकृति से सहज सम्बन्ध को खण्डित कर, पर्यावरण की समस्या को जन्म दिया है।

धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा ने हमारी राजनीति, समाज व्यवस्था, प्रशासन तंत्र, साहित्य और संस्कृति को विकृत किया है। एक भारतीय के लिए धर्मनिरपेक्षता आत्मनिर्वासन की अवस्था बनकर रह गई है। इसके परिणाम से कुछ दशकों में जिस भौतिक, परजीवी, आधुनिक जीवन-शैली का विकास हुआ

है, उसी के भीतर साम्प्रदायिक असहिष्णुता और धर्मनिरपेक्षता के विषैले तत्त्व जन्मे और पनपे हैं।

अब हिन्दू शब्द का उच्चारण ही साम्प्रदायिकता का प्रमाण हो गया और मुसलमान और ईसाई शब्द की रट धर्मनिरपेक्षता की कसौटी बन गई है। परिणाम यह हुआ कि हिन्दू जीवन-पद्धति के अनुयायी अपने को हिन्दू कहने में संकोच का अनुभव करने लगे। इसका इतिहास और संस्कृति की दुनिया पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ा। वैदिक साहित्य, उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत का नाम लेना भी साम्प्रदायिकता के घेरे में आ गया है। फलतः प्राचीन संस्कृति पर गर्व करना तो बहुत दूर की बात है, उसका नाम लेने में भी कुछ लोगों को उबकाई आने लगती है। अंग्रेजी राज कायम होने से पहले ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भारत की कोई भी उपलब्धि हो उसका जिक्र करते ही मार्क्सवादी मित्र कहते हैं कि यह पुनरुत्थानवादी है। इसी बौद्धिक विपन्नता की चर्चा भगवानसिंह ने भी की है—ऋग्वेद में इस बात के अनेक प्रमाण है कि धरती घूमती है। परन्तु यदि किसी ने दावा कर दिया कि ऋग्वैदिक काल में भारतीय चिन्तकों को इस बात का ज्ञान था कि धरती घूमती है तो उसको पुनरुत्थानवादी ही नहीं उससे भी कुछ गर्हित सिद्ध किया जाना निश्चित है। इस नकारात्मक दृष्टि के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार हमारे वे इतिहासकार रहे हैं, जिनसे ही हम इस इतिहास के उद्धार की अपेक्षा कर सकते थे।

इस विडम्बनापूर्ण स्थिति का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि हिन्दू संस्कृति पर आधारित रचनाएं भी साम्प्रदायिकता के घेरे में आ गई—तुलसीदास, भूषण, भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, निराला आदि हिन्दूवादी और साम्प्रदायिक रचनाकार घोषित कर दिये गए तथा मुस्लिम साम्प्रदायिकता का खुलकर पक्ष लेने वाले, पाकिस्तान के सर्वप्रथम कल्पक इकबाल और ढाली सेकुलर! इतिहास में मीना बाजार लगाने वाला, मेवाड़ की तीस हजार निर्दोष-निरीह जनता का कत्लेआम कराने वाला विदेशी आक्रांता अकबर और अपने पिता को कैद कर सता-सता कर मारने वाला व अपने सभी भाइयों को धोखे से मारने वाला अकारण हिन्दुओं को त्रास देने वाला यानी अपने-परायों सबसे दंगा करने वाला विदेशी आक्रांता औरंगजेब दोनों सेकुलर और महान् शासक हो गए। और स्वराज्य, स्वधर्म के लिए संघर्ष करने वाले महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह, शिवाजी आदि साम्प्रदायिक भ्रमित हिन्दू देशभक्त थे। इस प्रकार हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू इतिहास, हिन्दू महापुरुष ही साम्प्रदायिक की श्रेणी में आ गया है जो चराचर को गले लगाने वाला, सबका कल्याण चाहने और करने वाला है और इसलाम-ईसाइयत जो महासंकीर्ण जिनके लिए गैर इसलामी, गैर-ईसाई का वध के अलावा और कोई स्थान नहीं, जिनका पूरा

इतिहास रक्तरंजित और जिनके महापुरुष स्वयं God और अल्लाह घोर राग-द्वेषी, असहिष्णु वे ही धर्मनिरपेक्ष की श्रेणी में आ गये।

धर्मनिरपेक्षता की इस विकृत अवधारणा के कारण ही न देश के मूल हिन्दू धर्म को न इस देश की राष्ट्रीयता हिन्दुत्व को ही स्थान मिल पाया। जो यह कहते हैं काफिला आता गया और देश बसता गया। अतः मिली-जुली राष्ट्रीयता और मिश्रित संस्कृति की बात कहते हैं। पर काफिला आने से देश बसा नहीं, उजड़ा है, बर्बाद हुआ है, नष्ट हुआ है, पराधीन हुआ है विभाजित हुआ है। ये शत्रु रूप में आये थे, देश विभाजन के बाद भी यहीं रह गये और आज भी शत्रु के रूप में रह रहे हैं। अतः धर्मनिरपेक्षता की विकृत अवधारणा के कारण न इस देश की राष्ट्र भाषा हिन्दी और देव भाषा संस्कृत को स्थान मिल पाया है, न इस देश के इतिहास, महापुरुषों, देव विग्रह, तीर्थों, मन्दिरों, श्रद्धा बिन्दु, मान बिन्दु, जीवन-मूल्यों, न अपना अर्थ तंत्र, न कृषि तंत्र, न गोमाता, न शिक्षा तंत्र को, न राजतंत्र को, न न्याय तंत्र को, न रक्षा तंत्र को स्थान मिल पाया। और न संविधान की आधार-शिला भारतीय है। देशभक्ति का अर्थ है वह उस देश की भाषा, उसका इतिहास, उसका साहित्य, परम्परा, सभ्यता-संस्कृति सब से प्रेम करे। भारत की भाषा संस्कृत है, हिन्दी है, इसकी लिपि देवनागरी है, इसका इतिहास राजपूतों के बलिदान, मराठों के उत्कर्ष तथा खालसा सूरमाओं की वीरता की यशोगाथा है। इसका साहित्य व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, तुलसी तथा सूरदास की अमृत-वाणी है। इसकी परम्परा गो ब्राह्मण, हिमाचल तथा भागीरथी के उपकारों को मानते हुए उनके प्रति कृतज्ञता प्रगटाने में है, इसकी सभ्यता—जीओ और जीने दो, खाओ और खाने दो, रहो और रहने दो के क्रियात्मक जीवन जीने में है। जो अपने को भारतीय कहे, भारतीय नागरिकता का लाभ उठाये पर भारतीयता के इन आधारों को अस्वीकारे तो वह भारतीय कैसा? वह तो एक छद्म वेशधारी देश-द्रोही है या विधर्मी है, या विदेशी है। अतः इन आधारों के बिना कोई राष्ट्र अपना विकास कैसे कर सकता है और अपने आदर्श और अस्तित्व को कैसे सुरक्षित रख सकता है तथा विश्व में कैसे अपनी प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

यह बौद्धिक षड्यंत्र न्यस्त स्वार्थ के कारण अंग्रेजों के द्वारा स्वतन्त्रता पूर्व रचा गया, जो अंग्रेजों के मानस पुत्र पंडित नेहरू के कारण स्वतन्त्रता के बाद भी चलता रहा। इसने भारतीय जनमानस में जहां एक और आत्महीनता का संचार किया, वहीं विभ्रम की स्थिति उत्पन्न करके समाज को बांट दिया। इसको यहां स्थापित करने की चेष्टा में अंग्रेजी भाषी अभिजात वर्ग का योगदान है जो अंग्रेजी में सोचता है, अंग्रेजी में बोलता है—अंग्रेजी में लिखता है, पश्चिमी विचार भारत

पर लादता है। ऐसे लोगों का जीवन अंग्रेजियत के लिए समर्पित है। नेहरूजी अंग्रेजियत, इसलाम और कम्यूनिज्म के प्रबल समर्थक और पोषक थे। और ये तीनों ही धारा विश्व के मानचित्र से भारत के अस्तित्व को ही मिटा देना चाहती है। और इसके लिए निरन्तर कटिबद्ध है, प्रयासरत है। ये तीनों नेहरूजी के आदर्श थे। और उन्हें हिन्दुत्व से ही घृणा थी। इसलिए आजीवन हिन्दू-धर्म, संस्कृति, संस्कृत भाषा, हिन्दी भाषा, गो माता, हिन्दू मान्यताओं, श्रद्धा बिन्दुओं, हिन्दू महापुरुषों, इतिहास आदि का विरोध किया, कुचलने का प्रयास किया। संविधान में धर्मनिरपेक्ष शब्द डलवाया श्रीमती इन्दिरा गांधी ने आपातकाल के घोर अंधकार में जब सारा विपक्ष जेल में था।

भारत में धर्मनिरपेक्षता भारत में से हिन्दुत्व का समूल लोप करके ईसाइयत, इसलाम और कम्यूनिस्टों की झोली में देश को डालने का एक राजनीतिक षड्यंत्र है जो पण्डित नेहरू, इन्दिरा गांधी एवं तत्सदृश सेकुलर, वामपंथी, मानवाधिकारवादी, प्रगतिवादी नेताओं की देन है। देश-विदेश में कहीं भी हिन्दुओं पर बीभत्स से बीभत्स अत्याचार होने पर भी वामपंथी, सेकुलरवादियों, मानवाधिकारवादियों और प्रगतिवादियों के चेहरे पर थोड़ी भी शिकन तक नहीं आती। वहीं मुसलमानों और ईसाइयों पर कल्पित अत्याचार पर भी सारे देश में तूफान खड़ा कर देते हैं। दंगा-फसाद सदैव मुसलमानों द्वारा प्रारम्भ होता है, और हिन्दू मार खा लेते हैं। सह लेते हैं। पर कही हिन्दुओं में भूले भटके थोड़ी-सी भी प्रतिक्रिया हो जाती है तो ये सेकुलरवादी सारे देश और दुनिया में ढोल पीटने लगते हैं कि मुसलमानों पर भारत में अत्याचार हो रहा है। वही कारण है कि कश्मीर में आतंकवादियों से अधिक मुकदमें पुलिस अफसरों और सैनिकों पर हुए हैं और उन्हें सजा हुई हैं। जब भी सारे देश को एक कानून व्यवस्था के अन्तर्गत, एक राष्ट्रीय धारा के अन्दर एक सांस्कृतिक धारा के अन्दर लाने का प्रयास होता है तब इन्हें भगवाकरण की, हिन्दुत्व की बू आने लगती है और इसके विरोध में खड़े हो जाते हैं। पता नहीं इस देश का भगवाकरण, हिन्दूकरण, भारतीयकरण, राष्ट्रीयकरण नहीं होगा तो क्या होगा?

ईसाई और इसलाम अपने जन्म लग्न से आज तक साम्प्रदायिक सौहार्द में बाधक हैं, उन पर धर्मनिरपेक्षता लागू ही नहीं है। और हिन्दुओं में धर्मनिरपेक्षता की कोई आवश्यकता ही नहीं, उन पर लागू है। आज सारे विश्व के सुलझे हुए मनीषी जिनको पूरे विश्व की हितचिन्ता है, सारे विश्व का सहअस्तित्व चाहते हैं, सामंजस्य, समन्वय चाहते हैं उन सबकी दृष्टि भारत पर है, हिन्दुत्व पर है, वेदोक्त, गीतोक्त भारत पर है। क्योंकि भारतीय धर्म-दर्शन-चिन्तन में ही वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव है, सबमें एक ही ईश्वर, एक ही आत्मा के वास का भाव है

अतः कोई पराया, कोई गैर है ही नहीं किसको लूटें-ठगें किस पर अत्याचार करे। सब तो अपने हैं। पर उन पर ही धर्मनिरपेक्षता लागू है। ऐसी घोर विडम्बनापूर्ण सारे विश्व में हास्यास्पद स्थिति है भारत की। इससे मुक्ति पाने के लिए संविधान में छोटे से संशोधन की आवश्यकता है।

संसार भर में वहां के राज्य द्वारा अपने मूल राष्ट्र के राष्ट्रीय बहुसंख्यकों के समाज के रिलिजन या मजहब या मत या धर्म को अधिकृत, वैधानिक संरक्षण मिलता है। भारत विश्व का एकमात्र देश है जिसका संविधान यहां के बहुसंख्यक, मूल निवासी हिन्दुओं के धर्म—हिन्दू धर्म को अधिकृत वैधानिक संरक्षण नहीं देता। इस प्रकार हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति के विशेष संरक्षण के राजधर्म का पालन भारत में नहीं किया जा रहा है। इस विषय में प्रबुद्ध जनमत जागृत किया जाना चाहिए और वर्तमान संविधान के भाग 4 अनुच्छेद-38 में एक छोटा-सा संशोधन लाया जाना चाहिए कि 'भारत का राज्य भारतीय संस्कृति का संरक्षण करेगा और समाज में भारतीय सांस्कृतिक चेतना के उत्कर्ष के लिए काम करेगा। इस प्रकार राजधर्म का पालन करता हुआ भारतीय राज्य भारत के गौरवशाली इतिहास को वर्तमान और भविष्य में भी चरितार्थ करना अपना धर्म मानेगा।

इसके दूरगामी परिणाम होंगे। तभी हिन्दू धर्म संस्कृति, इतिहास, महापुरुषों की रक्षा हो सकेगी और विश्व का कल्याण भी साधित हो सकेगा।

यद्यपि मोदी सरकार ने संविधान की जो नयी प्रतियां छप रही है उसमें सेकुलर शब्द का अर्थ पंथनिरपेक्ष कर दिया है। पर हमारे देश के बहुत से राजनीतिक नेताओं और पत्रकारों को वोट बैंक की राजनीति में यह शब्द राजनीतिक स्वार्थ, दलीय हित में बाधक लगता है, इसलिए धर्मनिरपेक्ष शब्द ही धड़ल्ले से प्रयोग किया जा रहा है। क्योंकि उन्हें सचाई से मतलब है नहीं। धर्मनिरपेक्ष शब्द में उनका राजनीतिक स्वार्थ निहित हो गया है।

हमारा धार्मिक आदर्श सर्वधर्म समभाव में बाधक है— इसलाम और ईसाइयत

हमारा धार्मिक आदर्श सर्वधर्म समभाव है। मनुष्य अपनी चेतना को विश्व चेतना से जोड़ सके, अपना सर्वोच्च विकास कर सके उसे पूर्णता तक, आनन्द तक, ईश्वर तक ले जा सके; इसके लिए अनेकों उपासना पद्धतियों, पूजा पद्धतियों, अनेकों देवविग्रहों, अनेकों देवीविग्रहों को स्वीकार किया गया है। मानव अनन्त पथ का यात्री है। सबका स्वभाव, अभिरुचियां भिन्न-भिन्न हैं। सबका शारीरिक, ऐंद्रियक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास का स्तर भिन्न-भिन्न है। अतः सबके लिए एक ही उपासना पद्धति, एक ही विश्वास पद्धति

उपयुक्त नहीं हो सकती। नाना प्रकार की उपासना पद्धतियां अपने देश में और सारे विश्व में प्रचलित रही हैं सेमिटिक परम्परा के पूर्व तक। इनमें परस्पर में सामंजस्य था, परस्पर पूरक थी। सहअस्तित्व में जीओ और जीने दो का भाव था। जो सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानती थी। धरती को मां मानती थी। प्रकृति पूजक थे, पर्यावरण के साथ सुसंगत थे जिनमें देव विग्रह पुरुष का भी था, स्त्री का भी था। ईसाइयत के पूर्व यूरोप में और इसलाम के पूर्व अरब में अनेक देव-विग्रहों का अस्तित्व था। सारे यूरोप में अनेक देवी-देवताओं के साथ सूर्य पूजा प्रचलित थी। इसलाम के पूर्व अरब में 360 (तीन सौ साठ) देव-देवी-विग्रह थे। सबमें परस्पर में सामंजस्य था।

इसमें समस्या उत्पन्न हुई सेमिटिक परम्परा के उदय से जो एक ही विश्वास, एक ही ग्रंथ, इकलौता ईश्वर-पुत्र, एक ही अन्तिम पैगम्बर को स्वीकारता है। उसके अलावा सब कुफ्र है, काफिर हैं, हिडेन हैं, प्रकृति पूजक हैं, पैगन हैं। इसके अलावा सब झूठे हैं, शैतान से प्रेरित हैं। जिसका एक ही उचित प्रायश्चित्त है इहलोक में निर्मम ढंग से वध। परलोक में अनन्त नरक की आग में जलना ही उसकी नियति है। ये मानव समाज को दो भागों में बांट देते हैं—विश्वासी और अविश्वासी। अविश्वासी को जीने का कोई अधिकार नहीं है। अविश्वासी के जान-माल, स्त्री आदि सब पर विश्वासी का अधिकार है। इस प्रकार सेमिटिक परम्परा अविश्वासियों के प्रति जहर उगलती है, द्वेष फैलाती है। उसका जान-माल छीन लेने के लिए सदा संघर्षरत रहती है। तो क्या ऐसे धर्म या उपासना पद्धति को पंथ की श्रेणी में लिया जा सकता है? जो व्यक्ति की चेतना को शुद्ध करे, परिष्कृत करे, व्यापक बनाए, उसमें सद्गुणों का विकास करे, चरित्र का विकास करे, उसे निर्मल बनाए, उसे ही धर्म, मत, पंथ या उपासना पद्धति कहा जा सकता है। पर जो अन्यों के प्रति द्वेष फैलाए, जो चेतना को कलुषित करे, संकुचित करे, तुच्छता में, पशुता में, बर्बरता में, हिंसा में, बलात्कार में, व्यभिचार में, गुण्डई में, असुरता में, पैशाचिकता में ले जाए क्या उसे धर्म, मत, पंथ कहा जा सकता है? जिनकी जीव, जगत्, ईश्वर, नारी की अवधारणाएं विकृतियों को लिए हुए हैं, जिनका ईश्वर ही स्वयं ईर्ष्याविदग्ध है, हिंसापरायण है, जो दूसरे के उपास्यों को सहन नहीं कर सकता, जिसकी मुंहलगी जातियां हैं, उम्मा है, चर्च है, देश हैं और जो अन्यों पर गजब का कोप बरसाने वाला है तो क्या उसको ईश्वर कहा जा सकता है? जो अपने हित में सारे जगत् का शोषण करने, पर्यावरण को तहस-नहस करने की स्वीकृति देता है, उसे असुरों का, पापियों का, बलात्कारियों का धर्म तो कहा जा सकता है, मानवों या देवों का कथमपि नहीं। अतः सर्वधर्म समभाव में सेमिटिक परम्परा बाधक है।

रामकृष्ण परमहंस सर्वधर्म समन्वय के सबसे बड़े प्रवक्ता माने जाते हैं। रामकृष्ण देव ने जहां सर्वधर्म समभाव की बात कह कर भारत के धार्मिक आदर्श की पुनः उद्घोषणा की। वहां उन्होंने हिन्दू धर्म को सनातन धर्म कहा, शाश्वत धर्म कहा जो सनातन काल से है और अनन्त काल तक रहने वाला है। पर अन्य धर्म आने-जाने वाले हैं। मां की इच्छा से है और मां की इच्छा से चले जायंगे। माइकेल मधुसूदन दत्त जब ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया तो उन्होंने उससे मिलना, बात करना तक स्वीकार नहीं किया। अगर वे सभी धर्म पथ को समान मानते तो ऐसा सम्भव नहीं होता। रामकृष्ण देव जहां आदर्श की बात कहते हैं वहां उन्हें यथार्थ का, व्यावहारिकता का बोध भी था। ये हमारी अतिशय उदारता का लाभ लेकर हमारे ही समूलोच्छेद में लगे हैं। अतः इन्हें चुपचाप देखते ही नहीं रहें इसका प्रतिकार भी करें।

जब वे इसलाम की साधना कर रहे थे तो उन्हें गो मांस खाने की इच्छा होने लगी। अरब देशों में बकरा, दुम्बा, ऊँट, घोड़े आदि होते हैं। वहां उन्हीं को काटते हैं उनके पर्व नाम भी बकरीद है गोईद नहीं। अरब देशों में गाय बहुत कम होती है नाममात्र की। कुरान और हदीस में भी गो वध की आज्ञा नहीं है वरन् निषेध है। गाय के गोश्त को बीमारी और गो दूध सेवन को अमृत, स्वास्थ्यवर्धक माना है। अरब गरम प्रदेश है—गोमांस भी गरम होने से बीमारी का हेतु है। अतः गोपालन की आज्ञा है। गाय को दौलत की रानी कहा गया है क्योंकि वह घास-फूस, चौकर खाकर अमृत जैसा दूध देती है। मक्का जो इनका सबसे बड़ा तीर्थ है वहां आज तक गोकशी नहीं हुई, वहां गो वध निषिध है, कश्मीर जो आज इस्लामिक आतंक का अड्डा बना हुआ है। वहां भी गोकशी निषिद्ध है। जब इसलाम का भारत में प्रवेश हुआ और हिन्दुओं की गो के प्रति अबाध आस्था देखकर, उनको अपमानित करने की भावना से मुसलमानों ने भारत में गो वध प्रारम्भ किया। अतः गो वध कुरान सम्मत नहीं वरन् कुरान-हदीस दोनों की आज्ञा की अवहेलना है। इसके बाद भी रामकृष्ण मिशन से प्रकाशित ग्रन्थों में यह कहा जाता है रामकृष्ण परमहंस देव की इसलाम की साधना के दौरान उन्हें गोमांस खाने की इच्छा होती है तब तो ऐसा कहा जा सकता है—

यह तो ठीक वही बात है जब व्यक्ति कुसंग में पड़ता है तब उसका मद्यपान, तम्बाकू, जर्दा, गुटका, भांग, मांसाहार करने यहां तक कि कोठे पे जाने की प्रवृत्ति हो जाती है जैसा कि गांधीजी कुसंग में पड़कर इन सबके शिकार हो गये थे। और वही सुसंग में पड़ता है तो जीवन में अच्छी बातें आने लगती है, उसकी जीवनधारा शुद्ध, सात्त्विक, पवित्र, दिव्य, पुण्यमय हो जाती है। जब रावण सीता को हरकर ले गया। पर सीता उसका वश स्वीकार नहीं करती है, तब वह कुंभकर्ण को जगाता है और उसे बताता है कि सीता को मैं भोगना

चाहता हूं पर वह मेरा वश स्वीकार नहीं कर रही है। कुंभकर्ण ने कहा—तब तुम राम का रूप धरकर क्यों नहीं उसके पास जाते हो। तब रावण अपनी विवशता बताता है जैसे ही राम का चिन्तन करता हूं उसका रूप धारण करता हूं तब मन में सात्विक भाव आने लगते हैं। प्रत्येक परनारी में मातृभाव आने लगता है। भोग बुद्धि तिरोहित हो जाती है। इसलिए यह प्रयास नहीं कर सकता। यह है सुसंग का परिणाम, सुधर्म का परिणाम। रामकृष्णदेव कहते हैं सब में भगवान तो है पर तमोगुणी नारायण से दूर रहने को कहते हैं। यह पागल हाथी के दृष्टान्त द्वारा बताया। एक गुरु ने अपने सब शिष्यों को बताया सब में नारायण का वास है अतः सबका आदर करना चाहिए। रास्ते में एक मतवाला हाथी जा रहा था, महावत सबको बचने के लिए कह रहा था, सब शिष्य तो भाग गये, एक शिष्य अड़ा रहा तो हाथी ने इसे सूंड से लपेट कर दूर फेंक दिया। तब गुरु ने कहा तुमने महावत भगवान् और अपने मित्र भगवान् की उपेक्षा क्यों की। तमोगुणी नारायण से बचो। कोई सज्जन सद्प्रयास करता है तो अकारण ही लोग उसकी आलोचना करने लगते हैं। इसे हाथी और कुत्ते के दृष्टान्त से बताया। जब हाथी बाजार में चलता है तो उसके पीछे अनेक कुत्ते भोंकने लगते हैं, पर हाथी उसकी परवाह नहीं करता। यही बात हिन्दू धर्म के साथ देखते हैं। हिन्दू धर्म ने तो इसलाम-ईसाइयत सहित सारी दुनिया को धर्म-दर्शन, सभ्यता-संस्कृति व ज्ञान-विज्ञान का कला-कौशल का दान दिया—निःस्वार्थ भाव से, लोक मंगल की भावना से दिया। उसके बदले में इसलाम, ईसाइयत, चीन सहित सारी दुनिया भारत को आग-आतंक, नशीले पदार्थों की तस्करी दे रहे हैं। मुल्ला, मौलवी, पादरी, माओवादी, हिन्दू धर्म के प्रति, भारत के प्रति आग उगलते रहते हैं, निन्दा करते रहते हैं, पर हिन्दू समाज, हिन्दू धर्म हाथी के समान उनकी परवाह नहीं करता। पर कोई ज्यादा उत्पात करे, प्राणों पर ही पड़ जाए तो अपनी आत्मरक्षा कैसे करें। कैसे उसका प्रतिकार करें यह विषधर सर्प के दृष्टान्त से बताया। जंगल में एक विषधर सर्प था जो सबको डसता था। लोगों ने उस रास्ते से जाना छोड़ दिया था। संयोग से एक संत उसी रास्ते से जा रहे थे, बच्चों ने सावधान किया। पर संत ने कहा, मेरे पास मंत्र है अतः मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जब सर्प डसने के लिए फुफकार मारते हुए आया तो मंत्र के बल से निस्तेज हो उनके चरणों पर गिर पड़ा। संत ने कहा और कितनी दुर्गति कराओगे, सर्प की योनि मिली है। फिर उन्होंने मंत्र दिया—ले इसका जप कर, इससे तेरी हिंसा वृत्ति शांत हो जायेगी, मन को शांति मिलेगी। उसके स्वभाव परिवर्तन को बच्चों ने लक्ष्य किया। वह अब फुफकारता हुआ आता नहीं है, बच्चे पत्थर फेंकने लगे, पर प्रतिकार नहीं करता। तब एक दिन एक बच्चे ने पूंछ पकड़कर धरती

पर खूब पटका और लहूलुहान मरा हुआ जानकर बच्चे छोड़ गये। एक वर्ष पश्चात् वे संत फिर आये, उसकी खोज करने लगे। बच्चों ने कहा, वह तो मर गया है। संत ने मन में सोचा, सिद्ध मंत्र था! बिना प्रभु के दर्शन मृत्यु हो नहीं सकती। उसे खोजते हुए आवाज लगाने लगे, तो बिल से निकलकर धीरे-धीरे आया और प्रणाम किया। गुरु के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। संत ने पूछा, इतना दुर्बल कैसे हो गया? अब मैं घास-फूस खाकर निर्वाह करता हूं इसलिए दुबला हो गया हूं। संत ने कहा, केवल भोजन बदलने से ऐसी स्थिति नहीं हो सकती। कोई और बात है। तब बच्चों के दुर्व्यवहार की बात याद आयी और उसने सारी बात बतायी। तब संत ने लताड़ा—अरे, तुम मूर्ख हो! अपनी आत्मरक्षा भी नहीं करना जानते। तुझे फुफकारना चाहिए था। जब हम समस्या के विरुद्ध उठकर खड़े हो जाते हैं तो अनेक समस्याओं का समाधान स्वतः ही हो जाता है। बनारस में स्वामी विवेकानन्दजी के पीछे बन्दर पड़ गये। स्वामीजी भागने लगे। दूर से एक संत की आवाज आयी—भागो मत, खड़े हो जाओ। सामना करो। तब जैसे ही स्वामीजी मुट्ठी भींचकर खड़े हुए सारे बन्दर भाग खड़े हुए। अतः हम जब डटकर खड़े हो जाते हैं तो अनेकों समस्या स्वतः सुलझ जाती हैं और जब इससे भी काम नहीं बने तब जिसकी साधना, आराधना से रामकृष्णदेव ने सबकुछ पाया वह मां दुर्गा, दुर्गा सप्तशती में कहती हैं—मां के चित्त में करुणा है पर समर में निष्ठुरता है। 'चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा'।

सब में एक ही ईश्वर का वास है अतः सबके प्रति कृपा आदर का भाव रहे पर वह जिस शरीर का आधार लेकर उदण्डता कर रहा है उस साधन को छीन लेना चाहिए। मां ने यही किया।

अतः सभी धर्म समान हैं की रट नहीं लगानी चाहिए—नहीं तो सत्-असत् में, पाप-पुण्य में, राम-रावण में, मां सीता और शूर्पणखा में, सती नारी और वेश्या में, कृष्ण और कंस में, गांधी और जिन्ना में, चोर और पुलिस में, न्यायाधीश और अपराधी में आक्रांता और उसका प्रत्युत्तर देने वाले आत्मरक्षक में अन्तर करना छोड़ देना चाहिए।

कई सज्जन कहते हैं मुसलमान और ईसाई भी तो ईश्वर को मानने वाले हैं। तब असुर भी ईश्वर को मानने वाले, उनकी आराधना कर उनसे वर प्राप्त कर अत्याचार करते थे तो वे दया नहीं दण्ड के पात्र बने। ईसाई और इसलाम की ईश्वर के प्रति अवधारणा त्रुटिपूर्ण विकृति को लिए हुए ही नहीं, पैशाचिकता को लिए हुए है। फिर एक तरफ तो रामकृष्णदेव को अवतार मानते हैं। अवतार तो सज्जनों की रक्षा, दुष्टों के दलन के लिए, नाश के लिए ही आते हैं न कि दुष्टों को प्रमाणपत्र देने के लिए कि तुम (सज्जन और दुर्जन, देव और असुर)

सभी समान हो। अतः देवी पथ और आसुरी पथ समान नहीं हो सकता। कोई कहे ईसाई-मुसलमान के द्वारा भी कुछ भला कार्य हुआ है। यह बात तो रावण, कंस, दुर्योधन के साथ भी लागू हो सकती है। पर ये सब दण्ड के पात्र बने। भीष्म-द्रोण जो स्वयं दुष्ट नहीं पुण्यात्मा थे, सदाचारी थे पर दुष्ट दुर्योधन का, कौरव पक्ष को उनसे संरक्षण मिल रहा था अतः भगवान् श्रीकृष्ण को उन्हें पहले मरवाना पड़ा। अतः एक तरफ तो रामकृष्णदेव को अवतार मानें, दूसरी तरफ उनका कार्य अवतार के ठीक विपरीत हो यह कैसे सम्भव माना जा सकता है?

मुसलमान बंधु औरंगजेब को आदर्श पुरुष यहां तक कि जिन्दा पीर मानते हैं। औरंगजेब पिता को कैद करके, पानी के लिए तरसा-तरसा कर मारने वाला, अपने तीनों भाइयों की धोखे से हत्या करके गद्दी पर बैठने वाला और अकारण हिन्दू धर्म, समाज, जाति, देश व धर्म पर कहर ढाने वाला—अपनों और परायों सबके साथ दंगा करने वाले को अपना आदर्श पुरुष मानकर न हम अपने व्यक्ति जीवन, न परिवार जीवन, न समाज जीवन व राष्ट्र जीवन और न ही विश्व जीवन का निर्माण कर सकते हैं। इसी प्रकार महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी को आदर्श पुरुष मानकर आदर्श जीवन नहीं अमानुषिक जीवन का ही निर्माण हो सकता है। यही कारण है कि इस्लामिक राज्य के मुस्लिम काल में देख लेवें तो प्रायः सभी अपने पिता व भाइयों की हत्या करके ही गद्दी पर बैठे हैं और विकृत, विलासी का जीवन जीया है। उनके परिवारों की हालत देख लेवें, मुस्लिम राज्यों की हालत देख लेवें, सब जगह उन्माद का नंगा नृत्य ही दिखायी देगा। शान्ति से न सहवास की स्थिति है, न विकास की स्थिति है, अमर्यादित, विकृत विलास की स्थिति है। ईसाइयों के आदर्श पुरुष कोलम्बस हैं जिसने अमेरीका के मूलनिवासियों पर अमानुषिक अत्याचार कर समूल नष्ट कर दिया। कोलम्बस ने वहां के मूलवासी रेड इंडियनों से पानी मांगा तो उन्होंने दूध से स्वागत किया। उन भोले-भाले वासियों को निर्मम ढंग से नष्ट कर दिया। ईसाइयों के आदर्श पुरुष संत जेवियस हैं जिसने गोवा में हिन्दुओं पर अमानुषिक अत्याचार किया। भारत की वाणी धर्म की वाणी, मर्यादा की वाणी है। इसलाम सहित ईसाइयत की, छल-कपटाचार, अमर्यादित, अविवेकी भोग की वाणी है, राजनीति की वाणी है। शोषण और बलात्कार की वाणी है? ऐसी स्थिति में हिन्दू धर्म, इसलाम और ईसाइयत एक कैसे हो सकते हैं। इनको एक ही तराजू में कैसे तोला जा सकता है। अतः इसलाम-ईसाइयत के साथ हिन्दू धर्म का समभाव नहीं, हिन्दू धर्म का विनाश ही सम्भव है और वही हो रहा है–जब से ये दोनों धारायें भारत में आयी है। रामकृष्णदेव के सर्वधर्म समभाव का प्रभाव यत्किंचित् भी इसलाम और ईसाई समाज पर नहीं है केवल हिन्दू समाज ही इससे मतिभ्रम का शिकार हो रहा है। ईश्वर-अल्लाह तेरे नाम सबको सम्मति दे भगवान। इसे गांधी

किसी मुसलमान से यहां तक कि मौलाना अबुल कलाम से भी नहीं गवा सके। यही कारण है इसलाम और ईसाइयत, दोनों हिन्दू समाज को दुनिया के मानचित्र से मिटा देना चाहते हैं और हिन्दू मतिभ्रम का शिकार होकर उन्हें गले लगाने में लगा हुआ है। हमने इसलाम-ईसाइयत को न समझने की कसम-सी खा रखी है।

अतः रामकृष्ण देव को आदर्श के साथ-साथ व्यावहारिक धरातल का भी ध्यान था। यही कारण है उनके द्वारा निर्मित स्वामी विवेकानन्दजी ने जहां सर्वधर्म समभाव की बात कही वहीं ईसाइयत और इसलाम की कुटिल योजनाओं एवं कार्यों का पर्दा-फास भी किया।

वास्तव में हम सेमिटिक परम्परा में विशेषकर इसलाम और ईसाइयत के अमानवीय, अराष्ट्रीय, अप्रजातांत्रिक, अधार्मिक, अआध्यात्मिक, अदार्शनिक, अवैज्ञानिक, अबौद्धिक, अतार्किक, असामाजिक, पर्यावरण विरोधी, नारी विरोधी, मानव स्वभाव के विरोधी स्वरूप को समझना नहीं चाहते। इन सब बातों की अनदेखी कर इनको हर स्थिति में अल्पसंख्यक का दर्जा देकर सब प्रकार की विशेष सुविधाएं, संरक्षण देकर देश को अलगाव, आतंक, आगजनी के हवाले कर दिया गया। और यह क्रम निरन्तर वृद्धि को पा रहा है। ये न धर्म हैं, न पंथ हैं। ये तो अपने-अपने उपनिवेश एवं बाजार स्थापित करने के अन्तरराष्ट्रीय राजनीतिक षड्यंत्र हैं। तभी तो जिन्ना स्पष्ट रूप से कह पाते हैं पाकिस्तान की नींव तो उसी दिन रखी गयी जब हिन्दू से पहला मुसलमान बना। स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं जब कोई हिन्दू से मुसलमान या ईसाई बनता है तब हमारे देश का एक बन्धु कम नहीं होता, हमारे राष्ट्र का एक शत्रु बढ़ जाता है। जब तक हिन्दू है हम-आप की तरह शांत, शिष्ट, अहिंसक भारत भक्त है, राम व कृष्ण का पुजारी है, गो पूजक है, जैसे ही हिन्दू से ईसाई या मुसलमान बनता है वह अलगाववादी आतंकवादी राम-कृष्ण का हत्यारा गोभक्षक बन जाता है, भारत माता डायन लगने लगती है। स्पष्ट है यह एक विशुद्ध राजनीतिक षड्यंत्र है जिसमें धर्म और अध्यात्म की कोई गंध नहीं है। पर पता नहीं हम कब जिन्ना और स्वामी विवेकानन्दजी के कथन को स्वीकार कर पायेंगे।

श्रेष्ठ दार्शनिक भगवानदास ने उनसे पूछा था कि हमें बताया जाता है कि हिन्दुओं और मुसलमानों की धमनियों में एक ही पूर्वजों का रक्त बह रहा है, किन्तु दोनों का आचरण इतना भिन्न क्यों है? जहां हिन्दुओं का सहज झुकाव अहिंसा और शांति की ओर है तो मुस्लिम समाज सहज ही हिंसा का मार्ग अपना लेता है। इस पर गांधीजी का उत्तर था कि इसका कारण दोनों विचारधाराओं में और इतिहास की यात्रा में खोजना होगा। यही बात ईसाइयत के साथ लागू होती है। इनके ग्रंथ बाइबिल और कुरान, हदीस में गैरों के प्रति, अविश्वासियों के प्रति

जिहाद का आदेश उनके समूलोच्छेद का आदेश है। कुरान में 70 बार से अधिक आदेश है गैर-मुस्लिमों के वध के लिए।

इसलिए ईसाइयों का इतिहास भी बड़ा रक्तरंजित है। कलंकित है—पहले चर्च ने गैर ईसाइयों को मारना, जलाना प्रारम्भ किया। फिर राजनीतिक विरोधियों को नष्ट करने का अभियान चलाया। फिर गैर ईसाई राष्ट्रों के विरुद्ध जिहाद प्रारम्भ किये तथा गैर ईसाई राष्ट्रों को धरती से उच्छेद करने का अभियान चलाया। फिर ईसाई मत के ही भिन्न सम्प्रदायों के स्त्री-पुरुषों को तेल छिड़क कर सामूहिक रूप से जलाना प्रारम्भ किया। पोप ने अपने धार्मिक न्यायालय बना लिये जो तनिक भी विरोध करने वाले या भिन्न मत रखने वाले लोगों को चर्च के शत्रु कहकर सामूहिक रूप से जलाने या मारने का दण्ड देता था। Blood Council ने हजारों-लाखों लोगों को फांसी पर चढ़ा दिया। धार्मिक न्यायालय (Inquisition) ने पोप के एक वाक्य पर सन् 1568 में नीदरलैण्ड (हालैण्ड) के तीन लाख निवासियों को तेल छिड़ककर सामूहिक रूप से जला दिया। सारे यूरोप और अमरीका का चर्च का इतिहास इसी प्रकार के हिंसा-हत्या के कुकर्म से रक्तरंजित है।

डॉ. पितृम ए. सोरोकिन (डाइरेक्टर हार्वर्ड सेन्टर इन क्रिएटिव अल्ट्रइज्म) अपनी पुस्तक—रीकन्स्ट्रक्शन आफ ह्यूमैनिटी (पृष्ठ 47) में ईसाई मिशनरियों के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं—'विगत कुछ शताब्दियों में मानव समाज का वह वर्ग जो सर्वाधिक युद्धपिपासु, सर्वाधिक आक्रामक, सर्वाधिक बलात्कार परायण तथा सर्वाधिक सत्तामदोन्मत्त रहा है, वह निश्चय ही पाश्चात्य ईसाई जगत् है। इन शताब्दियों में पाश्चात्य ईसाइयत ने सभी दूसरे महाद्वीपों पर आक्रमण किया है। इनकी सेनाओं ने जिनके पीछे-पीछे इनके पादरी और व्यापारी चलते हैं, अधिकांश गैर ईसाई राष्ट्रों को गुलाम बनाकर लूटा-खसोटा है। पूर्णतया अशिक्षित आदिम जातियों से आरम्भ कर गैर ईसाई राष्ट्रों तक के प्रति उनका यह अत्याचार रहा है। आदिम अमरीकावासी, अफ्रीकावासी, आस्ट्रेलियावासी तथा एशियाई जनसमूह—सभी इस विचित्र प्रकार के ईसाई प्रेम के शिकार हुए हैं, जिनके सामान्य लक्षण रहे हैं—निर्दयतापूर्ण सर्वनाश, पराधीनता, बलात्कार, सांस्कृतिक जीवनमूल्यों का क्षरण, सामाजिक संस्थाओं का तथा ईसाई प्रेम के शिकार हुए व्यक्तियों की जीवन पद्धति का विनाश, शराबखोरी, यौन रोगों व व्यावसायिक हृदयहीनता आदि सामाजिक पापों का प्रचार, आदि-आदि।

एच.जी. वैल्स ने ईसाइयत के सारे इतिहास का सर्वेक्षण करते हुए लिखा है, 'सारे विश्व में आज तक केवल एक ही सच्चा ईसाई हुआ है, जो क्रॉस पर मर गया। इस पर उसके मित्र ने व्यंग्य करते हुए टिप्पणी की कि वह भी ईसाई कहां था? वह तो स्वयं यहूदी ही था।

ईसाई मिशनरी जहाँ भी जाते हैं मानव सेवा का बहाना लेकर ही जाते हैं, परन्तु कुछ वर्षों में वे क्या गुल खिलाते हैं, यह देखिये स्वतंत्र केनिया देश (अफ्रीका महाद्वीप) के प्रथम राष्ट्रपति जोमिया के न्याटो के शब्दों में, 'जब ईसाई मिशनरी हमारे देश में आये, उनके हाथ में बाइबिल थी। उन्होंने हमें बाइबिल दी और कहा—आंखें बन्द करो और प्रभु यीशु का ध्यान करो। हमने आँखें बन्द की और प्रभु का ध्यान किया। हमने आँखें खोली तो हमने देखा बाइबिल हमारे हाथ में है और देश की सारी भूमि मिशनरियों के हाथ में थी।

—प्रथम राष्ट्रपति केन्या (अफ्रीका)

चर्च के इतिहास में दिवंगत पोप जॉन पाल द्वितीय ने अब तक चर्च द्वारा किए गए कम से कम 98 पुराने अपराधों के लिए कूटनीतिक के तौर पर क्षमा-याचना की। ताकि ईसाइयों की गतिविधियां अबाध रीति से चलती रहे। ये सारी कूटनीतिक क्षमायाचनायें हैं जिससे ईसाइयों के प्रति रोष समाप्त हो जाए या कम हो जाए और उनकी गतिविधियां बदले हुए परिवेश में बदली हुई तकनीकी से चलती रहे अबाध गति से। भारत में ऐसी कोई क्षमायाचना नहीं की, ऐसी कोई आवश्यकता महसूस नहीं हुई क्योंकि यहां तो सेकुलर, वामपंथी, मानवाधिकारवादी, प्रगतिवादी राज-नेताओं की पूरी जमात इसके साथ खड़ी है सहयोग के लिए। 13 फरवरी, 2008 को आस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री केविन खड़ेन, आस्ट्रेलिया की संसद के अन्दर सारे पापों के लिये जो सारे आस्ट्रेलियाई पुराने एबोरिझिनल्स जोन है उसके पुराने मूल निवासी थे, जिनकी विशेष पहचान थी, जिनकी विशेष संस्कृति थी, विशेष पूजा पद्धति थी, उसको नष्ट कर उनको मारकर उनकी जगह स्वयं बस गये थे, जो आज एबोरिझिनल्स के वंशज हैं उनसे क्षमा मांगी। एक-एक बात के लिये कि हमने आपकी संस्कृति, परम्परा एवं परिवारों को नष्ट किया। यह एक काला अध्याय है। मैं उसके लिये क्षमाप्रार्थी हूं। भविष्य में ये कभी नहीं होगा। यही कारण है कि अपने देश में और अन्यत्र भी ईसाई मिशनरियों की वही पुरानी गतिविधियां परिवर्तित रूप से चालू हैं।

इसलाम का इतिहास भी कम दर्दनाक नहीं। उन्होंने गैर मुस्लिम (काफिर) देश के विरुद्ध जिहाद बोलकर भयंकर रक्तपात किये। नारी जाति का घोर अपमान किया। धन और इज्जत को लूटा। नन्हे-नन्हे बच्चों को दीवारों में चुनवाया। विधर्मियों की आँखें निकलवायी, बोटी-बोटी नुचवायी, आरे से चिरवाया, चर्खियों पर कटवाया, दो-दो पैसों में सिर बिकवाये, जलते हुए तवों पर जलवाया, उबलती हुई देग में जलवाया, खून के खांखरे जलवाये, मन्दिरों-मठों को तोड़ा, पुस्तकालयों-विश्वविद्यालयों को जलाया, देव प्रतिमाओं को अपने शौचालयों में औंधे मुख लगवाया। दुर्लभ ग्रंथों को जलाकर अपने हमाम गर्म करवाये और देश

के नर-नारियों को विदेश में गुलाम बनाकर बेचा। यह सब दुर्भाग्य से धर्म के विस्तार के लिए घोर अधर्म होते रहे। और आज भी यथावत जारी है।

सेमिटिक परम्परा के अध्येता राम स्वरूपजी कहते हैं हिन्दुओं में सर्वधर्म समन्वय के प्रति इतना मोह व्याप्त है कि इसके नाम पर भानमती का पिटारा खोल देते हैं। विचार ही नहीं करते मेल सजातीय में होता है विजातीय में नहीं। नबी के नाम से, सूफी संत के नाम से कुछ भी हिन्दुओं के गले में उतारा जा सकता है।

कुछ समय पूर्व अमरीका, अफ्रीका, अरब व दक्षिण-पूर्व एशिया के 118 चिंतक-मनीषी एकत्रित हुए। उनमें बहस चली कि आतंकवाद की जड़ कहां है। इसमें से निकलने का रास्ता क्या है? मानव जाति बचेगी कैसे? उसका मार्ग क्या है? अन्त में निष्कर्ष निकला कि 'Only one God, Only one Path.' मेरा भगवान् और मेरा मार्ग। यही एकमेव मार्ग है। इसलिए दूसरे को समाप्त करना, युनिटी नहीं यूनिफॉर्मिटि, एकत्व नहीं एकरूपता। जैसा मैं हूं वैसे ही हो जाओ—यह है आतंकवाद की जड़ में पैठी सोच। इसमें उन 118 चिन्तकों का सर्वसम्मत प्रस्ताव था कि इसमें से बाहर निकलना है हमें। प्लुअॅरल गॉड और प्लुअॅरल पॉथ—भगवान् के अनेक रूप हैं और अनेक मार्ग हैं जो सब समान हैं। सब एक ही दिशा में ले जाते हैं। इस बात की ओर दुनिया को ले जाना पड़ेगा और इसलिए हमें ओरिएण्टल दर्शन—पूर्व के दर्शन की ओर लौटने की आवश्यकता है। यही आने वाले समय में मानव-जाति को बचा सकती है।

भारतीय राष्ट्र जीवन के प्रवाह में बाधक सेमिटिक परम्परा विशेषकर ईसाइयत और इसलाम

सेमिटिक परम्परा और भारतीय दृष्टि में मूलभूत अन्तर है। भारतीय दृष्टि दर्शन में, अध्यात्म में प्रवेश पाने के लिए पात्रता की, अधिकारी भेद की चर्चा करती है कि कौन शिष्य बनने के योग्य है और कौन गुरु की पात्रता रखता है। वेदान्त दर्शन ब्रह्म जिज्ञासा से प्रारम्भ होता है और ब्रह्म जिज्ञासु को साधन चतुष्टय से युक्त होना चाहिए। तब उसमें शिष्य बनने की पात्रता आती है।

साधन चतुष्टय

(क) नित्यानित्य वस्तुविवेक।

(ख) इहामुत्रार्थ फलभोग विराम (इसमें लौकिक एवं पारलौकिक सभी कामनाओं का परित्याग)।

(ग) शम-दमादि षड्सम्पत्ति युक्त (शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति और तितिक्षा)।

(घ) मुमुक्षत्व।

ऐसे ही योग दर्शन में यम-नियम में प्रतिष्ठित होकर ही आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान-समाधि की कक्षा में प्रवेश की स्थिति आती है। समाधि की स्थिति में आत्म-साक्षात्कार की स्थिति आती है। उस अवस्था में ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता बनने की स्थिति आती है। तो हमारे यहां ब्रह्मविद्या के प्रवेश में कितनी कठोर मर्यादाएं स्थापित की गईं और ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता के लिए तो पात्रता है कि वह श्रोत्रिय और साथ में ब्रह्मनिष्ठ भी होना चाहिए।

पर सेमिटिक परम्परा में इस प्रकार की कोई मर्यादा नहीं होने से जो ब्रह्मविद्या में प्रवेश के भी अधिकारी हैं या नहीं, वे ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता तक बन गये। अर्जुन जिज्ञासु तो बन सकता है पर वही गुरु बनकर उत्तर देने लगे तो कितने अनर्थ की सम्भावना है? वैसे ही सेमिटिक परम्परा के आचार्य जैसे ईसा मसीह आदि अधिक से अधिक ब्रह्मविद्या के विद्यार्थी तो बन सकते हैं, जिज्ञासु तो बन सकते हैं, लेकिन ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता नहीं। बिना पात्रता के, बिना नैतिक आधार के ईश्वर साक्षात्कार वैसा ही है जैसा दुर्योधन का। कृष्ण के समझाने पर वह स्पष्ट कहता है कि मैं धर्म को भी जानता हूं, अधर्म को भी जानता हूं। धर्म में मेरी प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्म से निवृत्ति नहीं। मेरे अन्दर एक देव बैठा हुआ है। वह जैसा प्रेरित करता है वैसा ही मैं करता हूं—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन, यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।।

तो दुर्योधन के अन्दर कौन देवता बैठा है? वह राम नहीं काम है, स्वार्थ है। उसका स्वार्थ जैसा उसको प्रेरित करता है, प्रेरणा देता है, वैसा ही वह करता है। अतः अपने स्वार्थ के अनुसार, अपने स्वभाव के अनुसार, अपने स्तर के अनुसार, अपने संस्कारों एवं सोच के अनुसार ऐसे ही देव को हम अपने अन्तःकरण में प्रतिष्ठित कर लेते हैं एवं भ्रमवश उसी प्रेरणा को अन्तःप्रेरणा मान बैठते हैं।

जब हम राग-द्वेष से रहित होते हैं, चित्त शुद्ध होता है, तो पूर्वाग्रह से मुक्त चित्त में ही ईश्वरीय प्रेरणा एवं साक्षात्कार होता है। उसके पूर्व तो अपने स्तर, अपने सोच, संस्कार एवं आवश्यकतानुसार प्रेरणा होती है। उसे ईश्वरीय प्रेरणा कहना गलत है। उसे ईश्वर प्रेरित नहीं मनःप्रेरित, मनःकल्पित ही कहा जा सकता है। सेमिटिक परम्परा में ऐसी कोई मर्यादा या चिंतन न होने से जो ब्रह्मविद्या के शिष्य बनने की पात्रता भी नहीं रखते हैं वे ही ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता बनते हैं। ईश्वर के नाम पर कितने अनर्थकारी सिद्धान्तों को जन्म दिया—

सेमिटिक परम्परा में ईश्वर सातवें आसमान में है, एकदेशीय है। ईश्वर ऊपर वाला है जो अपने संदेश को दूतों के माध्यम से, फरिश्तों के माध्यम से प्रसारित करता है। आवश्यकता पड़ने पर वह अपने पुत्र एवं पैगम्बर को भेजता है, स्वयं नहीं आता। और इनकी साक्षी में विश्वासियों को अनन्त नरक या स्वर्ग मिलता है। मुक्ति या मोक्ष या पूर्णता की अवधारणा सेमिटिक परम्परा में नहीं है। हिन्दू परम्परा का ईश्वर सर्वव्यापी है, सृष्टि का कोई भी कण ईश्वर से रहित नहीं है। नर में ही नारायण समाया हुआ है बस उसे धर्म-कर्म, साधना के द्वारा जगाने की आवश्यकता है। इसलिए किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं है। हिन्दू परम्परा में दीक्षित एवं शिक्षित ईसा मसीह ने जब कहा—'स्वर्ग का राज्य तुम्हारे अन्दर है', तो यहूदियों को यह समझ में नहीं आया और इसे राजद्रोह मानकर उसे सूली पर लटका दिया। मंसूरी द्वारा अनहलक की धुन सुनकर यानी मैं खुदा हूं, मैं खुदा हूं को सबसे बड़ा अपराध मानकर औरंगजेब ने उसे सूली पर लटका दिया। सेमिटिक परम्परा में अल्लाह ऊपर वाला होने से मुल्ला जोर से बांग देता है नहीं तो वह सुन नहीं पायेगा। और अब तो ध्वनि विस्तारक यंत्र का उपयोग किया जाता है। हिन्दू परम्परा में ईश्वर सर्वत्र है स्वयं हमारे हृदय में प्रतिष्ठित है, अतः मौन प्रार्थना मन-मन में प्रार्थना को महत्त्व दिया जाता है।

सेमिटिक परम्परा का ईश्वर घोर राग-द्वेष से ग्रस्त है। उसकी अभिरुचियां नृशंसतापरायण हैं। उसकी मुंहलगी जातियां हैं, मुंहलगे चर्च और उम्मा हैं। उसके अक्षम्य शत्रु भी हैं। वह अहंकार से भरा हुआ और स्वार्थ से सराबोर है। वह किसी अन्य उपास्य अथवा उपास्यों को सहन नहीं कर सकता। उसका आग्रह है कि उसके सिवाय किसी अन्य उपास्य की पूजा नहीं होनी चाहिए।

बाइबिल में ईश्वर (याहू) अपने मुख से कहता है कि 'वह ईर्ष्या विदग्ध ईश्वर है'। और जो ईर्ष्या विदग्ध है वह भयंकर रोष और नृशंसता से भरा हुआ भी है। वह अपने मुंहलगे लोगों को आदेश देता है कि जब मैं तुमको उस देश में पहुंचा दूं जहां पहुंचाने का वायदा मैंने तुमसे किया था और मैं उस देश के वासियों को तुम्हें सौंप दूं तो तुम उनको मारोगे और उनका सर्वनाश कर दोगे। तुम उनके साथ कोई समझौता नहीं करोगे न ही उनके प्रति दया दिखलाओगे.... तुम उनके पूजास्थलों का ध्वंस करोगे, उनकी देवमूर्तियों को तोड़ डालोगे और जिन वनों में चैत्य हैं उनको काट डालोगे..... कारण, तुम अपने प्रभु के निकट पावन लोग हो। बाइबिल विधि विवरण—7.1.6। कुरान के अल्लाह में भी लगभग ऐसे ही गुण-धर्म मिलते हैं। वह कोप का देवता है। जो लोग उस पर तथा उसके पैगम्बरों पर विश्वास नहीं करते उनको वह भयावह दण्ड (अजाब-अल-अजीम) देता है। इसी न्याय से वह प्रचण्ड प्रतिशोध लेने वाला है। वह लूट के माल की प्रभूत राशि

देने वाला भी है। वह अपने मोमिनो को बतलाता है कि उसने किस प्रकार मोमिनो के शत्रुओं (काफिरों) को परास्त करके काफिरों की धरती, उनके घर-बार और उनका धन-धान्य मोमिनो को दिलवाये। अल्लाह बाइबिल के याहू का अक्षरशः अनुसरण करता है। याहू ने अपने मुंहलगे लोगों से वायदा किया है कि वह उनको ऐसे प्रशस्त और सम्पन्न नगर प्रदान करेगा जिनका निर्माण उन्होंने नहीं किया, ऐसे कुएं देगा जो कि उन्होंने नहीं खोदे। अंगूरों के ऐसे बाग और जैतून के ऐसे पेड़ देगा जो कि उन्होंने नहीं बोये।

बाइबिल विवरण 6.10.11 में God एवं अल्लाह के ये गुण-धर्म हैं। तो प्रश्न है शैतान के कौन से गुण-धर्म हैं? God एवं अल्लाह में स्वयं में देवीय गुण नहीं है तो उनके अनुयायियों में देवीय सम्पदा कहाँ से आयेगी। फिर इनके God सर्वोच्च सत्ता भी नहीं हैं। उनके समानान्तर शैतान की सत्ता है जो God का पहले नम्बर का शत्रु है, जो God की चुनौती के रूप में खड़ा है तथा God से निरन्तर संघर्षरत है। दोनों धर्म पुस्तकें हमें उपदेश देती हैं कि अपने नेक कर्मों के द्वारा खुदा की मदद करनी चाहिये ताकि शैतान उसको पीठ न लगा दे। इस प्रकार God न सर्वोच्च सत्ता है और न सर्वशक्तिमान।

इनका (ईसाई और मुसलमान का) कर्म सिद्धान्त अपूर्ण और अशुद्ध है। क्योंकि वे कर्म के सिद्धान्त को अन्तिम कयामत के दिन न्याय के रूप में मानते हैं पर पुनर्जन्म न मानने से उनके कर्म के सिद्धान्त का आधार भी कच्चा रह जाता है। Justice delayed is justice denied विलम्बित न्याय अन्याय जैसा बन जाता है। अमरीका के महान् लेखक क्रिस्टोफर ईशरहुड ने बाइबिल में जब यह पढ़ा कि ईश्वर दूर सातवें आसमान में बैठा हुआ है और उसका न्यायालय करोड़ों वर्षों के बाद कयामत के दिन खुलेगा तो उसने ईश्वर पर विश्वास करना ही छोड़ दिया। उसने कहा, ऐसे ईश्वर से धरती का मजिस्ट्रेट ही अच्छा है जो कुछ दिन, माह या वर्ष में न्याय तो दे देता है।

हिन्दू धर्म मानता है कि ईश्वरीय न्याय अनवरत रूप से चल रहा है। भगवान् का न्यायालय एक क्षण के लिए भी बन्द नहीं होता है।

फिर उनका ईश्वर न्याय भी अपने-अपने विश्वासियों के पक्ष में देता है। इस प्रकार ईश्वरीय न्याय निष्पक्ष नहीं है। अपने मत के सापेक्ष है। अविश्वासियों यानी काफिरों और हिडेनों को चाहे कितने ही सदाचारी पुण्यात्मा हों, गांधीजी हो या स्वामी विवेकानन्द हो या सुभाष बोस हो या रमण महर्षि, रामकृष्ण परमहंस, ऋषि अरविन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर हो या डॉ. राधाकृष्णन् आदि हो सबको ही अनन्त नरक की आग में ही जलना है।

इसी विश्वास की निष्पत्ति मुहम्मद अली के कथन में है—पापी से पापी, भ्रष्ट से भ्रष्ट मुसलमान भी गांधी से श्रेष्ठ है। क्योंकि वह अल्लाह एवं मुहम्मद को स्वीकारता है। यही बात ईसाइयत के साथ है। इस तथ्य को स्वामी प्रणव चैतन्य पुरीजी ने बहुत सुन्दर रीति से रखा है–**धर्म क्यों...क्या...कैसे**....में वे कहते हैं—उन्नीसवीं सदी के इंग्लैण्ड में एक विचारक हुए बर्ट्रेण्ड रसेल। वे किसी रिलिजन को नहीं मानने वाले थे। उस समय के एक क्रिश्चियन विद्वान् से उनकी खुली बहस (Public Debate) हुई थी। रसेल ने उनसे एक प्रश्न किया—Christianity (क्रिश्चियनिटि) क्या है? उन्होंने संक्षेप में सुस्पष्ट उत्तर दिया। जीसस एक मात्र उद्धार करने वाला है। Jesus is the only Saviour बाइबिल सत्य है। गॉड सर्वोपरि है। इन तीन चीजों पर, व्यक्ति पर, ग्रन्थ पर व पूजा विधि पर जो विश्वास करता है वह क्रिश्चियन है। जो इन पर विश्वास करता है और अच्छा इनसान है वह मरने के बाद स्वर्ग (Heaven) में जाता है, जो ऐसा नहीं है, वह सदा के लिए नरक (Hell) में जाता है। यह क्रिश्चियनिटि है। बहुत सही विवरण दिया उन्होंने। बड़े स्कॉलर थे। रसेल ने पूछा जो जीसस को नहीं मानता, बाइबिल को नहीं मानता, गॉड को नहीं मानता, पर अच्छा इनसान है, वह कहाँ जाता है? और जो जीसस को मानता है, बाइबिल को मानता है, गॉड को मानता है पर अच्छा इनसान नहीं है वह कहाँ जाता है?

बड़े स्पष्ट शब्दों में पादरी महोदय ने कहा, जो जीसस को मानेगा वह चाहे कितना भी बुरा इनसान क्यों न हो, जीसस उसका उद्धार करेंगे। वह स्वर्ग जायेगा। जो जीसस को नहीं मानता वह नरक जायेगा। गॉड को मानने से भी जीसस को एकमात्र उद्धारकर्ता मानना महत्त्वपूर्ण है। अगर रिलिजन के चरित्र को समझना है तो इस बात को ठीक से पकड़ना पड़ेगा। कितना ही अच्छा इनसान क्यों न हो, जीसस को न मानने का जो अपराध उसने कर दिया है, उसके फलस्वरूप थोड़े दिन के लिए नहीं, अनन्त काल के लिए, नरक जाना पड़ेगा। उनके यहां पुनर्जन्म की मान्यता नहीं है।

उनकी ऐसी मान्यता है कि उनके ईश्वर ने या उनके पुत्र या पैगम्बर ने जो आदेश दिया है, वह आदेश उचित है या अनुचित—यह विचार आपको नहीं करना है। उसका अनुसरण करना है। उस पर संशय करना या उसको न मानना अपराध है। उसको मानना रिलिजन है। अब हिन्दुओं से पूछें, यही प्रश्न। आपसे ही पूछें। जो मन्दिर में नहीं जाता है, किसी शास्त्र को नहीं मानता, भगवान को भी नहीं मानता, पर सदाचारी है, अच्छा इनसान है, किसी को कष्ट नहीं देता, हिंसा नहीं करता, सत्य बोलता है, किसी का चुराता नहीं है, वह कहां जायेगा? उत्तर—'स्वर्ग में'। नरक में तो नहीं जायेगा कम से कम।

किसी भी हिन्दू से पूछ लीजिए। गाँव के व्यक्ति से पूछ लीजिए। वह भी बिना झिझक तुरन्त यही कहेगा। क्योंकि उसको पता है, धर्म क्या है? अच्छा इनसान बनने का नाम धर्म है। आप भगवान को मानते हैं या नहीं यह दूसरी बात है। किसी को कष्ट नहीं देना, यह धर्म है। किसी भी हिन्दू को उत्तर देने में कठिनाई नहीं होगी। मैंने इंग्लैण्ड में हिन्दुओं से यह प्रश्न पूछ के देखा। उनको अपने धर्म के बारे में बहुत मालूम नहीं होगा। परन्तु अन्तर्हृदय से जवाब आता है, अच्छा इनसान है तो नरक कैसे जा सकता है?

रसेल ने सुन्दर उत्तर दिया। कहा, जहाँ अच्छे इनसान पहुंच जाते हैं, उस नरक में मैं जाना पसन्द करूंगा। बुरे लोग, भगवान को मानने वाले स्वर्ग में जाकर तोड़-फोड़ ही करेंगे, आतंकवाद ही फैलायेंगे। उससे तो अच्छा है, हमारे लिए जो जगह रिजर्व है, उसी को अच्छी तरह बसा लेंगे।

अब बड़े मजे की बात है, जब से ईसाइयत में आत्ममंथन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तब से उन्होंने ईसाई धर्म को छोड़ना प्रारम्भ कर दिया है, क्योंकि अन्धविश्वास और अज्ञान के अलावा और कोई आधार नहीं है इनके पास—न दार्शनिक, न नैतिक, न बौद्धिक, न सामाजिक, न मनोवैज्ञानिक, न वैज्ञानिक आधार है। यह प्रकृति विरोधी, मानव विरोधी, नारी विरोधी धाराएं हैं। न दैनिक जीवन की समस्याओं का ही कोई समाधान देती हैं। अतः आज के ज्ञान-विज्ञान के युग में किसी भी प्रकार से अपनी प्रासंगिकता सिद्ध नहीं कर पाती। आज के समय में इनकी सारी मान्यताएं बचकानी-सी, हास्यास्पद-सी, अनर्गल प्रलाप-सी, प्रतीत होती हैं। अतः ईसाइयत से आस्था हटती जा रही है, उसे छोड़ते जा रहे हैं और हिन्दू धर्म के प्रति आस्था बढ़ती जा रही है, उसे अपनाते जा रहे हैं। और ऐसे देखें तो ईसा के पूर्व यूरोप में सूर्य पूजा ही प्रचलित थी, हिन्दू धर्म का प्रभाव था। सूर्य मन्दिरों, सूर्य पूजा को नष्ट करके यह ईसाइयत आगे बढ़ी है। और जो ईसाई मिशनरियां भारत में काम कर रही हैं वे तो भारत को यूरोप का बाजार बनाने, यूरोप का उपनिवेश बनाने, यूरोप का मानसिक गुलाम बनाने के लिए उद्यत हैं। इसलिए वे भारत को जड़मूल से नष्ट करने में लगे हैं। गाँधीजी ने ईसाइयत का गम्भीर अध्ययन किया था। वे ईसाइयत के घोर विरोधी थे। उनके सभी कार्यों को, गतिविधियों को प्रतिबंधित करना चाहते थे। आज उन्हें ही धर्म प्रचार के साथ धर्मान्तरण की सुविधा संविधान द्वारा दे दी गयी।

पर इसलाम में आत्ममंथन की प्रक्रिया आरम्भ होते ही मौत का फतवा जारी हो जाता है। इससे स्पष्ट है इसके अलावा अपने बचाव का और कोई आधार इनके पास नहीं है। इस आधार पर इसलाम अपने आप को बहुत दिन तक नहीं बचा पायेगा। जो हाल ईसाइयों का हो रहा है वही इसलाम का होने वाला है। क्योंकि दोनों के विचार

और कार्य प्रायः समान ही हैं। यहां के 99 प्रतिशत मुसलमानों के पूर्वज हिन्दू ही हैं। जिन्हें भय और लोभ के आधार पर मुसलमान बनाया गया था। अतः केवल पूजा पद्धति बदली है, और पूजा पद्धति के आधार पर भारत में कभी कोई भेदभाव नहीं हुआ। भारत में अनेकों पूजा पद्धति है। इसमें कोई समस्या नहीं है। इसके अलावा हिन्दू-मुसलमान में एक ही पूर्वजों का रक्त बह रहा है। अतः दोनों का इतिहास, महापुरुष, आस्था बिन्दु समान है। और अरब की दृष्टि से देखें तो ये सब शैव हैं, शिव के उपासक हैं। पैगम्बर मुहम्मद के पूर्व अरब में शिव पूजा प्रचलित थी, हिन्दू धर्म का प्रभाव फैला हुआ था। और आज भी सारे विश्व के मुसलमान हज यात्रा के माध्यम से प्रकारांतर से शिव पूजा ही करते हैं। मुस्लिम संगठन जमीयत उलेमा के प्रमुख नेता मुफ्ती मोहम्मद इलियास ने कहा कि भगवान शिवशंकर पहले पैगम्बर थे। बीती 19 फरवरी, 1915 को श्रीराम की नगरी अयोध्या में उन्होंने यह भी कहा कि मुसलमान शिव-पार्वती की संतान हैं और इस देश के मुसलमान भी हिन्दुओं की तरह सनातनी ही है। उन्होंने दोहराया कि जैसे चीन में रहने वाला चीनी और जापान का हर व्यक्ति जापानी है वैसे ही हिन्दुस्तान में रहने वाला हर व्यक्ति हिन्दू है। अतः रहीम, रसखान, दाराशिकोह हरिदास आदि की तरह मुसलमान रहते हुए भी भारतीय संस्कृति को अपना सकते हैं जैसा कि हम इंडोनेशिया में देखते हैं। इंडोनेशिया मुस्लिम राष्ट्र होते हुए भी राम-कृष्ण को अपना National Hero मानता है। रामायण के कथानक पर नाटक खेलते हैं जो विश्व प्रसिद्ध हैं।

इंडोनेशिया के मुसलमान श्रद्धा से हिन्दू हैं पर हिन्दुस्तानी मुसलमान रक्त से भी हिन्दू हैं। हिन्दुस्तानी मुसलमानों को मुस्लिम राष्ट्रों यहां तक कि पाकिस्तान में भी घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। देश विभाजन के समय पाकिस्तान को अपना देश मानकर जोश-जोश में चले गये तब से आज तक सब प्रकार से उपेक्षा के शिकार हैं। माखन लाल चतुर्वेदी समग्र के तीसरे खण्ड को पढ़ रहा था विदेश में वन्दे मातरम् का महत्त्व उसमें माखनजी बता रहे हैं विदेशों में हिन्दू मुसलमानों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है और वे किसी भारतीय को देखकर वन्दे मातरम् चिल्ला कर अपना रोष व्यक्त करते हैं। यहां तक कि I.S.I (आईएसआई) की आतंकवादी गतिविधियों में भाग लेने भारत के मुसलमान शामिल होते हैं उनको अन्यों से नीची रैंक मिलती है, उनका वेतन भी कम होता है। जितने भी मुस्लिम देश है, सबमें अशान्ति, परस्पर संघर्षरत हैं और विकास की कहीं स्थिति नहीं है, बस मजहबी कट्टरता है, उन्माद है। केवल भारत में ही मुसलमानों का शान्ति से सहवास है। मुसलमानों के 73 फिरके हैं वे सबके सब भारत में ही शान्ति के साथ सहवास कर रहे हैं, पर इसे भी अशान्त बनाने में लगे हुए हैं। अतः मुसलमानों को यह स्थिति क्यों है, शान्ति से विचार करना चाहिए।

ईसा स्वयं भारत का दीक्षित शिक्षित शिष्य होने, बौद्ध दर्शन, गीता, वेदान्त से प्रभावित होने से बाइबिल में कुछ प्रसंग है जो आधुनिक मन को प्रभावित करते हैं जैसे गिरि प्रवचन जो गीता के स्थितप्रज्ञ दर्शन से लिया गया है। ऐसे कुछ और भी प्रसंग हैं यथा पड़ोसी को अपने समान प्रेम करो।

ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है।

God ने मनुष्य को अपने अनुरूप बनाया है।

सूई के छिद्र से ऊँट निकल सकता है पर धनी स्वर्ग में प्रवेश नहीं कर सकता। आदि-आदि।

और कुछ प्रसंग ऐसे हैं जो बाइबिल के पुराने संस्करणों में तो नहीं है जैसे इस ब्यभिचारणी स्त्री पर पहला पत्थर वह फेंके कि जिसने स्वयं कभी कोई पाप न किया है। दूसरा प्रसंग जब ईसा को सूली पर लटकाया गया तो ईसा ने कहा है गॉड इन्हें क्षमा कर देना, इन्हें पता नहीं है कि ये क्या कर रहे हैं। ये दोनों प्रसंग बाइबिल के पुराने संस्करणों में नहीं है जो बाद में ईसा की महिमा बताने के लिए जोड़े गए हैं। इस प्रकार बाइबिल में कुछ प्रसंग है जो नैतिकता से सम्बन्धित है, और कुछ है जो बाद में जोड़े गए हैं जो हमारे मन को आकृष्ट करते हैं। भले ही ईसाइयत इन पर एक दिन भी न चली हो। डॉ. राधाकृष्णन् कहते हैं—

'ईसाइयत के राजनीतिक चर्च ईसा के सन्देश के विरुद्ध एक खुला विद्रोह हैं। ईसा की शिक्षा, जैसा पाश्चात्य देश मानते हैं, वह भी जनता द्वारा आत्मसात् नहीं की गई है।

चाहे चर्च के अधिकारी अपने धुंधले प्रकाश वाले गिरजाघरों की रंगीन शीशे वाली खिड़कियों में ईसा को सजावट की वस्तु के रूप में प्रयोग करने के लिए राजी हैं किन्तु यदि चर्च के चेलों में से कोई ईसा की शिक्षा को गम्भीरतापूर्वक मानने लग जाए तथा क्रिया में उतारने लगे तो वे घबरा उठते हैं।

इमर्सन (अमरीका के दार्शनिक) ने कहा था कि प्रत्येक Stoic (उदासीन) उदासीन ही है, किन्तु ईसाई मत में ईसाई खोजना दुष्कर है। नित्शे (जर्मनी के दार्शनिक) ने कहा कि संसार भर में केवल एक ही ईसाई था जो कि क्रूस (सूली) पर ही मर गया।'

ये सारे प्रसंग Drawing Room में सजावट के लिए हैं। इनका जीवन में कोई स्थान नहीं है।

दूसरा इन प्रसंगों का कोई दार्शनिक आधार बाइबिल में नहीं है। इसलिए उनके जीवन में भी इसका कोई स्थान नहीं है। जर्मन दार्शनिक पाल डूयसन कहते

हैं इनका दार्शनिक आधार केवल वेदान्त के पास है। 'तत्त्वमसि' तुम वही हो जो परम मूल तत्त्व है। अतः इनका उत्तर वेदान्त में है बाइबिल में नहीं।

फिर ये प्रसंग स्वनिरोधी भी है।

एक तरफ कहना कि मनुष्य को God ने अपने अनुरूप बनाया है। ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर है। फिर मनुष्य को जन्म से पापी मानना, केवल पुरुष शरीर में ही आत्मा मानना नारी सहित अन्य सारी सृष्टि मनुष्य की सेवा, उपभोग, मनोरंजन के लिए है। फिर मानव समाज को दो भागों में विभक्त कर देना जो ईसाइयत को मानता है वह विश्वासी, जो नहीं मानता है वह हिडेन (Hidden) है, इस लोक में निर्मम वध का और परलोक में अनन्त नरक में अनन्तकाल तक जलने का अधिकारी है।

ईसाइयत में न प्रवृत्ति मार्ग को सम्यक् स्थान है क्योंकि काम उनके यहां शैतान है, विवाह भी न्यूनतम अपराध है। विवाहित स्त्री-पुरुष सहवास में अनेक विधि-निषेध हैं। और मां बनना भी अपराध है, गाली है। और न निवृत्ति का सम्यक् आधार है क्योंकि पादरी, विशप, सिस्टर सब Paid Servnet है और संत चर्च द्वारा प्रदत्त पदवी है जो किसी भी उपाय (साम-दाम-दण्ड-भेद) से अपने पथ का विस्तार करता है।

पर कुरान में तो ऐसा कोई प्रसंग भी नहीं जो हमारे मन को आकृष्ट करे। इसलामी इतिहास और दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् शंकर शरण कहते हैं, मुहम्मद की कोई भी जीवनी उठाएं, उसमें उनके द्वारा लड़े गए युद्धों का वर्णन सविस्तार मिलता है। वे युद्ध भी अधिकांश दूसरों पर हमले और छल-बल-हिंसा द्वारा अधिकार जमाने के हैं, दूसरे द्वारा हमले पर बचाव के लिए नहीं। युद्ध और विस्तार के इस दृश्य की तुलना में मुहम्मद को कहीं दार्शनिक प्रवचन देते या लोगों को अपने विचारों से कायल कर लेने का कोई उदाहरण शायद ही मिलता है। उनको अपना दावा तलवार के बल पर ही मनवाया, उसी तरह आज भी इसलामी नेता, शासक आलिम प्रवक्ता सभी केवल हिंसा और हिंसा की धमकी के सिवाय कोई उपाय नहीं जानता। सच्चा ज्ञान चाहे वह धार्मिक वैज्ञानिक या दार्शनिक हो, वह स्वतः अपने बल-बूते पर खड़ा होता है। जैसे—विज्ञान का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त, उपनिषद्, गीता का ज्ञान स्वयं अपनी उपयोगिता सिद्ध करता रहा है। उसे दुनिया में फैलाने, पढ़ाने के लिए किसी लाठी या बंदूक दिखाने की आवश्यकता कभी नहीं पड़ी। और वह उपनिषद् और गीता मानवता के साथ हजारों वर्षों से हैं। यह उसी की अपनी सामर्थ्य है।

पर हमारे सेकुलर, वामपंथी तथा मानवाधिकारवादियों एवं प्रगतिवादी कहलाने वाले राजनेताओं का इन सबसे कोई लेना-देना नहीं है। उन्हें तो किसी

भी प्रकार से शासन पर पकड़ बनी रहे इससे अधिक उनकी सोच नहीं है, चाहे देश पतन के गर्त में ही क्यों न पड़ा रहे। अब आवश्यक है कि प्रबुद्धजनों का एक आयोग गठित हो जो यह विचार करे ईसाई और इसलाम कोई पंथ, धर्म या दर्शन है क्या? क्या दर्शन, धर्म, पंथ की कसौटी पर उतरता है और इनका स्वयं के संदर्भ में और विश्व के संदर्भ में क्या अवदान है। भारत के सदर्भ में क्या अवदान है। किस आधार पर पिछले सौ सालों से इन्हें हिन्दू धर्म के समकक्ष रखा गया। संविधान सभा ने किस आधार पर धर्मान्तरण की जो छूट ब्रिटिश राज्य में उपलब्ध नहीं थी वह स्वतंत्र भारत में दोनों को प्राप्त हो गई। जो सुविधा इस देश के एकमात्र राष्ट्रीय बहुसंख्यक हिन्दू समाज को प्राप्त नहीं है यह इन्हें किस आधार पर प्राप्त हो गई। पिछले 72 सालों में इसका क्या नतीजा निकला इस पर खुलकर विचार होना चाहिए। तदनुसार आगे का निर्णय लिया जाना चाहिए व नीति-निर्धारित होनी चाहिए।

लंदन के प्रिन्सपलिटी पब्लिकेशन से अनवर शेख की एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें अनवर शेख ने कुरान और हदीस की आयतों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि इसलाम दर-अस्ल हजरत मुहम्मद साहब के अरब-साम्राज्य की स्थापना, उसकी सुरक्षा और उनके साम्राज्यवाद के विस्तार का वैचारिक हथकण्डा मात्र है, जो गैर-मुस्लिमों को काफिर घोषित कर उन्हें मुस्लिम बनाने के बाबत हिंसक जेहाद को उचित ही नहीं ठहराता बल्कि पुरस्कृत भी करता है। इसी तरह ईसा के 'प्रेम' के नाम पर कायम ईसाइयत भी रोमन साम्राज्य के विस्तार की व्यवस्था के सिवाय और कुछ नहीं है जो गैर-ईसाइयों के 'क्रूसेड' को जायज मानती है।

इस देश का राष्ट्रीय समाज हिन्दू है, इस देश का राष्ट्रीय धर्म, संस्कृति हिन्दू है। हिन्दू समाज समझता है मैं अपने घर में हूँ अतः सुरक्षित हूँ। उसके मन में अन्य मतावलम्बियों के प्रति कोई दुर्भाव है नहीं। इसलिये हिन्दुओं के घर में एक लाठी भी नहीं मिलेगी। अधिकांश हिन्दुओं को ज्ञात ही नहीं है उनके विरुद्ध क्या-क्या षड्यंत्र चल रहे हैं और जिनको थोड़ा-बहुत ज्ञान है वह अपने आपको असहाय-अकेला समझकर उदासीन है। और जो हिन्दू संगठन इनके षड्यंत्रों के प्रति सचेत और समाज को सावधान, जागरूक और संगठित करने का प्रयास कर रहे हैं उनको साम्प्रदायिक, तुच्छ मनोवृत्ति के, समाज में घृणा-विद्वेष, विघटन फैलाने वाले आदि कई विशेषण देकर उनके प्रति समाज में बुद्धिभेद निर्माण कर उनको समाज से अलग-थलग कर उनको गैर जिम्मेवार और महत्त्वहीन बना कर एक किनारे करने का प्रयास सतत चल रहा है। इसलिये बिना प्रतिरोध के ये सारे

षड्यंत्र चल रहे हैं। अंग्रेजों के काल से इनको पोषण एवं राजनीतिक संरक्षण प्राप्त हो रहा है।

इस प्रकार आ बैल मुझे मार वाली स्थिति हमने स्वयं खड़ी कर रखी है।

भारतीय राष्ट्र में बाधक सेमिटिक संत परम्परा

भारतीय संत परम्परा और सेमिटिक संत परम्परा में मूलभूत अंतर है। London Times ने गांधीजी को श्रद्धांजलि देते हुए कहा—

No country but India and no religion but Hinduism could have given birth to a Gandhi. यह बात केवल गांधीजी के प्रति ही नहीं भारत के सभी महापुरुषों के विषय में कह सकते हैं। भारतीय परम्परा में संतहृदय को नवनीत के समान कहा है, रामचरितमानस के अमर गायक गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'मुदमंगलमय संत समाजू' कहकर वंदना करते हुए उन्हें संसार में चलते-फिरते तीर्थ की हृदयहारी एवं भावगर्भित उपमा दी है।

किन्तु यह बात सेमिटिक परम्परा के संतों के विषय में नहीं कह सकते हैं। इनके यहाँ तो वे मानव समाज को दो भाग में बांटते हैं—विश्वासी और अविश्वासी। अविश्वासी काफिर और हिडेन हैं। काफिरों, हिडेनों से घृणा करने, उनके निर्मम वध को पुण्यकार्य, आदर्शकर्म और स्वर्गप्रद बताया गया है तथा अपने पंथ विस्तार के लिए जो भी उचित-अनुचित कार्य किया, जितना अधिक मानवता को रक्त से स्नान कराया, सर्वसंहार किया वे उनके आदर्श पुरुष हैं, संत हैं। जैसे फ्रैंसिस जेवियर ने गोवा में कैसा अमानुषिक अत्याचार किया। उसे पढ़ें तो रोंगटे खड़े हो जाएं, दिल दहल जाएगा। उसने घोषणा करवा दी कि सब जगह मन्दिर नष्ट कर दिये जाएं। सब मूर्तियाँ तोड़ दी जाएं। मैं नहीं जानता कि मन्दिरों के गिराये जाने और मूर्तियों के तोड़े जाने को प्रत्यक्ष देखकर जो मुझे प्रसन्नता होती है उसको शब्दों में कैसे वर्णन किया जा सकता है। एक जैसुइट की शपथ पढ़ें तो करुणा, मानवता से विश्वास उठ जायेगा। कोलम्बस ने अमेरीका में क्या अत्याचार नहीं किये? उस देश के मूलवासियों को समूल रूप से नष्ट कर दिया और वह फ्रैंसिस जेवियर, वह कोलम्बस उनके लिये महान् संत है, महान् पुरुष है, आदर्श पुरुष है, ईसाई संस्कृति के प्रतीक हैं।

इसके विपरीत भारतीय संस्कृति के प्रतीक भगवान बुद्ध जो त्याग और आत्मविजय के आदर्श हैं। इसकी तुलना में पश्चिम के गौरव का प्रतीक यूनानी राजा युलिसिस है जो द्वीप जीतने के अभियान में लड़ते-लड़ते मर गया। भारत में अशोक इसलिये महान् हुआ क्योंकि उसने राज्य सत्ता त्याग दी, भिक्षु बन गया।

किन्तु पश्चिम में सिकन्दर, सीजर और नेपोलियन को इसलिये महान् माना गया क्योंकि वे सत्ता और वैभव के भूखे थे। भारत की महानता दान में है, तपस्या में है, निःस्वार्थ सेवा में, ज्ञानदान में है, परदुःखकातरता में है और पश्चिम की बहादुरी लूट-खसोट में है, अपने पंथ विस्तार में है चाहे उसके लिये सारी मानव-जाति का संहार हो जाए।

यही स्थिति इसलाम की है। उनके आदर्श पुरुष हैं महमूद गजनवी जिसने कई बार सोमनाथ मन्दिर को लूटा, देव-प्रतिमाओं को तोड़ा, मानवता को अपमानित किया, स्त्री-पुरुषों को दास-दासी, रखेल बनाकर विदेशों में बेचा। उनके आदर्श पुरुष हैं मुहम्मद बिन कासिम जिसने सत्तरह वर्ष की आयु में सिंध पर विजय प्राप्त की। उनके आदर्श पुरुष हैं मुहम्मद गोरी जिसने तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत पर आक्रमण किया। उनके लिये औरंगजेब महान् मुगल सम्राट है उसे वे जिन्दा पीर मानते हैं। जिन्ना उनके यहाँ महान् पुरुष है जिसने देश को विभाजित किया।

इस प्रकार भारतीय संत-परम्परा और सेमिटिक संत-परम्परा जिसमें ईसाई, मुसलमान व पश्चिमी देश आते हैं, भारतीय आदर्श पुरुष और सेमिटिक आदर्श पुरुष में मूलभूत अंतर है। हमारे यहाँ जिनको असुर, दैत्य, राक्षस-पिशाच माना गया उनके यहाँ वे महान् पुरुष हैं, आदर्श पुरुष हैं, संत हैं। अतः सभी परम्पराओं के संत एक समान है इस भ्रम में न रहें। हमारे यहाँ भी रावण, कंस, हिरण्यकशिपु हुए हैं पर वे हमारे आदर्श पुरुष नहीं हैं, उन्हें विकृति माना गया और दण्ड के पात्र बने। पश्चिम में भी सुकरात, मुसलमानों में रहीम, दाराशिकोह, सूफ़ी संत सरमद, रसखान, जायसी, उशाउल्लाखान, मुहम्मद करीम छागला, भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम आदि के संतत्व, महानता का कारण भी उनका भारतीय विचार परम्परा के प्रभाव में आना और उसके अनुसार ढल जाना रहा। इसलिये वे मानवता के पुजारी और भारतभक्त बने।

आज भी मदरसे में जो शिक्षा दी जाती है, कोर्स चलते हैं, उनमें एक पाठ भी भारतीय महापुरुष पर नहीं है। गांधीजी मुसलमानों को मूल राष्ट्रीयधारा में लाने के लिए उनकी सारी अनुचित मांगें स्वीकारते रहे, अन्त में विभाजन को स्वीकार कर लिया और अपने प्राणों की आहुति देकर भी उनको अपना नहीं बना सके। पंडित नेहरूजी भी नहीं जो स्वयं को धर्म की दृष्टि से मुसलमान मानते थे। जो आजीवन उनके संरक्षक रहे वे भी उनके पाठ में नहीं हैं। सब मतांध मुसलमान ही उनके आदर्श पुरुष हैं। यही स्थिति परम्परागत ईसाइयों एवं पादरियों की है। अतः सभी परम्परा के महापुरुष एक से हैं इस भ्रम में न रहें।

भारतीय राष्ट्र जीवन के प्रवाह में बाधक कम्युनिस्ट धारा

साम्यवाद भी अपने ही घर में प्रकृति के विरुद्ध विचार होने के कारण भूसे के ढेर की तरह ढह गया। भौतिक आधार पर कभी समता स्थापित नहीं हो सकती। वह जब भी होगी तो आध्यात्मिक आधार पर, आत्मिक आधार पर, वैदान्तिक आधार पर ही होगी। सृष्टि ही विषमता में होती है और विषमता पर्यन्त ही रहती है। सभी का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास का स्तर भिन्न-भिन्न होता है। पर सबमें चेतन तत्त्व, आत्मतत्त्व एक ही है। अतः आत्मिक आधार पर ही समता स्थापित हो सकती है, भौतिक आधार पर कभी नहीं।

मार्क्स की मूलभूत तीन मान्यतायें हैं—सभी मनुष्य जन्म से स्वार्थी हैं, मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य (Sole Goal) अर्थ की प्राप्ति ही है और अर्थ के व्यापार में नैतिकता का दखल नहीं होना चाहिये। फिर मार्क्स यह कल्पना करता है—सभी अपनी योग्यता के अनुसार समाज को अपनी सेवा देंगे और आवश्यकतानुसार समाज से अपना योगक्षेम प्राप्त करेंगे।

यह भौतिक आधार पर कभी सम्भव नहीं है। क्योंकि भौतिकता में श्रेष्ठ जीवनमूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं बचता। यह चेतना के विस्तार से सम्भव होता है। हमारी चेतना का विस्तार अपने परिवार तक होता है। अतः परिवार में प्रत्येक सदस्य अपनी योग्यता के अनुसार परिवार को सेवा देता है और अपनी आवश्यकता के अनुसार उससे योगक्षेम प्राप्त करता है। ऐसे ही जिसकी चेतना का विस्तार समाज तक है तो वह समाज के प्रति, जिसकी चेतना का विस्तार राष्ट्र तक है, तो वह राष्ट्र के प्रति और जिसकी चेतना का विस्तार सारे चराचर जगत् के प्रति है तो उसके सारे क्रियाकलाप उसको केन्द्र करके होंगे। पर मार्क्स चेतन तत्त्व को, आत्मा या ईश्वर को मानता ही नहीं है। चेतना का विस्तार तो धर्म के आधार पर, चरित्र के आधार पर होता है इन सबका साम्यवादी दर्शन में कोई स्थान ही नहीं है। यदि कोई ईश्वर है तो बदमाश, उचक्के का नाम है। धर्म अफीम है। नैतिकता, सदाचार आदि पुराने जमाने के बाट हैं। न कर्मफल सिद्धान्त है न पुनर्जन्म। यही प्रथम और अन्तिम जन्म है। सज्जन और दुर्जन को शेष में मरकर मिट्टी में ही मिल जाना है तब क्यों स्वार्थ त्यागकर सदाचरण करें? यही कारण है कि यह धारा स्वपोषक, स्वजनपोषक और परपीड़क बनकर अपने घर में ही ढह गयी। आज कम्यूनिज्म का वैचारिक आधार प्रायः समाप्त हो गया है फिर भी भारत में टिके हुए हैं तो आतंक एवं शासन के बल पर ही। और अपने देश में प्रारम्भ से ही कम्युनिस्टों की दोगली भूमिका रही है। मार्क्स ने तो सेमिटिक परम्परा (ईसाई व इसलाम) के धर्म का खण्डन किया था। हिन्दू धर्म से तो वह परिचित ही

नहीं था। तब उसके खण्डन का तो प्रश्न ही नहीं उठता। पर कम्युनिस्टों की यहां भूमिका विपरीत रही है। अंग्रेजों के शासन काल में अंग्रेजों के साथ थे और भारत के स्वाधीनता सेनानी गांधी-सुभाष के घोर विरोधी रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर के कट्टर विरोधी है। कम्युनिस्टों से अपनी रक्षा की भावना से रामकृष्ण मिशन ने अपने को अल्पसंख्यक घोषित कर अल्पसंख्यकों को मिलने वाली सुविधा संरक्षण की मांग की थी, ताकि अपने मिशन की रक्षा कर सकें। वे प्रारम्भ से ही हिन्दू धर्म के कट्टर शत्रु और ईसाई-इसलाम के समर्थन में प्रारम्भ से आज तक खड़े हैं। मुस्लिम लीग की हर राष्ट्र विरोधी कार्यों के समर्थक और उसको वैचारिक आधार प्रदान करने वाले रहे हैं। भगवाकरण का अर्थ समझे बिना देश का भगवाकरण हो रहा है, इसका शोर मचाने वाले रहे हैं। समझ में नहीं आता भारत देश में भगवाकरण नहीं हो तो क्या होगा? भारत का भारतीयकरण हिन्दुस्तान का हिन्दूकरण नहीं तो क्या होगा? हिन्दू में भारत में उत्पन्न सभी मत-पंथ आते हैं। भारत को एक सनातन राष्ट्र न मानकर भारत में 18 भाषा के आधार पर 18 राष्ट्र मानते रहे हैं। प्रचारित करते रहे हैं। कुछ की विवेक की दृष्टि खुली रहती है। उन्हें भूल का एहसास हुआ स्वीकार किया तो उनको ही उन्होंने अपनी पार्टी से निष्कासित कर दिया। उदाहरणार्थ—

नवम्बर, 1985 में कम्युनिस्ट पार्टी के नेता और केरल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री ने मलयाली पत्रिका 'कैरियर' में एक लेख लिखकर राष्ट्रीयत्व के विषय में अपने संशोधित विचार रखे। अच्युत मेनन लिखते हैं—'जिस समय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई उस समय हमने कहा था कि भारत एक राष्ट्र कभी नहीं रहा। क्योंकि यहां राजनीतिक एकता नहीं थी। यह हिन्दुस्तान एक बहुराष्ट्रीय राज्य है। लेकिन अब ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा वह कहना गलत था। अब हमें यह अनुभव होने लगा है कि भारत एक राष्ट्र ही है। यहां राजनीतिक एकता भले न रही हो किन्तु सांस्कृतिक एकता थी। यहां अलग-अलग भाषायें थी, इसलिए अलग-अलग राष्ट्र थे ऐसा भी हमने सोचा। लेकिन अब हमारे खयाल में यह भी आ रहा है कि अलग-अलग भाषायें रहते हुए भी सांस्कृतिक एकता यहां रही है और अगर यह सांस्कृतिक एकता न होती तो क्या केरल से निकलकर आदि-शंकराचार्य सारे भारत में भ्रमण करते और हिन्दुस्तान के चार कोनों में चार मठों की स्थापना करते? यदि सांस्कृतिक एकता न होती तो चार मठों की स्थापना न की गयी होती। और अब हमारे खयाल में यह भी आ रहा है जिसको हम तीर्थक्षेत्र कहते हैं वे वास्तव में राष्ट्रीय एकात्मता के केन्द्र हैं। किसी भी हिन्दू सम्प्रदाय के तीर्थ में चले जायें वहां पूरे भारत के हिन्दू समाज का प्रतिनिधित्व मिलेगा। सांस्कृतिक एकता पर आधृत यहां के राष्ट्रीयत्व का आधार यदि कोई हो सकता है तो यह हिन्दू धर्म (फेथ) ही हो सकता है। हिन्दू धर्म की अपनी

कल्पना को स्पष्ट करते हुए कहा कि मैं हिन्दू मजहब की बात नहीं कर रहा हूं। मेरे हिन्दू धर्म में केवल वैदिक (लोग) ही नहीं जैन और बौद्ध, सिख, शैव, शाक्त, वैष्णव लिंगायत आदि भारत में उत्पन्न सभी मतों-पंथों के सभी लोग आते हैं।

आज रूस (सोवियत संघ) के 17 टुकड़े हो गये हैं पर जब गोर्बोचेव रूस के राष्ट्रपति थे, तब रूस विघटन की स्थिति में था कई टुकड़ों में विभक्त होने की आशंका थी, इसके लिये आन्दोलन चल रहे थे। इसलिए गोर्बोचेव बड़े उदास, निराश थे। उस समय इंग्लैण्ड की प्रधानमंत्री थैचर रूस की यात्रा पर आयी हुई थी। इस विषय पर चर्चा होने से थैचर ने हँसते हुए उनसे कहा, कि कमाल है ऐसे समय में आप अपने परममित्र भारत से सलाह क्यों नहीं लेते, जो इतने हजारों साल से इतने राज्य, इतनी जातियां, इतनी बोलियां, इतने सम्प्रदाय, इतनी विविधताओं के होते हुए भी उन सबको जोड़कर चल रहा है। स्पष्ट है इतनी विविधता के होते हुए भी भारत सांस्कृतिक दृष्टि से एक बना हुआ रहा है।

भारतीय राष्ट्र जीवन के प्रवाह में बाधक पश्चिम की उपभोक्तावादी संस्कृति

ईसाइयत से त्रस्त होकर पश्चिम में ईसाइयत की प्रतिक्रिया में धर्म और ईश्वर को तिरस्कृत कर भोगवादी, उपभोक्तावादी और बाजारवादी सभ्यता को जन्म दिया गया। जिससे जीवन के बहिर्मुखी विकास के लिये अहर्निश कर्म की प्रेरणा देकर भौतिक प्रगति का जैसा उद्‌भव हुआ जो शायद इससे पूर्व कभी सम्भव नहीं हुआ। पर यह प्रगति हुई अन्तर्जीवन को खोखला करके, समाज जीवन, परिवार जीवन को प्रायः नष्ट करके, अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं यथा अन्न, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश (ओजोन परत में छेद करके) को प्रदूषित कर अपने अस्तित्व के लिये संकट खड़ा कर लिया है। अतः यह विकास नहीं सर्वनाश की स्थिति है। यह कृत्य उस मूर्ख की तरह है जो वृक्ष की जिस डाल पर बैठा है उसे ही काटने में अपनी शेखी बघार रहा है। इस प्रकार यूरोपियन सभ्यता के अवसान की, पतन की घोषणा स्वयं उनके ही मनीषी दशकों से करते आ रहे हैं। सावधान करते आ रहे हैं। क्योंकि वह सुखों के शैल पर खड़ा जितना दुःखी विषण्ण है उतना पहले कभी नहीं था। आज वह भीड़ में खड़ा होकर अपने को अकेला पा रहा है। न वह किसी का है और न कोई उसका है। आज वह शरीर से जितना निकट है—मन से, हृदय से उतना ही दूर है। इतिहासविद् डॉ. सतीशचन्द्र मित्तल अमरीकी परिवारों का सच क्या है इस विषय में लिखते हैं कि पिछले दिनों मेरी बहिन अमरीका गई। मैंने उनसे दूरभाष पर पूछा अमरीका कैसा लगा। उन्होंने कहा, स्वर्ग जैसा। मैंने पूछा तो क्या आप वहीं रहना

चाहेंगी? इस पर उन्होंने तपाक से उत्तर दिया, बिल्कुल नहीं, मैं शीघ्र ही भारत लौट रही हूं। विस्मित होकर मैंने पुनः पूछा, क्यों, क्या बात है? इस पर उन्होंने उत्तर दिया—'यहां न रिश्तों की कोई कद्र है और न किसी भावना का मूल्य। बस है तो सिर्फ पैसा, पैसा और पैसा और सेक्स, सेक्स और सेक्स। पाञ्चजन्य, 12 सितम्बर 2010, पृष्ठ 14।

21वीं सदी में दुनिया का सबसे विकसित, सबसे ताकतवर और सबसे सम्पन्न देश अमेरीका जहां धरती के तीन प्रतिशत मानव निवास करते हैं, वहां एक शोध हुआ। उस शोध के अनुसार अमेरीका में रहने वाली 3 प्रतिशत जनसंख्या धरती के 23 प्रतिशत संसाधनों का उपयोग करती है और 27 प्रतिशत प्रदूषण उत्पन्न करती है।

विश्व के अनेक देशों में सेनायें रहती है, पुलिस रहती है उनके पास अस्त्र-शस्त्र रहते हैं, लेकिन अमेरीका एक ऐसा देश है जहां हर व्यक्ति के पास शस्त्र है। दुनिया में सर्वाधिक शस्त्र अमेरीका के नागरिकों के पास है, क्योंकि वहां हर एक व्यक्ति को हरेक से खतरा है। पत्नी पिस्तौल पास रख सोती है ताकि पति उसके साथ बदसलूकी न करे। जब बच्चा स्कूल जाता है तो उसे पहला पाठ पढ़ाया जाता है कि जब तुम्हारे माता-पिता तुम्हें प्रताड़ित करें तो यह पुलिस का नम्बर है तुम फोन करना। चाइल्ड राइट्स की समस्या वहां से आती है, क्योंकि अधिकार के हन्ता कौन हैं? बच्चों के अधिकार के हन्ता हैं उसके माता-पिता। वहां माता-पिता पालक नहीं दुश्मन हैं। पति-पत्नी में एकात्मता नहीं है। अमेरीका के समाज-शास्त्री परेशान हैं कि वहां आत्महत्या और किशोर अपराध बढ़ रहे हैं। ऐसा कोई साल नहीं जाता जब 5-10 विद्यालयों में विद्यार्थी आपस में पिस्तौल न चलाते हों। सहनशीलता नाम की चीज नहीं है। यह स्थिति है अमेरीका की और उनकी जीवन पद्धति की?

यही कम-बेसी हाल पूरे यूरोपीय देशों का है।

स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने पश्चिम को यह चेतावनी दी थी—जिसे तुम सभ्यता समझते हो वह सच्ची सभ्यता नहीं है। पश्चिमी-सभ्यता में जो भी खेल-तमाशे हैं वह सब ऊपर ही ऊपर सतह पर हैं, अन्दर तो केवल पीड़ा ही पीड़ा, व्यथा ही व्यथा, हाय-हाय भरी हुई है। पर भारत में ऊपर तो दैन्य, पीड़ा, कराह है अंग्रेजों की मार के कारण, पर अन्दर में निश्चिंतता, आमोद-प्रमोद है। क्योंकि उसे आत्मा की अमरता और कर्म के सिद्धान्त में विश्वास है। कुछ राष्ट्रीय भूलों के कारण अंग्रेजों की मार से यह दुर्दशा हुई है, उन भूलों का परिमार्जन कर पुनः उठ खड़े होंगे और विश्वगुरु के पद को पुनः हासिल कर लेंगे। पर पश्चिम के

निरी भौतिकता पर आधारित होने के कारण स्वामीजी कहते हैं—पश्चिमी सभ्यता ज्वालामुखी पर्वत स्थित, होंठों पर लिपिस्टिक लगाये कृत्रिम मुसकान बिखेर रही है। अगर पचास वर्ष के अन्दर आध्यात्मिक आधार को नहीं स्वीकारा तो वह कभी भी चिथड़े-चिथड़े हो बिखर जायेगी। 2 मई, 1933 को यरवदा जेल से जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र में गांधी ने लिखा, यदि हिन्दुत्व ने मुझे निराश किया तो मेरा जीवन एक बोझ बन जायेगा। हिन्दुत्व को मुझ से छीन लो तो मेरे पास कुछ भी नहीं रह जाता। यदि में इसलाम और ईसाई धर्म को प्यार करता हूं तो अपने हिन्दुत्व के कारण ही। ऋषि अरविन्द भी कहते हैं सनातन वैदिक हिन्दू धर्म ही इस देश की राष्ट्रीयता है। सनातन धर्म के उत्थान-पतन से भारत देश का उत्थान-पतन जुड़ा है। जिस विषय में स्वामी विवेकानन्दजी, गांधीजी, अरविन्द घोष आदि ने सावधान किया वहीं पं. नेहरू ने भारत में ही भारत के आध्यात्मिक आधार को हिन्दुत्व को, सनातन वैदिक हिन्दू धर्म को तिलांजलि देकर पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण प्रारम्भ करने का दौर प्रारम्भ हुआ। गांधीजी ने अपने हिन्द स्वराज्य में जिसे राक्षसी सभ्यता, पैशाचिक सभ्यता कहा। स्वामी रामतीर्थ ने पश्चिमी सभ्यता को गोबर में लिपटी हुई मिठाई कहा, उसे प्रश्रय मिलने लगा। पश्चिमी सभ्यता अर्थ और काम की अनन्त भूख को जगा देती है। इसी कारण आज देश में भ्रष्टाचार, घूसखोरी, महँगाई-मिलावट आदि हैं। क्योंकि इसमें श्रेष्ठ जीवनमूल्यों के लिए कोई स्थान ही नहीं बचता। यही कारण है कि धर्म के प्रति, सत्य के प्रति, कर्म के प्रति, सिद्धान्त के प्रति, पुनर्जन्म के सिद्धान्त के प्रति, पूर्वजों के आदर्श के प्रति वह आस्था शेष नहीं है। मैक्समूलर ने एक पुस्तक लिखी है—भारत से हम क्या सीख सकते हैं। India : what can it teach us उसमें हिन्दुओं के चरित्र पर एक अध्याय है, जिसमें वह कहता हैं—प्रायः हिन्दू सत्यपरायण, धर्मवीर, ईमानदार है। वह गंगा की ओर हाथ बढ़ाकर झूठ नहीं बोल सकता, मन्दिर की ओर हाथ बढ़ाकर झूठ नहीं बोल सकता चाहे उसके प्राणों की, सारी धन सम्पदा की बलि चढ़ जाए। मैक्समूलर कहता है यह एक अत्यन्त आश्चर्यजनक बात है कि चाहे यूनानी हो या चीनी, ईरानी हो या अरब का, किसी भी विदेशी यात्री ने भारत के बारे में कुछ भी लिखा हो हमें उसमें भारत के राष्ट्रीय चरित्र के एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में भारतवासियों की सत्यनिष्ठा एवं न्यायप्रियता की चर्चा सर्वप्रथम सर्वत्र समान रूप से मिलती है। यही विदेशी यात्री अन्य देशों के विषय में ऐसा मन्तव्य व्यक्त नहीं करते। वह कहता है—फ्रांस की यात्रा पर गये किसी अंग्रेज लेखक के यात्रा विवरण को पढ़ें तो हमें उसमें फ्रांसीसियों की ईमानदारी और सत्यनिष्ठा आदि की चर्चा शायद ही कहीं मिल पायेगी। इसी प्रकार इंग्लैंड का भ्रमण करने वाले किसी फ्रांसीसी के यात्रा विवरण में अंग्रेजों में इन गुणों की विद्यमानता का नाममात्र के लिए भी उल्लेख कठिन

है। पर भारत की सच्चरित्रता के विषय में सब एकमत हैं। पर आज देश में क्या स्थिति हो गयी है? सत्य बोलने वाले, ईमानदारी बरतने वाले आज मूर्ख समझे जाते हैं। उन्हें ही सिर झुकाकर चलना पड़ता है। आज भले ही लोग मन्दिर जाते हों, तीर्थ यात्रा करते हों, तीर्थों में भीड़ भी बढ़ती जा रही है पूजा-पाठ भी करते हों पर आज वह आस्था शेष नहीं है। अतः भ्रष्टाचार भी कर रहे हैं, बेईमानी भी कर रहे हैं। घूसखोरी, मिलावट भी साथ-साथ कर रहे हैं। स्पष्ट है हिन्दू अध्यात्म को बाद देकर इसलाम एवं ईसाइयत के विकृत अध्यात्म को मान्यता देकर उन्हें सरकारी एवं संवैधानिक सुविधा, संरक्षण देने के दुष्परिणाम आज के अलगाववाद, आतंकवाद, आगजनी आदि हैं। स्वामी विवेकानन्दजी ने सावधान किया था अपने आध्यात्मिक आधार को छोड़ने का दुष्परिणाम तीन पीढ़ी जाते न जाते विनाश को प्राप्त होओगे। आज स्वामीजी का कथन सत्य सिद्ध हो रहा है। स्वाधीनता के 72वें वर्ष में प्रवेश करने जा रहे हैं। आज देश स्वाभिमान के साथ खड़े होने के स्थान पर सब प्रकार से बिखर रहा है, जर्जर हो रहा है क्योंकि इस देश में उत्पन्न सभी मत-पंथ को जोड़ने वाला सूत्र हिन्दुत्व, हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति थी जिसकी उपेक्षा का यह दुष्परिणाम है। इसलिए आज हर छोटे से छोटा देश भारत को आंख दिखा रहा है, चुनौती दे रहा है। आज देश पर मैकाले पुत्रों का शासन है जिनमें अच्छाइयां किसी की नहीं—बुराइयां, सबकी हैं। भारतीयता से, राष्ट्रीयता से एवं गौरवबोध से, स्वाभिमान से शून्य तीनों अन्तरराष्ट्रीय षड्यंत्रों (इसलाम-ईसाइयत एवं कम्यूनिज्म) के समर्थक, राष्ट्रीय शक्तियों के विरोधी चाहे वह अन्ना हजारे हो, रामदेव या श्रृंगेरी मठ के शंकराचार्य हों, या संघ परिवार हो या अन्य कोई हो, सबके विरोधी बनकर भारत में, ऐसे कानून व व्यवस्थाएं थोप रहे हैं जिनसे भारत की 80-90 प्रतिशत जनता का कोई लेना-देना नहीं है, उसे नहीं स्वीकारती तो भी वे भारत को इंग्लैंड, अमेरीका बनाने में लगे हुए हैं। पर भारत की 80-90 प्रतिशत जनता भारत को भारत बनाये रखना चाहती है। आज पश्चिम स्वयं लड़खड़ा रहा है, कम्यूनिज्म अपने ही घर में ढह गया है, ईसाइयत को पश्चिम छोड़ रहा है, इसलाम में अभी भी इतना उन्माद और कट्टरता है आत्ममंथन की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के पूर्व मौत के फतवे जारी हो जाते हैं, अमेरीका स्वयं लड़खड़ा रहा है। आज पश्चिम अपने जीवनमूल्यों पर पुनः विचार कर रहा है, और मार्गदर्शन के लिए भारत की ओर देख रहा है। और बड़ी विचित्र विडम्बना की स्थिति है कि हमारा शासन तंत्र हम पर पश्चिमी विचारों को थोपता जा रहा है। ये सब नेहरूजी की नीति के दुष्परिणाम हैं। अगर रूस मृत्यूपरांत भी स्टॉलिन को दंडित कर सकता है तो भारत कम से कम नेहरू के समय हुई गलतियों का, कार्यों का पुनर्मूल्यांकन भी नहीं कर सकता क्या? आज संविधान में जो उलटी गंगा बहाकर अल्पसंख्यक

के नाम पर ईसाई और मुसलमान को विशेष सुविधा व संरक्षण दिया गया, तब से उनका अन्तहीन मांगों का सिलसिला चल पड़ा है। और वे अपराध पर अपराध किये जा रहे हैं। इसके बावजूद हमारे देश के पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह कह रहे हैं कि भारत के संसाधनों पर पहला हक मुसलमानों का है। सरकार की इस लचर नीति तथा संविधान की सुविधाओं का लाभ उठाकर देश में आगजनी, अलगाववाद, आतंक को प्रश्रय मिल रहा है। जिन सुविधाओं से देश का मूल राष्ट्रीय हिन्दू समाज वंचित है वह उन्हें मिल रही है और उससे और अधिक आग आतंक व अलगाव फैला रहे हैं। तो प्रश्न है देश का संविधान देश की रक्षा और देश के सुसंचालन के लिए होता है या देश की हत्या, देश में अराजकता फैलाने के लिए? इसके लिए देश के प्रबुद्ध वर्ग को आगे आना चाहिए। नेहरूजी के कार्यों एवं संविधान की पुनः समीक्षा होनी चाहिए। हम पुनः भारतीयता को अपनाकर ही देश की समस्याओं का समाधान कर सकते हैं और स्वाभिमान के साथ देश को खड़ा करके विश्व में अपनी योग्य भूमिका निभा सकते हैं।

भारत भूमि को विश्वेश्वर ने एक क्यारी के रूप में चुना। पौधा लगाने के लिए पहले क्यारी चाहिए। इसी प्रकार भगवान् ने सत्य के लिए भारत को एक नर्सरी बनाया। 'यहां मैं धर्म का आरोपण करके इसको पनपने दूंगा। फिर यहां से लेकर उठा-उठाकर उस धर्म के पौधे को सारे संसार में लगा दूंगा।'

—परमपूज्य श्री स्वामी ईश्वरानन्दगिरिजी

भारतीय की विश्व दृष्टि

हम सब मानव ईश्वर की संतान होने से सारा विश्व एक परिवार है और सभी को अपनी विशेषता कायम रखते हुए जीने का अधिकार है। अतः स्वयं जीयो और अन्यों को जीने दो। इसी दृष्टि से वसुधैव कुटुम्बकम् का विचार है। 'स्व-देशो भुवनत्रयम्।' परिवार बड़ा होने पर विभिन्न भौगोलिक खण्डों में वास करते हैं, तब शरीर से दूर होते हैं पर मन से जुड़े होते हैं। भारत के अग्रजन्मा, बड़ा भ्राता होने से, '**सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा**' होने से वेद भगवान् का आदेश है—कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'। बड़े भाई का दायित्व है कि छोटे भाई को शिक्षित करे। संस्कारित कर उसे श्रेष्ठ बनावे, सज्जन बनावे। और मनु भगवान् ने विश्ववासियों को आदेश दिया कि अपने-अपने कर्तव्य की, चरित्र की शिक्षा भारत से ग्रहण करें। यह पौराणिक तथ्य नहीं ऐतिहासिक तथ्य है। प्रारम्भ से लेकर आज तक विश्वमनीषा के लिए भारत आकर्षण का केन्द्र रहा है। चाहे मिस्र की सभ्यता ले लेवें, चाहे यूनान के पाइथोगोरस, सुकरात, प्लेटो, अरस्तू को लेवें, चाहे स्वयं ईसा मसीह को लेवें। चाहे स्वयं पैगम्बर मुहम्मद साहब व उनके चाचा अब्दुल हिक्म अलबेरुनी को, फैजी को, दाराशिकोह, अन्तिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर, चाहे मैक्समूलर, कांट, शोपेनहावर को लेवें या स्पेन्सर, बर्गसां, एडिंगटन, श्रोडिंजर, आइंस्टाइन, एक्सिस केरल, फ्रिट्जोफ केपरा, विल डूरेन्ट, आर्नोल्ड टायनबी, क्रिस्टोफर इशरहुड, मार्क ट्वूली आदि हों।

भारत ने इतिहास के सभी चरणों में धर्म-दर्शन, सभ्यता-संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल का दान, अपनी श्रेष्ठताओं का दान बिना किसी देश की स्वाधीनता को छीने, बिना किसी के अर्थ पर डाका डाले, बिना किसी देश की मां-बहन के शील पर प्रहार किए अपने निष्कलंक चरित्र, निर्मल ज्ञान के द्वारा निःस्वार्थ भाव से, विश्वमंगल की भावना से बिना अपना अहित किये हुए दिया है। बिना कुछ छीने हुए उसे सत् संस्कार, सत् विचार, अपनी श्रेष्ठताओं का दान देकर उसका प्रसार किया है। केवल स्वयं सज्जन, सद्पुरुष बनने से काम नहीं चलेगा, अन्यों को भी सज्जन बनाओ अन्यथा वह आपकी सज्जनता में बाधा उपस्थित करेगा।

इसलिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर कहते हैं—भारतीय संस्कृति एक पूर्ण प्रफुलित पुष्प के समान है जिसके पराग के कण तथा बीज अनुकूल पवनों द्वारा संसार के भिन्न-भिन्न देशों-प्रदेशों में ले जाए गए तथा इस प्रकार संसार के विभिन्न क्षेत्रों में संस्कृति के पौधे आरोपित होकर लहलहाने लगे। फलस्वरूप सारा भूमण्डल भारतीय संस्कृति की सुगन्धि से सुवासित हो उठा।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार भारतीय संस्कृति का प्रसार ओस की बूंद की तरह रहा है जो रात्रि की निस्तब्धता में चुपचाप कब हृदय को सिंचित कर जाती है किसी को पता भी नहीं चलता।

अतः विदेशों में भारतीय सांस्कृतिक साम्राज्य पहले फैला और कहीं-कहीं आर्थिक, व्यापारिक एवं राजनीतिक विस्तार भी हुआ। पूर्व में फिजी द्वीप समूह, उत्तर में साइबेरिया, पश्चिम में मैक्सिको, बोलिविया, पेरू एवं ग्वाटेमाला तक तथा दक्षिण में आस्ट्रिक द्वीप समूह तक भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ। डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी का कहना था आज भी विश्व के इतिहास से चार परदे हटा दिये जाएं—ईसा से पूर्व यूरोप, इसलाम से पूर्व अरब, कोलम्बस से पूर्व अमेरीका और फिलीप से पूर्व फिलिपाइन—तो आप स्पष्ट रूप से देखेंगे कि सारे विश्व में हिन्दू संस्कृति फैली हुई थी। ईसाइयत ने अमेरीका, यूरोप, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि में ईसाइयत के पहले के समाजों को पेगन, या प्रकृति पूजक, पिछड़ा, असभ्य कह कर नष्ट कर दिया था, कुचल दिया था। नामशेष कर दिया था। अब उनमें पुनः जागृति आ रही है, वे अपने मूल को खोज रहे हैं। ऐसे में विश्व के चालीस देशों की 75 प्राचीन संस्कृतियों का एक मंच बना है। इनका कार्यालय अमेरीका में सांस्कृतिक अध्ययन का अन्तरराष्ट्रीय केन्द्र (International centre for cultural studies) स्थित है। उसे प्राचीन परम्पराओं और संस्कृतियों की अग्रजों की विश्व परिषद् संक्षिप्त में विश्व अग्रज परिषद् (वर्ल्ड एल्डर्स कान्फ्रेंस) नाम दिया है। अग्रज परिषद् के छह अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन हो चुके हैं—जो इस प्रकार हैं—

प्रथम सम्मेलन (2003) 4 से 9 फरवरी, मुम्बई

द्वितीय सम्मेलन (2006) 5 से 10 फरवरी, जयपुर

तृतीय सम्मेलन (2009) 31 जनवरी से 5 फरवरी, नागपुर

चतुर्थ सम्मेलन (2012) 4 से 7 मार्च, हरिद्वार

पंचम् सम्मेलन (2015) 1 से 4 फरवरी, मैसूर

षष्ठ सम्मेलन (2018) 2 से 4 फरवरी, मुम्बई

इन सब संस्कृतियों में परस्पर सामंजस्य था। परस्पर पूरक थी, सहअस्तित्व था। जीओ और जीने दो का भाव था। ये सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानती थी, धरती को मां मानती थी। प्रकृति-पूजक थी। पर्यावरण के साथ सुसंगत थे जिसमें देव विग्रह पुरुष भी था, स्त्री का भी था। स्पष्टतः ये सब संस्कृतियां हिन्दू धर्म और संस्कृति से प्रभावित थी और उससे मिलती-जुलती थी और आज भी हैं।

यह इतिहास का तथ्य है कि इसलाम सर्वत्र तलवार के बल पर थोपा गया है। फलतः प्रारम्भ से ही उबरने का प्रयास भी देखते हैं। स्वयं अरब में प्रोफेट मुहम्मद के देहांत के बाद अधिकांश अरबों ने तत्काल इसलाम को छोड़ दिया था। इसके लिए उन्होंने इसलामी सेनाओं से लड़ाइयां लड़ी और हरा भी दिया। इससे इतना तो स्पष्ट है कि अरबों ने खुद प्रोफेट के सामने भी इसलाम को स्वेच्छा से स्वीकार नहीं किया था। न मुहम्मद के जीवनकाल में, न ही बाद में। लेकिन इसलामी सेनाओं से जीतने के बाद वे सावधान नहीं रहे, और इसलिए पुनः उन सेनाओं ने संगठित होकर हमला किया और उन्हें स्थाई रूप से बांधने में सफल रहे।

परिवर्तन का दूसरा दौर टर्की में देखते हैं। प्रगतिशील नेता कमाल पाशा ने 1919-1920 ई. में टर्की में जनक्रान्ति के द्वारा इसलाम को अपने देश की प्रकृति के अनुसार ढाला। कुरान का तुर्की भाषा में अनुवाद कराया, गैर मुस्लिमों के प्रति विभेद मूलक वचन हटा दिये गए हैं। सर्व पंथों को सम्मान दिया गया। खलीफा पद को समाप्त कर दिया। कमाल पाशा वहां के राष्ट्रपति चुने गए। आजादी के बाद उन्होंने अपने नाम के पाशा को हटाकर अतातुर्क जोड़ा। अरबी का स्थान तुर्की ने ले लिया। उपासना पद्धति इसलामी बनी रही। इस प्रकार टर्की ने अपनी संस्कृति के प्रतीकों को पुनः स्थापित करके अपनी संस्कृति का पुनरुद्धार किया। स्मरण रहे संस्कृतियां बनाई नहीं जाती है, वे स्वतः प्रवहमान होती है। वहां संशोधन का क्रम निरन्तर जारी है। रजब तैयब इरदुगान (2003 से 2014 तक) आप प्रधानमंत्री थे। आप गीता भक्त हैं। गीता का नित्य पारायण करते हैं। पत्रकार पूछते हैं—आप गीता पढ़ते हैं क्या? हां, पढ़ता हूं, उन्होंने कहा—यह कुफ्र की दुकान है। उन्होंने कहा—It gives me light consolation and solution how to solve and takle the problem. उसने कहा, इसलाम से निकाल दिए जाएंगे। उन्होंने कहा, मुल्ला-मौलवियों ने मुझे इसलाम नहीं दिया। खुदा ने दिया है, ये कौन होते हैं मुझे इसलाम से निकाल देंगे। पर मैं गीता रोज पढ़ता हूं। यह मुझे जीवन की समस्याओं का समाधान देती है और इसलिए उन्होंने गीता के कुछ श्लोकों को To devlop and control the morality. आज तुर्की के अन्दर वह उनकी शिक्षा का हिस्सा है।

इतिहास के रंगमच पर भारत तथा ईरान के सांस्कृतिक एवं जातिगत सम्बन्ध उतने ही पुराने हैं जितना पुराना आर्य जाति का इतिहास अथवा विश्व इतिहास का

प्रथम अध्याय हो सकता है। ईरान के शाह के ये शब्द बड़े युक्ति-युक्त हैं, 'हमारे दोनों देशों की संस्कृतियाँ महान् और मूल रूप से एक रहीं और समय की हजारों साल की दौड़ में हम निरन्तर साथ रहे।'

स्वयं ईरान देश का नाम ही आर्यानः (अर्थात् आर्याणां देशः) था। यही आर्यान नाम धीरे-धीरे ईरान उच्चारण किया जाने लगा। स्वयं ईरान सरकार ने अपनी प्रकाशित पुस्तक Six Centuries of Glory के प्रथम पृष्ठ पर स्वीकार किया है—'ईरान का ऐतिहासिक व्याकरण के अनुसार, यौगिक अर्थ है 'आर्यों का देश।' ईरान के शाह ने विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का जैसा स्वागत किया उसके लिए देवता भी तरसते होंगे।

आधुनिक नवजागरण के बाद जब यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान और उद्योग की उन्नति दुनिया में फैलने लगी तो ईरान में भी अपने मूल सांस्कृतिक, दार्शनिक स्रोतों को जानने समझने की उत्सुकता बढ़ी। यूरोप में ग्रीक चिंतन के प्रति नया आदर जगा और प्लेटो, अरस्तू आदि ईसा-पूर्व के महान् चिंतकों के प्रति गहरी रुचि पैदा हुई। उसी तरह, ईरानियों ने भी नोट किया कि इसलाम-पूर्व की फारसी सभ्यता महान् थी। ईरानी लोगों में जरथुस्त के धर्म-दर्शन के प्रति उत्सुकता बढ़ी, जो इसलाम से पहले फारस में था। इसी दर्शन को भारत के पारसी लोग मानते हैं, जो फारस पर इसलामी आक्रमण के बाद भाग कर भारत आए थे और उस धर्म को बचा कर रखा।

ईरान के राष्ट्रपति सैयद मुहम्मद खातमी ने अपने सार्वजनिक भाषणों तक में खुला संकेत दिया था कि इसलाम कोई सर्वकालिक विचारधारा, सभ्यता या व्यवस्था नहीं है। वे सन् 1982 से 1992 तक ईरान के संस्कृति मंत्री और 1997 से 2005 तक वहां के राष्ट्रपति रहे थे।

उक्त तमाम बातें बिल्कुल साफ-साफ दरसाती हैं कि ईरानी उच्च और बौद्धिक वर्ग किन प्रश्नों से जूझ रहा है। वह इसलामी कायदे-कानूनों, रिवाजों को न तो खुदाई मानता है, न सार्वभौमिक, न सर्वकालिक। खातमी ने एक बार भी न तो कुरान, न प्रोफेट को याद किया। न किसी बात के लिए उनकी अनुशंसा, उदाहरण, उद्धरण ढूंढ़ने की जरूरत महसूस की। बल्कि खातमी ने मूल इसलामी शिक्षाओं को केवल तात्कालिक समाज के लिए उपयुक्त कह कर उसे स्पष्टतः मनुष्य निर्मित, न कि अल्लाह-प्रदत्त माना। इन सभी बातों का अर्थ यही है कि खातमी मूल इसलामी किताब, प्रोफेट, उनके बनाए नियम आदि के प्रति आदर रखने के बावजूद आज की समस्याओं के लिए उनमें कोई समाधान, उपाय या मार्ग नहीं देखते। यह स्पष्टतः इसलाम को अतीत हो गई चीज मानने का ही दूसरा नाम है।

इन सभी संकेतों से लगता है कि ईरानी लोगों में प्राचीन फारस के जरथुस्त-दर्शन के प्रति यह उत्सुकता और जागरूकता निरंतर बढ़ने वाली है। ध्यातव्य है कि यह दर्शन कई हिन्दू मान्यताओं और वैदिक विचारों से मिलता-जुलता है। इस बढ़ती जागरूकता के फलस्वरूप अंततः इसलाम-पूर्व की ईरानी चेतना का इस्लामेतर ईरान की भावना से आ मिलने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता।

अर्थात्, भविष्य में एक ऐसे ईरान का विकास, जहां सभी धर्मों के समानता से रहने का सहज वातावरण बने।

कहने को अभी ईरान में जरूर कट्टरपंथी वर्चस्व चल रहा है, लेकिन पंद्रह वर्ष पहले वहां के पांचवें राष्ट्रपति सैयद मुहम्मद खातमी ने भी खुल कर इसलाम में सुधार और सर्वधर्म आदर की जरूरत जताई थी। उन्होंने सार्वजनिक व्याख्यानों में यहां तक संकेत किया था कि इसलामी मान्यताएं समय की कसौटी पर सही नहीं उतरी हैं और हमें नए विचारों के प्रति प्रयोगशील होना चाहिए।

सऊदी अरब के नए शासक प्रिंस सलमान ने भी इसलामी एकांतिकता, कट्टरपंथ छोड़कर सऊदी अरब को सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सभी तरह के धर्मावलंबियों के प्रति आदर के मार्ग पर लाने का निश्चय किया है। ऐसा होने पर दुनिया में बड़ी युगांतरकामी संभावना छिपी है।

श्री नरेन्द्र मोदी प्रधानमंत्री बनने के बाद जब अगस्त, 2015 में सऊदी अरब गए तो वहां के राष्ट्राध्यक्ष 32 वर्षीय प्रिंस मुहम्मद बिन सलमान ने कहा— आपका स्वागत है। दुनिया की सबसे बड़ी मस्जिद यहां है उतनी ही भूमि आपको (भारत को) मन्दिर निर्माण के लिए देने की घोषणा की। 11 फरवरी 2018 मन्दिर के लिए शिला पूजन (शिलान्यास समारोह) हुआ। उन्होंने 17 सितम्बर 2016 से 25 सितम्बर 2016 तक नौ दिवसीय राम कथा का आयोजन मोरारी बापू द्वारा करवाया। स्वयं बेगम साहिबा रामचरितमानस की पोथी को भारतीय परम्परा के अनुसार मस्तक पर धारण कर व्यास पीठ पर स्थापित करती हैं। प्रिंस मुहम्मद बिन सलमान के नेतृत्व में धार्मिक एवं आर्थिक सुधार का एक महत्त्वाकांक्षी कार्य जारी है। संयुक्त अरब अमीरात की राजधानी अबू धाबी में 20 अप्रैल, 2019 को पहले हिन्दू मन्दिर की नींव रखी गई। यह मन्दिर स्वामी नारायण सम्प्रदाय बनवा रहा है। संस्था के प्रमुख महंत स्वामी महाराज ने मन्दिर के गर्भ गृह की नींव गुलाबी ईंटों से रखी। ये ईंटें राजस्थान से भेजी गई थी। इस अवसर पर भारत के प्रधानमंत्री का संदेश भी पढ़ा गया। सं.अ.अ. में भारतीय राजदूत नवदीप सूरि ने संदेश पढ़ते हुए कहा कि यह मन्दिर वसुधैवकुटुम्बकम् अर्थात् पूरी दुनिया एक

परिवार है, के वैदिक मूल्य का प्रतीक है। 14 एकड़ जमीन पर बन रहे मन्दिर में 'आर्ट गैलरी, पुस्तकालय तथा व्यायामशाला भी बनेंगे।

यह मन्दिर दिल्ली के अक्षर धाम मन्दिर जैसा ही होगा। वर्ष 2020 के अंत तक यह मन्दिर बन जायेगा।

इण्डोनेशिया दूसरा बड़ा मुस्लिम देश है। इण्डोनेशिया के मुसलमान राम को अपना राष्ट्रीय महापुरुष National Hero मानते हैं। वे बड़ी श्रद्धा के साथ रामलीला खेलते हैं। इस पर पाकिस्तान के राजदूत ने कहा कि कुरान में रामलीला का आदेश कहां है? इस पर इंडोनेशिया के राजदूत ने कहा—We have not changed our history. We cannot change our blood.

भारत के साथ राजनयिक सम्बन्धों के 70 साल पूरे होने पर इंडोनेशिया ने रामायण पर एक टिकट जारी किया, जिसमें माता सीता को बचाने के लिए जटायु को बहादुरी से लड़ते दिखाया गया है। इसे इंडोनेशिया के शिल्पकार पद्मश्री बपक न्योमन नौरता ने डिजाइन किया है। कार्यक्रम में सन् 1949 से 2019 तक भारत और इंडोनेशिया के सम्बन्धों से जुड़े ऐतिहासिक पलों को तसवीर के माध्यम से दिखाया गया। इन विशेष डाक टिकटों को जकार्ता के फिलाटेली संग्रहालय में प्रदर्शन के लिए रखा जाएगा।

साभार : पाञ्चजन्य 5 मई 2019 (पृष्ठ 4)

मुस्लिम देश मिस्र (Egypt) में उदारवादी परिवर्तन देखने को मिल रहा है। गैर मुस्लिम देशों में भी इसलाम पंथियों को विशेष सुविधा, आरक्षण की मांग को अस्वीकारा जा रहा है। रूस के राष्ट्रपति श्री ब्लादिमिर पुतिन ने 4 फरवरी, 2013 को रूस की संसद मतलब ड्यूमा में दिए भाषण में कहा कि रूस में रूसी रहते हैं, कोई अल्पसंख्यक समुदाय यदि रूस में रहना चाहता है, रूस में काम करने की इच्छा है और रूस का अन्न भक्षण करता है, तो उसे रूसियों के समान ही बोलना होगा और रूस के कानून का आदर करना होगा। उन्हें शरीयत का कानून पसंद है, तो हमारी उनसे विनती है कि वे जहां ये कानून लागू है, उस स्थान पर जाएं। रूस को अल्पसंख्यकों की आवश्यकता नहीं। अल्पसंख्यक को रूस की आवश्यकता है। हम उन्हें कोई विशेषाधिकार नहीं देंगे, या उनकी इच्छा के अनुरूप कानून नहीं बनाएंगे, फिर वे भेदभाव के नाम से कितना ही शोर क्यों न मचायें। पुतिन के इस वक्तव्य का सभी राजनीतिक दलों के नेताओं ने तालियों के साथ स्वागत किया।

रूस के समान ही चीन, जापान, आस्ट्रेलिया, अमेरीका, फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड आदि में भी मुसलमानों पर समान आचार संहिता लागू है। सबको इन-इन देशों की संस्कृति का, भाषा व रीति-रिवाजों, परम्पराओं, राष्ट्रगान, राष्ट्रध्वज

आदि का सम्मान करना आवश्यक है, अपवाद की स्थिति है तो वह केवल भारत की है। वह भी बंटवारे एवं स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी!

सन् 2006 का 28 सितम्बर का दिन! चीन की सरकार ने शांगडांग प्रांत के क्यूफू ग्राम में एक भव्य समारोह का आयोजन किया था। चीन के महान् दार्शनिक संत कन्फ्यूशियस का वह 2,557वां जन्मदिन था। उस उपलक्ष्य में उनके जन्म ग्राम में यह समारोह हो रहा था। चीन में सर्वत्र एक माह तक उनके विचारों पर आधारित सांस्कृतिक कार्यक्रम मनाये गये। सरकार ने 'चायना कन्फ्यूशियस फाउंडेशन' स्थापित किया। पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया। सरकार ने यह भी जाहिर किया कि प्राथमिक स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों तक की कक्षाओं में संत के विचार पढ़ाये जायेंगे। प्रमुख विश्वविद्यालयों में अध्ययन केन्द्र चलाये जायेंगे। वहां संत के नैतिक और आध्यात्मिक विचारों के साथ ही उनकी 'डेटांग' संकल्पना ('वसुधैव कुटुंबकम्' का विचार) का विशेष अध्ययन किया जायेगा।

चीन में यह वैचारिक परिवर्तन क्यों आया? 'पॉवर कम्स आउट ऑफ दी बॅरल ऑफ ए गन'—माओ-त्से-तुंग के इस तत्त्व-विचार पर चलने वाले चीन ने करीब सौ साल के बाद अपने महान् संत को याद किया, वह क्यों? इन सौ साल के चीन के अपने अनुभव ने ही उससे यह करवाया। चीन का अनुभव रहा कि 'मॉडर्न प्रोगेसिव कम्युनिस्ट स्टेट' बनाने के प्रयास में बाजार की संस्कृति पनपी और लोग—खासतौर से युवा पीढ़ी—सुखासीन और व्यसनाधीन हुए। उनमें ऐशोआराम बढ़ा, मौज-मस्ती का शौक बढ़ा। फिर इस शौक को पूरा करने के लिए पैसे कमाने के आसान तरीके खोजे गए। नतीजा? भ्रष्टाचार बढ़ा और वृत्ति हिंसक बनी। आर्थिक प्रगति का जो सपना देखा गया था, उसमें रुकावट आ गयी। प्रगति की राह बंद हो जाने का डर छा गया। चीन के ध्यान में आया कि इस हालात के जड़मूल में नैतिक अधःपतन ही है। इसलिए खोयी हुई नैतिक संस्कृति को पुनर्जीवित करने का चीन ने तय किया है।

विकास के नाम पर आधुनिकीकरण की होड़ में आध्यात्मिक और नैतिक मूल्य समाज में तेजी से घट रहे हैं। दुनिया के अन्य देश भी यह महसूस कर रहे हैं। अमेरीका के राष्ट्रपति बराक ओबामा ने चिंता जाहिर की है कि वहां के युवा व्यसनाधीन और ऐशआरामी बन रहे हैं। वे मेहनत करना नहीं चाहते। गरीबी बढ़ रही है। इसलिए अमेरीका को अपनी शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन करना होगा, ताकि युवा श्रमनिष्ठ और अधिक प्रतिभाशाली बनें। इस प्रकार कुल दुनिया में आज 'आर्मिंग यूथ्स विथ व्हॅल्यूज् ॲण्ड मिशन' का नवजागरण अभियान प्रारम्भ हो गया है।

हम देश को विकासशील से विकसित देशों की श्रेणी में खड़ा करने का स्वप्न देखते हैं। यहां पर बहुत से लोग यह कहते हैं कि फिर हमें विकास के अलावा सभी मुद्दों को त्याग देना चाहिए। ऐसा करके वे सभी अपनी अज्ञानता ही प्रदर्शित करते हैं। पहली बात तो यह है कि विश्व का कोई भी देश अपनी संस्कृति पर गर्व किए बिना विकसित नहीं हो सकता। चीन और अमेरीका का उदाहरण देख लिया। अतः अपनी विरासत पर गर्व किए बिना देश के लोगों में आत्मविश्वास नहीं पैदा होता, जो जापान को 'जापान' बनाता है।

विकास बिना सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के नहीं आ सकता। जिस प्रकार शरीर बिना आत्मा के निरर्थक है, उसी प्रकार संस्कृति रहित देश निष्प्राण हो जाता है। संस्कृति से हीन होने पर जीवनमूल्यों में गिरावट आती है। जब मूल्यों का ह्रास होता है तो मनुष्य पतन की ओर अग्रसर होता है।

संस्कृति का ही जादू है भारत सब प्रकार की दुर्भाग्य की ठोकरें खाकर भी चिरंजीवी बना हुआ है। और संस्कृति के अभाव में यूनान, मिस्र और रोम विश्व के नक्शे से मिट गये छोटे-छोटे आघातों से। इसलिए भारत ने सदा संस्कृति को और विश्व के साथ सांस्कृतिक सम्बन्धों को महत्त्व दिया।

राजनीतिक या कूटनीतिक हस्तमिलाप तो थोड़ा स्वार्थ के बदलते ही राजनीतिक या कूटनीतिक घूंसे में बदल जाता है, पर सांस्कृतिक सम्बन्ध दो हृदयों का बंधन है जिसे काल के थपेड़े भी तोड़ नहीं सकते। यही कारण है कि जापान का प्रधानमंत्री भारत की धूलि को अपने मस्तक पर चढ़ाता है। यदि इंडोनेशिया का राष्ट्रपति अपने देश में सर्वप्रथम 'अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन' करता है, यदि तिब्बत के दलाईलामा अपना राज्य व धन खोकर भी बौद्ध तीर्थों में शान्ति पाते हैं, यदि मारीशस का प्रधानमंत्री सर्वप्रथम 'हिन्दी भाषा सम्मेलन' अपने देश में आयोजित करता है, यदि 7 हजार मील दूर पूर्व का फिजी और 12 हजार मील दूर पश्चिम का सूरीनाम रामचरितमानस, गीता को धर्मशास्त्र तथा हिन्दी को राजभाषा का सम्मान देता है और संसार के 85 देशों के हिन्दू आज भी कुम्भ मेले पर गंगा स्नान को तरसते हैं तो यह सांस्कृतिक सम्बन्धों का ही चमत्कार है।

भारत राष्ट्र की विशेषता और उसका भवितव्य

विश्व में दो सौ देश हैं। इसमें केवल भारत के लिये ही माता शब्द प्रयोग होता है और अन्य ग्रहों में केवल पृथ्वी को माता कहा गया है, क्यों? सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, रवि को माता क्यों नहीं कहा गया। पृथ्वी को ही माता क्यों कहा गया है।

वर्ष प्रतिपदा सृष्टि का प्रारम्भ। आज से सृष्टि प्रारम्भ हुई। भारत देव निर्मित, ईश्वर निर्मित देश है, अतः इसकी सीमा भी प्राकृतिक है–उत्तर में हिमालय और तीन ओर समुद्र। उत्तर में हिमालय दक्षिण में समुद्र इसके मध्य में रहने वाले लोग भारतीय कहलाते हैं।

हिमालय के 'हि' और इन्दु सरोवर के 'न्दु' से हिन्दू शब्द बना है। इसी से हिन्दुस्तान शब्द बना है।

हमारा पहला प्रकटन मनु-शतरूपा है। आदि (प्रथम) राजधानी अयोध्या है और प्रथम तीर्थ काशी है।

भारत देश स्वयं ईश्वर निर्मित होने से, भगवान् ने इस देश को वचन दिया है–जब-जब धर्म की ग्लानि होगी मैं धर्म की रक्षा करने आऊंगा। ग्लानि के स्वरूप के अनुसार कभी महापुरुषों को कभी अंशावतार मत्स्य, कूर्म, वाराह, वामन। पूर्णावतार दो ही हैं जिनमें स्वयं भगवान आते हैं—राम और कृष्ण के रूप में। एक त्रेता युग में और एक द्वापर युग में। अवतार अन्य ग्रहों में न होकर पृथ्वी (ग्रह) में हुआ। और पृथ्वी लोक में भी केवल भारत में हुआ। दुनिया के दो सौ देशों में केवल भारत में होने के कारण यह भूमि भारतमाता कहलायी। अन्य ग्रहों में नहीं होने के कारण पृथ्वी पर ही भगवान का अवतार हुआ, धरती भगवान की गोद बनी इसलिये माता कहलायी। धरती में भी भारत भगवान की गोद बना इसलिये दुनिया में केवल भारत भूमि ही माता कहलायी अन्य देश नहीं।

हम इस देश के मूलवासी हैं। हम भारतीय हैं, हिन्दू हैं। पर जो हिन्दू 10-20 या 50-100 साल से भारत छोड़कर, इंग्लैण्ड, अमेरिका में बस गये, वहाँ की नागरिकता मिल गयी। नयी पीढ़ी का जन्म वहीं हुआ पर वे हिन्दू अमरीकन

कहलायेंगे, केवल अमरीकन नहीं। उनकी मातृभूमि तो भारत है, अमेरिका के नागरिक हैं। अतः विश्व के जिस देश में भी बस गए वह हिन्दू ही कहलायेगा। भारत के मुसलमान जिस किसी भी मुस्लिम देश में बस जाये, नागरिकता प्राप्त हो जाए पर वह भारतीय मुसलमान कहलाएगा।

घर में मालिक भी रहता है, भाड़ेदार भी रहता है? रहने की दृष्टि से सब एक हैं। पर मिल्कीयत की दृष्टि से सब एक नहीं है। मिल्कीयत की दृष्टि से सबको एक मानेंगे तो जो वास्तविक मालिक है उसको हानि उठानी पड़ेगी।

अतः गांधीजी का यह प्रयोग कि हम हिन्दू नहीं हिन्दुस्तानी हैं यह प्रयोग गलत है–इसी आधार पर उन्होंने ध्वज को, हिन्दी भाषा को, इतिहास को, महापुरुषों को प्रदूषित किया। हिन्दी भाषा के स्थान पर हिन्दुस्तानी जो हिन्दी, उर्दू का मिला-जुला रूप है, स्वीकारना अपने मूल रूप को नष्ट करना है। अपने मूल को सुरक्षित रखते हुए किसी को आत्मसात् करने का प्रयास तो किया जा सकता है। पर, अपने को बिगाड़ने का अर्थ अपनी नींव को कमजोर करना है। अपनी ही नींव को ध्वस्त करना है।

हमारा ध्वज भगवा होना चाहिये तिरंगा नहीं।

हमारी भाषा हिन्दी होनी चाहिये हिन्दुस्तानी नहीं।

हमारे महापुरुष राम-कृष्ण, राणा प्रताप, शिवाजी है–अकबर और औरंगजेब नहीं।

राणा प्रताप के साथ हाकिम खां, शिवाजी के साथ मदारी, नाना साहेब के साथ बहादुर शाह जफर, रामप्रसाद बिस्मिल के साथ अशफाक उल्ला खां ने इसे हिन्दू राष्ट्र मानकर ही स्वाधीनता संग्राम में साथ-साथ अपनी आहुति दी।

हमें धरती पर आने के लिये माता की कोख और धरती मां की गोद चाहिये। अतः बेटी को मारो मत। बेटी उत्पन्न होगी तो हमें बहिन मिलेगी। युवा होने पर किसी की पत्नी बनेगी। तब वह मां बनेगी और हमें धरती पर आने का अवसर मिलेगा।

पश्चिम में निर्बन्ध काम-भोग की छूट है। वहां दो ही रिश्ते हैं–पति-पत्नी। वहां किसी के साथ गमन अपराध नहीं मान्य है।

भारत में मर्यादित भोग है। रिश्तों की भरमार है। हम बहन, चाची, मौसी, कन्या किसी के साथ रहते हैं कोई दुष्कर्म नहीं होता है। जीवन का आनन्द-मंगल के साथ इनके साथ (Enjoy से, आनन्द से) रहते हैं पर कोई दुष्कर्म नहीं होता है। क्योंकि भाव है यह भाभी है, मामी है, बहन है। सब भाव का खेल है।

हिन्दू और भारतीय शब्द पर्यायवाची हैं—भारतीय और हिन्दू पर्यायवाची शब्द हैं। भारतीय के साथ हिन्दू नहीं लगता है। मैं भारतीय हिन्दू हूँ कोई नहीं

कहता। पर मुसलमान, ईसाई के साथ भारतीय मुसलमान, भारतीय ईसाई लगता है। स्पष्ट है हिन्दू और भारतीय पर्यायवाची है।

1947 में भारत को आजादी मिली। भारत की आजादी से ही विश्व के 117 देशों की आजादी जुड़ी हुई है। भारत की स्वाधीनता से इन देशों को प्रेरणा मिली और उन्होंने भी आजादी हासिल की। हिन्दू राष्ट्र भारत को भी आजादी मिली और मुस्लिम राष्ट्रों को भी। भारत ने लोकतंत्र को स्वीकारा। भारत का इतिहास एवं धर्म ग्रन्थों ने लोकतंत्र को आदर्श माना जबकि इस्लामिक धर्म-ग्रन्थ और उनका इतिहास तानाशाही का प्रबल समर्थक है। इस मूलभूत अन्तर को ध्यान में रखना चाहिए।

पश्चिमी यूरोपीय देशों का इतिहास दो सौ वर्षों का है। इनकी जो विकास यात्रा, राष्ट्रीय उद्भव की जो यात्रा है वह दो सौ-तीन सौ वर्षों की यात्रा है। इसलिये इसके पीछे वे जाना नहीं चाहते। यूनान का भी इतिहास आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व का है। इनके यहां सृष्टि का इतिहास अधिक से अधिक छः हजार वर्ष का है। और, विकास का इतिहास तो मात्र दो सौ-तीन सौ वर्षों का है इसलिये वे पीछे झांकना नहीं चाहते।

पर हमारा इतिहास तो करोड़ों वर्षों का है। दो अरब वर्षों का है। हमारी कालगणना दो अरब वर्ष की है। और प्रारम्भ से ही हम विकसित राष्ट्र के रूप में रहे हैं। क्योंकि यह स्वाभाविक ईश्वर प्रदत्त प्राकृतिक राष्ट्र है, इसकी सीमा भी प्राकृतिक है। अतः हमारा अतीत पर गौरव होना स्वाभाविक है।

हमारा राष्ट्र अजन्मा ईश्वर प्रदत्त है देवनिर्मित होने से, प्राकृतिक होने से शाश्वत सनातन राष्ट्र है। इसका कभी नाश नहीं हो सकता। यही कारण है सभी प्रकार के झंझावातों को झेलकर भी जीवित है। हिन्दू वैदिक आर्य सनातन धर्म भी अजन्मा है। तो इसकी मृत्यु भी नहीं, यह अमर है। जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है। इसलिये ईसाई-इसलाम की मृत्यु निश्चित है। पाकिस्तान का जन्म 14 अगस्त 1947 में हुआ, बांग्ला देश का 1972-1973 में हुआ अतः इनकी मृत्यु भी निश्चित है। स्वयं मुहम्मद साहब ने इसलाम की आयु 1,400 वर्ष बतायी है। इसलिये इसलाम अब बोनस पर, आक्सीजन पर जी रहा है। अब समाप्ति का समय आ गया है। और ईसाइयत तो समाप्ति पर है।

यहां के मुसलमानों के पुरखे–गोरी, गजनवी और बाबर नहीं राम-कृष्ण, गौतम हैं। वापस आने पर अमरता मिलेगी, प्यार मिलेगा। भय और लोभ से आप गये थे अतः वापस अपने मूल में आ जाओ।

हमारे यहां मल ढोने की परम्परा नहीं रही। प्राचीन एवं मध्य भारत में पाखाने नहीं बनते थे। मोहेनजोदड़ो आदि की पुरातात्विक खुदाई में स्नानागार तो मिले हैं

संडास नहीं मिले है। क्योंकि शौच के लिये खेत में, जंगलों में जाते थे। घर में शौचालय बनाने की परम्परा तो इसलाम की देन है। क्योंकि ये अपनी पत्नी को घर से बाहर नहीं जाने देते थे। किसी की नजर नहीं पड़नी चाहिये। इसलिये इसलाम स्वीकार करो नहीं तो मल ढोओ। पराजित राजपूतों ने इसलाम नहीं स्वीकारा मल ढोना स्वीकारा। देश का बंटवारा भी हो गया और मुसलमान भी रह गये। इन्हें भारत से प्रेम था इसलिये नहीं रह गये। वे मात्र पाकिस्तान से संतुष्ट नहीं थे। वे शेष भारत को भी इसलाम में परिवर्तित करना चाहते थे। दारूल इसलाम बनाने के लिये रह गये। कुछ अति उत्साही मुसलमान पाकिस्तान जाना चाहते थे तब उन्हें मौलाना अब्दुल कलाम ने रोका यह कह कर कि आपको कुछ समय में यहां बैठे-बैठे ही पाकिस्तान मिल जायेगा। यहां से जाकर यहां के मुसलमानों की स्थिति कमजोर न करें।

अंग्रेजों का साम्राज्य 70 देशों में था। इसलिए कहा जाता था उनके राज्य में सूर्यास्त नहीं होता। पर द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् उनकी आर्थिक स्थिति जर्जर हो गई थी। और आज भी इंग्लैण्ड और अमेरीका, दोनों ने जो विदेशी और घरेलू ऋण ले रखा है उस दृष्टि से दिवालिया होने की स्थिति है। उसके बाद भी दोनों देश सारे विश्व में अपनी धाक जमाये हुए हैं, उनकी दादागिरी चल रही है। अंग्रेजों ने अपनी भाषा हम पर लाद दी जो हिन्दी, संस्कृत की तुलना में बहुत अधिक दुर्बल और अवैज्ञानिक है। उन्होंने अपना अवैज्ञानिक संवत् भी हम पर लाद दिया, अपनी सारी व्यवस्थाओं को हम पर थोप दिया, अपनी बौद्धिक धूर्तता के बल पर बौद्धिक छल के बल पर। सारी समस्याओं की जड़ स्वयं यूरोप है, पश्चिम है और उसने U.N.O. बनाया और अन्य देशों को इसका सदस्य बना रहा है और Vito Power अपने पास रख लिया। वर्ल्ड बैंक आदि अनेक संस्थाएं बनाकर हमें इसका सदस्य बना रहा है। उनके राजनीतिक व आर्थिक शोषण एवं स्वार्थ के अखाड़े बने हुए हैं। इनके माध्यम से सारी दुनिया पर अपनी दादागरी और धौंस बनाये हुए हैं। पर अब यह ज्यादा समय चलने वाला नहीं है। पश्चिम का पतन और भारत का उदय होना अब अवश्यंभावी है। भारत के पास ही वह दृष्टि, वह भावना, वह कर्तृत्व व्यक्तित्व है जो सारे मनुष्यों को एक ही ईश्वर की संतान मानता है। अतः सारे विश्व को परिवार के रूप में देखता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य प्रत्येक की हित चिन्ता करता है। इस प्रकार पूरे परिवार में सुख, शान्ति, मैत्री का भाव रहता है। अतः भारत के उदय से ही सारे विश्व में सुख, शान्ति एवं मैत्री का साम्राज्य स्थापित होगा।

1945 से इंग्लैण्ड का व 1990 से अमेरीका का पतन प्रारम्भ हो चुका है। और पचास वर्षों में ये दोनों देश धराशायी हो जाएंगे। पचास वर्षों तक भारत को इनका सामना करना पड़ेगा। इन्हें मृत्यु का भय सता रहा है। भारत धीरे-धीरे उठ रहा है।

भारत विश्व की एकमात्र आशा का केन्द्र

पश्चिम ने भौतिक क्षेत्र में, विज्ञान के क्षेत्र में जो भी जय यात्रा की है वह ईसाइयत से पिण्ड छुड़ाकर ही की है। जब तक पश्चिम ईसाइयत के चंगुल में था तब तक ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से अंधकार का युग, अज्ञान का युग माना जाता है और अरब के माध्यम से भारतीय एवं यूनानी ज्ञान-विज्ञान से परिचित होकर ही तथा एशिया की लूट से उनकी जय यात्रा, विकास यात्रा सम्भव हो पाती है। पर स्वस्थ दृष्टि के अभाव में यह जय यात्रा सर्वनाश की यात्रा, मानव समाज के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगता जा रहा है। पश्चिम की मात्र 300 वर्ष की इस विकास यात्रा ने मनुष्य के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया जबकि भारत के हजारों-लाखों वर्ष की उत्थान-पतन की यात्रा में ऐसा प्रश्नचिह्न कभी नहीं खड़ा हुआ।

विकृत-पैशाचिक अध्यात्मवाद (सेमिटिक परम्परा उसमें विशेषकर इसलाम और ईसाइयत) साम्यवाद, ईसाइयत की प्रतिक्रिया में उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति मानव को सुख-शांति, स्वस्थ दृष्टि देने में असमर्थ सिद्ध हुई है। फलतः पश्चिम के श्रेष्ठ मनीषियों की दृष्टि भारत पर है। जो पूरे विश्व का विचार करते हैं। पश्चिम में भी दोनों वर्ग हैं। एक तो अपने हित में भारत सहित सारी दुनिया का शोषण करना चाहता है, भारत को अपना बाजार बनाये रखना चाहता है। इसके लिये भारत को दुर्बल बनाये रखने के लिये नानाविध षड्यंत्रों में लिप्त है। दूसरे वहां के श्रेष्ठ मनीषी जो सारी दुनिया की हित चिंता करते हैं उनकी दृष्टि भारत पर है। नवीन भारत पर नहीं जो कि स्वयं पथच्युत है, भग्न और भ्रष्ट है। उनकी दृष्टि प्राचीन भारत पर, वैदिक भारत पर है। वैदान्तिक, औपनिषदिक, गीतोक्त भारत पर है जो अमर भारत है, शाश्वत भारत है। सारे विश्व को राह दिखा सकता है।

सबसे पहले पश्चिम पर मंडरा रहे संकट को स्वामी विवेकानन्दजी ने पहचाना जब अधिकांश भारतीय लेखक भी पश्चिम में पूर्ण स्वर्णिम युग की आशा लगाए हुए थे। विवेकानन्द भी अपनी पहली यात्रा में अमेरीका और यूरोप के शौर्य, संगठन और मिथ्या लोकतंत्र के भुलावे में आ गए थे। पर दूसरी यात्रा में पश्चिमी सभ्यता की निरर्थकता समझ में आ गई थी। विवेकानन्द पहले व्यक्तियों में से थे

जिन्होंने अनुभव किया कि यूरोपीय सभ्यता के ऊपर संकट की छाया चुपचाप घिरी आ रही है। बाहर से वह सभ्यता अपनी सफलता के चरम शिखर पर थी। उस समय के अधिकांश भारतीय लेखकों ने पश्चिम में समृद्धि, आशावाद, विज्ञान और तकनीकी प्रगति के अतिरिक्त कुछ नहीं देखा था। क्योंकि अर्थ, काम और शक्ति के सिद्धान्त ने मनुष्य को बहिर्मुखी बनाकर अहर्निश कर्म करने की प्रेरणा दी जिसके फलस्वरूप अपार भौतिक वैभव प्राप्त हुआ जो किसी भी युग में इसके पूर्व शायद सम्भव नहीं हुआ था। पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने के बजाय पृथ्वी को ही स्वर्ग में परिणत कर दिया और यह आशा की जाने लगी कि अब एक पूर्ण जगत् का आगमन होने ही वाला है। दुःख, दैन्य, अज्ञानता की सदा के लिए समाप्ति होने ही वाली है। प्रगति की शताब्दी की इस मनोदशा को प्रकट करते हुए ब्राऊनिंग ने गाया था—

ईश्वर अपने स्वर्ग में है और
संसार में सब कुछ ठीक ठाक है।

जब अधिकांश भारतीय लेखक भी पश्चिम में पूर्ण स्वर्णिम युग की आशा लगाए हुए थे उस समय विवेकानन्द ने पश्चिमी सभ्यता की दुर्दशा को दूरदृष्टि से देखकर भौतिकता के गढ़ में ही घुसकर यह सावधान वाणी दी तो उस समय कुछ लोगों को विवेकानन्द के विचार अमंगल सूचक लगे थे। उन्होंने घोषणा की कि पश्चिम की जीवन यात्रा एक अट्टहास है। किन्तु उसके पीछे रुदन है और रुदन में ही इसकी परिसमाप्ति होगी।

पश्चिमी राष्ट्र ज्वालामुखी पर्वत पर टिका हुआ है जो अपने होंठों में लिपिस्टिक लगाए हुए कृत्रिम मुसकान बिखेर रहा है। जिसके अन्दर रुदन ही रुदन, हाय-हाय ही, व्यथा ही व्यथा, पीड़ा ही पीड़ा भरी है। जबकि भारत में (गरीबी के मार से अंग्रेजों के कारण) ऊपर में तो रुदन है, पर भीतर में आमोद-प्रमोद समाया हुआ है। क्योंकि उसे आत्मा की अमरता, कर्म के सिद्धान्त, पुनर्जन्म में विश्वास है। पिछली कुछ राष्ट्रीय भूलों के कारण अंग्रेजों की मार पड़ रही है। पुनः अपने कर्मों को सुधार कर, अंग्रेजों को भगा कर पूर्व की भांति विश्वविजयी बन जायेंगे। यदि 50 वर्षों के अन्दर आध्यात्मिक आधार को नहीं अपनाया तो यह सभ्यता फटकर चिथड़े-चिथड़े में बिखर जाएगी। कुछ वर्ष बाद रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी उस आसन्न संकट को अनुभव किया था जिसे उन्होंने अपनी एक कविता में अभिव्यक्त भी किया। स्वामी रामतीर्थ को भी पश्चिमी सभ्यता की व्यर्थता का बोध हो गया था—

सभ्यता एक उद्देश्यहीन सपना भर
ऊपर से ऊंचे नाम-रूप पर क्या भीतर?
तुम में अपना ही ज्ञान रहा नहीं बाकी
तुम शैल शिखर पर.....

स्वामीजी पश्चिमी सभ्यता की चमक-दमक की तुलना गोबर में लिपटी हुई मिठाई से करते हैं। ऊपर से तो मिठाई दिखती है पर अन्दर में गोबर-मल भरा हुआ है।

गांधीजी ने भी पाश्चात्य यंत्रकौशल पर आधारित भौतिकवादी सभ्यता के विषय में निराशाजनक भाव ही 'हिन्द स्वराज्य' में व्यक्त किए। इसे पैशाचिक सभ्यता कहा है। क्योंकि यह अनन्त अर्थ और काम की भूख को जगा देती है।

प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ने पर बहुत से यूरोपीय बुद्धिजीवियों ने इन मनीषियों की आशंकाओं को याद किया था। पाश्चात्य मनीषियों का भौतिकता पर आधारित सभ्यता एवं जीवन-दर्शन पर प्रथम मोहभंग सन् 1914-18 के विश्वयुद्ध से हुआ। किन्तु प्रथम विश्वयुद्ध वाला संकट युद्ध समाप्त हो जाने पर भी दूर नहीं हुआ वरन् संकटों की एक मालिका के रूप में कभी बोल्शेविक क्रान्ति, कभी फासिस्ट एवं नात्सी प्रभाव एवं लोभ, असहिष्णुता तथा हिंसा के बढ़ते हुए ज्वार के रूप में व्यक्त हुआ और अन्ततोगत्वा सन् 1939-1945 के द्वितीय विश्वयुद्ध के अभूतपूर्व संकट के रूप में फूट पड़ा। इसी महायुद्ध के अन्त में स्वयं सभी आविष्कारों को खाने वाला दावानल रूप अणु बम नागाशाकी और हिरोशिमा में प्रयुक्त हुआ। इन विश्वयुद्धों एवं संकटों ने पाश्चात्य विचारकों में आत्मशोध एवं आत्मपरीक्षण का एक आन्दोलन ही चला दिया। हमारी सभ्यता में कौन-सी बुराई आ गई। गम्भीर आलोचना एवं टीकाएं होने लगी। फिर कम्यूनिज्म के अवसान ने आत्मशोध की प्रक्रिया को और भी तीव्र कर दिया।

तीन दशक पूर्व जब पूरी दुनिया दो खेमों में बंटी हुई थी—साम्यवाद और पूंजीवाद में। ये दोनों धारायें निरी भौतिकता पर आधारित एकांगीयता को लिए थी। परन्तु परिपूर्ण दर्शन की तरह प्रचारित की जा रही थी। अतः एक दिन उनका किला ढहना ही था। और भारत आत्म विस्मृत उसका अपना कोई तंत्र नहीं था, पहले रूस के प्रभाव में बाद में अमेरीका के फलतः दोनों और के झटके खाने थे सो खाए भी। साम्यवाद भूसे के ढेर की तरह अपने ही घर में ढह गया। 1992 में दोनों जर्मनी अलगाव की दीवार गिराकर एक हो रहे थे उसी समय भारत में भी 6 दिसम्बर 1992 में जिस बाबर ने श्रीराम जन्मभूमि मन्दिर के ढांचे को कलंकित करवाया था, वह गिरा और अपने देश में सांस्कृतिक उत्थान का दौर प्रारम्भ होता है। इस समय पूंजीवाद भी लड़खड़ा रहा था क्योंकि वह भी कोई पूर्ण दर्शन, सुख-शान्ति, समाधान नहीं दे पाया। फलतः साम्यवाद और पूंजीवाद से मुक्ति पाने के लिए एकमात्र विकल्प के रूप में भारत की सनातन वैदिक, औपनषदिक, वेदान्तोक्त, गीतोक्त धारा पर, शोध और तीव्र हो गए हैं। पूरे विश्व के स्तर पर विश्व के

साधक-साधिका हिन्दू धर्म, कला, ध्यान, यज्ञ, कीर्तन, आयुर्वेद, मंत्र अभ्यास, गीता अनुवाद, संगीत, सहज-सरल साधना से जीवन की समस्याओं का समाधान और सुख तथा शान्ति का अनुभव करते हैं। क्योंकि भारत के दर्शन में पूर्णता है, समग्रता है। संघर्षों को, टकराहटों को टालकर परस्पर में सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता है। सब प्रकार की विविधताओं में सामंजस्य स्थापित करके सबको साथ लेकर चलने की क्षमता है।

पश्चिम में मार्क्स, फ्रायड, नित्शे, बर्ट्रेंड रसेल, फयूरबाख आदि ने जो धर्म की आलोचना की है वह सेमिटिक परम्परा की, की है। वे हिन्दू धर्म-दर्शन-संस्कृति से परिचित ही नहीं थे। सेमिटिक परम्परा में जो Personal God की अवधारणा है, गांधीजी के शब्दों में King like God की अवधारणा जो भीषण रूप से राग-द्वेष, ईर्ष्या से ग्रस्त है, जिसकी मुंहलगी जातियां, देश, उम्मा, चर्च हैं और उनके प्रति वचनबद्धता है, समझौता है। जिनकी स्वयं की रुचि नृशंसतापरायण है। ऐसा ईश्वर हमारा आदर्श कैसे हो सकता है? यह तो खण्डन योग्य ही है। ऐसे ईश्वर के स्वरूप के कारण उन्हें धर्म के नाम से ही, ईश्वर के नाम से ही अरुचि हो गई और हिन्दुओं में जो धर्म की, ईश्वर की अवधारणा थी उससे वे परिचित नहीं थे। पर जैसे-जैसे उनका हिन्दू धर्म, हिन्दू ईश्वर, हिन्दू सभ्यता-संस्कृति से परिचय हुआ, वे इसके प्रशंसक बने।

हां यह अवश्य है काल के प्रवाह से हिन्दू धर्म-दर्शन और संस्कृति में कुछ गर्द अवश्य आ गई है। समाज जीवन में कुछ अंधविश्वास, गलत रूढ़ियां अवश्य जुड़ गयी हैं, पर ये सब ऊपर-ऊपर ही हैं। अन्दर में मूल सुरक्षित है। अतः गर्द हटाते ही उसका मूल स्वरूप प्रकाश में आ जायेगा। जिससे न केवल भारत वरन् पूरा विश्व ही नहीं चराचर जगत् आलोकित हो उठेगा। जबकि सेमिटिक परम्परा के मूल में विकृतियां ही विकृतियां, त्रुटियां ही त्रुटियां, पैशाचिकता ही पैशाचिकता भरी हुई हैं। अतः कोई कितना भी लीपापोती करे काम बनने वाला नहीं है। यही कारण है कि वह अपने जन्म के लग्न काल से आज तक सारे विश्व ही नहीं चराचर जगत् को त्रास देता आ रहा है।

वर्तमान में ही नहीं प्रारम्भ से ही भारतीय धर्म दर्शन संस्कृति ने अपनी सर्वांगिकता के कारण विश्व मनीषा को प्रभावित किया है उसका मार्ग दर्शन किया है।

दर्शन का इतिहास भारत से है न कि यूनान से—दर्शन के क्षेत्र में भारत विश्व का शिरोमणि देश है। वास्तव में भारत ने अन्तर्जगत् में डुबकी लगा कर जिन अमूल्य विचार-रत्नों की उपलब्धि प्राप्त की है उसके सम्मुख शेष विश्व की समस्त सम्पदा फीकी पड़ जाती है। यह दुर्भाग्य की बात है कि पश्चिम में लिखित अधिकांश दर्शन के इतिहास अपनी कथा यूनान से प्रारम्भ करते हैं। यूनान में छठी

शताब्दी ई. पू. से दार्शनिक चिन्तन प्रारम्भ होता है, जबकि भारत में यह काल प्रखर दार्शनिक वाद-विवाद का भास्वर, मध्याह्न काल है। पश्चिम में जब प्रथम दार्शनिक थेल्स अनुमान लगा रहा था कि सम्भवतः जल ही सृष्टि का परम सत्य है। उस समय तक भारत में वैदिक दर्शन, उपनिषदों का महानतम वेदांत दर्शन, कल्पसूत्र, जैन एवं बौद्ध आचार्य दर्शन—सभी पूर्णतः विकसित एवं प्रतिष्ठित हो चुके थे। अतः संसार में दर्शनशास्त्र का इतिहास भारत से प्रारम्भ होना चाहिए न कि यूनान से।

संसार में श्रेष्ठतम आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि एवं बौद्धिक दर्शन—डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में—'संसारभर में सम्भवतः आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि अथवा बौद्धिक दर्शन की ऐसी कोई भी ऊँचाई नहीं है कि जिसका सममूल्य वैदिक ऋषियों और अर्वाचीन नैयायिकों के मध्यवर्ती विस्तृत ऐतिहासिक काल में न पाया जाता हो।'

भारतीय दर्शन की पाश्चात्य दर्शन की तुलना में श्रेष्ठता—सर डब्ल्यू. हंटर के शब्दों में—'भारतीय दर्शन ने उन समस्त दार्शनिक गुत्थियों के सम्भावित समाधान खोज लिए थे, जो गुत्थियां प्रारम्भ से यूनानियों, रोमनों और मध्यकालीन यूरोपीय चिन्तकों को परेशान करती रहीं और आज तक वैज्ञानिकों को भी उलझन में डाले हुए हैं।'

मिसेज मैनिंग के शब्दों में—'हिन्दुओं के मन एवं चिन्तन का उतना अधिकतम विस्तार हो चुका था जितना मानव के लिए कभी भी सम्भव हो सकता है।'

प्रो. श्लेगल (जर्मन) कहते हैं—'यूरोप का सर्वोच्च दर्शन, बौद्धिक अध्यात्मवाद जो यूनानी दार्शनिकों से प्रारम्भ हुआ, प्राच्य अध्यात्मवाद के अनन्त प्रकाश एवं प्रखर तेज के सम्मुख ऐसा प्रतीत होता है जैसे मध्याह्न के प्रखर सूर्य के दिव्य प्रकाश के भरपूर वेग के सम्मुख एक मन्द-सी चिनगारी हो जो धीरे-धीरे टिमटिमा रही हो और किसी भी समय बुझ सकती है।'

काउंट जॉर्न्स जेर्ना का कथन है—'यूनान और रोम के दार्शनिकों की तुलना में हिन्दू दार्शनिक बहुत-बहुत आगे थे।'

प्रो. वेबर का मूल्यांकन है—'दर्शन के ही क्षेत्र में भारतीय मनीषा ने चमत्कारी प्रतिभा के सर्वोच्च शिखर को प्राप्त किया था।'

दर्शन मात्र बौद्धिक वाग्विलास नहीं वरन् जीवन की सर्वोच्च साधना—भारत में पश्चिम की तरह दर्शन केवल बुद्धि व्यायाम अथवा वाणी का विलास मात्र नहीं था वरन् वह तो जीवन की सर्वोच्च साधना ही थी। जीवन

का परम लक्ष्य है पूर्णत्व, अमरत्व अथवा मोक्ष को प्राप्त करना। तदर्थ सत्य का साक्षात्कार अनिवार्य है। सत्य की उपेक्षा करके केवल दिमागी उछल-कूद या बुद्धि के बन्दर-नाच से कोई पूर्ण पुरुष या मुक्त पुरुष नहीं बन सकता। गुरुग्रंथ साहिब में लिखा है—

चतुराई न चतुर्मुख पाया।
भोले भाव मिले रघुराया।। (रविदास)

पश्चिम ने आर्मचेयर फ़िलॉसफ़र (आरामकुर्सी दार्शनिक) अधिक पैदा किए हैं। उदाहरण के रूप में इंग्लैण्ड के बर्ट्रेण्ड रसेल पश्चिम के महानतम विचारक माने जाते थे, किन्तु 80 वर्ष की अवस्था में 16 वर्ष की सुन्दरी से जीवन का 16वां विवाह रचाते हैं, आराम से कुर्सी में पड़े हुए, मुख में सिगार लिए, एक ओर सुरा दूसरी ओर सुन्दरी को थामे हुए दार्शनिक समस्याओं पर लिखने या बोलने वाले विलासी व्यक्ति के दर्शन को खोपड़ी के खेल से अधिक और क्या कहा जा सकता है?

भारत में दर्शन को जीवन की परम साधना एवं सर्वोच्च सिद्धि माना गया है।

गीता के दार्शनिक भगवान् कृष्ण, भगवान् बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य आदि क्रियात्मक दार्शनिक थे। जिनकी कथनी-करनी में अन्तर नहीं था। इसलिए भारत में दर्शन केवल मनोरंजन या बुद्धिरंजन का विषय न होकर जीवन की जीवन्त साधना का अंग रहा है।

अतः भारत के वैचारिक जादू ने प्रारम्भ से ही विश्व मनीषा को प्रभावित किया है। मिस्र के पिरामिड—ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व मिस्र के प्राचीनतम पिरामिडों में शव (ममी) को सुरक्षित रखने के लिए भारतीय मलमल के कपड़े और भारतीय वृक्ष सागवान की लकड़ी का प्रयोग तो होता ही था। आत्मा की अमरता के लिए लिखित गीता में जो श्लोक है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। 2/20, गीता

इसका इजिप्सियन भाषा में अनुवाद मिस्र के राजा के पिरामिड के ऊपर सागवान की लकड़ी पर लिखा हुआ पाया गया है।

वेदमूर्ति पंडित श्री दामोदरपाद सातवलेकरजी ने लिखा है—मिस्र देश के पिरामिड में एक लकड़ी की मूर्ति मिली है। इस मूर्ति पर गीता के—

जीवभूतः सनातनः। 15/7, गीता

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः। 15/8, गीता

इस श्लोक का शब्दशः अनुवाद मिला है। इस मूर्ति के साथ जो वस्तुएं उस कब्र में मिली वे भारतीय वस्तुएं थी। (देखो, अमरीकन नेशनल ज्योग्राफिकल मेगजीन, अक्टूबर 1941 का अंक)। जीव दूसरा जन्म लेता है, यह पुनर्जन्मवाद मिस्रवासियों के तत्त्वज्ञान में नहीं था। इसलिए मुर्दे को सुखाकर रख देते थे। ऐसे देश की कब्र में भारतीय वस्तुओं के साथ भारतीय विचार, गीता का ही विचार मिलना एक आश्चर्यजनक बात है। यह अनुवाद गीता के श्लोक का ही है, ऐसा वचन दूसरी जगह नहीं है।

यह कब्र विक्रमादित्य से पूर्व तीन सहस्र वर्षों के समय की है।

गीता का राजकीय तत्त्वालोचन, पृष्ठ-6 (7)

यूनान पर भारतीय दर्शन का प्रभाव

जिस यूनान को यूरोप अपने विचारों की जननी मानता है वह स्वयं भारत से प्रभावित एवं प्रेरित रहा है। यूनानी दार्शनिकों ने भारतीय दर्शन के प्रभाव के उपरान्त यूनानी दर्शन में आत्मा की अमरता का उल्लेख किया। उसके पहले यूनानी भाषा में आत्मा शब्द नहीं था। यूनानी दर्शन में आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म सिद्धान्त आदि की चर्चा सर्वप्रथम पाइथोगोरस में मिलती है। उसके पूर्व के यूनानी दार्शनिक थेलीज जल को, अनेक्जीमीनर अग्नि को, ऐनेग्जिमिनस वायु को परम तत्त्व के रूप में मानते थे। वे सभी जड़वादी थे।

पाइथोगोरस (550 ई. पूर्व) भारतीय दर्शनधारा से इतना अधिक प्रभावित है कि उसे भारतीय परम्परा में पृथ्वी गुरु कहा जाता है। कुछ लोगों का अनुमान है कि वह भारत की यात्रा पर आया। किन्तु यह निश्चित है कि वह ईरान तक आया था। जहां उस काल में आर्य राजा कुरू (Cyres) साइरस का शासन था और अनेक आर्य ब्राह्मण वहां प्रचाररत थे। यह भूलना नहीं चाहिए कि उस समय तक न ईसा का जन्म हुआ न मुहम्मद का। इसलिए उस काल के पारसी जाति के आर्य होने के साथ-साथ धर्म से भी आर्य थे। ईरान का प्राचीन नाम आर्यान देश था। आर्यावर्त्त और आर्यान की परम्परा एवं पूजा-पद्धति, विश्वास, भाषा एवं जीवन-पद्धति सभी समान थी। अतः पारसी विद्वानों के सम्पर्क में आने का अर्थ भारतीय आर्य विद्वानों के सम्पर्क में आना ही था।

पाइथोगोरस का आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म का सिद्धान्त निश्चित रूप से भारत की ही देन है। संस्कृत का आत्मा शब्द पालि में अत्ता हो गया है। भगवान् बुद्ध की वाणी है—

अत्ताहि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परोसिया।
अत्तना हि सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं।।

अर्थात् आत्मा ही आत्मा का नाथ है, आत्मा के सिवा अन्य नाथ कैसे हो सकता है? अपने आपको अच्छी प्रकार वश में कर लेने पर मनुष्य दुर्लभ नाथ को प्राप्त करता है। यह अत्ता शब्द ही यूनानी भाषा में अतो हो गया है। इससे ग्रीक और लैटिन भाषा में Auto शब्द बना है। इसका अर्थ भी Self आत्मा ही है। जैसे Automatic स्वचालित, Autonomous आत्मनामी, Automobile अपने आप चलने वाली गाड़ी। आत्मा के लिए दूसरा शब्द है—स्व। इससे ग्रीक एवं लैटिन भाषा में शब्द बना है Suicide (स्वसूद यानी स्वयं को मारना) संस्कृत में मधुसूदन का अर्थ मधुदैत्य को मारने वाला, अरिसूदन का अर्थ शत्रुओं को मारने वाला। ग्रीक एवं लैटिन में Couseui का अर्थ है अपना कारण आप अर्थात् Auto-Self स्वयंभू। इस प्रकार भारत ने यूनान एवं रोम को केवल आत्मा सम्बन्धी विचार ही नहीं दिए बल्कि आत्मा के लिए शब्द भी दिए जो उनके अपने शब्द भण्डार में नहीं थे।

सुकरात के मानस पर भारतीय प्रभाव

युजेबीस (Eusebius) नामक विद्वान् ने अरस्तू द्वारा प्लेटो दर्शन पर लिखित ग्रंथ का उद्धरण दिया है जिसमें यह वर्णन है कि एक भारतीय दार्शनिक एथेंस नगर में आया और सुकरात से दार्शनिक शास्त्रार्थ किया। जब सुकरात ने यह कहा कि दर्शन मानव जीवन के विषय में जिज्ञासा करता है। इस पर भारतीय दार्शनिक मुसकराया और उत्तर दिया—कोई भी मानव जीवन और उसकी समस्याओं के विषय में तब तक नहीं जान सकता जब तक दैवीय-तत्त्वों के बारे में न जान ले। इससे भारतीय दर्शन का दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। अलौकिक को जानने के पश्चात् ही लौकिक के रहस्य खुलते हैं। सुकरात इस भारतीय विचारक से बड़ा प्रभावित हुआ। सुकरात भारत के ऋषियों के समान निष्काम एवं निर्लोभ-वृत्ति से जीकर यूनान के युवकों को विवेक से ज्ञान प्राप्त करने की शिक्षा देता था। उसका कथन था Know Thyself, Knowledge is Power. (अपने-आपको जानो, ज्ञान ही शक्ति है।) यह उपनिषदों के आत्मानं विद्धि का ही अनुवाद है। अपनी विवेकपूर्ण दार्शनिक मान्यताओं के लिए बलिदान होने वाला सत्यवीर सुकरात संसार के सभी विवेकशील लोगों के लिए एक महान् आदर्श बन गया।

प्लेटो

सुकरात का योग्यतम शिष्य प्लेटो था। सुकरात के लिखित विचार प्रायः नहीं मिलते। उसके विचारों को लिखित रूप में प्लेटो ने ही अमर बना दिया। वास्तव में प्लेटो का दर्शन मूलतः सुकरात का ही दर्शन है। जिस प्रकार विवेकानन्द का दर्शन उनके गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस का ही दर्शन है।

प्लेटो (427 ई. पूर्व से 347 ई. पूर्व) पाइथोगोरियन विचारधारा का प्रशंसक था। यह माना जाता है कि वह एशिया के देशों की सांस्कृतिक यात्रा पर आया था। वह ईरान तथा सम्भवतः भारत की यात्रा पर आया था। उसका यह मत कि आत्मा जड़ प्रकृति के बंधन में पड़कर अपने आपको भूल जाता है और इससे मुक्ति ही आनन्द प्राप्ति का एकमात्र उपाय है—सांख्यदर्शन के विचार से मिलता-जुलता है। हॉपकिन्स (Hopkins) नामक लेखक का कथन है कि प्लेटो सांख्य विचारधारा से परिपूर्ण है जो उसने पाइथोगोरस के माध्यम से प्राप्त कर उस पर अपना तार्किक चिन्तन किया होगा।

कठोपनिषद् में कहा है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रगहमेव च।। (1/3/3)

इंद्रियाणि हयानाहुर् विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर् मनीषिणः।। (1/3/4)

आत्मा को तुम रथी जानो। शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि जानो और मन को लगाम। मनीषी (यानी ज्ञानी) इन्द्रियों को घोड़े बतलाते हैं (और) विषयों को चरागाह। आत्मा के इन्द्रिय और मन से युक्त होने पर उसे भोक्ता कहते हैं।

प्लेटो ने भी रथ और घोड़े की यही उपमा शरीर-इन्द्रिय और आत्मा के वर्णन में प्रयोग की है। यह निश्चय ही भारतीय दर्शन का ही प्रभाव है। अर्विक (Urwick) का विश्वास था कि प्लेटो ने Republic में जो कुछ कहा वह मात्र भारतीय विचारों का पुनर्कथन है।

प्लेटो ने आदर्श समाज को रक्षक, सैनिक और कामगार में विभाजित कर भारतीय वर्ण-व्यवस्था को ही दूसरे शब्दों में प्रस्तुत किया है। Republic के सातवें अध्याय में प्लेटो दृश्यमान जगत् की असत्यता और सत्य की अदृश्यता को समझाने के लिए एक गुफा की उपमा देता है, जिसमें प्रकाश पीछे की ओर से आ रहा है और हमारा मुख दीवार की ओर है। जिस पर हमारी अपनी ही छाया पड़ रही है तथा जिसे हम सच समझकर उसकी ओर लपकते हैं, किन्तु वह सारा दृश्य मिथ्या ही निकलता है। इस प्रकार माया को छाया और सत्य को प्रकाश के रूप में प्रस्तुत करना वैदांतिक विचार है। व्यक्त जगत् अव्यक्त सत्य की ही छाया है। जगत् की सब वस्तुएं प्रारम्भ में अव्यक्त रहती हैं, मध्यकाल में व्यक्त होती हैं और अंत में पुनः अव्यक्त में ही लय हो जाती है—यह गीता का कथन है। व्यक्त वस्तुओं की पहचान के लिए कोई नाम और रूप कल्पित किया जाता है। वह नाम-रूप इन्द्रियगोचर होने के कारण सत् प्रतीत होता है। किन्तु सत् का

कभी नाश या लोप नहीं होना चाहिए। असत् सदा टिकता नहीं और सत् कभी मिटता नहीं।

नासतो विद्यते भावो—गीता की इसी कसौटी के आधार पर नाम-रूपात्मक जगत् दिखाई देते हुए भी, इन्द्रियगोचर होते हुए भी अन्ततोगत्वा सत् नहीं प्रमाणित होता। जो दिखायी देते हुए भी वास्तव में न हो उसे ही गीता ने माया तथा शंकराचार्य ने प्रतिभासित कहा है। जगत् भास रहा है किन्तु है नहीं। स्वप्न का संसार भासते हुए भी वास्तविक नहीं। मरुभूमि का जल और रज्जु में सर्प, जल में बिन्दु, लहर, तरंग, वाष्प, नदी, तालाब, सिंधु भासते हुए भी सत् नहीं। क्योंकि उनकी सत्ता त्रिकालाबाधित नहीं है। सत् भासने का कारण भी यही है कि वे भासते समय हमारी सत्ता से कुछ अंश लेकर, नाम-रूप का आवरण ओढ़कर भासने लगते हैं। यदि रस्सी और अंधेरा न हो तो सर्प की भ्रान्ति कैसे हो? सारी जादूगरी जादूगर पर टिकी हुई है। सारे जल के विकार जल पर ही टिके हुए हैं। किन्तु नाम-रूप के आवरण से वे जल तत्त्व को ढककर जल की क्षणिक प्रतिभासिक सत्ता से ही सत् जैसे दिखायी देते हैं। कबीर ने भी माया की छाया के साथ उपमा दी है—

माया छाया एक सी विरला जाने कोय।
भक्ता के पीछे फिरे सम्मुख भागे सोय।

प्लेटो ने भारतीय दर्शन के इस तत्त्व को ऐसी ही सुन्दर उपमा से समझाया। गुफा के द्वार पर सूर्य का प्रकाश या यज्ञ-अग्नि का प्रकाश है। हमारे हाथ संसार की भोग-विलास की हथकड़ी से बंधे हुए हैं। पीछे के प्रकाश से हमें अपनी ही छाया सामने दीवार पर पड़ती दिखायी देती है। पीछे मुड़कर देखने में असमर्थ हम छाया को ही सत् मानकर उसकी ओर लपकते हैं पर हाथ कुछ नहीं लगता। प्लेटो ने इस यूनानी कथा को भी प्रतीकात्मक रूप से स्वीकार किया है कि ज्यूज (Zeus) नामक देवता द्वारा Phanes को निगल जाने के पश्चात् एक संसार-रूपी विशाल अण्डा हुआ जिसमें सारी सृष्टि प्रकट हुई। यह मनुस्मृति में वर्णित हिरण्यगर्भ रूपी एक सुनहले अण्डे (ब्रह्माण्ड) का ही वर्णन है जिसमें से ब्रह्मा और सारी सृष्टि उत्पन्न हुई।

रोलिनसन (Rawlinson) नामक इतिहासकार का कथन है कि ये समानताएं इतनी अधिक निकट और मिलती-जुलती हैं कि उन्हें एक आकस्मिक घटना कहकर टाला नहीं जा सकता। प्लेटो की भाषा और उपनिषदों में कभी-कभी विस्मयकारी समानता दिखायी देती है। गार्वे का यह कथन बहुत सच है कि यूनानी विचार जगत् ईरान के माध्यम से भारतीय विचारधारा से प्रभावित हुआ और सांख्य और वेदांत के दर्शन भारत से ही यूनान में पहुंचे।

प्लेटो ने काव्यात्मक प्रतिभा के साथ अपने विचारों को बड़े रोचक वार्तालाप में प्रकट किया। लानाकूपर (Lana Cooper) के मत में वार्तालाप शैली नाटक के बाद यूनानी प्रतिभा द्वारा आविष्कृत सबसे श्रेष्ठ साहित्यिक शैली है। वास्तव में प्लेटो से बहुत पहले काव्यात्मक वार्तालाप शैली में आध्यात्मिक रहस्यों को प्रकट करने की परम्परा भारत में प्रतिष्ठित हुई थी। स्वयं वेद ही काव्यमय आध्यात्मिक-ग्रंथ है। उपनिषद् एवं गीता में काव्यात्मक वार्तालाप में आध्यात्मिक तत्त्वों का निदर्शन है। गीता में काव्य-संगीत, कथोपकथन के साथ-साथ नाटकीय तत्त्व भी हैं। इसलिए प्लेटो अपनी आध्यात्मिक कविताओं व काव्यात्मक कथोपकथन शैली के लिए भारत के ही ऋणी हैं।

उपनिषद् में नारद एवं सनत्कुमार का रोचक संवाद है जिसमें देवर्षि नारद पांच वर्ष के ब्रह्मज्ञानी बालक सनत्कुमार से प्रार्थना करते हैं कि उन्होंने सब विद्याएं प्राप्त कर ली हैं फिर भी उन्हें शान्ति नहीं मिली। नारदजी अपनी सारी विद्याएं गिनाते हैं। इस पर सनत्कुमार पूछते हैं नारदजी से कि आपने सब कुछ जान लिया तो जानने वाले को भी जाना कि नहीं? इस प्रकार नारदजी को अपनी भूल का भान होता है। सनत्कुमारजी बताते हैं दृश्य का सारा ज्ञान अपरा-विद्या (छोटी विद्या) है। इससे ऊपर पराविद्या है जिसमें द्रष्टा का ज्ञान, ज्ञाता का ज्ञान प्राप्त होता है। हूबहू ऐसा ही सम्वाद प्लेटो तथा उनके शिष्य अरस्तू के बीच हुआ। अरस्तू ने सब विज्ञानों का अध्ययन करने के पश्चात् फिजिक्स पर अध्ययन करके पूछा कि मैंने पदार्थ और ऊर्जा का पूरा अध्ययन कर लिया है। फिर भी मुझे लगता है कि बहुत कुछ छूट गया है। तब प्लेटो मुसकराकर कहता है कि फिजिक्स के अध्ययन से ऊपर एक अन्य विद्या है जिसका नाम Metaphysics है। Physics से लौकिक शक्ति प्राप्त होती है और Metaphysics से आध्यात्मिक-शान्ति। यह स्पष्ट ही अपराविद्या-पराविद्या का भेद, दृश्य और द्रष्टा का भेद, जगत् और जगदीश्वर का भेद है।

अरस्तू

प्लेटो का शिष्य अरस्तू एक महान् मेधावी एवं ज्ञान की सब विधाओं में प्रवेश रखने वाला सर्वस्पर्शी, प्रतिभासम्पन्न महापुरुष था। उसकी Politics ने आधुनिक राजनीति दर्शन की नींव रखी। उसकी Politics में दुखांत नाटकों के प्रथम बीज मिलते हैं। उसका On the Soul विषय का निबंध आधुनिक मनोविज्ञान की नींव बन गया। वह प्रथम मार्गदर्शक जीव-वैज्ञानिक भी था। वह विचारों के सम्बन्ध और साहचर्य के सिद्धान्त का भी द्रष्टा था। वह अनेक विज्ञानों का प्रथम वैज्ञानिक तथा अनेक विचारों का प्रथम विचारक माना जाता है। प्लेटो स्वयं उसे अपने विद्यालय की प्रतिभा Intellect of School मानता था और विचार जगत् उसे Father of all Sciences मानता है।

मेकेदोनिया के राजा फिलिप ने अपने होनहार पुत्र सिकन्दर को अरस्तू के पास शिक्षा के लिए समर्पित किया। उसने अरस्तू के जन्म के नगर Stargirite का पुनर्निर्माण करा दिया। सिकन्दर कहता था—'मेरे पिता ने मुझे जन्म दिया पर गुरु अरस्तू ने मुझे जीवन को योग्यतापूर्वक जीना सिखाया। मेरे पिता मुझे स्वर्ग से धरती पर लाए, गुरु ने पुनः स्वर्ग प्राप्ति का रास्ता बताया।' इस गुरु-भक्ति में भारतीय परम्परा की ही छाप है। सिकन्दर ने अपने गुरु को गुरुदक्षिणा में धन-सम्पत्ति के अतिरिक्त अत्यन्त अमूल्य ग्रंथों की पाण्डुलिपियां भी भेंट कीं जो उसे अपने शासन एवं दिग्विजय के काल में प्राप्त हुई। सिकन्दर ने अपने गुरु की जीव-वैज्ञानिक खोजों के काल में एक हजार व्यक्ति सहयोग के लिए दिए, जो पशु-पक्षियों और जलचरों की आदतों का अध्ययन कर अरस्तू के वैज्ञानिक विषय-लेखन में सहयोग करते थे।

अरस्तू स्वयं पश्चिम का महानतम विचारक एवं वैज्ञानिक होते हुए भी भारतीय ज्ञान के लिए ललक रखता था। मेकरिनल नामक प्रसिद्ध लेखक ने सिकन्दर के आक्रमणों पर एक पुस्तक लिखी। मैगस्थनीज नामक इतिहासकार ने अपने ग्रंथ Indica में उसका उद्धरण देते हुए लिखा है कि सिकन्दर जब भारत पर आक्रमण के लिए निकला तब उसके गुरु अरस्तू ने उसे आदेश दिया कि वह भारत से लौटते समय उसके लिए दो उपहार लेकर आये—एक गीता और दूसरा भारत का श्रेष्ठ संत। सिकन्दर जब भारत से लौटने लगा तब उसने ओनियोक्रोटस नामक अपने प्रतिनिधि को एक भारतीय संत को ढूंढ़कर साथ ले चलने के लिए भेजा। एक संत तो साथ चल पड़ा परन्तु दूसरे ने जिसका नाम डेंडीमीज था, लिखा है—साथ चलने के लिए प्रस्तुत नहीं हुआ। डेंडीमीज का भारतीय नाम दण्डी स्वामी हो सकता है। सिकन्दर के दूत ने कहा, 'जूपीटर का पुत्र आपको धन से मालामाल कर देगा। भारतीय संत ने हँसकर उत्तर दिया—'हमारे रहने के लिए शस्य श्यामला भारत है, पहनने के लिए वल्कल वस्त्र, पीने के लिए गंगाजल, खाने के लिए पावभर आटा बहुत है। हम आत्मधन के धनी हैं। वह आध्यात्मिक दृष्टि से दरिद्र सिकन्दर हमें क्या दे सकता है!'

सेना के अधिकारी पसोपेश में पड़ गये सम्राट् सिकन्दर महान् के निमंत्रण को आज तक किसी ने अस्वीकार करने का साहस नहीं किया था। उन्हें चिन्ता हुई कि वे लौटकर क्या उत्तर देंगे! सिकन्दर ने चलते समय यह भी कह दिया था कि संन्यासी से जोर-जबरदस्ती न की जाए। उन लोगों ने बहुत अनुनय-विनय किया, परन्तु महात्माजी नहीं गये।

सिकन्दर ने सोचा कि गुरु की बात परखने का अच्छा मौका है। उसने आदेश की प्रतीक्षा में खड़े अधिकारियों से गम्भीरतापूर्वक इतना ही कहा कि वह स्वयं ही जायेगा।

अगले दिन वह सैकड़ों घोड़े, हाथियों तथा सैनिकों के साथ सन्त की पर्णकुटी पर पहुँचा। जाड़े के दिन थे, तेज ठण्डी हवा चल रही थी। वैसे भी पंजाब की सर्दी कड़ी होती है। उसने देखा—वे सिर्फ लंगोटी लगाये ध्यानस्थ बैठे हैं। वह आगे बढ़ा और अपने सेनापतियों के साथ निकट जाकर खड़ा हो गया, तो भी महात्माजी का ध्यान न टूटा। उनके चेहरे पर ऐसी आभा दिखायी पड़ी कि विश्वविजेता सिकन्दर आत्मविस्मृत-सा उन्हें देखता रहा। कुछ देर बाद समाधि भंग हुई। भेंट में लाये हुए फल-फूल, शाल-दुशाले, रत्न आदि सोने के थालों में सजाकर उनके सामने रख दिये गये।

महात्माजी ने कहा—'भाई, मुझे वृक्षों से सर्वदा ईश्वर के दिये ताजे फल मिल जाते हैं। पीने के लिए माता रावी दूध के समान स्वच्छ जल दे देती हैं। दिन में भगवान सूर्य गरमी पहुँचा देते हैं और रात में कुटी में जाकर वल्कल ओढ़ लेता हूँ। फिर भला, मुझे इन चीजों की क्या आवश्यकता?'

सिकन्दर बोला—'इतनी ठण्डी हवा चल रही है और आपके शरीर पर एक भी वस्त्र नहीं, हम पाँच-पाँच गर्म कपड़े पहने हुए हैं, तो भी सर्दी लग रही है।' महात्माजी का उत्तर था—'राजन्, यह तो अभ्यास की बात है। जैसे, तुम्हारी नाक और मुँह को ठण्ड सहने का अभ्यास हो गया, वही बात मेरे सारे शरीर पर लागू होती है।'

सिकन्दर घुटने टेककर उनके पास बैठ गया। वह कहने लगा—'महाराज! मैंने इतने सारे देश जीते, मेरे पास अपार धन है और असंख्य दास-दासियां हैं; तो भी, न जाने क्यों मेरे मन में अशान्ति बनी रहती है, और अधिक पाने की लालसा मिटती नहीं।' महात्माजी ने उसके ललाट की ओर देखते हुए कहा—'युवक सम्राट्! जिसकी तृष्णा नहीं मिटी, वह चाहे कितना भी धनी हो, मन से भिक्षुक ही होता है, यह बात तुम पर भी लागू होती है। अपनी महत्त्वाकांक्षा के आवेश में तुमने इस छोटी-सी आयु में कितनी महिलाओं को विधवा किया, बच्चों को अनाथ बनाया, नगर तथा गांव उजाड़ दिये, मगर अतृप्त ही रहे। अब भी तुम्हारे मन में इसी प्रकार की भूल करने की प्रबल इच्छा है। परन्तु यह सब किस लिए? ये सारी धन-दौलत, फौज-हथियार तुम्हारे काम नहीं आयेंगे। जीवन की अवधि को एक पल भी नहीं बढ़ा पायेंगे।'

सिकन्दर के साथी आश्चर्य कर रहे थे कि जिसके सामने बड़े-से-बड़े पराक्रमी योद्धा, राजा और सम्राट् सिर झुकाते रहे, वही आज एक मामूली फकीर के सामने हाथ बाँधे कह रहा है कि मेरा भविष्य क्या है, उसे बताने की कृपा करें?

महात्माजी थोड़ी देर मौन रहे। फिर उन्होंने कहा, 'लगता है तुम जीवन की उपलब्धियों की सीमा पर आ गये हो। इस समय तुम्हारी आयु 33 वर्ष की है।

आज से 120 दिन बाद तुम्हारा ऐहिक जीवन समाप्त हो जायेगा। दुर्योग से तुम अपने परिवार से भी नहीं मिल सकोगे, क्योंकि तुम्हारी मृत्यु रास्ते में एक गांव में होगी। जीवन के इस थोड़े से समय को यदि भगवद्-भजन और अच्छे कामों में लगा सको, तो तुम्हें शान्ति मिलेगी। आज तक जोर-जुल्म कर बहुतों से लिया, अब जरूरतमन्दों और दीन-दुःखियों को देने का आयोजन करो। इसी में तुम्हारा कल्याण है। यह शाश्वत सत्य है कि धन और धरती किसी के साथ जाती नहीं। मनुष्य जैसे खाली हाथ आया है, वैसे ही संसार से चला जाता है।'

महात्माजी का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि सिकन्दर महान् पूर्वी भारत के अपने विजय-अभियान को बीच में छोड़ वहीं से वापस लौट गया। उसके मन में एक भय-सा छा गया था कि महात्माजी के बताये हुए दिन उसकी मृत्यु हो जायेगी।

कहते हैं कि आखिरी दिनों में उसके मनोभावों में परिवर्तन आया था। वह पहले जैसा नहीं रह गया, जिसकी भृकुटी मात्र से बड़े-बड़े सेनापति और राजा आतंकित हो उठते थे।

प्रसिद्ध है कि बेबीलोन के एक गांव में अपनी मृत्यु के दिन सम्राट् ने सभी दरबारियों एवं सेनानायकों को बुलाकर आदेश दिया—मृत्यु के बाद सभी जवाहिरात, आभूषण, हाथी, घोड़े, रथ और मेरी निजी तलवार मेरे शव के पास सजा देना। ध्यान रहे कि दोनों हाथ चादर से बाहर निकले रहें ताकि लोग देख सकें कि विश्वविजेता सम्राट् अपना सारा वैभव पृथ्वी पर छोड़कर खाली हाथों जा रहा है।

बाइबिल कहती है 'लाइट केम फ्राम दि ईस्ट' अर्थात् ज्ञान और सभ्यता की ज्योति भारत से आयी।

ईसा के मानस पर गीता का स्पष्ट प्रभाव—यह छह बिन्दुओं से दर्शाया जा सकता है—

(क) ईसा के पूर्व मध्यपूर्व के देशों में भारतीय प्रचारक।

(ख) ईसा के देश में भारतीय आर्यों का शासन।

(ग) क्या ईसा स्वयं भारत में शिक्षा पाने आये?

(घ) क्या ईसा का स्वर्गवास भारत में ही हुआ?

(ङ) ईसा के जीवन पर कृष्ण का प्रभाव और ईसा के संदेश पर गीता की छाप।

(च) ईसा के जीवन पर बुद्ध का प्रभाव और ईसा के दर्शन पर बौद्ध धर्म की छाप।

यह कम लोगों को ज्ञात है कि ईसा से दो शताब्दी पूर्व यूफ्रेटीज नदी के ऊपरी तट पर वान-झील के पश्चिम में एक हिन्दू उपनिवेश था, जिसमें हिन्दू मन्दिर बने हुए थे, जिनमें एक कृष्ण का मंदिर भी था। चौथी शताब्दी में सेंट ग्रेगरी ने अपने

अनुयायियों की सहायता से हिन्दू उपनिवेश को पराजित करके हिन्दू-मन्दिरों को गिरवा दिया था। इसका उल्लेख आर.सी. मजूमदार ने India's contribution to world thought and culture नामक अपनी पुस्तक की भूमिका में किया है। उस पुस्तक में जो स्वामी विवेकानन्द की शती में प्रकाशित हुई।

कृष्ण और ईसा के चरित्र एवं उपदेशों में समानता

ईसाई पादरियों द्वारा गीता को बाइबिल के Sermon of mount के बाद का, उससे प्रभावित बतलाना। गीता और बाइबिल में समानता। लोकमान्य तिलक का पादरी लारेन्सर को उत्तर।

जो प्राचीन होगा वही नवीन को प्रभावित करेगा।

कृष्ण एवं गीता की प्राचीनता ईसा एवं बाइबिल से निर्विवाद है।

ईसा के सन्देश पर भारतीयता की छाप—आचार्य नरदेव शास्त्री लिखते हैं—मैंने बाइबिल को कई बार आद्योपान्त पढ़ा है। उसमें कैसे-कैसे भावपूर्ण सुन्दर उपदेश हैं, वे उपनिषदों का सार हैं, ऐसा प्रतीत होता है।

ईसाई धर्म में जो ईसा पर ईमान लाने की बात कही गई है वह विशुद्ध भारत की है। वह भगवान् कृष्ण की उक्ति की ही पुनरुक्ति है।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। 18/66, गीता

नजरथ का वह महान् पैगम्बर पूछता है—'जब स्वर्ग तुम्हारे अन्तर में विराजमान है तो उसे ढूंढ़ने को अन्यत्र कहां जा रहे हैं।'

एक और स्थान पर अध्यात्मवादियों की भांति ईसा कहते हैं—उन वस्तुओं से मत डरो जो शरीर को मारने वाली हैं, उससे बढ़कर और कुछ नहीं कर सकती।

डा. लारिन्सर गीता के जर्मन अनुवाद की पुस्तक में गीता और बाइबिल के भावों में साम्य दिखलाते हैं, उदाहरणार्थ—

ईसा भी भगवान् कृष्ण की भांति उस साधना का उपदेश देते हुए कहते हैं— 'उस दिन तुम्हें ज्ञात हो जाएगा कि मैं अपने पिता में वर्तमान हूं। तुम मुझ में वर्तमान हो व मैं तुम में वर्तमान हूं। क्या तुम्हें याद है?'

येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि। 4/35, गीता

एक अन्य स्थान पर ईसा कहते हैं—'जो मुझे प्यार करता है वह मेरे पिता का प्यारा होगा और उसे प्यार करेगा।'

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः। 7/17, गीता

वेदान्त का प्रभाव

अपनी महान् वाणी से ईसा ने जगत् में घोषणा की, 'दुनिया के लोगो! इस बात को भली-भांति जान लो कि स्वर्ग का राज्य तुम्हारे अभ्यन्तर में अवस्थित है, मैं और मेरा पिता अभिन्न हैं। साहस कर खड़े हो जाओ और घोषणा करो कि मैं केवल ईश्वर तुल्य ही नहीं स्वयं ईश्वर हूं। अपने हृदय में मुझे प्रतीति हो गई है कि मैं और मेरा पिता एक और अभिन्न हैं।'

सुविज्ञ पाठक इसमें भगवान् शंकराचार्य के जीवो ब्रह्मैव नापरः तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, सोऽहम् की प्रतिध्वनि स्पष्ट सुन सकते हैं।

बौद्ध धर्म का प्रभाव

लोकमान्य तिलक के मतानुसार महात्मा ईसा पर बौद्ध धर्म का भी पर्याप्त प्रभाव है—ईसा से 2,000 वर्ष पूर्व एशिया, एसीन नामक संन्यासियों का पंथ यहूदियों के देश में था। वे अहिंसा तथा ब्रह्मचर्य का पालन करते थे और मद्य-मांस से दूर रहा करते थे। उनका प्रधान मठ मृत समुद्र के पश्चिमी किनारे एंगदी में था। स्वयं ईसा ने इनका मान्यतापूर्वक वर्णन किया है। ईसा ने स्वयं भी सम्भवतः इसी धर्म की दीक्षा ली।

दत्त साहब ने अपने इतिहास में बौद्ध और ईसाई धर्म की अद्भुत समानता के अनेक उदाहरण दिए हैं।

ईसाई धर्म में अहिंसा, जीवदया, करुणा, मैत्री, प्रेम और सेवा जैसे महान् नैतिक आदर्श सीधे बौद्धधर्म से उधार लिए हुए हैं।

इस प्रकार महात्मा ईसा और उनके ईसाई धर्म पर भारत एवं भारतीयता की छाप इतनी गहरी है कि सहज ही मैथिलीशरण गुप्त के मुख से निकल पड़ता है—

था हिन्दुओं का शिष्य ईसा यह पता भी चला
ईसाईयों का धर्म भी है, बौद्ध सांचे में ढला।

रामकृष्ण मिशन के स्वामी प्रभवानन्दजी ने इस विषय पर स्वतंत्र रूप से शोध कर पुस्तक लिखी है—The Sermon on the mount according to vedanta जिसमें स्पष्ट रूप से बाइबिल पर गीता और वेदान्त का प्रभाव दिखलाया है।

अरब पर भारतीय प्रभाव—इसलाम से पूर्व अरब के मानस पर हिन्दू संस्कृति ने अपनी महान् छाप छोड़ी है।

अरब में इसलाम के उदय के पूर्व अनेक भारतीय (विशेषकर ब्राह्मण) बड़ी संख्या में रहते थे। मक्केश्वर महादेव की पूजा करते थे। स्वयं हजरत मुहम्मद के चाचा अबुल हिक्म की भारत एवं शिव की स्तुति में लिखी हुई कविताएं प्राप्त हुई हैं। वहां की प्राचीन कविताओं में विक्रमादित्य, वेद, भगवान् कृष्ण, वेदव्यास और भारत की स्तुतियां भी मिलती हैं। इसलाम के प्रारम्भ से भारत के प्रति श्रद्धा पाते है। कुरान के अनुसार आदम स्वर्ग से च्युत होकर पृथ्वी पर आये तो श्रीलंका के श्रीपाद पर उतरे उसे वे आदम स्पीक कहते हैं, हिन्दू उसे भगवान् विष्णु के पाद का तीर्थ मानते हैं। बौद्ध भगवान् बुद्ध के पाद का तीर्थ मानते हैं।

अरब में आज से लगभग 3,000 वर्ष पूर्व आकाश से गिरने वाले तारे के गर्म लावे से एक अर्ध-गोलाकार शिवलिंग बन गया था। उसकी पूजा खजूर की पत्तियों एवं आबेजमजम के पानी से होती थी। पुजारी कुरैशी कहलाते थे। हजरत मुहम्मद स्वयं कुरैशी थे किन्तु अशिक्षित थे। एक अनपढ़ ऊंट चराने वाले थे।

केन्द्रीय पिंड के चारों ओर 360 देवता थे। इसमें नवग्रह, दुर्गा देवी की मूर्तियां थी, बोधिसत्व की मूर्तियां थी, बुद्ध की मूर्तियां थी। मैक्समूलर का कहना है—बुद्ध शब्द से अरबी का बुत शब्द बना हुआ है।

हजरत मुहम्मद साहब का मंदिर के पंडाओं से विरोध होने पर सब मूर्तियां तोड़ दी गई। किन्तु बड़े संगे-अस्वद की मूर्ति को तोड़ नहीं पाए वरन् उसे चूमा। खजूर की पत्तियों एवं आबेजमजम के पानी से इनकी पूजा (ईडा) की। और आज भी हज यात्रा में प्रकारान्तर से शिव अर्चना ही करते हैं और अरबी भाषा पर संस्कृत का प्रभाव अभी भी इन शब्दों में देखा सकता है—

मखः (यज्ञ)	से मक्का
अश्वेत (काला)	संगे-अस्वद (काला पत्थर)
नमाष्ट	नमाज
ईडागृह	से ईदगाह
शिवरात्रि (शिव की बरात वाली रात्रि)	शबे बारात (शबे=रात्रि)
गंगाजल	आबेजमजम (मक्का का वह पानी का स्रोत जिसके जल में कीड़े नहीं पड़ते)।
बिल्व पत्र	खजूर की पत्तियों से पूजना
तीर्थयात्रा में पवित्र, नया वस्त्र धोती पहनना	हज में नए सफेद वस्त्र बिना सिले हुए धोती (बिना लांग) एवं चद्दर

तीर्थ में सिर मुण्डन	हज में सिर मुण्डन
तीर्थ में मन्दिर की परिक्रमा	काबा के मन्दिर की परिक्रमा
उपवास	उपवास, रोजा
शंकर के मस्तक पर शशिकला	नया चन्द्रमा अरब एवं मुस्लिम देशों का ध्वज चिह्न
दो प्रकार के शिव पूजन	असुर भाव से शिव पूजन के कारण
(1) सात्विक भाव शंकराचार्य, मार्कण्डेय—सोमवार पवित्र	असुर गुरु शुक्राचार्य के शुक्रवार की विशेष जुमा
(2) आसुरी भाव—रावण, त्रिपुरासुर, भस्मासुर, शुक्राचार्य	समूह की नमाज पवित्र शुक्रवार

अरब में बसे हुए एक ब्राह्मण परिवार में ही एक महान् ज्योतिष हुआ जिसका नाम यवनाचार्य प्रसिद्ध है और जिसका भारतीय ज्योतिष-ग्रंथों में उल्लेख है।

मुहम्मद पैगम्बर—भारत से मुझे दिव्य सुगंधि मिलती है।

पुनः मुहम्मद पैगम्बर कहते हैं—पूर्व से भारत से ठण्डी हवायें आती है जिसकी शीतल छाया में मैं अपनी समस्याओं का समाधान पाता हूं।

स्वयं अरब नाम पर संस्कृत भाषा का प्रभाव है। अरब अच्छे नस्ल के घोड़ों के लिए प्रसिद्ध था। इसी आधार पर 'अर्ब' से अरब नाम पड़ गया।

कुरान पर गीता का स्पष्ट प्रभाव पड़ा जिसे सुन्दरलाल ने 'गीता और कुरान' पुस्तक में दरसाया है। सूफियों की वाणी में गीता की गूंज है।

वेद एवं गीता में प्रतिपादित प्रणव (ओमकार) ॐ विश्वव्यापी स्वाभाविक दिव्य ध्वनि है। जो शंखनाद, प्रणव ध्वनि, योगियों के अनहद नाद से लेकर लैटिन भाषा के omni present omniscent, omnipotent शब्दों में भी सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान के पीछे के 'सर्व' का सूचक है। तथा ईसाई एवं इसलामी प्रार्थना के अन्त में उच्चारित हिब्रू (यहूदी) शब्द आमीन में गूंज रहा है। अब इसरो के वैज्ञानिक पाण्डे भी स्वीकारने लगे हैं कि सूर्य की रश्मि में स्पष्ट तीन ध्वनियां 'अ+ऊ+म् सुनायी पड़ रही हैं। अतः हनुमानजी एवं याज्ञवल्क्य ऋषि ने सूर्य की उपासना से वेद ज्ञान प्राप्त किया यह पौराणिक नहीं ऐतिहासिक तथ्य है। सूर्य की रश्मियों में वेद ज्ञान निहित है। मेरे परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज कहते हैं—सूर्य के केन्द्र में यजुर्वेद के मन्त्र हैं। परिधि में ऋग्वेद के मन्त्र हैं। इसकी रश्मियों में सामवेद के मन्त्र हैं। जिसका ऋषियों ने प्रत्यक्ष दर्शन किया है। हमारे सूर्य से निरन्तर वाइब्रेशनस् (vibrations) निकल रहे हैं। इसी कारण सूर्य को वेदात्मा भी कहा जाता है। वेद प्रकट होने से पूर्व (प्रणव) ओम रूप में था।

फैजी

मुगल काल में अकबर के आदेश से फैजी ने गीता का अनुवाद फारसी भाषा में किया। इसके पूर्व फिरोजशाह तुगलक ने गीता का अनुवाद फारसी में कराया था। फैजी का अनुवाद प्रसिद्ध है।

दाराशिकोह

उसने हिन्दू गुरुओं के चरणों में बैठकर उपनिषद्, गीता, रामायण का अध्ययन किया। दाराशिकोह जो औरंगजेब का बड़ा भाई था उसने इस किताब का नाम 'सेर अकबर' रखा और भूमिका में गीता की अद्भुत प्रशंसा करते हुए लिखा है गीता परम आनन्द का अमर स्रोत है। वह परम सत्य को पाने का पथ प्रदर्शक है। गीता हमें ब्रह्म का ज्ञान कराती है। यह वर्तमान और भविष्य के गहन रहस्यों को सरलता से समझाती है। इसके संकलनकर्ता (लेखक) महर्षि वेदव्यास थे।

अन्तिम मुगल बादशाह जफर स्वयं गीता से बहुत प्रभावित था। उसने गीता के 3/37 श्लोक का भाव पिरोते हुए कहा है—

जफर आदमी उसको न जानिएगा,
चाहे कितना हो इल्मो फहमे बका।
जिसे ऐश में यादे खुदा न रही,
जिसे तैश में खौफे खुदा न रहा।

अर्थात् कोई व्यक्ति कितना ही पढ़ा-लिखा विद्वान् क्यों न हो वह मनुष्य कहलाने योग्य भी नहीं है जिसे ऐश में (ऐश्वर्य में) ईश्वर की याद न रहे, जिसे तैश में (क्रोधावेश में) ईश्वर के दण्ड विधान का भय भी न रहे। ऐश्वर्य में भी अंधा होकर ईश्वर के प्रेम को भूल जाता है और क्रोधावेश में भी अंधा होकर ईश्वर के न्यायविधान को भूल जाता है।

सर मोहम्मद इकबाल (इसलाम के विश्वकवि) कहते हैं कि मैंने भगवद्गीता को सर्वदा महानतम सम्मानयुक्त प्रशंसा की दृष्टि से देखा है।

1917 में **जिन्ना** ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा था—रामायण और महाभारत इस देश के राष्ट्रीय महाकाव्य हैं। इनको समझे बिना आप भारत से एकात्म नहीं हो सकते।

लाहौर के **ख्वाजा दिल मुहम्मद** ने गीता का उर्दू पद्य में अनुवाद करते हुए लिखा—

मुसीबत से सबको बचाती है गीता,
पाथमे सदाकत सुनाती है गीता।

जो गिरते हैं गलती से इस सर जमीं पर,
उठाकर फलक पर बिठाती है गीता।

वे अनुवाद के प्रारम्भ में लिखते हैं—सात सौ फूलों की माला गीता है। यह माला करोड़ों इनसानों के हाथों में पहुंच चुकी है लेकिन अभी तक इसकी ताजगी, नफासत, इसकी खुशबू में कोई फर्क नहीं आया।.... इस फूल की माला में अजीब खुशबू है और उस खुशबू में अजीब तासीर है। इस माला को पहनो तो दिल-दिमाग पर अमिट प्रभाव छा जाता है।

हजरत मौलाना सय्यद हबीब साहब (सम्पादक, सियासत लाहौर) अपने उर्दू अखबार में जिसका नाम उन्होंने 'जुबैर हिन्द' रखा, लिखते हैं—हिन्दी में मैंने रामायण, महाभारत और असंख्य किताबों का अध्ययन किया, मगर जिस किताब ने मेरे दिल व दिमाग पर कब्जा कर लिया, जिसका नशा मुझे आज तक मालूम होता है, वह है श्रीमद्भगवद्गीता।

सन् 1941-42 की बात है। डा. सैयद महमूद जो उस समय कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य थे तथा बाद में बिहार के मंत्री रहे। अपने विद्यार्थी काल की घटना बताते थे जब वे जर्मनी में कानून का अध्ययन करने गए थे। एक जर्मन प्रो. महोदय ने उन्हें विश्वविद्यालय के प्रांगण में रोककर गीता के विषय में कुछ सवाल पूछे। डा. महमूद भौचक्के रह गए और उन्होंने कहा—मैं एक मुसलमान हूं, मैंने गीता नहीं पढ़ी। वह प्रो. आश्चर्यचकित था। उसने कहा—इससे क्या फर्क पड़ता है। मैं एक ईसाई हूं, आप एक मुसलमान हो सकते हैं, यहूदी हो सकते हैं, अन्य कुछ भी हो सकते हैं, पर आपके पास गीता के रूप में आपके देश में एक खजाना है और आपने उसे नहीं पढ़ा। आप भारतीय कैसे कहला सकते हैं? आपको ये चीजें जाननी चाहिएं। यह आपकी राष्ट्रीय धरोहर है। यह किसी धर्म विशेष की धरोहर नहीं। डा. महमूद के लिए यह एक नया अनुभव था। उसके पहले किसी ने ऐसा सुझाव नहीं दिया था। लेकिन उसके बाद उन्होंने गीता पढ़ी और वहां से लौटने पर इस घटना की चर्चा गांधीजी से की।

गांधीजी ने उन्हें सलाह दी थी कि जब भी कोई समझदार व्यक्ति आपसे मिल जाए तब इस बात की चर्चा आप जरूर कर दें।

कृष्णभक्त मुस्लिम बहन-रैहाना तैयबजी

गुजरात के मुस्लिम परिवार में जन्मी बहन रैहाना तैयबजी अब्बास तैयबजी की सुपुत्री हैं। भारतीयता से ओत-प्रोत मुस्लिम महिला हैं। गांधीजी की शिष्या हैं। वह गीता को विश्व का अद्वितीय शास्त्र मानती हैं। वह अपनी आत्मकथा में लिखती हैं—'सन् 1923 में मेरे जीवन में गीताजी प्रकट हुई। 'यंग इंडिया'

में बापू द्वारा गीता की तारीफ पढ़ी। मैंने गीता को पढ़ा और उसे पढ़ते-पढ़ते मेरे दिल, दिमाग, मेरे समस्त प्राणों पर गोया बिजलियां गिरती चली गईं। मैं पागल हो गई। विह्वल हो गई। व्याकुल हो गई। मैंने लगातार उसे 20 बार पढ़ लिया पर हाथ से न रख सकी। रात को तकिये तले रखकर सोती। मेरी आँखों के सामने एक अद्‌भुत, सुन्दर, तेजोमय, आनन्दमय दुनिया गोया खुल गई। गीता के सात सौ श्लोकों में मुझे चौदह ब्रह्माण्डों के रहस्य नजर आने लगे। मेरे सभी सवालों के एकदम जवाब मिल गए। हर उलझन का सुलझाव मिल गया। हर अंधेरे का दीपक मिल गया। हर गुमराही में रहनुमा (मार्गदर्शक) मिल गया। गीता में मुझे सब कुछ मिल गया।'

मेरे परिवार वाले व अन्य कुछ मजहबी मुसलमान मुझे गीता पढ़ते देखकर, कृष्ण भक्ति के भजन गाते देखकर काफी क्रुद्ध होते थे। पर मैं विवश थी। और ये मेरे पूर्व जन्म के संस्कार ही मुझे यह सब करने को बाध्य करते थे।

रैहाना बहिन भारत भूमि को परम पावन व पुण्यभूमि मानती हैं। उनका कहना है—भारत धर्मप्राण योगियों का परम पवित्र देश है। अन्य पश्चिमी देश भोगियों के देश हैं। भारत की भूमि पर भगवान् के मंगलमय चरण पड़े हैं, इसकी पवित्र धरती पर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने अवतार लेकर लीलाएं की हैं। त्याग एवं वैराग्य का यह केन्द्र रहा है। अतः यदि भोगी देश योगी भारत से प्रेरणा ग्रहण करें तो ठीक। किन्तु, आज तो उलटी गंगा बह रही है। जहां कभी पश्चिमी देश भारत को धर्म भूमि, योगियों का महान् पवित्र देश मानकर उससे शिक्षा ग्रहण करते थे। वहां आज हम भारतीय उलटे भोगी देशों को गुरु मानकर उनका अंधानुकरण करने में ही गौरव का अनुभव कर रहे हैं। भारत के अधःपतन का एक यही कारण है।

भारत के **भूतपूर्व उपराष्ट्रपति स्व. श्री मोहम्मद करीम छागला** आजीवन गीता के गीत गाते रहे। उनकी हिन्दू धर्मग्रंथों में असीम आस्था थी। उन्हें वे राष्ट्रीय ग्रन्थ मानते थे। उनकी मान्यता थी कि प्रत्येक भारतवासी, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का हो, हिन्दू है।

सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश महामहिम बेग साहब ने गीता का अध्ययन कर अपने विचार तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को एक विशेष नोट लिख, प्रेषित कर राय दी थी कि यह एक ऐसी अनमोल पुस्तक है जो सभी मजहब तो क्या मनुष्य मात्र के पढ़ने की जरूरी किताब है। इसका अध्ययन शिक्षण संस्थाओं में प्रारम्भ से लेकर कॉलेज तक अनिवार्य होना चाहिए। हकीकत तो यह है कि श्रीमद्‌भगवद्‌गीता भारत की सही पहचान है।

ईरान के मुस्लिम **संत मेहरबान शहरयार** (मेहर बाबा) ने कहा था कि गीता केवल हिन्दुओं के लिए नहीं है, यह तो मनुष्य मात्र के लिए है। धरती पर बसने वाली सभी जातियां गीता को जीवन में उतार लें तो सम्पूर्ण संसार प्रेममय बन जाए तथा सभी झगड़े-फसाद समूल नष्ट हो जाएं।

संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् तथा वर्ष 2001 में राष्ट्रीय सद्भावना पुरस्कार से सम्मानित **आचार्य हनीफखां** कहते हैं कि 'मेरा पंथ इसलाम है किन्तु मेरा जीवन जीने का मार्ग श्रीमद्भगवद्गीता है।'

'श्रीमद्भगवद्गीता राष्ट्रीय एकता की जबरदस्त मिसाल है। वह जाति, सम्प्रदाय और राष्ट्र की सीमा से ऊपर है। गीता एक सिद्धान्त है, जीवनशैली है और सभी को इसे पढ़ना चाहिए।' ऐसा कहना है बिंत जेहरा रिज़वी का जिन्होंने 'गीता' का उर्दू में अनुवाद कर अपने खर्चे से हाल ही में प्रकाशित किया है।

आधुनिक यूरोप में गीता का सर्वप्रथम परिचय 1776 ई. में हुआ जब इस्ट इंडिया कम्पनी के आदेश पर **सर विल्किन्स** ने गीता का अंग्रेजी अनुवाद किया। भारत में इस्ट इंडिया कम्पनी के अंग्रेज प्रशासकों ने अपनी न्यायिक एवं प्रशासनिक सुविधा के लिए गीता का अनुवाद कराया जिसने पूरे यूरोप के विचार जगत् में उथल-पुथल मचा दी। इसकी भूमिका में स्वयं गवर्नर जनरल वॉरेन हस्टिंग्स ने लिखा—'भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के ध्वस्त हो जाने के उपरान्त भी भारतीय दर्शन के अमर गायक पूजे जाते रहेंगे। वह पुनः कहता है गीता का उपदेश किसी भी जाति को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने में अद्वितीय है।

दो वर्ष बाद **फ्रेंच विद्वान् डुपरो** ने गीता का फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद किया। गीता का 700 श्लोक का छोटा-सा काव्य जिसने भोगवाद से पीड़ित पश्चिम की आत्मा को अत्यधिक शान्ति प्रदान की है। मैजिनी के जीवन पर इसके उपदेश का बहुत प्रभाव पड़ा। मृत्युशय्या पर पड़े हुए शोपनहावर को गीता से इतना आत्मबल मिला कि वह स्वस्थ हो गया और उसे असीम शान्ति प्राप्त हुई।

इम्यानुल कांट की गणना दुनिया के अजर-अमर दार्शनिकों में है। प्रशा के कानिग्सवर्ग नामक नगर में सन् 1724 में एक गरीब परिवार में मोची के घर में उनका जन्म हुआ था। उसकी मां बड़ी धर्मनिष्ठ थी। वह पाइटिस्ट सम्प्रदाय की अनुगामिनी थी जिसमें सदाचार और नैतिकता को सर्वोच्च महत्त्व दिया जाता था। किन्तु 'पाइटिस्ट' सम्प्रदाय में संयम एवं अनुशासन के नियम बड़े कड़े थे। बालक कांट इसी सांचे में ढला था—माता के मार्गदर्शन में उसकी संकल्प शक्ति और आचरण-बुद्धि फौलाद की दृढ़ता में परिणत होती रही।

माता के साथ कांट प्रतिदिन दोनों समय चर्च जाता था। और अपनी दैनिक-चर्या का काफी समय पादरियों के धर्मोपाख्यान सुनने में बिताता था। किन्तु माता की ईश्वर निष्ठा का जितना गहरा बीजारोपण उसकी चेतना पर हुआ पादरियों के आचरण से उतनी ही घृणा उसे होने लगी। और इसी विद्रोह के आवेग में एक दिन उसने अपनी माता से कह दिया—प्यारी मां, सैकड़ों-हजारों भयभीत लोगों को पादरियों के सामने घुटने टेक कर पाप मुक्ति का आशीर्वाद प्राप्त करते देख मेरा मन कहता है कि यदि कहीं भगवान के कोप जैसा कोई विधान है तो वह बिजली बनकर गिरे। जिसकी आग में यह चर्च, पादरियों का यह मठ और ये मूढ़ पुजारी जलकर भस्म हो जाएं।

इसी विद्रोह भावना की स्फूर्ति में कांट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'क्रिटिक आव प्योर रीजन, लिखी जिसने विचारों की दुनिया में तहलका मचा दिया। उसके बाद 'क्रिटिक आव प्रैक्टिकल रीजन' प्रकाशित हुआ। सारे यूरोप के मठाधीशों की नींद हराम हो गई। सामंतवाद के किले थरथराने लगे और चर्च की दीवारें लड़खड़ाने लगी।

ये दोनों पुस्तकें ज्ञानयोग पर थी। ज्ञान क्या है? ईश्वर क्या है, धर्म क्या है? इन दोनों पुस्तकों में इन प्रश्नों का जो विवेचन है उससे पाश्चात्य दर्शन की कई स्थापनाओं में आमूल-चूल परिवर्तन हुए। उसने अपने प्रखर आलोचक हाडने को कहा था—मैं दार्शनिक नहीं हूं, मैं एक मामूली प्रोफेसर हूं। किन्तु मैं यह देखकर बेहद पीड़ित हूं कि भय ने मनुष्य को सर्कस का पशु बना कर रखा है। मैं इस भय को मिटाने का बीड़ा उठा चुका हूं। बाइबिल में वर्णित 'पाप का भय' आज के जगत् का सबसे भयंकर भय है। मैं उसको तोड़ दूंगा। मैं मनुष्य को धर्म के भय, पाप के भय, ईश्वर के भय से मुक्त करना चाहता हूं। भय ही वास्तव में पाप का बीज है। मनुष्य और उसकी आत्मा के बीच में भय का पहाड़ ही सबसे बड़ी बाधा है।

जर्मन दार्शनिक शोपनहावर तथा काण्ट, दोनों के दर्शन पर गीता के कर्तव्यवाद एवं निष्काम कर्मयोग की स्पष्ट छाप है। काण्ट भूगोल और Astronomy का शिक्षक था। वह कहता है—मुझे भूगोल पढ़ाने के लिए भिन्न-भिन्न देशों की जानकारी करनी पड़ती थी। इसके साथ उन देशों का परिचय भी करना पड़ता था। इस तरह से मैं भारत से परिचित हुआ। मैं जैसे-जैसे उसका अध्ययन करता गया वैसे-वैसे उसके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती गई।....मैंने उसके तत्त्व चिन्तन में रुचि ली। गीता और उपनिषदों का फ्रेंच भाषा में जो अनुवाद छपा मैंने उसे पढ़ा और उसको मैंने आजीवन स्मृत रखा।

काण्ट पर गीता का ऐसा रंग चढ़ा कि वह भूगोल और Astronomy छोड़कर दार्शनिक बन गया। उसके दर्शन पर गीता का पूरा प्रभाव है।

काण्ट नैतिकता की कसौटी देते हुए कहता है प्रत्येक कार्य करते हुए विचार रखो कि तुम Kingdom of ends के सदस्य हो। प्रत्येक मानव अपने-आपमें एक End उद्देश्य, लक्ष्य है। वह मात्र दूसरों के हित या स्वार्थपूर्ति का साधन मात्र नहीं है। यह संसार एक Kingdom of ends मानव जाति में एक लक्ष्य है। वह किसी अन्य की सुख-सुविधा के लिए साधन मात्र नहीं अतः अपने आपको जीवन में एक उद्देश्य या लक्ष्य मानकर दूसरे मानव को भी अपने समान लक्ष्य मानकर हम सदा व्यवहार करें।

वह कहता है Moral laws without all ifs and but and condition. गीता के duty for the sake of duty का पूरा प्रभाव उसके नैतिक सिद्धान्त पर पड़ा।

काण्ट	गीता
(1) कर्तव्य कर्तव्य के लिए किसी फल की आकांक्षा से रहित।	**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।** 2/47, गीता
(2) Nothing is good except the goodwill भाव संशुद्धि के अतिरिक्त विश्व में कोई वस्तु वरेण्य नहीं है।	**मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः। भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।।** 17/16, गीता
(3) शुद्ध विवेक राग-द्वेष से मुक्त है। नैतिक सिद्धान्त देश, काल, परिस्थिति, भावना निरपेक्ष सिद्धान्त है।	**यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति। शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।** 12/17, गीता

महान् संगीतकार लुडविन वान बीथोवन—बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि महान् जर्मन संगीतज्ञ लुडविन बीथोवन भारतीय वेदान्त से प्रभावित थे। उन्होंने कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के अतिरिक्त उपनिषद् और भगवद्गीता का भी अध्ययन किया था। बीथोवन ने अपनी डेस्क पर श्रीकृष्ण के इस संदेश को जड़वाकर रख लिया था। संदेश यह था—'जो है वह मैं हूं। जो था वह मैं हूं और मैं ही हूं वह जो सदा रहेगा।'

कर्नल आल्काट ने एक ऐसे आदमी की कथा लिखी है जो भू-गर्भ की खान में कुछ पढ़ रहा था। वह अपने विश्राम का काल अध्ययन में लगा रहा था और आल्काट महाशय के पूछने पर उत्तर दिया—गीता पढ़ रहा हूं।

हेनरी थोरो और इमर्सन

अमेरीका के बहुत बड़े दार्शनिक थोरो, हम तो उसके दीवाने हैं। हमने उस पर Thesis लिखी है। हम उसकी भूमि पर होकर आए हैं। हमने उनके बारे में बहुत प्यार से पढ़ा है। हम समझते हैं कि थोरो के ऊपर हम निछावर हो जाएं। अमेरीका का दार्शनिक जो बोस्टन में रहने वाला था। यह बोस्टन में अपना घर छोड़ करके वहां से 15-20 किलोमीटर दूर वोल्डेन नामक तालाब था, जंगल था, वहां आश्रम बनाकर रहता था। एक बार इमर्सन से मिलने को आया। इमर्सन उससे पत्राचार करता रहता था। थोरो पूछता है इस सप्ताह का सबसे बड़ा समाचार क्या है। इमर्सन कहता है सबसे अच्छी खबर यह है चार्ल्स विल्किन्स का अंग्रेजी गीता अनुवाद मेरी लाइब्रेरी में पहुंच चुका है। थोरो ने उस गीता को देखा और कहा—मैं अपने आश्रम में पढ़ने के लिए ले जाता हूं। इमर्सन ने कहा, मैंने लाइब्रेरी के लिए मंगाया है पढ़ने के लिए। थोरो ने कहा, गीता लाइब्रेरी में पढ़ने की वस्तु नहीं है। गीता आश्रम में पढ़ने की वस्तु है। तो मैं क्या करूंगा? तुम रोज मेरे पास आओ प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में। रोज इमर्सन बोस्टन से 20-25 मील दूर वाल्डेन में थोरो के आश्रम में गीता पढ़ने जाता था। एक दिन देखा कि थोरो की चौकी के नीचे बहुत से सांप पड़े हुए हैं और थोरो ध्यान मग्न था, वह डरकर चला गया। फिर दो घण्टा बाद पुनः आया तो उसने थोरो से कहा कि आप यहां न पढ़ें। यहां आपके प्राणों को खतरा है—सांपों से, जंगली पशुओं से। थोरो ने कहा, तुम मुंह छिपाकर पीठ करके तुरन्त चले जाओ और कभी अपना मुंह मत दिखाना। गीता मुझे आत्मा की अमरता का संदेश देती है और तुम मौत का भय दिखाते हो। मैंने तो मौत को भी फांसी दे दी है और तुम मुझे मौत से डराते हो। तब इमर्सन ने माफी मांगी कि ऐसी गलती फिर कभी नहीं होगी। और तब उसे समझ में आया गीता लाइब्रेरी में पढ़ने की वस्तु नहीं वरन् आश्रम में पढ़ने का ग्रंथ है।

जब थोरो जंगल की नदी में स्नान करता था तब मछलियां उसके ऊपर आकर खेलने लगती थी, गिलहरियां उसके कंधों पर नाचने लगती थी, पक्षी उसके हाथ और कंधे पर कलरव करते थे। पर जब इमर्सन आता था तो उसे देखकर सभी मछलियां पानी में भाग जाती थी, गिलहरियां वृक्षों पर चढ़ जाती थी। पक्षी उड़ जाते थे। तब इमर्सन ने पूछा, मुझे देखते ही क्यों भाग जाती हैं। तब थोरो ने कहा, तुम अवश्य मांस खाते होगे। ये सब जानते हैं कौन मेरा रक्षक और प्रेमी है और कौन मेरा भक्षक है। यह कहकर थोरो ने इमर्सन का मांस खाना छुड़वाया।

ये दोनों नाम सिर्फ अमेरीका में ही नहीं वरन् सभी यूरोपीय देशों में गूंज गए। क्यों? स्वामी रामतीर्थ ने हेनरी थोरो को ब्रह्मनिष्ठ बताया। क्यों? स्वयं

इमर्सन की कलम से थोरो के जीवन का एक शब्दचित्र देखिये। थोरो के लिए इमर्सन लिखता है कि—'मैं थोरो से मिलने उस निर्जन विपिन में गया जहां वह एकान्तवास कर रहा था। तो क्या देखता हूं कि इस वन में सर्प बहुत हैं, मधुमक्खियों की भरमार है और कई-कई सर्प तो अकसर थोरो की बांहों में तो कभी पैरों पर चढ़ चिपट जाते थे। लेकिन थोरो न उन्हें अपने शरीर से परे करता था और न किंचित् भी उनसे डरता था। और वे उसके पैरों व बांहों में चिपटे रहते थे। उनका बिस्तर देखा तो उसमें तमाम मधुमक्खियां डेरा जमाए हुए थी। गोया वे थोरो की मित्र हों और थोरो उन्हीं मधुमक्खियों से सटे बिस्तर पर आराम से बैठकर पढ़ता-लिखता रहता, चिन्तन-मनन करता। एक भी मधुमक्खी को न वह बिस्तर से हटाने की कोशिश करता न उसकी परवाह ही करता। थोरो पढ़ता रहता उस पर सुखासीन हो और मधुमक्खियां उसके साथ तराने गाती रहती।

फिर थोरो ने इमर्सन को अपना लिखा ग्रंथ वाल्डन (Waldone) दिखाया। इमर्सन ने उसमें देखा, भगवद्गीता और उपनिषदों की महिमा थोरो ने जगह-जगह दर्ज कर रखी है। थोरो ने उस ग्रंथ (वाल्डन) में लिखा है—सवेरे उठते ही मैं अपने दिल और दिमाग को, विवेक को भगवद्गीता रूपी पवित्रतम गंगाजल से स्नान कराता हूं। गीता का तत्त्वज्ञान सर्वव्यापी और सर्वश्रेष्ठ है—इसे हजारों साल पहले देवताओं ने ही लिखा था लेकिन तब से आज तक दुनिया में इसकी टक्कर का ग्रंथ नहीं लिखा जा सका। आज के युग में नई सभ्यता ने असीम वैज्ञानिक प्रगति तथा शिक्षा में कितने ही कीर्त्तिमान कायम किए हों, लेकिन गीता ज्ञान की तुलना में ये सब उपलब्धियां बहुत छोटी मालूम पड़ती हैं, नगण्यप्राय। गीता का ज्ञान हमारी परिकल्पना और विचारों से इतना परे और पृथक् लगता है कि सोचना पड़ता है कि 'गीता' किसी और ही युग की देन है।

संसार में कितने ही स्मारक खड़े किए गए। मिस्र देश के पिरामिड भी बने लेकिन मैं देखता हूं कि उस पुरानी दुनिया के जितने भी स्मारक हैं—वे सब मिलकर भी गीता का मुकाबला नहीं कर सकते क्योंकि मेरे विचार से 'गीता' उस प्राचीन युग का श्रेष्ठतम स्मारक है और वह महान् ज्ञान-स्मारक है।

हेनरी थोरो जीवनान्त तक उपनिषदों और गीता के तत्त्वज्ञान को अन्तर में बसाए रहा—उसे जीवन में उतारने में सचेष्ट रहा। इसका अभ्यास करता रहा। आजीवन अविवाहित और विरक्त जीवन बिताया। यही हाल इमर्सन का था। उसके प्रेरणास्रोत भी 'गीता और उपनिषद्' ही थे। अपने लेखन के पदे-पदे वह 'गीता और उपनिषद्' को बतौर प्रमाण पिरोता चलता था और यही वह इमर्सन था—जिसने पश्चिम के वैचारिक जगत् में नयी जागृति पैदा की और अमेरीका का सर्व प्रसिद्ध रचनाकार माना गया।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर अंतिम बार अमेरीका गये थे तो उन्होंने महात्मा थोरो के घर जाकर उनके आश्रम के दर्शन किए। आश्रम स्वामी से, रवीन्द्र ने पूछा कि महात्मा थोरो किस वस्तु को सबसे अधिक प्यार करते थे? गृहस्वामी ने एक पुस्तक दिखाकर कहा कि इसी वस्तु को वह सबसे अधिक प्यार करते थे, उनकी स्मृति की रक्षा के लिए यह पुस्तक पूज्यभाव से सुरक्षित रखी गई थी। उत्कंठापूर्वक कवीन्द्र ने जब उस पुस्तक को देखा तो वह पुस्तक गीता थी।

थोरो गोलोक में केवल 32-33 वर्ष जीया फिर उसके बाद शरीर छोड़कर चला गया। बड़ा ही तेजस्वी आदमी था। थोरो की स्मृति को लेकर इमर्सन ने गीता का प्रचार शुरू किया। इमर्सन एक चर्च में पादरी था। और उसने रविवार को चर्च में गीता पढ़ानी प्रारम्भ की। लोगों ने शिकायत की तुम्हें बाइबिल पढ़ाने को रखा गया है, तुम काफिरों की पुस्तक क्यों पढ़ा रहे हो। उसने कहा यदि तुम्हें Universal Bible चाहिए तो वह भगवद्गीता है। यदि आपको क्रिश्चियन बाइबिल चाहिए तो यही पड़ी रहने दो। उसने चर्च की नौकरी त्याग दी लेकिन भगवद्गीता को हृदय से लगाया। और सारे संसार में भगवद्गीता का प्रचार शुरू किया। उस समय इंग्लैण्ड में बहुत बड़ा दार्शनिक हुआ था, उसका नाम था **कार्लाइल**। अंग्रेजी का बहुत बड़ा लेखक था। इंग्लैण्ड में कार्लाइस यूनिवर्सिटी है। कार्लाइल ने कहा—मेरे मित्र! तुम डालरों के देश से आए हो। तुम मेरे लिए क्या उपहार लाए हो? उसने कहा—मुझे शर्मिन्दा मत करो। सांस्कृतिक दृष्टि से हम दिवालिये हैं। हमारे पास अपना कुछ भी नहीं है। हमारी जाति यूरोप से गई है, धर्म हमारा यहूदियों का दिया हुआ है, इजराइल से गया हुआ है। इसलिए अमेरीकन नाम से अपना कुछ है ही नहीं जो आपको हम कुछ दे सकें। और आंखों में आंसू आ गए। अरे यार, मैंने उपहार मांगा और तुम आंसू बहाने लगे। तो तुमने मुझसे आज उपहार मांगा है तो आज मैं तुम्हें जीवन की सबसे बड़ी दौलत बांट रहा हूं। जिसे मैं किसी को नहीं दे सकता था। मेरे लिए पावनतम और पवित्रतम वस्तु थी पर आज आपने उपहार मांगा तो दे रहा हूं। उसने जेब से भगवद्गीता की पोथी निकाली। मेरे मित्र! गुरु थोरो प्रतिदिन प्रातःकाल गीता के अमृत जल से स्नान करते थे, इस गीता का पाठ प्रतिदिन करते थे। गीता का पाठ करते हुए श्रद्धा के आंसुओं से पवित्र हुई गीता की पोथी मेरी जिन्दगी की सबसे बड़ी दौलत थी यही गीता की पोथी आपको दे रहा हूं। कार्लाइल ने उसकी पीठ पर हाथ रखा और कहा—मेरे मित्र! जैसे लगता है तुम मेरे मन की बात ताड़ गए हो। क्या तुम मुझे देने के लिए गीता लाए हो? मैं तुझे देने के लिए क्या लाया था? मैं भी तुझे देने के लिए भगवद्गीता ही लाया था। और कार्लाइल ने भी अपनी जेब से भगवद्गीता निकाली और इमर्सन को दी। कार्लाइल इंग्लैण्ड

का सबसे बड़ा दार्शनिक, और इमर्सन अमेरीका का सबसे बड़ा दार्शनिक परस्पर मिलते हैं, इंग्लैण्ड में मिलते हैं और परस्पर गीता भेंट करते हैं।

यह घटना एक मैगजीन में छपी। और वह मैगजीन मसूरी से एक युवक को, जो नया-नया एम.ए. पास करके Philosophy का Lecturer लगा था, उसके हाथ में मैगजीन पड़ी। रात भर वह मैगजीन पढ़ता रहा। उसने पढ़ा इंग्लैण्ड का सबसे बड़ा दार्शनिक और अमेरीका का सबसे बड़ा दार्शनिक एक-दूसरे से इंग्लैण्ड में मिलने पर एक-दूसरे को भगवद्गीता भेंट करते हैं। तब हमें पाश्चात्य दर्शन से क्या लेना है? जब पश्चिम वाले भी गीता पर मुग्ध हैं तो उसने पाश्चात्य दर्शन की किताबों को ताक पर रख दिया और गीता स्वाध्याय में लग गया। **धर्म क्षेत्रे-कुरु क्षेत्रे....।**

उस भगवद्गीता की कृपा से वह हिन्दुत्व का, भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा व्याख्याता और इस युग की दार्शनिक मनीषा का मणिमुकुट बना। **डॉ. राधाकृष्णन्** भारत का राष्ट्रपति भी हुआ। उस राधाकृष्णन् के जीवन में परिवर्तन करने वाली है यह भगवद्गीता। जिसको गीता ने कितना महान् व्याख्याता बना दिया!

इस घटना का प्रभाव **भाई परमानन्द** पर भी हुआ। वे कहते हैं—अपना विद्यार्थी जीवन समाप्त करने के बाद मुझे खयाल हुआ कि वह कौन-सी पुस्तक है जिसे मैं अपने स्वाध्याय के लिए हर समय अपने साथ रख सकता हूं। कार्लाइल की लिखी किताब 'सारटर रिसार्टस' ने मेरे दिल पर इतना गहरा असर डाला कि मैंने उसे अपना साथी बना लिया। कुछ समय गुजर गया। अब मुझे यह बात पढ़ने को मिली कि एक बार अमेरीका का प्रसिद्ध दार्शनिक इमर्सन कार्लाइल से मिलने गया। विदा के समय कार्लाइल ने इमर्सन को भगवद्गीता की एक प्रति उपहार स्वरूप भेंट की, इस घटना ने मेरे अन्दर परिवर्तन उत्पन्न किया। मैंने 'सारटर रिसार्टस' को अलग रख दिया और उसकी जगह भगवद्गीता को अपने साथ कर लिया।

अमेरीका का पत्रकार क्रिस्टोफर ईश्रवुड कहता है—जब मैं बच्चा था तो मुझे Sunday bible school में भेजा गया। तब वहां पर उसको यह कल्पना दी गई कि एक खुदा दूर ऊपर सातवें आसमान पर बैठा है और उसकी कचहरी अभी बंद है। कयामत के दिन के बाद उसकी कचहरी खुलेगी। उसने Sunday bible school में पढ़ाने वाली Lady teacher से पूछा, कयामत कब आएगी? उसने कहा—देखो जी! दस-दस हजार वर्ष के दस हजार युग बीत जाएंगे उसके बाद कयामत का दिन आएगा तब खुदा की कचहरी खुलेगी। तब आदमी के अच्छे-बुरे कर्मों का फैसला होगा। उसने कहा—मेरी बाल बुद्धि ने ठोकर मारकर कहा, ऐसे

खुदा की क्या जरूरत? मैं जी रहा हूं, आज मेरे साथ कोई अन्याय करे, मेरा सामान छीन लेवे, अन्यायपूर्वक मुझे थप्पड़ मार दे, चोट मार दे, मेरा धर्म लूट ले, मेरा सामान लूट ले, मेरी इज्जत पर हमला करे, मुझे तो न्याय चाहिए। खुदा के राज्य की कचहरी तो बंद है। कब तक? 10,000×10,000 दस हजार गुणा दस हजार वर्ष यानी एक अरब वर्ष तक, ऐसे खुदा की क्या जरूरत है? कहते हैं इससे तो एक धरती का मजिस्ट्रेट भी खुदा से बहुत अच्छा होगा। क्योंकि कुछ दिन में या माह या वर्ष में न्याय दे देता है। ऐसा खुदा बेकार है। ऐसे खुदा को लेकर मैं क्या करूं। मुझे ऐसे भगवान् में विश्वास नहीं है। तो कान मरोड़कर टीचर ने कहा—कहो ईश्वर है। नहीं, मैं नहीं मानता ऐसे खुदा को। मैं ऐसे खुदा को मानने को तैयार नहीं हूं। और उसने बाइबिल स्कूल छोड़ दी। बहुत पहले लोगों ने ईसा को फांसी पर चढ़ाया था। मैंने खुदा को ही फांसी पर चढ़ा दिया। कोई खुदा नहीं। वह इसी विश्वास में जीने लगा। लड़का होशियार था। बुद्धि का तेज था। पढ़-लिख गया। कुछ कविता लिखने लगा, कुछ लेख लिखने लगा, धीरे-धीरे उपन्यास भी लिखने लगा। गहरे विचारों पर लेख लिखने लगा। अच्छा पैसा कमाने लगा। भवन बना लिए, कारें बना ली, सामाजिक प्रतिष्ठा भी हो गई। कहने लगा खुदा कुछ नहीं है। खुदा के बिना ही भवन बना लिया। कारें बना ली, प्रतिष्ठा बना ली। खुदा कुछ नहीं है। खुदा का मेरे जीवन में कोई स्थान नहीं है। खुदा के बिना मैं बहुत कुछ सफल हो गया हूं। अतः बिना ईश्वर की कृपा के मैं लेखक, साहित्यकार, उपन्यासकार, पत्रकार, कवि बन गया हूं। खुदा कुछ नहीं है। मनुष्य ही सब कुछ है। अचानक कोरिया में युद्ध छिड़ा तो चीन ने कोरिया पर हमला कर दिया। उत्तरी कोरिया को चीन ने खा लिया। दक्षिणी कोरिया की रक्षा के लिए अमेरीका ने Jump किया। अमेरीका को 10-12 हजार मील दूर से सैनिक उड़ाकर लाने पड़ते थे। चीन का प्रदेश साथ लगता था। चीन ने लगभग सत्तर लाख सैनिकों को स्वाहा कर दिया। अमेरीका को धूल चाटनी पड़ी। वहां ईश्रवुड ने देखा—अमेरीका के खूब सुन्दर, गोरे-चिट्टे जवान सैनिक खूब चमकते हुए, उछलते हुए गीत गाते हुए आ रहे हैं और अचानक एक बम गिरता है और मनुष्य के शरीर के चिथड़े उड़ जाते हैं। वह कहता है मैंने सोचा था कि मनुष्य सब कुछ है। और इस मनुष्य की यह दुर्दशा। मनुष्य तो राक्षस है। मनुष्य मनुष्य को मार रहा है, मनुष्य-मनुष्य को खा रहा है। क्या हो रहा है? मैं समझा था जवानी ही सब कुछ है और यहां जवानी के चिथड़े उड़ रहे हैं। सबसे धनी देश अमेरीका के खूबसूरत जवान बड़ी उमंगों से उछलते-कूदते हुए, गाते-संगीत बजाते हुए, कोई गिटार बजा रहा है, रणभूमि में उछलते हुए आते हैं, चीन बम गिरा रहा है और उन सैनिकों की बोटी-बोटी बिखर गई। मैंने बहुत से भवन बनाए हैं। यहां भी बहुत से भवन हैं। एक बम गिरता है भवन का जर्रा-जर्रा बिखर जाता है। मैंने सोचा पैसा

सब कुछ है, पर बड़े-बड़े बैंकों को आग लगती है और गड्डियों के गड्डी नोट जलकर राख। नोटों की गड्डियां जिनके नम्बर और नाम दिख रहे हैं पर जलकर राख हो गए हैं। मैंने सोचा मनुष्य सब कुछ है। मनुष्य भेड़िया है। मैंने सोचा जवानी सब कुछ है। जवानी जलकर खाक हो रही है। मैंने सोचा भवन सब कुछ है, भवन के ईंट-पत्थर बिखर रहे हैं। मैंने सोचा धन सब कुछ है। धन धूल में बिखर रहा है। फिर मैंने सोचा खुदा को मैंने छोड़ दिया। खुदा में विश्वास नहीं है, खुदा को मैंने माना नहीं। मैंने सोचा मनुष्य सब कुछ है, धन सब कुछ है, भवन सब कुछ है, कारें सब कुछ है ये सब कुछ तो भस्म हो रहे हैं। खुदा को मैं मानता नहीं हूं। तो मैं किसके लिए जीऊं। मनुष्य के लिए जो भेड़िया हो रहा है जवानी के लिए जो धूल हो रही है, भवन जिसकी ईंटें बिखर रही है। खुदा के लिए जिसको मैं मानता ही नहीं हूं। क्योंकि वह मेरे से बहुत दूर सातवें आसमान पर बैठा है जो एक अरब वर्ष बाद मेरे अच्छे-बुरे का फैसला करेगा। पर ऐसा ईश्वर मेरे किस काम का? तो प्रश्न शेष रह जाता है मैं किसके लिए जीऊं?

तो वह हताश-निराश चोट खाये हुए व्यक्ति के समान अमेरीका में लौटकर आया। खोजता रहा मैं किसके लिए जीऊं। क्या जीवन जीने योग्य है? बार-बार अपने आप से पूछता कि मैं किसके लिए जीऊं। मुझे कोई खूँटी नहीं मिली जिस पर मैं जिन्दगी को टांग सकूं। जिन्दगी को जीने के लिए कोई खूँटी, कोई आधार, कोई विश्वास, कोई आस्था चाहिए।

अमेरीका के कैलीफोर्निया स्टेट में हालीवुड नामक बड़ा प्रसिद्ध नगर है। जहां पर पश्चिम की फिल्म अभिनेत्रियां, फिल्म अभिनेता बहुत ज्यादा रहते हैं। जैसे मुम्बई को कहा जाता है—बालीवुड, फिल्म इंडस्ट्री के कारण। तो पश्चिम में हालीवुड अमेरीका में है जो फिल्म इंडस्ट्री का बहुत बड़ा केन्द्र है। संयोगवशात वहां एक रामकृष्ण मिशन है। रामकृष्ण मिशन के स्वामी प्रभवानन्दजी कुछ शिष्यों के साथ बैठे हुए थे और सत्संग-गोष्ठी कर रहे थे। आधा दरवाजा आश्रम का खुला हुआ है। ईश्रवुड बाहर से जा रहा है। जेब में पिस्तौल लिए हुए जा रहा है। स्वामीजी ने देखा, अरे! ये कौन? ईश्रवुड है क्या? क्यों जा रहा है? हां स्वामीजी, यह ईश्रवुड है। क्या हो गया इसको। बाल बिखरे हुए, फटे हुए कपड़े पहने हुए, चेहरे से उसके हवाइयां उड़ रही है। अजीब किस्म की ड्रेस पहने हुआ है, कैसे जा रहा है? इतना बड़ा आदमी, इतना बड़ा लेखक कैसे जा रहा है? शिष्यों ने कहा— हां-हां, स्वामीजी! कुछ समय से पगला गया है। कहता है आत्महत्या करूंगा? स्वामी ने कहा, बुलाओ-बुलाओ। उसे कौन बुलाएगा? स्वामीजी ने कहा, नहीं, बुलाओ उसे। तब उसे बुलाया। दरवाजे पर रुक गया। और स्वामीजी को गाली देने लगा। स्वामी ने कहा, आओ, बैठो, मन

की बातचीत करो। क्या बात है बताओ। नहीं स्वामी! धर्म के ठेकेदारों से मुझे बहुत घृणा है, मैं नहीं सुनूंगा आपकी बात। क्या करने जा रहे हो? मैं आत्महत्या करने जा रहा हूं। आज मैंने प्रतिज्ञा की है कि अगर असल बाप का बेटा हूं तो आत्महत्या करके रहूंगा। स्वामीजी ने कहा, तुम आत्महत्या के लिए स्वतंत्र हो, कोई तुम्हें रोक नहीं सकता। मेरी बात सुनने के बाद आत्महत्या का स्कोप बना रहेगा। आत्महत्या तो उसके बाद भी कर ही सकते हो। आत्महत्या करने के बाद तो मेरी बात सुनने नहीं आ सकते हो। आओ, मेरे से बातचीत करो। ईश्रवुड ने कहा—ओ स्वामी! मैं तेरी बात केवल एक शर्त पर सुन सकता हूं। स्वामीजी ने कहा, क्या बात है? अगर आप मुझे शान्ति नहीं दे सके तो मैं आपको भी गोली मार दूंगा फिर अपने को। स्वामीजी ने कहा—आओ प्यारे, आ जाओ। हम इसके लिए भी तैयार हैं। बड़े अचम्भे में, विस्मय से भरे मन से ईश्रवुड आया। उसको थाम करके स्वामीजी ने कहा, क्या बात है? क्यों तुम इतने परेशान होते हो? स्वामीजी मैं आत्महत्या करने जा रहा हूं। क्या मतलब इसका? I kill myself. स्वामीजी ने कहा Kill you self. क्या तुम अपने आप की हत्या कर सकते हो? हां। स्वामी ने कहा लिख दो, तो उसने लिख दिया। स्वामीजी ने कहा क्या तुम अपने Self को मार सकते हो? उसने कहा yes. स्वामीजी ने कहा, कैसे? पिस्तौल निकाल कर दिखाया। स्टीगर दबाया, गोली चली और मैं खत्म हुआ। स्वामीजी ने कहा, आखिरकार तुम केवल अपने शरीर को ही मारोगे न। Self को कैसे मारोगे। उसने कहा, ओ स्वामी! Body ही तो Self है। ईश्रवुड तुम भूल कर रहे हो। Body Self नहीं बिल्कुल। सारी दुनिया कहती है Body Self है आप कहते हैं Body Self नहीं है। तब स्वामीजी ने उसको ऐसी विचार प्रणाली में डाला जैसा कि **स्वामी रामतीर्थ में और टिहरी गढ़वाल के नरेश राजा कीर्तिशाह** के बीच में हुआ।

राजा कीर्तिशाह एवं स्वामी रामतीर्थ में ईश्वर-विषयक सम्वाद

राजा कीर्तिशाह : स्वामीजी! क्या आप ईश्वर में विश्वास रखते हैं?

स्वामी रामतीर्थ : नहीं, विश्वास तो उस वस्तु में किया जाता है, जिसे देखा न हो। 'To see God is to be God.' 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।' ब्रह्म को जानने वाला तो स्वयं ब्रह्म बन जाता है, हम तो नित्य ब्रह्म के साथ ही विहार करते हैं।

कीर्तिशाह : तब स्वामीजी! क्या आप मेरी ईश्वर से भेंट करवा देने की कृपा करेंगे?

स्वामीजी : क्यों नहीं! अवश्य, आप साक्षात्कार के लिए आवेदन-पत्र बनाइये।

राजा कीर्तिशाह ने आवेदन पत्र में लिखा : 'हे सर्वशक्तिमान परमेश्वर! सादर निवेदन है कि मुझे आप से साक्षात्कार की अनुमति प्रदान की जाय।'

आपका विश्वासी, कीर्तिशाह।

स्वामीजी : राजा! आप अपने पत्र में पक्का नाम, पता लिख दो।

कीर्तिशाह : स्वामीजी! मैंने अपना नाम कीर्तिशाह लिख दिया है और अपना पक्का पता महाराजा, टिहरी गढ़वाल राज्य भी लिख दिया है।

स्वामीजी : राजा! क्या तुम्हारा कीर्तिशाह वास्तविक नाम है?

राजा : हाँ! स्वामीजी।

स्वामीजी : जब आप माता के गर्भ से प्रकट हुए तो क्या यह नाम आपके माथे पर लिखा था?

राजा : नहीं, स्वामीजी! यह नाम तो कुछ वर्षों बाद घरवालों ने ज्योतिषी के परामर्श से रख दिया।

स्वामीजी : नाम तो कल्पित होते हैं। केवल लोक-व्यवहार के लिए कल्पना से रख लिये जाते हैं, और आवश्यकतानुसार बदले भी जा सकते हैं। इसलिये आप के नाम नहीं है। नाम आपके शरीर पर अस्थायी रूप से चिपकाया हुआ लेबल मात्र है जो संसार ने दिया और संसार ही छीन लेगा। आपका व्यक्तित्व नाम से पृथक्, नाम के बंधन से मुक्त 'अनामी' है।

राजा : हाँ, स्वामीजी! नाम तो कल्पित संकेत-मात्र है। आवेदन में मैं नाम छोड़कर अपना शेष परिचय लिख देता हूँ।

साढ़े पांच फीट कद, 36 इंच छाती, ऐसा रंग-रूप आदि।

स्वामीजी : राजा! यह तो शरीर का वर्तमान परिचय है, आपका परिचय नहीं। शरीर भी परिवर्तनशील और विकारी है। इस शरीर की कहानी माँ के गर्भ में एक शुक्र के कीड़े से प्रारम्भ हुई, जिसे खुली आंख से देखा भी नहीं जा सकता। क्या उस वीर्य के कीटाणु का साढ़े पांच फीट कद, 36 इंच छाती और दो मन भार माना जा सकता है? गर्भ के अन्दर शुक्र कीट अनेक

रूप बदलता है। शरीर के जन्म के समय वह बहुत छोटा एवं कोमल होता है। भ्रूण से शिशु, बाल, किशोर, तरुण, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, रोगी, मृतक इन सब रूपों में निरन्तर परिवर्तित होता हुआ यह शरीर श्मशान की धूलि के कण में समाप्त हो जाता है। शुक्र के कीड़े से लेकर श्मशान की राख के कण तक निरन्तर परिवर्तित होने वाले रूपों में आप अपना व्यक्तित्व कहाँ खोजोगे? राजा! तुम रूपों को धारण करने वाले, फिर भी रूपों से पृथक्, विकारी रूपों के बीच में अविकारी—रूपों की लीला के बीच अरूपी हो। न नाम तुम्हारा सही परिचय है और न रूप। आवेदन-पत्र पर पक्का नाम-पता लिखो तो परमेश्वर से तुरंत भेंट करवा दूँ।

राजा कीर्तिशाह : तब स्वामीजी! केवल इतना ही लिख देता हूँ—राजा, टिहरी, गढ़वाल राज।

स्वामीजी : राजा! क्या यह आपका पक्का पता है?

राजा कीर्तिशाह : हाँ, स्वामीजी! हम सदा से इस राज्य के शासक हैं।

स्वामी राम : एक समय था तुम्हारा यह शरीर ही नहीं था, एक समय है, यह शरीर है, एक समय पुनः होगा जब यह शरीर नहीं रहेगा। 30 वर्ष पूर्व तुम इस राज्य के राजा नहीं थे, 60 वर्ष पश्चात् तुम राज्य के राजा नहीं रहोगे। अतः यह पक्का पता कैसे हुआ?

राजा कीर्तिशाह : महाराज! राजा तो बदलता है, किन्तु राज्य तो स्थायी है। अतः केवल राज्य का नाम ही पक्का पता है।

स्वामीजी : राजा! तुम अपनी टिहरी गढ़वाल रियासत को रो रहे हो, एक समय था जब यह धरती ही नहीं थी, एक समय है जब यह धरती है, एक समय पुनः होगा जब यह धरती नहीं रहेगी। तब तुम्हारा पक्का पता कहाँ रहा?

राजा : तब स्वामीजी! इस प्रकार से तो जगत् में कुछ भी पक्का नहीं है।

मैं देख्यो निरधार, यह जग काचो कांच सों—बिहारी

स्वामीजी : राजा! अगर तू अपना पक्का पता जान ले तो मैं एक क्षण में तुम्हारी परमेश्वर से भेंट करवा देता हूँ।

राजा कीर्तिशाह : मुझे कुछ समझ में नहीं आता, क्या कहूँ?

स्वामीजी : अच्छा राजा! क्या यह ताज तुम्हारा है?

राजा कीर्तिशाह : हाँ, स्वामीजी!

स्वामीजी : राजा! क्या तुम ताज हो?

राजा कीर्तिशाह : नहीं स्वामीजी!

स्वामीजी : क्या यह सिर तुम्हारा है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम सिर हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह मुख तुम्हारा है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम मुख हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह भुजाएं तुम्हारी हैं? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम भुजाएं हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह छाती तुम्हारी है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम छाती हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह पेट तुम्हारा है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम पेट हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या ये जंघाएं तुम्हारी हैं? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम जंघाएं हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या ये पांव तुम्हारे हैं? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम पांव हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह जूते तुम्हारे हैं? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम जूते हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : राजा! क्या यह शरीर तुम्हारा है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम शरीर हो?

राजा : (सोचकर) नहीं स्वामीजी! शरीर के प्रत्येक अंग को छूकर मैंने निश्चय कर लिया है कि शरीर मेरा तो है, पर मैं स्वयं शरीर नहीं हूँ।

स्वामीजी : राजा! फिर तुम क्या हो?

राजा : स्वामीजी! संभवतः मैं मन हूँ। क्योंकि मन द्वारा ही मुझे भान होता है कि मैं शरीर का स्वामी हूँ।

स्वामी : राजा! तुम्हारा मन क्या कभी गलती करता है, कभी भूल करता है? तब मन की भूल या चंचलता ज्ञात होने पर क्या तुम मन की ताड़ना करते हो?

राजा : हाँ, स्वामीजी! मैं मन को, भूल अपराध करने पर बहुत फटकारता हूँ।

स्वामी : तब राजा! मन तुम्हारा नौकर जैसा है, जिसकी भूलों के लिए तुम उसे डांट-फटकार एवं दण्ड देते हो, तो तुम मन कैसे हो? तुम तो मन रूपी नौकर पर शासन करने वाले हो। बताओ, तुम कौन हो?

राजा : स्वामीजी! शायद में बुद्धि हूँ, क्योंकि बुद्धि के द्वारा ही मन की भूलों का ज्ञान होता है।

स्वामी : राजा! तुम कभी कहते हो, कि 'यह कठिन विषय मेरी बुद्धि से परे है।' कभी कहते हो, 'अरे! उस समय मेरी अकल ही मारी गई थी।' इसका अर्थ है कि बुद्धि की असमर्थता एवं बुद्धि की भूल को भी आप जानते हैं।

राजा : हाँ, स्वामीजी! बुद्धि की अयोग्यता, बुद्धि की सीमा, बुद्धि की असमर्थता तथा बुद्धि के भ्रम को बाद में मैं ही जान लेता हूँ।

स्वामीजी : राजा! तुम कौन हो?

राजा : स्वामीजी! मैं शरीर से परे, इन्द्रियों से परे, मन से परे, बुद्धि के परे कुछ हूँ, किन्तु कह नहीं सकता, मैं कौन हूँ।'

स्वामीजी : राजा! यह जो तुम कहते हो कि 'मैं' कुछ हूँ, इस 'मैं' का ही संस्कृत में नाम है 'आत्मा'।

यही तुम्हारा पक्का ठिकाना है। जो इस पक्के परिचय को जान लेता है, उसकी तुरंत परमात्मा से भेंट हो जाती है।

राजा : स्वामीजी! अब मेरी आंखें खुल गईं। सच्चा आत्मज्ञान ही परमात्म ज्ञान है।

ईश्रवुड कहता है कि स्वामीजी मुझे बड़ी शान्ति मिली है। कल मैं फिर आऊंगा। धीरे-धीरे रोज आने लगा। उसकी इतनी बड़ी श्रद्धा हुई। धीरे-धीरे सारी की सारी सम्पत्ति गरीबों को बांट दी। सब काम छोड़ दिया। केवल सफेद कुरता और पाजामा पहनकर कभी सफेद कुरता और मद्रासी लुंगी पहन करके

रामकृष्ण मिशन के हॉलीवुड में रहता है। वहां पर अपना लेखन का कार्य करता है। पुस्तकें लिखता है। वहां प्रभवानन्दजी से मिलकर भगवद्गीता का पदानुवाद किया। Bhagawat Gita The song of God by क्रिस्टोफर ईश्रवुड और स्वामी प्रभवानन्द। वह पुस्तक इस समय दुनिया में Best Seller बनी हुई है। पहले दुनिया में एनी बीसेन्ट की जो पुस्तक भगवद्गीता पर थी उसकी बड़ी मांग थी। अब ईश्रवुड की गीता की बहुत मांग है। ईश्रवुड के अपने जीवन में परिवर्तन ला दिया गीता ने। गीता ने उसे आत्महत्या से बचा दिया। गीता ने उसको नया जीवन दे दिया। उसने सात लेख लिखे जो हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली में छपे कि How I become a Hindu. मैं कैसे हिन्दू बना। How I become a vedantee. Gita save my life. गीता ने मेरा जीवन कैसे बचाया। सोचो, हम भारतवासी हैं। हम भगवान् कृष्ण के देश वाले हैं। और हमारे ज्ञान से पश्चिम के लोग, संसारभर के लोग भी लाभान्वित हो रहे हैं और हम उससे वंचित हो रहे हैं। कितने दुर्भाग्य की बात है इसलिए भगवान् कृष्ण के महान् संदेश को हम हृदयंगम करें।

डॉ. राधाकृष्णन् को स्टालिन ने कहा, हम नास्तिक हैं। हम ईश्वर को नहीं मानते। डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा कि मैं सिद्ध कर सकता हूं कि आप ईश्वर को मानते हैं। उन्होंने स्टालिन से पूछा, क्या आप चाहते हैं कि आपके अधीनस्थ अधिकारी आप से सच बोलें या झूठ बोलें? स्टालिन ने कहा, मैं चाहता हूं सच बोलें, झूठ बोलने वाले को मैं सूली पर टंगवा दूंगा। राधाकृष्णन् ने पूछा, क्या आप मानवता का कल्याण चाहते हैं? स्टालिन ने कहा, हम गरीबों के कल्याण के लिए ही संघर्ष कर रहे हैं। राधाकृष्णन् ने पूछा, क्या आप अपने देश को सुन्दर बनाना चाहते हैं या फूहड़ और कुरूप? स्टालिन ने उत्तर दिया हम अपने देश को सुन्दरतम देश बनाना चाहते हैं। राधाकृष्णन् ने तर्क दिया कि तब आप ईश्वर में विश्वास करते हैं। क्योंकि ईश्वर सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् ही है। इससे स्टालिन की भारतीय दर्शन में बड़ी रुचि जगी और वह डॉ. राधाकृष्णन् को बार-बार अपने पास बुलाकर उनसे गीता का तत्त्वज्ञान सुनता रहता था।

वैदिक साहित्य विशेषकर उपनिषदों, वेदान्त और भगवद्गीता की प्रशंसा में **आयरिश कवि जी. डब्ल्यू. रसेल** का निम्न उद्धरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जिसे पढ़कर प्रत्येक भारतवासी अपनी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत के बारे में गर्व कर सकता है—इस काल के लोगों—गेटे, वड्र्सवर्थ, इमर्सन और थोरो में यह ज्ञान और जीवन शक्ति कुछ अंश में मिलेगी, लेकिन जो कुछ भी इन्होंने कहा है उससे बहुत अधिक पूर्व के महान् और पवित्र ग्रंथों में मिलेगा। भगवद्गीता और उपनिषदों में सभी बातों के बारे में ज्ञान की ऐसी दिव्य पूर्णता मिलती है कि मुझे

लगता है उनके रचने वालों ने हजारों भाव भरे पुराने जन्मों में पैठकर ही....इतने अधिकार के साथ उन बातों को लिखा है जिन्हें आत्मा निश्चित समझती है।

श्रीयुत् एफ.टी. बूक्स साहब ने कहा है—श्रीमद्भगवद्गीता भारतवर्ष में यत्र-तत्र बिखरे हुए अनेक ग्रंथों को जोड़ने वाली एक अप्रतिम शृंखला है और भविष्य के राष्ट्रीय जीवन की एक अमूल्य निधि है। भारतवर्ष का राष्ट्रीय धर्मग्रंथ होने के लिए आवश्यक समस्त गुण इसमें एकत्र किए गए हैं। इतना ही नहीं, भविष्य में समस्त संसार का धर्मग्रंथ होने की अनुपम योग्यता इसमें है। समस्त मानव जाति के भविष्य को अत्यन्त उज्ज्वल बनाने के लिए भारत के वैभवशाली भूतकाल की यह एक अपूर्व निधि है।

(कल्याण शिवांक 659 या 639)

भगवद्गीता के अतिरिक्त ऐसा कोई दूसरा भारतीय ग्रंथ नहीं है जिसकी भारतवर्ष में इतनी प्रसिद्धि हुई है और जिसको ईश्वरीय संगीत मानकर भारत में सभी प्रेम करते हैं। गीता के अभाव में अंग्रेजी साहित्य सचमुच अधूरा ही रह जाता।

एडविन आर्नाल्ड (गीता का आंग्ल पद्यानुवाद सांग सेलेशियल)

मैक्समूलर कहते हैं—धन्य हैं वे लोग जिन्हें महान् ग्रंथ के महानायक कृष्ण की भूमि में जन्म लेने का सौभाग्य मिला। वे धन्य इसलिए भी कि वे गीता रूपी अमृत का पान कर अमर्त्य हो जाएंगे? जब मैं गीता पढ़ता हूं तो लगता है कि मैंने जीवन के इस सार को पाने में बड़ी देर कर दी। पाश्चात्य जिस धर्म की सृष्टि अब तक नहीं कर सकता वह उदात्त धर्म इसमें विद्यमान है।

कनाडा के प्रेसिडेन्ट मिस्टर टयूडो ने जब गीता पढ़ी तो वे दंग रह गए। मिस्टर टयूडो ने कहा—मैंने बाइबिल पढ़ी, एंजिल पढ़ा और भी कई धर्मग्रंथ पढ़े। सब ग्रंथ अपनी-अपनी जगह पर ठीक हैं, लेकिन हिन्दुओं का यह श्रीमद्भगवद्गीता रूपी ग्रंथ तो अद्भुत है। इसमें किसी मजहब, मत, पंथ, सम्प्रदाय की निंदा-स्तुति नहीं है, बल्कि इसमें तो मानव मात्र के विकास की बात है। शरीर स्वस्थ, मन प्रसन्न और बुद्धि में समत्व योग का, ब्रह्म ज्ञान का प्रकाश जगाने वाला ग्रंथ भगवद्गीता है। उन्होंने लिखा—Geeta is not The Bible of Hindu but it is the Bible of humanity.

पाश्चात्य संस्कृति के प्रसिद्ध लेखक प्रोफेसर श्री आटाण्ट्रास, (ब्रेसलाऊ यूनिवर्सिटी, जर्मनी) के अनुसार भगवद्गीता के अतिरिक्त ऐसा कोई दूसरा भारतीय ग्रंथ नहीं है जिसकी भारतवर्ष में एवं अन्यान्य देशों में दूर तक इतनी प्रसिद्धि हुई हो। जिसको ईश्वरीय संगीत मानकर हिन्दुस्तान के सभी लोग इतना प्रेम करते हैं।

सर जान वुडरफ—गीता भारतीय साहित्य का सर्वोत्तम रत्न है।

टी.एस. इलियट ने गीता को मानव वाङ्मय की अमूल्य निधि कहा है।

संसार की 28 सभ्यताओं के विशेषज्ञ **आर्नोल्ड टायनबी** ने स्वीकार किया कि अणुबम से विध्वंस की ओर जाते पाश्चात्य जगत् को पौर्वात्य, भारतीय तत्त्वज्ञान की ओर जाना पड़ेगा, जो सभी के अन्दर ईश्वर को मानता है।

नोबेल पुरस्कार विजेता **फ्रेंच साहित्यकार रोमां रोलां** ने माना कि गीता ने यूरोप की अनेक आस्थाओं को धूल-धूसरित कर दिया तथा मानव को नवदृष्टि दी।

जापान के शिन्तो धर्म पर भी गीता का प्रभाव है। चीन के कन्फ्यूशियस धर्म एवं ताओ धर्म में भी गीता के सत् विवेक तथा शासन की कार्यक्षमता के समन्वय का संदेश है। चीन में प्रथम शती में महायान बौद्ध धर्म के साथ-साथ गीता भी पहुंची तथा चीनी भाषा में अनूदित हुई।

'गीता सिर्फ व्यक्तियों या राष्ट्र विशेष का नहीं बल्कि समग्र विश्व के संकट निवारण हेतु अपरिहार्य ग्रंथ है'—इंडोनेशिया के **राष्ट्रपति सुकर्ण**।

'दुनिया के सब धर्मग्रंथ आदमी को सही मार्ग पर लाने में असमर्थ रहे हैं। मगर पृथ्वी पर एक पुस्तक ऐसी भी है जो भविष्य में हर व्यक्ति का मार्गदर्शन करने जा रही है और उस पुस्तक का नाम है', **श्रीमद्भगवद्गीता**।

यह पुस्तक सही अर्थों में धर्मग्रंथ नहीं है, आदमी के मनोविज्ञान को उघाड़ने वाली चिकित्सा पद्धति है, जो हिन्दू, मुसलमान, ईसाई जैसी सम्प्रदायवादी उपाधियों से अलग हटकर आदमी को इन्द्रियों का एक ऐसा जाल मानती है जिसमें 'ईश्वर' की सम्भावनाएं छिपी पड़ी हैं। आदमी को अगर सचमुच सम्पूर्ण मनुष्य बनना है तो गीता के अतिरिक्त उसका और कोई हितैषी नहीं। भविष्य में जो संन्यास फलित होगा वह न पादरियों का संन्यास होगा, न बौद्धों का। वह संन्यास कृष्ण द्वारा बताया गया संन्यास होगा जिसमें आदमी संसार में जीता हुआ भी भीतर से रूपान्तरित हो जाता है।

साइमन सायफर्ट (अमरीकी विद्वान्)

गीता की गूंज कैलिफोर्निया के आध्यात्मिक आकाश पर। डॉ. कैलाश वाजपेयी 12.8.79 हिन्दुस्तान, नई दिल्ली।

अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों पर गीता का प्रभाव

डॉ. कृष्ण गोपाल श्रीवास्तव ने बीस वर्षों के अनुसन्धान के बाद स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया है कि अंग्रेजी काव्य की रोमाण्टिक धारा पर गीता का स्पष्ट प्रभाव है। उन्होंने यह प्रमाणित किया है कि श्रीमद्भगवद्गीता के प्रभाव से

रोमाण्टिक युग के वड्र्सवर्थ, कालरिज, शैली, कोट्स, बायरन और वाल्टर स्कॉट जैसे प्रमुख कवि गहरे रूप से प्रभावित थे। उनकी कविता पर इस महान् ग्रंथ का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुशीलन से इन कवियों ने जीवन और आत्मा सम्बन्धी जिन मूल्यों को अपनाया वे हैं—पुनर्जन्म, कर्म का सिद्धान्त, जगत् की सत्ता, आत्म-तत्त्व की अमरता, अवतारवाद इत्यादि। इन मूल्यों ने ही रोमाण्टिक कवियों को विशेष रूप से मोहित किया था। उनकी कविताओं में बहुत से अंश अत्यन्त दुर्बोध और मन, बुद्धि की समझ से परे हैं। यदि उन पर गीता के प्रकाश में विचार किया जाये, तो वे एकदम स्पष्ट रूप से उद्भासित हो उठते हैं।

अठारहवीं शताब्दी में प्राच्यविद् चार्ल्स विल्किन्स, सर विलियम जोन्स आदि ने भारत-विद्या की जो खोज की थी, उसी के परिणामस्वरूप प्राच्य देश में नवजागरण का सूत्रपात हुआ था। यह नवजागरण वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पुरातत्त्व आदि की खोज के क्षेत्र में था। विल्किन्स ने गीता का अंग्रेजी पद्यों में अनुवाद किया था और वह अनुवाद लन्दन में सन् 1785 में प्रकाशित हुआ था। कहना अतिशयोक्ति न होगी कि अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों ने विल्किन्सकृत गीता के अनुवाद को मात्र पढ़ा ही नहीं था, गीता के उपदेशों ने उनके मर्म को भी छू लिया था और उसी की ज्योति से उनकी कविता में और चमक आ गयी थी।

बंगाल के एक श्रेष्ठ संत

महानामव्रत ब्रह्मचारी जब इंग्लैण्ड गए तब कुछ ईसाई सज्जन उन्हें अपने पुस्तकालय में ले गए और दिखाया कि बाइबिल को विश्व में प्रथम स्थान प्राप्त है। गीता द्वितीय स्थान पर है। वहां ब्रह्मचारीजी मौन रहे। पर शाम की सभा में उन्होंने कहा कि बाइबिल का विश्व में प्रथम स्थान प्राप्त करने का कारण बाइबिल सोसायटी है जिसे विश्व की ईसाई सरकारें एवं उद्योगों के व्यक्तिगत प्रतिष्ठान दोनों ही एक निश्चित परिमाण में अर्थ एवं सभी प्रकार का सहयोग प्रदान करते हैं। फलतः आप अपने प्रयास एवं खर्च से बाइबिल का विश्व की प्रायः सभी भाषाओं में अनुवाद, निःशुल्क वितरण एवं प्रचार का कार्य करते हैं।

पर अपने देश में गीता प्रचार के लिए कोई गीता सोसायटी नहीं है, न इसके लिए सरकार से किसी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता है वरन् विरोध ही, बाधा ही प्राप्त होती है। ईसाई राष्ट्रों के स्कूलों में बाइबिल अनिवार्य है। पर अपने देश में हिन्दी प्राइवेट स्कूलों में भी जहां गीता पढ़ाई जाती है वहां भी सरकार बाधा देती है। ईसाई परिवारों, स्कूलों, प्राइवेट एवं सरकारी दफ्तरों में बाइबिल को सम्मान

एवं प्रचार प्रसार का अवसर प्राप्त है। पर यह सारी बातें अपने देश के न परिवार में है, न स्कूल-कॉलेजों में है न सरकारी-गैरसरकारी दफ्तरों में प्राप्त है। हमने गीता के प्रचार के लिए न अपने देश में ही और न विश्व में ही प्रयास किया। न यहां के प्राइवेट प्रतिष्ठान ही गीता प्रचार के लिए कोई सहयोग प्रदान करते हैं।

यह तो गीता की अपनी विशिष्टता है, गीता के वैचारिक आकर्षण से गीता स्वयं विश्व में अद्वितीय स्थान रखती है। विश्व के विद्वान् स्वयं गीता के विचारों से प्रभावित एवं प्रेरित होकर अपने-अपने देश की भाषा में, अपनी मेहनत एवं खर्च से बड़े परिश्रम एवं कष्ट के साथ गीता का अनुवाद करते हैं। और स्वयं ही अपने देश में गीता प्रचार जनकल्याणार्थ किया है। आप थोड़ी सी उदारता दिखावें और अपनी सोसायटी, यानी चर्चों में प्रार्थना के पश्चात् मात्र इतना कहें कि गीता अच्छा ग्रंथ है। इसे भी पढ़ना चाहिए। तब देखें गीता प्रथम स्थान को प्राप्त करती है या नहीं। जब गीता के लिए कोई सोसायटी नहीं है, सरकार एवं व्यक्तिगत प्रतिष्ठानों का कोई सहयोग नहीं है, न इसकी चर्चा परिवारों में है, न स्कूल, कॉलेज एवं दफ्तरों में है। तब इसके पश्चात् भी गीता स्वयं की विशिष्टता के कारण द्वितीय स्थान पर है तो मैं इसे प्रथम स्थान ही मानता हूं।

एक वस्तु चल सकती है दो कारणों से या तो धक्का या फिर आकर्षण। या तो Puss पुश या Pull पुल। बाइबिल चल रही है पीछे के धक्के के जोर पर। गीता चल रही है विश्व मानव के प्राणों के आकर्षण से। अब किसका कितना महत्त्व है आप लोग ही विचार कर लीजिये।

इसी प्रकार की घटना **स्वामी विवेकानन्दजी** के साथ है। पादरी लोग उनको एक पुस्तकालय में ले गए जहां गीता सबसे नीचे रखी थी और बाइबिल सबसे ऊपर। स्वामी विवेकानन्दजी ने पादरियों के भाव को भांप कर तुरन्त कहा—Very good foundation. जब तक गीता नींव में रहेगी, दुनिया के सभी धर्म जीवित रहेंगे, फलेंगे-फूलेंगे और गीता के वहां से हटते ही सब धर्म धराशायी हो जाएंगे। और स्वामी विवेकानन्दजी द्वारा गीता को खींचते ही सभी ग्रंथ गिर पड़े। दूसरे दिन पुनः स्वामी विवेकानन्दजी को चिढ़ाने के लिए पादरियों ने बाइबिल को सबसे नीचे रखा और गीता को सबसे ऊपर, अंत में रखा। तब स्वामीजी ने कहा—गीता सभी शास्त्रों का मणि मुकुट है, सिरमौर है, सबकी पथ दर्शक है।

लन्दन में स्वामी विवेकानन्द की जर्मन के प्राच्यविशारद प्रोफेसर मैक्समूलर से भेंट हुई थी। दोनों का परिचय प्रगाढ़ मित्रता में परिणत हुआ। जब स्वामीजी

भारत लौटने के लिए मैक्समूलर से विदा लेने लगे, तो उन्होंने स्वामीजी से प्रार्थना की कि स्वदेश पहुंचने के बाद मेरे लिए कोई ऐसी वस्तु उपहार स्वरूप भिजवाइए जो भारतवासियों का वैशिष्ट्य हो, भारतीय संस्कृति का प्रतीक तथा प्रतिनिधि हो। भारत लौटने पर स्वामीजी ने मैक्समूलर के प्रेमपूर्वक अनुरोध को ध्यान में रखकर वह वस्तु तत्काल भिजवा दी थी—वह थी भगवद्गीता की एक प्रति।

आस्ट्रिया की राजधानी वियना में स्थित विशाल पुस्तकालय में एक भारतीय पत्रकार द्वारा वहां के पुस्तकालय के अध्यक्ष से कई पुस्तकों की जानकारी मांगने पर उसने प्रसन्नतापूर्वक सब पुस्तकों के बारे में बताया। आखिर में उसने पूछा आपके यहां की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक कौन-सी है? उसने बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा, आप मेरे साथ आइये और वह उसे आखिरी मंजिल पर एक छोटे और सुन्दर कक्ष में ले गया। वहां बहुत ही आकर्षक और सजे हुए बक्से में से एक पुस्तक निकाल कर पत्रकार के हाथ में दी। उस पुस्तक को देखकर पत्रकार महोदय चकित रह गए क्योंकि वह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता थी।

गीता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भारत के लम्बे पराधीनता के काल में भी जब भारतीय स्वयं इसके प्रचार-प्रसार के लिए कुछ भी उद्योग नहीं कर रहे थे तब भी इसके वैचारिक जादू से, अलौकिक प्रभा से प्रभावित होकर विश्व के मनीषियों ने पहले स्वयं संस्कृत भाषा सीखी एवं गीता का अध्ययन किया, फिर उन्होंने अपनी-अपनी भाषा में अपने खर्चे से अनुवाद करके उसका प्रचार-प्रसार अपने-अपने देश में किया।

इस प्रकार पश्चिम के दार्शनिक गीता पर मुग्ध हैं, जर्मनी के दार्शनिक गीता पर मुग्ध हैं, इंग्लैण्ड के दार्शनिक मुग्ध हैं, फ्रांस के दार्शनिक मुग्ध हैं, युगोस्लाविया का राष्ट्रपति गीता पर मुग्ध है। सब दुनिया के लोग गीता पर मुग्ध हैं। सारी दुनिया उस पर कुर्बान हुई जा रही है। पारसी मुग्ध हैं, यहूदी मुग्ध हैं, मुसलमान मुग्ध हैं, दुनिया का कोई कोना नहीं जिसको गीता ने प्रभावित न किया हो।

लन्दन म्यूजियम में जाकर देखें। लन्दन म्यूजियम में बहुत बड़ा पुस्तकालय है। वह संसार का सबसे बड़ा पुस्तकालय है। उसके मुख्यद्वार पर एक show Case में गीता की पुस्तक सजी है।

संसार में सबसे अधिक भाषाओं में अनूदित और संसार के सबसे मेधावी पुरुषों को सबसे अधिक चमत्कृत करने वाली यह महान् पुस्तक भगवद्गीता है। दुनिया उसकी महत्ता पहचानती है। न्यूजर्सी में स्थापित अमेरीका की सेटन हॉल यूनिवर्सिटी जिसमें 10,800 छात्र हैं सभी छात्रों के लिए गीता पढ़ना अनिवार्य

कर दिया है। विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में गीता के मुख्य अंश पाठ्यक्रम में डाले हुए हैं।

आज रूस के राष्ट्रपति मेदवेदेव ओमकार (ॐ) ध्वनि के साथ-साथ राष्ट्रपति पद की शपथ ले रहे हैं।

त्रिनिदाद और टोबैगो की प्रधानमंत्री कमला प्रसाद बिसेसर 26 जून, 2010 को नोस्ली (पोर्ट ऑफ स्पेन) में एक गरिमामय समारोह में, गीता हाथ में लेकर प्रधानमंत्री पद की शपथ लेती है।

संसार का कोई कोना नहीं है जहां भगवद्गीता का प्रचार नहीं हुआ। उसका चमत्कार नहीं हुआ है।

दुनिया की सर्वोच्च संस्था संयुक्त राष्ट्र संघ की यूनेस्को ने भी गीता के माहात्म्य को स्वीकार करते हुए गीता को विश्व के प्रचलित धर्मशास्त्रों में श्रेष्ठ, ज्यादा वैज्ञानिक तथ्यों और सत्य पर आधारित, विश्व धरोहर ग्रंथ माना है। इसमें गीता का तीसरा स्थान है। पर शीघ्र समय आयेगा जब गीता को प्रथम स्थान प्राप्त होगा।

देश के राष्ट्रीय जागरण व राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम में गीता का अविस्मरणीय योगदान है। भारत के प्रायः सभी स्वातन्त्र्य सेनानियों का यह नित्य पठनीय ग्रंथ रहा है। अहिंसा व हिंसा उभय पथ के समर्थक राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम के पथिकों का प्रेरणास्रोत गीता रही है। महात्मा गांधी के लिए गीता शान्ति व शक्ति प्रदायिनी माता थी। सुभाष बोस की भी गीता में अपार श्रद्धा थी। गीता केवल राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम को ही प्रेरणा देने वाला ग्रंथ नहीं है, इसने अन्तरराष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम, (विशेषकर जर्मनी, जापान, इंडोनेशिया चैकोस्लोवाकिया, वियतनाम आदि) अन्तरराष्ट्रीय मैत्री भाव व विश्व-शान्ति को भी सम्बल प्रदान किया है। आज जाने-अनजाने में राष्ट्र एवं विश्व जिन समस्याओं से घिर गया है, उससे उबारने की क्षमता किसी ग्रन्थ में है तो वह भगवद्गीता में है, भगवान् कृष्ण में है। अमरीका का प्रसिद्ध दार्शनिक इमर्सन कहता है—जीव और जगत् की कोई ऐसी समस्या नहीं है जिसका समाधान गीता के पास न हो। और सचमुच में न केवल आध्यात्मिक, दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक जगत् में वरन् जीवन के हर व्यावहारिक क्षेत्र में चाहे वह राजनीतिक जगत् हो प्रशासनिक जगत् हो व्यावसायिक जगत् हो, औद्योगिक जगत् हो, प्रबंधकीय जगत् हो, चिकित्सा जगत् हो, अपराध शमन जगत् हो, खेल जगत् हो, वैज्ञानिक जगत् हो, पर्यावरणीय जगत् हो, युद्ध क्षेत्र हो, शिक्षा जगत् हो इन सभी क्षेत्रों में गीता का सफल प्रयोग हो रहा है। इन सब क्षेत्रों की सफलता में गीता का विशिष्ट अवदान है—भारत के साथ-साथ विश्व-भर में।

अरुण भट्टाचार्य—वह संस्कृति बिना किसी राजनीतिक उद्देश्य से बढ़ सकती है, वह व्यापार आगे बढ़ सकता है बिना किसी साम्राज्यवादी रूपरेखा के, बस्तियाँ बन सकती है बिना औपनिवेशिक प्रयास के, वह साहित्य, धर्म तथा भाषा का प्रसार विदेशी को नकार के या युद्ध तथा जाति विषमता के बिना, यह सब भारत के पड़ोसियों के सम्बन्ध के इतिहास से प्रमाणित है।

शोपेनहावर कहते हैं हम वेदों तक पहुँचे वह सभी पूर्व शताब्दियों की तुलना में इस शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ सद्भाग्य कहा जा सकता है।

उपनिषदों में पाये जाने वाले अद्भुत सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए शोपेनहावर ने फिर कहा है—ये सिद्धान्त ऐसा ही है जो एक प्रकार से अपौरुषेय ही है। ये जिनके मस्तिष्क की उपज है, उन्हें निरे मनुष्य कहना कठिन है।

अमरीकन महिला ह्वीलर विल्लाक्स कहती है—भारत वेदों की भूमि है, जिसके अन्दर न केवल पूर्ण जीवन के पूर्णत्व के लिए धार्मिक तत्त्वों का निरूपण है, वरन् उन तथ्यों का भी निर्देश है जिनको आज विज्ञान शास्त्र ने सत्य प्रमाणित किया है। वैदिक ऋषियों को विद्युत शक्ति, रेडियम, इलेक्ट्रॉन तथा वायुयान आदि सब बातों का ज्ञान था, ऐसा प्रतीत होता है।

श्री जकोलियट कहते हैं यह एक बड़ी आश्चर्यजनक बात है। ईश्वरीय धर्मग्रंथों में एकमात्र वेद ही ऐसा है जिसके विचार वर्तमान विज्ञान के साथ पूर्ण साम्य रखते हैं क्योंकि वेद में भी विज्ञान के अनुसार विश्व की क्रमिक रचना का प्रतिपादन है।

जर्मन दार्शनिक शोपनहावर जब मृत्यु-शय्या पर पड़ा था उस समय उसे उपनिषद् का अनुवाद प्राप्त हुआ, जिसे पढ़कर उसे इतना आत्मबल मिला कि वह स्वस्थ हो गया, वह विस्मय विमुग्ध होकर कहता है—'यह अनुपम ग्रंथ आत्मा की गहराइयों को हिलकोर डालता है। इसके प्रत्येक वाक्य से मौलिक, गम्भीर और बड़े ही ज्योतिष्मान विचार ऊपर उठते हैं। हमारे चारों ओर भारतीयता का वातावरण आप से आप खड़ा हो जाता है तथा ऐसा प्रतीत होता है मानो यह विचार हमारे आत्मिक बन्धु के विचार हों। हमारे मनों पर यहूदी संस्कार की जो रूढ़ियाँ और अंधविश्वास छाये हुए हैं वे उनके स्पर्श मात्र से एकबारगी धुल जाते हैं। सारे संसार में इसके जोड़ का कोई ग्रंथ नहीं हो सकता। जीवन भर में मुझे यही एक आश्वासन प्राप्त हुआ है तथा मृत्युपर्यन्त यह आश्वासन मेरे साथ रहेगा।'

स्टालिन की पुत्री स्वेतलाना से एक संवाददाता ने पूछा 'आपकी अब इच्छा क्या है? अगला जीवन किस प्रकार बिताना चाहती हैं?' स्वेतलाना ने कहा कि मैं

गंगाजी के किनारे कुटिया बनाकर मनःशान्ति के साथ जीवन बिताना चाहती हूं। ऐसी इच्छा स्टालिन की पुत्री प्रकट करती है।

अमरीका के पूंजीपतियों में जो शिखर पर थे उनमें हेनरी फोर्ड नाम आता है। फोर्ड परिवार अभी भी वहां के बड़े पूंजीपतियों में गिना जाता है। उनके प्रपौत्र अलफ्रेड फोर्ड भगवान कृष्ण के भक्त बन गये। वे हिन्दुस्तान में आये थे। यहां कुछ पत्रकारों ने उनको घेर लिया। यहां के प्रगतिशील लोगों को इस बात का बड़ा दुःख था कि ये भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति जैसे प्रतिगामी विचार में कैसे फंस गया। पत्रकारों ने उनसे प्रश्न किया कि 'आप यदि कृष्ण भक्ति में लग गये तो आपकी सम्पत्ति का क्या होगा? फोर्ड ने उत्तर दिया Wealth? Whose Wealth? All wealth belongs to lord krishna. कोलकाता के प्रगतिशील पत्रकारों को बड़ा दुःख हुआ।

सम्पूर्ण दुनिया के इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन करने वाले आर्नोल्ड टायनबी ने अट्ठाइस (28) विश्व संस्कृतियों का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला था वक्तव्य दिया था कि इसके पश्चात् मानवता का मार्गदर्शन करने का दायित्व भारत को उठाना पड़ेगा। न्यूक्लियर शस्त्रों के भण्डार के कारण, अन्न की कमी के कारण सारी दुनिया को बचाने का काम केवल भारत कर सकता है। उन्होंने कहा कि 'आज भारत में तरह-तरह के संकट हैं। दुनिया में जितने भी तरह के संघर्ष हैं विभेद हैं वे सब तरह के संघर्ष और विभेद भारत में मौजूद हैं। किन्तु इन सारे संकटों से ग्रस्त होते हुए भी मैं यह जानता हूं कि भारत में जो एक बात है वह अन्य किसी भी देश में नहीं है। भारत को प्राचीन संस्कृति की यह देन मिली है। वह है Unity in the midst of diversity विविधता के अन्तर्गत बहता हुआ एकात्मता का प्रवाह। उसका साक्षात्कार करने की क्षमता संस्कृति के नाते भारत को प्राप्त हुई है। यह देन और किसी भी देश को प्राप्त नहीं है? इसलिए मुझे पूरा विश्वास है कि इस सांस्कृतिक देन के कारण इस परम्परागत प्रवाह के कारण भारत अपने समस्त संघर्षों एवं अन्तर्भूत विभेदों पर विजय प्राप्त करेगा। वह एक आदर्श समाज निर्माण करेगा और इस समाज रचना के निर्माण के पश्चात् किस तरह विभेदों से रचना की जा सकती है—यह भारत से सीखने का अवसर दुनिया को मिलेगा। भारत में विश्व को दिशा देने की क्षमता है। यह बात आर्नोल्ड टायनबी कहता है। और अब यह बात सत्य होती-सी प्रतीत होती है तभी तो वर्तमान विश्व के श्रेष्ठतम उद्यमी स्टीव जॉब्स ने स्वीकार किया कि भारत की संस्कृति में अवगाहन के पश्चात् उनके जीवन में चामत्कारिक परिवर्तन आया। स्टीव जॉब्स कहते हैं मैं एनलाइटनमेंट के विचार की तरफ आकर्षित था और यह पता लगाने की कोशिश कर रहा था कि मैं कौन हूं और मेरी जिन्दगी का

मकसद क्या है। वह भारत के गांव-देहातों में सात महीनों तक भटकता रहा। इस छोटी-सी यात्रा में स्टीव जॉब्स भारत से जो लेकर लौटे, उसने उनकी जिन्दगी बदल दी। यह थी इंट्यूशन या अंतर्ज्ञान की ताकत। वह पश्चिमी विचारों और संस्कारों में पले-बढ़े थे। इसमें प्रमुखता दी जाती है तर्क और बुद्धि को। हर चीज का कारण और प्रभाव होता है। पश्चिमी बुद्धि कारण और प्रभाव से हर घटना को समझने की कोशिश करती है। इंट्यूशन इससे अलग अपने भीतर झांकने की ताकत है। स्टीव कहते हैं पश्चिम का तार्किक विचार जन्मजात मानवीय गुण नहीं है। पर भारत के गांव के लोगों को इसे सीखना नहीं पड़ता। वे जो सीखते हैं जो एक अर्थ में मूल्यवान है और दूसरे अर्थ में नहीं भी। यही इंट्यूशन की ताकत है। यही अनुभव से प्राप्त बुद्धिमत्ता है। भारत के गांवों ने उन्हें इंट्यूशन की ताकत ही नहीं दी, इसकी रोशनी में 'पश्चिम दुनिया के पागलपन' को देखने की शक्ति भी दी।

यह शक्ति जीवन भर स्टीव जॉब्स के साथ रही। आईपॉड से लेकर आईफोन तक जितने नये युगांतरकारी आविष्कार स्टीव कर सके, उनके पीछे पश्चिम के तार्किक विचार की बजाय इंट्यूशन की ताकत थी।

इस प्रकार स्टीव ने भारत आकर अंतर्ज्ञान की शक्ति को पहचाना, इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि उन्होंने अपने काम और जीवन में उसका सफल प्रयोग किया।

भारत की पराधीनता के काल में भी लंदन के ट्रैफल्गर स्क्वेयर पर खड़े होकर दोनों भुजा उठाकर मैक्समूलर कहा करता था, 'भारत सारे संसार का आध्यात्मिक पूर्वज है। जिस जाति में राम और कृष्ण पैदा हुए हैं उसे गुलाम बनाना सारी मानव जाति के साथ घोर अन्याय करना है।'

रोम्यो रोलां प्रथम जीवन में मार्क्सवादी था, उससे मोह भंग होने पर ईसाइयत की ओर झुका। वहां भी संतोष न मिलने पर हिन्दू धर्म की ओर आकृष्ट हुआ। और उससे समाधान पाकर प्राच्य और पाश्चात्य विशारद रोमां रोलां कहता है कि पचीस साल पहले की बात है। मैं सुबह के समय घूमता हुआ एक गिरजे के सामने से गुजरा। पादरी प्रवचन पढ़ रहा था—

ईश्वर! हमारे शत्रुओं का नाश करो। अधर्मियों के लिए नरक के द्वार खोल दो। हमारे देश को सुख-सम्पदा से भर दो। हमारे सम्राट् को दिग्विजयी बनाओ....।

आज एक-चौथाई सदी बीतने पर भी हमारे गिरजाघरों में लगभग इसी प्रकार के प्रवचन पढ़े जाते हैं। उनके खयाल से मेरे मन में विद्रोह की आंधी आयी और मैं सोचता हूं : कैसा है यह प्यारा ईश्वर? वह दया और सहानुभूति का ईश्वर नहीं है।

वह अनन्त प्रेम का ईश्वर नहीं, वरन् वह हिंसा का ईश्वर है, रक्तपात का ईश्वर है, जो दो-दो विश्वयुद्धों को जन्म देकर शैतान की हँसी हँसता है।

पिछले पचीस सालों से मैं उस ईश्वर से घृणा करता आ रहा हूं और अपनी कल्पना में ऐसे ईश्वर को साकार करता रहा हूं जो मनुष्यों के अपार गौरव और महानता का प्रतीक हो। उस ईश्वर की खोज में मैंने संसार के सभी नये-पुराने दर्शन शास्त्र पढ़े हैं, परन्तु मुझे संतोष नहीं मिला।

हां, हिन्दुओं का वेदान्त पढ़ने पर मुझे जरूर कुछ संतोष हुआ और मेरी कल्पना का ईश्वर साकार किया है। हिन्दू दर्शन कहता है—

मुझे घृणा से मुक्त कर दो, मुझे अजातशत्रु बनाओ और भावनाओं के तूफान में मुझे इस प्रकार अचल-अटल बनाओ कि सबको समझ सकूं और प्यार कर सकूं।

ब्रिटिश आयरिश महिला डॉ. एनी बीसेंट कहती है—दुनिया के महान् धर्मों का 40 वर्षों तक अध्ययन करने के दौरान मुझे इतना पूर्ण, इतना वैज्ञानिक, इतना दार्शनिक और इतना आध्यात्मिक दूसरा कोई धर्म नहीं मिला जितना वह धर्म जिसे हिन्दू धर्म के नाम से जाना जाता है। आप इसे जितना अधिक जानेंगे उतना ही अधिक प्यार करेंगे और जितना अधिक समझेंगे उतना ही अधिक आदर करेंगे।

श्री डी.ओ. ब्राउन, 20-2-1884 के डेली ट्रिब्यूशन में लिखते हैं—यदि हम पक्षपात रहित होकर भलीभाँति परीक्षा करें, तो हमें स्वीकारना पड़ेगा कि हिन्दू ही सारे संसार के साहित्य, धर्म और सभ्यता के जन्मदाता हैं।

अमेरीका से आये पादरी खेरेण्ड आवर ने पुणे और उसके आस-पास कुछ अशिक्षितों को ईसाई बनाया। एक दिन एक हिन्दू विद्वान् ने उनसे प्रश्न किया कि क्या आपने कभी हिन्दू धर्म का अध्ययन किया है? पादरी का उत्तर था, 'नहीं'। तब विद्वान् ने आवर साहब से कहा कि हिन्दू धर्म की निन्दा और ईसाई मत की प्रशंसा करने से पहले आप को हिन्दू धर्म का अध्ययन कर लेना चाहिए।

यह बात खेरेण्ड को जंच गयी। संस्कृत और मराठी सीखकर उन्होंने एकनाथ, ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि सन्तों के साहित्य का न केवल अध्ययन किया, अपितु उनके जीवन चरित और तत्त्वज्ञान का अंग्रेजी में अनुवाद भी प्रकाशित किया। किन्तु यह सब करते हुए उनका मन बदल गया और उन्होंने अमेरिकी मिशन को जो पत्र लिखा, वह प्रत्येक ईमानदार मिशनरी के लिए ध्यान देने योग्य है।

लिखा, 'भारत ने आज तक हजारों ईसा उत्पन्न किये हैं और भविष्य में भी यहां अनेक ईसा पैदा होंगे। इसलिए भारत में ईसाई मत के प्रचार का कोई प्रयोजन नहीं, उसे सर्वथा बन्द कर देना चाहिए।

भारत तो सत्य और धर्म का अगाध समुद्र है। प्रत्येक ईसाई को अपने मत का प्रचार न कर सत्य धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। मैं मिशन से त्याग पत्र देता हूं और अपनी आठ लाख रुपये की सम्पत्ति, जो अमेरीका में है, पुणे के 'भारतीय इतिहास संशोधन मण्डल' को अर्पित करता हूं। इस धन से भारतीय ग्रन्थों के अनुवाद छपते रहेंगे।'

बर्टेंड रसेल जिन्होंने Why I am not a Christian पुस्तक लिखी। सन् 1950-52 में एक बार डॉ. राधाकृष्णन् और रसेल में रेडियो वार्ता हुई। पहले रसेल ने 'मैं धर्म को क्यों नहीं स्वीकारता' पर अपनी वार्ता प्रस्तुत की फिर डॉ. राधाकृष्णन् ने हिन्दू धर्म को परिभाषित कर उसकी व्याख्या प्रस्तुत की। उस वार्ता को सुनकर रसेल कहते हैं—धर्म का स्वरूप यह है तो मुझे भी धर्म मान्य है। स्पष्ट है 'ईसाइयत एकमात्र सच्चा Religion है' और 'Personal God की अवधारणा' ने लोगों के जीवन को नरक बना दिया था। इसलिए हर प्रबुद्ध व्यक्ति यूरोप में ईसाइयत के विरोधी हुए यथा—जॉनलेकी, चाहे जॉनलॉक, चाहे आइंस्टाइन, कार्लजुंग, सिगमंड फ्रायड, नीत्शे, थियोडोर, एडोलमो, ए.जे. अय्यर, अन्ना, अरिन्ट, मैक्स प्लेंक, हुस्सर्ब, मैक्समूलर, फयूरबाख आदि-आदि।

बी.बी.सी. के उद्घोषकर्ता, पत्रकार, लेखक मार्क टूली ने दार्जिलिंग के वेलहम स्कूल के बच्चों को सम्बोधित करते हुए कहा—जब पश्चिम स्वयं अपने जीवन-मूल्यों पर पुनर्विचार कर रहा है तब नकली अमरीका बनने की अपेक्षा असली भारत बनना अधिक सातत्यपूर्ण है।

विलियम काँप कहता है—हिन्दू संस्कृति की अपूर्व शक्ति और दीर्घायुता का सर्वप्रथम कारण प्रकटतः भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और परस्पर विरोधाभासी आस्थाओं को व्यवस्थित तथा समायोजित करने की इसकी क्षमता है। अनेक रूपी तत्त्वों को समायोजित करने और उन्हें सामाजिक और अलग-अलग पहचान देने की इसकी योग्यता सम्भवतः मानव इतिहास में अभूतपूर्व है।

भगिनी निवेदिता कहती है—हिन्दू धर्म कभी भी सनातन न बन पाता, यदि वह निरन्तर वर्धमान और वितरणशील बनकर, अनुभूतियों के नव-नवीन क्षेत्रों को अपने अन्दर सम्मिलित करता न रहता। प्रत्येक नवागत कल्पना को अपने अन्दर संकलित कर अपने को तदनुरूप समायोजित करने की सामर्थ्य हिन्दू धर्म का एक विशेष लक्षण है, इसलिये हिन्दू धर्म को हम एकमात्र अमर धर्म के रूप में पहचानते हैं। संसार के ज्ञात किसी अन्य धर्म के अन्दर इस प्रकार का सामर्थ्य उस मात्रा में नहीं जितना हिन्दू धर्म में है। अतः हिन्दू धर्म विश्वधर्म के वृक्ष का वह

तना है जो संसार के अन्य अल्पजीवी, धर्म-मतों को बहिर्वर्ती शाखाओं के रूप में वहन करता है।

अमरीकी इतिहासकार विल डूरेन्ट ने दस खण्डों में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'स्टोरी आव सिविलाइजेशन' के प्रथम खण्ड 'अवर ओरियंटल हेरिटेज' में इस बात का उल्लेख किया है कि आधुनिक विश्व भारत से क्या आशा कर सकता है। उन्होंने कहा है (पृष्ठ सं. 633) 'यह सत्य है कि हिमालय की सीमाओं के पार भी भारत ने हमें व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शन, कथाओं, सम्मोहन और शतरंज तथा इन सबसे बढ़कर हमारे अंक और दशमलव प्रणाली की महान भेंट दी है परन्तु ये सब उसकी आत्मा का सार नहीं है। भविष्य में हम उससे जो सीख सकते हैं उसके मुकाबले में ये सब तुच्छ हैं। जैसे-जैसे नए आविष्कार, उद्योग तथा व्यापार महाद्वीपों को एकता में बाँधेंगे या एशिया के साथ हमको संघर्ष में डालेंगे, हम उनकी सभ्यताओं का अधिक निकटता से अध्ययन करेंगे तथा शत्रुता में भी उनके कुछ आचार-विचार को अपना लेंगे। संभवतः विजय, उद्दंडता और लूटमार के बदले में भारत हमें परिपक्व बुद्धि की सहनशीलता और शालीनता, असंग्रहशील आत्मा का शान्त-संतोष, समझदार व्यक्तित्व की शान्ति और सभी जीवित प्राणियों के प्रति एकता और प्रेम की शिक्षा देगा।'

पादरी स्टोक्स सत्यानंद बना

शिमला से लगभग 35 मील दूर कोरखाई में ईसाई प्रचार सेन्टर स्थापित किया गया था। सन् 1904 की बात है। अमरीकी नवयुवक पादरी मि. स्टोक्स केन्द्र का प्रमुख था। युवा पादरी प्रतिदिन गले में दूध की शीशी लटकाता है। डिब्बे में पकी हुई खिचड़ी और थैले में दवाइयां लेता है। प्रतिदिन पहाड़ी के गांवों में पहुँच कर बीमारों की सेवा करता। भूखों के लिए धन देकर भोजन की व्यवस्था करता व गरीबी का लाभ उठाकर धर्म परिवर्तन कराता। कुछ ही दिनों में युवा पादरी गरीबों में देवता की तरह पूजा जाने लगा।

एक दिन अचानक रिटायर्ड सिविल सर्जन तथा प्रसिद्ध सन्त स्वामी सत्यानन्द जी महाराज हिमालय की यात्रा से जाते समय कोरखाई के पास पहुँचे। सूर्यास्त का समय था। अचानक जैसे ही पादरी स्टोक्स सपरिवार घूमने जा रहा था कि उसने तेजस्वी संन्यासी को जाते देखा। परिचय के बाद पादरी ने स्वामीजी से रात्रि अपनी कुटिया में बिताने की प्रार्थना की। स्वामीजी ने स्वीकार कर लिया। रात्रि शयन के पूर्व स्वामीजी ने गीता का पाठ किया। पादरी को गीता के विषय में जिज्ञासा हुई। गीता के विषय में स्वामीजी से विचार हुआ तब गीता का ज्ञान सुनकर आश्चर्यचकित होकर स्वामीजी को कुछ दिन के लिए और रहकर

सत्संग की प्रार्थना की। और वह गीता के तत्त्वज्ञान से इतना प्रभावित हुआ और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि गीता का ज्ञान सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपयोगी है। इसलिए गीता के प्रति समर्पित होने में ही जीवन की सार्थकता है। और उसने घोषणा की, 'मैं भारत में ईसाइयत के प्रचार के लिए आया था। किन्तु, आज गीता व भगवान् कृष्ण के तत्त्व को समझकर सनातन धर्म की शरण ग्रहण करता हूं।' स्टोक्स ने स्वेच्छा से अपना नाम बदल कर सत्यानन्द रखा तथा कुटिया के पास भगवान् कृष्ण के मंदिर की स्थापना करायी। वह आजन्म गीता व भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करता रहा। भगवान् कृष्ण के इस वाक्य—'जो मनुष्य खुद कमाकर खुद खा जाता है वह अन्न नहीं खाता बल्कि पाप खाता है।' इसने उसे आजीवन चमत्कृत रखा। पादरी स्टोक्स की पोती डॉ. विद्या स्टोक्स इस समय हिमाचल प्रदेश कांग्रेस की बड़ी नेता है और प्रदेशाध्यक्ष भी रह चुकी है।

आस्ट्रियाई युवक जार्ज सीब्रा वियना विश्वविद्यालय में थीसिस की तैयारी करते समय भारतीय दर्शन के प्रति आकर्षित हुआ और भारत आकर ऋषिकेश में गंगा के पुनीत दर्शनों एवं गंगा तट के वातावरण से उन्हें अपार शान्ति प्राप्त हुई। इसके बाद भगवान् श्रीराम के पावन चरणों में पवित्र अयोध्या नगरी में तीन वर्ष तक साधना की। और राम के नाम के महत्त्व को समझकर कहते हैं—'राम नाम तो मेरे लिए सत्य है ही, भारत ही सत्य का दूसरा नाम है। भारत केवल मेरे लिए ही नहीं, अपितु विश्व के लिए ही मोक्ष भूमि है। भारत अवतारों की धरा है। और इस तरह समूचे संसार के लिए कल्याण की धरा है। मेरा दिल कहता है भारत ही दुनिया का दिल है।

वे अन्यत्र कहते हैं—'पाश्चात्य देशों की मानसिक पराधीनता की भावना ने इस धर्मप्राण देश की आत्मा को इतना जकड़ा हुआ है कि विदेशी के मुंह से भारतीय संस्कृति का गुणगान सुनकर उनमें आत्म विश्वास पैदा होता है। मैं जब भारतीय धर्म, समाज, दर्शन, संस्कृति और सभ्यता का गुणगान करता हूं तो भारतवासियों के चेहरे पर चमक आ जाती है। भारत को सिर्फ एक बार जागना है। फिर तो वह ऐसा उठेगा कि संसार को ज्ञान का अद्‌भुत प्रकाश देगा। भारत का धर्म ज्ञान-विज्ञान सम्मत है। इसलिए मैं भारत के ज्ञान सम्मत भक्ति भाव पर आस्था रखता हूं और जब मुझे किसी भक्त के दर्शन होते हैं तो मैं उनके सम्मुख साष्टांग दण्डवत करता हूं। बाद में वे जार्ज सीब्रा से स्वामी जयकुमार बन गए।

अमरीकी महिला दयामाता—भारतीय योगी परमहंस योगीनंदजी महाराज ने अमेरीका में जिन व्यक्तियों को भारतीय बनाया उनमें दयामाता उल्लेखनीय हैं। दयामाता को धर्मप्राण भारतीयों को अमेरीका का अन्धानुकरण करते देखकर अत्यन्त आश्चर्य व दुःख होता है। हम अमरीकी तो भौतिकवाद से ऊबकर

भारतीयता की शरण में आ रहे हैं और आप भारतीय अमेरीका-इंग्लैण्ड को अपना आदर्श मानते हैं।

दयामाता ने स्पष्ट गर्व के साथ कहा—भारतवर्ष हमारी आध्यात्मिक मातृभूमि है। पुण्यभूमि है। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि भारतीय संस्कृति व भारतीय दर्शन को समझने व उस पर आचरण करने से ही विश्व को सच्चा सुख और शान्ति मिल सकती है।

स्वामी विवेकानन्द के कार्य में सहयोगिनी और उनकी मित्र कुमारी जोसेफिन मेक्लॉउड जब स्वामी विवेकानन्द से मिली, तब उन्हें मानसिक सम्पदा के रूप में पूरी गीता कण्ठस्थ थी।

कराटे के पूर्व विश्व चैम्पियन चार्ल्स लोंगडन का कथन

मार्शल आर्ट में चाहे जूडो हो, कराटे हो, कुंगफू या कुछ अन्य—सबकी उत्पत्ति भारत में ही हुई। भारत से चीन होते हुए यह कला जापान पहुंची और फिर पूरे विश्व में लोकप्रिय हुई। चूंकि इनकी उत्पत्ति भारत में हुई इसलिए इसका सम्बन्ध केवल शारीरिक व्यायाम से नहीं है, बल्कि मानसिक संतुलन और आध्यात्मिक विकास से भी इनका गहरा रिश्ता है।

उधर जब मैंने ईसाई साहित्य पढ़ा तो पाया कि उसमें लिखा है कि ये सब गतिविधियां गैर ईसाई हैं।

मैंने ईसाई मत को नजदीक से जानने-समझने के लिए अधिक से अधिक धार्मिक पुस्तकें पढ़नी शुरू कर दी। पर जितना मैं पढ़ता गया और अधिक प्रश्न मेरे मन में उठते रहे और अधिक विरोधाभासों का जन्म होता गया।

मैं यह मानता हूं कि सत्य वह है जिसको मेरा मस्तिष्क तर्क से स्वीकार ले। क्योंकि भगवान ने सबको मस्तिष्क इसलिए दिया है ताकि हम हर बात को तर्क की कसौटी पर परख सकें। सिर्फ कोई दूसरा कुछ कह रहा है इसलिए हम भी वही करें यह किसी भी दृष्टि से सही नहीं है।

ऑटोबायोग्राफी ऑफ ए योगी—लेखक स्वामी योगानन्द यह पुस्तक मैंने पढ़नी शुरू की और मैं अचंभित रह गया। इस पुस्तक ने एक नए विश्व के द्वार मेरे लिए खोल दिये। एक ऐसा विश्व जिससे मैं अभी तक पूरा अनजान था। भारतीय संस्कृति के बारे में मैंने जो भी पढ़ा उससे मैं प्रभावित हुआ। उससे मुझे बहुत प्रेरणा मिली।

इसके बाद दीपक चौपड़ा की एक पुस्तक पढ़ी—क्वान्टम हीलींग। मैं यह सब पढ़ता गया और अचंभित होता गया। पूरब के बारे में, भारत के बारे में जितना

पढ़ा, मेरी रुचि उतनी ही बढ़ती गई। मेरे विचारों को परिपक्वता प्रदान करने, जिन्दगी को समझने में और मेरे आध्यात्मिक विकास में इन पुस्तकों ने मेरी बहुत मदद की।

इस बीच मुझे महसूस हुआ कि धीरे-धीरे मैं हिन्दुस्तान और हिन्दू धर्म के नजदीक और नजदीक आता जा रहा हूं। भारत की आध्यात्मिक शक्ति मुझे खींच रही है।

महेश योगी के शिष्य स्वामी ब्रह्मदेव उपाध्याय जब भारत आ रहे थे उनके साथ एक सप्ताह के लिए भारत आया। यह एक सप्ताह भी मेरे लिए विविध अनुभवों से भरा रहा। यहां आकर बहुत कुछ जाना।

पर हिन्दू धर्म, यहां के रीति-रिवाजों को लेकर मेरे मन में अभी भी बहुत सारे सवाल अनुत्तरित है, जिज्ञासा शांत नहीं हुई है। इसलिए जल्द ही दोबारा भारत आऊंगा।

उद्धृत पाञ्चजन्य, 31 मार्च, 1996

इस संदर्भ में गायत्री परिवार के प्रमुख डॉ. प्रणव पण्ड्या की साक्षी बहुत महत्त्व की है। वे कहते हैं कि आज हिन्दुत्व की स्वीकार्यता विश्वभर में बढ़ रही है। मैं अमरीका, यूरोप, आस्ट्रेलिया में स्वयं इस चीज को अनुभव करता हूं। इन जगहों पर वर्ष में कई बार जाना होता है तो देखता हूं कि हर बार नए-नए लोग हिन्दुत्व के साथ जुड़ रहे हैं। अलग-अलग मतों के लोग सनातनी ज्ञान गंगा में डुबकी लगा रहे हैं। विदेशियों को भारतीय संस्कृति, भारतीय ज्ञान-परम्परा, भारतीय जीवनशैली बहुत अच्छी लगती है। उन्हें अपने मत में जीवन के उन प्रश्नों का उत्तर कभी नहीं मिलता है, जिनका वे लगातार सामना करते हैं। उन्हें अपने सवालों का उत्तर भारतीय संस्कृति में मिलता है। भारतीय विद्वानों से वे लोग बहुत ही तर्क के साथ उत्तर चाहते हैं और जब उनकी जिज्ञासा शान्त हो जाती है तो उन्हें परम शान्ति मिलती है। इसके बाद वे भारतीय संस्कृति की ओर मुड़ने लगते हैं। पूरे विश्व में अलग-अलग मतों के ऐसे लाखों लोग हैं, जो सनातनी जड़ों से जुड़े हैं और सनातन धर्म के लिए कार्य कर रहे हैं। शान्तिकुंज में प्रतिमाह 200 से 300 तक विदेशी आते हैं। ये लोग भारत की परिवार व्यवस्था और विवाह व्यवस्था के कायल हैं। बहुत सारे विदेशी अपने विवाह की वर्षगांठ, जन्मदिन आदि भारत में आकर भारतीय परम्परा के अनुसार मनाते हैं। उन्हें भारत की इस बात का भी आकर्षण है कि यहां नारी को 'देवी' मानकर पूजा जाता है। इसलिए अनेक विदेशी भारत आते हैं और यहां की परम्पराओं को नजदीक से समझते हैं। इसके बाद वे लोग भी अपने यहां नारी के सम्मान के लिए कार्य करते हैं। ईरान

के अनेक मुसलमान परिवार भी भारतीय संस्कृति के उपासक हो गए हैं। हालांकि उनकी गतिविधियां अभी उनके घरों तक ही सीमित हैं, लेकिन मेरा अनुमान है कि कुछ वर्ष बाद वे भी खुलेआम भारतीय संस्कृति के पक्ष में खड़े हो सकते हैं। इस संस्कृति में वैश्विक मानवता के कल्याण का भाव है। पर्यावरण और प्रकृति की चिन्ता है। सबके लिए आग्रह, सभी को स्वीकारने की क्षमता है, इसलिए निःसन्देह इसका आकर्षण बढ़ा है।

भारतीय चिंतन परम्परा से सुख, शान्ति, समाधान पा रहे हैं, उसमें एक अति उज्ज्वल नाम **डेविड फ्रॉली** का है। लम्बी दाढ़ी, आंखों में गहरी शान्ति और चेहरे पर अद्‌भुत तेज! लगभग 63 वर्ष की आयु के अमरीकी डेविड फ्रॉली को देखकर लगता है जैसे प्राचीन भारत के किसी ऋषि से मिल रहे हों। लम्बी कद-काठी, गले में रुद्राक्ष की माला और गेरुए रंग का कुरता पायजामा पहने डेविड फ्रॉली पहुंचे हुए संत जैसे दिखते हैं। किशोरावस्था से ही इन्हें हिन्दू धर्म, दर्शन के प्रति गहरा लगाव हो गया था। डेविड बीच-बीच में भारत आकर इनका अध्ययन करते, यहां संतों से मिलकर हिन्दू धर्म और दर्शन के बारे में ज्ञान प्राप्त करते।

धीरे-धीरे डेविड का मन इसमें इतना रम गया कि उन्होंने हिन्दू धर्म, दर्शन, अध्यात्म, वेद, पुराण और उपनिषद् आदि का एक सिरे से अध्ययन कर डाला। वह हिन्दू धर्म में ऐसे डूबे कि अपना नाम तक बदलकर वामदेव शास्त्री रख लिया। अब वे अनेक वर्षों से योग, आयुर्वेद, ज्योतिष और वेदांत पर दुनियाभर में व्याख्यान दे रहे हैं। हिन्दू धर्म और दर्शन के प्रचार-प्रसार में पूरे जी-जान से जुट गए हैं। डेविड फ्रॉली हिन्दू धर्म, दर्शन, संस्कृति और अध्यात्म पर 30 से अधिक पुस्तकें लिख चुके हैं। अमरीका के न्यू मैक्सिको नगर स्थित **अमरीकन इंस्टीट्यूट ऑफ वैदिक स्टडीज** के संस्थापक डेविड फ्रॉली को जनवरी 2015 में भारत में पद्म भूषण सम्मान से अलंकृत किया जा चुका है। जहां भारत में वेद, ज्योतिष, तंत्र, योग आदि का नाम लेना 'साम्प्रदायिकता' और 'पिछड़ेपन' की निशानी माना जाता है वहीं अमरीका स्थित उनके संस्थान में वेद, आयुर्वेद, ज्योतिष, योग, तंत्र और वेदांत पर निरंतर शोध होते रहते हैं।

भारत में शिक्षा के भगवाकरण के आरोपों पर उन्होंने कहा कि अगर इसे इतिहास बदलना कहा जा रहा है तो यह सही है। विदेशियों ने अगर आपकी पाठ्यपुस्तकों में इतिहास के नाम पर कुछ भी लिख दिया है तो वह अंतिम शब्द कैसे हो सकता है। भारतवासियों को यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि उनका इतिहास जिसे वह पढ़ रहे हैं उसे विदेशियों ने औपनिवेशिक काल में केवल अपने फायदे के लिए लिखा था।

उन्होंने कहा कि कुछ वर्ष पहले मैं कनाडा में कई प्रमुख हिन्दू संस्थाओं के बीच व्याख्यान दे रहा था। मुझे बताया गया कि टोरंटो का नया स्वामिनारायण मन्दिर अन्तरराष्ट्रीय हवाई अड्डे के पास अलग से दिखता है। यह बहुत ही खूबसूरत और शानदार बनाया गया है। इसने हिन्दुत्व के प्रति कनाडा वालों के विचारों में इतनी सकारात्मकता ला दी जितनी कि भाषणों या व्याख्यानों से नहीं आयी थी।

उन्होंने बताया कि योग, मंत्र और ध्यान से पश्चिम के लोगों के जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन आ रहा है, उनमें तारतम्यता और सम्पूर्णता आ रही है। उन्होंने कहा, 'मैंने कितने ही लोगों को देखा है जिनके असाध्य रोग आयुर्वेद से ठीक हुए हैं। मानसिक रोगों में योग और आयुर्वेद बहुत लाभकारी रहे हैं। अवसाद, भटकाव और वैसी ही अन्य मानसिक समस्याएं इससे दूर हुई हैं।'

साभार : पाथेय कण 1 जून, 2016

संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव कोफी अन्नान ने अगस्त 2000 में 'मिलेनियम रीलिजियस पीस समिट' के समापन सम्मेलन में हिन्दुओं का आह्वान करते हुए कहा—हिन्दू धर्म में कई सर्वहितकारी तथा उच्च सिद्धांत हैं। हिन्दुओं ने यह सब कुछ अपने तक सीमित रखा है। उन्होंने हिन्दुओं से शान्ति के नाम पर आह्वान कर निवेदन किया कि 5 अरब गैर-हिन्दुओं को बिना धर्म परिवर्तन के ये गुण सिखायें ताकि उन मूल्यों पर जीकर विश्व शांति स्थापित कर सकें और सर्वहितकारी तथा पराविद्या का ज्ञान भी लोगों को मिल सके।

संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव कोफी अन्नान से एक पत्रकार बंधु ने पूछा—विश्व में जो आपा-धापी चल रही है, विनाश की ओर जा रहा है, इससे रक्षा का कोई उपाय शेष है—तब उन्होंने कहा जब तक हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म है तब तक निराश होने का कोई कारण नहीं है।

इंग्लैण्ड के महानतम दार्शनिक बर्ट्रेंड रसेल की यह घोषणा कि यदि उन्हें किसी धर्म को स्वीकार करने को कहा जाए तो वे बौद्ध धर्म को ही स्वीकार करेंगे।

अमरीका में चीन के पूर्व राजदूत हयू शिह कहते हैं कि 'भारत ने चीन में एक भी सैनिक नहीं भेजा। खून का एक कतरा नहीं बहाया। किसी की आंखों में आंसू की एक भी बूंद नहीं डाली। फिर भी चीन दो हजार साल तक उसके प्रभाव में रहा।'

मार्क ट्वेन् कहते हैं कि मानवता भारत रूपी पालने में फली-फूली है। मनुष्य को वाणी यहीं से मिली है और मनुष्य का इतिहास भी यहीं से निकला है। गाथाओं की तो दादी रहा है और परम्पराओं के मामले में दादी की भी माँ। मनुष्यता की सारी रचनात्मक धरोहरें भारत में ही हैं।

प्रो. लूई रिनाऊ (पेरिस विश्वविद्यालय) कहते हैं संसार के देशों में भारत के प्रति लोगों का प्रेम एवं आदर उनकी बौद्धिक, नैतिक एवं अध्यात्मिक सम्पदा के कारण है।

हम सब जानते हैं ग्रामोफोन की रिकॉर्ड प्लेट का आविष्कार थॉमस अल्वा एडीशन ने किया, तो उसमें उस समय किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के बोल सर्वप्रथम रिकॉर्ड करना चाहा, इस दृष्टि से मैक्समूलर से सम्पर्क किया। मैक्समूलर एडीशन का बहुत मान करते थे। इस दृष्टि से एडीशन को जिस समय यूरोप के अधिकांश विद्वान् इंग्लैण्ड के सम्मेलन में एकत्रित होने वाले थे, उसमें बुलाया। एडीशन निर्धारित तिथि पर उक्त सम्मेलन में पहुंचे। जहां उनका भव्य स्वागत हुआ। विद्वानों के बीच में एडीशन ने अपने यंत्र में मैक्समूलर को बोलने को कहा। तब मैक्समूलर ने एक वचन कहा। जब कुछ समय बाद उस वचन की पुनः हूबहू आवाज को श्रोतागण सुनकर करतल ध्वनि से स्वागत किया तो इस आवाज के विषय में मैक्समूलर ने स्पष्ट किया कि संस्कृत भाषा में ऋग्वेद का प्रथम मंत्र है। वेद मानव जाति का प्रथम प्रकाश है, आलोक है, पुस्तक है। यह उस समय की बात है जब यूरोप के लोगों ने बन्दर की पूँछ काटकर मनुष्य बनना नहीं सीखा था, कच्चा मांस खाते थे, अपने तन को पत्तों से ढकते थे। उस प्राचीन काल में भारतीयों ने उच्च सभ्यता का विकास कर लिया था और उन्होंने वेद के रूप में दुनिया को सर्वकल्याणकारी दर्शन उपलब्ध कराया। मैक्समूलर ने एडीशन से इस रिकॉर्ड को पुनः बजाने का अनुरोध किया। इस बार जब 'अग्निम् इळे पुरोहितम्' की ध्वनि हुई तो वहां उपस्थित समुदाय भारतीय मनीषियों के प्रति श्रद्धा भाव से मौन होकर खड़े हो गये। इस बार करतल ध्वनि के स्थान पर श्रद्धा युक्त शान्ति थी।

जब पिटमैन ने ध्वनि को शब्दों में रूपान्तरित कर शॉर्ट हैंड का आविष्कार किया था, तब उन्होंने माना था कि अपने कार्य के लिए उन्होंने संस्कृत की मदद ली थी।

न्यूजर्सी में स्थापित अमेरीका की सेटन हाल यूनिवर्सिटी जिसमें 10,800 छात्र हैं सभी छात्रों के लिए गीता पढ़ना अनिवार्य कर दिया है। विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में गीता के मुख्य अंश पाठ्यक्रम में डाले हुए हैं।

आज रूस के राष्ट्रपति मेदवेदेव ओमकार (ॐ) ध्वनि के साथ-साथ राष्ट्रपति पद की शपथ ले रहे हैं।

त्रिनिदाद और टोबैगो की प्रधानमंत्री कमला प्रसाद बिसेसर 26 जून, 2010 को नोस्ली (पोर्ट ऑफ स्पेन) में एक गरिमामय समारोह में, गीता हाथ में लेकर प्रधानमंत्री पद की शपथ लेती है।

जिस संस्कृत भाषा को मृत भाषा घोषित किया था अंग्रेजों ने, किन्तु उसे अब विश्व के वैज्ञानिकों, भाषाशास्त्रियों तथा दार्शनिकों ने विश्व की श्रेष्ठ भाषा घोषित किया है तथा विश्व के वैज्ञानिकों की भावी भाषा बतलाया है।

संस्कृत को विश्व की जननी भाषा तथा विश्व संस्कृतियों, सभ्यताओं, परम्पराओं के विकास क्रम को समझने के लिए अनिवार्य माना है। विश्व के अनेक भाषाविद्, पुरातत्त्ववेत्ता, इतिहासकार, दार्शनिक विश्व के सूक्ष्म अध्ययन तथा विश्लेषण के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक मानते हैं। संस्कृत के बिना न केवल भारत का अपितु विश्व का अतीत नहीं समझा जा सकता। प्रो. बाप ने एक समय संस्कृत को विश्व की एकमात्र भाषा, ड्यूवास ने संस्कृत को आधुनिक यूरोपीय भाषाओं का उद्गम, मैक्समूलर ने विश्व की महानतम भाषा कहा है। विल ड्यूरेंट ने कहा, भारत हमारी वंशीय माता और संस्कृत यूरोपीय भाषाओं की माता है। संस्कृत भारत को विश्व से जोड़ने की भाषा है। ईस्ट इंडिया कंपनी तथा शासन की स्थापना के बाद सर विलियम जोन्स, एच.एच. विल्सन, ऐलफिन्स्टन ने संस्कृत भाषा को अत्यधिक महत्त्व दिया। उदाहरण के लिए एच.एच. विल्सन ने एक भारतीय विद्वान् के पत्र के उत्तर में संस्कृत के बारे में लिखा, 'अमृत बहुत मीठा होता है।

संस्कृत उससे भी अधिक मीठी है, क्योंकि देवता इसका सेवन करते हैं। यह देववाणी कहलाती है। इस संस्कृत में ऐसी मिठास है जिसके कारण हम विदेशी लोग इसके सदा दीवाने रहते हैं। जब तक कि भारतवर्ष में विन्ध्य तथा हिमालय है, जब तक गंगा तथा गोदावरी है, तब तक संस्कृत है।' प्रो. श्लेगल ने संस्कृत भाषा तथा भारत को अत्यधिक उच्च स्थान दिया है (देखें, अपोन द लैंग्वेजेज एण्ड विजडम ऑफ द हिन्दूज, 1865)। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्राचीन भारत का संस्कृत साहित्य अमर माना गया है। वेदों से लेकर रामायण-महाभारत तक विश्व के अनेक दार्शनिकों ने इसका यशोगान किया है। गीता उपनिषद् सूत्र स्मृति अनेकों की प्राणवायु रही है। प्रसिद्ध विद्वान् पं. भगवद दत्त ने इस पर विस्तृत रूप से लिखा है। सर हेनरी कोलब्रुक ने वेद पर लेख लिखे। मैक्समूलर ने ऋग्वेद का अनुवाद किया। शोपेन हावर ने उपनिषदों के लैटिन अनुवाद को पढ़ा तथा मानव बुद्धि की पराकाष्ठा की उपज बतलाया। अपने जीवन की परम शान्ति तथा मृत्यु के बाद की शान्ति बतलाया। इम्वोल्ट ने गीता को सबसे गहरा दर्शन तथा विश्व की सबसे दीर्घ वस्तु बताया। डॉ. गोल्ड स्ट्रेकर ने वेदांत की महिमा का गान किया।

साभार : पाञ्चजन्य 15 नवम्बर, 2015

विश्व के 35 देशों के 450 विश्वविद्यालयों में संस्कृत भाषा का अध्ययन-अध्यापन होता है। अमेरीका के विश्वप्रसिद्ध अंतरिक्ष अनुसंधान केन्द्र (नासा) के वैज्ञानिक डॉ. रिक ब्रिक ने विधिवत् शोध कर निष्कर्ष निकाला है कि संस्कृत संगणक (कम्प्यूटर) के लिए सहज और सर्वशुद्ध भाषा है। केवल संस्कृत ही एकमात्र भाषा है जिसकी ध्वनि हमारे मानवीय स्वर यंत्र के अनुसार है। लेखन और उच्चारण में कोई अन्तर नहीं है। मूल भाषा के नियमों के अन्तर्गत ही लाखों नए शब्द बनाने की सामर्थ्य केवल संस्कृत भाषा में ही है। किसी भी नए उपकरण अथवा वैज्ञानिक विधि का छोटा सारगर्भित नाम देने की सामर्थ्य केवल संस्कृत में है। पांच हजार वर्ष पूर्व गीता में प्रयुक्त संस्कृत भाषा तथा वर्तमान में प्रयुक्त संस्कृत भाषा के स्वरूप में किसी प्रकार का अंतर नहीं है। जबकि विश्व की किसी भी भाषा का स्वरूप 100-200 वर्षों के बाद इतना बदल जाता है कि भावी पीढ़ियों को समझने हेतु शब्दकोश तथा भाषा वैज्ञानिकों की सहायता लेनी पड़ती है। विश्व की किसी भी भाषा में लिखे वैज्ञानिक साहित्य को एक हजार वर्ष बाद जब अध्येता पढ़ेगा उसे समझने में कठिनाई होगी, यह कठिनाई संस्कृत भाषा में लिखे साहित्य के साथ होने वाली नहीं है। अनेक समृद्ध क्षेत्रीय भाषाओं के उपरान्त भी बड़े-बड़े भारतीय विद्वानों द्वारा स्थायी प्रकृति का साहित्य संस्कृत भाषा में ही लिखने का कारण इस भाषा का शाश्वत स्वरूप है।

2006 अमेरीका White House में दीपावली मनायी गई जिसमें President बुश को आमंत्रित किया गया और घी के दीये जलाए गए। पूरा White House भगवामय हो गया। लंदन में हाउस ऑफ कामंस में इसे मानव मात्र की सुख-समृद्धि का उत्सव मानकर मनाया जा रहा है। अमरीकी संसद में इस बार (2013 ई.) भी दीपावली मनायी गई।

आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैण्ड आदि की संसद में विगत अनेक वर्षों से शानदार ढंग से हिन्दू विधि से हिन्दू पंडित से मंत्रोच्चार करवाकर सरकारी स्तर से दीपावली उत्सव मनाते हैं।

12 जुलाई, 2008, संयुक्त राष्ट्र अमेरीका की सीनेट की बैठक का (कांग्रेस के कार्यक्रम का) हवन से शुभारम्भ हुआ। गीता के श्लोक व वेदमंत्रों का पाठ कश्मीरी पंडित राजन जैद ने सम्पन्न कराया।

10 दिसम्बर को अमेरीका की सबसे बड़ी डेमोक्रेटिक पार्टी ने अपने अधिवेशन का शुभारम्भ उसी प्रकार से किया जिस प्रकार White House में गीता के श्लोकों का पाठ, वेदों की ऋचाओं का पाठ व शान्तिमंत्र के गायन से किया।

यूनेस्को ने वैदिक मंत्रोच्चार की पद्धति को अन्तरराष्ट्रीय धरोहर घोषित किया है।

अमेरीका के पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन, वर्तमान ओबामा हनुमानजी के भक्त हैं। गले में हनुमान का लॉकेट है।

10 सितम्बर, 2008 (हिन्दुस्तान टाइम्स) जिनेवा में Big Bang theory के अध्ययन को लेकर किए जा रहे प्रयोग में धरती के काफी नीचे सुरंग बनायी। उसमें एक विस्फोट करना था। उसमें पूरे विश्व के वैज्ञानिक लगे हैं, जिसमें भारत के 200 वैज्ञानिक हैं। इस संस्था का नाम सी.ई.आर.एन. है। इन वैज्ञानिकों का अधिवेशन हुआ था उसकी अध्यक्षता नटराज की दो मीटर की बड़ी मूर्ति ने की।

बिल क्लिंटन जब राष्ट्रपति थे तो उनके साथ में उपराष्ट्रपति अलगोर थे। इस समय दुनिया में ग्लोबल वार्मिंग के बारे में सर्वाधिक इनिशिएटिव लेकर प्रचार करने वाला कोई व्यक्ति है तो वह अलगोर हैं। अलगोर उस समय उपराष्ट्रपति थे और वहां पर पृथ्वी सम्मेलन हुआ था। उस पृथ्वी सम्मेलन के उद्घाटन में अलगोर ने एक वाक्य कहा था कि पिछले तीन सौ सालों से हम लोग गलत मार्ग पर चल रहे हैं। अब समय आ गया है कि हम पुनर्चिन्तन करें और मार्गदर्शन के लिए पूर्व की ओर मुड़ें। इस समय और इस दिशा में जाना है तो होलिस्टिक थिंकिंग का जो कॉन्सेप्ट, जो मदर अर्थ का कॉन्सेप्ट भारत ने बहुत पहले दिया है, उसे अपनाएं। उस कान्फ्रेंस में अथर्ववेद का जो भूमि सूक्त है वह दुनिया के इकोलोजी के लोगों के लिए मास्टर प्रिन्ट हो सकता है, उसका अंग्रेजी अनुवाद सबको दिया गया। सबने कहा कि इसमें हमने जो कुछ सोचा वह सब कुछ है। उसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है। जो परिदृश्य खड़ा हुआ है इसमें आदमी को लगता है कि हमें कहीं इधर आना पड़ेगा।

वैश्विक ताप की समस्या अमेरीका और यूरोपीय देशों की जीवनशैली के कारण ही उत्पन्न हुई है। इसके समाधान के लिए अनेक सम्मेलन हुए, लेकिन कहीं से भी इस समस्या का समाधान नहीं निकल पाया। समाधान के लिए आखिरकार सबने भारतीय चिन्तन दर्शन की ओर देखा। दुनिया के अनेक देशों ने भारतीय चिन्तन दर्शन को विभिन्न समस्याओं के समाधान के रूप में स्वीकार किया है।

राजीव गांधी जब प्रधानमंत्री बने और भारत से परिचय कराने के लिए भारत उत्सव का आयोजन मास्को में किया जिसका उद्घाटन राष्ट्रपति गोर्बाचोव ने किया। उन्होंने अपने उद्घाटन भाषण में कहा, आज दुनिया सर्वनाश की ओर जा रही है, उसे विनाश से बचाने के लिए अत्यन्त मूल्यवान सिद्धान्त, तत्त्व, जीवन-मूल्य भारत ही दे सकता है। इस अवसर पर उन्होंने गीता के दो श्लोक भी कहे—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।। 2/62, गीता
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। 2/63, गीता

जिसका अर्थ है कि जब मनुष्य का मन मोह में पड़ जाता है तो वह दानव बन जाता है। गुणों की सम्पत्ति नष्ट करने का प्रयास करता है। सबकी हत्या करने का प्रयास करता है। सब कुछ नष्ट हो जाता है। अतः मन को नियंत्रित करो। यदि मन नियंत्रित रहा तो सब कुछ ठीक रहेगा। यह कार्यक्रम दूरदर्शन में दिखाया गया था।

पश्चिम में परिवार जीवन, समाज जीवन समाप्तप्राय हो गया है। इसके बड़े दुष्परिणाम आ रहे हैं। अनैतिक सम्बन्ध और लावारिस बच्चों की फौज विस्फोटक स्थिति में पहुंच रही है। मार्गरेट थैचर इंग्लैण्ड की प्रधानमंत्री, जब वे प्रधानमंत्री पद से मुक्त हुईं तब एक भारतीय परिवार में एक सप्ताह तक रही। उसने कहा कि आने वाले समय में इंग्लैण्ड के समाज को अगर बचना है तो जितनी जल्दी हो सके भारतीय पारिवारिक मूल्यों को ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिए। क्लिंटन से लेकर ओबामा तक बिलियन्स डॉलर्स का बजट पारिवारिक जीवन-मूल्यों को पुनः विकसित करने के लिए प्रचार में लगा दिया है। पहले तोड़ा, अब भुगतने लगे, तो फिर से इधर आ रहे हैं।

इंग्लैण्ड में लंदन के मेयर (महापौर) स्वामीनारायण सम्प्रदाय द्वारा बनाए गए मंदिर को देखने गए। मंदिर में भारतीय और पौराणिक पात्रों पर बनी झांकियों को देखा। उसमें प्रह्लाद और ध्रुवजी की भी झांकी थी। उनके दर्शन करते-करते श्रवण कुमार की झांकी के सामने रुक गए। उसे बड़ा विचित्र लगा। एक युवक है, उसके बलिष्ठ कंधे पर एक विचित्र-सी चीज है, कांवड़ के जैसी। और एक बूढ़ा, एक बूढ़ी उसमें बैठे हैं। उसमें एक जवान और बूढ़ा-बुढ़िया से क्या तालमेल है? क्योंकि वहां तो सम्बन्ध रहता नहीं है। तो उसने पूछा कि क्या है यह? उसे बताया कि एक भारतीय पात्र है। एक युवक था, यह उसके मां-बाप हैं, उनकी इच्छा थी तीर्थयात्रा करने की। उनकी इच्छा पूरी करने के लिए उसने शादी वगैरह नहीं की। पहले यह करूंगा फिर उसके बाद अपना सुख, उनको लेकर सारे भारत में घूमकर यात्रा करायी। वह मेयर कहता है कि क्या यह सम्भव है? कंधे पर लेकर जवान लड़का और जवानी में ऐशो आराम करने के बजाय बूढ़े मां-बाप को ढोकर के ले जा रहा है क्या यह सम्भव है? लौट कर आने के बाद लन्दन की स्कूलों में एक सर्कूलर निकाला कि अपने बच्चों को मंदिर देखने के लिए भेजो कि चरित्र क्या

होता है, जीवनमूल्य क्या होता है। इसकी तो हमें जरूरत है? इस प्रकार आज पाश्चात्य जगत् भारतीय पारिवारिक मूल्यों की ओर, जीवनमूल्यों की ओर आकृष्ट हो रहा है।

आज वे भारतीय विवाह पद्धति की ओर आकृष्ट हो रहे हैं।

आज अमेरीका विचारों से हिन्दू होता जा रहा है। ऐसे सर्वे प्रकाश में आ रहे हैं। एक लेख में ऋग्वेद की उस ऋचा का उल्लेख किया गया है जिसमें कहा गया है कि सत्य एक है और विद्वान् इसे कई प्रकार से कहते हैं। इसी तरह हिन्दू मानते हैं कि ईश्वर की ओर जाने के कई रास्ते हो सकते हैं। ईसाइयत और कुरान भी इसमें शामिल है। ऐसा नहीं कि कोई भी रास्ता दूसरे से श्रेष्ठ है। अधिकतर पारम्परिक और रूढ़िवादी ईसाइयों को इस तरह से सोचने के बारे में नहीं सिखाया जाता है। लेकिन अमेरीकी अब पुरानी सोच को छोड़ रहे हैं। 30 फीसदी अमरीकी खुद को धार्मिक के बजाय आध्यात्मिक बताते हैं। आज नासा के वैज्ञानिक कह रहे हैं कि सूर्य रश्मियों से ओम की ध्वनि निकल रही है।

प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह के काल में तत्कालीन राष्ट्रपति प्रतिभा पाटील के मुख्य आतिथ्य में चाइना में भगवान बुद्ध के नये भव्य मन्दिर का उद्घाटन हुआ। उसमें भगवान बुद्ध की स्वर्ण मूर्ति प्रतिष्ठित है। और इसमें सारा अर्थ-व्यय जन सहयोग से हुआ है।

प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह के द्वितीय काल में चर्च से प्रेरित रूस में स्थित साइबेरिया के किसी एक लोवर कोर्ट ने गीता को आतंकवादी ग्रंथ घोषित कर प्रतिबंध लगाने की तैयारी कर ली थी। पर फैसला देने से पूर्व वहां की लोकसभा के सभी सदस्यों ने सर्वसम्मति से गीता को सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ कहा और प्रतिबंध की कड़ी भर्त्सना की। ऐसे व्यक्ति को पागल तक कहा। विश्व के अनेक देशों में गीता के समर्थन में आवाज उठी। भारतीय संसद ने पहली बार सर्व सम्मति से गीता के समर्थन में आवाज उठायी। अतः कोर्ट को गीता के समर्थन में फैसला देना पड़ा। असल में ईसाइयत गीता से भयभीत है, उसे अपने प्रसार में बाधक समझ करके ऐसे ओछे हथकण्डे अपनाती रहती है।

प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह के काल में अमेरीका के किसी कोर्ट में चर्च से प्रेरित होकर किसी नागरिक ने योग केन्द्र में होने वाली ओम की ध्वनि के विरुद्ध याचिका दायर की। उसका मन्तव्य था ओम के साथ हिन्दुत्व की सारी बातें आने लगती हैं, इससे सारे अमेरीका में हिन्दुत्व छा जायेगा। कोर्ट ने उसकी याचिका को रद्द कर दिया और 'ओम' ध्वनि में ऐसी किसी आपत्ति को स्वीकार नहीं किया।

प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह के काल में इंडोनेशिया, जो विश्व का सबसे अधिक मुस्लिम जनसंख्या वाला देश है, उसने अमेरीका की राजधानी वाशिंगटन को एक सरस्वती की प्रतिमा भेंट की। यह सुन्दर मूर्ति सोलह फुट ऊँची है और इसमें कमल के पुष्प पर विद्या की देवी सरस्वती खड़ी हैं। विद्या की देवी होने के कारण ही यह प्रतिमा अमेरीका को भेंट की गई है। अमेरीका में इसका सम्मान करते हुए मूर्ति भारतीय दूतावास से कुछ दूरी पर महात्मा गांधी की मूर्ति के सामने स्थापित की गई है। यह महात्मा गांधी की प्रतिमा कुछ वर्ष पूर्व वहां स्थापित की गई थी।

व्हाइट हाउस से कुछ दूरी पर स्थापित यह प्रतिमा औपचारिक उद्घाटन के पूर्व से ही शहरवासियों और टूरिस्टों के आकर्षण का केन्द्र बनी रही।

आज प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी विश्व के नेताओं (राष्ट्रपति और प्रधानमंत्रियों) को गीता भेंट में देते हुए कह रहे हैं भारत के पास इससे बड़ा कोई उपहार नहीं आपको देने के लिए और आपको भी भारत से लेने के लिए इससे बड़ा कोई उपहार नहीं है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के प्रयास से योग को विश्वस्तर पर स्वीकार कर लिया है। पहले ही प्रयास में 177 देशों ने स्वीकारा और 194 देशों ने इस पर दिव्य कार्यक्रमों की प्रस्तुति दी। 21 जून को विश्व में योग दिवस के रूप में पालन किया जा रहा है। मोदीजी विश्व के साथ भारत का सांस्कृतिक सम्बन्धों को पुनः दृढ़ करने में लगे हुए हैं जिसकी स्वाधीन भारत में उपेक्षा हुई थी।

आदि-शंकराचार्य की जयन्ती पर व्हाइट हाउस अमेरीका में श्री रूद्रम स्तोत्र के पाठ का वाचन जेफ्री अरहार्ड द्वारा शुद्ध व बहुत सुन्दर तरीके से प्रस्तुत हुआ।

आज वे कैमिकल के स्थान पर हरित को तुलसी, आंवला, हलदी, ग्वारपाठा, नीम, शाकाहारी भोजन, अध्यात्म, जीवन-मूल्य, पारिवारिक-मूल्य, हिन्दू त्योहार आदि की तरफ निरन्तर आकृष्ट होती जा रही है।

इस प्रकार हिन्दू धर्म को पुनः विश्वस्तर पर मान्यता मिलती जा रही है और हिन्दू धर्म से स्वतः आकर्षित होकर विश्ववासी इसे अपनाते जा रहे हैं।

वैज्ञानिक जगत् का वेदान्त की ओर झुकाव

सर जेम्स जीन्स, श्रोडिंजर, एडिंगटन, आइंस्टाइन, प्लांक प्रभृति बहुत से वैज्ञानिक आभासमय जगत् के आदि कारण के रूप में चेतन सत्ता को स्वीकारने लगे हैं।

श्रोडिंजर ने स्वयं लिखा है—अब तत्त्वज्ञान के रहस्यवाद से दूर न रहकर मैं उनका पूरा उपयोग करूंगा। वे आगे कहते हैं—सीधे-सादे रूप में यह घोषणा करते हुए मुझे कोई हिचक नहीं कि समान वातावरण में जीवन के अनुभव की

व्याख्या करने के लिए वास्तविक भौतिक संसार की स्वीकृति रहस्यात्मक और तात्त्विक है।

वेदान्त दर्शन की स्वीकृति करते हुए वे कहते हैं कि चिद्बिन्दु एक ही है। वे यह मानते हैं कि चिद्बिन्दुओं का सिद्धान्त वेदान्त दर्शन में परिणत हो जाता है।

इस दर्शन के अनुसार हम सभी चेतन प्राणी एक ही सत्ता के अनेक रूप हैं। वह 'एक' तत्त्व पाश्चात्य शब्दावली में God और उपनिषद् की शब्दावली में 'ब्रह्म' है। श्रोडिंजर लिखते हैं—अद्वैत सिद्धान्त के निम्नलिखित नैतिक निष्कर्ष हमें स्वीकारने चाहिए।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।। 13/27, गीता

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।। 13/28, गीता

समस्त विनाशशील प्राणियों में समभाव से स्थित विनाशरहित परमेश्वर को जो देखता है वही (यथार्थतः) देखता है। क्योंकि सर्वत्र समभाव से अवस्थित ईश्वर को समरूप से देखने वाला अपने द्वारा अपने को नहीं मारता। इससे वह परम गति को प्राप्त होता है।

प्राणीमात्र के प्रति दया और करुणा के भाव यहां चरम लक्ष्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उपनिषदों का अद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादित करता है कि प्रत्यक्ष भेद माया है। मूलभूत एकता ही सत्य है।....साधना का क्रम अनेक जन्मों तक चलता है और अन्त में साधक को किसी एक जीवन में प्रज्ञा, अवकाश और शुद्ध साधना की इतनी मात्रा उपलब्ध हो जाती है जिससे वह अद्वैत सिद्धान्त ग्रहण कर मुक्त हो सके।

सर जेम्स जीन्स के अनुसार भौतिक जगत् का मूलरूप विचार-बुद्धियुक्त चेतन स्वरूप है। भौतिक जगत् की घटनाएं बिना किसी सिद्धान्त के मनमाने ढंग की नहीं हैं। उनमें सामंजस्य, एकरूपता तथा विश्वव्यापी अनुशासन है। उन्हें गणित की भाषा में व्यक्त किया जा सकता है। सर जेम्स जीन्स के शब्दों में—भौतिक जगत् की सामंजस्यपूर्ण घटनाओं का रचयिता कोई बुद्धियुक्त सत्ता है। वह महान् गणितज्ञ प्रतीत होता है जिसको परमेश्वर कहा जा सकता है। भारतीय वेदान्त दर्शन के अनुरूप जेम्स जीन्स मानता है कि समग्र विश्व का विराट् रूप तथा सूक्ष्म रूप चेतन स्वरूप ही है। समग्र जगत् परमेश्वर द्वारा रचित है। भौतिक जगत् और उसकी घटनाएं परमेश्वर के मन में प्रत्यय के रूप में विद्यमान रहती हैं। यह इस भारतीय मान्यता का समर्थन है कि सारी सृष्टि परमेश्वर के संकल्प से प्रकट हुई

है। जेम्स जीन्स ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के आधारभूत स्वरूप में कोई अन्तर नहीं मानता। यह सभी चेतन स्वरूप है। चैतन्य की तीन विधाएं (रूप) हैं। इस प्रकार जेम्स जीन्स ने स्वयं वैज्ञानिक होते हुए भी विज्ञान के अन्तिम तार्किक निष्कर्ष में चैतन्य के प्रतिपादक प्रत्ययवाद अथवा भारतीय वेदान्त दर्शन का समर्थन किया है।

फ्रिटाजाफ केपरा अपनी पुस्तक 'द ताओ ऑफ फिजिक्स में कहते हैं—एक बहुत ही सुन्दर अनुभव ने मुझे यह पुस्तक लिखने के लिए प्रेरित किया। वे चिन्तन कर रहे थे—नाभिकीय कण....सूक्ष्म नाभिकीय कण न्यूट्रॉन-इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, सैकड़ों नाभिकीय कण....उनका चिंतन जारी था पदार्थ ऊर्जा में, ऊर्जा पदार्थ में रूपान्तरित हो रही है। उस समय केपरा समुद्र के किनारे लेटे हुए थे। हलकी-हलकी धूप थी और उस समय उन्होंने देहातीत अवस्था का अनुभव किया और उनका शरीर सौर ऊर्जा बन रहा है और सौर ऊर्जा उनका शरीर बन रहा है। और उन्होंने एक अद्‌भुत अद्वितीय आनन्द का अनुभव किया और उन्होंने निष्कर्ष निकालते हुए कहा—यह निश्चय ही भगवान् शिव का नृत्य ही है।

वर्तमान समय में केपरा अपनी अनेक पुस्तकों में विज्ञान के निष्कर्षों के साथ वेदान्त का साम्य दर्शाते हुए योग दर्शन और वेदान्त दर्शन की अनुशंसा करते हैं। विख्यात भौतिक शास्त्री एवं वैज्ञानिक एडिंगटन अपनी अनेक पुस्तकों में सांख्य योग और वेदान्त दर्शन का हवाला देते हैं।

वैज्ञानिक जगत् और गीता

राबर्ट ओपेनहाइमर—यह एक अत्यन्त विस्मयकारी तथ्य है कि 16 जुलाई, 1945 को अमेरीका के न्यूमेक्सिको रेगिस्तान में प्रथम अणुबम का परीक्षण किया जा रहा था, तो आविष्कारक राबर्ट ओपेनहाइमर ने ज्योंही आकाश में अनन्त सूर्यों के प्रकाश के समान प्रचण्ड अग्नि ज्वालाओं को बम के विस्फोट के साथ ही देखा तो उन्हें गीता के विराट् रूप के दर्शन की स्मृति हो आयी और वे जेब से गीता निकालकर एकादश अध्याय का श्लोक गाने लगे जबकि ईसाई होने के नाते बाइबिल का वचन स्मृति में आना चाहिए था पर उन्हें गीता का श्लोक स्मरण आता है—

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्‌भासस्तस्य महात्मनः।। 11/12, गीता

आकाश में हजार सूर्यों के एक साथ उदय होने से जो प्रकाश उत्पन्न होवे वह कदाचित् विश्वरूप परमात्मा के तेज सदृश हो।

शीघ्र ही इस ज्योति का रूप विकराल हो गया—मानो समस्त आकाश-पाताल को अपनी दैत्याकार लपटों में आवृत कर लेगी। ओपेनहाइमर को लगा

कि मैं काल रूप में परिणत हो गया और उन्हें पुनः गीता का उद्घोष याद आ गया—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः। 11/32, गीता

लोको का नाश करने वाला प्रवृद्ध महाकाल हूं मैं। इस समय लोकों को नष्ट करने को प्रवृत्त हुआ हूं।

अणुबम के इस भयावह काल रूप को देखकर उन्हें ग्लानि हुई कि राजनीतिज्ञ लोग इसका दुरुपयोग करेंगे। अतः इसका उन्होंने विरोध किया। और तुरन्त लॉर्ड एलोमोस्ट प्रोजक्ट जहां का वह डायरेक्टर था वहां से त्यागपत्र देकर वह रामकृष्ण मिशन में चला गया। गीतापाठ करता रहा और सन् 1963-1964 में उन्होंने शरीर छोड़ा।

इस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक भी गीता के महत्त्व को स्वीकारते हैं, क्योंकि इसमें प्राचीन धार्मिक रूढ़ियों तथा कर्मकाण्ड का लेशमात्र भी नहीं है। वैज्ञानिक ज्ञान की खोज के लिए सूक्ष्म परमाणु से लेकर विशालकाय तारों की ओर उन्मुख होते हैं, उसकी झलक उन्हें गीता में भी दिखायी देती है। यही कारण है कि अनेक वैज्ञानिक सुबह और शाम गीता के श्लोकों पर मनन और चिन्तन करते हैं तथा कुछ तो रात में उसे पास में रख कर सोते भी हैं। यही कारण है कि नोबेल पुरस्कार प्राप्त जीवविज्ञानी अलडास हक्सले गीता का अनुवाद करते हैं और गीता को सच्चे अर्थ में 'शाश्वत दर्शन' की संज्ञा दी है। स्वामी प्रणवानन्द की लिखित गीता की भूमिका में हक्सले लिखते हैं—गीता शाश्वत दर्शन के कभी भी रचे गए सबसे स्पष्ट और सबसे सर्वाङ्ग सम्पूर्ण सारांशों में एक है। इसलिए न केवल भारतीयों के लिए, अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के लिए इसका स्थाई मूल्य है। सम्भवतः भगवद्गीता शाश्वत दर्शन का सबसे अच्छा सुसंगत आध्यात्मिक विवरण है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुम्बोल्ट ने कहा था संसार में जितने भी ग्रंथ हैं, उनमें भगवद्गीता जैसे सूक्ष्म और उन्नत विचार कहीं नहीं मिलते। स्वदेश में गणितज्ञ नारलिकर ने गीता कंठस्थ की है। आज पश्चिम का विज्ञान तीन कारणों से भारतीय तत्त्वज्ञान की ओर आकृष्ट हो रहा है—(1) संसार की व्याख्या विज्ञान के द्वारा असमर्थ पाकर (2) नैतिक कारण जिससे विज्ञान का दुरुपयोग न हो (3) भारतीय तत्त्वदर्शन से परिचित होने में।

ब्रिटेन के वैज्ञानिक डॉ. जॉन बर्डन सेंटरसन हाल्डेन ने 1922 में कैंब्रिज विश्वविद्यालय में शरीर के अंदर होने वाली रासायनिक क्रियाओं पर अनुसंधान कर पूरे संसार में ख्याति प्राप्त की। इस अनुसंधान के बाद उनकी दिलचस्पी आध्यात्मिक विषयों की ओर बढ़ने लगी। उन्होंने सोचा कि अब धर्म और आध्यात्मिक रहस्यों का अध्ययन कर लें। बस फिर क्या था, उन्होंने कुछ ही समय

में लग कर अनेक हिन्दू धर्मग्रंथों का अध्ययन कर डाला। सबसे अंत में वह गीता पढ़ने लगे। जैसे-जैसे वह गीता का एकाग्रता से मनन करते गए, वैसे-वैसे उनका मोह भौतिक वस्तुओं से हटता गया। उन्हें यह अहसास होता गया कि भौतिकवादी साधनों से कभी भी मानव को सच्चा सुख प्राप्त नहीं हो सकता। सन् 1951 में वह अपनी पत्नी के साथ भारत आए। यहां घूमते हुए वह भुवनेश्वर पहुंचे। वहां अनेक धर्म प्रचारक भी मौजूद थे। अचानक ब्रिटेन के एक धर्म प्रचारक ने उनसे पूछा, 'आप एक अंग्रेज होते हुए भी गीता को सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ क्यों मानते हैं?' उस धर्म प्रचारक की बात सुनकर हाल्डेन शांत भाव से बोले, 'गीता निरंतर निष्काम कर्म करते रहने की प्रेरणा देकर आलसी लोगों को भी कर्म से जोड़ती है। वह किसी संप्रदाय या धर्म का नहीं, मानव मात्र के कल्याण का संदेश देती है। इसलिए मुझे गीता ने बहुत ज्यादा प्रभावित किया है। मैं वैज्ञानिक होकर भी इसे अपने काम के लिए उपयोगी मानता हूं। दूसरे क्षेत्रों के लोगों के लिए भी यह उपयोगी है।' ब्रिटेन के धर्म प्रचारक हाल्डेन की यह बात सुनकर सब बहुत प्रभावित हुए।

बर्गसाँ—रावलपिंडी में रहने वाला व्यक्ति विदेश गया तो बर्गसाँ से मिलने गया। बर्गसाँ ने भारत से आए हुए व्यक्ति का स्वागत किया और कहा मुझे संस्कृत में गीता का मूल सुनाओ। उसने कहा उसकी पढ़ाई का माध्यम उर्दू था। अतः वह संस्कृत नहीं जानता है इसलिए वह संस्कृत में गीता का मूल नहीं सुना सकता है। अगर आप चाहें तो उसका अनुवाद अंग्रेजी में सुना सकता हूं। तब बर्गसाँ उसे अपने कमरे में ले गया जिसमें एक सोने की पेटिका में रखी हुई थी संस्कृत की मूल गीता। उसने कहा—अनुवादों से तो मेरी लाइब्रेरी भरी पड़ी है। मैं तो संस्कृत में ही गीता का मूल सुनना चाहता हूं। और फिर बर्गसाँ ने कहा अब मुझे समझ में आया आज भारत गुलाम क्यों है? गीता को भुला देने के कारण अन्यथा गीता का देश गुलाम नहीं हो सकता।

सुनीता विलियम्स जो भारत की पुत्री हैं, गुजरात की बेटी हैं, पर अब वह अमेरीका की नागरिक हैं। जब उसने अन्तरिक्ष में वैज्ञानिक शोध के लिए कई माह वहां व्यतीत किया तो वह अपने साथ भगवद्गीता ले जाती है।

पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अबुल कलाम ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अग्नि की उड़ान' में लिखा है—वे 'गीता' से बहुत प्रभावित हैं। वे निरन्तर विशेषतया कठिन परिस्थिति में गीता का अध्ययन करने पर संतुष्टि लाभ करते हैं और इससे उन्हें समस्या का समाधान प्राप्त हो जाता है।

पंडित नेहरूजी जब आइंस्टाइन से मिलने गए तो उन्होंने आश्चर्यचकित होकर देखा उनकी टेबुल पर गीता रखी है, जिसका वे नियमित स्वाध्याय करते हैं।

ब्रिटिश इतिहासकार डॉ. आर्नोल्ड टोयनबी का कहना है—विज्ञान और प्रविधि के विकास के साथ हो सकता है कि बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक सारा संसार अमरीका के प्रभाव क्षेत्र में आ जाए। किन्तु इक्कीसवीं शती में, जब विज्ञान का स्थान अध्यात्म लेगा और तकनीक का स्थान धर्म लेगा तब भारत ही सारी मानव-जाति का आध्यात्मिक गुरु होगा।

इसलिए गांधीजी कहते हैं—मेरी दृढ़ मान्यता है कि हमारी संस्कृति के पास जितने समृद्ध भण्डार पड़े हैं उतने किसी के पास नहीं हैं। हमने अपनी अनादि संस्कृति को पहचाना ही नहीं है। हम अगर संस्कृति के अनुरूप नहीं जीये तो एक समाज के रूप में हम आत्महत्या की ओर अग्रसर होंगे। गांधीजी पुनः कहते हैं मेरे विचार हिन्दू धर्म का सौन्दर्य समस्त को एक साथ आलिंगन करने में है...दूसरों में जो सार तत्त्व पाये जाते हैं वे सभी हिन्दू धर्म में एक साथ अनवरत वर्तमान है...जो इसमें नहीं पाये जाते हैं, वे असार एवं अनावश्यक है।

गांधीजी अन्यत्र कहते हैं—मेरे भीतर की भावना है कि संसार संहार के कारण मरणासन्न है, उसे इससे उबरने के लिए राह चाहिए। मैं आत्मतृप्ति और विश्वास के साथ कह सकता हूं कि इस विश्व के मार्गदर्शन का अधिकार प्राचीन भारतीय संस्कृति को ही होगा।

श्री मां कहती हैं—भारत का भविष्य बहुत स्पष्ट है। भारत जगद्गुरु है। जगत् का भावी ढांचा भारत पर ही निर्भर है। भारत एक जीवंत आत्मा है। भारत जगत् में अध्यात्म ज्ञान को अवतरित कर रहा है। भारत सरकार को इसकी महत्ता को समझकर अपनी कार्ययोजना बनानी चाहिए।

गांधीजी कहते हैं—हिन्दुत्व सत्य की सतत साधना है और यदि आज यह मृतप्राय, निष्क्रिय, विकास के प्रतिकूल हो गया तो इसका कारण है कि हम थक गए हैं और जैसे ही हमारी यह थकान दूर होगी, हिन्दुत्व सम्पूर्ण विश्व में एक ऐसी प्रखर दीप्ति के साथ छा जाएगा जो सम्भवतः इससे पहले सभी को अज्ञात होगी।

बी.बी.सी. के उद्घोषक मार्क टूली ने देहरादून में बेन्हम स्कूल के बच्चों को सम्बोधित करते हुए कहा था—आज पश्चिम अपने जीवनमूल्यों पर पुनर्विचार कर रहा है। अतः नकली अमेरीका बनने की अपेक्षा असली भारत बनना अधिक सातत्यपूर्ण है।

विल डूरेन्ट कहता है—हे भारत! इसके पहले कि पश्चिम अपनी घोर नास्तिक भोगवादी सभ्यता से निराश, शान्ति के लिए तरसता हुआ अति व्याकुल तुम्हारी शरण में आवे, कहीं भूल से अपनी लम्बी राजनीतिक पराधीनता के लिए तू अपने श्रेष्ठ अध्यात्म को ही दोषी मानकर अपना घर मत फूंक डालना।

अतः विश्वमनीषा की भारतीयमनीषा से अपील है कि इससे पूर्व कि पश्चिमी जड़वाद की अन्धी दौड़ से हताश पश्चिम पुनः भारत के चरणों में नतमस्तक हो सके, हमें अपनी आध्यात्मिक परम्परा से ऊबकर जल्दबाजी में अपनी महान् सांस्कृतिक निधि को प्राचीन काल का कूड़ा-कचरा समझकर आग नहीं लगा देनी चाहिए क्योंकि आज के युग की प्रायः समस्याओं का यथा आर्थिक दासता, अतिकामुकता, पशुता, नग्नता, अश्लीलता, अनास्था, चारित्र्यहीनता, अनुशासनहीनता आदि का सम्यक् उपचार भारत के पास है। इसलिए योगीराज अरविन्द ने कहा है—'मानवता को यदि सचमुच महानतम जीवनमूल्य चाहिए जिसके आधार पर मानवता का त्राण हो सकता है तो वे जीवनमूल्य जगद्गुरु भारत की महान् मृत्युंजय संस्कृति ही प्रदान कर सकती है। संसार के दुःखी प्राणियों को संस्कृति की सुधा पिलाकर अमरत्व का वरदान भारत ही दे सकता है।'

पर उसमें आगे बढ़ने में बाधक बनी है—सेकुलरों, वामपंथियों, मानवाधिकारवादियों एवं प्रगतिवादियों की जमात। इसको दूर करने के लिए संविधान में एक छोटे-से संशोधन की आवश्यकता है जो संवैधानिक मान्यता, संरक्षण और सुविधा इसलाम और ईसाई पंथ को मिली हुई जिनमें धर्म और आध्यात्मिकता की गंध भी नहीं है, जो न केवल त्रुटियों और विकृतियों को लिए हुए हैं वरन् पैशाचिकता को लिए हुए हैं। इतनी सुविधा और संरक्षण हिन्दू धर्म और संस्कृति को भी मिलना चाहिए। दुनिया के सभी देश अपने बहुसंख्यक समाज को, मूल राष्ट्रीय समाज के धर्म को संवैधानिक संरक्षण देते हैं। इसमें सभी ईसाई देश भी शामिल हैं जहां के लोग स्वतः ईसाइयत को छोड़ रहे हैं, और हिन्दूत्व से आकृष्ट हो उन्हें अपनाते जा रहे हैं। और हिन्दू धर्म जो सारे चराचर की हित चिन्ता करने वाला विश्व धर्म है, सारे विश्व के लिए एकमात्र आशा की किरण है इससे वंचित है। भारत विश्व का एकमात्र देश है जिसका संविधान यहां के बहुसंख्यक, मूल निवासी हिन्दुओं के धर्म-हिन्दू धर्म को अधिकृत वैधानिक संरक्षण नहीं देता। इस प्रकार हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति के विशेष संरक्षण के राजधर्म का पालन भारत में नहीं किया जा रहा है। इस विषय में प्रबुद्ध जनमत जागृत किया जाना चाहिए और वर्तमान संविधान के भाग 4 अनुच्छेद-38 में एक छोटा सा संशोधन लाया जाना चाहिए कि 'भारत का राज्य भारतीय संस्कृति का संरक्षण करेगा और समाज में भारतीय सांस्कृतिक चेतना के उत्कर्ष के लिए काम करेगा। इस प्रकार राजधर्म का पालन करता हुआ भारतीय राज्य भारत के गौरवशाली इतिहास को वर्तमान और भविष्य में भी चरितार्थ करना अपना धर्म मानेगा।

इस संशोधन का दूरगामी परिणाम होगा। भारत-भारतीयता के विकास में जो सेकुलर, वामपंथी, मानवाधिकारवादी एवं प्रगतिवादियों की जमात और ईसाई-मुसलमान अवरोधक बनकर, रोड़े बनकर खड़े हैं, वे दूर हो सकेंगे।

सेकुलर, वामपंथी, मानवाधिकारवादियों एवं प्रगतिवादियों की जमात, ईसाई और मुसलमानों के कारण ही विश्व में एकमात्र देश भारत ही ऐसा है जो स्वाधीनता के पश्चात् भी अभी तक न अपनी राष्ट्रीयता, न अपना धर्म, न ही अपनी संस्कृति-अपनी जाति, न अपनी भाषा, न अपना इतिहास, न अपना अर्थतंत्र, न अपना शिक्षातंत्र, न अपना न्याय तंत्र, न रक्षा तंत्र, न अपने संविधान की भारतीय आधारशिला, न अपना राजतंत्र है, न महापुरुषों, न श्रद्धाबिन्दु, न तीर्थ, न राष्ट्रीय ग्रंथ, न राष्ट्रीय या जातीय लक्ष्य, कौन अपने है, मित्र हैं, राष्ट्रीय है, कौन पराये हैं, शत्रु हैं, अराष्ट्रीय है, कौन दण्ड के पात्र हैं, कौन पुरस्कार के पात्र हैं आदि के मानदंड तय नहीं हो पाए हैं। इस देश की पहचान राम से है या बाबर से, गांधी से है या जिन्ना से? इन सबके अभाव में कोई राष्ट्र कैसे विकास कर सकता है और कैसे सुरक्षित रह सकता है। जो इन मानदंडों के विरुद्ध चलता है उनको कैसे दण्डित कर सकता है? और कैसे देश भक्ति की भावना पनपेगी।

इस संशोधन के दूरगामी परिणाम होंगे और भारत-भारत और भारतीयता की ओर बढ़कर पुनः वैभवशाली, गौरवशाली राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित हो सकेगा। भारत में सुख-शान्ति, मैत्री का भाव स्थापित होगा और सारे विश्व में भी सुख-शान्ति और सामंजस्य प्रतिष्ठित होगा।

एक समय कहा जाता था—'सब सड़कें रोम को ले जाती हैं।' वह समय था पूरे यूरोप पर रोम के एकछत्र राज का। उसकी राजधानी रोम—सभ्यता, साहित्य, कला, संस्कृति एवं सैन्य शक्ति का केन्द्र थी। इसलिए पूरा यूरोप रोम की ओर देखता था और 'सभी सड़कें रोम की ओर जाती हैं' ऐसा कहा जाता था। फिर कालान्तर में, औपनिवेशिक काल में इंग्लैण्ड दुनिया के मानचित्र पर छा गया और कहा जाने लगा कि अंग्रेजी राज्य में सूर्यास्त नहीं होता। पर द्वितीय विश्वयुद्ध में उसकी भी कमर टूट गयी और फिर रूस के विघटन के बाद अब अमेरीका ने वही स्थान प्राप्त कर लिया है जो कभी रोम और लंदन का होता था। आज अमेरीका विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली देश है। अब अमरीका भी लड़खड़ा रहा है अब वही स्थान सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से भारत लेता जा रहा है तभी तो आज अमरीका के एक-तिहाई लोगों की आस्था हिन्दू धर्म में है वे कर्म सिद्धान्त एवं पुनर्जन्म में विश्वास करने लगे हैं, मृतक का दाह संस्कार करने लगे हैं। अब वे केवल ईसाई मत सच्चा है और अन्य मत झूठे हैं यह स्वीकार नहीं करते। वरन् यह मानने लगे हैं सत्य तो एक है जिसे विद्वान् लोग विभिन्न नामों से पुकारते हैं। और उसे पाने के अनेक मार्ग हैं। ऐसी सर्वे की रिपोर्ट छप रही है। आज वे संस्कृत भाषा को अपना रहे हैं, गीता को अपना रहे हैं। अमरीकी मतान्तरण करके हिन्दू नहीं बन गये हैं, किन्तु अपनी आस्थाओं, विचारों और व्यवहार में हिन्दुओं जैसे हो गये हैं।

अतः स्पष्ट है कि भारत का जगद्गुरु का पद सुरक्षित है। आज के बुद्धिजीवी और सुविज्ञ नागरिक पश्चिमी भोगवादी सभ्यता से निराश होकर पुनः भारतीय संस्कृति का सुधापान करने के लिए तरस रहे हैं। पर शर्त यह है कि हम अपने जीवन में आदर्श को साकार कर उसके जीवित उदाहरण बनें। इसके अभाव में डॉ. हजारी प्रसाद के शब्दों में 'पश्चिम के मनीषी चाहे भारतीय संस्कृति की जितनी भी प्रशंसा करें वह उनके लिए अजायबघर की, म्यूजियम की अनोखी वस्तु ही सिद्ध होगी।' इसलिए डॉ. एनी बीसेंट कहती हैं—हम पश्चिमवासी चाहे जितनी भी भारतीय संस्कृति की प्रशंसा करें, उसकी रक्षा एवं जीवित उदाहरण इस देश के मूल हिन्दू समाज को बनना होगा। इस प्रकार हमारे लिए जगद्गुरु का पद सुरक्षित है। और जिन्होंने भी इस दृष्टि से प्रयास किया, यथा स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, अरविन्द घोष, रवीन्द्रनाथ टैगोर, रमण महर्षि, साधु टी.एल. वास्वानि, डॉ. राधाकृष्णन्, गुरुजी आदि के कारण भारत पुनः-पुनः जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हुआ है। वर्तमान में मोदीजी में भारत की छवि देखकर किस प्रकार सारे विश्व में उनको सम्मानित किया जा रहा है। स्वीकारा जा रहा है। यह सब हम-आप के सामने हैं।

हिन्दुत्व का कोई खांचा नहीं है और न ही अंतिम रेखा है क्योंकि इसमें हर दिन एक नए विचार का सूत्रपात होता है। इसलिए सनातन परम्परा का प्रवाह है, यह प्रवाह निरंतर चलता है, इसलिए निरंतर नई-नई बातें जुड़ती है, नई-नई खोज होती है और ये नई खोजों को प्रोत्साहित करता है, नए विचार को स्वीकार करता है, उनका सम्मान करता है। इसी प्रवाह को हम हिन्दुत्व कहते हैं। इसलिए ऋषि अरविन्द घोष कहते हैं सनातन भारत निर्जीव नहीं है। और न उसने अपना अन्तिम रचनात्मक शब्द ही कहा, वह जीवन्त है और अपने लिए तथा मानव जाति के लिए अभी कुछ करना शेष है। इस आधार पर भारत सदा ही विश्व मनीषा के लिए आकर्षण का केन्द्र भी बना रहेगा और उनका मार्गदर्शक, गुरु भी बना रहेगा। क्योंकि भारत में विरासत के साथ आधुनिकता की, परम्परा के साथ-साथ वर्तमान स्थिति की, सनातन के साथ नवीन को लेकर के चलने की अद्भुत क्षमता है। इन दोनों में सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता है अर्थात् भारतीय संस्कृति में पुरातन के साथ नवीन को समायोजित करने की अद्भुत क्षमता है।

भारत अंगड़ाई ले रहा है। धीरे-धीरे जाग रहा है और जब यह पूरा जाग जायेगा तो विश्व चमत्कृत हो उठेगा।

ऋषि अरविन्द

आओ! शिष्य बनें

भारत विश्वगुरु था। इसकी परा-अपरा विद्या को प्राप्त करने धरती के कोने-कोने से जिज्ञासु-मुमुक्षु इस पुण्य-भूमि में शिष्य-भाव से आते थे। इसी भूमि से ज्ञान-दीप ले त्यागी-तपस्वी-विद्वान् साधक, आचार्य विदेशों में जाते और ज्ञान-प्रकाश से वहाँ की संस्कृति के अँधियारे को दूर करते थे। इन ज्ञान-वितरकों के प्रेरक ऋषि थे, आत्मज्ञान ही इनका बल था, प्रभुप्रेम ही इनकी गति थी।

कालान्तर में भीषण युद्ध हुए—गृहयुद्ध भी व बाह्य आक्रमण भी। फलतः भारत की क्षात्र-शक्ति निर्बल हुई, बुद्धि-शक्ति अरक्षित हुई, अर्थ-तन्त्र ध्वस्त हुआ, लोक-जीवन दमित व अस्त-व्यस्त हुआ। ऐसे जर्जरित राष्ट्र का परतन्त्र होना स्वाभाविक था। भारत का स्थूल कलेवर पराजित हुआ था, मन व आत्मा नहीं। इसके स्थूल कलेवर में भी स्वातन्त्र्य-रक्त अल्पांश में प्रवाहित होता रहा था। सत्संग-स्वाध्याय, पर्व-परिवार, तीर्थ-तीर्थाटन आदि सांस्कृतिक संस्थानों द्वारा यह भारतीय संस्कृति प्राणन करती रही, मरी नहीं। किन्तु भीषण अत्याचारों के कारण इसका आत्मगीत दिशा-दिशा में मुखरित नहीं हुआ। कुछेक विभूतियों ने आविर्भूत होकर इसके आत्म-दर्शन का उद्घोष किया, किन्तु उसका संचार इसके सर्वांग में न हो सका। दीर्घ परतन्त्रता के पश्चात् प्राप्त तथाकथित स्वतन्त्रता भी दिखावे की सिद्ध हुई। इसकी आत्मा अभी भी मुक्त साँसों के लिये छटपटाती है। इसके पूत अभी भी याचक हैं, उच्छिष्टभोजी हैं, अन्धानुकरण में रत हैं। इस आन्तरिक परतन्त्रता से मुक्त होना ही होगा, क्योंकि इस संस्कृति का स्वधर्म ही आत्मोन्मुखी है, ईश्वरोन्मुखी है। इसके स्वभाव में चारों वर्णों का सामरस्य है। अपने स्वभाव की विरुद्ध दिशा में बहना इसके लिये भयावह है। किन्तु यह अपनी स्वदिशा में गतिमान कैसे हो? कैसे यह अपने विश्वगुरु पद को प्राप्त करे?

यह संस्कृति अपने गौरवपूर्ण पद को प्राप्त कर सके—इसके लिये प्रत्येक भारतीय को अपने स्वधर्म को पहचानना होगा। उसको लेकर उसे अपनी संस्कृति से एक लय में रहते हुए स्वकर्म करना होगा। उस स्वकर्म से उसे जगद्गुरु की शिष्यभाव से अर्चना करनी होगी। यों शिष्यभाव की अनगिन धाराएँ मिल कर एक प्रबल पवित्र प्रवाह बनेगा और तब फिर यह संस्कृति विश्वगुरु रूपिणी गंगा होगी, सृष्टि-मूल के गोमुख को पूर्णानन्द उदधि से जोड़ने वाली, मानव मात्र को तारने वाली भागीरथी होगी।

आओ! शिष्य बनें।

स्वात्म-संस्कृति के उन्नयन के लिये भगीरथ-प्रयास करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज

सेवा का पुनीत संकल्प

मानव के व्यक्तित्व के तीन वृत्त (दायरे) होते हैं। एक पेट का दायरा, दूसरा परिवार का दायरा और तीसरा समाज का दायरा। लगभग 80 प्रतिशत लोग पेट के दायरे तक ही चिन्ता करते हैं। लगभग 19-20 प्रतिशत परिवार के चार-छः सदस्यों के पालन-पोषण की ही चिन्ता करते हैं। हजारों में कोई एक सज्जन समाज के दायरे की चिन्ता करता है। दुर्भाग्य से हमारे समाज का दायरा विगत एक हजार वर्षों से टूटा हुआ है।

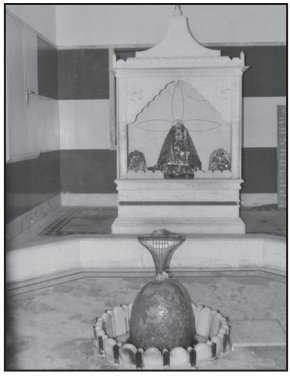
हम ईमानदारी से अपने कलेजे पर हाथ रखकर अपने आप से पूछें कि पिछले चौबीस घंटों में हमने कितना समय पेट के लिए, कितना समय परिवार के लिए और कितना समय समाज के लिए दिया है? इसके उत्तर में हमें स्वयं ही अनुभव हो जाएगा कि हम अपने समस्याग्रस्त, संकटापन्न समाज की कितनी भयंकर उपेक्षा कर रहे हैं। यदि चार-छः दिन पेट की उपेक्षा की जाय तो पेट विद्रोह कर उठेगा, शरीर का बल क्षीण हो जायेगा तथा हम अर्धमृत से हो जायेंगे। यदि दो-चार मास परिवार की सेवा-सुरक्षा पर ध्यान न दिया जाय तो परिवार उजड़ जायेगा। हम तनिक सोचें कि जिस समाज की हमने एक हजार वर्ष तक चिन्ता नहीं की उसकी कैसी दुर्गति हुई होगी। पिछले हजार वर्ष का इतिहास साक्षी है कि सिन्ध के राजा दाहिर की पुत्रियों को बन्दी बनाकर बगदाद ले जाया गया तथा वहाँ उन्हें घोड़े की पूँछ के पीछे बाँध कर बाजारों में घसीट-घसीट कर मारा गया, सहस्रों-पुरुषों को गुलाम बनाकर तथा नारियों को दासी एवं रखैल बनाकर विदेशों में बेचा गया, नन्हे-नन्हे बच्चों को दीवारों में जिन्दा चुन दिया गया, ब्रह्मज्ञानी-सन्तों का चौराहों पर शीर्ष-छेदन हुआ, तपे हुए तवों पर और तेल के कड़ाहों में जलाया गया। वेद-मन्दिरों को ध्वस्त किया गया, कश्मीर के ब्राह्मणों का सामूहिक धर्मान्तरण हुआ, स्वदेश का एक-चौथाई भाग हिंसा एवं रक्तपात द्वारा काट कर परदेस बना दिया गया। इतिहास साक्षी है कि समाज के दुर्बल रहने पर न पेट सुरक्षित रहता है न परिवार। निर्बल समाज की रोटी एवं बेटी दोनों को दुष्ट लोग लूट कर ले जाते हैं।

हरिजन एवं वनवासी बन्धुओं को त्रिविध मार का शिकार बनना पड़ा है। एक तो निर्धन और अशिक्षित रहने के कारण वे पहले से ही पिछड़े हुए थे। दूसरे, विदेशियों का प्रहार सबसे अधिक उन्हीं पर हुआ। तीसरे वे हमारा स्नेह एवं सहयोग भी नहीं प्राप्त कर सके। वास्तव में यह तीसरा कारण ही सबसे प्रमुख कारण है। हमारी उपेक्षा से ही वे अशिक्षित एवं निर्धन बने रहे तथा हमारी सामाजिक उपेक्षा के महापाप के कारण ही वे विदेशी शक्तियों के अत्याचार का शिकार बनते रहे।

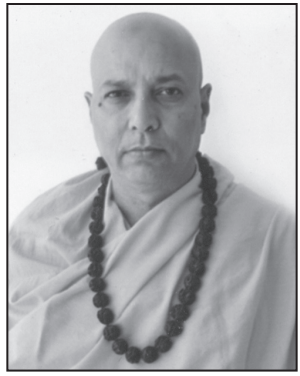
आज अपने युगों की उपेक्षा के महापाप को हमें धोना है। लम्बे तिरस्कार की ब्याज सहित क्षतिपूर्ति आज अपनी भरपूर सेवा द्वारा करनी है। समाज बचेगा तो हमारा पेट भी बचेगा और परिवार भी। यदि समाज सबल होगा तो न कोई हमारे पेट पर लात मार सकेगा, न परिवार की मान-मर्यादा लूट सकेगा तथा न हमारी श्रद्धा का खून होगा।

आइये, हम समाजसेवा का पवित्र संकल्प धारण करें।

चित्रदीर्घा



भक्तानन्द शिव मन्दिर



स्वामी संवित् सुबोधगिरि

पन्द्रह अक्टूबर 1956 (विजयादशमी) को जन्मे स्वामी संवित् सुबोधगिरि ने दर्शन शास्त्र से एम.ए. (रांची विश्वविद्यालय 1980-81) कर अध्यात्म-साधना एवं भारतीय धर्म-दर्शन-संस्कृति-परम्परा एवं राष्ट्रीय इतिहास के अध्ययन में पूर्णकालिक प्रवृत्त।

एकेडमी ऑफ इंडियन कल्चर के संस्थापक डॉ. हरवंशलाल ओबराय के मार्गदर्शन में सांस्कृतिक इतिहास एवं भारतीय धर्म-दर्शन-संस्कृति पर व्यापक कार्य।

स्वामी देवानन्द ब्रह्मचारीजी (प्रेम मन्दिर आश्रम, रिषड़ा) से नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा और उनके सान्निध्य में साधना एवं स्वाध्याय—6 दिसम्बर 1992 से 12 मार्च 1999 तक। उन्हीं के निर्देश पर अनन्तश्री विभूषित पूर्वाम्नाय जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धन पीठाधीश्वर स्वामी निश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज के सान्निध्य में स्वाध्याय एवं साधना—प्रति चतुर्मास में 1993 से 2000 तक नियमित, फिर अनियमित।

सम्प्रति स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज से वैशाख शुक्ला पंचमी शुक्रवार शंकराचार्य जयन्ती 17 मई 2002 को संन्यास दीक्षा ग्रहण कर उनके सान्निध्य में स्वाध्याय, साधना एवं प्रकाशन का दायित्व निभाया—20 मार्च 1999 से 13 जून 2012 तक। डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र (पांच खण्डों 2688 पृष्ठों में) संकलित, सम्पादित एवं प्रकाशित किया परमपूज्य महाराजश्री के आशीर्वाद से।

14 जून 2012 को भैरवगिरि मठ के महन्त परम श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्दगिरिजी महाराज एवं श्री लालेश्वर महादेव मन्दिर शिवबाड़ी के महन्त परम पूज्य स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज, दोनों ने संयुक्त रूप से नृसिंह भवन संन्यास आश्रम, भक्तानन्द शिव मन्दिर भीनासर (बीकानेर) के महन्त पद का दायित्व देकर उस पर अभिषिक्त किया।

प्रकाशन

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र को खण्डशः विषयानुसार 25 पुस्तकों में प्रकाशित किया। समग्र में प्रकाशित पांच पुस्तकों में डॉ. ओबराय के साथ सुबोधगिरि सहलेखक हैं। समग्र से अतिरिक्त स्वयं सुबोधगिरि की पांच और पुस्तकें भी प्रकाशित—

(1) राष्ट्रीय समस्या और समाधान (प्रथम संस्करण, पृ. 88)
(2) राष्ट्रीय समस्या और समाधान (द्वितीय संस्करण, पृ. 312)
(3) गीता का पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष (गीता का पहला और दूसरा अध्याय)
(4) भक्तियोग (गीता का बारहवां अध्याय)
(5) भारतीय संस्कृति, पश्चिमी सभ्यता और विज्ञान
(6) भारतीय परम्परा में काम पुरुषार्थ
(7) योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण (संयुक्त)
(8) गीता की विश्वव्यापी प्रतिष्ठा (संयुक्त)
(9) भारतीय परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्ट्य (संयुक्त)
(10) भारतीय परम्परा में नारी और मातृत्व के पंचविध रूप (संयुक्त)
(11) साक्षात् धर्म विग्रह प्रभु श्रीराम और भारतीय जीवन का अखण्ड प्रवाह (संयुक्त)

पूरे मठ का जीर्णोद्धार सम्पन्न हुआ। जन सहयोग से मन्दिर के लिए नये भवन का निर्माण, नव-निर्माण व जीर्णोद्धार और अन्य नये आयाम भी जुड़ते जा रहे हैं। यू.आई.टी. अध्यक्ष श्रीमान् मकसूद अहमदजी के सहयोग से आश्रम के बाहर सीसी रोड का निर्माण हुआ। सन्त कुटीर का निर्माण श्री तरुण कुमार सोलंकी एवं श्रीमती सुशीला देवी के सहयोग से हुआ। विवेकानन्द वाचनालय का निर्माण (श्रीमान् गोपाल जोशी के) विधायक कोटे से हुआ। सांस्कृतिक भवन का निर्माण कार्य चल रहा है (श्रीमान् अर्जुनराम मेघवाल के) सांसद कोटे से। श्री मूलचन्द डागा के सहयोग से प्याऊ का निर्माण हुआ।

आगामी योजनाएं और कार्यक्रम

शौचालय, स्नानघर, रसोड़ा, भण्डार, मुमुक्षु आवास का निर्माण; सांस्कृतिक भवन का निर्माण कार्य पूर्ण होने के पश्चात् लॉन और बगीचा विकसित करना। सांस्कृतिक भवन में नियमित योग कक्षाओं का संचालन; साप्ताहिक बाल-संस्कार-केन्द्र संचालन; वर्ष में दो बार कथाओं का आयोजन। इसके अलावा भी छोटे-छोटे सेवा कार्य करना। भजन, सत्संग और देव-आराधन की व्यवस्था करना। इन सबके लिए जन सहयोग अपेक्षित है।

मो. 09413769139, 08278680977

आवेदन पत्र

माननीय....

सादर प्रभुवंदना।

गाजियाबाद में विश्व हिन्दू परिषद् की प्रबंध समिति की बैठक दिनांक 28-29 जून, 2012 को संपन्न हुई। इसके पूर्व 27 जून को प्रांत संगठन मंत्री, प्रांत सहसंगठन मंत्री, उपप्रांत संगठन मंत्री तथा क्षेत्रीय संगठन मंत्रियों की बैठक हुई। इस बैठक में माननीय महामंत्री श्री चम्पतरायजी ने श्रद्धेय डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी का परिचय देते हुए उनके साहित्य के पांच खण्डों में प्रकाशन के विषय में बताया। इसकी जानकारी मा. श्री बालकृष्ण उ. नाइक (उपाध्यक्ष, विश्व हिन्दू परिषद्) ने मुझे दी।

श्रद्धेय डॉ. ओबराय का व्यापक अध्ययन एवं शोधकार्य था। भारत की प्राचीन एवं अर्वाचीन ऋषि परम्परा तथा विश्व की प्राचीन एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की परम्परा का उनका सम्यक् अध्ययन था। उनका समस्त लेखन चाहे संघ परिवार के कार्य हो, चाहे रामकृष्ण-मिशन के कार्य हो, चाहे अरविन्द आश्रम के कार्य हो, चाहे दिव्य जीवन संघ या भारत सेवाश्रम संघ हो या स्वामी रामदेवजी हों, या आर्य समाज या चिन्मय मिशन सभी के कार्यों को पुष्ट करने वाला तथा वैचारिक, सांस्कृतिक-दार्शनिक आधार प्रदान करने वाला है। उनका सम्पूर्ण लेखन आज के संदर्भ में है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी काम आने वाला है तथा आज के युग की चुनौतियों का सम्यक् समाधान प्रस्तुत करने वाला भी है। हिन्दुओं को जितने विषय जानने चाहिए वे सब इसमें समाहित हैं। प्रत्येक भारतीय नागरिक जो भारतवर्ष से प्रेम करता है, उसके लिये यह ग्रंथ एक धरोहर है। इसे पढ़ने से एक हजार वर्षों के विदेशी आक्रमण, अत्याचार एवं उत्पीड़न के कारण जो हीन ग्रंथि सामान्य भारतीय के मन को दूषित कर रही है, उसका निवारण होकर पाठक आत्मगौरव के भाव से आप्लावित हो जाता है।

अतः यह एक राष्ट्रीय कार्य है, ईश्वरीय कार्य है जिसे अवश्य ही जन-प्रकाश में आना चाहिए। इसी दृष्टि से मैंने अपने पूरे जीवन को इस कार्य में लगाया है और मेरे जीवन की यही सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है।

इस कार्य की महत्ता को समझते हुए इसके प्रचार-प्रसार में आपका सहयोग अपेक्षित है। आपसे विनम्र निवेदन है कि आप स्वयं व्यक्तिगत रूप से डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र को और खण्डशः विषयवार 30 पुस्तकों (जिसमें पांच पुस्तकें स्वामी संवित् सुबोधगिरि की है, उसमें भी डॉ. ओबरायजी की दृष्टि का खुलासा और विस्तार है) तथा पांच पुस्तकों में डॉ. ओबराय के साथ सहलेखन को खरीदें। अधिक से अधिक कार्यकर्ता बंधुओं को खरीदने के लिए प्रेरित करें तथा वाचनालयों, पुस्तकालयों में रखवाने की व्यवस्था करें। आप सब की कुशल-मंगल कामना ईश्वर से चाहता हूँ। शेष प्रभु कृपा के साथ।

आप सबका

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

09413769139, 08278680977

विशेष द्रष्टव्य–

पांचों खण्ड 2,688 (दो हजार छह सौ अट्ठासी) पृष्ठों में हैं। पांचों खण्डों का मूल्य 2600 (छब्बीस सौ) रुपये मात्र है जो कि छूट के बाद 2100 (इक्कीस सौ) रुपये मात्र में उपलब्ध है। डाक खर्च अलग से 100 (एक सौ) रुपये है। अब इस पुस्तक की खण्डशः विषयवार 25 पुस्तकें प्रकाशित कर दी है। इसके अलावा पांच पुस्तकें स्वामी संवित् सुबोधगिरि की हैं। कुल 30 पुस्तकें 4,936 (चार हजार नौ सौ छतीस) पृष्ठों में है। मूल्य 4100 (चार हजार एक सौ) रुपये मात्र में उपलब्ध है। डाक खर्च अलग से 100 (एक सौ) रुपये हैं। मेरे बैंक खाते में 4200 (चार हजार दो सौ) रुपये जमा करके रजिस्टर्ड डाक द्वारा प्राप्त की जा सकती है और समग्र को बाइस सौ में। मेरा अकाउंट नं. इस प्रकार है—स्वामी संवित् सुबोधगिरि (Swami Samvit Subodh Giri) A/C No. 61217191109 (I.F.S.C. Code No. SBIN0031167)

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास	पृष्ठ 448	₹ 400
खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व	पृष्ठ 424	₹ 400
खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान	पृष्ठ 412	₹ 400
खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता	पृष्ठ 700	₹ 700
खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता	पृष्ठ 704	₹ 700

सम्पादक एवं संकलनकर्ता
स्वामी संवित् सुबोधगिरि

संकलन में सहयोगी
श्री वृजभूषण ओबराय

अंग्रेजी लेखों के हिन्दी अनुवादक
श्री चन्द्रप्रकाश ओबराय

आशीर्वचन
परम पूज्य गुरुदेव श्रीमत् स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज

परामर्श मण्डल

श्री नरेन्द्र कोहली • श्री इन्द्रेश कुमार
श्री बालकृष्ण नायक • श्री बालमुकुन्द
श्री रामेश्वर मिश्र 'पंकज' • डा. कुसुमलता केडिया
श्री आनन्द मिश्र 'अभय' • डा. मदनलाल ओबराय
श्री जुगलकिशोर जैथलिया • डा. बद्री प्रसाद पंचोली
श्री सीताराम महर्षि • श्री तोलाराम लाठ

डॉ. ओबराय खण्डशः एवं सुबोधगिरि की पुस्तकें

1.	राष्ट्रीय समस्या और समाधान	₹ 250
2.	भारतीय दर्शन परम्परा	₹ 100
3.	रामायण का हार्द	₹ 100
4.	योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण	₹ 80
5.	गीता की विश्वव्यापी प्रतिष्ठा	₹ 80
6.	गीता ज्ञान की कुंजी	₹ 120
7.	गीता का पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष (गीता का प्रथम एवं द्वितीय अध्याय)	₹ 500
8.	गीता का मनोविज्ञान	₹ 125
9.	गीता में भक्ति योग	₹ 30
10.	भक्तियोग (गीता का बारहवां अध्याय)	₹ 100
11.	गीता का ज्ञान योग	₹ 40
12.	आत्मतत्त्व भारत की अमरता एवं स्वस्थ जीवन का राज	₹ 80
13.	जीवन रहस्य और मृत्यु रहस्य	₹ 25
14.	सृष्टि रहस्य, कर्म का सिद्धान्त तथा यज्ञ तत्त्व	₹ 50
15.	भारतीय दर्शन एवं विज्ञान का तुलनात्मक तत्त्वावलोचन	₹ 60
16.	भारतीय संस्कृति, पश्चिमी सभ्यता और विज्ञान	₹ 80
17.	मार्क्स के धर्मविषयक विचार की समीक्षा	₹ 20
18.	भारतीय परम्परा में काम पुरुषार्थ	₹ 40
19.	भारतीय परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्ट्य	₹ 70
20.	भारतीय परम्परा में नारी और मातृत्व के पंचविध रूप	₹ 85
21.	भारतीय परम्परा में उत्सव	₹ 70
22.	मकर संक्रान्ति, विक्रम संवत् अग्रसेन जयन्ती	₹ 40
23.	हमारे आध्यात्मिक महापुरुष	₹ 150
24.	गोस्वामी तुलसीदास	₹ 50
25.	हमारे साहित्यकार	₹ 75
26.	हमारे स्वतंत्रता सेनानी	₹ 100
27.	सिख परम्परा, उनकी समस्या और समाधान	₹ 50
28.	विश्व भारत का चिर ऋणी है	₹ 300
29.	हमारी राष्ट्रीय समस्याएं	₹ 130
30.	साक्षात् धर्म विग्रह प्रभु श्रीराम और भारतीय जीवन का अखण्ड प्रवाह	₹ 1100
	कुल	4100

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं। संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि

पुस्तक समीक्षा

भारत के विख्यात संस्कृति-मनीषी डॉ. हरवंशलाल ओबराय (1925-1983 ई.) के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर 2,688 पृष्ठों में (पांच खण्ड), स्वामी संवित् सुबोधगिरि द्वारा इसका संपादन एवं संकलन उनकी 36 वर्षों की असाध्य तपस्या का प्रतिफल है। स्वामीजी ने इसमें डॉ. ओबराय की अमृतवाणी का नवनीत पाठकों के लिए प्रस्तुत किया है।

प्रो. ओबराय का जीवन भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा राष्ट्र के प्रति पूर्ण समर्पण की अपूर्व गाथा है। वह रावलपिण्डी (बप्पा रावल की जन्मस्थली) में जन्मे, पले तथा सुशिक्षित हुए। संघ के सम्पर्क में आये। देशभक्ति तथा राष्ट्रप्रेम की ज्वाला जगी। भारत-विभाजन पर वहाँ फँसे हिंदुओं की सहायता में लग गये। दिल्ली में आकर एम.ए. दर्शन तथा हिन्दी में प्रथम श्रेणी में किया।

महाविद्यालय में शिक्षण के साथ समाजसेवा को अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया। संस्कृति तथा दर्शन पर अनेक विश्वविद्यालयों में व्याख्यान दिये। सन् 1982 में मद्रास विश्वविद्यालय में 'इंफ्ल्युलेन्स ऑफ़ इण्डियन कल्चर ऑन प्री-इस्लामिक अरेबिया'– जैसे दुरूह विषय पर व्याख्यान देकर 'डी.लिट्.' की उपाधि प्राप्त की। भारतीय-संस्कृति तथा दर्शन पर निर्भीक होकर विश्व के 106 देशों में भारतीय दृष्टिकोण को रखा। सन् 1965 में उन्होंने बाबू जुगल किशोर बिड़ला के सहयोग और परामर्श से राँची में '**संस्कृति विहार**' **(एकेडमी ऑफ़ इण्डियन कल्चर)** नामक शोध-संस्थान की स्थापना की। अगले 18 वर्षों तक इसके निदेशक रहे। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के दो बार राष्ट्रीय अध्यक्ष चुने गये। वे आप बाबा साहिब आपटे स्मारक समिति से भी सम्बद्ध थे और उसके पूर्वाञ्चल प्रमुख रहे। दुर्भाग्यवश 19 सितम्बर, 1983 को रायपुर स्टेशन के पास दुर्घटना से उनका शरीर पूरा हुआ। संक्षेप में उनके प्रेरक तथा शोधपूर्ण व्याख्यान, राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत जीवन, समाजसेवी वृत्ति, सम्पूर्ण छोटानागपुर क्षेत्र में वनवासियों के बीच कार्य, सदैव देश की युवा पीढ़ी का मार्गदर्शन करते रहेंगे। वह सही अर्थों में 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय संस्कृति के मंत्रद्रष्टा थे।

प्रबुद्ध संपादक ने **डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र** के प्रथम खण्ड में डॉ. ओबराय के (भारत की) 'राष्ट्रीय समस्याओं और इतिहास' पर उनके विचारों का संकलन किया है। इसका शेष भाग 'परिशिष्ट एक' के रूप में खण्ड चार में (पृ. 504-547) दिया गया है। विभाजन के पश्चात् डॉ. ओबराय ने भारतीय गगन में विकराल रूप से उभरती तीन अंतरराष्ट्रीय समस्याओं—1. भारत में ईसाइयत फैलाने

का भौंडा तथा बीभत्स ढंग से प्रचार, 2. इसलाम द्वारा धर्मांतरण के कुप्रयास तथा 3. कम्युनिस्टों द्वारा भारतीय संस्कृति एवं दर्शन को विकृत, भ्रमित करने के षड्यन्त्रों से भारत के प्रबुद्ध जनमानस को अपनी ओजस्वी वाणी तथा लेखों से अवगत कराया है। उन्होंने प्रमाण सहित केरल से नागालैण्ड तक ईसाइयत के कुकर्मों का वर्णन किया है। इसी भाँति मुसलमानों द्वारा कुप्रचार तथा 1957 के पश्चात् केरल में कम्युनिस्ट शासन स्थापित हो जाने से उनके संस्कृति एवं राष्ट्रविरोधी क्रियाकलापों का वर्णन किया है। इस खण्ड में यह भी बतलाया गया है कि डॉ. ओबराय आरामकुर्सी पर बैठकर लिखने वाले व्यक्ति न थे बल्कि प्रत्यक्ष संघर्षरत महारथी भी थे। उन्होंने विदेशी पादरियों के निष्कासन के लिए कार्य किया तथा धर्मांतरण के विरुद्ध शुद्धि-आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया।

डॉ. ओबराय ने इतिहास को 'राष्ट्र का चक्षु' बतलाया। उन्होंने अपनी व्याख्यानमाला के द्वारा इतिहास की अनेक समस्याओं का निराकरण तथा प्रचलित भ्रांतियों तथा विकृतियों को हास्यास्पद बताया। कई मूल समस्याओं, जैसे–आर्यों का आदि देश, उनके काल आदि को तर्क तथा तथ्यों की कसौटी पर स्पष्ट किया। डॉ. ओबराय ने भारत की संस्कृति के विश्वव्यापी स्वरूप तथा देन को समझने के लिए चार दुरूह आवरणों को हटाकर उनके रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए इतिहासकारों की 'सोच' को नवीन दिशा दी। उन्होंने ये चार आवरण बताये— 1. ईसा से पूर्व का यूरोप, 2. इसलाम से पूर्व का अरब, 3. कोलम्बस से पूर्व का अमेरिका तथा 4. फिलीप से पूर्व का फिलीपाइन। वह स्वयं भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा इसके सही स्वरूप का दिग्दर्शन कराने अनेक देशों में गये। खण्ड के अन्तिम भाग में देश-विदेश में डॉ. ओबराय को प्राप्त अनेक चित्रों, मूर्तियों को प्रकाशित कर उसकी विश्वसनीयता को पुष्ट किया गया है।

'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' ग्रन्थमाला के दूसरे खण्ड में डॉ. ओबराय द्वारा समय-समय पर दिए गए भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अग्रणी महापुरुषों के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का गहन विवेचन किया गया है। इसमें लगभग 60 महान् पुरुषों के कार्यों की समीक्षा की गई है। इसके अलावा खण्ड चार के 'परिशिष्ट द्वितीय' में लगभग आधा दर्जन अन्य व्यक्तियों के जीवन को उभारा गया है। इसमें से कुछ लेख 1958-1860 के दौरान डॉ. ओबराय द्वारा तत्कालीन प्रसिद्ध समाचार-पत्रों –*'वीर प्रताप', 'वीर अर्जुन'* तथा *'मिलाप'* में लिखे गए थे।

प्राचीन काल से भारत ऋषियों, सन्तों, साधकों, चिन्तकों, विचारकों, लेखकों, वैज्ञानिकों एवं साहित्यकारों की भूमि रहा है। निस्सन्देह विश्व में कोई भी ऐसा देश नहीं है जहाँ महान् पुरुषों की इतनी अविरल ज्ञान-शक्ति तथा भक्ति दिखलाई देती हो जितनी भारत में। डॉ. ओबराय ने महर्षि दधीचि के अपूर्व बलिदान से वर्तमान तक अनेक महापुरुषों के योगदान का संक्षिप्त विवरण दिया है। इन सभी महान् पुरुषों ने

विभिन्न क्षेत्रों में अपने युग की चुनौतियों को स्वीकार किया तथा भारतीय जनमानस का मार्गदर्शन किया।

सामान्यतः ये सभी अपने युग के प्रतिनिधि थे।

डॉ. ओबराय ने जहाँ प्राचीन काल के दिव्य ज्ञानी वाल्मीकि, राष्ट्रदर्शन के व्याख्याता महर्षि वेदव्यास, भगवान् बुद्ध, जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी, षड्दर्शन आचार्यों के दिये ज्ञान का सूक्ष्म विवेचन किया; वहीं मध्यकाल में दक्षिण तथा पश्चिम भारत के सन्तों, उत्तर तथा पूर्व के भक्तों तथा पंजाब के गुरुओं की वाणियों की चर्चा की। साथ ही महाकवि कालिदास से लेकर वर्तमान साहित्यकारों के जीवन पर प्रकाश डाला। आधुनिक काल के धर्म तथा समाज-सुधारकों, जैसे–राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, बंकिमचन्द्र, स्वामी रामतीर्थ, लोकमान्य तिलक, श्री गुरुजी–जैसे महान् पुरुषों की देन को बताया। विद्वान् लेखक ने महाराजा विक्रम से लेकर राष्ट्रनायक महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी, महाराजा रणजीतसिंह से लेकर भारत के स्वतन्त्रता-आन्दोलन के सेनानी लाला लाजपत राय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सरदार ऊधमसिंह आदि पर प्रकाश डाला। इन सभी महान् पुरुषों ने देश की सांस्कृतिक एकता को अक्षुण्ण बनाए रखा।

'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' के तृतीय खण्ड में संस्कृति, दर्शन तथा विज्ञान—जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचारों के सन्दर्भ में चिन्तन किया है। उन्होंने दर्शन के क्षेत्र में भारत को 'विश्व का शिरोमणि' बताया है। उन्होंने यह निश्चयपूर्वक तथा तथ्यात्मक रूप से बतलाया है कि दर्शन का जन्म जब यूनान में छठी शताब्दी ई. पूर्व बताया जाता है, तब भारत में दार्शनिक वाद-विवाद का भास्वर 'मध्याह्न काल' था। उन्होंने भौतिकवादी पाश्चात्य जगत् के सम्मुख भारत में इसे 'जीवन की सर्वोत्तम साधना' कहा। वेद को विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ कहा। भारतीय धर्म तथा दर्शन का वैशिष्ट्य बताते हुए भारत के षड्दर्शनों के सार के साथ चार्वाक, बौद्ध तथा जैन-दर्शन की चर्चा की। उन्होंने *'ओल्ड टेस्टामेन्ट'* व *'न्यू टेस्टामेन्ट'* का वर्णन करते हुए धर्मांध पादरियों की कटु आलोचना की। उन्होंने चैतन्य की तीन मौलिक शक्ति के रूप में ज्ञान, भक्ति तथा कर्म अथवा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की धारणा का विस्तार से वर्णन किया है। शिव, गणेश, राम और कृष्ण को भारत के राष्ट्रीय पुरुष तथा *रामायण* तथा *महाभारत* को राष्ट्रीय महाकाव्य कहा। डॉ. ओबराय ने विज्ञान तथा मनोविज्ञान को भारत की विश्व को आदि देन बतलाया। डॉ. ओबराय ने विदेशों में अपने व्याख्यानों में भारतीय संस्कृति के विश्वव्यापी प्रसार का सप्रमाण वर्णन किया है।

खण्ड चार में डॉ. ओबराय ने 'वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता' पर तात्त्विक तथा व्यावहारिक आधार पर इसे चिर-पुरातन तथा चिर नवीन कहा। उन्होंने वेदोपनिषद्, पुराण, स्मृत्यादि के आधार पर भारतीय दर्शन की मूल मान्यताओं, समस्याओं के साथ उसकी पूर्णता पर गम्भीर चिन्तन प्रस्तुत किया है। उन्होंने दार्शनिक विषयों–

जड़वाद, द्वैतवाद, चैतन्यवाद, जीव-रहस्य, मृत्यु-रहस्य तथा सृष्टि की अत्यन्त सरल व्याख्या की है।

डॉ. ओबराय ने अपने प्रवचनों में हिन्दू-धर्म तथा संस्कृति के विचारों–आत्मा, कर्म-सिद्धान्त, अनेकता में एकता आदि तत्त्वों का विवेचन किया। उन्होंने भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य विज्ञान अथवा मार्क्सवादी विश्लेषण की तुलनात्मक व्याख्या की। डॉ. ओबराय ने भारत की राष्ट्रीय एवं सन्त-परम्परा तथा सेमिटिक विचार-परम्परा का स्पष्ट अन्तर अनेक उदाहरण देते हुए बतलाया। आधुनिक अनेक समस्याओं की कारणमीमांसा करते हुए उन्हें मानव-प्रकृति के विरुद्ध तथा अप्रासंगिक बताया है तथा अनेक राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान भारतीय परम्परा में ही बताया है।

'डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र' के खण्ड पाँच में 'गीता दर्शन की सार्वभौमिकता' पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। विद्वान् लेखक तथा महान् चिन्तक ने *श्रीमद्भगवद्गीता* को 'राष्ट्र की आत्मा' तथा विश्व में भारत की पहचान बतलाया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को जब यह ज्ञान दिया गया, तब न कोई बाइबिल का ज्ञान था, न ही कुरान का। उन्होंने बतलाया कि सन् 1776 में प्रथम बार इसका अंग्रेज़ी में अनुवाद हुआ। तभी से यूरोप की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ और शीघ्र ही यूरोप, अमेरिका तथा विश्व के श्रेष्ठतम दार्शनिकों एवं अन्य विद्वानों का यह सर्वश्रेष्ठ पठनीय ग्रन्थ बन गया। डॉ. ओबराय ने गीता की विश्वव्यापी देन का सविस्तार वर्णन किया। उन्होंने गीता के प्रत्येक अध्याय को लेकर इसकी व्याख्या की। भारत राष्ट्र में तथा भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इसके योगदान की चर्चा की। उन्होंने इसे मानवता के इतिहास में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ बतलाया। गीता को ज्ञान, भक्ति तथा कर्म का अद्भुत समन्वय बताया। साथ ही वर्तमान भारत की समस्याओं का समाधान तथा विश्व के कल्याण तथा शान्ति का पथ बतलाया।

निस्सन्देह महामनीषी डॉ. हरवंशलाल ओबराय के विचारों तथा चिन्तन को समर्थन का यह श्रेष्ठतम प्रयास है। इसके लिए स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी की साधना अद्भुत है। वह कोटिशः बधाई के पात्र हैं। उनकी यह साधना दिव्य तथा स्तुत्य है। देश-विदेश के पुस्तकालयों के लिए यह ग्रंथमाला संग्रहणीय है। भारत के प्रत्येक प्रबुद्ध पाठक को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

—डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल
अखिल भारतीय इतिहास संस्करण संकलन योजनीक राष्ट्रीय अध्यक्ष
सेवानिवृत्त प्रोफेसर, इतिहास-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय;
आवास : 6/1277-ए, माधवनगर, सहारनपुर-247001 (उ.प्र.)
(**इतिहास दर्पण :** अंक 18(2) विजयादशमी, 2013; **जाह्नवी** मासिक के अप्रैल, 2014 तथा **बप्पा रावल** मासिक के जनवरी, 2014 के अंक में प्रकाशित)

विश्व भारत का चिर ऋणी है

पूरे विश्व में हिन्दू संस्कृति का प्रभाव होने के अनेकों प्रमाण दुनिया में बिखरे पड़े हैं। इन साक्ष्यों का गहराई से अध्ययन पहले दीवान चमनलाल ने किया था। उनकी दो पुस्तकों **हिन्दू अमरीका** तथा **इण्डिया मदर ऑफ अस आल** में हिन्दू संस्कृति के इन भग्नावशेषों का वर्णन किया गया है। प्रकाण्ड विद्वान प्रो. रघुवीर ने भी अनेक देशों की यात्रा कर बहुत सारे साक्ष्य जुटाये। इतिहासकार पी.एन. ओक ने इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया। चार खण्डों में वैदिक राष्ट्र का इतिहास लिख कर उन्होंने सिद्ध कर दिया कि प्राचीन काल में हिन्दू संस्कृति का ही प्रभाव पूरे विश्व में था।

डॉ. ओबराय ने उसी मान्यता को और मजबूती दी है। उनके इस विषय के लेखों का संकलन 'विश्व भारत का चिर ऋणी है' नाम से प्रकाशित हुआ है। यह संकलन वास्तव में पठनीय है तथा आगे शोध के लिये आधार ग्रन्थ बन सकता है। इसके एक लेख में 'आर्यों के भारत में आने की धारणा' को मिथ्या एवं पूर्वाग्रह-युक्त सिद्ध किया गया है। यह भी बताया गया है कि भारत के श्रेष्ठ पुरुष पूरी दुनिया को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनाने के लिये अन्य देशों में गये। आगे के लेखों में मिस्र, ईरान, रूस, यूनान, रोम, उज्बेकिस्तान, दक्षिण-पूर्व एशिया, इंग्लैण्ड, सऊदी अरब आदि देशों पर प्राचीन काल में हिन्दू संस्कृति के प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। प्रथम पूज्य गणपति, श्रीराम, श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध आदि के दुनिया के देशों में उपासना के प्रमाण भी संकलन के लेखों में हैं।

पाथेय कण, 1 मार्च, 2014

भारतीय संस्कृति पश्चिमी सभ्यता और विज्ञान

संस्कृति और भारतीय संस्कृति को समझने के लिये यह उत्कृष्ट संग्रह है। पहला और विस्तृत लेख भारतीय संस्कृति पर ही है। लेख का पहला वाक्य है–

'संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है, भूखण्ड राष्ट्र की देह है, साहित्य उसकी दृष्टि है, भाषा उसकी वाणी है, सभ्यता उसका श्रृंगार है, कलाएं उसका सौंदर्य हैं, विज्ञान उसका वैश्विक शोध है, अर्थ इसका भण्डार है, संस्कृति उसकी प्राण है। संस्कृति के बिना सब निष्प्राण हो जायेगा।'

लगभग सत्तर पृष्ठों के इस लेख को हृदयंगम करने के बाद संस्कृति सम्बन्धी कोई प्रश्न नहीं बचते। पश्चिमी सभ्यता और विज्ञान की भूमिका की भी इसमें सुन्दर मीमांसा है। स्वामीजी की विद्वत्ता तो संदेह से परे है। सरल भाषा-शैली में संस्कृति और सभ्यता के वर्णन ने संग्रह को पठनीय बना दिया है।

पाथेय कण, 1 मार्च, 2014

स्वराज्य संस्थापक शिवाजी एवं स्वातंत्र्य-साधक वीर सावरकर

वीर सावरकर के आदर्श छत्रपति शिवाजी महाराज थे, जिन्होंने पांच-पांच विधर्मी, विदेशी बादशाहतों—बीजापुर की आदिलशाही, गोलकुंडा की निजामशाही, दिल्ली की मुगल शहंशाही, एबीसीनिया का सिद्दी जौहर, गोवा का पुर्तगाली शासन—सब को परास्त कर स्वतंत्र हिन्दू साम्राज्य की ऐतिहासिक संस्थापना की थी।

वीर सावरकर के जीवन में छत्रपति शिवाजी की ज्योति कैसे चमत्कारी रूप में काम कर रही थी, यह इतिहास का एक अनूठा एवं प्रेरणादायी अध्याय है। वीर सावरकर के आदर्श पुरुष छत्रपति शिवाजी ही थे तथा शिवाजी का जैसा मार्मिक इतिहास सावरकरजी ने लिखा है वह भी अतुलनीय ही है।

जैसे जीजाबाई ने संस्कारित कर शिवाजी का निर्माण किया था, वैसे ही सावरकर के माता-पिता शैशवावस्था में ही शिशु सावरकर को रामायण-महाभारत, शिवाजी, राणा प्रताप आदि की प्रेरक वीर गाथाएँ सुनाकर उनका संस्कार करते थे। सावरकर के पिता (श्री दामोदर पन्त सावरकर) स्वयं अच्छे कवि थे तथा उन्होंने बालक विनायक सावरकर को मराठी के प्रख्यात सन्त-कवि तुकाराम, वापट, मोरोपन्त की कविताएँ सुनाकर उसकी काव्य प्रतिभा को भी अंकुरित कर दिया था।

सावरकरजी ने छात्र जीवन में ही अपनी मित्र मण्डली को लेकर रोहिडेश्वर के उसी शिव मन्दिर में जाकर अपनी कटार से अपनी भुजा का रक्त चढ़ाकर मातृभूमि की स्वाधीनता की प्रतिज्ञा की जहाँ बाल शिवाजी ने 250 वर्ष पूर्व अपनी बाल मित्र मंडली के साथ अपनी भुजा के रक्त से शिव का अभिषेक कर हिन्दवी स्वराज्य की संस्थापना के लिए प्रतिज्ञा की थी।

छत्रपति शिवाजी के राज्यारोहण के 225 वर्ष पश्चात् सन् 1901 में सावरकरजी ने मैट्रिक परीक्षा पास कर फार्ग्यूसन कॉलेज, पूना के रेजीडेंसी छात्रावास में छत्रपति शिवाजी की पूजा आरती का क्रम चालू किया, शुक्रवार के दिन सावरकर के साथी छात्र शिवाजी महाराज का चित्र अपने छात्रावास में लगाते और उसकी आरती करते, 'आरती' सावरकर ने ही रची थी, जिसका अर्थ यह था—

'हे छत्रपति शिवाजी! आर्यों के देश पर विदेशियों का हमला हो गया है, सजग होकर आप शीघ्र आइए। भारतमाता आप को रुद्ध कण्ठ से पुकार रही है।

क्या आपके हृदय को उसका स्वर बेधता नहीं? हे शिवाजी! आप की जय हो। आर्य जनता आप की शरण है। इसकी मुक्ति के लिए जल्द आइये।

कभी जिस भारत-भू के लिए माता दुर्गा ने शुंभ-निशुंभ आदि दानवों का नाश किया था और जिसकी सुरक्षा के लिए श्री रामचन्द्र ने रावण का संहार किया था, वही भारत-भू आज अंग्रेजों से पीड़ित है। हे शिवाजी! आप के बिना कौन उसकी रक्षा करेगा?

हम भारतवासी त्रस्त हैं और निर्धन हो गये हैं। गुलामी की बेड़ियों ने देश को मरणासन्न बना दिया है। अब आप के शरणागत हैं। इसलिए हे प्रभु। सज्जनों के रक्षार्थ तथा भगवद्गीता के सन्देश को सार्थक बनाने के लिए आप तुरंत आइये।

कहते हैं आर्यों की करुण पुकार सुनकर स्वर्ग में शिवाजी का गला भर आया और तब देश को स्वतन्त्र कराने के लिए शृंगेरी किले में जन्म धारण किया। जब देश का कार्य हो गया तब उन्होंने रायगढ़ दुर्ग में अन्तिम विदा ले ली। बोलो, उन शिवाजी की जय बोलो। जिन्होंने देश को स्वतन्त्र कराया।'

यह आरती गाकर सावरकर और उनके साथी देश सेवा का संकल्प दृढ़ करते रहते थे।

सावरकरजी ने प्राचीन ऐतिहासिक दुर्ग देखने की योजना बनायी। पहले उन्होंने सिंहगढ़ किला देखा। इस किले में छात्रों के बीच सावरकरजी ने बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया। उन्होंने शिवाजी से सम्बन्धित अन्य दुर्गों को भी श्रद्धापूर्वक देखा।

लोकमान्य तिलक ने सावरकर की रक्त प्रतिज्ञा एवं विदेशी कपड़ों की होली से गद्गद होकर कहा कि 'सचमुच अभिनव शिवाजी का जन्म हो गया है।' लोकमान्य तिलक ने सावरकर को लन्दन में श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा को पत्र लिखकर उन्हें छत्रपति शिवाजी छात्रवृत्ति दिलवायी थी।

तिलक महाराज ने स्वाधीनता महायज्ञ हेतु जनजागरण के लिए महाराष्ट्र में गणपति उत्सव एवं शिवाजी उत्सव का प्रचार किया था। सावरकर ने इन युवकों में प्रेरणा भरने हेतु बड़ा व्यापक अभियान चलाया। लोकमान्य तिलक ने शिवाजी की जन्म स्थली शिवनेरी दुर्ग को देखा तो उसकी उपेक्षित अवस्था को देख कर उनके नेत्रों में अश्रु छलक आये। उन्होंने ही देश भर में धन संग्रह करके शिवनेरी दुर्ग पर जीजाबाई के दुलारे, इतिहास के अलौकिक पुरुष छत्रपति शिवाजी का उचित स्मारक बनवाया। सावरकरजी ने उस शिवनेरी दुर्ग को युवकों का प्रेरणादायी महातीर्थ बना दिया।

स्वाधीनता आन्दोलन में लोकमान्य तिलक को डोंगरी जेल की जिस ऐतिहासिक बैरक में दो बार बन्द रखा गया था, वीर सावरकर को भी सन् 1911 में पचास वर्ष का आजन्म कारावास का दण्ड देकर अन्दमान जेल भेजने से पूर्व

उसी डोंगरी जेल में उसी बैरक में रखा गया था। दोनों शिवाजी भक्तों को जेल के भीतर एवं बाहर समान प्रेरणाएँ आन्दोलित करती रहीं। जिस प्रकार लोकमान्य तिलक ने माण्डले जेल की काल कोठरी में स्वाध्याय हेतु निजी व्यय से सैकड़ों ग्रंथ मंगवाए थे। सावरकरजी ने भी अंदमान में अपने मित्रों, प्रशंसकों एवं सम्बन्धियों को पत्र लिख-लिख कर हजारों ग्रंथ स्वाध्याय के लिए एकत्र कर लिए थे।

जैसे तिलकजी ने प्रायः सभी ग्रन्थ कारागार में ही लिखे, सावरकरजी की भी सभी रचनाएँ कारागार की साहित्य साधना हैं। जैसे तिलक महाराज ने माण्डले जेल की काल कोठरी की दीवारों पर कोयले से लिखकर 'गीता रहस्य' जैसे महान् ग्रंथ की रचना की। सावरकरजी भी हथकड़ी पहने हाथों से अन्दमान जेल की काल कोठरी की दीवारों पर गोमान्तक महाकाव्य लिखते थे। 1920 में अंदमान जेल की घोर यातनाओं (30 सेर तेल पेरना, रस्सी बँटने, लोहे के पिंजरे में बन्द रहने, हथकड़ियों से दीवार पर टांगे जाने, हंटरों की मार, कुपोषण, मानसिक यंत्रणा आदि) से वीर सावरकर गंभीर रूप से रुग्ण हो गये। उन्हें मृत्यु की काली छाया सिर पर मंडराती प्रतीत होने लगी। उन्होंने मृत्यु को संबोधन कर कविता लिखी—'इस स्वाधीनता की रणयज्ञाग्नि में मैंने अपनी अस्थि-अस्थि, मांस की बोटी-बोटी, रक्त की प्रत्येक बूंद ईंधन के समान भेंट कर दी है।' उसी समय उन्हें तिलक महाराज के स्वर्गवास का समाचार मिला। सावरकरजी के परामर्श में अंदमान जेल के सभी बंदियों ने दिवंगत आत्मा के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए दिनभर उपवास किया। यदि तिलक महाराज शिवाजी के आदर्श प्रस्थापक थे तो सावरकरजी शिवाजी के सजीव आदर्श।

सावरकरजी ने छात्र जीवन में ही प्रेरक कवितायें, विशेष कर मराठी रणगीत पोवाड़े रचकर युवकों के हदय में राष्ट्र भक्ति की भावनाएँ प्रज्वलित करनी प्रारंभ कर दी थीं। वे शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह आदि के पोवाड़े रचते व उन्हें अपने साथियों के बीच सुनाते तो किशोरों की बांहें फड़कने लगती थीं। एक पोवाड़े में वे एक स्थान पर शिवाजी, दिल्ली के मुगल सिंहासन को चकनाचूर करने वाले पानीपत के वीर पराक्रमी सदाशिवराव भाउ, सेनापति धनाजी एवं सन्ताजी आदि को एकत्रित दिखाते हैं किन्तु वीर बाजीप्रभु देश पाण्डे की अनुपस्थिति पर दुःख प्रकट करते हैं। फिर स्वयं कहते हैं हाय वीर बाजी प्रभु! बीजापुर के मुसलमान बादशाह की नौकरी में हैं? वह विदेशी विधर्मी की, अपनी ही मातृ भूमि की दासता में सहायता कर रहे?

दूत बाजीप्रभु को सम्बोधित कर कहते हैं, 'जिसको अपने देश, अपने स्वराज्य से प्रेम नहीं उस व्यक्ति को धिक्कार है। आज तो देश द्रोह करने वाले चाण्डालों का बाजार लगा है। बाजी वीर श्रेष्ठ इस दासता में अपनी आयु क्यों

व्यर्थ नष्ट करते हो? गो-ब्राह्मण प्रतिपालक स्वातंत्र्य संस्थापक भगवान् शंकर के अवतार शिव प्रभु तुम्हें बुला रहे हैं। स्वाधीनता संग्राम जो छिड़ा है उसके लिए तुम्हें बुला रहे हैं। वहाँ चलो, देशभक्ति का अमृत-पान करके प्रायश्चित्त करो और स्वातंत्र्य सेना का नेतृत्व करो।' ये शब्द बाजी प्रभु के हृदय में तीर के समान चुभते हैं। राष्ट्रभक्ति भावना जागृत हो उठती है और हृदय ग्लानि की भावना से मर्माहत हो उठता है। बाजी प्रभु शिव दूतों से कहते हैं—

'घर में घुसे इस विदेशी, विधर्मी, हिन्दू द्रोही चोर को मैंने राजा माना और शिवाजी जैसे महान् पराक्रमी वीर का विरोध किया। मेरी पावन मातृभूमि जिसने भ्रष्ट की। मैं उसका सेवक बना। शिव दूतो! महाराजा शिवाजी से कहना कि मेरे जैसे अधम राष्ट्रद्रोही को काट डालें, आकर मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दें।'

बाजी प्रभु का विचार आगे बढ़ता है—'मेरा देश मेरा राजा है। वह मेरा प्राण है। वह मेरा ईश्वर है। भगवान् है। मैं छत्रपति शिव प्रभु की शरण में आया हूँ। अग्नि के ऊपर जो राख जमी थी, वह उड़ गई और वह अग्नि पुनः प्रदीप्त हो वैश्वानर बनकर शत्रु दमन के लिए रणभूमि में आ डटा।'

अफजल खां के पुत्र फाजल खां तथा एबीसीनिया के हब्शी सिद्दी जौहर ने हजारों सैनिकों के साथ पन्हाला का किला घेर लिया। शिवाजी किले में थे तथा बाजी प्रभु देश पाण्डे मात्र 100 सैनिकों के साथ रक्षा कर रहे थे। स्वतंत्रता देवी के साक्षात हृदय रूप शिवाजी उस दुर्ग में फंस गये थे। फाजल खां पिता का बदला लेने के लिए आया था। बीजापुर से प्रस्थान करने से पूर्व इस दुष्ट फाजल खां ने बीजापुर की चारदीवारी के प्रवेशद्वार पर महान् विजयनगर साम्राज्य के अन्तिम सम्राट राम राजा का सिर लटका रखा था और उसे उतार कर वहाँ पर शिवाजी का सिर लटकाने की प्रतिज्ञा की थी और वह पन्हाला दुर्ग को घेरे खड़ा था।

वीर सावरकर की ओजस्विनी वाणी कहती है—'बेटा फाजल! जानते हो मुकाबला किससे है? तुम्हारे बाप को जिसने मिट्टी में मिला दिया उस महापुरुष से दो-दो हाथ करना है। शक्तिशाली पवन को मुट्ठी में पकड़ने का यह प्रयत्न है। आओ, जंगलों को भस्म करने वाले दावानल को पकड़ने के लिए हिरन के बच्चे बढ़, आगे बढ़!'

उसी पोवाड़े में वीर सावरकर आगे लिखते हैं कि बाजी प्रभु देश पाण्डे शिवाजी को बचाने हेतु उनसे आग्रह करते हैं—'छत्रपति माई-बाप! मराठा मृत्यु से डरता नहीं। आप रांगणा चले जाइए। वहाँ से संकेत रूप पांच तोपें दागिये। .....छत्रपति! आप वसुदेव हैं, मुसलमानों के कंस-कपट की ओर ध्यान देकर स्वतंत्रता की अमृतमयी मूर्ति लेकर रांगणा के गोकुल में चले जाइए, जहाँ वह सुरक्षित रूप से रहे।'

विश्व इतिहास में जो भयंकर और निर्णायक युद्ध हुए हैं उनमें पावन खिण्ड का यह युद्ध सभी दृष्टियों से अपूर्व था। सौ-डेढ़ सौ मराठा सैनिकों ने बहुत बड़ी मुस्लिम सेना को पूरी तरह हराने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। मर्म स्थान पर गोली लगने से बाजी प्रभु अर्ध मूर्च्छित होकर भी लड़ते रहे। वे बोले—'तोपों की आवाज सुनने से पहले बाजी मरेगा नहीं, मरेगा नहीं, यह बात यमराज से कह दो, बाजी तोप आवाज के पहले नहीं मरेगा।'

लड़ते-लड़ते बाजी प्रभु ने पाँच तोपों की गर्जना सुनी। तोप का प्रथम गर्जन शिवाजी का, दूसरा स्वधर्म है, तीसरा स्वदेश का, चौथा कर्तव्य का और पाँचवाँ है विजय ध्वनि का। बाजी का मृत शरीर स्वतः स्वतंत्रता भगवती ने उठाकर अपने रथ में रखा और उसे लेकर स्वर्ग की ओर बढ़ीं। गंधर्व अति आनंदित हो गये, देवताओं ने स्वागतार्थ दुंदुभि बजायी। सारा चराचर विश्व बाजी का यशोगान करने में तल्लीन हो गया।

क्रान्तिकारी चाफेकर बन्धुओं ने सन् 1894 में हिन्दू धर्म संरक्षणी सभा की स्थापना की थी। सभा एवं सावरकरजी द्वारा स्थापित मित्र मेला के कार्यक्रम शिवाजी श्लोक तथा गणपति शिवाजी श्लोक का भाव इस प्रकार है—केवल शिवाजी की गाथा दोहराने मात्र से स्वतंत्रता मिलना संभव नहीं बल्कि हम लोगों को शिवाजी और बाजीराव की तरह कमर कस कर संहार कार्यों में लग जाना होगा। मित्रो! अब आपको स्वतंत्रता के लिए शस्त्र उठाने होंगे और अंग्रेज दुश्मनों के सिर काट कर स्वातंत्र्य लक्ष्मी का अभिषेक करना होगा।

'मित्रो! हम संकल्प करते हैं कि राष्ट्रीय रणांगण में हम अपना जीवन बलिदान कर देंगे और जो लोग हमारे धर्म व मातृ भूमि को नष्ट करने में लगे हैं तथा उस पर आघात कर रहे हैं उनके रक्त से धरती रंग देंगे। हम सब शत्रुओं को यमलोक पहुँचा कर ही मरेंगे।'

सावरकरजी ने अपने विश्वस्त साथियों को एकत्रित करके एक गुप्त बैठक में भारत की स्वाधीनता के लिए सशस्त्र क्रान्ति करने के लिए 'अभिनव भारत' नामक एक संस्था की स्थापना की।

अभिनव भारत का प्रत्येक सदस्य निम्न प्रतिज्ञा लेता था—'छत्रपति शिवाजी के नाम पर, अपने पवित्र धर्म के नाम पर और अपने प्यारे देश के लिए पूर्व-पुरुषों की कसम खाते हुए मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने राष्ट्र की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए अन्तिम सांस तक संघर्ष करता रहूँगा। मैं न तो आलस्य करूंगा और न अपने उद्देश्य से हटूंगा। मैं अभिनव भारत के नियमों का पूर्ण पालन करूंगा और संस्था के कार्यक्रम बिल्कुल गुप्त रखूंगा।'

सावरकरजी ने पूना की एक सभा में भाषण देते हुए कहा, 'छत्रपति शिवाजी की सन्तानो! जिस प्रकार शिवाजी ने मुगल साम्राज्य का विध्वंस किया। सदाशिव राव भाऊ ने मुगल तख्त को चकनाचूर किया, उसी प्रकार तुम्हें अब भारत माँ को दासता की बेड़ियों में जकड़ने वाले अंग्रेजों के अत्याचारी साम्राज्य को चकनाचूर करके स्वाधीन हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करनी है। सशस्त्र क्रान्ति के बल पर इस विदेशी साम्राज्य का तख्ता पलटना है।'

सन् 1906 में सावरकरजी ने लंदन में श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा चालू छत्रपति शिवाजी छात्रवृत्ति प्राप्त की। उन्होंने फ्री इंडिया सोसाइटी की स्थापना करते हुए कहा—

'अंग्रेजी साम्राज्य को भारत से तभी समाप्त किया जा सकता है जब भारतीय युवक शिवाजी के समान हाथों में शस्त्र लेकर मरने-मारने को कटिबद्ध हो जायें। सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा ही भारत की स्वाधीनता सम्भव है। अतः हमें भारतीय युवकों को इसके लिए तैयार करना है। उसकी शस्त्रास्त्रों से सहायता करनी है।' सावरकरजी ने 2 मई 1908 को लन्दन में शिवाजी जयन्ती महोत्सव धूम-धाम से मनाया।

ढींगरा के बलिदान पर सावरकरजी ने कहा—'ढींगरा महास्वाभिमानी हिन्दू थे। उनके मतानुसार राष्ट्र शत्रु का वध भगवान् राम, कृष्ण, शिवा, प्रताप आदि हिन्दू स्वाभिमानियों की वीर परम्परा का एक अंग था, वह ईश्वरीय कृत्य था। भारतीय स्वातंत्र्य समर की ज्योति प्रज्वलित करने वाला एक निनाद था उनका ऐतिहासिक वक्तव्य।'

1 जुलाई, 1910 को वीर सावरकर को इंग्लैण्ड से गोरिया जलयान द्वारा भारत लाया जा रहा था। वीर सावरकर के मस्तिष्क में छत्रपति शिवाजी द्वारा औरंगजेब के कारागार से चतुरता के साथ मुक्त होने की योजना घूम गई। उन्होंने विचार किया कि अंग्रेजी साम्राज्य की जेलों में यातनाएँ सहन करने की अपेक्षा मुक्त होकर मातृ-भूमि को स्वाधीन कराने में योग देना कहीं अच्छा है। फांसी पर चढ़ने की अपेक्षा अंग्रेज अधिकारियों से दो-दो हाथ करते हुए शहीद हो जाना कहीं अधिक उचित है। उन्होंने गोरों के चंगुल से मुक्त होने का निश्चय कर लिया।

8 जुलाई, 1910 को मार्सेल बन्दरगाह के निकट जहाज पहुँचने ही वाला था कि सावरकर शौच के बहाने से जहाज के पाखाने में जा घुसे। बड़ी फुर्ती से वे उछलकर, पोर्टहॉल को पकड़ कर छेद से 'जय स्वातंत्र्य लक्ष्मी' का उद्घोष कर समुद्र में कूद पड़े।

वीर सावरकर ने स्वयं लिखा है—'अन्दमान में हम हिन्दू राजबन्दियों पर पापी, कुकर्मी व चुगलखोर तीन वार्डन जो रखे गये थे वे तीनों के तीनों पठानी,

बलूची, मुसलमान थे। वे तीनों क्रूर मुसलमान वार्डन हिन्दुओं पर दबदबा जमाने की नीति रखते थे। समस्त सिन्धी मुसलमान, पठान मुसलमान, पंजाबी मुसलमान एक होकर हिन्दुओं को परेशान करते थे। एक दिन पठान वार्डन ने एक मद्रासी हिन्दू कैदी को गालियाँ देते हुए कह दिया, 'यह काफिर है साला....इसकी चोटी उखाड़ना चाहिए।' अण्डमान में कुछ मुसलमान कैदी हिन्दुओं को त्रस्त करके व बाद में सहानुभूति दिखाकर उन्हें 'इसलाम धर्म' स्वीकार करने को बाध्य करते। पठानों ने जब एक-दो हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया तो सावरकरजी ने प्रत्युत्तर में शुद्धि का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

छत्रपति शिवाजी के समय में भी उनके विश्वासी सेनानायक नेताजी पालकर को मुगलों द्वारा धर्म भ्रष्ट कर कुली खां बना दिया गया था। 9 वर्ष काबुल कांधार में मुगलों के अधीन युद्ध करता रहा। शिवाजी ने 19 जून, 1677 को पूर्ण धार्मिक रीति से उसका शुद्धि संस्कार करवाकर उसे पुनः स्वधर्म में दीक्षित कर लिया था।

वीर सावरकर ने विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार मिलने पर उनके अभिनंदन में कविता (अन्दमान जेल से ही) लिखी—'रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गौरव में भारत का गौरव अनुस्यूत है। भारत माता 'समरवाष्परथ' में आरूढ़ होकर राजधानी की ओर वापस लौट रही है। उसके स्वागतार्थ कवियों का समूह आगे बढ़ा। मैं भी कवि हूँ इस विश्वास से मैं भी उस कवि समूह में सम्मिलित होने के लिए आगे बढ़ा। परन्तु माता की आज्ञा हुई कि क्रान्ति के वाष्पयंत्र के कक्ष में काम करने वालों की कमी है, वहाँ जा। इस आज्ञा के कारण मुझे कवि कक्ष में सम्मिलित होने का अवसर न मिला।' वीर सावरकर ने शिवाजी के यश में वीर रस के गीत गाये तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी छत्रपति को काव्यमय श्रद्धांजलि चढ़ाते हुए गाया—'सुदूर किसी एक शताब्दी के एक अप्रसिद्ध दिन में महाराष्ट्र के किसी एक वन पर्वत पर अन्धकार में बैठकर हे राजा शिवाजी, तुम्हारे तेजोज्ज्वल भाल में विद्युत् तरंग के समान यह भाव उत्पन्न हुआ था—'खण्डित-अव्यवस्थित भारत को मैं एक धर्मराज्य के सूत्र में आबद्ध करूंगा।'

सितम्बर, 1924 ई. में प्रख्यात मुस्लिम नेता मौलाना शौकत अली ने सावरकरजी से कहा कि वे शुद्धि आन्दोलन बन्द करें। इस पर सावरकरजी ने कहा पहले वे हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन रुकवाएँ। मौलाना ने चिढ़कर कहा—'यदि मुसलमानों की बातें न मानी गयीं तो उनके विश्व में अनेक देश हैं वे वहाँ चले जाने को मजबूर होंगे।' सावरकरजी ने मौलाना के शब्द सुनकर तुरंत कहा—'प्रतिदिन फ्रंटियर मेल भारत से बाहर जाता है। आप प्रतीक्षा क्यों करते हैं? तुरंत भारत से बोरिया-बिस्तर लेकर अलविदा हो जाइए।' चलती बार खीजकर मौलाना ने सावरकर को संकेत कर व्यंग्य किया—'आप मेरे मुकाबले बहुत बौने (छोटे कद

के) हैं अतः मैं आप को दबोच सकता हूँ।' सावरकर ने बिना एक क्षण रुके उत्तर दिया—'मैं आपके चैलेन्ज को स्वीकार करता हूँ। किन्तु क्या आप यह नहीं जानते कि शिवाजी अफजल खां के सामने बहुत बौने थे परन्तु उस नाटे कद वाले मराठा ने कद्दावर पठान का पेट फाड़ डाला था।' इसके बाद मौलाना कुछ न बोल पाया।

रत्नागिरि जेल में वीर सावरकर ने छत्रपति शिवाजी द्वारा संस्थापित स्वराज्य का इतिहास हिन्दू पदपादशाही लिखा। ये लिखते हैं—'मैं अपने हृदय में बहुत दिनों से यह इच्छा संजोए हुए था कि जन साधारण के समक्ष एक ऐसी पुस्तक प्रस्तुत करूं जिससे महाराष्ट्र के इस महान् आन्दोलन एवं क्रान्ति के संदेश का न्यूनाधिक ज्ञान उपलब्ध हो सके।....

वस्तुतः परमात्मा को ही यह स्वीकार था कि मैं अपने उन महान् पूर्वजों के प्रति अपने श्रद्धा सुमन समर्पित करने का सुअवसर प्राप्त करूं जिन्होंने 16वीं शताब्दी में अपने प्रचण्ड शौर्य और त्याग के बल पर महान् हिन्दू राष्ट्र की स्वतन्त्रता के संरक्षण का महती कार्य सम्पन्न किया।'....किन्तु मराठों की जागृति के आन्दोलन की उत्ताल तरंगों ने तो प्रान्तीय सीमाओं को लांघकर 'अखिल हिन्दू आन्दोलन' का रूप ही ग्रहण कर लिया था।

राजनीतिक रंगभूमि पर शिवाजी के प्रकट होने से पूर्व अर्थात् 1627 ई. से पहले हिमगिरि की गगनचुम्बी शैलमालाओं से हिन्द महासागर पर्यन्त जहाँ कहीं भी हिन्दू और मुस्लिम वाहिनियों में संघर्ष हुआ वहाँ हिन्दुओं को ही पराजित होना पड़ा। कभी हिन्दू सहसा ही अपने नेता के लापता हो जाने के कारण पराजित हुए तो कभी उसके रणभूमि में बलिदान हो जाने के परिणामस्वरूप हार गये अथवा कभी अपने ही किसी मंत्री या सेनापति के विश्वासघात के फलस्वरूप विजयश्री का वरण कर पाने में असफल हो गये। इस प्रकार जब कभी भी दो-दो हाथ हुए, तभी हिन्दुओं की पराजय की कहानी में एक पृष्ठ और जुड़ गया। सिन्धु नरेश महाराज दाहिर सेन का दुर्भाग्य, जयपाल का संघर्ष, अनंगपाल की दृढ़ता, दिल्लीपति महाराज पृथ्वीराज चौहान का पतन, कालिंजर, सीकरी अथवा तालीकोट की घटनाओं को स्मृति पटल पर लाते ही उपरोक्त कथन की सत्यता स्वतः प्रमाणित हो जाती है। परन्तु जब हिन्दू जाति के भाग्य की बागडोर शाहजी तनय सरजा शिवाजी ने अपने सशक्त हाथों में थामी तो उन्होंने हिन्दुओं के इतिहास से पराजय के पन्ने को फाड़कर उसमें विजय-वरण के अध्याय को संलग्न कर दिया।

इसके बाद इतिहास के इस स्वर्णिम समुल्लास का सृजन हुआ जिसमें हिन्दू राष्ट्र की पावन पताका पुनः कभी यवनों के हलाली परचम के सम्मुख नतमस्तक नहीं हुई।

इस प्रकार इतिहास साक्षी है कि स्वातंत्र्य वीर सावरकर के जीवन में छत्रपति शिवाजी का तेजस्वी प्रकाश बड़े अलौकिक रूप से कार्य कर रहा था। दोनों विभूतियों को शतशः वंदना, कोटिशः अभिनंदन।

'काशीजी की कला जाती, मथुरा मस्जिद होती,
शिवाजी न होता तो सुन्नत होत सब की।'

—कवि भूषण

× × ×

मानवता का अमर अलंकार

शिवाजी के जीवन कार्यों का मूल्यांकन प्रसिद्ध इतिहासकार जदुनाथ सरकार इस प्रकार करते हैं—जहांगीर ने प्रयाग के अक्षयवट वृक्ष को जड़ों से काट डाला था। उसकी जड़ों पर उबलता शीशा उड़ेला था। अविनाशी ऐसे वृक्ष को मैंने पूरा नष्ट किया है ऐसा बड़े गरूर से एलान किया था। परन्तु आगे क्या हुआ? एक वर्ष के अन्दर ही जलकर खाक हुए, उन्हीं जड़ों से वह वटवृक्ष फिर से अंकुरित हुआ। ऊपर से अपने को आवृत किये शीशे के दुर्भेद्य कवचों जैसी ही दासता की शृंखलाएँ, अत्याचार आदि हिन्दुत्व के वटवृक्षों को सैकड़ों वर्षों तक ध्वस्त कर सेंध कर बैठे थे। वही वटवृक्ष परकियों के दमन भार में फंसने के बाद भी मरने के बजाय फिर नये सिरे से अंकुरित होते हुए दासता के सीस-कवचों को दूर फेंक कर बढ़ते-बढ़ते गगनचुंबी बनकर खड़ा हो सका, यही बात शिवाजी ने अपने जीवन से साबित कर दिखलायी।

—जदुनाथ सरकार

× × ×

श्रद्धाञ्जलि

"ज्ञात नहीं कौन-सी सुदूर शताब्दी के किस अप्रसिद्ध दिवस को महाराष्ट्र के किस शिखर पर वन के सघन अंधकार में आसीन हे राजा शिवाजी! तेरे मस्तिष्क में यह भावना चमकी कि 'खण्डित, छिन्न-विच्छिन्न भारत को मैं एक सूत्र में बांधूगा'।....एक दिन महाराष्ट्र प्रान्त में तेरे खड्ग की नोक ने विद्युत प्रकाश के समान जगमगाते हुए अक्षरों में वह महामन्त्र दिग्दिगन्त में युग-युग के लिए अंकित कर दिया। मुझ जैसा कवि भी विस्मित है, तीन शताब्दियों की घनघोर तिमिस्रा को भेदकर तेरा पुण्य प्रताप आज नूतन किरणों के प्रकाश-सा प्राची को पुनः किस प्रकार आलोकित कर रहा है।"

—विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर

पं. जवाहरलाल नेहरू का पुनर्मूल्यांकन

भारत के प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल अपने मिजाजों के राजा हैं। उनकी महिमा में उनके अनेक प्रशंसकों ने प्रशंसा के पुल तो अवश्य बांधे किन्तु किसी ने उनकी दुर्बलताओं एवं राष्ट्रहित विरोधी बातों की ओर अंगुलिनिर्देश करने का साहस नहीं किया। इसके लिए भी नैतिक साहस एवं बौद्धिक ईमानदारी की आवश्यकता है। प्रजातंत्र के हित में यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम बिना पक्षपात की भावना के अपने नेताओं का मूल्यांकन करें तथा उन्हें पथभ्रष्ट होने से बचायें। प्रजातंत्र में प्रजा स्वयं राजा है तथा नेता अथवा शासक तो उसके चुने हुए प्रतिनिधि हैं। अतः प्रजा का कर्तव्य है कि जागरूक रहकर अपने प्रतिनिधियों को राष्ट्र-विरोधी कार्यों से सदा रोकती रहे।

सफल अधिनायक

आज से 21 वर्ष पूर्व नवम्बर, 1937 में पण्डित नेहरू ने 'माडर्न रिव्यू' में एक उपनाम से स्वयं अपने बारे में ही लिखा, 'जवाहरलाल ने एक अभिनेता के रंग और पाउडर के बिना अभिनय करना भली-भांति सीख लिया है। अपने लापरवाह से दिखाई देने वाले दल से वह जनता के रंगमंच पर पूर्ण कलात्मक अभिनय करता है। यह सब उसे और देश को कहाँ लिए जा रहा है?'.... जवाहरलाल जैसे व्यक्ति महान् और श्रेष्ठ कार्यों को करने की अपनी क्षमता होते हुए भी प्रजातंत्र में भय का कारण होते हैं। वह अपने को एक प्रजातंत्रवादी, एक समाजवादी कहता है और इसमें सन्देह नहीं कि वह सचाई के साथ ऐसा करता भी है, किन्तु प्रत्येक मनोवैज्ञानिक जानता है कि अन्त में मन हृदय का गुलाम है और न्याय का अर्थ सदा ही मनुष्य की इच्छाओं और दुर्दमनीय आकांक्षाओं के अनुकूल लगाया जा सकता है। जरा सा मुड़ें और जवाहरलाल प्रजातंत्र के धीमे चलने वाले ढांचे को एक ओर हटाते हुए एक अधिनायक (डिक्टेटर) बन सकता है। वह तब भी प्रजातंत्र के नारे को काम में ला सकता है, किन्तु हम सभी जानते हैं कि किस प्रकार फासिज्म सदा इसी भाषा पर पला है और बाद में उसे बेकार कहकर एक ओर फेंकता है। पण्डित नेहरू के यह विचार कितने सच्चे निकले हैं। यह प्रत्येक ईमानदार भारतीय जानता है।

असहिष्णुता

अपने उक्त लेख में वे पुनः लिखते हैं—'जवाहरलाल एक फासिस्ट नहीं हो सकता, तो भी उसमें एक अधिनायक की सभी बातें हैं—भारी लोकप्रियता, निश्चित उद्देश्य के लिए दृढ़ संकल्प-शक्ति, अभिमान, संगठन कौशल, कठोरता। जनता के प्रति प्रेम दिखाते हुए भी दूसरों के प्रति असहिष्णु वृत्ति और दुर्बल तथा अयोग्य के प्रति एक प्रकार की घृणा।' पंजाब निवासी उनके आवेश एवं असहिष्णुता से परिचित हैं। हिन्दी भाषा के समर्थकों को पाँवों तले रौंदने की धमकियाँ तथा घोर अत्याचारी शासन के नेता सरदार प्रतापसिंह कैरों के समर्थन के लिए अपना बलप्रयोग करना इस के प्रमाण हैं।

क्रोधावेश

पण्डित नेहरू की स्वीकारोक्ति है—'उसके क्रोध की तेजी भली-भांति ज्ञात है और जब काबू में कर लिया जाता है तब भी होंठों की मरोड़ उसे धोखा दे जाती है। काम पूरा कराने की उसकी दुर्दमनीय इच्छा, जो उसे पसन्द न हो उसे हटा देने और नया बनाने की इच्छा कठिनाई से ही अधिक समय तक प्रजातंत्र की मन्द गति के साथ उसे रख सके। साधारण काल में वह केवल एक योग्य और सफल शासक होता किन्तु इस क्रान्तिकारी युग में सीजर का भाव सदा ही द्वार पर खड़ा है और क्या यह सम्भव नहीं कि जवाहरलाल अपने को सीजर मान ले?' यह प्रश्नचिह्न आज तक प्रत्येक भारतीय की मेधा को चुनौती है।

अपघटना से हिन्दू

पण्डित जवाहरलाल ब्राह्मण परिवार में भले ही उत्पन्न हुए हैं पर उन्हें पण्डित कहलाना पसन्द नहीं। अपने धर्म के प्रति भी उनका भाव इतना गौरवहीनता का है कि वे कहते हैं, 'मैं एक अपघटना से ही हिन्दू पैदा हुआ हूँ। हिन्दुस्तान मूलतः हिन्दुओं का ही स्थान है तथा भारतीय संस्कृति हिन्दू संस्कृति ही है। इसलिए जो दुर्भाग्य से हिन्दू है वह दुर्भाग्य से ही भारतीय ठहरता है। इसके मुकाबले में स्वामी विवेकानन्द का कथन है—'अब तक के सारे हिन्दुओं में मैं सबसे अधिक गौरव वाला हिन्दू हूँ।'

गो-ब्राह्मण

गाय तथा ब्राह्मण हमारी संस्कृति के अनादि काल से मानबिन्दु रहे हैं। इन्हीं की रक्षा के लिए भगवान् भी अवतार लेते हैं परन्तु पण्डित नेहरू ऐसे ब्राह्मण हैं जो स्वयं गौ के विरुद्ध हैं। अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' में वे लिखते हैं—'आर्य लोग गो-मांस खाते थे....महाभारत में वर्णन आता है कि सम्मानित अतिथियों को गो-मांस और बछड़े का मांस खाने को भेंट किया जाता था।' मैंने स्वयं पण्डितजी को इस बात पर चुनौती दी परन्तु कोई उत्तर नहीं प्राप्त हुआ। जवाहरलालजी ने कभी संस्कृत

नहीं पढ़ी। महाभारत के कभी दर्शन भी उन्होंने नहीं किये! महाभारत काल भगवान् कृष्ण तथा महर्षि वेदव्यास का काल था जब गऊ का पूजन होता था। महाभारत के अनुशासन पर्व के 74/4 श्लोक में भगवान् वेदव्यास स्वयं कहते हैं—'गौ को मारने वाले, उस का मांस खाने वाले तथा उस की हत्या का अनुमोदन करने वाले पुरुष, गौ के शरीर के जितने रोम होते हैं उतने वर्ष तक नरक में पड़े रहते हैं।'

गांधी तथा नेहरू

पण्डित नेहरू ने सन् 1938 में श्री जिन्ना को पत्र में लिखा—'गो हत्या करना मुसलमानों का एक जन्मसिद्ध एवं मान्य अधिकार है। स्वतंत्र भारत में जिसकी रक्षा की जाएगी।' इसके मुकाबले गांधीजी के विचार मनन करने योग्य हैं—'गाय की रक्षा करना भारत की सारी मूक सृष्टि की रक्षा करना है। हिन्दुस्तान में हिन्दुओं के साथ रहकर गोवध करना हिन्दुओं का खून करने के बराबर है।'

नास्तिक नेहरू

ईश्वर विश्वास भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड है। गांधीजी कहते थे—'यदि मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाएं तो भी शरीर का प्रत्येक टुकड़ा खड़ा होकर घोषणा करेगा कि ईश्वर है।' जहाँ ईश्वर विश्वास गांधीजी के लिए उनकी श्वास से भी अधिक अनिवार्य था वहीं श्री जवाहरलाल, जो दुर्भाग्य से हिन्दू कहलाने में गौरव मानते हैं, अपनी धर्मशून्य नास्तिकता पर भी बड़ा नाज करते हैं।

क्या प्रत्येक बौद्धिक ईमानदारी वाला भारतीय इस पर विचार करेगा???

16 नवम्बर, 1958

दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

यदि हिन्दुत्व ने मुझे निराश किया तो मेरा जीवन बोझ बन जायगा। हिन्दुत्व को मुझ से छीन लो तो मेरे पास कुछ भी नहीं रह जाता। यदि में इसलाम और ईसाई धर्म को प्यार करता हूँ तो अपने हिन्दुत्व के कारण ही।

—महात्मा गांधी

(द्वारा 2 मई 1933 को यरवदा जेल में जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र में लिखा)

पाश्चात्य विचारों में भारत का जो विश्वास जगा था, अब तो वह भी हिल रहा है। नतीजा यह है कि हमारे पास न तो पुराने आदर्श हैं, न नवीन; और हम बिना यह जाने हुए बहते जा रहे हैं कि हम किधर को या कहाँ जा रहे हैं। नयी पीढ़ी के पास न तो कोई मानदण्ड है, न कोई दूसरी ऐसी चीज, जिससे वह अपने चिन्तन या कर्म को नियन्त्रित कर सके।

—जवाहरलाल नेहरू